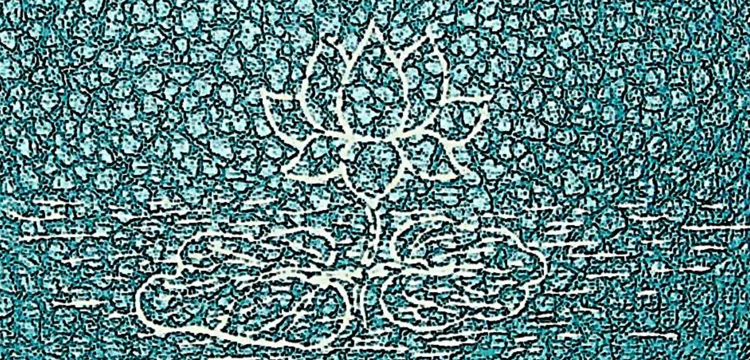
निर्मल स्वामी पं॰ श्री गुलाब सिंह जी कृत

श्री मोक्ष पन्थ प्रकाश



पं॰ श्री ताराहरि नरोत्तम कृत

'स्वयंप्रभा विवरण' टीका

प्रकाशक

श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा

कनखल, हरिद्वार

श्री मोक्ष पन्थ प्रकाश

[निर्मल स्वामी पं० श्री गुलाब सिंह जी]

कृत

•

पं० श्री ताराहरि नरोत्तम जी कृत

'स्वयंप्रभा विवरण' टीका

•

प्रकाशक

श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा

कनखल : हरिद्वार

प्रकाशक :

श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा

कनखल : हरिद्वार

•

प्रकाशन तिथि : १९ जनवरी १९७७

कुम्भ महापर्व-प्रयाग

संस्करण : प्रथमावृत्ति १२००

मूल्य : सोलह रुपये मात्र

•

मुद्रक :

आनन्दकानन प्रेस,

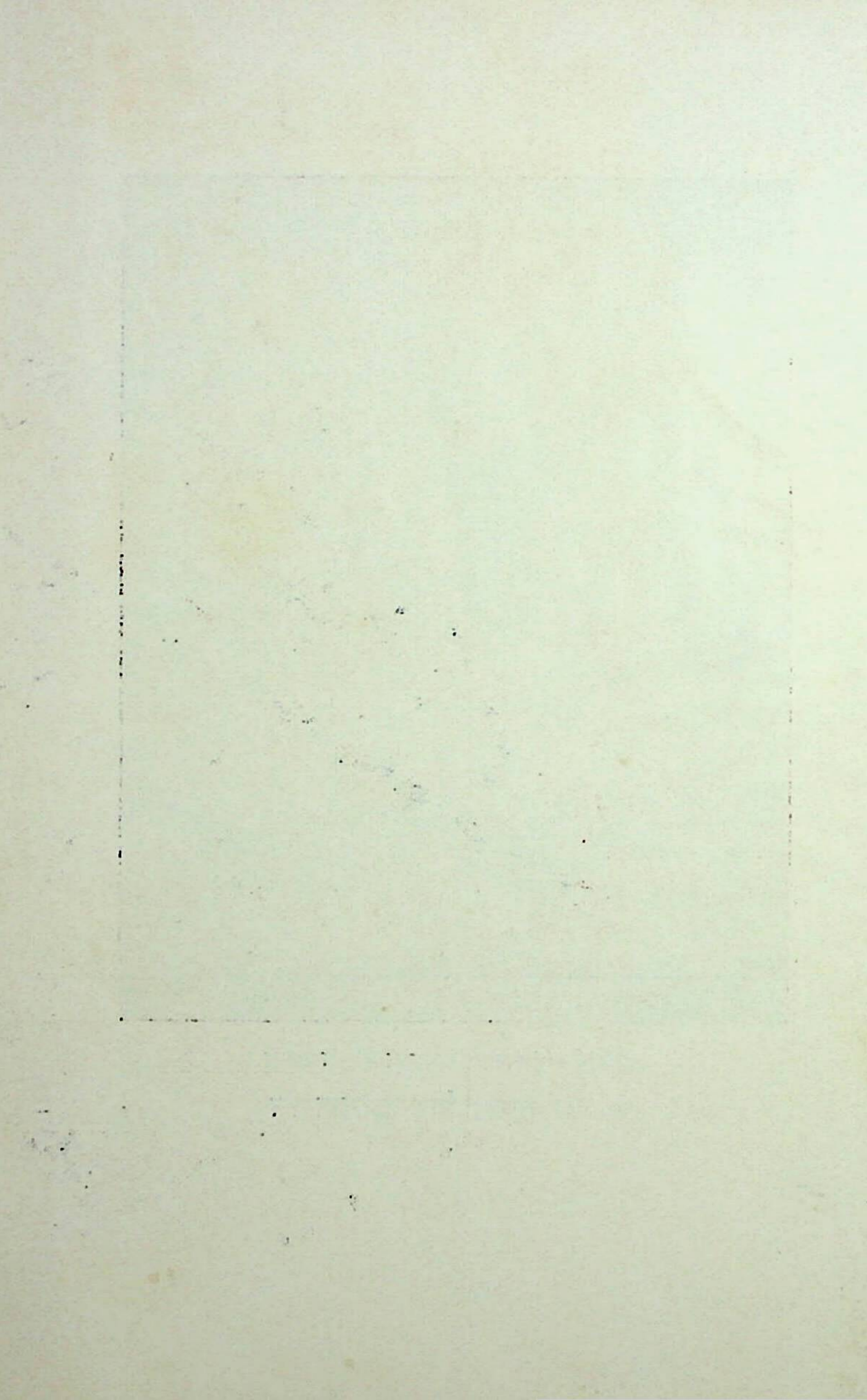
सी-के०, ३६/२०, ढुण्ढिराज

वाराणसी–२२१००१



श्रीनिर्मल पंचायती अखाड़ा के श्रीमहन्त

पं० श्री सुच्चा सिंह जी महाराज



विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
समीक्षात्मक भूमिका	[१७]
ग्रन्थकार परिचय	[४१]
प्रथमनिवास	
श्री गणेश जी का मङ्गल	१
श्री सरस्वती जी का मङ्गल	३
साक्षात् ब्रह्म का मङ्गल	३
श्रीगुरु नानकदेवजी तथा श्रीगुरु-गोविन्दसिंह जी का मङ्गल	४
स्वगुरुजी का मङ्गल	६
ग्रन्थ रचन की प्रतिज्ञा	७
ग्रन्थकार का परम्पराहेतु कथन	८
उक्त अष्ट हेतुओं का विवरण	१६
सिद्धान्ती का विषम दृष्टान्त	१७
सिद्धान्ती का स्वाभिप्राय	१९
वेदहीन मतों का कथन	२०
सांख्य मत का निरूपण	२२
ईश्वरवादी सांख्य मत का निरूपण	२२
पाशुपत मत का निरूपण	२३
नारदपंचरात्र का मत	२३
नैयायिक मत निरूपण	२३
बुद्धमत निरूपण	२४
जैनमत का प्रतिपादन	२४
मीमांसक मत कथन	२४
हिरण्यगर्भ उपासकों का मत	२६
वेदान्त का निरूपण	२७
त्वं पदार्थ में विवाद	२८
मल्लमर्दन न्याय से सांख्य प्रक्रिया का निरूपण	३२
जड़प्रधान की प्रवृत्ति में दृष्टान्त	३६
सांखी के दृष्टान्त की विषमता	३६
प्रधानकारणवादी का स्वमत	३७
प्रधानकारणवादी की उक्ति का खण्डन	३८
सांख्य मत में उत्पत्ति प्रलयरूप दोष का परिहार	३८
प्रधानवादी की उक्तिका खण्डन	३९
प्रधानवादी के स्वमत में दोष परिहार	४१
सांख्य की उक्त युक्ति में दोष निरूपण	४२
सांखी का प्रयोजन निरूपण	४६
पूर्वोक्त तर्क का निराकरण	४६
सांखी के स्वमत में युक्ति	५०
पूर्वोक्त युक्ति का खण्डन	५०
तटस्थ और सिद्धांतो के प्रश्नोत्तर	५२
पूर्वपक्षी की स्वमत में युक्ति	५६
सिद्धांती कर युक्ति का खण्डन	५६
पूर्वपक्षी का स्वमत में दोषोद्धार	५९
पूर्वपक्षी की उक्तयुक्ति का खण्डन	५९
सिद्धांती व पूर्वपक्षी का प्रश्नोत्तर	६०
पूर्वपक्षी व सिद्धान्ती का सम्वाद	६३
पूर्वपक्षी का प्रतिबन्दीरूप प्रश्न	६५
उक्त प्रतिबन्दी का उत्तर	६६
सांख्य और सिद्धांती का संवाद	६७
सांख्य योग की वेद विरुद्धता	६७

विषय	पृष्ठाङ्क
नारदपंचरात्रानुयायी मत कथन	६९
पूर्वपक्षी के मत का खण्डन	७०
वैष्णव मत का खण्डन	७२
पूर्वपक्षी की श्रुतिदृष्टांतरूप युक्ति	७३
पूर्वोक्त युक्ति का निराकरण	७४
पूर्वपक्षी की व्याकुलता	७७
वादी के मत में दोषान्तर	७७
पूर्वपक्षी का स्वमत स्थापन	७८
उक्त मत में दोष निरूपण	७८
तटस्थ द्वारा पूर्वपक्षी मत का अनुवाद	८०
तटस्थ की उक्ति का निरास	८१
तटस्थ का सिद्धान्ती को अभिमुख कर कथन	८३
न्यायमत का खण्डन	८६
विकल्परूप युक्ति से न्याय मत खण्डन	८७
न्यायमत का विकल्पोंकर खंडन	८७
पूर्वपक्षी कर परमाणुओं के कल्पित देश का कथन	१००
सिद्धान्ती द्वारा वादी का निग्रह	१०१
समवायसम्बन्ध का खण्डन	१०४
वेदविरुद्धमत का उपहास	१०६
कार्यगुणों की असारता	११०
पूर्वपक्षी की स्वमत में युक्ति	११५
सिद्धान्ती द्वारा उक्त युक्ति का खण्डन	११५
स्कन्धार्थ तथा बाह्यान्तरप्रपंच	१२५
क्षणिकवाद का खण्डन	१२६
परमाणुओं के प्रत्यक्ष में दृष्टान्त	१३२

विषय	पृष्ठाङ्क
उक्त दृष्टान्त की विषमता	१३३
पूर्वपक्षी की स्वमत में युक्ति	१३५
उक्त युक्ति का खण्डन	१३५
क्षणिकवादी मत का खण्डन	१३६
योगाचार का स्वमत	१४४
विज्ञानवादी का खण्डन	१४८
ज्ञान, ज्ञेय का अभेद निरूपण	१५१
उक्त आक्षेप का उत्तर	१५१
विज्ञानार्थ का अभेद निरूपण	१५२
विज्ञानवादी की युक्ति का खण्डन	१५३
शून्यवादी का स्वमत	१५८
शून्यवादी की स्वमत में युक्ति	१५८
शून्यवादी की उक्त युक्ति का खण्डन	१६०
शून्यवादी मत में अभावों की विलक्षणता	१६२
उक्त युक्ति का खण्डन	१६३
वादी के मत में दूषणान्तर	१६५
जैन मत में विरुद्धता प्रदर्शन	१७६
जैनमतावलम्बी का मत	१७८
पूर्वोक्त शंका का निरास	१७८
मीमांसक मत का निराकरण	१९५
मीमांसक और सिद्धान्ती का प्रश्नोत्तर	१९६
अदृष्टानुवाद का खण्डन	१९८
जगतकारणवाद में मतान्तर	१९९
तटस्थ द्वारा सिद्धान्ती को उपालम्भ	२००
पूर्वपक्षी को सदृष्टान्त उत्तर	२०३
वादी की पुनः शंका	२०६

विषय	पृष्ठाङ्क
वादी और सिद्धान्ती का प्रश्नोत्तर	२०७
पञ्चीकरण	२०९
द्वितीयनिवास	
श्रीगणेशजी का मङ्गल	२१७
श्रीरामचन्द्रजी का मङ्गल	२१८
स्वगुरुजी का मङ्गल	२२०
त्वम् पद का वाच्यार्थ	२२०
पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का प्रश्नोत्तर	२२७
अविद्या के स्वरूप का खण्डन	२३२
पूर्वपक्ष का दो उक्ति से खण्डन	२३८
उक्तार्थ में शङ्का समाधान	२४१
द्वैतवादियों के आक्षेप का प्रतिक्षेप	२४७
धर्मीज्ञानवादी की शङ्का	२४९
धर्मीज्ञानवादी के मत में युक्ति	२५०
उक्तवादी के प्रति समाधान	२५१
सामान्यज्ञान को अध्यास में हेतुता	२५३
धर्मीज्ञानवादी की शङ्का का निराकरण	२५३
धर्मीज्ञानवादी का मत	२५५
उपाध्याय का आक्षेप	२५६
धर्मीज्ञानवादी	२५७
उपाध्याय का ननु	२५८
धर्मीज्ञानवादी का उत्तर	२५९
उपाध्याय का सिद्धान्त	२६०
अज्ञानाध्यास में शंकासमाधान	२६८

विषय	पृष्ठाङ्क
मिथुनपद के अर्थ में प्रश्न	२७६
सिद्धान्तरूप विचार	२७७
अनात्मा की असारता	२७९
महावाक्यार्थ में शिष्य की शंका	२९६
उक्तार्थ में चार्वाक की शंका का उत्तर	२९६
देहात्मवादी के सिद्धान्त का खण्डन	३०७
इन्द्रियात्मवादी का आक्षेप	३१२
प्राणात्मवादी के मत का खण्डन	३१७
प्राणात्मवादी का आक्षेप	३१८
उक्त आक्षेप का उत्तर	३१८
मन आत्मवादी का स्वमत	३२१
विज्ञानात्मवादी का स्वमत	३२६
विज्ञानवादी का खण्डन	३२७
पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का शंका समाधान	३२८
जैनमतावलम्बी का स्वमत	३३२
सिद्धान्ती द्वारा पूर्वपक्षी के मत का खण्डन	३३२
अणुआत्मवादी के मत का खण्डन	३३३
प्रभाकर का स्वमत	३४५
उक्त मत का निरास	३४७
नैयायिक का स्वमत	३५५
नैयायिक और वैशेषिक मत का खण्डन	३५६
नैयायिक की स्वमत में युक्ति	३५९
उक्त युक्ति का खण्डन वा प्रश्नोत्तर	३५९

विषय	पृष्ठाङ्क
तार्किककृत शंका और सिद्धान्ती का उत्तर	३५९
तार्किक का प्रकारान्तर से स्वमत	३६९
पूर्वोक्तमत का खण्डन	३६९
सिद्धांती और तटस्थ का प्रश्नोत्तर	३७२
वैदिक मत का निरूपण	३७२
उक्तार्थ में शंका समाधान	३७७

तृतीयनिवास

विषय	पृष्ठाङ्क
श्री गणेश जी का मंगल	३७९
जीव ब्रह्म का अभेद	३८२
अख्यातिवादी का मत	३८५
अन्यथाख्याति निरूपण	३९९
आत्मख्यातिवादी का मत	४०२
असत्ख्याति का मत	४०९
भेदवादी का आक्षेप और सिद्धांती का प्रतिक्षेप	४१३
सिद्धांती और पूर्वपक्षी का प्रश्नोत्तर	४१७
पूर्वपक्षी का निरास	४१८
सप्त प्रकार के संसर्गार्थ का अभाव	४२१
प्रथम संसर्ग का निषेध	४२३
द्वितीय संसर्ग का निषेध	४२५
तृतीय संसर्ग का निषेध	४२६
चतुर्थ संसर्ग का निषेध	४२७
पंचम संसर्ग का निषेध	४२७
षष्ठ संसर्ग का निषेध	४२८
सप्तोपचारक रूप संसर्ग का निषेध	४३९
श्वेतकेतु की शंका	४४२
पूर्वपक्षी और सिद्धांती का प्रश्नोत्तर	४६०
पूर्वोक्तार्थ में शंकासमाधान	४६३
उक्तार्थ में पुनःशंका समाधान	४६४
वेदान्तपरिभाषाकार का मत	४६९
उक्तमत का खण्डन	४७२
उक्तार्थमें शंका समाधान	४७३
शुद्धज्ञान के अभाव की शंका	४८१
उक्त शंका का समाधान	४८१
उक्तार्थ का स्पष्टीकरण	४८२
विधिमुखवाक्यों का शुद्ध-ब्रह्म में तात्पर्य	४८३
उक्तार्थ का स्पष्टीकरण	४८५
अखण्डार्थ का लक्षण	४८७
उक्तार्थ का स्पष्टीकरण	४९२
एकभविकवादी का आक्षेप और सिद्धान्ती का प्रतिक्षेप	४९५
द्वैतवादी का आक्षेप	५०६
उक्त आक्षेप का उत्तर	५०६
वृत्तीद्धबोधप्रमावादी का मत उक्तमत का निरास और सिद्धान्तकथन	५०८
पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का सम्वाद	५०९
पूर्वपक्षी का शंका	५१५
लेशाऽविद्या का निरूपण	५१५
तत्त्ववेत्ता की कृतकृत्यता	५२२

विषय	दृष्ठाङ्क
चतुर्थनिवास	
श्रीगणेश जी का मंगल	५२३
श्रीरामचन्द्र जी का मंगल	५२३
स्वगुरु के प्रति नमस्कारात्मक मंगल	५२३
जीवन्मुक्तिप्रतिपादन की प्रतिज्ञा	५२४
सिद्धान्ती का स्वमत	५२४
भामतीकार तथा तार्किक का आक्षेप	५२४
उक्त आक्षेप का समाधान	५२५
'समुच्चयवादी' की शंका का समाधान	५३४
कर्म और ज्ञान का भेद	५३४
कर्म का अधिकारी	५३५
ज्ञान का अधिकारी	५३५
उक्त दृष्टान्त की विषमता	५३५
जीवन्मुक्ति के विषय में प्रश्नोत्तर	५३७
विद्वत्संन्यासी का आचरण	५४३
विविदिषासंन्यास का निरूपण	५४४
वासनाक्षय के उपाय का निरूपण	५५०

विषय	पृष्ठाङ्क
मनोनाश का उपाय	५५३
जीवन्मुक्तकी स्वाभाविक क्रिया	५६९
जीवन्मुक्ति के पंच प्रकार के प्रयोजन	५७३
लोकसंग्रही योगियों के कर्म फल की व्यवस्था	५७७
पञ्चमनिवास	
श्रीगणेश जी का मङ्गल	५८१
श्रीरघुनाथ जी का मङ्गल	५८१
स्वगुरु जी का मङ्गल	५८२
निरूप्यविषय की संगति द्वारा निरूपण	५८२
उक्तार्थ में शंकापूर्वक समाधान	५८२
कृतघ्नतादोष के निवृत्यर्थ नम्रता	६०८
ग्रन्थकार का जन्मस्थान	६०९
ग्रन्थकार का सम्प्रदाय कथन	६०९
ग्रन्थ समाप्ति का स्थान तथा माहात्म्य	६१०
ग्रन्थ समाप्ति का सम्बत्	६११
ग्रन्थ समाप्ति का मङ्गल	६१२



स्वयंप्रभा विवरण (टीका) के कर्ता

पं० श्री तारा (सिंह) नरोत्तमजी महाराज

सम्पादकीय

नाम्नैव यः साधु गणौच्चितेन दधात्यसौ निर्मलतां गुणेन।
गुरूपदेशप्रतिरुद्ध दोषो विराजते निर्मल सम्प्रदायः॥

श्री निर्मल सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डितवर विद्वद्वरेण्य वेदान्तवागीश निर्मल साधु स्वामी गुलाब सिंह जी कुवेर-वालों ने असार संसार समुद्र में डूबते हुए अज्ञानग्रस्त-जनसमुदाय को देख कर, संस्कृत भाषा में प्रवृत्ति कठिन समझ कर, उन अज्ञानी जीवों पर कृपा करते हुए आप ने वेद-श्रुति-स्मृति का सार वेदान्त शास्त्र के कठिन सिद्धान्त को सरल भाषा में पद्य बद्ध मोक्ष पन्थ प्रकाश, नाम का अत्युत्तम ग्रन्थ निर्माण किया है। जिसके पाँच निवास हैं। प्रथम निवास में तत्पदार्थ का, द्वितीय निवास में 'त्वम्' पदार्थ का, एवं तृतीय निवास में अखण्डार्थ का तथा चतुर्थ निवास में जीवन्मुक्ति का, इसी प्रकार पञ्चम निवास में विदेहमुक्ति का सविस्तार प्रतिपादन किया है। यह "मोक्ष पन्थ प्रकाश„ ग्रन्थ नाम से ही सिद्ध होता है कि मुमुक्षु अधिकारी जिज्ञासुओं को मुक्ति के मार्ग में प्रकाश देने वाला ग्रन्थ है। अल्पश्रुत अधिकारियों के लिये कठिन वेद-शास्त्रों के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल ब्रज भाषा में छन्दोबन्ध शैली में निबद्ध किया है ताकि छन्द रचना के माध्यम से आकर्षण शील साहित्यिक रस से लोभायमान होते हुए प्रवृत्त होकर सदैव रहने वाले आत्मानन्द की अनुभूति कर सके। इसी परोपकार-मय भावना से प्रेरित होकर ही स्वामी पं० गुलाबसिंहजी ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें अनेकों लुप्त से हो गये हैं, परन्तु अभी भी जो लोक में उपलब्ध हैं उनके नाम इस प्रकार हैं:—

१. अध्यात्म रामायण २. प्रबोध चन्द्र नाटक ३. भाव रसामृत ४. कर्म विपाक ५. मोक्ष पन्थ प्रकाशादि। "श्री मोक्ष पन्थ प्रकाश" उनका अत्युत्तम ग्रन्थ है जिसे उन्होंने विक्रम सम्बत् १८३५ माघ शुक्ल पञ्चमी सोमवार को सम्पूर्ण किया था। यह ग्रन्थ अधिक लोकोपयोगी होने के कारण तीन चार बार छप चुका है, सर्व-प्रथम ग्रन्थकर्ता के समय में ही छपा, दूसरी बार श्रीमान् पण्डितवर **श्री अरविन्दानन्द जी** हरिद्वार वालों द्वारा सम्बत् १९८३ में मार्तण्ड टीका सहित लाहौर में प्रकाशित हुआ। तत् पश्चात् श्रीमान् विरक्त शिरोमणि **महा-**

मण्डलेश्वर निर्मल स्वामी श्री मेहर सिंह जी ने देवनागरी में अनुक्रमणिका के साथ प्रकाशित कराया ।

यह मोक्ष पन्थ-प्रकाश साधु समाज में वेदान्त का अमूल्य ग्रन्थ माना जाता है । इसके मर्म को समझने के लिए संस्कृत के पढ़े-लिखे विद्वान् भी प्राचीन प्रौढ विद्वानों की शरण लेते थे। पूर्व काल में दादों ग्राम के महामण्डलेश्वर विशेष रूप से अध्ययन कराते थे तथा जिज्ञासु जन पढ़ने के लिये उनके वहां आया करते थे । ऐसे कतिनय और भी विद्वात् थे जो इस ग्रन्थ को बहुत उत्साह एवं स्नेह से पढ़ाते थे । हमारे गुरुदेव श्री १०८ **स्वामी पण्डित-गुरुवख्श सिंह जी** ज्ञानी नागों के ग्राम, जिला अमृतसर, पञ्जाब में रह कर पढ़ाते रहे । उनके पास इस ग्रन्थ को विशेष रूप से पठनार्थ दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे । उनके पवित्र चरणों में रह कर इस दास ने भी यह ग्रन्थ पढ़ा था ।

इस पुस्तक में सर्व शास्त्रों के सिद्धान्त हैं, इसमें अनेक विकल्प हैं उन विकल्पों के विना मूल ग्रन्थ नहीं लगता ।

जिस विद्वान् ने सर्व ग्रन्थों का अनुगम किया है वही विकल्प जाल की रचना कर उसके खण्डन की विधि बतलाता था, तव अधिकारी छात्र अपने आप को कृतकृत्य समझता था, वह विकल्प जाल परम्परागत से नोट करके चला आ रहा था जो सर्वदा सर्वत्र उपलब्ध नहीं होता था । वह विकल्प जाल सुगमता से उनके ग्रन्थ में यथा स्थान उपलब्ध हो सके एवं जिज्ञासु अधिकारियों के उपकारार्थ श्री १०८ पण्डितवर वेदान्तवागीश पं० **श्री तारा सिंह जी** नरोत्तम ने ग्रन्थ पर "स्वयं प्रभा विवरण" नाम की महान् अत्युत्तम टीका का निर्माण किया है । मोक्ष पन्थ प्रकाश की "स्वयं"प्रभा ने स्वयं प्रकाशिता का प्रभाव प्रदर्शित किया है, आत्मा स्वयं प्रभा प्रकाश से प्रकाशित है, पर-प्रकाश प्रकाशित नहीं, अतएव स्वप्रकाश स्वरूप कहा जाता है । इस उद्देश्य से ही इस टीका का नाम "स्वयं प्रभा विवरण" रखा है ।

श्रीमान् पं० वर श्री पं० तारा सिंह, नरोत्तम जी का जन्म सम्बत् १८७९ में पञ्जाब प्रान्त जि० गुरुदास पुर अन्तर्गत कालमा ग्राम में हुआ था । आप बाल्यावस्था में ही विलक्षण बुद्धि वाले प्रतीत होते थे । आपने घर से उदास होकर सन्त पण्डितवर स्वामी गुलाब सिंह जी गिरवड़ी-वालों से दीक्षित होकर विद्याध्ययन किया । विशेष विद्याध्ययन के लिये आप बंगाल प्रान्तान्तर्गत नदिया शान्त (पुर) पहुंच गये । पूर्ण विद्वान् होकर आते समय कुछ कालतक काशी में विशिष्ट विद्वानों से अध्ययन कर पञ्जाब वापस आये । ततः महाराज पटियाला-

नरेश नरेन्द्र सिंह ने नरोत्तम जी से प्रार्थना कर पटियाला-राजमहलों में अपने पास धर्म प्रचारार्थ रखा। नरोत्तम जी ने वहां राज गुरु उपाधि से अलङ्कृत होकर अनेक धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण किया जो प्रायः २१ ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं:—

(१) अकाल पुरुष स्तोत्र (२) अकाल मूर्ति प्रदर्शन (३) शब्द सुरतरु कोष (४) कालादि शब्दार्थ (५) कौमी दुःखड़े (६) गुरुतीर्थ संग्रह (७) गुरु मत निर्णय-सागर (८) गुरु भाव दीपिका (९) गुरु वंश तरु-दर्पण (१०) गुरु गिरार्थ कोष (११) टीका आदि गुरु-ग्रन्थ साहब (१२) टीका जपु जी, रहरास, कीर्तन सोहला, (१३) टीका श्री राग (१४) परम प्रेमरामायण (१५) पांच ककार (१६) परोक्षा प्रकरण (१७) भक्त वाणी की टीका (१८) भयानक वचन संग्रह (१९) वाह गुरु शब्दार्थ टीका (२०) वाह गुरु नाम (२१) मोक्ष पन्थ प्रकाश की टीका **स्वयं प्रभा विवरण** जो प्रकृत ग्रन्थ में है। विक्रमी सम्वत् १९३२ में आप श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा के 'श्री महन्त' नियुक्त किये गये और अखाड़े की सेवा करते हुए कई धर्म ग्रन्थों का निर्माण कर विक्रमी सम्बत् १९४८ में आप ब्रह्मलीन हो गये। यह मोक्ष पन्थ प्रकाश की टीका स्वयंप्रभा उनके प्रकाश की अन्तिम किरण कही जा सकती है जो सदैव के लिए 'चानण मिनार' का काम करती रहेगी।

कृतज्ञता प्रकाश

ता० २८ से ३० मार्च १९७६ ई० में गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी अमृतसर, गुरुनानक अध्ययन विभाग के प्रधान प्रोफेसर प्रीतम सिंह जी के विशेष प्रयत्न से "निर्मल पंथ दी पंजाब दे, धर्म, दर्शन, ते साहित्य, नु देण" इस सम्बन्ध में की गयी सैमीनार (गोष्ठी) में बड़े-बड़े विद्वानों और प्रोफेसरों के लेख पढ़े गये। जिस गोष्ठी में लेखक को भी अपना लेख पढ़ने का समय मिला, जो पहले भेजा गया था। उस गोष्ठी की पहले दिन भी अध्यक्षता करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। उस सैमिनार (गोष्ठी) में इतने निर्मल विद्वानों के लिखे ग्रन्थों की सूची देखने में आयी जो गिनती (गणना) में अत्यधिक थी। जिन ग्रन्थों में महान् साहित्य का निर्माण हुआ है। इस समय ये पठन-पाठन के लिए दुर्लभ हैं। इस महान् सभागम ने श्री महन्त स्वामी पं० सुच्चा सिंह जी श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल, हरिद्वार से इच्छा प्रकट की है कि प्राचीन निर्मल विद्वानों के जो साहित्य हैं उनका प्रकाशन कराकर देश की बहुत बड़ी बिखरी धनराशि को एकत्रित कर उनको प्रकाशित कर महान् परोपकार करेंगे,

इस भावभिनी उपकारमय, भावना से प्रेरित होकर श्री महन्त साहबजी ने निश्चय किया है कि जैसे निर्मल पंचायती अखाड़ा द्वारा जनता की सेवा के लिए कुम्भ मेलों पर आकर यात्रियों के ठहरने का, भोजन का प्रबन्ध तथा धर्म प्रचार के लिए पंडाल, शाही आदि पर व्यय किया जाता है उसी प्रकार निर्मल साहित्य प्रकाशन भी एक जरूरी अंग है, जिस पर अधिक-से अधिक प्रति वर्ष व्यय किया जायगा।

इस सिद्धान्त को स्वीकार करके 'श्री महन्त जी' ने निर्मल साहित्य प्रकाशन विभाग की संस्थापना की है जिसमें अनेक विद्वान् साहित्य-सर्जन के जो इस पवित्र कार्य में सहयोग दे रहे हैं। प्रकाशन विभाग में कार्यकर्ताओं की नामावली इस प्रकार है—प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं० बलबीर सिंह जी शास्त्री वेदान्ताचार्य पटना, श्रीमान् पं० हकीकत सिंह जी अरविन्द निर्मल अखाड़ा कनखल, प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं० शेर सिंह जी नैयायिक काशी, बिशन सिंह क्रीट हरिद्वार, श्रीमान् पं० कर्तार सिंह जी अमृतसर, श्रीमान् पं० बलबीर सिंह वियोगी दिल्ली, श्रीमान् पं० निहाल सिंह जी हरिद्वार, श्रीमान् महन्त गुरुदीप सिंह जी दर्शन केसरी, वेदान्त शास्त्री काशी।

पूर्वोक्त सिद्धान्तानुसार श्री १०८ श्री महन्त साहब जी ने मोक्षपन्थ-प्रकाश की टीका स्वयं प्रभा विवरण का प्रकाशन प्रारम्भ कराया है जो टीका ५० वर्ष पहले श्री १०८ पं० तारा सिंह जी ने की थी जो आजतक अप्रकाशित थो। उसको प्रयागराज कुम्भ मेला के शुभावसर पर श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा की ओर से व्यय करके प्रकाशित किया गया है इसलिए उनका बहुत-बहुत धन्यवाद समाज करता है।

टीका भी मूल लिपि गुरुमुखी में थी उसको देवनागरी में प्रतिलिपि कराने का महान् कार्य तथा प्रेस में संशोधन कार्य श्री पं० शेर सिंह जी ने अपना अमूल्य समग देकर किया है। उनको इस कार्य के लिए अधिक-से अधिक धन्यवाद है। श्रीमान् पं० चन्द्रशेखर मिश्र व्याकरण, साहित्य, वेदान्ताचार्य भूतपूर्व प्रधानाचार्य निर्मल संस्कृत विद्यालय संगत लाहौरी टोला वाराणसी को धन्यवाद दिया जाता है जिन्होंने देवनागरी लिपि में लिखने का महान् कार्य किया है। टीका की जो हिन्दी है वह ५० साल पुरातन टीकाकार की अपनी हिन्दी है उसकी महानता को रखते हुए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। कई विद्वानों का विचार था कि उसको आधुनिक हिन्दी भाषा में रूपान्तर किया जाय, परन्तु उनके भावों में कोई कमो न आजाये इस भाव को लेकर एक

अक्षर तक नहीं बदला गया हैं, जहाँ सबका धन्यवाद किया गया है वहाँ आनन्दकानन प्रेस के मालिक श्रीमान् विश्वम्भरनाथजी द्विवेदी का तथा अन्य प्रेस कर्मचारियों को धन्यवाद है। जिन्होंने बहुत तत्परता पूर्वक पुस्तक छापने का कार्य किया है। अन्त में उन महान् विद्वानों को भी धन्यवाद है जिन्होंने इस ग्रन्थ को पढ़कर अपनी-अपनी अमूल्य सम्मतियाँ लिखने का कष्ट किया है।

श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा की ओर से व्यय कर निर्मल साहित्य प्रकाशन भी कई उपलब्धियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं जैसे १. गुरुतीर्थ संग्रह, २. जीवन पंडित हरि सिंह जी ऋषिकेश, ३. श्री निर्मल पंचायतो अखाड़ा का इतिहास, ४. निर्मलपंथ-प्रदीपिका, ५. निर्मल भारती, यह छठा पुष्प मोक्षपंथ-प्रकाश की टीका स्वयं प्रभा विवरण छपवाकर जनार्थ वितरण के लिए कुम्भ मेला के शुभावसर पर प्रकाशित किया गया है। श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा के परमाध्यक्ष श्री महन्त स्वामी पंडित सुच्चा सिंह जी महाराज का विचार है कि निर्मल साहित्य प्रकाशन द्वारा प्राचीन निर्मल विद्वानों के साहित्य को यथाशीघ्र लोकोपकारार्थ प्रकाशित कर अधिक से अधिक जनता में वितरित किया जाय। अब इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् शीघ्र ही पं० तारा सिंह नरोत्तम कृत गुरुमत निर्णयसागर छपवाकर वितरण किया जायगा।

श्री निर्मल संस्कृत विद्यालय
संगत लाहौरी टोला वाराणसी }

—महन्त गुरुदीप सिंह
वेदान्त शास्त्री दर्शन केसरी
निर्मल साहित्य प्रकाशन विभागाध्यक्ष

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा

कनखल : हरिद्वार

२. श्री निर्मल संस्कृत विद्यालय

संगत लाहौरी टोला : वाराणसी

'मोक्ष पन्थ प्रकाश' तथा उसकी विवरण स्वयंप्रभा के सम्बन्ध में

श्रीमान् प्रात.स्मरणीय सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्री ११०८ गुलाब सिंह जी महो दय का 'मोक्ष पन्थ प्रकाश' तथा परम दार्शनिक श्री तारा सिंह नरोत्तम जी का 'स्वयंप्रभा विवरण' को मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया।

आपका प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है क्योंकि वेदान्त के उपनिषद् भाष्य, गीता भाष्य, शारीरक मीमांसा भाष्य (प्रस्थान त्रय) अद्वैत का एवं खण्डन-खण्ड खाद्य, चित्सुखी, अद्वैत सिद्धि, लघु चन्द्रिका, सिद्धान्त लेश संग्रह आदि वाद प्रस्थानों में अद्वैत वेदान्त के परिनिष्ठित विद्वानों के द्वारा मथन किया हुआ सिद्ध ान्त रूप अमृत रस का साधारण जनता को भी सुलभ हो इस अभिप्राय से स्वा मीजी ने ब्रज भाषा में कवितावद्ध इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है।

"शास्त्रेषु दुर्ग्रहोप्यर्थः स्वदते कविसूक्तिषु"

इस वचन के अनुसार स्वयं जिस सिद्धान्त-सुधा का आस्वादन किया उसको जनता-जनार्दन की सेवा में समर्पित करने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की।

आप वेदशास्त्रों में बड़े निष्ठावान् थे तथा अनुभवी भी थे। वेदान्त-दर्शन में अद्वैत वेदान्त प्रस्थान ही पर्यवसान है अर्थात् परम तात्पर्य भूमि है। उसके तो ये अद्वितीय विद्वान् थे, उसी का परिणाम है यह ग्रन्थ, वेदान्त दर्शन में प्रायशः चार अध्याय या चार परिच्छेद या चार स्तवक प्रसिद्ध हैं। इसी रूप से सभी ग्रन्थ बने हैं। उसका १. समन्वय, २. अविरोध, ३. साधन, ४. फल, यह चार विषय माने गये हैं लेकिन ग्रन्थकार ने निवास के नाम से व्यवहार किया है। प्रथम निवास, द्वितीय निवास आदि। इनमें यह विशेषता है कि प्रकृत ग्रन्थ में पाँच निवास माना है। यह फल निवास का दो भेद किया है। जीवन मुक्ति चौथे निवास का विषय है और पाँचवें निवास का विदेह मुक्ति।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय

ग्रन्थ के आदि में निर्विघ्न समाप्ति के लिये श्री गणेश जी को नमस्कार

किया तथा उसके पश्चात् बुद्धि प्रतिभा के लाभार्थं वाग्देवता सरस्वती देवी की वन्दना की दूसरे दोहा में। तीसरे में वेदान्त शास्त्र के प्रधान विषय ब्रह्म का प्रपञ्च के प्रति अभिन्न निमित्तोपादानत्व का वर्णन किया है। इसके पश्चात् श्री गुरु नानक देव जी तथा श्री गुरु गोविन्द सिंह जी को भी नमस्कार किया है। तब ग्रन्थ का विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध, अधिकारी का निरूपण किया जिसे शास्त्रीय भाषा में अनुबन्ध-चतुष्टय कहा जाता है। ततः परम प्रयोजन कैवल्य की प्राप्ति ज्ञान से ही होती है।

प्रथम निवास का विषय

'नान्यः पन्थाः वियतेऽयनाय' इति यह तत्त्व ज्ञान है, अर्थात् जीव ब्रह्म का ऐक्य साक्षात्कार है "अहं ब्रह्मास्मि" इति वाक्यार्थ ज्ञान में पदार्थ ज्ञान कारण होता है। अतः तत्त्वमसि इस महावाक्य में तत्पदार्थ तथा त्वं पदार्थ का ज्ञान आवश्यक है। इसके बिना वाक्यार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये ग्रन्थकार ने प्रथम निवास में नाना प्रकार के भेद वादियों के मत से तत्पदार्थ विचार किया है। इसमें सांख्य, पातंजल, पाशुपत, वासुदेव, नारद, पञ्चरात्र के अनुयायी श्री वैष्णव, नैय्यायिक तथा बौद्ध, जैन, मीमांसक हिरण्यगर्भ के उपासकों के मत से तत्पदार्थ का वर्णन कर उसका निराकरण किया है। सिद्धान्त स्वमत का निरूपण किया है। इसी प्रकार त्वं पदार्थ का भी शरीर से लेकर चैतन्य तक के तत्तद् वादियों के मत से निर्देश किया है। इस प्रकार तत्पदार्थ में सांख्यादि आस्तिक मतों का तथा नास्तिक मतों का निराकरण अकाट्य तर्कों से वेदान्त के मत से (अपने मत से) तत्पदार्थ का वर्णन किया है।

इस प्रसंग में प्रधान कारण वाद का निराकरण किया है। इसी प्रकार क्षण भंगवाद, परमाणु कारण वाद, समवाय का खण्डन आदि को प्रस्तुत किया है। यह अवलोकनार्ह है।

द्वितीय निवास का विषय

आरम्भ में श्री गणेश जी का स्मरणात्मक मंगल किया तथा आगे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी एवं श्री सीताजी का नमस्कारात्मक मंगल किया है। ततः हितोपदेष्टा श्री गुरु जी के चरणकमलों को नमस्कार कर प्रसंग संगति से 'त्वं पद' का जो वाच्यार्थ है उसका निरूपण किया है, इसी प्रसंग में अद्वैत वेदान्त सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्यों के मत से जीवेश्वर के स्वरूप-निर्णय में बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेद वाद, आभास वाद का टीका में (स्वयं प्रभा-विवरण में) बिम्बप्रतिबिम्बवाद भाष्यकार श्री शंकराचार्य, पद्मपादाचार्य स्वयं प्रकाश मुनि संक्षेप शारीरककारों के मत से बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद का विवेचन किया है। भामतीकार वाचस्पति मिश्र के अवच्छेदवाद का प्रदर्शन किया है। आभासवाद वार्तिककार है। यहाँ टीकाकार ने आभासवाद को पहले रखा है, प्रतिबिम्ब को दूसरे स्थान पर तथा अवच्छेद वाद को तीसरे स्थान पर रखा है। इन तीनों का परस्पर भेद बड़े सुन्दर ढंग से किया है। देखिये पृष्ठ २२१ में "त्वं पद वाच्यार्थ है जोई" इत्यादि पद के टीका में २२१ से २२६ तक। इस प्रकार त्वं पदार्थ विवेचन किया है।

तृतीय निवास का विषय

ज्ञान का अन्तरंग साधन शम दमादि है। बहिरंग साधन यज्ञ, तप, दान, अनशनादि का विवेचन करते हुए मीमांसकों का अदृष्ट वाद (अर्थात् कर्म प्राधान्यवाद का निराकरण कर) किया और देवता प्रसाद को अवान्तर व्यापार मानकर ईश्वर को ही फल-दातृत्व सिद्ध किया। 'कर्माध्यक्षः' इत्यादि श्रुति के आधार से महा वाक्यार्थ का निरूपण किया है। यह महा वाक्यार्थ अपरोक्ष साक्षात्कार रूप है, महावाक्य से भी अपरोक्ष साक्षात्कार होता है इसका श्रेष्ठ विवेचन किया है। इस प्रसङ्ग में "आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः" इस वाक्य में विचार करते हुए प्रकटार्थ विवरणकार के मत में अपूर्व विधि है, विवरणाचार्य के मत में नियम विधि है। वार्तिककार के मत में परिसंख्या। विधि भामतीकार वाचस्पति मिश्र के मत से श्रवण में विधि है। इस अर्थ का सुन्दर ढंग से सरल शब्दों में निरूपण किया है। इस प्रकार अखण्डार्थ का निरूपण करते हुए "संसर्गा-गोचरप्रमिति जनकत्वमखण्डार्थत्वम्" इस बात का समर्थन करते हुए यहाँ संसर्ग शब्द से स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध, शरीर-शरीरिभाव सम्बन्ध आदि हृदयं-गम शैली से निराकरण किया है जो द्वैत विशिष्टाद्वैतादिवादियों से समर्थित है।

यह प्रकरण अवश्य अवलोकनार्ह है यह भी जिज्ञासुओं के लिए। इसी प्रकार अख्याति, अन्यथाख्याति, असत्ख्याति, सत्ख्याति, आत्मख्याति आदि का अच्छे ढंग से उपपादन कर निरास किया है और अनिर्वचनीय ख्याति को अकाट्य तर्कों से सुप्रतिष्ठित किया है। इसी प्रसंग पर कवि तार्किक चक्रवर्ति नृसिंह भट्टोपाध्याय की रीति से द्वैत वादियों के आक्षेप का प्रतिषेध किया है। इसी प्रसंग में भाष्योक्त अध्यास लक्षण का उपपादन तथा ज्ञानाध्यास तथा अर्थाध्यास का उपपादन किया है। पृष्ठ २४५ से २४८ तक तथा २६३ से २७६ तक। इसी प्रकार जीवन मुक्ति का श्रुति-स्मृत्यादि प्रमाणों के द्वारा समर्थन किया है तथा विदेह मुक्ति का भी विवेचन किया है। मूल तथा टीका में ऐसे बहुत से सुन्दर विचार हैं जिसको करने पर इसका कलेवर बढ़ जायेगा तथा पुनरुक्त न हो इसलिए दो तीन स्थलों का उद्धरण दिया है "स्थाली-पुलाक न्याय" से।

यद्यपि यह संस्करण बड़ी ही सावधानी से किया गया है तथापि मनुष्यमात्र के सुलभ अक्षरों की त्रुटियाँ स्वाभाविक हैं अतः पाठकों से निवेदन है कि इन अशुद्धियों का संशोधन करते हुए लाभान्वित होवें।

इस प्रकार यह ग्रन्थ परमोपकारी है। साधारण जनता के सुगमता के लिए बनाया गया है। इस ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार अवश्य होना चाहिए, इसका परम श्रेय श्रद्धेय महन्त जी श्री गुरुदीप सिंह वेदान्त-केसरी, श्री निर्मल संस्कृत विद्यालय संगत, लाहौरी टोला वाराणसी को है। ये बड़े सरल हृदय के तथा मिलनसार सन्त हैं। इनकी पारमार्थिक दृष्टि लोक समाज-कल्याणोपकारी है।

अ० सुब्रह्मण्य शास्त्री
—मीमांसारत्न
(भू० पू० मीमांसा-धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड
पौरोहित्य विभागाध्यक्ष तथा प्रोफेसर
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।)
सम्मानित दर्शनाध्यापक साधुवेला
सं. म. वि. वाराणसी-१

दृष्टिपातम्

विविधानवद्यविद्यासम्पादितसमुज्ज्वलप्रज्ञाऽपनीतविषयवासनः योगादिभाष्य परिशीलनप्रबुद्धशुद्धमानसः वेदान्तसिद्धान्तजुषां विपश्चिद्वराणामपि प्रशस्तशेमुषीकः स्वामिप्रवरः श्री निर्मल स्वामि गुलाब सिंहः मुमुक्षु जनानामनुजिघृक्षया परम-पुरुषार्थप्राप्त्युपायभूतात्मदर्शनोत्पत्तिहेतवेऽनेकानतिविस्तृतान् वेदान्तपरान् ग्रन्थान् प्रणिनाय तेष्वेवायं छन्दोवद्धशब्दकदम्बगुम्फितो "मोक्षपन्थ-प्रकाशो" नाम ग्रन्थ-रत्नम्, ग्रन्थेऽत्र निखिलपरागविद्याविषयकं प्रमेयजातं प्रणिधानपूर्वकं निधाय विरोधिमतविधूननं, खण्डनञ्च तदुद्धृतप्रमाणाभासानां स्वीयप्रबलप्रतिभाप्रभा-वेणातनोच्च ।

अथ च स्वकीयपरम्परागतश्रौतसिद्धान्तसम्मतब्रह्माद्वैतमतस्य विशेषतश्च तत्त्वमस्यादिमहावाक्यप्रतिपाद्यस्यसर्वसम्मतप्रमाणपुञ्जैः प्रतिष्ठापनञ्च दृढमकार्षीत् किन्तु ग्रन्थस्यास्य अर्वाचीनविविधछन्दोबद्ध पद्यमयस्यातिगहनदार्शनिकसिद्धान्त-जातभृतस्य समुपयोगः सुकुमारमतीनां पाश्चात्यशिक्षादूषितान्तःकरणानामपि कथं भवेदिति विचिन्त्य वेदान्तरहस्यप्रकाशनप्रवीणः श्री तारा हरि नरोत्तमो नाम दार्शनिकसिद्धान्तशिरोमणिकल्पनापटीयान् दयापरवशान्तःकरणः "स्वयं प्रभां नाम टीकां निखिलभारतीयजन मनोग्राह्यया सुखोद्यमानया राष्ट्रभाषया व्यतनोत् । अनया च समेषां भारतीयानां हृदयग्राहिगुरुजनोपदेशः फलेग्रहिर्भवितेति ममापि विश्वासः । श्री ताराहरि नरोत्तमोऽपि स्वमाराधितगुरुजनोपदेशमविकलमासाद्य तदीयपद्यजातमनुवदितुमचेष्टतेति तदीयानुवादकलाकौशलेनैव प्रतिभाति दर्शनशास्त्र-संस्कारवन्त एवैतादृशपरिमार्जितानुवादं कर्तुं क्षमन्ते । अतो गुरुपवित्रगुरुवाणी-समुपदेशं लब्धार एव वेदान्तविद्याकल्पलता प्रसूतामृतद्रवं पिवेयुरिति गुरव एवं पूर्वमाराधनीया। इति मनुते ।

महामहोपाध्याय विद्यावाचस्पतिः

पण्डितराज श्री कालीप्रसाद मिश्रः

प्रशंसनीय प्रयास

यह एक निर्विवाद सत्य है कि किसी सम्प्रदाय एवं समाज की उत्तरोत्तरोन्नति, उत्थान एवं चिर स्थायी कीर्ति के स्तम्भ-बुद्धिजीवी चेतन प्राणी, तथा अनुभवी विद्वान् ही माने जाते हैं। प्राचीन काल में त्रिकालज्ञ दूरदर्शी हमारे पूर्वज मन्त्र-द्रष्टा महर्षियों ने स्वानुभूति के द्वारा उपनिषदों के तात्त्विक गूढ़तम रहस्यों के विविध विविध विषयों का विस्तृत तथा विशद विवेचन किया है।

उपनिषद् का अर्थ ही है अध्यात्म-विद्या। जिस विद्या के सतत अध्ययन एवं विचार पूर्वक निरन्तर परिशीलन करने से दृष्टानुश्रविक विषयों से वितृष्ण मुमुक्षु पुरुष का संसार बीजभूत अज्ञान नष्ट, एवं गर्भवासादि दुःख समूह का सर्वदा शिथिलकरण हो जाने पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

शंकराचार्य ने उपनिषदों पर प्राणी मात्र के कल्याणार्थ भाष्य लिखकर वेदान्त सिद्धान्त तथा अद्वैतवाद का स्पष्टीकरण जिस अलौकिक अनुपम शैली के द्वारा किया है वह इतिहास के पृष्ठों पर सदा अमर है।

वाचस्पति मिश्र द्वारा ब्रह्मसूत्र के भाष्य पर लिखी गई 'भामती' नाम की भव्य टीका में विभिन्न दर्शनों के मत-मतान्तर का प्रदर्शन एवं वेदान्त तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। उसी परम्परा के अन्तर्गत तदनुरूप शैली का अनुसरण करने वाले श्रीमान् पण्डित गुलाब सिंह जी महाराज जी ने "मोक्ष पन्थ प्रकाश" ग्रन्थ की रचना की। निर्मल सम्प्रदाय के मूर्धन्य सर्वतन्त्र स्वतन्त्र निखिल शास्त्र-निष्णात संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् एवं गुरुमत के मार्मिक ज्ञानी महर्षिकल्प श्रीमान् पण्डित तारा सिंह जी नरोत्तम, पटियाला, सर्व विख्यात असाधारण व्यक्ति होने के नाते जिनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वमान्य है। आप पटियाला के राजगुरु होने के अतिरिक्त प्रायः अनेक ग्रन्थों के निर्माता भी थे।

आपने सार्वजनिक दृष्टिकोण से सर्वातिशायिनी शेमुषी, अलौकिक विद्वत्ता, असाधारण तर्कपटुता तथा अपनी सूक्ष्म प्रतिभाचक्षु के बल पर जिन आध्यात्मिक तत्त्वों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का साक्षात्कार एवं विश्लेषण करके इस 'मोक्ष पंथ प्रकाश' नामक ग्रन्थ की सुन्दर, सरल, भव्य 'स्वयं प्रभा' टीका लिखकर जिज्ञासुजनों के हित के लिए जो स्तुत्यकार्य किया है वह सर्वथा उपयोगी एवं नितान्त उपादेय है।

यद्यपि 'मोक्षपंथ प्रकाश' की टीका समयानुसार गुरुमुखी में लिखी गई थी परन्तु तत्त्वग्राही हिन्दी पाठकों की भलाई को मुख्य रखकर अनन्तश्री विभूषित श्री महन्त स्वामी पण्डित सुच्चासिंह जी महाराज निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल, ने भूरि परिश्रम के द्वारा मित्रवर श्रीमान् महन्त गुरुदीप सिंह जी केशरी, संचालक श्री निर्मल संस्कृत विद्यालय संगत लाहौरी टोला वाराणसी को प्रेरणा प्रदान करके विरक्त श्री स्वामी शेर सिंह जी नैयायिक को गुरुमुखी अक्षरों से आनुपूर्वी हिन्दी में लिखवाने के लिए लेखक को रखकर सेवा समर्पित की गयी।

'मोक्षपन्थ' के हिन्दी टीका के प्रकाशित करने के कार्य भार का उत्तरदायित्व श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा के श्री महन्त महाराज ने लेकर लोकोपकार एवं उदारता का प्रदर्शन किया है। मैं अन्ततोगत्वा इस प्रशंसनीय कार्य का मुहुर्मुहु हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।

महन्त बलबीर सिंह शास्त्री
मैनी संगत बाललीला
पटना (बिहार)

किञ्चिद् वक्तव्य

निगमागम-तात्पर्य निष्णात विद्वद्वरेण्य वीतराग निर्मल स्वामी पं० श्री स्वामी गुलाब सिंह जी द्वारा प्रणीत "मोक्ष पन्थ प्रकाश" नामक ग्रन्थ अप्रतिम प्रतिभा का प्रतीक है, हिन्दी जगत् के लिये अपूर्व है।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा निर्मित "रामचरित मानस" में यद्यपि नाना पुराण निगमागम-सम्मत सिद्धान्त प्रदर्शित किये गये हैं एवं मानव मात्र के लिये हितावह है, परन्तु अध्यात्मतत्त्व का बाहुल्य नहीं है। "मोक्ष पन्थ प्रकाश" में अध्यात्मतत्त्व का निर्मल विशाल प्रवाह पिपासु जन की तृप्ति के लिये प्रकट किया गया है।

देव वाणी में न्याय सिद्धान्त, पूर्ण मीमांसा, सांख्य, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, जैन, बौद्ध (योगाचार, माध्यमिक, वैभाषिक, सौत्रान्तिक) पातञ्जल योग शास्त्रादि का विशाल एवं गम्भीर विवेचन कर विलक्षणानुपम प्रज्ञा के द्वारा आचार्यों ने "अद्वैत सिद्धान्त" का निरूपण किया है।

देव वाणी में ही वेद है, जिस वस्तु का बोध न प्रत्यक्ष प्रमाण से, न तो अनुमानादि प्रमाणों से ही हो पाता है उसका बोध वेद के द्वारा ही होता है। परन्तु वेद एवं वेद-प्रतिपादित सिद्धान्त साधारण बुद्धिगम्य नहीं हैं अपितु शम-दम-नियमादि-सम्पन्न मेधावी पुरुष के लिए भी गहन एवं दुरवगाह होने के कारण गुरुजनों एवं आचार्य-परम्पराओं से ही गम्य हो सकते हैं। अतएव श्रुति में "आचार्यवान् पुरुषो वेद" "समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं" आदि वाक्य आते हैं।

उसी ही वेद के "एकमेवाद्वितीयम्" "नेह नानास्ति किञ्चन" "ऐतदात्म्य-मिदं सर्वम्" "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों द्वारा अद्वैत ब्रह्म की सत्ता सिद्ध होती है।

परन्तु इस समय देव वाणी का जनवर्ग में बाहुल्य न होने के कारण साधारण जनता के लिये वीतराग महामनीषी "श्री स्वामी गुलाब सिंह" जी ने भारतीय जन भाषा के माध्यम से दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, सवैया, चौपाई भुजंगप्रयात आदि विविध छन्दों में "मोक्ष पन्थ प्रकाश" का निर्माण किया।

विशाल षड् दर्शनों के सिद्धान्तों का निरूपण एवं विचार-विमर्श पूर्वक

अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन कर मोक्ष पन्थ प्रकाश-प्रणेता ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है इसमें चित्सुखी, विवरण प्रमेय, सिद्धान्त लेश, अद्वैत सिद्धि, संक्षेप शारीरक आदि वेदान्त दर्शन प्रतिपादक ग्रन्थों में निहित सिद्धान्तों का सरल पद्धति से प्रतिपादन किया गया है। यथा—अध्यास निरूपण के प्रसंग में सिद्धान्तलेश को "स्वतः पटखण्डे पुण्डरीकमुकुलत्वानध्यासेऽपि तत्रैव कर्तनादि घटिततदाकारे तदध्यासदर्शनेन तदध्यासस्य वस्तुस्वभावमननुरुध्यसादृश्य-ज्ञानभावाभावानुरोधित्वनिश्चयात्"

यह पंक्ति 'मोक्ष पन्थ प्रकाश' के द्वितीय निवास में इस प्रकार अभिव्यक्त की गई है :—

सादृश्य बिना नाहीं अध्यास।
यह मैं कियो सु प्रथम प्रकाश॥
दूर देश पट हइये जोई।
चतुष्कोण कर भासे सोई॥
तौ नहिं होय कंज अध्यास।
कोउ न ताहि करे परकाश॥
कतर कियो वह पद्म समान।
सो वह होवे याको भान॥
ता पीछे नर पद्म उचारे।
सो कारण हम ताते धारे॥

इसी प्रकार अन्यान्य युक्तियाँ उपपत्तियाँ भी अविकल रूप से प्रतिपादित हैं।

दीपक में स्थित संकुचित प्रकाश पुञ्ज भी जब तक वर्ति को बढ़ाया नहीं जाता तब तक पूर्ण विवृत रूप से वह प्रकाश हितावह नहीं हो पाता। अतएव गागर सागर में निहित रत्नों को जानने के लिये प्रकाश पुञ्ज की प्रभा को बिखेरने की आवश्यकता पड़ी तथा "अपि मासं मसं कुर्यात् छन्दो भङ्गं न कारयेत्" आदि नियम बन्धनों के कारण सर्वदा सुबोधता लाने के लिये परम विचक्षण दार्शनिक सिद्धान्त सूर शिरोमणि सर्वोन्मुखी प्रतिभाशाली "श्री तारा हरि नरोत्तम" जी ने "स्वयं प्रभा विवरण" का प्रणयन कर 'मोक्ष पन्थ प्रकाश' के लिये सर्वथा सुगम सोपान कर दिया है।

सूक्ष्म एवं गहन तत्त्व जो संक्षिप्त शब्दावलियों से इस ग्रन्थ में प्रतिपादित हैं उन्हें टीकाकार ने सर्व साधारण जन-बोध हेतु विस्तृत व्याख्या द्वारा प्रकट किया है। यथा द्वितीय निवास में ही :—

तीन अवस्था संगी जोई।
त्वं पद वाच्य कहीजे सोइ॥
बुद्धि उपाधि जीव तिह नाम।
सुखी दुखी सो अपूर्ण काम॥

इसकी विस्तृत व्याख्या दर्शनीय है। अधिक इस विषय में कहना करकङ्कण को दर्पण दिखाना ही है।

परन्तु यह "स्वयं प्रभा विवरण" भी पञ्जाबी लिपि में होने के कारण भारतराष्ट्र के अन्य प्रदेशों का इससे उपकार कैसे होगा? यह सोचकर अनन्त श्री विभूषित सकल शास्त्र निष्णात महा महिम श्री महन्त श्री स्वामी सुच्चा सिंह जी महाराज ने अपने हृदय लौकिकालौकिकोमय पद्धति-पारङ्ग दर्शन केसरी श्री स्वामी गुरु दीप सिंह जी महाराज को भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी (देव नागरी) लिपि में अङ्कित कराने के लिये प्रेरित किया।

दर्शन केसरी श्री स्वामी गुरु दीप सिंह जी महाराज के अनुमोदनानुसार श्री निर्मल संस्कृत विद्यालय, संगत, लाहौरी टोला, वाराणसी से अध्यापकत्व सम्बन्ध वश मुझे इस 'मोक्ष पन्थ प्रकाश' के 'स्वयं प्रभा विवरण' की हिन्दी (देव नागरी) लिपि करने का शोभनावसर प्राप्त हुआ।

परम विरक्त, न्याय दर्शन तत्त्व वेत्ता, पञ्जाबी लिपि के माध्यम से अन्य भाषा शब्द सामञ्जस्य-निष्णात श्री **स्वामी शेर सिंह** जी के अमूल्य सहयोग से यह हिन्दी (देवनागरी) लिपि सम्पन्न हुई है!

इस ग्रन्थ के अध्ययन से वेद विहित सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से जाना जा सकता है। "गुरु वाणी" में भी वेद विहित यथार्थ सिद्धान्त का विस्तार से प्रदर्शन किया गया है।

व्यापक देवनागरी में लिपि इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से अध्यात्मतत्त्व का उपदेश सबके लिए सुलभ हो गया यदि यह परिमार्जित हिन्दी भाषा में प्रकाशन कहीं हो तो सुवर्ण सुगन्ध हो जायगा।

इस प्रकार अध्यात्मतत्त्वात्मक ज्ञानोपदेश के माध्यम से भारत राष्ट्र के ही क्या, विश्व के मानव समाज को एकता के सूत्र में बांधा जा सकता है।

व्याकरण साहित्य वेदान्ताचार्य
भू० पू० प्रधानाचार्य चन्द्रशेखर मिश्र
श्री निर्मल सं. विद्यालय, वाराणसी।

"श्रीमज्जानकीवल्लभो विजयतेतराम्"

समीक्षात्मक भूमिका : मोक्षपन्थ-प्रकाश

सीतया सहितो रामः लक्ष्मणेन च संयुतः।
अभिरामस्त्रिलोकानां विरामं विपदां क्रियात्॥ १॥
प्रज्वालितोऽज्ञानतमोपनोदीयेन प्रदीपो मधुरैर्वचोभिः।
सन्मानसे मानसराजहंसं वन्दे गुरुं नानकनामकं तम्॥ २॥

विरञ्चिविरचितविचित्ररचनासंयुक्त रागद्वेषशीतोष्णसुखदुःख-भावाभावपारस्परिक-प्रतिद्वन्दि-परिपूरित अनिर्वचनीय अचिन्तनीय भवाम्बुधि में सर्व प्राणियों की नैसर्गिकी प्रवृत्ति सुख की ओर तथा आत्यन्तिक दुःखोच्छेद की ओर देखी जाती है। एतादृश उभय पदार्थ उद्देश्यक तत्साधन विषयिणी इच्छा का भी उत्पन्न होना अनिवार्य है, तादृश इच्छा का कारण इष्ट साधनत्वप्रकारकोपाय विशेष्यकबुद्धि है। इस वार्ता को बंगवासी बंगभूषण तार्किक-शिरोमणि श्रीविश्वनाथपञ्चानन भट्टाचार्य ने व्यक्त किया है।

"उपायेच्छां प्रतीष्टसाधनताज्ञानं कारणम्" (न्याय सि० मु०) इच्छा का ही भेद विशेष "चिकीर्षा" है। उस चिकीर्षा का स्वरूप तथा तत्कारण स्वरूप निम्नलिखित कारिका से ज्ञातव्य है।

चिकीर्षा कृतिसाध्यत्वप्रकारेच्छा च या भवेत्।
तद्धेतु कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिर्भवेत्॥

अर्थात् कृति साध्यत्वप्रकारक इच्छा का नाम "चिकीर्षा" (किसी काम को करने की इच्छा) है, कृति साध्यत्व प्रकारक ज्ञान तथा इष्टसाधनत्वप्रकारक ज्ञान चिकीर्षा के कारण हैं अर्थात् जब पुरुष को यह ज्ञान हो कि यह कार्य मेरे प्रयत्न साध्य है तथा मेरे इष्ट (अभिलषित विषय) का साधन है। तब पुरुष उस कार्य में प्रवृत्त होता है, वह कृतिसाध्यत्व तथा इष्टसाधनत्वप्रकारक बुद्धि भ्रमरूपा हो अथवा प्रमारूपा हो इसमें आग्रह नहीं, किन्तु उक्त बुद्धि को निश्चयत्वेन कारणता है, जैसे क्षुन्निवृत्तिकाम पुरुष को पाक विषयिणी इच्छा का होना तभी सम्भव है जब पुरुष को यह ज्ञान हो कि मैं भोजन सिद्ध कर सकता हूँ

तथा भोजन से तृप्ति सम्पाद्य है। एतादृश ज्ञानजन्य इच्छा से ही पुरुष की अग्नि परिज्वलन आदि क्रिया में प्रवृत्ति होकर तत्पश्चात् 'गलविलाधःसंयोगानुकूल-व्यापार' से तुष्टिपुष्टिक्षुन्निवृत्ति दृष्टिचर है। विषसम्पृक्त मिष्टान्न भक्षण में कृति साध्यताज्ञान होने पर भी इष्ट[1]साधनता ज्ञान के अभाव से प्रवृत्ति अनुपपन्न है। 'चन्द्रानयन' में इष्ट साधनता ज्ञान होने पर भी कृति साध्यता ज्ञान के अभाव से विज्ञ पुरुषों की प्रवृत्ति नहीं होती। अतः सिद्ध हुआ कि आत्यन्तिक दुःख उच्छेद तथा सुख प्राप्ति के साधनों में इष्टसाधनाग्रह तथा कृति साध्यताग्रह से सर्व प्राणियों की प्रवृत्ति होती है। परन्तु लौकिक साधनों से दुःखका आत्यन्तिक उच्छेद संभव नहीं। इसी वार्ता को सांख्यशास्त्र के कर्ता भगवान् कपिलदेव ने कहा है—"न दृष्टात्तत्सिद्धिः निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्" (प्र० अ० सू० २) लौकिक उपायों से दुःख-निवृत्ति की सिद्धि नहीं होती, साधन (धनादि) से दुःखनाश होनेपर भी पुनः दुःख की अनुवृत्ति देखने से।

इस सूत्र की व्याख्या में भाष्यकार श्रीविज्ञान भिक्षु लिखते हैं "लौकिकादु-पायाद्धनादेरत्यन्तदुःखनिवृत्ति सिद्धिर्नास्ति" कुतः? धनादिना दुःखे निवृत्ते पश्चाद्धनादिक्षये पुनरपि दुःखानुवृत्तिदर्शनादित्यर्थः।" अर्थात् लौकिक धनादि साधनों से दुःख की अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती क्योंकि धनादि साधनों से दुःख-निवृत्ति होने पर भी पश्चात् धनादि के नाश होने से पुनरपि दुःख की उत्पत्ति देखी जाती है। जब धनादि उपार्जन से दुःख की अत्यन्त निवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं तब धनादि उपार्जन में प्रवृत्ति कैसे? इत्याकारिका शंका शमनार्थ द्वितीयसूत्र का प्रणयन करते हैं—"प्रात्यहिकक्षुत्प्रतिकारवत् तत्प्रतिकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम्" (सू० ३) जैसे प्रतिदिन भोजन से क्षुन्निवृत्ति देखकर आगामी दिवस में भोजन सम्पादन की इच्छा होती है। उसी प्रकार धनादि उपार्जन से तात्कालिक दुःख निवृत्ति देखकर पुनः प्रवृत्ति की उपपत्ति है। जैसे लौकिक साधनों से आत्यन्तिक दुःखोच्छेद सम्भव नहीं वैसे ही वैदिक उपायों से भी सम्भव नहीं। एतादृश वार्ता ज्ञापनार्थ तृतीय सूत्र का प्रणयन करते हैं—"अविशेषश्चोभयोः" (सू० ४) आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति की कारणता का अभाव लौकिक तथा वैदिक साधनों में सम[2] हैं। अतएव "स्वर्गकामो यजेत" इत्याकारक स्वर्गोद्देश्यक याग विधेयक

१. इष्ट साधनता ग्रह भी बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्ट होना चाहिए।

२. दृष्टवदनुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः" (सांख्यकारिका) "अनु-श्रविकोऽपि कर्मकलापो दृष्टेन तुल्यो वर्तत इति" (सांख्यतत्त्वकौमुदी)

श्रुति से यज्ञ में प्रवृत्ति हुए पुरुषों को कालान्तर भावी स्वर्लोक में दुःख सम्मिश्रित सुख का उपभोग करना पड़ता है। इसी वार्ता को द्वादशदर्शनकाननपञ्चाननमिथिलामण्डलमण्डितपण्डितकुलपतिषट्दर्शनटीकाकार श्री वाचस्पतिमिश्र सांख्यतत्त्व कौमुदी में व्यक्त करते है।—"मृष्यन्ते हि पुण्यसम्भारोपनीत स्वर्गसुधामहाह्लदावगाहिनः कुशला पापमात्रोपपादितां दुःखवह्निकणिकाम्" अर्थात् पुण्यपुञ्जोपनत स्वर्ग सुखमयअमृतअवगाहनशीलदक्ष इन्द्रादि भी हिंसाजन्य स्वल्प पाप जनित देवासुर संग्रामादि रूप दुःखवह्नि कणिका का सहन करते हैं।[1] अतः सिद्ध हुआ लौकिक वैदिक साधनों से आत्यन्तिक दुःखोच्छेद सम्भव नहीं, आत्यन्तिक दुःखोच्छेद के लिये दुःखकारणउच्छेद आवश्यक है। क्योंकि "छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्" अर्थात् जैसे मूलोच्छेदन से शाखापत्र उच्छेद नैसर्गिक है उसी प्रकार दुःखकारण उच्छेद से ही दुःखोच्छेद अवश्यम्भावी है। प्रकृत में यह जिज्ञासा होना भी सम्भव है कि दुःखका कारण क्या ? इसी जिज्ञासा के शमनार्थ हमारे प्रकृत ग्रन्थकार कारण परम्परा का विशद विवेचन करते हैं।—

सकल दुःखको कारण देह। ताको धर्माधर्म विधेह।
विहितनिषिद्ध कर्म तिहमूल। राग द्वेष कर्मन को सूल॥
भलो बुरो अध्यासहि जोई। राग द्वेष को कारण सोई।
सो यहि भलो बुरो अध्यास। निखिल द्वैत ते भयो प्रकाश॥
सो सब द्वैत ब्रह्म मे ऐसे। सीपि विषे रूपो जग जैसे।
ताको कारण है अज्ञान। सो उर कल्पित सत्य पछान॥
सो अज्ञान अहे उर जौ लौ। सर्व अनर्थ लहे नर तौ लौ।

(मोः पः प्रः १ निवास)

सम्पूर्ण प्रकरण कायह तात्पर्य है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक निखिल दुःखों का कारण शरीर है। शरीर के कारण धर्माधर्म (अदृष्ट) हैं। अदृष्टों का हेतु वेदविहित क्रिया तथा वेद निषिद्ध क्रिया है। विहित निषिद्ध क्रिया का कारण राग द्वेष हैं। रोग द्वेष का कारण अनुकूल-प्रतिकूल ज्ञान है, अनुकूल-प्रतिकूलज्ञान का कारण भेद ज्ञान है, भेदज्ञान का कारण अनादि अनिर्वचनीय अविद्या है, अविद्या अज्ञान पर्याय शब्द है, वह अज्ञान अपर पर्याय अविद्या भावस्वरूप सविषयक पदार्थ है। अतएव अज्ञान शब्दार्थ ज्ञानाभाव

---

१. इति विद्वत्तोषण्यां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः उदासीनवर्यास्वामिबालरामपादाः।

स्वीकार करने वाले तर्ककर्कशविचार चातुर्यधौरेयकणभक्षाक्षचरणानुयायी मदमत्त गजराजों का विदलन वेद सिपरसहकृत युक्तिरूप खड्ग से भगवत् पाद शङ्कराचार्यनुयायी महामनीषी चित्सुखाचार्यादिक मृगराजों ने डिंडिमघोष से किया है सर्व अनर्थों का कारणीभूताअविद्या का लक्षण यह है—"अनादिभावत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वम्" अर्थात् जो वस्तु उत्पत्ति रहित भावस्वरूप हो तथा ज्ञान से नाश्य हो वह अविद्या है। उक्त लक्षण में अनादि पद न देने से उत्तर ज्ञान से नाश्य पूर्व ज्ञान में अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि वह (ज्ञान) भी स्वविरोधी उत्तर ज्ञान से नाश्य है तथा भावस्वरूप है इस अतिव्याप्ति के वारणार्थ अनादि पद दिया। यदि भावत्व न देते तो ज्ञान के प्रागभाव में अतिव्याप्ति होती क्योंकि वह (ज्ञान का प्रागभाव) भी अनादि है तथा ज्ञान से निवर्तनीय है इस अतिव्याप्ति के निरासार्थ "भावत्वे सति" यह विशेषण वाचक शब्द का लक्षण में सन्निवेश[1] किया। यदि "ज्ञाननिवर्त्यत्व" न देते तो अनादि भाव स्वरूप आत्मा में अतिव्याप्ति होती तद्वारणार्थ—ज्ञाननिवर्त्यत्व का ग्रहण किया। जीवेश्वर भेद तथा अविद्याका ब्रह्म से सम्बन्ध इत्यादि षट् पदार्थ वार्तिककार (सुरेश्वराचार्य) के मतानुसार अ[3]नादि हैं। उन जीवेश्वरभेदादि में अतिव्याप्ति वारणार्थ "साक्षात् ज्ञाननिवर्त्यत्व" निवेशनीय है। पूर्वोक्त लक्षण लक्षित अज्ञान की निवृत्ति का कारण आत्मज्ञान है। इसी बात को विद्वत्शिरोसीमन्तरत्नायमानकविवर

---

१. यद्यपि अज्ञाननिष्ठ भावत्व स्वीकार करने पर अद्वैत सिद्धान्त की हानि है क्योंकि अज्ञान भावत्वेन-अभावत्वेननिरूपणायोग्य है ऐसा शांकरवेदान्त का सिद्धान्त है। तथापि "भावत्व" यहाँ पर अभावविलक्षणत्वरूप ग्रहण किया जाता है, पारमार्थिक नहीं। इसी वार्ता को भामती की विकास टीका में स्पष्ट किया है। तदेतत्—अभावविलक्षणत्वमेव न तु वस्तुतो भावत्वं, भावत्वेनाभावत्वेन च निर्वक्तुमशक्यायास्तस्या वस्तुतो भावरूपत्वासम्भवात्।

(भामतीं-विकास-पृ० ३)

२. यद्यपि अभाव विलक्षणत्वरूपभावत्व अज्ञान में स्वीकार करने पर पूर्वोक्त अतिव्याप्ति सम्भव नहीं क्योंकि आत्मा में पारमार्थिकभावत्व है—अभावविलक्षणत्वस्वरूप नहीं, अतः ज्ञाननिवर्त्यत्व देना व्यर्थ है। तथापि शिष्य बुद्धि वैशद्यार्थ उक्त कृत्य है ऐसी अस्मद्भावना है।

३. जैसे अनिर्वचनीय स्वाप्निक पदार्थों में किञ्चिन्निष्ठ बहुकालस्थायित्व किञ्चिन्निष्ठ अल्पकालस्थायित्व किञ्चिन्निष्ठ अनादित्वभ्रान्ति से प्रतिभासित होता है। उसी प्रकार अविद्या आदि षट्पदार्थनिष्ठ अनादित्व भी कल्पित ही है।

हमारे प्रकृत ग्रन्थकार कहते हैं। "ताको नाशक आत्मज्ञान। सो वेदान्त ते नीके जान" आत्म ज्ञान का स्वरूप शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार का स्वीकार किया है, जैसे सांख्यदर्शनानुयायी महामनीषियों ने प्रकृति तत्कार्य प्रतियोगिकात्मानुयोगिक भेदज्ञानको मोक्ष का कारण माना है और तदनुकूल ही "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः" इत्याकारक श्रुत्यर्थ भी "प्रकृतितो विवेक्तव्यः" स्वीकार किया है। नैयायिकों तथा वैशेषिकों ने इतरपदार्थप्रतियोगिक आत्मानुयोगिक भेद ज्ञान से आत्यन्तिक दुःखोच्छेद रूप मोक्ष माना है परन्तु श्रुति स्मृति में भेद दर्शन की निन्दा का उल्लेख मिलता है। अतः भेद ज्ञान मोक्ष का हेतु नहीं प्रत्युत अनर्थ का हेतु है। तथाहि "श्रुतिः—"उदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति" "द्वितीयाद्वै भयं भवति" "मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" स्मृतिः—अन्यथास्थितमात्मानं योऽन्यथा प्रतिपद्यते।

किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥

जैसे श्रुति स्मृति में भेद दर्शन की निन्दा का उल्लेख है उसी प्रकार अभेद दर्शन की स्तुति का भी उल्लेख है। तथाहि श्रुतिः—"ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" "तरति शोकमात्मवित्" इसीवार्ता को श्री भल्लीलाललितनारायण अखिललोक-ब्रह्माण्डनायक शिव अजादिवन्दितचरण नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन के प्रति कहते हैं। "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मासुदुर्लभः।"

यद्यपि सांख्य प्रवचनभाष्य की भूमिका में विज्ञानभिक्षु (भाष्यकार) ने "मायावादमसच्छास्त्रं प्रपच्छन्नं बौद्धमेव च।

मयैव कथितं देवि" कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥

इत्यादि शिवोक्त पद्मपुराण वचनों से अद्वैतवाद की अत्यन्त आलोचना की है, तथापि श्रुति विरुद्ध होने से उक्तमत संग्राह्य नहीं, अन्यथा साक्षात् विष्णु अवतार प्रोक्त बौद्ध दर्शन भी प्रमाण होना चाहिए। अन्य[1] किसी लेखक ने "य इह नानेव पश्यति" इस श्रुति का यह अर्थ किया है कि जो ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव में भेद बुद्धि करता है। वह मृत्यु से भी मृत्यु को प्राप्त होता है। यह पूर्वोक्तमत भी समीचीन नहीं है, क्योंकि शाब्द बोध में जैसे आकाङ्क्षा योग्यता आदि को कारण माना गया है, उसी प्रकार तात्पर्य ज्ञान को भी कारण माना है।

---

१. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली की न्यायतत्वसमीक्षात्मक भूमिका में काशी निवासी निर्मल पण्डित स्वामी गोविन्द सिंहजी ने।

अन्यथा (सैन्धवमानय)' वाक्य से एक कालावच्छेदेन लवण तथा अश्व की उपस्थिति होकर विरोधी पदार्थ द्वय विषयक शाब्द बोध होने लगेगा। उक्त तात्पर्य का ग्राहक प्रकरण होता है। "य इह ...." इस श्रुति में ब्रह्मा, विष्णु के ऐक्य का कोई प्रकरण है नहीं। अतः उक्त श्रुति को उपासना परक मानना निष्फल है।

पूर्वोक्त श्रुति स्मृति सिद्ध ब्रह्मात्मैक्य प्रमाज्ञान ही मोक्ष का साधन है। इसी प्रसङ्ग में प्रमा के विषय में भी प्रकाश डालना नितान्त आवश्यक है। नैयायिक मतानुसार प्रमा का यह लक्षण है। तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः सैव प्रमा। जैसे "घटः" इस ज्ञान में घटत्वप्रकार (विशेषण) है, घट विशेष्य है। उक्त ज्ञान-घटत्ववान् (घट) में घटत्वप्रकारक है। तात्पर्य यह है कि जैसी वस्तु हो वैसी ही प्रतीत होने का नाम प्रमा है। यदि अनुभव पद नहीं देते तो स्मृति ज्ञान में अतिव्याप्ति होती है। क्योंकि "स घटः" इत्याकारक स्मृति ज्ञान भी घटत्व प्रकारक घट विशेष्यक है। इस अतिव्याप्ति के वारणार्थ अनुभव[1] पद का लक्षण में सन्निवेश किया। यदि तद्वति पद न देते तो शुक्ति में जायमान "इदं रजतम्" यह भ्रमज्ञान भी रजतत्व प्रकारक है। उक्त अतिव्याप्ति वारणार्थ "तद्वति" पद दिया। अथवा इस लक्षण का ऐसा परिष्कार करना उचित है। "तद्वन्निष्ठ विशेष्यतानिरूपित तन्निष्ठ प्रकारताशाल्यनुभवत्वं प्रमात्वम्"[2] पूर्वोक्त नैयायिकों के लक्षण में दोष यह है कि जब हम किसी वस्तु को समझ कर अनुवाद करते हैं तो एतादृश प्रमात्व अनुवाद में भी चला जायगा। अनुवाद वस्तु की विलक्षणता किञ्चिन्मात्र भी सिद्ध नहीं करता। इस दोषको ही उद्भावन कर मीमांसा दर्शन के "मानमेयोदय" ग्रन्थ में प्रमा का लक्षण अन्य प्रकार से किया है तथाहि "प्रमा चाज्ञात तत्त्वार्थज्ञानमेवात्र भिद्यते" अज्ञातपदेनात्र स्मृति अनुवादयोर्निरासः" तत्रानुवादानामप्रामाण्यं तार्किकादीनां नानुमतम्। वयं तु

---

१. स्मृति को अनुभव स्वरूप नहीं माना आता क्योंकि अनुभव शब्द की यह व्युत्पत्ति है—अनु-प्रमाण व्यापारानन्तरं भवति यः सोऽनुभवः, अर्थात् जो प्रमाण व्यापार के पश्चात् उत्पन्न हो उसका नाम अनुभव है। स्मृति की उत्पत्ति में किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं होती किन्तु पूर्व अनुभवजन्य संस्कार द्वारा उद्बोधक सन्निधान से वस्तु का स्मरण हो जाता हैं।

२. अस्यलक्षणस्य तर्ककर्कशविचारचातुरीधुरीणैरेतादृश अनुगमः कर्तव्यः। "विशेष्यता विशिष्ट प्रकारताकोऽनुभवत्वं प्रमात्वम्। वैशिष्टयञ्च—स्वनिरूपितत्व, स्वसमानाधिकरणनिष्ठत्वोभयसम्बन्धेन।

ब्रूमः—अनुवादो ह्यर्थ परिच्छेदे व्यवहारे वा न पूर्वज्ञानात् कञ्चिद् विशेषमाधत्ते। अतः फल विशेषाभावात् फलार्थंञ्च प्रमाणानां स्वीकारात् स्मृत्यादिवत् अनुवादोऽपि बहिष्कार्य एवेति"। वेदान्त मत में भी "व्यवहारे भाट्टनयः" एतादृश नियमानुसार भट्टपाद की प्रक्रिया ही अनुसरणीय है। इसी भाव को हृदय में स्थापन कर पूर्वोक्त लक्षण को अर्थतः वेदान्त परिभाषाकार ने उद्धृत किया है। "प्रमात्वमनधिगताबाधितविषयकज्ञानत्वम्" अर्थात् जो विषय पूर्व ज्ञात न हो तथा जिस विषय का व्यावहारिक दशा में बाध न हो तद् विषयक ज्ञान का नाम प्रमा है। इस लक्षण में यदि "अनधिगत" पद न देते तो यथार्थ स्मृति ज्ञान में अतिव्याप्ति होती अतएव अनधिगत पद का सन्निवेश किया। अबाधित पद न देने पर भ्रमज्ञान में अतिव्याप्ति होती क्योंकि शुक्ति में "इदं रजतम्" इत्याकारक भ्रम ज्ञान का विषय अनिर्वचनीय रजत भी पूर्व अज्ञात है। इस अतिव्याप्ति के वारणार्थ अबाधित पद दिया। अबाधितपद देने से अतिव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि शुक्ति में अनिर्वचनीय रजत शुक्तिरूप अधिष्ठान ज्ञान से बाधित[1] है। इस प्रमा के लक्षण में नैयायिकों की इस प्रकार शंका है[2]—एक ही घट व्यक्ति को देखकर जब निरन्तर ज्ञानों की "अयं घटः" "अयं घटः" इत्याकारक धारा उत्पन्न होती है वहाँ उत्तरज्ञान का विषय घट पूर्वज्ञान से अधिगत है। इस शङ्का का परिहार वेदान्तशास्त्र में इस प्रकार किया है—नीरूपस्यापि कालस्येन्द्रियवेद्यत्वाभ्युपगमेन धारा बाहिकबुद्धेरपि पूर्वपूर्वज्ञानविषयतत्तत्क्षण विशेषविशिष्टविषयकत्वेन न तत्राव्याप्तिः। अर्थात् "इदानीं घटो वर्तते" इस प्रतीति के आधार पर रूपरहित काल का भी चाक्षुष प्रत्यक्ष स्वीकार किया जाता है। अन्यथा घट में वर्तमानता का सन्देह होने लगेगा। अतः पूर्वक्षण विशिष्ट घट ज्ञात होने पर उत्तर क्षण विशिष्ट घट अनधिगत है। यद्यपि चाक्षुष प्रत्यक्ष में महत्त्वसमानाधिकरणउद्भूतरूप को कारणता स्वीकार की जाती है। काल में परममहत् परिमाण होने पर भी तत्समानाधिकरण अद्भुत रूप का अभाव है, इसलिए काल का चाक्षुष प्रत्यक्ष सम्भव नही, तथापि रूप गुण का भी चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है "गुणे गुणानङ्गीकारात्" नियम से रूप गुण में अद्भूत रूप नहीं अतः आपको कार्यकारणभाव का "द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति महत्वसमाधिकरणोद् भूतरूपं कारणम्" ऐसा स्वरूप स्वीकार करना होगा। हम

१. स्वोपादानेन सह स्वनिवृत्तिर्बाधः तस्य विषयत्वं बाधितत्वम्।

२. नन्वेकस्मिन् घटे प्रत्यक्षेण यदा निरन्तराणि ज्ञानान्युत्पद्यन्ते तत्र द्वितीयादिज्ञानेषु पूर्वपूर्वज्ञानविषयीकृतार्थेषु प्रमालक्षणस्याव्याप्तिः। (वेदान्त परिभाषा शिखामणिः)

भी "इदानीं घटो वर्तते" इस प्रतीति के अनुरोध से "कालव्यतिरिक्तद्रव्य चाक्षुषंप्रति महत्त्वसमानाधिकरणोद्भूतरूपं कारणम्" ऐसा कार्य कारण भाव का स्वरूप स्वीकार करेंगे। अतः पूर्वोक्त दोष का उद्धार समीचीन है।

पूर्वोक्त वेदान्ती के सिद्धान्त में नैयायिक की इस प्रकार शङ्का है—आपने "कालातिरिक्त द्रव्य चाक्षुषं प्रति महत्त्वसमानाधिकरणोद्भूतरूपं कारणम्" इस कार्यकारणभाव को परिष्कृत किया। हम भी "आकाशे वलाकः" इस प्रतीति के आधार पर "आकाशव्यतिरिक्तद्रव्यचाक्षुषंप्रति महत्त्वसमानाधिकरणउद्भूतरूपं कारणम्" ऐसा कार्यकारण भाव परिष्कृत करेंगे। उक्त कार्यकारणभावानुसार आकाश का भी चाक्षुष प्रत्यक्ष स्वीकार करना होगा। यदि वेदान्ती कहे कि हम आकाश का भी चाक्षुष प्रत्यक्ष स्वीकार करेंगे तो भाष्यकार से विरोध[1] होगा क्योंकि भाष्यकार ने "अप्रत्यक्षे ह्याकाशे बालास्तल्मलिनताद्यध्यस्यन्ति" (ब्र० सू० अध्यास भाष्य) ऐसा कहा है। अतः आपको भी "द्रव्यचाक्षुषंप्रति महत्त्वसमानाधिकरणोद्भूतरूपं कारणम्" ऐसा ही कार्यकारण भाव स्वीकार करना होगा। तब तो धारावाहिक बुद्धि में अव्याप्ति तादस्वस्थ्य रहेगी। पूर्वोक्त दोष का परिहार इस रीति से समझना चाहिए। धारावाहिक बुद्धि स्थल में ज्ञान का भेद नहीं माना जाता किन्तु यावत् काल घट का स्फुरण होता है तावत् पर्यन्त घटाकार अन्तःकरण की वृत्ति एक ही स्वीकार की जाती है[2]।

इस दूसरे समाधानानुसार भी पूर्वोक्त प्रमा का लक्षण निर्दुष्ट नहीं क्योंकि प्रथम दिन में देखे हुए घट व्यक्ति का ही जब हम दूसरे दिन प्रत्यक्ष करते हैं, तब वह घट व्यक्ति अनधिगत नहीं। अतः पूर्वोक्त दोष के निरासार्थ अनधिगत शब्द का ऐसा परिष्कार विवक्षित है—"स्वाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तिधर्माविषयविषयकत्वं प्रमात्वम्" दूसरे दिन जायमान घट व्यक्तिविषयकज्ञान, स्वशब्द से ग्राह्य है। उससे अव्यवहित पूर्व क्षणवृत्ति 'पटः' इत्याकारक ज्ञानात्मक धर्म, उसका अविषय 'घट' तद् विषयकत्व घट ज्ञान में है। यद्यपि यह लक्षण भी असम्भव दोष ग्रस्त है, क्योंकि स्वाव्यवहित पूर्व क्षण वृत्ति धर्मपदेन ईश्वरज्ञान को लेकर तादृश धर्म अविषय विषयकत्व किसी भी ज्ञान में सम्भव नहीं तथापि

---

१. "अप्रत्यक्षे ह्याकाशे बालास्ततमलिनताद्यध्यस्यन्ति" इति भाष्यकृद् वचनविरोधाच्च (वेदान्त परिभाषा शिखामणि)।

२. किञ्चधारावाहिक बुद्धिस्थले न ज्ञानभेदः किन्तु यावत् घट स्फुरणं तावत् घटाकारवृत्तिरेकैव नतु नाना (वे० परि०)।

पूर्वोक्त दोष निरासार्थं स्वाव्यवहित पूर्वक्षणवृत्ति स्वसमानाधिकरण जो धर्म तादृश धर्म अविषय विषयकत्व ऐसा परिष्कार करना चाहिये। ईश्वर का ज्ञानात्मक धर्म हम लोगों के ज्ञान के अव्यवहित पूर्व वृत्ति होने पर भी स्वसमानाधिकरण नहीं। अतः पूर्वोक्त प्रमात्व लक्षण सर्वदोष विनिर्मुक्त[1] है।

पूर्वोक्त लक्षण लक्षित ब्रह्मात्मैक्य विषयक अपरोक्षप्रमा मनोजन्य है। शब्द सहकारी कारण है—ऐसा भामतीकार का मत है। शब्दप्रमाण जन्य है संस्कृत मन सहकारी कारण है ऐसा विवरणानुसारी साम्प्रदायिकों का मत है। हमारे प्रकृत ग्रन्थकार भी विवरणानुसारी हैं क्योंकि चतुर्थ निवास में शब्द प्रमाण से ही ब्रह्मात्मैक्य बोध होता है इस सिद्धान्त को "दशमस्त्वमसि" इस दृष्टान्तानुसार ग्रन्थकार ने सिद्ध किया है। शाब्द बोध तभी हो सकता है यदि उससे पूर्व पदार्थ उपस्थिति हो, पदार्थ उपस्थिति शक्तिज्ञान के अधीन है। शक्तिज्ञान व्याकरण कोश आप्त व्यवहारादि के अधीन है। तत् तथा त्वं पद के शक्ति का ज्ञान शास्त्र बिना अन्य प्रमाण से सम्भव नहीं। इसी वार्ता को श्रीमल्लीलाललितकृष्णभगवच्चरणारविन्द चञ्चरीक श्रीमद्मधुसूदन सरस्वती

---

१. श्री स्वामी निश्चलदास जी ने "वृत्ति प्रभाकर" तथा "विचार सागर" में प्रमा का लक्षण दो प्रकार से किया है। वृत्ति प्रभाकर में "प्रमाण जन्य ज्ञान का नाम प्रमा है।" ऐसा प्रमा का लक्षण किया है। सुख दुःख का ज्ञान तथा ईश्वर का ज्ञान, स्मृतिज्ञान, प्रमाण जन्य नहीं अतः प्रमा नहीं ऐसा लिखा है परन्तु विचार कर देखा जाय तो यह प्रमा का लक्षण अन्योऽन्याश्रय दोष ग्रस्त है क्योंकि "प्रमाण जन्य ज्ञान का नाम प्रमा है" तथा प्रमा के करण का नाम प्रमाण है। ऐसे दोनों लक्षणों को परस्पर सापेक्ष होने से अन्योऽन्याश्रय स्पष्ट ही है और विचार सागर में "स्मृति से भिन्न अबाधित अर्थ को विषय करने वाला ज्ञान प्रमा है।" यह लक्षण किया है।

पूर्वोक्त लक्षण की स्मृति में तो अतिव्याप्ति नहीं क्योंकि स्मृति ज्ञान स्मृति से भिन्न नहीं किन्तु ईश्वर के ज्ञान में तथा सुख दुःख के ज्ञान में अतिव्याप्ति अवश्य है, क्योंकि सुख दुःख का प्रत्यक्षात्मक ज्ञान तथा ईश्वर का ज्ञान स्मृति से भिन्न है तथा अबाधितार्थ विषयक है। इस अतिव्याप्ति के निवारणार्थ "स्मृति भिन्न" इस शब्द के स्थान पर अनधिगत शब्द का निवेश करना चाहिये। अनधिगतपद का अज्ञातमात्र अर्थ स्वीकार करने पर ही सुख दुःख के ज्ञान में अतिव्याप्ति वारण सुकर है। क्योंकि सुख दुःख की अज्ञातसत्ता सिद्धान्त में स्वीकृत नहीं।

ने कहा है—"तस्य चात्म तत्त्वस्य ("तत्त्वमसि") 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वेदान्त वाक्यमेव प्रमापकम् । वाक्यञ्च पदार्थज्ञानद्वारैव ज्ञापकमिति तत्त्वं पदार्थयोः प्रकृतवाक्यार्थानुकूलयोरन्यतोऽसिद्धत्वात् तावपि शास्त्रेणैव प्रमातव्यौ (सिद्धान्त विन्दु) वेदान्त सिद्धान्त में "यतो या इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि श्रुति सिद्ध जगत् कर्तृत्वादि विशिष्ट परमात्मा तत् पद का वाच्यार्थ है जगदुत्पत्ति विषयक अनेक प्रकार के विवाद दर्शनकारों के दृष्टि गोचर होते हैं । जैसे सांख्य दर्शनानुयायी लोगों का उत्पत्ति के विषय में ऐसा सिद्धान्त है कि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्···" इस श्रुति सिद्ध जड़ प्रधान ही जगत् का अभिन्ननिमितोपादान कारण है । पुरुष पुष्कर पलाशवन्निर्लेप है । ईश्वर पदार्थ की सांख्य में स्वीकृति नहीं प्रत्युत "ईश्वराऽसिद्धेः" (प्र० अ० सू० २) इत्यादि सूत्रों से ईश्वर का खण्डन किया गया है । यद्यपि इन सूत्रों के व्याख्यान में भाष्यकार श्री विज्ञान भिक्षु ने "अयञ्चेश्वरप्रतिषेध एकदेशिनां प्रौढवादेनैवेति" इत्यादि व्याख्यान से कपिलदेव को सेश्वरवादी सिद्ध करने का श्ला[1]घनीय प्रयास किया है । तथापि हमारे प्रकृत ग्रन्थकार को उक्त पक्ष स्वीकार नही इसकी स्पष्ट झाँकी निम्नांकितपंक्तियों में देखी जा सकती है—

सांख्य बनायो जाहिने सो भगवत ते आन ।
ईश निरास न कोन तिंहि हेतु परम पछान ।।

अर्थात् जिसकी भगवदवतारत्वेन गणना श्रीमद्भागवतादि में की गयी है वह कपिलदेव सांख्य शास्त्र के प्रणेता नहीं किन्तु सांख्य शास्त्र के प्रणेता कपिलदेव अन्य ही है तथा वे निरीश्वरवादी हैं । इस सांख्यमत की प्रक्रिया का खण्डन ग्रन्थकार ने विशदरूपेण "ईक्षतेर्नाशब्दम्" (ब्र. सू. १।१।५) इस सूत्रानुसार प्रथमनिवास में किया है । तत्पश्चात् सेश्वर साँख्य पातञ्जलमत का तथा पाशुपति मत का तथा नारद पञ्चरात्रानुयायी रामानुजाचार्य के मत का तथा नैयायिक वैशेषिकादि के मत का युक्ति श्रुति सूत्र से खण्डन किया है । एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है । मूल ग्रन्थकार ने कारणवादों का निरूपण करते समय प्रतिज्ञाग्रन्थ में पातञ्जलमत तथा पाशुमत का पृथग् उपादान किया है ।

यथा—क्लेश कर्म ते जो असङ्ग । पुरुषविशेषनित्य चिद अङ्ग ।
ताही ने सब जग उपजाओ । यों पातञ्जल आप दिखायो ।।

इस पद्य में पातञ्जलमत का निरूपण है तथा—

---

१. उक्त विषय का विशेष विचार विज्ञान भिक्षुकृत-ब्रह्म सूत्र विज्ञानमृत भाष्य में देखना चाहिये ।

चेतन पशुपति जो इक हइये। जीवभिन्न रूपतिह पइये ॥
जगकारण ताते नहिं आने। प्रगट पाशुपत ताहि बखाने ॥

इस दूसरे पद्य में पशुपतमत का दिग्दर्शन कराया हैं परन्तु खण्डन करते समय जैसे अन्यमतों का खण्डन किया हे वैसे पाशुपत-मत का खण्डन नहीं किया तथापि शैवमत तथा पातञ्जल मत में ईश्वर को निमित्त कारण तथा प्रकृति को उपादान कारण मानने में प्रक्रिया साम्य है। अतः ग्रन्थकार ने (सांख्य मतों उर हेर हतो अव योग महेश्वर बैन बखाने) इस पद्य में योग शब्द से पातञ्जल मत तथा महेश्वर शब्द से पाशुपतमत का उल्लेख किया है तथा खण्डन भी दोनों का एक साथ ही कर दिया है। यद्यपि हमारे प्रकृत ग्रन्थ के टीकाकार ने योग महेश्वर शब्द का अर्थ पातञ्जल शैव (पृ० ५४) करके पातञ्जल को शैव का अभेद सम्बन्धेन विशेषण माना है। तथापि ऐसा अर्थ करने पर मूलकार के ऊपर प्रतिज्ञातार्थ त्याग रूप दोष आयेगा। अतः योग शब्द से पातञ्जलमत तथा महेश्वर शब्द से पाशुपत मत का ग्रहण करना चाहिए तथा "सुसांख्ययोगशैव वेदहीन जो बखानियों" इस पद्य में भी सांख्य योग एवं शैव पृथक्-पृथक् ग्रहणीय हैं। इन सम्पूर्ण मतों की उत्पत्ति विषयक प्रक्रिया का खण्डन कर माया विशिष्ट परमात्मा से जगदुत्पत्ति का निरूपण किया हैं। "पूर्व पञ्चभूत उपजाये। बहुरो पञ्चीकरण बनाये।"

तत् पद वाच्यार्थ ज्ञान के पश्चात् त्वं पद वाच्यार्थ विषयक ज्ञान होना आवश्यक है। अतः हमारे प्रकृत ग्रन्थकार पूर्व ग्रन्थ सङ्गति प्रदर्शन पूर्वक त्वं पद वाच्यार्थ निरूपण की प्रतिज्ञा करते हैं।

पूर्ववादी करे निरास। प्रथम पर्व में सुखी निवास ॥
तत् पद वाच्य निरूपण भयो। सीतापति उद्यम उर दयो ॥
त्वं पदवाच्यार्थं है जोई। करौं निरूपण सुनिये सोई ॥
साक्षी सर्व सदा सुखरूप। बाध विहीन असङ्ग स्वरूप ॥
ऐसो चेतन भाख्यो जोई। भयो जीव भव भीतर सोई ॥
जाग्रत, स्वप्न सुषुप्तितीन। यही अवस्था उर में चीन ॥
तीन अवस्था संगी जोई। त्वं पद वाच्य कही जै सोई ॥
बुद्धि उपाधि जीव तिहँ नाम। सुखी दुःखी सो अपूर्ण काम ॥

अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप अवस्थात्रय का सम्बन्धी जीव है। वही त्वं पद वाच्य है। इस पूर्वोक्त सिद्धान्त में द्वैतवादी नैयायिक आदिकों की इस प्रकार की शङ्का है—एक ओर तो आप लोग यह कहते हैं कि आत्मा असङ्ग

है। दूसरी ओर यह भी कह रहे हैं कि अवस्थात्रय सम्बन्धी जीव पद वाच्य है। यह आपका कथन तो इस प्रकार है। जैसे कोई पुरुष कहे इस भूतल में घट है एवं घटाभाव भी है। ऐसे पुरुष का कथन उन्मत्त प्रलापवद् विपश्चिदपश्चिमों के द्वारा सर्वथैव उपेक्षणीय होता है क्योंकि अत्यन्ताभाव का तथा प्रतियोगी का सहानवस्थितिरूप विरोध है। इसी बात को तार्किक शैली में ऐसे उपनिबद्ध किया जा सकता है। "प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतया सहात्यन्ताभावस्य विरोधित्वम्" यद्यपि जहाँ भूतल में घट विद्यमान रहता हैं, वहां ही अन्यदेशावच्छेदेन तद् अभाव की भी सत्ता दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार दीधितिकार शिरोमणि (रघुनाथ) भट्टाचार्य ने द्रव्यमात्र के अत्यन्ताभाव को "इह पर्वते नितम्बे हुताशनो नतु शिखरे" (सिद्धान्त लक्षण ग्रन्थ में) इस प्रतीति के बल पर अव्याप्यवृत्ति सिद्ध किया है। तथापि जहाँ यत् देशावच्छेदेन घटादि द्रव्य रहेंगे वहाँ तद् देशावच्छेदेन तद् अत्यन्ताभाव का विरोध होगा अतः पूर्वोक्त नियमानुसार आत्मा में असङ्गता तथा अवस्थात्रय सङ्ग का कथन नियम विरुद्ध प्रतीत होता है। इस पूर्वोक्त गूढ़ शङ्का को ही हमारे प्रकृत ग्रन्थकार ने सरल सरस तथा सार गर्भित भाषा में अंकित किया है—

ननु आत्मा असङ्ग बताये। अवस्था संग कथं तिन पाये ॥१२॥

इस पूर्वोक्त नैयायिक की शङ्का का परिहार इस प्रकार है:—**यह आशङ्का तुमरी जाई। करौं परिहार सुनो अब सोई ॥**

असङ्ग विषे नहिं तात्त्विक संगा। अध्यासिक हो सकल पर संगा ॥
सीपि विषे ज्यों रूपो भासे। त्यों आत्ममें सकल प्रकाशे ॥

अर्थात् व्यावहारिक रजत का व्यावहारिक रजताभाव के साथ विरोध होने पर भी शुक्ति में प्रातिभासिक रजत तथा व्यावहारिक रजताभाव का साथ रहने में जैसे विरोध नहीं उसी प्रकार आत्मा में भी आध्यासिक अवस्थात्रयसम्बन्ध तथा पारमार्थिक सम्बन्धाभाव का एक साथ रहने में विरोध नहीं। प्रतियोगी का अभाव के साथ सहानवस्थानरूप विरोध है, इस नियम का भी यह भाव है, समसत्ताक अभाव और प्रतियोगी का विरोध है विषम सत्ताक का नहीं। आत्मा में अवस्थात्रय सम्वन्धिता की प्रतीति अध्यासवशात् है। अध्यास का लक्षण अध्यात्म रामायण में श्री राघवेन्द्र सरकारने इस प्रकार किया है:—

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः। असर्पभूतेऽहि विभावनं-यथा रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत्।

इस पूर्वोक्त श्लोक का व्याख्यान हमारे ग्रन्थकार स्वविरचित अध्यात्म रामायण नामक भाषा ग्रन्थ में इस प्रकार करते हैं—

अन्यात् और और मे जु होय के दिखाय है।
अध्यास रूप कोविदा इसो जगत् गाय है।।
असर्परूप रज्जु मे यथा अहि विभास है।
जगत ए परेश में तथा सुभ्रात! भास है।।

हमारे ग्रन्थकार के श्रीराम उपास्यदेव हैं, अतः भगवान् कृत लक्षण का ही यहाँ पर उपन्यास करके भगवान् की सम्मति को भी उद्धृत किया है।—

अन्यत् अन्यत्र ह्वै भान। याही को अध्यास पछान।।
यही 'रामगीता' विषे राम भाख्यो।
गुणं सर्प केरोहि दृष्टान्त राख्यो।।
कृपा के बतायो गुणं सिन्धु नीके।
जपे नाम जाके मिटे दुःख जीके।।

पूर्वोक्त लक्षण में श्री राम की सम्मतिदेकर तत् पश्चात् भगवत् पाद श्री शंकराचार्य की सम्मति देते हैं।

भाष्यकार श्रीशंकरनामा। सर्व करै जिहँ पद परनामा।
तिन श्री मुख ते योंही गायो। शारीरक भाष्य विषेदिखलायो।।

श्री भाष्यकार ने अध्यास भाष्य में[1] "अध्यासो नाम अतस्मिँस्तद्बुद्धिरित्यवोचाम" यह अध्यास का लक्षण किया है। इस लक्षण का इस प्रकार अनुगम किया जा सकता है। विशेष्यताविशिष्टप्रकारताशालीबुद्धित्वमध्यासत्वम्। वैशिष्ट्यञ्च स्वनिरूपितत्व, स्वसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगिनिष्ठत्वोभय सम्बन्धेन। पूर्वोक्त अध्यास दो प्रकार का है भ्रान्ति तथा आहार्य। शुक्ति में रजत का अध्यास भ्रान्ति है और शालिग्राम में विष्णु बुद्धि आहार्य है। "व्याप्तेश्च समञ्जसम्" (ब्र० अ० ३ पाद ३ सू०') इस सूत्र के भाष्य में श्री शंकराचार्य ने "यथा वा प्रतिमादिषु विष्ण्वादि बुद्ध्यध्यासः"।

"इत्यादि ग्रन्थ से प्रतिमा में विष्णु बुद्धि तथा भगवन्नाम में ब्रह्म बुद्धि को अध्यास लिखा है। इस भाष्य की टीका करते हुए श्रीमद्—अद्वैतानन्दसार्वभौम ब्रह्म विद्याभरण में इस प्रकार स्पष्ट रूपेण लिखते हैं। नन्वालम्बनस्य नामादेरन्य-

---

१. यद्यपि "स्मृति रूप परत्र" यह अध्यास का मुख्य लक्षण है तथापि उस लक्षण का ही यह सार भूत लघु लक्षण है ऐसा भामती कार का मत है।

तरस्य नामत्वाकार बुद्धौ अनिर्वतितायां कथं तत्र विष्ण्वादि बुद्धिस्स्यात्। विष्ण्वाद्यभेदग्रहरूपस्याध्यासस्य भेदाग्रहरूपकारणाधीनत्वात् नामत्वादेर्भेदकस्य च ज्ञानं भेदाग्रह विरोधीति चेत्, न। इहाध्यास पदेनाहार्यारोपो विवक्षितः तत्र च न भेद ज्ञानं विरोधि अनाहार्य भ्रम एव तस्य विरोधित्वात्। इस पूर्वोक्त सिद्धान्त को ही हमारे प्रकृत ग्रन्थकार ने सरल तथा सरस भाषा में व्यक्त किया है:—

ताके है अब दोय प्रकार। दोषज एक आहार्य धार॥
प्रथमो हइये भ्रान्ति स्वरूप। द्वितीय मानस क्रिया अनूप॥
शुक्ति रजत भ्रान्ति उर आनो। भेद भान यामों नहिं मानो॥
भेद ग्रहण दूसर मो होई। इच्छाकर उपजावे सोई॥

कुछ लोग यह समझ लेते हैं कि अध्यास सभी भ्रान्ति स्वरूप ही होते हैं परन्तु ऐसा समझना उचित नहीं क्योंकि शालिग्राम में विष्णु बुद्धि अध्यास तो हैं परन्तु दोष जन्य न होने से भ्रान्ति नहीं किन्तु इच्छा जन्य होने से आहार्य है। भ्रान्ति ज्ञान में अधिष्ठान का विशेष रूपत्वेन अज्ञान रहता है एवं आहार्य ज्ञान में आरोप्यवस्तु के अधिष्ठान का विशेष रूपत्वेन ज्ञान रहता है। जैसे शालिग्राम का पाषाणत्वेन। यद्यपि इस ग्रन्थ के टीकाकार ने तथा विचारसागर ग्रन्थ में श्री स्वामी निश्चलदास जी ने ऐसा लिखा है—भ्रान्ति ज्ञान का विषय जो मिथ्या वस्तु और भ्रान्ति ज्ञान दोनों का नाम अध्यास है परन्तु क्षीरनीरविवेकी सज्जनों को इस बात का सूक्ष्म विचार कर लेना चाहिए कि उक्त अध्यास का लक्षण केवल शुक्ति रजतादि भ्रान्ति ज्ञान का ही उपयोगी है न कि आहार्यका भी। अथवा अध्यास के विषय में इस प्रकार समझना चाहिये। अध्यासत्व व्यापक धर्म है। भ्रान्तित्व तथा आहार्यत्व उसके व्याप्य धर्म हैं। दोषजन्यत्वं भ्रान्तित्वम्, इच्छाजन्यत्वमाहार्यत्वम्, ऐसे दोनों के लक्षण कर लेने चाहिये। आहार्य अध्यास के विषय में हमारे मूलग्रन्थकार तथा टीकाकार ने पर्याप्त विचार किया है। हमने तो केवल दिग्दर्शनमात्र कराया है। पूर्वोक्त भ्रान्तिज्ञानरूप अध्यास के कारण ही अवस्थात्रय सम्बन्धिता की तथा "अहं सुखी" "अहं दुःखी" इत्याकारक अन्तःकरण के सुख दुःखादि धर्मों की आत्मा में तथा आत्मा के चेतनत्वादि धर्मों की अन्तःकरण में प्रतीति होती है। "कामः संकल्पोविचिकित्साश्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्री धीर्भीरित्येतत्सर्वम्मन एव" इस श्रुति में इच्छादि को अन्तःकरण का धर्म कहा गया है, आत्मा का नहीं। भ्रान्ति के कारण आत्मा में प्रतीयमान होते हैं। यद्यपि नैयायिक महाशयों ने "एतत्सर्वम्मनएव·····" इस श्रुति का अर्थ यह किया है—इच्छादि सम्पूर्ण धर्म मनोजन्य हैं अर्थात् मन इच्छादि का निमित्त कारण है। उक्त श्रुत्यर्थानुसार ही, ज्ञानम् नान्तःकरणो-

पादानकम्, मानस प्रत्यक्षत्वात् कामनादिवत्, इत्याकारक अनुमान की भी कल्पना की है तथापि तार्किकाभिमानियों का यह मत समीचीन नही क्योंकि "मृद्घटः" जैसे यहाँ पर समानाधिकरण्य [1]श्रुति से मृदभिन्नघट है यह शाब्दबोध होता है वैसे ही एतत्सर्वम्मनएव ऐसे स्थान में भी काम संकल्पादि से अभिन्नमन है यह शाब्द-बोध होना युक्ति युक्त है। वह तभी सम्भव है यदि मन को इच्छादि का उपादान कारण माना जाय क्योंकि उपादान कारण से ही कार्य का अभेद होता है, निमित्त कारण से नहीं। यदि निमित्त कारण से भी कार्य का अभेद माने तो "कुलालो-घटः" यह प्रतीति भी होनी चाहिये। इस पूर्वोक्त प्रकरण से सिद्ध हुआ कि इच्छा सुख दुःखादि मन के धर्म हैं और भ्रान्ति के कारण आत्मा में प्रतिभासित होते हैं। इस विषय में तार्किक लोगों की इस प्रकार शङ्का है। धर्मों का धर्मी में अध्यास तभी सम्भव है जब उससे पूर्व धर्मी ऐक्य अध्यास हो क्योंकि धर्मी ऐक्याध्यास धर्माध्यास का व्यापक होता है। व्यापक के निवृत्त होने पर व्याप्य की निवृत्ति स्वतः सिद्ध है, जैसे शुक्ति रजतादि स्थल में शुक्ति रजत का ऐक्या-ध्यास होकर ही रजतत्व धर्म का अध्यास देखा गया है परन्तु यहाँ ऐसा है नहीं यदि अन्तःकरण तथा आत्मा का ऐक्याध्यास प्रथम हो तभी अन्तःकरण के सुखा-दिक धर्मों का अध्यास आत्मा (धर्मी) में सम्भव है। इसी बात को शिखामणि-कार ने स्पष्ट किया है। "न चान्तःकरण धर्मस्य ज्ञानादेरात्मन्यध्यास परस्पर विरुद्ध धर्मवत् अन्तःकरणात्मनोरैक्याध्यासाभावात् धर्म्यैक्याध्यासस्य धर्माध्यास व्यापकत्वात्" तात्पर्य यह हैं कि अन्तःकरण तथा आत्मा का ऐक्याध्यास तभी उपपन्न हो सकता है जब दोनों वस्तुओं का किसी रूप से सादृश्य हो। परन्तु ऐसा है नहीं। इसी बात को प्रकृतग्रन्थकार ने कहा है—

आत्म और अनात्म जोई। अहै विलक्षण दोनों सोई॥

हमारे पूज्य ग्रन्थकार ने इन पूर्वोक्त पंक्तियों द्वारा शारीरिक भाष्य की निम्नलिखित पंक्तियों की ओर पाठकों की दृष्टि को आकर्षित किया है—

"युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमः प्रकाशवद्विरूद्धस्वभावयोरित-रेतरभावानुपपत्तौ सिद्धायां तद्धर्माणामपि सुतरामितरेतरभावानुपपत्तिः" (अध्यास भाष्य)

किञ्च अधिष्ठान तथा आरोप्यवस्तु के भेदाग्रह (भेदाज्ञान) से अभेदाध्यास जन्य होता है। आत्मा तथा अन्तःकरण का भेदज्ञान अभेदाज्ञान का विरोधी

१. विभक्ति से

है। अतः भेदाग्रह (भेदाज्ञान) की निवृत्ति होने से आत्मा तथा अन्तःकरणरूप धर्मैक्याध्यास कदापि सम्भव नहीं। इस बात को षड्दर्शन टीकाकार श्री वाचस्पति मिश्र ने भामती में स्पष्ट किया है।

"अध्यासो भेदाग्रहेण व्याप्तः तद्विरुद्धश्चेहास्ति भेदग्रहः, स भेदाग्रहं निवर्तयंस्तद् व्याप्तमध्यासमपि निवर्तयतीति"।

इसी बात को हमारे ग्रन्थकार ने भी लिखा है—

ननु सीपी को जो नहीं जाने। तौ ताने नर रजत बखाने॥

यदि वेदान्ती ऐसा कहे—धर्माध्यास से पूर्व धर्मैक्याध्यास अनिवार्य नहीं है क्योंकि 'लोहितः स्फटिकः' इस स्थल में धर्मैक्याध्यास तो है नहीं किन्तु पुष्पवृत्ति रक्तिमा (धर्म) का अध्यास लोक प्रसिद्ध है। इसी बात को श्रीमदद्वैतानन्दाचार्य ने व्यक्त किया है। "ननु मास्तु धर्म्यभेदाध्यासः, तदभावेऽपि जपाकुसुमाभेदाध्यासरहिते स्फटिके जपाकुसुमारुणिम्न इव शरीरे आत्मधर्मस्य चैतन्यादेरध्यासः किन्न स्यात्" वेदान्ती का पूर्वोक्तपक्ष समीचीन नहीं धर्मैक्याध्यास धर्माध्यास का व्यापक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि धर्मी का धर्म्यन्तर से ऐक्याध्यास तथा धर्म्यन्तर के प्रतिबिम्ब का धर्मी से ऐक्याध्यास एतादृशान्यतराध्यास को धर्माध्यास की व्यापकता विवक्षित है। 'इदं रजतम्' में धर्म्यन्तर के ऐक्याध्यास से रजतत्वधर्म का अध्यास उपपन्न है। एवं 'लोहितः स्फटिकः' इस स्थल में धर्म्यन्तर (कुसुम) के प्रतिबिम्ब के (स्फटिक में) ऐक्याध्यास से रक्तिमाधर्म की स्फटिक में प्रतीति होती है। आत्मा तथा अन्तःकरण के चेतनत्व जाड्यादिविरुद्ध धर्मों से धर्मैक्याध्यास अनुपपन्न है। आत्मा को नीरूप होने से धर्म्यन्तर के प्रतिबिम्ब का ऐक्याध्यास अनुपपन्न है। जब एतादृशान्यतराध्यास अनुपपन्न है तो सुतरां धर्मान्तराध्यास की असिद्धि है। पूर्वोक्त सम्पूर्ण पक्ष का उद्धार इस प्रकार से है—शास्त्र के द्वारा आत्मा तथा अन्तःकरण का परोक्षभेदग्रह होने पर भी वह भेदग्रह अपरोक्ष भेदाग्रह का विरोधी नहीं। अतः भेदाग्रह से धर्म्यैक्याध्यास द्वारा निरस्तसमस्तशङ्काकलङ्कपङ्क प्रत्युहव्यूह विनिर्मुक्त धर्माध्यास की सिद्धि है। इस प्रकार से आत्मा में आध्यासिक त्वं पद वाच्यता है कुछ वादियों ने देह को त्वं पदवाच्य माना हैं। अन्य लोगों ने प्राण, विज्ञान, इन्द्रियेत्यादि में त्वं पदवाच्यता मानी है। इन सभी मतमतान्तरों का खण्डन करके हमारे ग्रन्थकार ने द्वितीय निःश्वास के अन्त में यह निष्कर्ष प्रकट किया —

अनिर्वाच्य अज्ञान ये रचे सकल संसार।
चित् यह अन्तःकरण मिल भोगें दुःख तिहँ भार॥
नाना योनि जन्म को पाये। घटीयन्त्रवत् आये जाये॥
अन्तःकरण मिथुनता पाई। निज आतमता जीव भुलाई॥
सुख दुःख पाये सदा उर माहीं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति माहीं॥
अवस्था तीन सु संगी जोई। त्वं पद वाच्य पछानो सोई॥

हमारे पूज्यग्रन्थकार तृतीय निवास में अखण्डार्थ निरूपण की प्रतिज्ञा करते हैं।

दोनों पदार्थं सोधके, अखण्डार्थं या माहि।
प्रकट होय नीके सुनो, निखिल द्वैत मिट जाय॥

इसी अर्थ का स्पष्टीकरण करते हैं—

जब उपजे निज आतम ज्ञान। तभी होय सब बन्धन हान॥

अर्थात् जब जीवब्रह्म अभेद विषयक अखण्डाकार वृत्ति उत्पन्न होती है। तभी सम्पूर्ण कर्तृत्वादि बन्धन की निवृत्ति होती है। द्वितीय निवासोक्त प्रकार से कर्तृत्वादिक बन्ध मिथ्या है। मिथ्या वस्तु की ज्ञान से ही निवृत्ति होती है। क्रिया से नहीं। जैसे—रज्जु में प्रतीयमान सर्पमिथ्या है वह रज्जु के ज्ञान से निवृत्त होता है घन्टा घोषादि से नहीं। प्रकृत में मिथ्यात्व क्या है इस जिज्ञासा का उत्पन्न होना भी आनिवार्य है। अतः उक्तजिज्ञासा निवर्तक मिथ्या के लक्षण का उल्लेख किया जाता है।

सर्वेषामपि भावानामाश्रयत्वेन संमते।
प्रतियोगित्वमत्यन्ताभावं प्रति मृषात्मता॥ (चित् सुखी)

इस कारिका का स्पष्टार्थं यह है कि "स्वाश्रयत्वेनाभिमत—निष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्। जिस पदार्थं में मिथ्यात्व विवक्षित हो उसका स्वशब्द से ग्रहण करना। यदि पट में मिथ्यात्व विवक्षित हो तो स्व-पट, तदाश्रयत्वेनाभिमत तन्तु; तन्तु में रहने वाला पारमार्थिक रूप से जो पट का अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभाव-प्रतियोगित्व पट में है। पूर्वोक्त प्रकरण से यह अनुमान लब्ध हुआ" व्यावहारिको, प्रपञ्चोमिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरुप्यवत्। इस मिथ्यात्व साधकानुमान में अन्यवादियों का अनेक प्रकार का विवाद हैं। जैसे भट्टतनय प्रभाकर का कहना है कि इस अनुमान में दृष्टान्तासिद्धि दोष है। तथाहि—शुक्ति में रजत मिथ्या नहीं किन्तु सत्य है। क्योंकि

शुक्ति में रजतज्ञानको प्रत्यक्षभ्रम रूप माने तो उक्तज्ञान का विषय रजत मिथ्या हो परन्तु वह भ्रम नहीं किन्तु पूर्ववर्ती (शुक्ति) का यथार्थ प्रत्यक्षात्मक ज्ञान है तथा कान्ताकरस्थ रजत का यथार्थस्मृतिज्ञान है। हमारे प्रकृत ग्रन्थ के टीकाकार ने इस विषय का प्रतिपादन करते हुए एक विचारणीय बात का उल्लेख किया है। वह यह है कि अन्य शास्त्रकारों के मत में डेढ़ज्ञान सच्चा और आधाज्ञान झूठा ऐसा स्वीकृत है। प्रभाकर का कहना है आधे ज्ञान को झूठा स्वीकार करने में गौरव है। अतः उस आधे को भी सच्चा ही स्वीकार करना चाहिये। यहाँ पर टीकाकार का तात्पर्य यह है—कि रजत में "इदं रजतम्" यह एक विशिष्ट ज्ञान है। इदमांश में तादात्म्य सम्बन्ध से रजत विशेषणांश है। इस प्रकार से आधा इदमंश है आधा रजतांश है। इसी प्रकार से शुक्ति में 'इदं रजतम्' यह एक विशिष्ट ज्ञान है। इसमें भी आधा इदमंश है आधा रजतांश। दोनों ज्ञानों को मिलाकर दो अंश हुए इदमंश तो दोनों ज्ञानों में सच्चा है। सत्य रजतस्थल में आधा रजतांश भी सच्चा है इस प्रकार से डेढ़ज्ञान हुआ, शुक्ति में रजतांश का जो ज्ञान है वह आधा अंश है। वह प्रभाकर से भिन्न दर्शनकारों के मत में झूठा है। प्रभाकर का मत है रजतांश की स्मृति मानकर उस आधे को भी सच्चा क्यों न माना जाय? इसी तात्पर्य से प्रभाकरके मत में "सर्वे प्रत्यया यथार्थाः" यह स्वीकार है। इस प्रभाकर के मत का ग्रन्थकार ने अच्छी तरह से खण्डनकर तत्पश्चात् अन्यथाख्याति आदिकमतों का खण्डनकर मिथ्यात्व की सिद्धि पूर्वोक्त अनुमान से की है। तत्पश्चात् अंशअंशिभाव आदिक संसर्गार्थ माननेवाले द्वैत-वादियों का खण्डन कर महावाक्य में केवल अखण्डार्थ परतः सिद्धकर अखण्डार्थ का यह लक्षण किया है—

> संसर्ग ते जो हीन बाधहीन धीन काहूँ के न,
> वाक्य में अखण्ड अर्थ सोई मानीयत है।

मूल ग्रन्थकार तथा टीकाकार ने अखण्डार्थ निरूपण में 'चित्सुखी' ग्रन्थ की पर्याप्त सहायता ली है। चित्सुखाचार्य ने अखण्डार्थ का निम्नलिखित लक्षण किया है।

> संसर्गासङ्गि सम्यग्धीहेतुता या गिरामियम्।
> उक्ताखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थता॥

"संसर्गासङ्गि" इस वाक्य का अर्थ प्रकृत ग्रन्थकार इस प्रकार करते हैं—'संसर्ग ते जो हीन' अर्थात् 'संसर्गानवगाहित्वे सति, 'सम्यग्धीः' इसका अर्थ यथार्थज्ञान होता है। यदि ऐसा हि प्रकृतग्रन्थकार रखते तो छन्दानु-

प्रास में हानि होती है। अतः प्रतिव्युत्पन्नमति ग्रन्थकार ने "सम्यग्धी" के स्थान पर 'बाधहीन' पद का उपन्यास किया। तात्पर्य तो दोनों का एक ही है। क्योंकि यथार्थ ज्ञान का विषय ही बाधरहित हुआ करता है। सम्पूर्ण लक्षण का आकार यह हुआ कि 'संसर्गानवगाहित्वे सति यथार्थ ज्ञानजनकत्वं–अखण्डार्थत्वं यह अखण्डार्थ का प्रथम लक्षण है। 'प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः इस लौकिक वाक्य में प्रकृत लक्षण का समन्वय इस प्रकार से है—यह वाक्य प्रवृत्ति निमित्त धर्मों को तथा तादृश धर्मों के व्यक्ति से सम्बन्ध को विषय करनेवाला नहीं। केवल व्यक्ति मात्र को विषय करने वाला है। तथा यथार्थ ज्ञान का जनक है। प्रवृत्तिनिमित्त धर्मों का तथा तादृश धर्मों के सम्बन्ध का प्रष्टा की इच्छा के अविषय होने से तथा वक्ता के तात्पर्य का अविषय होने से शाब्द बोध में भान नहीं होता। इस विषय का स्पष्टीकरण। "ज्यों को हेर नक्षत्र सारे" इत्यादि ग्रन्थ के द्वारा मूलकार ने ही किया है। इस लक्षण में "संसर्गानवगाहित्वे सति" यदि न देते तो उक्त लक्षण की 'दण्डी पुरुषः' इस वाक्य में अति व्याप्ति होती क्योंकि उक्त वाक्य भी यथार्थ ज्ञान का जनक है। अतः 'संसर्गानवगाहित्वे सति' दिया। "दण्डी पुरुषः" इत्याकार वाक्य 'दण्ड पुरुष' के संयोग सम्बन्धको विषय करनेवाला है इसीलिये उक्त वाक्य में अतिव्याप्ति नहीं, शुक्ति में रजत का बोधक 'इदं रजतम्' यह वाक्य भी संसर्गानवगाही है क्योंकि वेदान्त मत में अभेद को संसर्ग नहीं माना जाता किन्तु अभेद वस्तु का स्वरूप स्वीकार किया जाता है। इसी कारण से 'सम्बन्धियों से भिन्न होकर जिनके आश्रित होवे सो सम्बन्ध कहिये है" प्रकृत ग्रन्थ के टीकाकार ने ऐसा सम्बन्ध का लक्षण किया है। अतः उक्त वाक्य में अतिव्याप्ति वारणार्थयथार्थज्ञानजनकत्व दिया। इस संदर्भ में कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है—यावत् लक्षण वाक्य अखण्डार्थ के ही प्रतिपादक हैं। अतः नित्य सम्बन्धः समवायः इस लक्षण वाक्य में अखण्डार्थ के लक्षण की अव्याप्ति है। इस अव्याप्ति के वारण के लिये प्रकृत ग्रन्थ के टीकाकार ने 'अन्य' पद का निवेश किया है। इसका भाव यह है कि लक्ष्यार्थ रूप संसर्ग से अन्य जो लक्षणगत पदार्थों का संसर्ग उससे शून्य चाहिये। इस पूर्वोक्त शङ्का, समाधान को ही श्री चित्सुखाचार्य ने इस प्रकार से व्यक्त किया है—"नन्वेवमपि नैतल्लक्षणम्, अप्राप्तयोः प्राप्तिः संयोगः नित्यसम्बन्धः समवायः इत्येवमादि सम्बन्ध प्रतिपादक लक्षणवाक्येष्वव्याप्तेः, तेषां संसर्गगोचर प्रमिति जनकत्वादिति चेत् मैवम्, तेषामपि स्वस्वपदस्मारितपदार्थानामन्योन्यसंसर्गगोचरप्रमितिजनकत्वात् संसर्गगोचर प्रमितिजनकत्वशब्देन चास्यैवार्थस्य विवक्षितत्वात्" "यद्वा तत्प्रातिपादिकार्थता" अर्थात् "अपर्यायशब्दानां प्रतिपादिकार्थमात्रपरत्वम् यह द्वितीय

अखण्डार्थ का लक्षण है इस लक्षण को ही मूलकार ने "धीन काहूँके न" इस पंक्ति से व्यक्त किया है। अर्थात् "गुणक्रियादि शून्य वस्तुत्व" इन दोनों लक्षण का विचार टीकाकार ने बहुत स्पष्ट रूप से किया है। अतः विस्तार अपेक्षित नहीं। टीकाकार श्री नरोत्तम जी तर्ककर्कशधुरीणाग्रगण्य हैं आपने शाब्दबोध का विचार व्युत्पत्तिवाद आदिक न्यायग्रन्थोंका मननकर सूत्र शैली में किया है। अतः उसकी पुष्टचर्थ यत्किञ्चित् प्रयास आवश्यक है। शाब्दबोध के लिये पद की शक्ति वृत्ति का ज्ञान आवश्यक है। उस शक्ति वृत्ति का ज्ञान व्याकरणादि अष्ट कारणों से होता है। अष्टकारणों का विशद निरूपण टीकाकार ने प्रथम निवास में प्रभाकरमत निरूपण में किया है। "घटमानय त्वम्" इत्याकारक वाक्य से श्रोता को शक्तिज्ञान सहकृत घट पद से कलशरूप अर्थ की स्मृति होती है। 'अम्' पद से कर्मत्वरूप अर्थ की स्मृति होती है। 'आङ्' पूर्वक नी धातु से आनयन रूप अर्थ की स्मृति होती है। आख्यात से कृति तथा प्रेरणा की उपस्थिति होती है। 'त्वं' पद से कृत्याश्रय (कर्ता) की उपस्थिति होती है। तत् पश्चात् घट पदार्थ का द्वितीयार्थ कर्मता में आधेयता सम्बन्ध से, कर्मता का 'आङ्' पूर्वक धात्वर्थ आनयन में निरूपकता सम्बन्ध से, आनयन का आख्यातार्थ कृति में अनुकूलत्व सम्बन्ध से तथा प्रेरणा में विषयकत्व सम्बन्ध से कृत्ति का 'त्वं' पदार्थ में आश्रयता सम्बन्ध से तथा प्रेरणा का 'त्वं' पदार्थ में विषयता सम्बन्ध से अन्वय होकर "घटकर्मतानिरूपकआनयनानुकूल कृत्याश्रयः प्रेरणा विषयश्च त्वं पदार्थः" यह शाब्दबोध होता है। शाब्दबोध का यह लक्षण है "एक पदार्थे अपरपदार्थ संसर्गविगाहिबुद्धित्वम्"। इसी बातको हृदयस्थकर प्रकृत टीकाकार ने "संसर्ग वा विशिष्ट वाक्यार्थ कहिये है" ऐसा लिखा है। इसका तात्पर्य यह है कि "नीलो घटः" इस लौकिक वाक्य में नीलपद की नीलत्व विशिष्ट में शक्ति है और घटपद की कालशरूप अर्थ में शक्ति है। दोनों पदों के आगे "विसर्ग" शब्द साधुत्वार्थक है। नील और घट के अभेद का वाचक कोई शब्द है नहीं किन्तु (अभेद) शाब्दबोध की मर्यादा (आकांक्षा) से प्रतीयमान है। इसी बात को महामहोपाध्याय तार्किक शिरोमणि श्रीमद्गदाधर भट्टाचार्य ने व्यक्त किया है "शाब्दबोधे चैक पदार्थेऽपर पदार्थस्य संसर्गः संसर्गमर्यादया भासते" (व्युत्पत्तिवाद) उक्त आकांक्षा से भासमान अभेद को यदि विशेषण बनाया जाय तो 'नीलाभिन्न घट है" यह शाब्द बोध होगा। यदि संसर्गकोटि में लाया जाय तो "अभेदसम्बन्धेन नील विशिष्ट घट है" यह शाब्दबोध होगा। ये दोनों पक्ष न्याय जगत् में संसर्गतावादी तथा प्रकारतावादी इन दोनों शब्दों से व्यवह्रियमाण है। अतः दोनों मतों का उल्लेख विज्ञ टीकाकार ने किया है। महावाक्य जन्य

अखण्डाकार वृत्ति से अज्ञानतत्कार्य की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति होती है। यहाँ यह शङ्का उपस्थित होती है कि जिस अखण्डाकार वृत्ति ने अज्ञान तत्कार्य की निवृत्ति की है उस वृत्ति का नाशक साधन कौन है इस शङ्का को सिद्धान्तलेश-संग्रह में इस रूप से प्रतिपादन किया है "नन्वस्त्वेतदेवम्, तथापि सविलासनाशक-ब्रह्मज्ञानं कथं नश्येत्? नाशकान्तरस्याभावादिति चेत्" इस पूर्वोक्त पंक्ति का ही सरस तथा सरलानुवाद ग्रन्थाकार लिखते हैं—

ननु जाने सब द्वैत संहारचो। सो वह ज्ञान कहो किन मारचो॥

इस पूर्वोक्त शङ्का का समाधान अनेक प्रकार से सिद्धान्तलेशसंग्रह में लिखा है उस सम्पूर्ण प्रकरण को ही प्रकृतग्रन्थकार ने रखा हैं। अब हम दोनों ग्रन्थों को उद्धृत करते हैं—

या में उत्तर बहुत प्रकार। पण्डित जन सब करे उचार॥
कतक रज ज्यों जलको पाय। सकल नीर के मलहि मिटाय॥
मल के संग आप मिट जावे। कतक नहीं पाछे ठहरावे॥

"यथा कतकरजः सलिलेन संयुज्य पूर्वयुक्तरजोऽन्तरविश्लेषं जनयत् स्वविश्लेषमपि जनयति तथाऽऽत्मन्यभ्यस्यमानं ब्रह्मज्ञान पूर्वाभ्यस्तसर्वप्रपञ्चं निवर्तयत् स्वात्मानमपि निवर्तयति इति केचित्" इस प्रकार ब्रह्माकारवृत्ति के नाश का प्रकार अक्षरशः सिद्धान्त लेश के तृतीयपरिच्छेद का अनुवाद है। इसके पश्चात् यह शंका होती है कि जिस लेशाविद्या के आश्रित ज्ञानवान् के देह की स्थिति है वह लेशाविद्या किं स्वरूपा है? इसी बात को ग्रन्थकार लिखते हैं—

ननु वह लेशाविद्या जोई। ताको रूप कहो क्या होई॥

इसी बात को सिद्धान्तलेश में स्पष्ट किया है। "अथ कोऽयं विद्यालेशः यदनुवृत्या जीवन्मुक्तिः?" इस लेशाविद्या के स्वरूप का भी अनेक प्रकार से निरूपण है—यथा "आवरणविक्षेपशक्तिमत्या मूलाविद्यायाः प्रारब्धकर्मवर्तमान-देहानुवृत्तिप्रयोजको विक्षेपशक्त्यंश इति केचित्" इसी पंक्ति के भावार्थ को ही अभिव्यक्त करते हैं।

मूलाविद्या भाखें जाहीं। आवरण विक्षेप शक्तिद्वय ताहीं॥
तामों द्वितीय शक्ति है जोई। लेशाविद्या भाखी सोई॥

यह एक मतानुसार लेशाविद्या का स्वरूप कहकर अन्यमत का उल्लेख (अप्पय दीक्षित) करते हैं "क्षालितलशुनभाण्डानुवृत्यलघुनवासना कल्पोऽविद्या-

संस्कार इत्यन्ये" इस पूर्वोक्त सिद्धान्तलेश को ही प्रकृतग्रन्थकार ने स्पष्ट किया है—

क्षालितलशुन भाण्ड में जैसे। लशुनवासना होवे तैसे ॥
अविद्या संस्कार है जोई। लेशाविद्या माने सोई ॥

यहाँ ग्रन्थकार ने सिद्धान्त लेश संग्रह ग्रन्थ का यथावत् उल्लेख करते हुए सर्वज्ञात्ममुनि के मत को चर्चा नहीं की इसका कारण यह है कि संक्षेपशारीरककार ने जोवन्मुक्ति प्रतिपादक शास्त्र को अर्थवादरूप माना है। उनके मत में जीवन्मुक्ति नाम का पदार्थ कोई है नहीं। प्रकृतग्रन्थकार ने जीवन्मुक्ति का सविस्तार निरूपण किया है अतः संक्षेपशारीरककार के मत की उपेक्षा उचित ही है। उसके मत का निरूपण सिद्धान्त लेश में इस प्रकार से है—"सर्वज्ञात्म गुरवस्तु विरोधिसाक्षात्कारोदये लेशतोऽपि अविद्याऽनुवृत्यसम्भवात् जोवन्मुक्ति-शास्त्रं श्रवणादि विध्यर्थवादमात्रम् शास्त्रस्य जीवन्मुक्तिप्रतिपादने प्रयोजनाभावात्" पूर्वोक्त लेशाविद्या की निवृत्ति ज्ञानवान् के देहपात से पूर्व जीव-ब्रह्माभेदविषयिणी अखण्डाकारवृत्ति से होती है उस वृत्ति से सम्पूर्ण दृश्योच्छेद होता है। इस विषय को ग्रन्थकार ने व्यक्त किया है—

ज्ञानी देह पतन के काल। उपजे ज्ञान सो अवधि विशाल ॥

इस पंक्ति में ग्रन्थकार ने गागर में सागर भरने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस विषय का हम विशदरूपेण प्रतिपादन करते हैं। तत्वज्ञान से सम्पूर्ण दृश्योच्छेद होता है ऐसा अद्वैत सिद्धान्त है वादी का कहना हैं वह दृश्योच्छेद क्या वस्तु हैं? यदि कहा जाय सम्पूर्ण दृश्य का ध्वंस ही दृश्योच्छेद है तो वह ध्वंस सत्य है या मिथ्या? यदि सत्य है तो "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इति अद्वैत-प्रतिपादक श्रुति से विरोध होगा। यदि कहें दृश्योच्छेद मिथ्या है तो वह चरममनोवृत्ति से उत्तर जायमान होने से उसके निवर्तक का अभाव है। अतः उसकी निवृत्ति न होने से "विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः" इत्यादि श्रुति विरोध होगा। क्योंकि उक्त श्रुति विद्वत्ता को उद्देशताऽवच्छेदक बनाकर नामरूप रहितत्व का विधान करती है। यदि कहा जाये ध्वंस सत्य है 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" यह श्रुति भावाद्वैतपरक है। तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि उक्त श्रुति असंकुचित द्वैतमात्र का निषेध करती है न कि भावाद्वैत का, इस पूर्वपक्ष के निरासार्थ सकलविद्यापारावारीण श्री गौड ब्रह्मानन्द स्वामी ने दृश्योच्छेद का ऐसा परिष्कार किया है—"दृश्याधिकरणक्षणे दृश्याधिकरणक्षणपूर्वत्वानधिकरणत्वं दृश्योच्छेदः" अन्तिम वृत्तिरूप दृश्याधिकरणक्षण में जो दृश्याधिकरणक्षणपूर्वत्व की

अनधिकरणता है यह दृश्योच्छेद है। अर्थात् अन्तिम वृत्तिरूप दृश्याधिकरण से उत्तर कोई दृश्याधिकरणक्षण है नहीं अतः उसके न होने से ही सुतरां पूर्वत्व की अनधिकरणता है।

पूर्वोक्त अखण्डाकार वृत्तिरूप प्रमा शुद्धमन सहकृत शब्द प्रमाणजन्य है ऐसा विवरण प्रस्थानानुयायी लोगों का मत है। इसी बात को प्रकृतग्रन्थकार स्पष्ट करते हैं।

महावाक्य ते उपज्यो ज्ञान। दृढ़ अपरोक्ष हने अज्ञान॥

इस पूर्वोक्त सिद्धान्त में नैयायिक तथा भामतीकार का इस प्रकार आक्षेप है—इन्द्रिय जन्य ज्ञान ही अपरोक्ष होता है शब्द से "स्वर्गोऽस्ति' इस वाक्य की तरह अपरोक्षज्ञान ही अनुभव सिद्ध है यदि महावाक्य जन्य ज्ञान को परोक्ष स्वीकार करें तो उससे अपरोक्ष भ्रान्ति की निवृत्ति नहीं होगी। इस पूर्वोक्त सिद्धान्त को ही स्वीकार कर पूर्वपक्षी की शंका है।

अपरोक्ष ज्ञान इन्द्रिय कर होई। वाक्य न ताहि उपाये कोई॥

यह पूर्वपक्ष भामती की निम्नलिखित पंक्ति का आश्रयण कर लिखा गया है—

"न चैष साक्षात्कारो मीमांसा सहितस्यापि शब्द प्रमाणस्य फलमपितु प्रत्यक्षस्य" इस शंका का समाधान विज्ञग्रन्थकार देते है—

यह है नियम तुम्हारो जोई। दशम माँहि व्यभिचारी सोई॥

अर्थात् "दशमस्त्वमसि" इस शब्द से अपरोक्ष ज्ञान लोक सिद्ध है, यद्यपि भामती प्रस्थानानुयायी दशम का ज्ञान भी इन्द्रियजन्य ही स्वीकार करते हैं। इस बात को कल्पतरुकार ने स्पष्ट किया है "दशमस्त्वमसि इत्यत्रापि तत् सन्नि-वादक्षादेव साक्षात्कारः अन्धादेस्तु परोक्षधीरेव" इसी बात को प्रकृत ग्रन्थकार ने भी पूर्वपक्ष के रूप में प्रकट किया है।

दशम अपरोक्ष वाक्यते नाहीं। यह समझो अपने मन माहीं॥
आप्त बैन सुने यह जबहीं। इन्द्रिय कर हेरे तनु तब हीं॥

पूर्वोक्त शंका का समाधान इस प्रकार दिया है—

यह परिपाटी तुमरी जोई। दशम पुरुष परिहारी सोई॥
इन्द्रिय कर दसमों मैं पायो। ऐसे नहीं मुख ताहि बतायो॥
आप्त जब मुहि बैन सुनायो। ताही कर दसमों मुहि पायो॥

इस प्रकार ग्रन्थकार ने पूर्णरूपेण विवरण प्रस्थान का अनुसरण किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रकृत ग्रन्थकार के सम्प्रदायाचार्य श्री गुरुनानकदेव

जी है। उनके सिद्धान्त का विवरण प्रस्थान से साम्य है। अब हम यत्किञ्चित् साम्य प्रदर्शन करते हैं। विवरण प्रस्थान में शब्द प्रमाण से अपरोक्ष स्वीकार किया गया है। श्री गुरु जी ने भी—

सब दे ही ते सहज उपजै। हरिमाया सच सोई।

इस पंक्ति में ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान शब्द से स्वीकार किया है। विवरण-प्रस्थान (अनुयायी ग्रन्थों) में एक जीववाद, आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद इन तीन पक्षों-का उल्लेख है। पूज्य गुरुजी ने भी—

पुहुप मधि जिउ बास बसित है मुकुर माहि जैसे छाई॥
जिउ प्रतिबिम्ब बिम्ब को मिलो है॥ जिउ एक अरू सकल सरीरा॥

इन पंक्तियों के द्वारा पूर्वोक्त तीनों वादों को स्वीकार किया है। अद्वैत-वेदान्त में जीवब्रह्म का अभेद माना गया है गुरु जी ने भी—

तत निरञ्जन जोति सबाईं सोऽहं भेद न कोई॥

इसी सिद्धान्त को सर्वोत्तम माना है। इस सिद्धान्त साम्य से ही प्रकृत ग्रन्थकार ने अधिक स्थानों पर गुरुवाणी का उद्धरण देकर स्वसिद्धान्तों को पुष्ट किया है।

इस प्रकार पूज्यग्रन्थकार ने चतुर्थ निवास में जीवन्मुक्ति तथा पंचम निवास में विदेह मोक्ष का सविस्तार निरूपणकर चरम वर्णध्वंसरूप समाप्ति के अनुकूल प्रयत्न किया है।

प्रकृत ग्रन्थकार पूज्य श्री स्वामी गुलाब सिंह जी द्वारा प्रणीत चार ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध हैं।

१—भावरसामृत

२—प्रबोध चन्द्रोदय नाटक

३—अध्यात्मरामायण

४—मोक्षपन्थप्रकाश

इन सभी ग्रन्थों में प्रस्तुत ग्रन्थ 'मोक्ष पन्थ प्रकाश' अतीव पाण्डित्यपूर्ण है, इसका महत्व इसके अध्ययन से ही ज्ञात होगा। यह ग्रन्थ चित्सुखी, सिद्धान्तलेश संग्रह, ब्रह्मविद्याभरण, स्वराज्य सिद्धि, गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र भाष्य आदि अद्वैत ग्रन्थों का सार ले मुमुक्षुजनों के कल्याणार्थ रचा गया है। इस ग्रन्थ से अध्येताओं को यथेष्ठ लाभ पहुँचे यही भूत भावन भगवान् भव से प्रार्थना है।

काशीनाथं समाराध्य मया काशीनिवासिना।
भूमिका शेरसिंहेन निर्मलेन विनिर्मिता॥

●

ग्रन्थकार-परिचय

नवाम्भोजदलश्याम-परमाभिराम-कामकोटिकमनीयराम-दर्शनसमुपजातविशुद्ध विज्ञान-निरस्तसमस्तरागरोषाभिमान-भक्तिरससमुद्रायमाण - पञ्चनदप्रदेशपश्चिम-जायमान-रामकथा प्रचार सदाचारविचारसारसंरक्षितसनातनधर्माचार्य त्याग विरागभगवदनुरागालंकृतान्त:करण-सकलशास्त्र पारावारीण-कविकुल कुमुदकलाधर निर्मलकृतकमलदिवाकर श्रीमत्स्वामी गुलाबसिंह जी महाराज का जन्म जिला लाहौर अन्तर्गत सेखमग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम 'राया' तथा माता का नाम 'गौरी' था। आपका जन्म किस सम्वत् में हुआ यह विषय अभी तक अन्धकार में ही है। परन्तु "गुरुतीर्थसङ्ग्रह" ग्रन्थ में श्री नरोत्तम जीने विक्रम सम्वत् १८२४ में बरनाला शहर में हुई निर्मल सन्तों की सभा में आपका सम्मिलित होना तथा अद्वैत सिद्धि ग्रन्थ की सुगमसार चन्द्रिका टीका के प्रणेता श्री स्वामी पण्डित सदासिंह जी का सम्मिलित होना लिखा है। इस वृत्तान्त के अनुसार आपका काशी अध्ययन उस से पूर्व ही समाप्त हो गया था। तथा आपको बुलाया भी पञ्जाब से ही गया था। श्रीस्वामी सदा सिंह जी को तो काशी से ही निमन्त्रण पत्र भेज कर बुलाया गया था ऐसा उल्लेख है। इससे आपका जन्म सम्वत् १७८५ के लपभग ही प्रतीत होता है। आपके गुरु श्री का नाम श्री स्वामी मानसिंह जी था। आपने स्वरचित सभी ग्रन्थों में उनका मंगलाचरण किया है। इनके गुरु जी महाराज के विषय में भी कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। किन्तु "कुबन्ध को मिटायो सुराम को दिखार कै" इस पद्य के अनुसार इनके गुरुजी में राम भक्ति रसास्वादन पटुता की अभिव्यक्ति होती है। ग्रन्थकर्त्ता का विद्या अध्ययन के पश्चात् बहुकाल तक निवास श्रीकृष्ण भगवच्चरणाङ्कित तीर्थोत्तम कुरुक्षेत्र ही रहा। श्री अध्यात्म रामायण की संरचना इसी पुण्यस्थल पर हुई थी। आप परमाद्वैतवादी होते हुये भी परमसगुणोपासक थे। अत एव आपकी अनुपमेय रचनाओं में श्री रघुनाथ जी के प्रति विजातीय अनुराग दृष्टिगोचर होता है। आप स्वयं को अत्यन्त दीन-हीन-मलीन समझ भगवान् को प्रेमोपालम्भ देते हैं।

वानरसैल सुतारयो, रघुवर सागर धार।
त्यों हमको नहिं तारहो, मनमें कौन विचार ॥ १ ॥

सैल कपीन्दर पार परे यह भांति सुन्यो हरि जी बल तोरा ।
है मन चञ्चल वानर सो अरु सैल समान सुचोत कठोरा ॥
नाहि करी तपसा तुमरे बल औसर बैन सुनो प्रभु मोरा ।
नाथ भले बलवान् हुते ममदास की वेर भयो बल थोरा ॥२॥

गह तंदुल वामन के करते तब आपद ताहि की दूर निवारी ।
गज कंज कर दियो तब ग्राह कटे फल खाइके भीलसुता सुउधारी ॥
गलफूलन गही कुबजा तब कुबर को कटिनाथ सवारी ।
बिन मोल न काज करो हरि जी जग लोगन की गति तै उरधारी ॥३॥

जात विहीन सुभील तरी अरु शील विहीन तरी गनिका ।
रूप विहीन तरी कुबजा हरणा छलरूपत्तरे वनका ॥
पापि अजामिल पार परे रघुनायक बैन सुनो जनका ।
वै गुण नमे तजे हम नाथ कि आप तियाग करयो प्रणका ॥
गुण थोरहि ते प्रभुरीझ रहे वह भूल गई जब बान तुमारी ।
फलफूलते वन भीलसूता मथुरापुर में हरि कुबर तारी ॥
गनिका गजराज उधार करे तब दयालु हुते सुमुकुंद मुरारी ।
अबकै करुणा हरि पीठदई अरू कै फरयो कारकागदकारी ॥

आप परमदार्शनिक होते हुए भी उच्चकोटि के साहित्यिक थे। आप स्वोपास्यदेव भगवान् श्री रघुनाथ जी का अतीव मनोहारिणी अलंकारिणी उपमाओं से चित्रण करते हैं—

कुंचित है अलका श्रुत ऊपर कुण्डल है शुभकाननमाहीं ।
कुण्डल ते कचमेचक में लसके तडता घनमेचक माहीं ॥
बोल समैं छबि पुञ्ज तरंग कपोलन सागर ते निकसाहीं ।
नैन हरे मदकंजन को सम आनन के शशि कोटिक नाहीं ॥१॥

भृकुटी कुटिला शुभ भाल विशाल सुकुंकुम की युगरेख सुहाई ।
जुग कांचन के सर ले रति नाहि मनो मणिकी सुकमान चढ़ाई ॥
कच घूंघरवंत सुमंद समीर फुरे तिनकी छवियो मन आई ।
सुमनो मुखकंज अमोदगहे भ्रमरावलका भ्रम है बिगसाई ॥२॥

पदपावन कोमल पंकज से अरूणानख अंगुल के सिख माहीं ।
शुभ अंकुश औ पुनि वज्र धुजा किल कज्जल से पद पंकज माहीं ॥

शरणागत के भव मोचक हैं इक वंदन ते भव फँदन जाहीं।
धर मानव देह सुभारत खण्ड भजे हरि पाद तरे जग माहीं ॥३॥

आप विद्वत् शिरोमणि होते हुए भी परम निष्काम थे। यह उन्हीं के भावों से अभिव्यक्त होता है। यथा—

बर कौन सगों तुमते हरि जी थिर नहिं रहे जग भीतर कोई।
नहीं राज रहे गज बाज रहे तनलो मिट जाय पिखों जग जोई॥
विनते पदकंज लहे न कहू सुख जो नर दौर फिरे तिहुँ लोई।
पद मंजुल जो सनकादि भजे तिनकी प्रभु सेव दाजे मम सोई ॥१॥

कब आवहिंगे मम ऊपर ते दिन देह अटे मम गंग किनारे।
सबहिं अगते मन शांतलहे मुख नाम सुसीस गंगोदक धारे॥
मुनि बैठ सिला तलपै हरि को पदवो दृगमेलके नीत चितारे।
हरि ध्यान समें तन मोहिं गिरे जगमात समान सुगङ्ग संभारे ॥२॥

आप महान् विद्वान होते हुए भी परम विनीत थे—यथा

विद्याधन को पाय कर निभृत पुरुष उदार।
कीरति या जग के धनी, बहुरो सूख अपार ॥१॥

फल भूरि भये तरु भूमि लटे अरथी नहिं लेवत में दुख पावे।
नयनूतन नीर भरे बदरा लट भूमि विषे जलधार बहावे।
नर उत्तम संपत्ति भार भरे तज ऊरध सा उपकार कमावे।
गुण नीर फलंधन दान करे सुख संपत्ति औ जस में जब पावे ॥२॥

हरि के पद पंकज प्रेम करे न करे हरि वेमुख लोगन संगा।
नहिं आपन मान सु भूल चहे पुनि औरन को न करे मन भंगा।
सम और तजे जग रंग महा सुरहे हरि पूरन केर परंगा।
इक ठौर आहार करे न सदा शुभ संत धरे व्रत नीर विहंगा ॥३॥

आपके हृदय के शुभ उद्गारों को विशेष अभिव्यक्त करने वाला 'भावरसामृत" ग्रन्थ है यहां तो केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

इस प्रकार यह ग्रन्थरत्न प्रकृतितोऽभिन्न प्रत्ययाद् भिन्न भगवान् हरिहर की अनुकम्पा से प्रकशित होकर वेदान्त प्रेमी सज्जनों के दृष्टि गोचर हो रहा है। इस ग्रन्थ की शुद्धि पत्रादि-निर्माण में तथा भूमिका लेखनादि कार्य में जिन महान्

मावों ने हमारी पर्याप्त सहायता की है वे उदासीन वयँ सर्वं दर्शनाचार्य महन्त स्वामी हंस मुनि जी महाराज तथा अनन्त श्री विभूषिति विरक्त शिरोमणी पूज्य-चरण अस्मद् गुरुवर्य स्वामी महेर सिंहजी महाराज के प्रधान शिष्य स्वामी जगदीश हरिजी महाराज, तथा वैष्णव कुलकुमुद कलानिधि नैयायिक वयँ अस्मद् सतीर्थ्य स्वामी रामनरेशदासजी महाराज तथा ब्र॰ शारदानन्दजी महाराज यह सर्वं सुचरित्र विचित्र पवित्र मित्र धन्यवादके पात्र हैं मव मवन कर्तृत्वादि विशिष्ट भूत मावन मगवान् मव से हृदयसे प्रार्थना करता हूँ ये सम्पूर्ण लोक लोकोत्तर प्रतिमा को प्राप्त करें ।

निवेदक—काशी निवासी

स्वामी शेरसिंह

१ जनवरी '७७



अथ

श्री मोक्ष पन्थ प्रकाश

स्वयंप्रभा टीकासहित

प्रथम निवास

प्रारम्भ किये ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति-अर्थ

ग्रन्थकर्ता प्रथम श्री गणेशजी का नमस्कारात्मक मंगल करते हैं।

सवैया

या जग में जिनके पद पङ्कज, सेवत नीत सुरेश्वर भारी।
और सुरांगन सेवत हैं, अरु जाहि भजे भव में सुखचारी ॥

१ॐ सद्गुरु प्रसाद ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरवे नमः ॥

दोहा

तन मन वच विनती करौं, पाद पदम धर माथ।
मम कृति विघ्न विनाशिये, शङ्करसुत गणनाथ ॥ १ ॥
वरद चढ़त पुन वरद जो, प्रणवौं शङ्कर नाम।
कामारि ह्वै करत जो, निज जन पूरन काम ॥ २ ॥

द्रुमल

पद पङ्कज द्वन्द्व पराग द्विरेफन चिन्तन चिन्तहि चूर करे।
खलु काट कलङ्क कटू मधुरो रस रीठ विषै जिहि नीठ भरे ॥
विथुरो ब्रह्मण्डन वीच वपू बल वंचन वेर पछान परे।
अस ईश गुरूवर नानक जू मन मोर भवाम्बुधि भीति हरे ॥३॥

तात भजे जगमात भजे पुनि, जाहि मनाय जिते त्रिपुरारी।
सो गणनायक होय प्रसन्न, गहे पद बन्दन भेट हमारी ॥ १ ॥

कवित्त

शुद्ध के प्रबोधहीन बुद्ध लौ मतो मैं जीव,
बन्धन कै बन्धे जग जालन की रासी मैं।
रञ्च नहीं रेख भेख रंग से विहीनाकार,
बोधन कै चारो चक कीनो जन कासी मैं।
वैदिक विधो के हेत, राखन कै महाराज,
कीनो स्त्रुति चारी पथ कूरन कै पासी मैं।
जाहि की कृपा कै कलु कालुख भगाने भूर,
श्री गुरू गोविन्द सिंह वन्दौ अविनासी मैं ॥४॥

त्रोटक

गुरुगौरव गूढ अनूप महां, हरि रूठ जु तारक ग्रन्थ कहा।
भवरूप गुरू पद बन्दन कै. तनुभान परं निज नन्दन कै ॥५॥

प्रारम्भ किये ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति और श्रेष्ठ पुरुषों में प्रवृत्ति हेतु; पुराणों में शिव पर्यन्तों को वाञ्छित दान-दाता श्रवण कर गणेश मङ्गल करे हैं—"या" इति इन्द्र से उत्कृष्ट ब्रह्मादिकों कर सेव्य चरणों के सेवक इन्द्र को भारीपना कहने में चमत्कार के अभाव ते 'भारी' पद-पङ्कज का विशेषण है, भारीपना सर्व को वाञ्छित दान का दाता-पना जानना, ताते यह अर्थ सिद्ध भया जो या जग में नाम प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध जगत् में जिनके भारी पद-पङ्कज को नाम सर्वको वाञ्छित दान-दाते चरण कमलों को सुरेश्वर नीत सेवे है, सुराङ्गन—देव-वधू, 'पुन जाहि भजे भव में मुख चारी'—जिनको संसार में ब्रह्मा सेवन करे हैं; और 'तात भजे नाम भ्राता षडानन सेवन करे हैं, पुनः जग मात भजे'—जगमें निज माता पार्वती सेवन करे है। पुनः 'जाहि मनाय जिते त्रिपुरारी'—जिनको मनाय कर महादेव जय को प्राप्त भये हैं। 'सो गणनायक होय प्रसन्न'—वह गणेशजी आनन्द होकर, 'गहे पद-वन्दन भेट हमारी' मेरी करी नमस्कार रूप भेटा को ग्रहण करें॥ १॥

अब बुद्धि प्रतिभा के लाभार्थ सरस्वती भगवती का नमस्कारात्मक मंगल करते हैं।

दोहा

उर तम को हरणी सदा, करणी बुद्धि अपार।
सुखदाता वागीश्वरी, वन्दौं पाद उदार॥ २॥

अब मूल सिंचन न्याय से सर्व प्रपञ्च के प्रति ब्रह्म की अभिन्न निमित्तोपादान कारणता सूचन करते हुए साक्षात् ब्रह्म का मंगल करते हैं।

सवैया

जिहँते उपजे ब्रह्माण्ड अखण्ड, सुतेज प्रचण्ड बली खल हारे।
जिह नाहिं पिखे बहु भांति भने, जड़ चेतन के नर भेद निहारे॥

'गणेश-मङ्गल' से ग्रन्थ में विघ्न नहीं होवेगा यह निश्चय कर ग्रन्थ रचना के हेतु रूप जो निपुणता आदिकों की सिद्धि हेतु वाणी का मङ्गल करे हैं—"उर" इति उरतम को हरणी—पद-पदार्थ के अज्ञानरूप हृदय गत तम नाशक स्वभाव वाली पुनः सदा करणी बुद्धि अपार—सर्वदा काल भक्तों की बुद्धि को कुण्ठितपने रूप पार से रहित करने वाली, पुनः सुखदाता—यश से लेकर मोक्षपर्यन्त सुख देने वाली, वागीश्वरी-वाणी की ईश्वरी के, 'वन्दौं पाद उदार'—"उदार पाद वन्दौं" अन्वय कर श्रेष्ठ चरणों की वन्दना करता हूँ॥ २॥

पुनः मूल सिञ्चन न्याय से ईश्वर का मङ्गल करे हैं—"जिहते" इति जिहते उपजे ब्रह्माण्ड कहिये जिस अभिन्न निमित्तोपादानभूत राम तें, लिङ्ग शरीर से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त आविर्भूत भये हैं, पुनः अखण्ड शत्रुओं कर न दूर होने वाला, पुनः सुतेज प्रचण्ड कहिये—शत्रुओं को तपाने वाला तेज जिन्हों का, ऐसे उपद्रव रूप बली, ख़ल हारे नाम बलवान् मूर्ख रावणादिक जिससे पराजित हुये हैं, वली खल हारे पाठ उपद्रवों के नाश पूर्वक प्रजा की रक्षा रूप स्थिति की हेतुतापरक है। और प्रलय की हेतुता तो ईश्वर को, "जिहते उपज्या नानका लीन ताहि मैं मान" इस गुरु वाक्य ते अर्थ से सिद्ध होवे है। सो यह ईश्वर का तटस्थ लक्षण है यां ते यह फलित हुआ जिस अभिन्न निमित्तोपादान रूप राम ते उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होवे है ता सीतापत्ति को मैं वन्दन करता हूँ। पुनः जिह नाहिं पिखे वहुभाँति भने कहिये जिस राम को,

सनकादिक नारद कोविद के, गण जाहि पिखे सब भेद निवारे।
उर ता जनकातमजा पति के, पद मञ्जुल को अभिवन्द हमारे ॥३॥

अब स्वइष्टदेव को सर्व अर्थ की साधकता शास्त्रों से श्रवण कर श्री गुरु-नानकदेव जी तथा श्री गुरुगोविन्दसिंह जी का कटाह कुण्डल न्याय से मंगल करे हैं।

सवैया

जा पद पङ्कज नीर हरे मल, तारत दीन बहे भव भारी।
बावन के पद पङ्कज ते, मनुगंग गिरी जनतारण हारी॥

अद्वितीय बोध को उपयोगी उपादानता का आश्रय रूप कर ना जानते हुये, रज्जु के ना जानने से ता में सर्प दण्डादिक कल्पनावत् जगद् उपादान केवल प्रधान है तथा परमाणु हैं ऐसे कथन करे हैं। पुनः तिन जगत् उपादानभूत जड़ परमाणु आदिकों का और ईश्वर जीव रूप चेतन का अत्यन्त भेद देखे हैं ऐसे राम को। पुनः जिस राम के सम्यक् जानने से नारदादिको ने उर का पूर्व साथ सम्बन्ध कर, सम्पूर्ण जीव जगतादिकों का हृदय से भेद दूर किया ता जनकातमजा पति को नाम तिस सीता के पति राम को हमारी अनेक बार वन्दना है ॥ ३ ॥

जा पद पङ्कज—जिनके चरण कमलों का नीर हरे मल जल दूर करे है मल चित्त की, और भारी भव बहे दीन तारत अन्वय कर, भारी रागादि मछोयुक्त भव संसार में बहे। जन्म-मृत्यु के प्रवाह में पड़े दीन जिज्ञासुओं को तारत अज्ञान तत्कार्य से पार करते हैं, जल को मल हानि कथन या तें मल हरे है, ता ते तारे है, इस प्रकार सहेतुक है, रागादिक मछोयुक्त संसार समुद्र का भय और विवेक आदि साधन अनन्तर मोक्ष की चाह रूप दीनता के जिज्ञासुओं में सम्भव ते "दीन" कथन है, बहि-रङ्ग साधन की सम्भावना करे 'वामन के' इति। गिरि नाम प्राप्त भई, ईहां गंगा की सम्भावना सैं यह भी सूचन किया जान लेना जैसे गंगाजो त्रिधारा रूप तीनों लोकों के तारण हेतु है ऐसे यह जल भी तीन प्रकार के अधिकारियों को कर्म, उपासना, ज्ञान द्वारा स्वर्ग, ब्रह्मलोक, ब्रह्मभाव तीनों की प्राप्ति का हेतु है, और कहा भी है गुरुजी ने—"सब सिक्खन को सुख दियो, जँह तँह भये सहाय" सुख पूर्वोक्त ही लेना ऐसे गुरुजो की मूर्ति का ध्यान करने हित अधिकालङ्कार द्वारा वाणी के नेत्र की

वैनन नैनन की उपमा रवि, कञ्जन ते अति सार निहारी।
ता गुरुनानक के पद पङ्कज, शीश निवाय के बन्द हमारी ॥ ४ ॥

माधवक छन्द

गोविन्द सुसिंह कृपानिधि नाथ, हरै हृद जाड्य सदा सुखदाई।
वही भवसागर पार परे, पद पङ्कज की जन जे शरणाई ॥
ररे जिन नाम सरे सब काम, रहे भव मण्डल चिन्त न हाई।
इसो पद पङ्कज बन्दत हौं, निज दासन दास के होहु सहाई ॥५॥

प्रशंसा करे "वैनन" इति उपमान से उपमेय में अधिकता भये अधिकालङ्कार होवे है, सोई अतिसारता कहने से कथन किया अतिसारता यह जो भीतर तम नाशकता और कण्टकादिहीनता, पूर्व कहे प्रभाव वाले चरणों को नमस्कार हेतु कहे 'ता' इति तिन गुरुजी के चरणों को मेरी नमस्कार है। जिनके चरणों के जल का ऐसा प्रताप है ॥ ४ ॥

सु बहुत कर सारी पोथी में छन्दों वास्ते जानने, कृपानिधि कृपा के समुद्र औ नाथ कहिये भक्तों को आशिर्वाद और शत्रुओं को ताप देने वाले, और हरै हृद जाड्य नाम हृदय की अपने और पराये हित का जानना रूप जड़ता दूर करने वाले, सदा सुखदायी कहिये नित्य सुख के देने वाले हैं, इन्हीं बातों वास्ते उनके, "परम पुरुष काहूना बतावा" इत्यादिक वाक्यन ते उनका अवतार सिद्ध होवे है याहीं ते ऐसे गुरुजी के आश्रितभयों का ही उद्धार होवेगा। सोई कहे "वही" इति अर्थात् जिसते औरों ने तत्त्व का उपदेश छोड़ कर अपने चिह्न ही बहुत कर दिये हैं। यांते चिह्न में हठ छोड़ कर परम पुरुष का उपदेश कर्ता के ही शरणागतन का उद्धार होवेगा। गुरुओं की प्रसन्नता हेतु कीर्तन भक्ति कहे "ररे" इति। सरे प्राप्त होवै, सब काम कहिये चार पदार्थ याहीं ते कहे "रहे" इति रहे भवमण्डल चिन्तन काई नाम संसार मण्डल में कोई चिन्ता नहीं रहे अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति हेतु वा दुखदाता प्राप्त भई वस्तु की निवृत्ति हेतु चिन्ता होवे है। सो मोक्ष पर्यन्त प्राप्ति होने से यह दो ही नहीं बने, भवसागर तरने के हेतु रूप चरणों को नमस्कार करे "इसो" इति इसो कहिये संसार से पार कर्ता ॥ ५ ॥

अब कृतघ्नता दोष की निवृत्यर्थ स्वहितोपदेष्टा श्री गुरु जी का मंगल करे हैं।

नराज छन्द

सुनाथ मानसिंह के पदार विन्द ते गिरे,
अनूपवार विन्दु को मुखारविन्द में परे।
सुवागहीन रूप में वचाल मूक को करे,
निहार रूप आपनो गहे कुबन्ध को हरे ॥ ६ ॥
तथा प्रभाव हेरियो अनन्त जीव जाल में,
पदार विन्द पाइयो सुभाग पुञ्ज भाल में।

उत्तम ऐश्वर्य वाले मानसिंह के पदारविन्दते—चरणकमलों ते गिरे अनूपवार को विन्दु अन्वय कर, गिरे जो उपमा रहित जल के कणिका सो मेरे मुख मो पड़े, तिनका फल कथन हेतु अपनी मूकता अरु अज्ञानता कहे "सुवागहीन" इति सुवागहीन नाम श्रेष्ठ "तत्त्वमसि" आदिक वाणी ते रहित, देहली दीपक न्याय से हीन का सम्बन्ध आगे भी कर, रूप-हीन कहिये विस्मृति कर कङ्कणवत् नित्य प्राप्त की अप्राप्ति मान कर परमानन्द रूपता रहित, फल कहे—"वाचाल" इति वाचाल वाणी कर पूर्ण मूक को गूँगे को अर्थात् पद वाक्य ज्ञान हीनता रूप गूँगपने को दूर कर शुद्ध पद वाक्य के ज्ञान कर पूर्ण किया। अर्थ में उपकार कहे "निहार" इति, वाक्यार्थ के विचार द्वारा साक्षात् करके निजरूप को, गहे कुबन्ध को वाक्यार्थ ज्ञान ते पूर्व जो अपने विषय मान रखे थे "मैं देह हूँ" यह मेरी जाति है, इस कर्म में मेरा अधिकार है, यह बन्धन करने के हेतुरूप कुवन्ध कहिये खोटे बन्धन, सो हरे नाम अदेह अजाति कर्मरहित जान कर दूर करे ॥ ६ ॥

प्रताप की प्रसिद्धि हेतु कहे "तथा" इति तथा प्रभाव हेरियो नाम वागरूप हीनों को ताकी प्राप्ति करने में अपने समान ही प्रताप देखा है, प्रभाव का विशेषण है "अनन्त" अनन्त कहिये नहीं है वागरूप हीनों को वागरूप की प्राप्ति करने में समाप्ति जिसकी, कहाँ देखा है? यह पूछे तो कहे "जीव" इति जीव जाल में जिज्ञासुओं के समूहों में यद्वा जीव जाल का ही विशेषण अनन्त है अर्थ यह जो जिन समूहों की गिनती नहीं करी जाती, इस रीति से जल प्रभाव को कह कर जिन चरणों से

कुबन्ध को मिटाइयो सु राम को दिखार कै,
करूँ सुपाद कञ्ज को नमामि शीश धारकै ।।७।।

अब ग्रन्थ रचना की प्रतिज्ञा सूचन करते हुए वस्तु निर्देश रूप मंगल सूचन पूर्वक या ग्रन्थ की प्रवृत्ति में अनुबन्ध चतुष्टय रूप को अन्वय व्यतिरेक रूप युक्ति द्वारा हेतुता वोधन करते हैं ।

सवैया

ब्रह्म सु धाम चहे नर जे गति, ताहि निमित्त कहों सुखदाई ।
मारग पाय सु धाम लहे नर, ब्रह्म सनातन जो अधिकाई ।।

वह जल प्राप्त भया तिन चरणों की प्राप्ति से अपनी धन्यभाग्यता कहे "पदारविन्द" इति ऐसे चरणों की प्राप्ति का भी पूर्ववत् फल कहे, "कुबन्ध" इति। "सुराम को दिखार कै कुबन्ध को मिटाइयो" यह अन्वय कर अर्थ यह जो "सु" का सो कर, सो कहिये तत् पद के लक्ष्य अर्थ सर्व योगियों के रमण स्थान राम का मैं ही सो हूँ इस रीति से साक्षात्-कार करवा कर देहाभिमानादिकवन्ध को दूर किया ऐसे चरणों को नमस्कार करे—"करूँ" इति ।

विषय प्रयोजन शून्य ग्रन्थ में श्रेष्ठों की प्रवृत्ति नहीं होवेगी, यह समझ कर ब्रह्म की चाह वाले अधिकारी प्रति ता ब्रह्म के ज्ञान मार्ग का उपदेश करता हुआ अर्थ ते जीवाभिन्न परमानन्द रूप ते अज्ञात ब्रह्म को शास्त्र का विषयपना औ तिस रूप ते ज्ञात को दुख निवृत्ति सहित परमानन्द प्राप्ति रूप प्रयोजनता सूचन करे ब्रह्म इति ।। ७ ।।

मार्ग का पूर्व के साथ अन्वय कर ब्रह्मसुधाम चहे नर जे—जो पुरुष ब्रह्म रूप श्रेष्ठ धाम की इच्छा करते हैं तिन अधिकारियों को गति ताहि निमित्त कहिये प्राप्ति, तिस ब्रह्म की वास्ते कहौं सुखदाई मार्ग कहता हूँ। कैवल्य मुक्ति रूप सुख के देने वाला जीव ईश का अभेद ज्ञानरूप रास्ता, मार्ग की प्रशंसा करे "पाय" इति पाय सुधाम लहे नर जिस मार्ग को प्राप्त होकर श्रेष्ठ धाम को प्राप्त होवे अधिकारी पुरुष, सो यह मार्ग को सफलता कथन है। कौन धाम यह इच्छा भये कहे "ब्रह्म" इति-ब्रह्म सनातन जो अधिकाई कहिये व्यापक और नित्य पुनः सर्व की अपेक्षा कर उत्कृष्ट जो धाम है अर्थात् जिस मार्ग को प्राप्त होकर अधि-कारी व्यापक और नित्य पुनः सर्वोत्कृष्ट स्वरूप को प्राप्त हो ही जावे

ज्ञानहि एक कहे श्रुतिसार, सु या विन और न आस मिटाई।
दूख मिटे सुखसार लहे नर, या भव चिन्त रहे नहिं काई ॥८॥

अब यहाँ ग्रन्थकार का अभिप्राय अनुवन्ध चतुष्टय निरूपण में ऐसा है। अव हम प्रथम अनुबन्ध का लक्षण कहते हैं। "स्वविषयक ज्ञान द्वारा शास्त्रे प्रवर्तकः अनुवन्धः" सो भेद से चार प्रकार के हैं, यथा अधिकारी, सम्वन्ध, विषय तथा प्रयोजन। यहाँ ब्रह्म धाम को चाहने वाला अधिकारी अभेद निश्चयरूप मार्ग इस ग्रन्थ का विषय। विषय और ग्रन्थ का साध्य साधक भाव या प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है, तथा चतुर्थ अनुबन्ध चतुर्थ पाद में ही स्पष्ट है।

अब मूल ग्रन्थकार जिज्ञासु के कृतकृतार्थ तथा निःसन्देह परम प्रयोजन के स्पष्टार्थ परम्पराहेतु को सविस्तार निरूपण करते हैं।

तथा च श्रुति

ज्ञानादेव कैवल्यं नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

ऐसा मार्ग कहता हूँ। समुच्चय निवृत्ति हेतु उक्तमार्ग को सारता कहे "ज्ञानहिं" इति ज्ञानहिं एक कहे श्रुति सार कहिये ज्ञान ही एक कहती है श्रुति कैवल्य का साधक, याही ते सुयाविन और न आस मिटाई नाम निरहङ्कार साहङ्कार ज्ञान कर्म के अधिकारी भेद से, और अनित्य संसार नित्य मुक्तिरूप फल के भेद से ज्ञान विना कर्मादिकों की इच्छा दूर करी है वेद ने, श्रुतिसिद्धि विषय के ज्ञान को प्रयोजन साधकता कहे "दूख" इति दुःख मिटे सुख सार लहे नाम दुःखों के परम मूल अज्ञान सहित तीन प्रकार के दुःख निवृत्त होवे हैं ज्ञान से, पुनः परमानन्द रूप सुख को प्राप्त होवे हैं पुरुष। याही ते कहे "या" इति। या भव चिन्त रहे नहिं काई नाम चिन्ता के दोनों वीजों के अभाव ते कोई चिन्ता नहीं रहे है, इस प्रकार अज्ञात ब्रह्म को शास्त्र की विषयता कर, विषय औ ज्ञात को प्रयोजनता कर प्रयोजन कहया औ शास्त्र तत्त्वज्ञान का कार्य-कारण-भाव पुनः तत्त्वज्ञान प्रयोजन का साध्य-साधनभाव और तत्त्वज्ञान तत्त्व का विषय-विषयीभाव औ शास्त्र तत्त्व का प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव आदिक सम्बन्धों का ऊपर से और साधनहीन को ब्रह्म की चाह के असम्भव ते साधन-चतुष्टय वाले अधिकारी का अर्थ ते लाभ जान लेना॥ ८॥

ज्ञानहिं एक कहे श्रुतिसार पाठ से कही सारता प्रतिपादक श्रुति कहे—

दोहा

श्रुति बखान्योपन्थ जो, ताही को उर मान।
वृद्ध हमारे जे भये, नीके गये बखान ॥९॥

सवैया

गुरु अर्जुन कल्याण बखान। भ्रम भय मिटे सु ब्रह्मज्ञान।
उत्तम पन्थ ज्ञान जगसार। दुख मेटन सुख देन उदार ॥१०॥

"तथा च" इति तथा च श्रुति कहिये तैसे पुनः वेद कहे हैं, तथा च आगे भी जहाँ होवे तहाँ यही अर्थ कर लेना, ज्ञानादेव—"ज्ञान ते ही, कैवल्यं" ब्रह्मभाव रूप मोक्ष होवे है, अयनाय—ब्रह्मधाम के ताईं, अन्यः—और, पन्थाः—मार्ग, न विद्यते—नहीं है। इस प्रकार वेद ज्ञान-मात्र को मुक्ति की हेतुता कहे हैं, कर्मोपासना समुच्चित को नहीं, ननु ज्ञान से ही मुक्ति माने कर्मोपासना से मुक्ति कहते श्रुति वाक्यन को व्यर्थता होवेगी, या आशङ्का के परिहार हेतु कहे 'श्रुति' इति--उर मान के आगे "श्रेष्ठ" शेष कर लेना, जेती बात की ऊपर से अवश्य आकांक्षा होवै तेती लगा लेनी इसको "शेष" कहे हैं। ईहाँ यह भाव जान लेना जो अतिशय कठिन वेद का अभिप्राय जानने को तुच्छ बुद्धि जीव असमर्थ होवै है, या ते उत्तमजनों की व्याख्या से मार्गों में श्रेष्ठता निश्चय करनी, उत्तमों ने पुनः "फल कारण फूली" पाठ से लेकर "कर्महि नाश" पर्यन्त से लेकर कर्मों को ज्ञान द्वारा मुक्ति हेतुता स्वीकार करी, या ते कर्मों से मुक्ति प्रतिपादक श्रुतियों का परम्परा मुक्ति में तात्पर्य होने ते, तिनको व्यर्थता नहीं। ९॥

वृद्धों ने कहा लिखा है औ क्या तिनका नाम है यह जिज्ञासा भये कहे "गुरु" इति—कल्याण—कल्याण राग में, अर्थ ते वृद्ध वाक्य पढ़े "भ्रम" इति कल्याण राग में तो "साधु संग भ्रम भय मिटै कथे नानक ब्रह्मज्ञान यह पाठ है", ता का "साधुसंग ब्रह्मज्ञान भ्रमभय मिटै नानक कथे" ऐसा अन्वय कर, साधु—ब्रह्मवेत्ता गुरु के संग शिष्यभाव सम्बन्ध से प्राप्त भये ब्रह्मज्ञान से, भ्रम—संशय विपर्यय, औ भय—जन्मादिकों की भीति, मिटै—निवृत्त होवै है।

नानक कथे—गुरु महाराज कहे हैं। साधु शब्द को ब्रह्मवेत्ता की बोधकता भी "साधु के संग नहीं कछु घाल" साधु के संग नहीं आगमा

ब्रह्मादिक चींटी लौं जेते। दुख में द्वेष करे सब तेते।
सदा जिहासा दुख की करे। दुख नाशक साधन अनुसरे॥११॥

पाई वस्तु के साधन रूप कर्मों की क्लेश, किन्तु "दर्शन भेंटत होत निहाल" कहिये "हरि-हरिजन दोऊ एक है बिब विचार कछु नाहिं" और "तोहीं मोहीं मोहीं तोहीं अन्तर कैसा" तथा "ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर" इन वाक्य से मैं ब्रह्म हूँ ऐसे अपरोक्ष को प्राप्त होता ही होत निहाल नाम "मिट गये गवन पाये विश्राम" इस वाक्य प्रतिपाद्य मुक्ति को जाके संग से प्राप्त होवे है वह ब्रह्मवेत्ता होवे है॥ १०॥

ज्ञान की सारता में श्रुति गुरु वाक्य प्रमाण कह कर सवैये में दिखाये विषय प्रयोजन में आशङ्का समाधान द्वारा प्रयोजन उपपादन की इच्छा करता हुआ जीवमात्र कर अवाच्छित दुखों की ज्ञानरूप उपाय-जन्य निवृत्ति अंश को प्रयोजनता सूचन हेतु दुख में द्वेष दिखावे है—"ब्रह्मादिक" इति। जिहासा-त्याग की इच्छा, दुखनाशक साधन अनुसरे नाम आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के दुखों के नाश करने वाले उपायन को प्राप्त होवे हैं और दुखों का नाश विनाज्ञान होवे नहीं, काहेते एक काल में यतन से नाश किये दुखों की पुनः भी उत्पत्ति देखी है, या ते यह कल्पना होवे है जो कोई इन दुखों का मूल रह जावे है। सो मूल अत्यन्त खोजने से अज्ञान ही सिद्ध होवे है, या ते सर्व दुखों का मूलभूत अज्ञान के नाश हेतु ज्ञानोपाय अवश्य चाहिये है। ननु अज्ञान सिद्धि में कोई प्रमाण नहीं, पुनः तिसका लक्षण भी नहीं बने हैं, जेकर अज्ञान की सिद्धि में "मैं अज्ञानी" यह प्रत्यक्ष कहो, तब प्रत्यक्ष से ज्ञान का प्रागभाव वा प्रध्वंस ही सिद्ध होवे है, याही ते नैयायिक परमाणुओं से सृष्टि माने हैं। "मैं अज्ञानी" इस प्रत्यक्ष को ज्ञान के अभाव की साधकता अध्यास विचार में दूसरे अध्याय में लिखेंगे, पुनः लक्षण भी ज्ञान से जिसका नाश होवे सो कहिये अज्ञान, ऐसे कहें तो "नेदं रजतम्" प्रमाज्ञान से "इदं रजतम्" भ्रम ज्ञान का नाश होवे है, वह भी अज्ञान हुआ चाहिये, या ते अनादि होवे औ ज्ञान से जाका नाश होवे ऐसे कहो तब अपने प्रागभाव का आप वस्तु नाश करे है यह नियम है या ते वृत्ति ज्ञान के प्रागभाव का वृत्ति ज्ञान से नाश होने से वह भी अज्ञान हुआ चाहिये, काहे ते प्रागभावमात्र को नैयायिकों ने अनादि मानने से ज्ञान का प्रागभाव भी अनादि है औ ज्ञान से

सकल दुःख को कारण देह । ताको धर्मा-धर्म विधेह ।
विहित निषिद्ध कर्म तिह मूल । राग द्वेष कर्मन को मूल ॥१२॥
भलो बुरो अध्यासहि जोई । राग द्वेष को कारण सोई ।
सो यहि भलो बुरो अध्यास । निखिल द्वैत ते भयो प्रकाश ॥१३॥

नाश होवे है या ते तहाँ दोष दूर करने हेतु अनादि होवे भाव रूप होवे औ ज्ञान से जाका नाश होवे ऐसे कहो तब ज्ञान के प्रागभाव में तो लक्षण नहीं जावेगा। काहे ते वह अभाव रूप होने ते भाव रूप नहीं, परन्तु अनादि भाव की तो आत्मवत् निवृति नहीं वनेगी, काहेते ? आत्मा अनादि है औ भाव है, ताका नाश नहीं होवे, याते ताके समान अज्ञान का भी नाश नहीं होवेगा, ऐसे ना माने, "आत्मा नाशी होने के योग्य है, अनादि औ भावरूप होने ते, अज्ञानवत्" इस अनुमान ते आत्मा को नाशीपने का प्रसंग होवेगा, इस रीति से अज्ञान साधक लक्षण प्रमाण के अभाव ते अज्ञान के असिद्ध भया ज्ञान को ताकी नाशकता के अभाव ते अनर्थ निवृत्तिरूप अंश के प्रयोजन में असिद्ध होने से प्रयोजन का अभाव औ शास्त्र का प्रयोजन असिद्ध भया, शास्त्रारम्भ निष्फल है, या ते दुःखों के नाशक सुगम उपायन का चिन्तन ही युक्त है, पूर्व कही सम्पूर्ण आशङ्का की निवृत्ति हेतु मूल चिन्तन व्याज से "दुःख अपने नाशक सुगम उपायों से" "ना नाश होने वाले कारण वाले होने को योग्य हैं" पुनः उत्पन्न होने से, शाखा विशेषवत्,, यह अज्ञान का साधक अनुमान प्रमाण सूचन करे "सकल" इति—

सकल दुःख को नाम सिंह व्याघ्रादि निमित्त जन्य आधिभौतिक, औ यक्ष राक्षसग्रहादिकों के प्रवेशजन्य आधि देविक, पुनः क्षुधा-तृषाजन्य आध्यात्मिक इन तीन दुःखों 'का' कारण देह नाम हेतु देह है औ ताको नाम देह को कारण धर्माधर्म विधेह नाम जान, वा धारण कर, देवादिक देहों का कारण धर्म, औ मनुष्य देहों का धर्माधर्म, पुनः अन्तरिक्षों का अधर्म, यह धर्माधर्म को कारण ताका विवेक जान लेना, तिनको कारण कहें "विहित" इति—विहित विधान किये वेद ने औ निषिद्ध निषेध किये वेद ने, यथा कर्म नित्यादिक, गो ब्राह्मण हननादिक, तिनका मूल कहे "राग" इति—राग-भोग तत् साधनों की इच्छा, द्वेष-परका बुरा चिन्तन ॥१२॥

राग-द्वेष का कारण कहे "भलो" इति—भलो अध्यास—इष्ट साधनता भ्रम, औ बुरा अध्यास—अनिष्ट साधनता भ्रम अर्थात् जहाँ

सो सब द्वैत ब्रह्म में ऐसे। सीपि विषेरूपो जग जैसे।
ताको कारण है अज्ञान। सो उर कल्पित सत्य पछान ॥१४॥
सो अज्ञान अहे उर जौलौं। सर्व अनर्थ लहे नर तौलौं।
ताको नाशक आत्म ज्ञान। सो वेदान्त ते नीके मान ॥१५॥

पुरुष को यह मेरे सुख का साधन है ऐसा भ्रम ज्ञान होवे तहाँ इच्छा औ जहाँ यह मेरे दुख का साधन है ऐसा भ्रमज्ञान होवे तहाँ द्वेष, सर्प मेरे दुख का साधन है इत्यादि सच्चे भान होते ज्ञानों को भ्रमत्व कथन वेदान्तमत में ब्रह्म भिन्न सर्व विषयों को बाधितपने के अभिप्राय से है यह मर्म जानना, तिनका कारण कौन यह इच्छा भये कहे "सो यह" इति, निखिल पूर्व के संग, द्वैत ते नाम ब्रह्म के संशय विपर्यय ते द्वैत नाम संशय विपर्यय का है। पुनः संशय विपर्यय के विषय सजातीय आदिक भेदों का है॥ १३॥

द्वैत को मिथ्यात्व बोधन करे "सो" इति। "जैसे" के आगे मिथ्या शेष कर लेना, द्वैत का कारण कहे "ताको" इति, उक्त रीति से सिद्ध भयो अज्ञान को ब्रह्मवत् अत्यन्त सत्यरूप माने तो ज्ञान से ताकी निवृत्ति, श्रुतियों, स्मृतियों में सुनी जावे है सो नहीं बनेगी। इस सुनी बात के ना बनना रूप अर्थापत्ति प्रमाण ते वह कल्पित मानो यह सूचन करे "सो" इति कल्पितसत्य कहिये व्यावहारिक सत्य जानो, ब्रह्मज्ञान से बिना या का बाध न होवे वह व्यावहारिक सत्य कहिये हैं, ब्रह्मज्ञान से बिना अन्य ज्ञानों से रजतादिकवत् याका बाध होवे वह प्रातीतिक सत्य कहिये है, कालत्रय में याका बाध न होवे वह पारमार्थिक सत्य कहिये है॥ १४॥

सर्व अनर्थ प्राप्ति में ताकी स्थिति को हेतु कहे "सो" इति—यह मेरे को मत प्राप्त होवे ऐसे त्याग की इच्छा रहे भी बल से प्राप्त होवे सो अनर्थ कहिये हैं। ऐसे अध्यात्मादिक दुख हैं। ज्ञान मार्ग को ताकी नाशकता कहे "ताको" इति "ताको नाशक आत्मज्ञान। सो उर कल्पित सत्य पछान" पाठ से सूचित आत्मज्ञान नाश्य विलक्षण भाव रूप वस्तु का जन्म काल निर्णय बिना ताको अनादिता सिद्ध भया, अनादि होवे, भाव रूप होवे, ज्ञान से जाका नाश होवे सो कहिये अज्ञान, यह अज्ञान का लक्षण भी सूचन किया जानना। भावरूपता अज्ञान को व्यावहारिक

सो वेदान्त है गुरू अधीन। ता पद सेवे होय सुदीन।
ता उपदिष्ट पन्थ है जोई। भली प्रकार अभ्यासे सोई ॥१६॥
ता परपन्थी वादी जेते। तर्क खड़ग सों छेदे तेते।
वेद सिपर को देवे ओट। सकल निवारे ताकी चोट ॥१७॥
सावधान अति धीरज वन्त। ब्रह्म धाम को पावे सन्त।
तामें रमे परम सुख पाई। दुःख सकल को मूल मिटाई ॥१८॥

है, या ते परमार्थ भावरूप ब्रह्म की समानता बिना अनादि भाव की आत्मवत् निवृत्ति नहीं बने यह आशंका भी दूर भई, ऐसे भये लक्षण प्रमाण के अभाव ते अज्ञान की असिद्धि, औ अज्ञान के असिद्ध भये ज्ञान को तिसकी नाशकता का असम्भव, या ते अनर्थ निवृत्तिरूप अंश के अभाव ते प्रयोजन की असिद्धि यह आशंका भी दूर भई, ज्ञान को अनर्थ-नाशकता सिद्ध भया ताकी सिद्धि हेतु शास्त्रारम्भ भी सफल है यह कहे "सो" इति ॥ १५ ॥

ज्ञानजनक वेदान्त भी गुरु मुख द्वारा ही सुने प्रयोजन सिद्ध करे है, यह नियम करे "सो" इति सो वेदान्त—आत्मज्ञान साधन वेदान्त, गुरु-आधीन—गुरुमुख द्वारा प्राप्त होने के योग्य है, याते अनर्थ निवृत्ति साधन विद्या को अन्य विद्या के समान धन-दान मात्र से सीखने की इच्छा न करे यह कहे "ता" इति ता नाम वेदान्त वेत्ता गुरु के, ता उपदिष्ट नाम—तिस गुरु कर उपदेश किया, अभ्यासे—मननादि क्रम से तत्कथनादि करे ॥ १६ ॥

उपदिष्ट मार्ग के अभ्यास में विघ्न निवृत्ति का प्रकार कहे "ता" इति ता नाम उपदिष्ट मार्ग के परपन्थी कहिये विरोधी जेते वादी हैं वह सभी तर्क नाम युक्तिरूपी खड्ग से, छेदे नाम परास्त करे अर्थात् कहे मार्ग के विरोधी वादियों को युक्तियों से जीते, परपन्थी खड्गपदों से सूचित रूपक की सिद्धि हेतु कहे "वेद" इति सिपर—ढाल ताकी चोट तिन वादियों के केवल युक्ति रूपी खण्डन अर्थात् अपनी वेदानुसारी युक्तियों से तिनकी वेदहीन युक्तियों को दूर करें ॥ १७ ॥

अभ्यासी के विशेषण कहे "सावधान" इति सावधान नाम उपदिष्ट मार्ग में दृढ़ निश्चय वाला, धीरजवन्त-परपन्थियों की युक्ति के श्रवण

दोहा

तटस्थ—**श्रुति बखान्यो पन्थ जो, भाखो ताहि स्वरूप ।**
जाको पाय सुधाम को, पावै शिष्य अनूप ॥१९॥

चौपाई

सिद्धान्ती—
जीव ब्रह्म एकता जोई । हस्त विल्व सम भासे सोई ।
श्रुति याहि को ज्ञान बखाने । जाको पाय होय भव हाने ॥२०॥

से वा धनादिकों की इच्छा ते चित्त विषय विक्षेप ना लाने वाला, ऐसे अभ्यासी को फल सिद्धि कहे "ब्रह्म" इति, सन्त-मुमुक्षु, प्रयोजन की समाप्ति करे "तामे" इति, रमे नाम अभेद रूप से चिन्तन रूप क्रीडा करे, क्या कर रमे तहाँ कहे "परम" इति परमसुख पाई परमानन्द रूप सुख को प्राप्त होकर पुनः दुख सकल को मूल मिटाई कहिये आध्यात्मिक आदि दुःखों का कारण अज्ञान दूर कर अर्थात् अज्ञान तत्कार्य रूप अनर्थों की निवृत्ति औ परमानन्द को प्राप्त होकर रमे इति प्रयोजन संक्षेपः ॥ १८ ॥

(ज्ञान के स्थान पर "श्रुति" भी पाठान्तर है) मुक्ति जनक ज्ञान का यथार्थ होना, विषय के अबाध के अधीन है औ विषय का सर्व प्रमाणों से बलवाले प्रत्यक्ष के सुहृद् अनुमान, तथा प्रत्यक्ष कर बाध होगा, याते विषयाभाव ते पुनः शास्त्रारम्भ निष्फल है या अभिप्राय ते द्वैतवादी प्रश्न करे "ज्ञान" इति, ज्ञान बखान्यो नाम "ज्ञानहि एक कहौ" इहाँ कथन किया जो ज्ञान मार्ग, भाखो ताहिं स्वरूप कहिये कहो तिसका असाधारण रूप, जाको पाय शिष्य अनूप धाम को पावै यह अन्वय कर अनूप-और की समानताहीन अर्थात् जिस ज्ञान को पाय कर शिष्य अनूपधाम को प्राप्त होवे है वह ज्ञान सांख्य मत में माना प्रकृति पुरुष का विवेकरूप है, वा न्याय मत में अङ्गीकार किया पदार्थ तत्त्वज्ञानरूप है, वा कुछ और है ॥ १९ ॥

उक्त आशंका श्रवण कर निज मत में ज्ञान का स्वरूप कहे "जीव" इति—

जीव ब्रह्म एकता जोई नाम जीव ब्रह्म का जो अभेद, सोई—वह हाथ में धरे विल्व के समान संशय विपर्यय रहित होना, श्रुति याहि को

पूर्वपक्षी—

ननु भव कूर्मरोम सुहाये। खर विषाण नीके हम पाये।
यों प्रत्यक्ष न कोई देखे। ताहि अभाव प्रकट जन पेखे ॥२१॥
त्यों ही जीव ब्रह्म अभेद। हेर्यो किने न पेखे भेद।
नाहं ब्रह्म बखाने सारे। अहं ब्रह्म नहि कोइ उचारे ॥२२॥
ताते ब्रह्म एकता ऐसे। कूर्म पृष्ठ रोम जग जैसे।

सिद्धान्ती—

याही शंका को परिहार। भाखों प्रकट सुनो निर्धार ॥२३॥

ज्ञान बखाने नाम ज्ञानादेव श्रुति या पूर्व कहे भान को ज्ञान कहे है, जाको पाय कहिये जिस ज्ञान को पाय कर संसार की निवृत्ति होवे है अर्थात् जीव ब्रह्म के अभेद मात्र को विषय करने वाली "तत्त्वमसि" आदिक वाक्यजन्य यथार्थवृत्ति को ही ज्ञानादेव श्रुति अनर्थ का नाशक-रूप ज्ञान कहे हैं, या ते जीव ब्रह्म के अभेद को विषय करने वाला होना ही ज्ञान का स्वरूप है सांख्य आदि मत में मान्या नहीं ॥ २० ॥

जीव ब्रह्म का अभेद असत्य होने के योग्य है, प्रत्यक्ष शून्य होने ते कूर्मरोमवत्, यह ज्ञान बखान्यो कथन का अभिप्राय प्रकट करे वादी "ननु" इति—

यों प्रत्यक्ष नाम कूर्मरोम सुन्दर हैं खर विषाण भले हैं ऐसे प्रगट ॥२१॥

"हेर्यो किने न" पूर्व के संग कर, त्यों ही नाम कूर्म रोमादिकवत् जीव ब्रह्म का अभेद काहू ने नहीं देखा किन्तु पेखे भेद नाम भेद देखे हैं भेद का प्रत्यक्ष कहे "नाहम्" इति—अभेद के प्रत्यक्ष का अभाव कहे "अहम्" इति ॥ २२ ॥

ताते नाम उच्चारण के अभाव ते, इहाँ पूर्वपक्षी का यह भाव है अनुमान आदिक प्रमाण अपने प्रमेय अग्नि आदिकों की सिद्धि करने में यथाक्रम हेतु, सादृश्य, पद पदार्थ के सम्बन्ध आदिकों का प्रत्यक्ष से भान चाहने से निर्बल हैं औ प्रत्यक्ष अपने प्रमेय सिद्ध करने में काहू की अपेक्षा ना करने ते बलवान् है या ते जीवरूप एक आश्रय में ब्रह्म भेदाभेदरूप विरुद्ध विषय वाले "नाहं ब्रह्म" प्रत्यक्ष और "तत्वमसि" शब्द का विवाद भये, निर्बल की हार देखने से शब्द

यहि कछु नेम नाहि भवमाहीं। प्रत्यक्ष न होय सुहोवे नाहीं।
होय वस्तु अरु भासै नाहीं। याके अष्ट हेतु भव माहीं ॥२४॥
दूर समीप इन्द्रिय को हान। मन चञ्चल सूक्षम व्यवधान।
तिरस्कार साजाती संग। यहि आठ हेतु धरोचित अङ्ग ॥२५॥

अब उक्त अष्ट हेतुओं का वर्णन करते हैं—

अधिक दूरते भासै नाहीं। ज्यों खग दूर गमन के माहीं।
अति समीप ते नजर न आवे। ज्यों निज नैन नील नहिं पावै ॥२६॥
इन्द्रिय हानि होय पुनि जहाँ। अन्धा रूप न हेरे तहाँ।
मन नहिं स्थित जाको होई। निकट पदार्थ लखे न कोई ॥२७॥

का विषय अभेद असत्य है औ प्रत्यक्ष का विषय भेद सत्य है वैसे जो प्रत्यक्ष शून्य होवे वह असत्य होवे है यह नियम है। या ते, जीव-ब्रह्म का अभेद, असत्य होने के योग्य है, प्रत्यक्ष शून्य होने ते, कूर्म-रोमादिवत्; प्रत्यक्ष के मित्र अनुमान से भी शब्दजन्य ज्ञान का विषय अभेद असत्य है या ते ज्ञान का पूर्व कह्या स्वरूप नासिद्ध होने ते ताको प्रयोजन हेतुता नहीं सम्भवे, वस्तु को प्रत्यक्ष शून्यता दो रीति से होवे है—एक प्रतिवन्धवश ते, दूसरा ना होने ते, तिनमें ना होने से प्रत्यक्ष शून्यता तहाँ कहनी जहाँ अनुमान आदिकों से वस्तु की सत्ता निश्चित ना होवे, जहाँ निश्चित होवे तहाँ प्रतिबन्धवश ते ही कहनी, या ते पूर्वोक्त ज्ञान के स्वरूप की सिद्धि निर्विवाद है या भाव से सिद्धान्ती कहे "याही" इति ॥ २३ ॥

परिहार कहे "यहि" इति—यहि कछु नेम नाहि भव माहीं कहिये व्यभिचार से यहि कछु नेम नहीं संसार में जो प्रत्यक्ष ना होय नाम प्रत्यक्ष शून्य होवे, सुहोवे नाहीं नाम वह असत्य होवे है, व्यभिचार स्फुट करे "होय" इति "याके" होकर ना भान होने के ॥ २४ ॥

आठों के नाम कहे "दूर" इति, व्यवधान—पर्दा, सजातीय संग—अपनी जाति वाले का संग, अंग—हे शिष्य ॥ २५ ॥

आठों से ना भान होना स्पष्ट करे—"अधिक" इति, नयन नील—पुतली की नीलता ॥ २६–२७॥

अति सूक्ष्म परमाणू जोई। ताहि न लखे जगत में कोई।
भीतादिक व्यवधानहि होई। नरपति नारी लखै न कोई ॥२८॥
रवि द्युतिसों जाकी द्युति नाशे। गगन माहि तारा नहिं भासे।
तोयद मुक्त विन्दु जल जोई। भेद न लखै सरस में कोई ॥२९॥
यह सब सत्य न देखै कोई। कूर्मरोमसमान न होई।
योगी-पुरुष सकल को हेरे। नाहिं अभाव कदाचित् टेरे ॥३०॥
त्योंही ब्रह्म एक जग-माहीं। मुग्ध बुद्धि तिंह हेरे नाहीं।
ज्ञानी ब्रह्म अभेद निहारै। अहंब्रह्म वह प्रकट उचारै ॥३१॥

अब सिद्धान्ती दृष्टान्त को विषम दिखाता है।

कूर्मरोम विषे नहि मान। ब्रह्म अभेद मैं वेद प्रमाण।
तत्त्वमसि यों वेद उचारै। लोकन के सन्देह निवारै ॥३२॥

सूर्य के प्रकाश द्वारा झरोख्यों के रास्ते दिखायी पड़ती सूक्ष्म रज का छठा भाग परमाणु कहिये हैं ॥ २८ ॥

द्युति प्रकाश, तोयदमुक्त—बादल से गिरी, सरस—अधिक जल में।॥२९॥

देखे, पाठान्तर है, यह सब सत्य कहिये पूर्व कहे खगादिक सभी सत्य हैं और ना हेरे कोई नाम तिनको देखता कोई नहीं, याते ना देखने मात्र अपराध से कूर्म रोमसमान न होई कहिये वह कूर्म रोमवत् असत्य नहीं। ननु जेकर यह काहू ने नहीं देखे तब इनकी सत्ता का निश्चय कैसे यह आशंका कर कहे "योगी" इति—योगी पुरुष कहिये चित्त वृत्ति निरोध वाला पुरुष, सकल को हेरे कहिये योग शक्तिबल से सर्व का प्रत्यक्ष करे है, काहू का अभाव कभी नहीं देखे हैं ॥ ३० ॥

तैसे दार्ष्टान्तिक में भी अज्ञानियों को ना भान होता अभेद, ज्ञानी प्रगट देखे हैं औ मुख से ऐसे कहे हैं यह कहे "त्योंही" इति त्योंही कहिये परमाणु आदिकों को अयोगियोंवत् जीव ब्रह्म का अभेद रूप विषय जगत् में, मुग्ध बुद्धि कहिये वाक्यजन्य प्रत्यक्ष शून्य बुद्धि वाले अज्ञानी देखते नहीं औ योगियोंवत् ज्ञानी पुरुष ताको प्रगट देखे हैं तथा मुख से कहे हैं सोई कहे "अहम्" इति ॥ ३१ ॥

इहाँ यह मर्म है लौकिक अलौकिक भेद से प्रत्यक्षदो प्रकार का होवे है। इन्द्रिय संयोगादि षट् सन्निकर्षजन्य ज्ञान लौकिक प्रत्यक्ष कहे

प्रत्यक्षप्रमाण विखे बहु दोष। वेद प्रमाण सदा निर्दोष।
ताते वेद बखाने जोई। साचो अर्थ पछानो सोई ॥३३॥

हैं, तिन बिना योगज सम्बन्धादि रूप अलौकिक सन्निकर्ष जन्य अलौकिक प्रत्यक्ष कहे हैं, तिस अलौकिक प्रत्यक्ष के विषय परमाणु आदि सभी हैं, याते पूर्व कहे प्रमाणाभासरूप अनुमान से जीव ईश के अभेद की असत्ता नहीं सिद्ध होवे पुनः भेद दर्शन को अनर्थ हेतुता श्रवण ते प्रकृति पुरुष के भेद ज्ञानादिकों को मोक्ष हेतुता नहीं सम्भवे, किन्तु अबाधित रूप अभेद ज्ञान को ही सम्भवे है, याही ते शशशृङ्गवत् महिषी शृङ्ग कठोर है ऐसे उपमा ना देखने से प्रामाणिक वस्तु का अप्रामाणिक वस्तु से ना होना भी सिद्ध नहीं होवे यह कहे कूर्म "इति" ॥ ३२ ॥

ननु रहो अनुमानप्रमाणाभास तथापि बलि रूप "नाहं ब्रह्म" यह प्रत्यक्ष प्रमाण अभेद विषय वाले वेद का बाधक है यह आशंका कर कहे "प्रत्यक्ष" इति—प्रत्यक्षप्रमाण न्यायमत में इन्द्रिय का नाम है और वेदान्तमत में इन्द्रियजन्य वृत्ति का भी नाम है तिसमें दोष-संशय, विपर्यय, प्रमाद, इन्द्रिय विकलता है। निर्दोष-संशयादिक, दोष रहित, ताते-दोष रहित होने ते, साचो, अर्थ नाम अबाधित अर्थ, इहाँ यह भाव है=प्रत्यक्ष-प्रमाण प्रमाणाभास भेद से दो प्रकार का है तिनमें निश्चय करी प्रमाणता वाला प्रमाणरूप प्रत्यक्ष ही वेद का बाधक कहना, अभासता वाला आभास रूप नहीं। औ दोषयुक्त "नाहं ब्रह्म" प्रत्यक्ष में प्रमाणता का निश्चय नहीं याते ताको बाधकता नहीं बने और वेद को तो, वेद प्रमाण है, भ्रम का अकरण होने ते, वेद, भ्रम का अकरण है, दोषरहित पुरुष का वाक्य होने ते, इन अनुमानों से प्रमाणता निश्चय भये प्रत्यक्ष की बाधकता बने हैं। जेकर अब भी अपना प्रमेय सिद्ध करने की निरपेक्षता रूप बल को लेकर प्रत्यक्ष का विषय भेद सच्चा है ऐसा हठ करो तब तुम्हारे मत में भी "देहोऽहम्" प्रत्यक्ष से देहाभिन्न जाने आत्मा की देह से भिन्नता कर अनुमानादिकों से सिद्धि नहीं होवेगी इति विषय विचार॥ अधिकारी सम्बन्ध का खण्डन उपपादन ग्रन्थान्तर से जान लेना ॥ ३३ ॥

दोहा

तटस्थ—

वेद विरोधी वाद जो, भाखे वहु प्रकार।
तिंह जीवित वेदार्थ को, सके न को निर्धार ।। ३४ ।।

अब सिद्धान्तो उक्त शङ्का का उत्तर देते हुए स्व अभिप्राय का विषय सूची कहते हैं।

वेद विरुद्ध वाद हैं जे ते। करौं निराश याहि में तेते।
चार ख्याति पर पन्थी जोई। करों निराश याहि में सोई ।।३५।।
लक्षणा के जेई परकार। या भीतर ते कहों विस्तार।
नव अभ्यास या भीतर गावौं। महावाक्य को अर्थ दिखावौं ।।३६।।
जीवन मुक्त अवस्था जोई। यामें प्रकट होयगी सोई।
विदेह मुक्त परमातम धाम। भाखौंसकल सुनोअभिराम ।।३७।।

"साचो अर्थ पछानो सोई" श्रवण कर अतिशय भयानक सर्पयुक्त देश स्थित, निधि प्राप्ति की कठिनतावत् वेदविरोधी वादों के खण्डन ना भये अबाधित अर्थ प्राप्ति को कठिनता की आशंका करे शिष्य "वेद" इति वेदविरोधी कहिये वेद के तात्पर्य से विरुद्ध अर्थवाले न्यायादिक वादी, जो अनेक प्रकार के विरुद्ध पदार्थों को प्रतिपादन करें हैं। तिह-जीवित कहिये तिनवादों के अखण्डित रहे वेदार्थ अभेद को कोई निर्धार नाम निर्णय नहीं कर सकेगा अर्थात् अपनी-अपनी तर्कों सहित तिनको प्रवल रहे वेद का अभेद में ही तात्पर्य है ऐसे निर्णय नहीं कोई कर सकेगा ।। ३४ ।।

सच्चे अर्थ निर्णय को रोकने वाला जीवना दूर करेंगे यह कहे "वेद" इति प्रथम द्वितीय अध्यायों (निवासों) में वक्तव्य बात को संक्षेप ते कह कर तीसर में वक्तव्य का विवेक कहे "चार" इति ख्याति नाम रजतादिकों के भान औ कथन का है ।। ३५-३६ ।।

चतुर्थ अध्याय (निवास) में वक्तव्य की प्रतिज्ञा करे "जीवन" इति। पञ्चम में वक्तव्य की प्रतिज्ञा करे "विदेह" इति परमातम धामरूप जो विदेह मुक्त ।। ३७ ।।

दोहा

कहूँ कहूँ ताटस्थ मुख, पूर्व उत्तर वाद।
प्रकट हेतु यामें कहों, समुझ होय निर्वाद ॥ ३८ ॥

अब जिज्ञासु की अश्रद्धार्थ वेदहीन मतों को कहते हैं।

सवैया

वेद विहीन सो मोह अधीन, सदा नर आपन रूप भुलानै।
ईश सु जीव विषे सुनियो, बहुभेद कहे नहिं तत्त्व पछानै।

वाद काल में वादी प्रतिवादी तथा और सभ्यजनों के स्थिर भये, मध्यस्थ जीवब्रह्म की एकता बने हैं वा नहीं, ऐसे दो कोटियों का प्रतिपादक वाक्य कहके, एक एक कोटि का ग्रहण करवा कर वादी प्रतिवादी का विचार प्रवृत्ति करके पूर्वपक्षी का कथन सुनकर सिद्धान्ती के आगे ताका अनुवाद कर सिद्धान्ती को कहे है दोष देहि, औ सिद्धान्ती का कथन सुनकर पूर्वपक्षी को सुनाकर कहे है—सिद्धकर, औ दोऊ में जहाँ कोऊ अनुचित कहे तहाँ एक की हार कह कर विवाद मिटाय देवे है, यह शास्त्र में विचार की रीति लिखी है, अब पाँचों अध्यायों (निवासों) में वक्तव्य की प्रतिज्ञा करके वही निज ग्रन्थ रचना में बतावे "कहूँ" इति कहूँ कहूँ ताटस्थ कहिये काहूँ काहूँ स्थान में, पूर्वपक्षी की ऊपर से आशंका श्रवण कर ताका अनुवाद रूप मध्यस्थ का कथन होवेगा, जैसे सांख्य मत के खण्डन हुये पीछे, ननु युक्तियों से हमारी वाणी बन्द भये भी सर्वज्ञ ऋषि प्रोक्तमत असंगत नहीं यह सांख्य की आशंका श्रवण कर, ताका अनुवाद रूप मध्यस्थ का सिद्धान्ती आगे "ननु कपिल मत जे अनुसारे" इत्यादि कथन है और मुख कहिये प्रधान अर्थात् बहुत कर तो पूर्व उत्तरवाद कहिये पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष ही होवेगा।

तटस्थ की वाणी कहने में हेतु बतावे "प्रकट" इति या में कहिये तटस्थ की वाणी कहने में प्रसिद्ध हेतु यह है जो पूर्व पक्ष सुनकर यह दोष देने योग्य है ऐसे सिद्धान्ती को कहया ताने दोष दिये पीछे पूर्वपक्षी ने अनुचित विवाद न करो ऐसे तटस्थ डर से समझ कर विवाद रहित होना ही तटस्थ की वाणी कहने में प्रसिद्ध हेतु है औ कहूँ कहूँ या ग्रन्थ में पूर्व मत खण्डन कर उत्तर का आरम्भ तटस्थ ओर अङ्गुलि कर सिद्धान्ती मुख से ही होवेगा यह विशेष है ॥ ३८ ॥

अब परमतों के त्याग में प्रथम जिज्ञासु की अश्रद्धाको ही परमबीज

कारणमाहिं विवाद सदा पुनि और सु औरहि भाँति बखानै ।
ताहि निवार सदा सुखसार सो आतमरूप निरन्तर जानै ॥३९॥
पूर्वपक्षी—**कैसे करैं विवाद को, अपनो रूप भुलाय ।**
सिद्धान्ती—**सावधान मनकै सुनो, नीके देहुँ बताय ॥४०॥**

समझ के मतो में अश्रद्धा हेतु मतप्रवर्तकों में दोष कहे "वेद" इति वेद विहीन कहिये वेद तात्पर्य ज्ञान से रहित, वेद विहीन का वेद रहित मात्र अर्थ करें तव मात्र को वेद रहित होने से औरों के मतों में अश्रद्धा नहीं होवेगी या ते वही अर्थ करना, वेद के तात्पर्य ज्ञान रहित होने से ही, मोह अधीन कहिये वह भ्रम के परवश हैं औ भ्रमके परवश होने ते ही, सदा नर आपन रूप भुलाने कहिये सर्वदा काल वह अपने स्वरूप ज्ञान से रहित है अर्थात् वेद का तात्पर्य न जानने से भ्रम ज्ञानी है औ भ्रम ज्ञानी होने ते ही, स्वरूप के वास्तविक बोध रहित है, वेद के तात्पर्य का न जानना स्पष्ट करे "ईश" इति ईश सुजीव विषै सुनिये वहु भेद कहे, नाम ईश औ जीव विषै एक वृक्ष में दो पक्षी हैं ऐसे भेद प्रतिपादक श्रुतियों से श्रवण किया हुआ बहु भेद कहे हैं, नहि तत्त्व पछानै—श्रुतियों का औपाधिक भेद कहने में तात्पर्य है ऐसे मर्म को नहीं जानते पुनः तात्पर्य ना जानने से ही कारणों में विवाद करे हैं सोई कहे "कारण" इति कारण माहिनाम जगत् कारण में अर्थात् तत्पदार्थ में सदा विवाद करे हैं, पुनः और—आत्मा में अर्थात् त्वं पदार्थ में, पुनः सु औरहिं भांति बखानै नाम आत्मा के परिमाणादिकों में और रीति कहे हैं या ते ताहि निवार—ऐसे वेद के तात्पर्य ज्ञान-हीनों को परास्त करके, "सदा सुख सार सु आतम रूप निरन्तर जानै" नित्य परमानन्द रूप आत्मा को एक-रस जाने ॥ ३९ ॥

तत्त्वज्ञानहीनों के विवाद का प्रकार पूछे शिष्य "कैसे" इति कैसे करें विवाद को किस प्रकार करते हैं वाद को अर्थात् कैसे पदार्थों को अङ्गीकार करके तर्कों ते औरों का खण्डन पुनः प्रमाण ते अपना स्थापन रूप वाद करे हैं, प्रकार कथन हेतु सावधानता करावे "सावधान" इति, सावधान मन कै सुनो नाम और व्यापारों से रहित चित्त कर श्रवण करो ॥ ४० ॥

अब तत्पदार्थ अर्थात् कारणवादियों में नानाप्रकार के भेदवादियों के मतों में से सांख्य मत का निरूपण करते हैं।

चौपाई

प्रधान अचेतन जो इक अहै। जगकारण सांखी तिंह कहै।
ता विन हेतु न मानै आन। सांखी को मत यों पहिचान ॥४१॥

अब ईश्वर वादी सांख्य पातञ्जल का मत कहते हैं।

प्रधान अंश सतगुण में जोई। परे प्रतिबिंब सब भासै सोई।
जीव भिन्न पुनि ईश्वरनाम। पातञ्जल मत कारण अभिराम ॥४२॥

यथा क्रम बाहर भीतर घटादि सुखादि रूप जगत्, सुख दुख मोह रूप उपादान वाला होने के योग्य है, तिसके साथ अन्वित होने ते, जो जिसके साथ अन्वित होवे है वह तिस उपादान वाला होवे है। जैसे मृद् अन्वित घटादिक मृद्रूप उपादान वाले हैं इस रीति से जो सुख दुख मोह रूप कोईक उपादान सिद्ध भये वही सत्त्व रज तमो गुण रूप प्रधान है पुन ताही के अनुवादक "यतो वा" इत्यादिक वेदान्त है, ऐसे युक्ति और श्रुति से कथन करते सांख्य के मत को ही "प्रधान मल्ल जीतन न्याय" से आदि में निरास योग्यता कथन हेतु ताकी प्रक्रिया कहे "प्रधान" इति ॥ ४१ ॥

लोक में विचित्र कार्यों की केवल जड़ से रचना ना देखने से प्रधान जड़ से भी नहीं बने, या ते "क्षित्यङ्कुरादिक कर्ता जन्य हैं, कार्य होने ते, घटवत्" या अनुमान से सिद्ध भया ईश्वर निमित्त है औ प्रधान उपादान है, ऐसे ईश्वर को निमित्त मात्र मानते शैव पातञ्जलों की प्रक्रिया कहे "प्रधान" इति "परे प्रतिविम्ब" पूर्व साथमिलाकर प्रधान के सत्य अंश में जो परे प्रतिविम्ब=जीवों को ज्ञान धर्म के उपदेश हित धारण करे है सम्बन्ध, सब भासै सोई वही सर्व को प्रकाशे है परे प्रतिविम्वि का धारण करे सम्धन्ध यह अर्थ करना, परे प्रतिविम्ब कथन को किसका ? ऐसे बिम्ब की आकांक्षा कर प्रतिविम्ब भिन्न विम्व के सिद्ध भया, शुद्धादिक भेद ना मानते पातञ्जल मत में कथन असंगत होवेगा या अभिप्राय से है ॥ ४२ ॥

क्लेश कर्म ते जो असंग । पुरुष विशेष नित्य चिद अङ्ग ।
ताहीने सब जग उपजायो । यों पातञ्जल आप दिखायो ॥४३॥

अब पाशुपत मत कहते हैं ।

चेतन पशुपति जो इक हइये । जीव भिन्न रूप तिह पइये ।
जगकारण ताते नहिं आनै । प्रकट पाशुपत ताहि बखानै ॥४४॥

अब वासुदेव नारदपञ्चरात्र अनुयाई वैष्णवों का मत कहते हैं ।

वासुदेव ही है जगकर्ता । दयानिधान भक्त दुखहर्ता ।
ऐसे सात्वत प्रकट दिखावै । वासुदेव बिन और न गावे ॥४५॥

अब नैयायिकों का मत कहते हैं ।

नित इच्छा पुनि नित्य ज्ञान । तामें नित्य यत्न पहिचान ।
जीव भिन्न ईश्वर उर धारै । नैयायिक कारण ताहि उचारै ॥४६॥

अर्थ ते ईश्वर के स्वरूप के "प्रतिपादक क्लेश कर्म विपाका शया-परामृष्ट पुरुष विशेषा ईश्वरा" यह पातञ्जल सूत्र पढ़े "क्लेश" इति क्लेश पुरुषों के तपावने वाले अविद्यादिक पाँच औ कर्म विहित निषिद्ध मिश्रित रूप तीन, पुनः विपाक तिन कर्मों के फल औ आशय वासना रूप संस्कार इन सबों से अपरामृष्टा तीनों कालों में सम्बन्ध रहित अर्थात् क्लेश आदिकों से असंग याही ते पुरुष विशेषा अन्य पुरुषों की अपेक्षा कर श्रेष्ठ पुरुष नित्य चिद अंग सत् चित् रूप ईश्वर है, हे शिष्य ! ॥४३॥

पशुपति—शिव ॥ ४४ ॥

अनेक श्रुतियों स्मृतियों से पुनः जो जिसके साथ अन्वित होवे है वह तिस उपादान वाला होवे है या युक्ति के ग्राहक "घट सत्य है" ऐसे प्रत्यक्ष से जगत् का निमित्त उपादान उभय रूप वासुदेव ही है यह रामानुज मत की प्रक्रिया दिखावै है "वासुदेव" इति सात्वत-भक्त ॥४५॥

ईश्वर कर्ता को सिद्ध करता हुआ पूर्व कहा अनुमान जगत् के उपादान को विषय करने वाले अपरोक्ष रूप नित्य ज्ञान नित्य इच्छा नित्य प्रयत्न रूप कर्तृत्व को लेकर ही ईश्वर की सिद्धि करे हैं, वह पुनः "घट ईश्वर है", "पट ईश्वर है" ऐसा प्रत्यक्ष न होने से निमित्त मात्र है यह नैयायिक की प्रक्रिया कहे "नित इच्छा" इति, तामे नाम ईश्वर में यत्न—उद्यम ॥ ४६ ॥

अब बुद्ध मत कहते हैं ।

बौध कहैं पुनि बहुपरकार । आप आपनी बुद्धि अनुसार ।
कै परमाणु कै विज्ञान । केचित् शून्य करै विख्यान ।।४७।।

अब जैनों का मत कहते हैं ।

परिणामी औ पुनि नित्य वखानै । सूक्ष्मथूल सकल को जानै ।
भिन्नाभिन्न जीव ते आहि । जगकारण जैनी कहि ताहि ।।४८।।

अब मीमांसक मत कहते हैं ।

सर्वज्ञता में नाहिं प्रमाण । वेदवखानै क्रिया प्रधान ।
कहुँ सर्वज्ञ शब्द जो हइये । वागधेनुवत ताको लहिये ।।४९।।

सर्वदा चल रूप परमाणुओं का स्वतः ही खल कपोत न्यायेन युगपत् संघात भाव होने से ईश्वर कर्ता का प्रयोजन नहीं यह सौत्रान्तिक वैभाषिक की, और वक्ष्यमाण "सो परमाणु" इत्यादि युक्तियों से बुद्धि भिन्न पदार्थ नहीं यह योगाचार की पुनः बीजादिकों की पूर्व अवस्था के नाश बिना अङ्कुर की उत्पत्ति ना देखने से अर्थ से शून्य कारण है यह माध्यमिक की सर्वथा वेद वाह्य वुध्यनुसारी प्रक्रिया कहै "बौध" इति ।। ४७ ।।

जड़ पुष्पों का स्वतः मालारूपता न देखने से पुनः ज्ञानभिन्नों की उपलब्धि और सत्य साथ कार्यों का अन्वय देखने से सिद्ध भया जो जगत् का कारण चित सत्य ता को परिणामी न माने उपादेय घटादिकों साथ सत्य रूप का तिसका अभेद नहीं प्रतीत होवेगा याते परिणामी औ नित्य रूप है पुनः सूक्ष्म स्थूल सर्व का ज्ञाता है और सर्वथा जीव से भिन्न न माने जड़तापत्ति के भय से अभिन्न है पुनः सर्वथा अभिन्न माने जीववत् अल्पज्ञतापत्ति के भयकर भिन्न है अर्थात् भिन्नाभिन्न है यह जैनी को प्रक्रिया कहै "परिणामी" इति ।। ४८ ।।

सिद्ध पदार्थ में शक्ति ज्ञान हुए विना सूक्ष्म स्थूल सर्वको जानने वाले सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि में वेद प्रमाण नहीं, किन्तु अर्थवाद रूप है, औ और प्रमाण से ईश्वर की सिद्धि हम माने नहीं याते जगत् के कारण सांख्यमत में अदृष्ट प्रकृतिवत्, जड़ रूप अदृष्ट परमाणु हैं यह मीमांसक की प्रक्रिया कहै "सर्वज्ञता" इति वेद पूर्व साथ मिलाय के सर्वज्ञता कहिये "सूक्ष्म स्थूल सर्वको जानै" पाठ से पूर्व जैनी ने माने सर्वज्ञ ईश्वर

दोहा

सर्वज्ञ जान उपासियै, जगकारण जो होय ।
या विधि कारण सेवनो, यहै बखानै सोय ॥ ५० ॥

चौपाई

परमाणु आदि जगकारण होई । जीव अदृष्ट संग मिल सोई ।
सकल जगत इनही ते भयो । और कछु कारण नहिं हयो ॥५१॥

सोरठा

कह्यो मीमांसक आप, जग कारण वनाइकै ।
उर में धरही थाप, जो ताके पाछे चलै ॥ २॥

को सिद्धि में वेद प्रमाण कहिये प्रमा का करण नहीं, या ते क्रिया प्रधान कहिये क्रियायुक्त साध्य वस्तु को ही अर्थात् प्रवृत्ति निवृत्तिरूप क्रियायोग्य को ही वेद प्रतिपादन करे है ताते-प्रवृत्ति निवृत्ति के अयोग्य सिद्ध रूप ईश्वरकी सिद्धि में वेद प्रमाण नहीं, किन्तु अर्थवाद रूप है, स्तुतिनिन्दा में काहूं एक का प्रतिपादक वाक्य अर्थवाद रूप कहिये हैं सोई यह सूचन करे "कहुं" इति कहुं नाम "यः सर्वज्ञः" इत्यादि श्रुतियों में जो सर्वज्ञाता का बोधक सर्वज्ञ पद है ताको नाम तिसको, "वाचं धेनुमुपासीत" श्रुति में उपासना अर्थ वाणी को धेनु पदार्थवत् जो जग कारण है ताकी सर्वज्ञ जान उपासना करे ऐसे उपासना अर्थ जग कारण की स्तुति में जानिये, या ते अर्थवाद है ऐसे और भी अर्थवाद है सो आगे कहेंगे ॥४९॥

सर्वज्ञ पद को वागधेनुवत् लेना स्पष्ट करे "सर्वज्ञ" इति, या विधि नाम सर्वज्ञ जानकर जगत् कारण की उपासना करणीय है, बखाने सोय नाम सर्वज्ञ शब्द वाला वेद कहे है ॥ ५० ॥

उपास्य भूत जगत् का कारण कहे "परमाणु" इति, परमाणु आदि इहां आदि शब्द से कालादिक निमित्त लेने और कछू कारण नहिं हयो नाम ईश्वर और अज्ञानादिक और कोई कारण नहीं है ॥५१॥

वनाइ के कहने में वैदिक मान कर मीमांसक के कथन में श्रद्धा नहीं करनी यह सूचन किया याही ते श्रेष्ठों कर अग्राह्यता सूचन करे "उर में" इति ॥ ५२ ॥

अब हिरण्यगर्भ के उपासकों का मत कहते हैं ।

सवैया

**केचित् वेद सो मान उरे पुनि, कारण को निर्धार सुनावै ।
और न कारण को भव में, चतुरानन एक सु हेतु बतावै ।
वैनन भास सु मान कहै, इमवेदन की नर साखि दिखावै ।
ते मतिमान विचार करै, भव गोपमतो नर ताहि न पावै ॥५३॥**

स्मृतियों और तिनको मूलभूत श्रुतियों से ब्रह्मा ही सर्व का आदि कर्ता है, ताके परे और कर्ता नहीं यह कहते हिरण्यगर्भवादियोंकी प्रक्रिया कहे "केचित्" इति, कोइक पुनः मीमांसक सम वेद ही हृदय में मानकर कारण का निर्णय करे हैं "केचित्" कहने से वैदिक जानकर इनके कहे का भी निश्चय नहीं करना यह अरुचि सूचन करी, श्रुतियों स्मृतियों से किया हुआ तिनका निर्णय कहे "और न" इति, "केचित्" कहने से सूचन करी अरुचि प्रकट करे "वैनन" इति वैनन भाससु मान कहे नाम ब्रह्मा को आदि कारणता में वचना भास रूप स्मृति प्रमाण कहे हैं, ननुप्रमाण रूप श्रुतियों के आभास भूत स्मृतियों को तिनके समान अवाधित अर्थ कहने से अप्रमाणता नहीं, या ते अप्रमाणता कटाक्ष से आभासता कथन असंगत (है) यह आशंका कर्ता दृष्ट अर्थ बोधन में वेद को ही प्रथम अभासता कहे "इम" इति ऐसे वेदन की अर्थात् प्रमाणा-भास रूप वेदन की नर—हिरण्यगर्भवादी साखि दिखावैं—तादृश अर्थ बोधन में प्रमाणता दिखावै है इहाँ यह हार्द है जो सापेक्षिक कारणता बोधक श्रुतियाँ जब सापेक्षिक कारणता कहे तब तो अपना अर्थ बोधन से प्रमाणता होवे परन्तु वह तो तिनकों निरपेक्षिक कारणता पर लगावें है, या ते उस अर्थ में तिनको प्रमाणता नहीं किन्तु प्रमाणाभासता है और तत्मूलक होने से स्मृतियों को भी तिस अर्थ में प्रमाणाभासता है। यदि ऐसा न माने तो घट पद को पट रूप अर्थ बोधन में भी प्रमाणत्ता चाहिये, ऐसे उलटा कहने में रहस्य जानने वाले गुरु के उपदेश बिना बुद्धि के बल से विचारना ही हेतु सूचन करे "ते" इति ते, मतिमान विचार करे—वह हिरण्यगर्भ वादी बुद्धि के प्रमाणानुसार विचार करे है अर्थात् बुद्धि के बल से विचार करे है याही ते भवगोपमतो नर ताहि न पावें कहिये संसार में अद्वितीय सच्चिदानन्द जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान है इस गुह्यमत को नहीं पावते ॥ ५३ ॥

अब स्वमत वेदान्त का निरूपण करते हैं।

नराज छन्द

सु एक रूप है सदा सु जीव भेद भानिये।
अनन्दपूर धार में न दुःख लेश आनिये।
सुज्ञान रूप धाम में सु मोह एक जानिये।
आकाश आदि देह लौं सु सूनुताहि मानिये ।।५४।।

चौपाई

माया युक्त सु ब्रह्म महान। ताहि ते सब होयो भान।
यों वेदान्ती प्रकट बखानै। रज्जुसर्प ज्यों द्वैत पछानै ।।५५।।

वेद विहीनों के वादों का प्रकार कहकर गोप्य मत की प्रक्रिया कहे "सु एक" इति सु कहिये सो अर्थात् वह जगत् का कारण एक रूप है नाम, सजातीय भेद रहित है, सजातीय भेद रहितता कथन उपलक्षण है या ते विजातीय स्वगत भेद रहितता भी जान लेनी औ सदा—नित्य है, सजातीय भेद हीनता ही स्पष्ट करे "सुजीव" इति सुजीव भेद भानिये कहिये सत्यरूप जीव के भेद रहित है पुनः परमानन्द रूप है, सोई कहे "आनन्द" इति आनन्द कहिये विषयानन्दादिकों के पूर—प्रवाह की धारा में मुख्य स्थान ब्रह्मानन्द में न दुख लेश आनिये नाम दुख लेश मात्र नहीं, सदा औ आनन्द पदों से नित्यता औ निरतिशय सुख स्वरूपता कहकर चिद् रूपता कहें "सुज्ञान" इति ज्ञानरूप—चैतन्य रूप है, ननु जीवाभिन्न अद्वितीय सच्चिदानन्द में रचनानुकूल क्रियाशक्ति के अभाव ते जगत् की अभिन्न निमित्त उपादानता कैसे ? यह आशंका कर ना बनती के बनावने वाली माया के प्रभाव से वह भी बने है यह कहे "धाम में" इति धाम में—सच्चिदानन्द ब्रह्म स्थान में, सुमोह एक जानिये = सर्व जगत् की कारणता का साधक अज्ञान रूप एक शक्ति जानो, तैत्त-रीय श्रुति के अनुसार रचना का प्रकार कहे "आकाश" इति आका-शादि—आकाश से लेकर समष्टि स्थूल शरीर पर्यन्त, सुसूनुताहि मानियें—पुत्र तिसके हैं अर्थात् कार्य अज्ञान के मानो ।। ५४ ।।

ननु गृह में स्थित पुरुषवत्, ब्रह्मधाम में स्थित भई माया को आकाश आदिकों की हेतुता कहने से ब्रह्म को अभिन्ननिमित्तोपादनता कैसे बने ? यह आशंका कर मायोपहित को हेतुता कहे—"माया" इति "नेह

दोहा

कारण माहिं विवाद ज्यों, त्यों आतम में जान ।
बहु विधि ताहि उचार हैं, सो मैं करों बखान ॥ ५६ ॥

अब त्वं पदार्थ के स्वरूप में वादियों के विवाद का निरूपण करते हैं ।

चौपाई

तन को आतम एक सुनावै । और सु इन्द्रिय आतम गावै ।
एक कहै पुनि प्राण पछानो । और कहै मन आतम जानो ॥५७॥
विज्ञान आतमा केचित धारै । ईश अंशपुनि और उचारै ।
जड़ चेतन पुनि भाट बतायो । केवल जड़ नैयायिक गायो ॥५८॥

नानास्ति" निषेध की अन्यथानुपपत्ति कर स्वकाल में ही स्वउपादान में प्रपञ्च का अभाव प्रतीत होने ते सदुपादानक भये भी प्रपञ्च को रज्जु सर्पवत् सत्यता नहीं बने यह सूचन करे "रज्जु" इति ॥ ५५ ॥

पुनः और पद से त्वं पद में कहे विवाद का आरम्भ करे "कारण" इति कारण माहिं नाम—जगत् कारण रूप तत् पदार्थ में, आतम में—त्वं पदार्थ में, ताहि—आत्मा को ॥ ५६ ॥

अहन्ता वाले में आत्मा का काहू मत में विवाद नहीं और अहन्ता प्रतीति स्थूलता गौरता धर्मों वाले देह में होवे है याते देह ही आत्मा है, यह देह आत्मवादी चार्वाक का मत कहे "तन को" इति देह के व्यवहारों को इन्द्रियों के आधीन होने से और अहन्ता को काणा हूं बधिरा हूं इत्यादिक प्रतीतियों से इन्द्रियों में भान होने से इन्द्रिय आत्मा हैं यह दूसरे का मत कहे "और सु" इति, सुषुप्ति में इन्द्रियों के लीन भये भी प्राणों से जीवन के निश्चय से और भूखा हूं प्यासा हूं इन प्रतीतियों से अहन्ता को प्राणों में भान होने से प्राण आत्मा है यह तीसरे का मत कहे—"एक" इति, प्राणों के होने काल में भी मन की स्थिरता अस्थिरता द्वारा ज्ञानादिकों का होना न होना देखने से पुनः मैं संकल्प वाला हूँ ऐसे अहन्ता के भान से मन ही आत्मा है यह चौथे का मत कहे "और" इति ॥ ५७ ॥

मेरा मन स्थिर नहीं ऐसे मन से भिन्न मन का ज्ञाता क्षणभङ्गुर रूप वुद्धि ही आत्मा है यह योगाचार का मत कहे, "विज्ञान" इति । आत्मा में क्षणभङ्गुरता अंगीकार किये "सो मैं हूँ" या प्रत्यभिज्ञा के असम्भव

मान माहिं बहु भेद विचारै। अणु मध्यम महान उचारै।
इत्यादिक बहु भेद उचारै। मूर्ख जन नहिं वेद विचारै ॥५९॥

ते स्थिर रूप कर्तृत्वादिक धर्मों वाला ईश्वर की अंशभूत आत्मा है यह सात्वत मत कहे "ईश अंश" इति, कर्तृत्वादि विकारों को आत्मधर्मता माने तिन विकारों कर साविकार भये को घटादिकवत् अनित्यता होवेगी या ते वह गुणों के परिणाम रूप है और आत्मा असंग उदासीन रूप है तिस को प्रकृति के गुणों के अविवेक से भोक्तापना रूप बन्ध है और विवेक से मुक्त होवे है ऐसे कल्पना करते हुए सुखादिकों कर रहित पुनः अहंकारादिकों के प्रकाश करने से चैतन्य रूप आत्मा को सांख्य कहे है यह ऊपर से जान लेना। कर्तृत्वादिकों को प्रकृति धर्म माने और के किये में और को भोगना देखना से किये का नाश और ना किये की प्राप्ति होवेगी या ते आत्मा का ही कोईक जड़ अंश कर्तापने आदिकों के आकार परिणाम को प्राप्त होवे है और दूसरा चेतन अंश जड़ को विषय करे है यह कल्पना करते हुए खद्योतवत् चित् जड़ उभय रूप मीमांसक कहे हैं "जड़" इति आत्मा में अंश अङ्गीकार किये घटादिकवत् अनित्यता होवेगी याते मन के संयोग द्वारा उत्पन्न भये ज्ञानगुण सहित हुआ चेतन और वा से बिना आकाशादिकोवत् जड़ है यह नैयायिक कहे हैं सोई कहे "केवल" इति, सो यह सभी जगत् को सत्यता और आत्मा को नानात्व मानने वालों के पक्ष कहे और गोप्य मत में आत्मा का स्वरूप आगे कहेंगे ॥ ५८ ॥

सो "औरहिं" कथन से सूचन किये आत्मा के परिमाण में विवाद दिखावें "मान" इति, आत्मा को विभु माने सुख-सुख का सांकर्य होवेगा और मध्यम माने घटादिकोंवत् अनित्यता होवेगी याते अणु परिमाण वाला आत्मा को शैव सात्वत कहे हैं और अणु माने एक ही समय सर्व शरीर में शीतोष्ण का ज्ञान नहीं होवेगा, याते छोटे बड़े शरीर में संकोच विकास वाला होने ते मध्यम परिमाण वाला जैन कहे हैं। "आत्मा अनित्य होने को योग्य है, मध्यम परिमाण वाला होने ते, ऐसे अनित्यता दोष से" विभु परिमाण वाला नैयायिक कहे हैं—सोई कहे "अणु" इति अणु मध्यम महान् में जिसके नाम लिये वह सभी वादी आत्मा का मन से प्रत्यक्ष माने हैं और सांख्यवादी सदा तिसकी सत गुण प्रधान

अविद्या युक्त करै सब कर्म । स्वतः असङ्ग सदा निर्धर्म ।
सच्चिदानन्द सु आत्म रूप । वेदांति भाखे ताहि अनूप ॥६०॥

दोहा

तटस्थ—

चेतन एक असङ्ग जो, माया संगति पाय ।
शुद्ध मलिन के भेद ते, ईश्वर जीव कहाय ॥ ६१ ॥
यों वेदान्ति भाख है, सम्यक् वेद विचार ।
जो ताको उर धार है, सो भव उतरे पार ॥ ६२ ॥

बुद्धि की वृत्तियों के प्रकाशन से जाना जावे है ऐसे अनुमान से सिद्धि मानते हैं और नास्तिक आप ही विषय है आप ही विषयी है ऐसे आप से ग्रहण मानते हैं और मीमांसक सम्पूर्ण ज्ञानों में आत्मा, ज्ञान, विषय—यह त्रिपुटी प्रतीत होवे है, तिनमें विषय ज्ञान का भास्य होकर और आत्मा वाका आश्रय होकर भासे है और आप वह स्वप्रकाश है ऐसे कहते ज्ञान से आत्मा का ग्रहण माने हैं "यह इत्यादिक बहु भेद उचारे" पाठ में कहे आदि शब्द से आत्मा के ग्रहण में विवाद जान लेना ॥ ५९ ॥

कर्ता भोक्ता स्वरूप और परिछिन्न परिमाण पुनः स्वतः ग्रहण अविद्या दशा में औ अकर्ता अभोक्ता सच्चिदानन्द स्वरूप पुनः विभु परिमाण औ स्वप्रकाशताकर स्वतः ही ग्रहण वास्तविक दशा में यह निज मत में आत्मा का स्वरूप, परिमाण, ग्रहण तीनों सूचन करे "अविद्या" इति अविद्यायुक्त नाम अविद्यावच्छिन्न भये आत्मा, करै सब कर्म—सम्पूर्ण कर्मों को करे हैं अर्थात् कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म सहित कर्ता भोक्तारूप है और स्वतः असंग सदानिर्धर्म नाम अविद्या सम्बन्ध बिना सदा कर्तापने आदिक धर्म रहित है पुनः सच्चिदानन्द रूप है सोई कहें "सत्" इति अर्थात् अविद्यावच्छिन्न भये का ही कर्ता भोक्ता स्वरूप और परिछिन्न परिमाण होवे है अनवच्छिन्न के नहीं होवे ॥ ६० ॥

ननु अद्वितीय असंग में प्रथम जीवादि कल्पना ही कैसे ? यह आशंका कर शुद्ध मलिन रूप माया के भेद से बने है सोई कहे "चेतन" इति शुद्ध मलिन के आगे माया अविद्या शेष (कर लेना) ॥ ६१–६२॥

चौपाई

पूर्वपक्षी—

तर्क गाढ़ पूर्व मतमाहीं । क्यों कर जीवसु त्यागे ताहीं ।
विना त्याग नहिं यामैं आवै । ताते जीव वह्योभव जावै ।।६३।।
वेद हीन पुनि तर्क विहीन । भ्रांति मूल मत ताको चीन ।
ताते ताको दूरहि डारै । मुमुक्षु जन नहिं ताहि विचारै ।।६४।।

तटस्थ—

ननु प्रतिज्ञा करी उदार । भयो न ताते ता परिहार ।
कौन युक्ति सो ताहि निवारै । जाते नर नहिं ताहि विचारै ।।६५।।

मतों में उत्तमता अनुत्तमता के हेतु रूप युक्तियों विना एक में उत्तमता और में अनुत्तमता का निश्चय ना भये कपिलादिकों का माहात्म्य प्रतिपादक श्रुतियों से तिनके मतों में भी उत्तमता जानकर प्रवृत्त भयों को वास्तविक रूप के बोध बिना मुक्ति नहीं होवेगी याते "सो भव उतरे पार" कर कहै तरण की याही मत में सिद्धि हेतु मत की उत्तमता कहो यां अभिप्राय से आशंका करे "तर्क" इति गाढ़-दृढ़, क्यों कर—किस प्रकार, सो यह हेतु सहित कथन है अर्थात् जिसते उन मतों में तर्क बहुत है, याते कैसे त्यागै ? मत त्यागे तौ भी इस मत में आवने से कैसे तरेंगे यह आशंका कर कहे "बिना" इति ताते—ना आवने ते ।। ६३ ।।

वेद औ वेदानुसारी तर्क से रहित होने कर भ्रममूलकता ही परमतों में अनुत्तमता कहे "वेद" इति तर्क विहीन—वेदानुसारी युक्तियों से रहित, सो यह मतों के भ्रान्तिमूलकता में हेतु है। ताते नाम भ्रममूलक होने ते ।। ६४ ।।

तिनके मत भ्रममूलक हैं इतनी प्रतिज्ञा मात्र से ही मतों का त्यागना बने तौ तिन मतों वालों के वेदान्त मत ही भ्रममूलक है यह कहने ते याका भी त्याग हुआ चाहिये, या ते पर्वत अग्नि वाला है, या प्रतिज्ञा की सिद्धि में धूम हेतुवत् मतों को भ्रममूलकता का साधक युक्ति रूप हेतु भी आवश्यक कहना या भाव से कहे "ननु" इति प्रतिज्ञा करी उदार कहिये तिन के मत भ्रममूलक है ऐसा वचन मात्र जो कहया भयों न ताते—हेतु कहे बिना हुआ नहीं इतने मात्र से ताहि परिहार

सिद्धान्ती—

परमत दार तर्क गण जोई । वेदव्यास भाखि यौं सोई ।
वहुर आचार्य सो विस्तार्‍यो । भाष्य शारीरकमाहि उचार्‍यो ॥६६॥

तटस्थ—

ननु किह भाँति निवारे व्यास । कीजे सो परकार प्रकाश ।
सो प्रकार कहौं अब तोसों । सावधान मन सुनियो मोसों ॥६७॥

सिद्धान्ती—

अब प्रधान मल्ल मर्दन न्याय से प्रथम सांख्यमत प्रक्रिया का निराकरण करते हैं ।

पञ्चम सूत्र ते लै व्यास । सांखी को मत क्रियो निरास ।
ते सांखी पुनि या विधि गावै । निज परिपाटी भाखि सुनावै ॥६८॥

मुमुक्षु को त्यागने योग्य तिनका खण्डन, कौन युक्ति सो—किस युक्ति रूप हेतु से भ्रममूलकता निश्चय कर, ताहि निवारे—तिनको त्यागे, या ते नर नहि ताहि विचारैं कहिये जिस युक्ति रूप खण्डन से दूर हुये को देखने ते पुरुष ना विचारे ॥ ६५ ॥

ब्रह्मसूत्र में व्यास भगवान् की कही पुनः तिनके भाष्य में आचार्य की कही युक्तियों से भ्रममूलकता निश्चय कर "ना विचारैं" यह कहे "पर मत" इति परमत—दार परमतों के विदारण करने वाला अर्थात् खण्डन करने वाला सोई के आगे ब्रह्मसूत्र में शेष, कहां विस्तारया है ? तहां कहै "भाष्य" इति भाष्य शारीरक माहिं—शारीरक भाष्य विषे ॥ ६६ ॥

ब्रह्म सूत्र में कही तर्कों के इहाँ जानने वास्ते प्रश्न करे "ननु" इति, सो प्रकार—व्यास का कह्या प्रकार, कथन हेतु सावधान करे सिद्धान्ती "सो" इति ॥ ६७ ॥

व्यासोक्त प्रकार कथन का आरम्भ स्थल कहे "पंचम" इति, पंचम सूत्र ते कहिये पूर्व चार सूत्रों से ब्रह्म जगत् का कारण है, यह सिद्धान्त किये, परन्तु वह भी वास्तव से ज्ञान क्रिया शक्ति वाला है वा रहित है ? यह संशय भया तहाँ कूटस्थ ब्रह्म में ज्ञान क्रिया रूप विकार बनते नहीं और ज्ञान क्रिया वाला कारण होवे है या ते यथाक्रम सत् रज प्रधानता को लेकर प्रधान में ज्ञान क्रिया सम्भव से वही कारण है औ ताही

गुण की साम्य अवस्था जोई। नाम प्रधान कहावै सोई।
जब वह साम्य अवस्था त्यागे। जग को जनन तबै वह लागे ॥६९॥
पूर्व सो महतत्व उपावै। बहुरि हंकार त्रिधा उपजावै।
बहुरो भूत मात्रा जोई। ता द्वारा उपजे भव सोई ॥७०॥

के प्रतिपादक "यतो वा" इत्यादिक वेदान्त वाक्य हैं ऐसे भये "सत् नाम कर्ता पुरुष" यह पुरुष को कर्तापना भी नहीं, यह सांख्य की आशंका श्रवण कर सांख्य मत कल्पित प्रधान जगत् का कारण नहीं, वेद प्रमाण कर रहित होने ते, औप्रधान वेद प्रमाण कर रहित है, जगत् कारण में चेतन का धर्म भूत "एकोऽहं बहुस्याम" ऐसी इच्छा श्रवण ते, इस अर्थ वाले "इक्षतेर्नाशव्दम्" या पञ्चम सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र पर्यन्त से वेद प्रमाणहोनता सिद्ध कर प्रथम अध्याय में औ जड़की प्रवृत्ति की अनुपपत्ति प्रतिपादन से युक्तिहीनता सिद्ध कर दूसरे अध्याय में कूटस्थ ब्रह्म में भी माया प्रभाव ते जगत् कारणता का निर्वाहक ज्ञान-क्रिया मानते व्यास भगवान् ने सांखी को मत— कापिलो का मत, क्रियो निरास—खण्डन किया, तहाँ तिनहीं खण्डनों के दिखावने हेतु "सति कुडये चित्रम्" न्याय से मत प्रक्रिया कहे "ते" इति, परिपाटी-प्रक्रिया ॥ ६८ ॥

प्रक्रिया कहे "गुण की" इति गुण की नाम तीनों गुणों की, महदादिक तेईसविकारों को अपने विषे धारण कर प्रलय में निर्विकार रूप समानता से जो स्थिति (अवस्था) नाम प्रधान कहावै सोई—वह निखिल विकारों का आदि कारण रूप प्रधान नाम तत्त्व कहावे है। प्रधान जगत् को कब रचे है ? तहाँ कहे "जब" इति त्यागे—काल कर्म की प्रेरणा से शेष। ६९॥

कैसे रचे है ? तहाँ कहे "पूर्व" इति पूर्व सो महत्तत्त्व उपावै कहिये सर्व ते प्रथम वह अल्प रजो तमो पुनः अधिक सतोगुण वाले अपनी इच्छा रूप स्फटिकवत् शुद्ध परिणाम महत्तत्व को रचे है अर्थात् जैसे काहू महासरोवर में बड़ी वस्तु के गिरने से वाका जल बढ़े है ऐसे काल कर्म की प्रेरणानुसार ज्ञान हेतु रूप सत्वगुण बढ़े हैं, तिस सत्वगुण प्रधान प्रकृति "एकोऽहं बहुस्याम्" ऐसे इच्छा रूप महत्तत्त्व नाम परिणाम को रचे हैं, तदुक्तं भाव प्रकाशे "शुद्ध स्फटिक संकाशं तदिच्छामयमीरितम्" इति। पुनः क्या रचे हैं ? तहाँ कहे "बहुरो" इति, भूत मात्रा कहिये सूक्ष्म भूत, ता द्वारा अहंकार द्वारा ॥ ७० ॥

बहुरो उपजे निखिल विकार । षोड़श संख्या ता निर्धार ।
पाँचो महाभूत पहिचानो । एकादश इंद्रिय उर आनो ।।७१।।
मूल प्रकृति अविकृति इइये । प्रकृति विकृति सप्त पुनि पइये ।
षोड़श ते पुनि अहे विकार । प्रकृति न विकृति पुरुषविचार ।।७२।।
या विधि जग प्रधान उपावै । नरको भोग मोक्ष दिखलावै ।
तट०—**ऐसे सांखी भाषै ज्ञान ।** सिद्धा०—**तामें नहिं पइये प्रमाण ।।७३।।**

पुनः क्या उपजे है ? तहाँ कहे "बहुरो" इति निखिल विकार—सम्पूर्ण कार्य, संख्या-गिनती, षोडश विकार कौन से हैं ? तहाँ कहे "पाँचो" इति महाभूत—स्थूलभूत पृथ्वी आदिक, एकादश इन्द्रिय, मन सहित ।। ७१ ।।

पुरुष को असंगता बोधन हेतु कार्य कारण भाव की व्यवस्था कहे "मूल" इति प्रकृति नाम उपादान कारण का है, विकृति नाम कार्य का है, महत्तत्व से लेकर भूत मात्रा पर्यन्त आगे वालों के कारण है और पीछे वालों के कार्य है । षोडश कार्य मात्र हैं यह कहे "षोडश" इति, अहे विकार—है कार्य मात्र, यद्यपि पृथ्वी आदिक विकार भी घट पट आदिक विकारों के प्रकृति हैं याते तिनको कार्य मात्र कहना नहीं बने तथापि घटादिकों को स्थूलता औ इन्द्रिय ग्राह्यता की समानता से घटादिक पृथ्वी आदिकों से भिन्न तत्त्व नहीं औ इहां प्रकृति शब्द से अपने से भिन्न तत्त्व के उपादान कहिये है, याते तिनको कार्य मात्र कहना बने है और याही ते घटादिकों को तत्वान्तर न होने से तत्त्व भी चौवीस से अधिक नहीं बने, पुरुष को असंगता कहे "प्रकृति" इति अर्थात् पुरुष कार्य कारण दोनों से असंग है ।। ७२ ।।

या विधि नाम कही प्रक्रिया से, जगत् रचना का प्रयोजन कहे "नर को" इति पुरुष को भोगमोक्ष दिखावना ही जगत् रचना का प्रयोजन है "किह भाँति निवारै व्यास" पूछते को व्यासोक्त प्रकार सुनावन हेतु प्रथम "ते सांखी" इहाँ ते लेकर कही प्रक्रिया को अप्रामाणिक कहता हुआ समाप्ति करे "ऐसे" इति "ऐसे" से लेकर "पइये प्रमाण" पर्यन्त को तटस्थ का कथन माने "सो प्रकार कहों" "ते सांखी पुनि या विधि गावै" इत्यादि कथन की असंगति होवेगी ऐसे आगे भी जहाँ विन्दुओं से उलटी तरह होय तहां ना कहा भी दोषचिन्तन कर लेना ।। ७३ ।।

साम्य अवस्था त्यागन जोई। करे प्रधान सो किह विधि सोई।
त्यागन को वह नहिं प्रवीन । जाते चेतनता ते हीन ॥७४॥
नहिंको चेतन ताके संग । पुरुष एक है सो आसंग ।
माटी सोना चेतन संगा । कार्य हेतु होय सर्व अङ्गा ॥७५॥
ऐसे दृष्ट माहिं ज्यों होई । अदृष्ट माहिं मानियै सोई ।
दृष्ट विलक्षण कल्प्यो जोई । वेद विहीन बने नहिं सोई ॥७६॥

जब साम्य अवस्था त्यागे है तब जगत रचे है यह कह्या तहाँ जगत् की उत्पत्ति का हेतु रूप साम्यावस्था का त्याग प्रधान स्वतः करे है वा पर चेतन के सम्बन्ध से करे है इत्यादि रीति से खण्डन करना रूप व्यासोक्त प्रकार सुनावे सिद्धान्ती "साम्य" इति पूर्व "जब वह साम्य अवस्था त्यागे" पाठ से कह्या त्यागन किह विधि नाम" किस प्रकार अर्थात् स्वतः करे है वा पर चेतन के सम्वन्ध से ? उत्तर विकल्पों में प्रथम की असिद्धि कहे "त्यागन" इति, ना त्यागने में हेतु कहे "याते" इति, जिससे चेतनता रहित है ताते त्यागने को समर्थ नहीं ॥ ७४ ॥

दूसरे की असिद्धि कहे "नहिं" इति, ना संग होने में हेतु कहे "पुरुष" इति, एक के आगे चेतन शेष, अर्थात् पुरुष ही एक चेतन है वह पुनः असंग नाम प्रधान साथ सम्वन्ध रहित है औ लोक में मृत्तिका स्वर्णादिक जड़ की प्रवृत्ति चेतन के सम्वन्ध से ही देखी है, याते अदृष्ट कल्पना को दृष्टानुसारिता के नियम ते प्रधान जड़ की प्रवृत्ति चेतन सम्वन्ध से ही कहो सोई कहे "माटी" इति, माटी सोना नाम मृत्तिका स्वर्णादि जड़ वस्तु चेतन रूप कुलाल स्वर्णकार के सम्वन्ध से घट कुण्डल रूप कार्यों के हेतु होवे हैं सर्व अवयवों से ॥ ७५ ॥

ऐसे दृष्ट नाम देखे माटी स्वर्णादिकों में जैसे चेतन सम्बन्ध से प्रवृत्त होना है तैसे अदृष्ट माहि कहिये अनुमानगम्य जड़ प्रधान में भी, सोई नाम चेतन सम्बन्ध से प्रवृत्त होना अवश्य अङ्गीकार करों अन्यथा शशशृङ्गों की प्रसिद्धि का भी प्रसङ्ग होवेगा, काहे ते ? शशशृङ्ग सत्य है ऐसी प्रतिज्ञा कर दृष्टान्त की इहां भी चाह नहीं, किञ्च "एकोऽहं बहुस्याम" इत्यादि वेद विरुद्ध होने से भी दृष्ट विलक्षण कल्पना नहीं बने यह कहे "दृष्ट" इति दृष्ट नाम दृष्टों से अर्थात् चित् सम्बन्ध से कार्य के हेतु होने वाली माटी आदिकों से विलक्षण कल्पयो जोई नाम

अब सांखी चेतन निरपेक्ष जड़ प्रधान की प्रवृत्ति में दृष्टान्त कहता है।

दोहा

पूर्वपक्षी—

जैसे बछरे के निमित्त, स्रवे थननते दूध।
चेतनता बिन ज्यों चले, सागर को जल सूध ॥७७॥
तैसे सुनो प्रधान यह, पुरुष भोग अरु मोक्ष।
कारण जग उर धारकै, करै न लागै दोष ॥७८॥

अब सिद्धान्ती सांखी के दृष्टान्त को विषम कहता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

दूध स्रवन में हेतु पछानो। धेनु प्रेम उर अन्तर आनो।
सुत चोसन चेतन व्यापार। निम्न देश को चाहै वार ॥७९॥

जड़ प्रधान में स्वतः सृष्टि करण रूप जो और प्रकार की कल्पना करी है वह वेद विहीन नाम जगत्कारण में "एकोऽहं बहुस्याम्" इत्यादि इच्छा प्रतिपादक वेद रहित होने से बने नहीं अर्थात् वेद इच्छा वाले को जगत् कारणता कहे है औ प्रधान जड़ में वह बने नहीं याते तामे जगदाकार प्रवृत्ति होना भी नहीं बने ॥ ७६ ॥

ननु तेज इच्छा करता हुआ जल इच्छा करता हुआ ऐसे वेद विषे जड़ों में इच्छा श्रवण ते प्रधान में भी गौण इच्छा रहो याते वेद विहीनता नहीं, पुनः जलादि दृष्टान्त के सम्भव से दृष्टानुसारिता भी बने है यह आशंका करे "जैसे" इति ॥ ७७ ॥

कारण जग उर धार कै पूर्व के संग, पुरुष को भोग मोक्ष का कारण जगत् को हृदय में मानकर प्रकृति करे है, या ते दृष्टान्त का अभाव औ वेद विहीनता रूप दोष नहीं लागे ॥ ७८ ॥

कहीं भी मुख्य ना भई इच्छा को प्रधान में गौणता नही बने या ते वेद विहीनता पुनः दुग्धादिकोकों में निमित्तान्तर सापेक्षता तथा अन्तर्यामी कर प्रेरकता श्रवण से स्वत-प्रवृत्ति में दृष्टान्त असिद्धि रूप दोष वैसे ही है यह परिहार करे "दूध" इति, हेतु कहे—"धेनु" इति, धेनु प्रेम—गौ की प्रीति। सुत चोसन चेतन व्यापार नाम—बछड़े का चूंगना

अन्तर्यामी सब मैं होई। चेतन बिन कर्ता नहि कोई।
अन्तर्यामी वेद बखानै। चेतन बिन कर्ता नहिं मानै ॥८०॥

अब प्रधान कारणवादी प्रकारान्तर से स्वमत की सिद्धि करता है।

पूर्वपक्षी—

ननुसात्विक गुणलघुप्रकाश। तमगुरू अहैअवरण विलास।
सतो तूलवत ऊर्ध जावै। तम पाथर सम अधहि खिसावै ॥८१॥
रजगुण ता धारनको होई। चलन स्वभाव कहीजे सोई।
आप स्वतः वह चलन स्वरूप। औरन चाले रजो अनूप ॥८२॥

चेतन की क्रिया है जल के चलन में निमित्त कहे "निम्न" इति निम्न-देश को नीची जगह को ॥ ७९ ॥

निमित्तान्तर सापेक्षता तो प्रधान प्रवृत्ति में भी काल कर्म की प्रेरणा रूप बने है या ते चेतन बिना प्रवृत्ति नहीं होवे यह नेम नहीं यह आशंका कर, अन्तर्यामी ब्राह्मण में सबके भीतर होकर चेतन प्रेरे है यह कह्या है याते नेम बने है यह कहे "अन्तर" इति अन्तर्यामी सबमें होई नाम भीतर होकर प्रेरने वाला सब में है यह बात कहां कही है ? यह आशंका कर कहे "अन्तर" इति अन्तर्यामी वेद बखानै नाम वृहदारण्यक उपनिषद् में अन्तर्यामी ब्राह्मण है सो यह बात कहे है औ कहता हुआ चेतन बिना और कोई कर्ता नहीं माने है याते जड़ की प्रवृत्ति में कोई दृष्टान्त नहीं बने, ब्राह्मण मन्त्र वेद के दो भाग हैं तिनमें छन्द रूप वेद मन्त्र भाग है, बिना छन्द रचना से खुली संस्कृत ब्राह्मण भाग है यद्वा मूल रूप वेद ब्राह्मण भाग है टीका रूप वेद मन्त्र भाग है ॥ ८० ॥

अर्थापत्ति प्रमाण ते प्रधान की प्रवृत्ति सिद्ध होवे है याते दृष्टान्त के असिद्ध भये भी दोष नहीं यह आशंका करे "ननु" इति ननु सात्विक गुण लघु प्रकाश नाम सतोगुण हलका है औ प्रकाश है, तम गुरु अहै= तमो गुण भारी है, औ अवरण विलास कहिये आवरण स्वरूप है, लघु होने ते अग्नि की शिखा औ आक की रूईवत् ऊपर को जाना चाहे है औ गुरु होने ते तमो पाषाणवत् तले जाने की इच्छा करे है यह कहे "सतो" इति ॥ ८१ ॥

तिन दोऊ को चल स्वरूप रजो रौके है, पुनः अग्नि उष्णवत् स्वाभाविक चलन वाला होने ते औरों को चलावे है इस प्रकार अर्थ

यों तीनों में क्रिया भई। सृष्टि सकल ताते निर्मई।

अब सिद्धान्ती तटस्थ को अभिमुख करता हुआ प्रधानकारण वादी की पूर्व उक्ति का खण्डन करता है।

सिद्धान्ती—

याविधि सांख्य व्यवस्था गाई। जाते काम सरे नहिं राई ॥८३॥
ऐसे जे वह चलन स्वभाव। सर्ग होय नहिं कदे अभाव।
प्रलय होय कदे जग नाहीं। साम्य अवस्था पायत नाहीं ॥८४॥

अब सांखी स्वमत में उत्पत्ति प्रलय रूप दोष का प्रहार करता है।

पूर्वपक्षी—

ननु कर्मन ते व्यवस्था होई। जामें दूषण रहे न कोई।
पूर्व सर्ग भोगनके योग। कर्म रचे बहुविधिके भोग ॥८५॥

ते गुण तीनों की साम्यावस्था रूप प्रधान की प्रवृत्ति सिद्ध भया ताते सृष्टि बने है यह बात "निर्मई" पर्यन्त से कहे "रज" इति ता धारण को—तिनके रोकने को ॥ ८२ ॥

ताते निर्मई नाम तीनों की क्रिया ते बनी, यह भी तुच्छ है यह तटस्थप्रति पुनः कहै सिद्धन्ती—"या" इति व्यवस्था—प्रधान से जगत् रचना का प्रकार ॥ ८३ ॥

कारण के विद्यमान भये कार्य विलम्ब ना देखने से स्वाभाविक चलन से सर्वदा सर्ग भये प्रलय की असिद्धि पुनः प्रलय के असिद्ध भये विकारों से रहित होकर बराबरपने से गुणों की स्थिति रूप साम्य अवस्था की असिद्धि होवेगी यह कहे सिद्धान्ती "ऐसे" इति सर्ग के ना अभाव भये दोष कहे "प्रलय" इति ॥ ८४ ॥

यावत् कारण सामग्री के होने से कार्य होवे है यत् किञ्चित् से नहीं, याते जगत् कारण प्रधान के होने से भी पूर्व सर्ग के प्राणियों के भोगने योग्य भोगों को देकर पूर्व सर्ग के कर्मों के नाशभया और वर्तमान सर्ग के भोग देने योग्य कर्मों के परिपाक ना भया बीच में अर्थ ते प्रलय की पुनः तासे साम्यावस्था की, सिद्धि भया दोऊ दोष नहीं यह आशंका कर कहे "ननु" इति, जामे—कर्मों ते व्यवस्था में, व्यवस्था कहे "पूर्व" इति, पूर्व सर्ग भोगन के योग नाम वर्तमान सृष्टि से पूर्व सृष्टि में भोगने के योग्य जो कर्मों के रचे हुए अनेक प्रकार के सुख-दुःख के साक्षात्काररूप भोग हैं।।८५।।

देकर भोग होय क्षय जबही । प्रलय जगत की होवै तबही ।
या विधि साम्यावस्था होई । नहिं दूषण या भीतर कोई ॥८६॥
याहि सृष्टि के कारण जेई । लीन रूप प्रकटै नहिं तेई ।
लीन कर्म पाके पुनि जबही । मिल प्रधान उपावै तबही ॥८७॥

अव सिद्धान्ती प्रधान वादी की उक्ति का खण्डन करता में दोषान्तर कहता है ।

दोहा

सिद्धान्ती—

कर्म नियम ते नियमको, कहां बखाने कोय ।
जग पूर्व नहिं ते भये, ते जग उत्तर होय ॥८८॥

चौपाई

प्रथम प्रधान एकही होई । पुनि महतत्त्व उपावै सोई ।
क्रमही क्रम सो तन उपजावै । ताते कर्म जन्मको पावै ॥८९॥

जब ही के आगे वर्तमान सृष्टि में भोग देने योग्य कर्मों का जब परिपाक नहीं भया यह शेष कर (लेना) । देकर भोग हो क्षय जब ही नाम तिन भोगों को देकर वह कर्म जब नाश को प्राप्त होवे है औ उत्तर सर्ग में भोग देने योग्य कर्मों का परिपाक ना होने से फल देने को सन्मुख नहीं भये तब अर्थ ते प्रलय की सिद्धि पुनः ता से साम्यावस्था की सिद्धि होवे है सोई कहे "प्रलय" इति ॥ ८६ ॥

सर्ग के आदि काल में कर्मों के परिपाक निमित्त से प्रधात की प्रवृत्ति सिद्ध भया, प्रलयवत् उत्पत्ति भी अर्थ ते सिद्ध भई यह कहे "याहि" इति ॥ ८७ ॥

अन्योन्याश्रयादिक दोष से कर्म द्वारा व्यवस्था नहीं बने यह परिहार करे सिद्धान्ती "कर्म" इति कर्म नियम ते नाम पूर्व सर्ग में सञ्चित धर्माधर्म ते, नियम को नाम व्यवस्था को कहाँ बखाने कोय—क्या कहै कोई, नियम ना कहने में हेतु कहे "जग" इति ॥ ८८ ॥

उत्तर होना स्पष्ट करे "प्रथम" इति क्रम ही क्रम कहिये पहले आप होकर पुनः महत्तत्त्व को रच कर सृष्टि को रचे है ॥ ८९ ॥

कर्मन ते पुनि चले प्रधान । अन्यो अन्य आश्रयता मान ।
उत्पत्ति पालन अरु संहार । कर्म नियम ते दूर विचार ॥९०॥

दोहा

अब सांखी ते मत विषे, दूषण भाषों और ।
जगत जन्म जैसे गयो, बंध मोक्ष नहिं ठौर ॥९१॥

कर्मों को प्रधान की अपेक्षा सिद्ध कर प्रधान की प्रवृत्ति में कर्म की अपेक्षा सिद्ध करे "कर्म" इति परस्परापेक्षा से अन्योन्याश्रय दोष होवे है। अधिक अपेक्षा से चक्रिका आदिक होवे है यह दोष भी कर्मों से प्रधान की प्रवृत्ति होवे है यह मान कर कहे वास्तव ते तो सांख्य मत में रीति ही और है सोई दिखावे हैं जैसे क्षेत्र वाला पुरुष एक केदार से और केदार में पानी देने की इच्छा करता हुआ पानी को हाथ से नहीं खैंचे है किन्तु प्रतिबन्ध दूर कर देवे है जल पीछे आप ही पहुँचे है ऐसे धर्म से अधर्म का किया सुखरूप सृष्टि का प्रतिबन्ध औ अधर्म से धर्म का किया दुख रूप सृष्टि का प्रतिबन्ध दूर होवे है वह प्रधान प्रवृत्ति में हेतु नहीं, प्रधान आप ही प्रवृत्त होवे है यह रीति है सो यह भी प्रलय काल में प्रतिबन्ध दूर करने के कारण धर्माधर्म के रहे तहाँ भी सृष्टि के प्रसंग की प्राप्ति से असंगत है ॥ ९० ॥

किञ्च असंग उदासीन पुरुषों में वास्तविक वा कल्पित रूप प्रकृति का सम्बन्ध ना मानने से विना कारण अग्निउष्णवत् स्वभाव सिद्ध वा सम्बन्धाभाव रूप कारण वाला बन्ध मानना होवेगा, तिनमों प्रथम में अग्नि के उष्णवत् बन्ध को पुरुष स्वभाव भया अनेक साधनों से ताकी निवृत्ति न होने से मोक्ष की असिद्धि होवेगी या भय से दूसरा मानो तब मुक्तों में बन्ध की अतिव्याप्ति होवेगी, या भाव से जगत् जन्म की असिद्धि-वत् जगत् रचना के प्रयोजन की असिद्धि कहे "अब" इति, अब नाम "जब वह साम्य अवस्था त्यागे" से लेकर "या विधि जग प्रधान उपावै" पाठ से कहे जगत् जन्म की असिद्धि कथन काल में ही तेरे मत में "नर को भोग मोक्ष दिखलाये" या प्रयोजन का असम्भव रूप और दोष कहता हूँ सो कहे "जगत्" इति ॥ ९१ ॥

दोहा

उदासीन है पुरुष असङ्ग । प्रधान साथ भेटे नहिं अङ्ग ।
ऐसे सांख्य तन्त्रमें गायो । बन्ध मोक्षको हेतु गँवायो ॥९२॥

चौपाई

विना सङ्ग प्रकृति जे, बंधन करे बनाय ।
मुक्त होय नर जे गये, तिन भी बंधन पाय ॥९३॥

अब प्रधान वादी स्वमत में उक्त दोष का प्रकारान्तर से परिहार करता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

प्रधान नाम कुल वधू पछानो । पेशल ते अति पेशल मानो ।
अन्य पुरुष हेरे इकबारा । बहुरि न दर्शन देइ उदारा ॥९४॥
मैं कुलवधू निहार्‍यो मोही । यह मो को है दूषण दोही ।
यद्यपि रहै एक पुर माहीं । तदपि दर्शन देवे नाहीं ॥९५॥

भेटे नहिं अङ्ग नाम नहीं मिलावत अङ्ग अर्थात् नहीं रखता वास्तव वा कल्पित सम्बन्ध, तन्त्र-शास्त्र, बन्ध मोक्ष को हेतु गँवायो कहिये बन्ध मोक्ष का हेतु दूर किया अर्थात् विना कारण स्वभाव सिद्ध बन्ध कह्या याते ताकी निवृत्ति नहीं होवेगी ॥ ९२ ॥

मोक्ष की असिद्धि प्रसंग दोष ते प्रथम पक्ष छोड़ दूसरा मानते प्रति-मुक्तों में बन्ध की अतिव्याप्ति कहे "विना" इति विना संग नाम अपने सम्बन्धाभाव रूप कारण से हो जेकर प्रकृति बन्धन करे है तब सम्बन्धा-भाव रूप कारण को मुक्तों में भी समान होने ते, जो पुरुष मुक्त हो गये हैं तिनको भी बन्धन पावेगी ॥ ९३ ॥

मुक्तों में बन्ध की अति व्याप्ति दूर करने हेतु दृष्टान्त कहे पूर्ववादी "प्रधान" इति प्रधान नाम कुल वधू पछानो नाम प्रधान जिसका नाम है ऐसी कोई कुलीन स्त्री जाननी. पेशल ते अति पेशल मानो नाम कोमल ते अति कोमल है अर्थात् लज्जावाली ते अति लज्जावाली है ॥ ९४ ॥

पुनः ना दर्शन देने में हेतु कहे "दोही" इति दोही-भारी ॥ ९५ ॥

दोहा

त्योंही पुरुष प्रधान की, यद्यपि संगति आहि।
तदपि बंधन नहिं करे, पुरुष विवेकी माहि ॥९६॥

नाराच छन्द

प्रधान खानि दोष की यदासु आप पेखिये।
असङ्ग भङ्ग हीन रूप आपनो सु लेखिये।
तदा प्रधान बन्धको सु त्याग दूर ते गई।
सदोष मोहि हेरियो लजायमान सो भई ॥९७॥

अव सिद्धान्ती सांखी की उक्त युक्ति का परिहार करता हुआ प्रकारान्तर कर दोष दिखाता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

विकारी चेतन जो भव होई। पर दोपन को जानै सोई।
पुरुष निर्विकार नहिं जानै। नहिं प्रधान जाते जड़मानै ॥९८॥

दार्ष्टान्तिक में कहे "त्यों" इति त्योंही कहिये दृष्टान्त में कुलीन स्त्री के अन्य पुरुष साथ समानाधिकरणता सम्बन्ध से एक पुर में रह कर भी दर्शन ना देनेवत्, बन्ध मुक्तसर्व में रहने वाले सम्बन्धाभाव से अधिक दोषदर्शी मुक्त के साथ यद्यपि संगति आहि नाम जेकर कोई संयोगादि सम्बन्ध भी प्रकृति का होवे तदपि कहिये तौ भी, वह विवेकी पुरुषों में उक्त दृष्टान्त से लज्जित हुई बन्धन नहीं कर सके है. यह कहे जो सम्बन्धाभाव की समानता से बन्धन करे ॥ ९६ ॥

बन्धन को ना करना स्फुट करे "प्रधान" इति, भङ्गहीन नाम नाश-रहित, तदा नाम असंगादिक रूपों से ज्ञान काल में ॥ ९७ ॥

यह बात भी परस्पर अभिप्राय और प्रयोजन के जानने वाले चेतनों में बने हैं, ज्ञानशक्ति रूप विकार रहित पुरुष में पुनः जड़ रूप प्रधान में नहीं बने यह कहे सिद्धान्ती "विकारी" इति, विकारी नाम ज्ञानशक्ति आदिक, विकारों वाला, सतगुण प्रधानता को लेकर ज्ञानशक्ति के सद्-भाव ते प्रधान ही अपने दोषों को आप जानकर पुरुष से निवृत्त होवे है यह आशंका कर कहे "नहि" इति नहिं प्रधान जाते जड़ मानै नाम

सुखते हीन मोक्ष तैं भाषै। बुद्धिवान तिह नहिं अभिलाषै।
पुरुष सांख्य में होय न रक्त। जाते मोक्ष ते भयो विरक्त ॥९९॥

जिसते जड़ मानता है याते काच आदिक रूप शुद्ध मृत्तिका से भी पुरुष की दृष्टि बिना काहू वस्तु का ज्ञान ना देखने से, चेतन प्रतिबिम्ब बिना सत्वगुण प्रधान प्रकृति भी नहीं जान सके। प्रकृति जाते कैसे निवृत्ति होवे अर्थात् घट के बनने पीछे भी कुलाल चक्र में भ्रमण देखने ते जड़ों को प्रयोजन की सिद्धि असिद्धि का ज्ञान ही नहीं होवे ॥ ९८ ॥

किञ्च आत्मा सत् और चित् रूप है, आनन्द रूप नहीं, काहेते आनन्द सत् गुण प्रधान प्रकृति का परिणाम है इस रीति से असुख रूप आत्मा की प्राप्ति का नाम सांख्यमत में मुक्ति कहे हैं औ लोक में सुख-हीन वस्तु में काहू की प्रयोजन जान कर प्रवृत्ति देखी नहीं याते तिनकी मुक्ति को अप्रयोजन होने ते ताकी इच्छा ना भये ताका प्रतिपादक शास्त्र भी हेय है, यह बात कथन का आरम्भ करे "सुख ते" इति "बुद्धिमान् तिह नहि अभिलाषै" नाम बुद्धिमान् पुरुष तिस सुख कर रहित मुक्ति की अभिलाषा नहीं करते अर्थात् पाषाण जैसे असुख रूप पदार्थ में यह मेरे को प्राप्त होने के योग्य है ऐसे जानकर श्रेष्ठों की इच्छा नहीं होवे है याही ते कहे "पुरुष सांख्य में होय न रक्त" ना रक्त होने में पूर्वला हेतु कहे "जाते" इति यद्यपि स्वतः अनिष्ट रूप भी निम्ब पानादिकों में रोग निवृत्ति हेतु इच्छा देखने से स्वतः असुख रूप भी मुक्ति को अतिशय कर दुखों का नामरूप जानकर ताकी इच्छा होने ते "नहि अभिलाषै" इत्यादि कथन असंगत है यह आशंका होवे है, तथापि आत्मा स्वतः सुख रूप है वा नहीं, मान लेवे तब असुख रूप मान तेने वैसे मानने से मत हानि, ना माने तब पाषाणवत् तामें प्रेम के अभाव ते काहू वस्तु की भी ताके लिये इच्छा नहीं होवे याते कैसे कहे जो अतिशय कर दुखनाश की इच्छा होवे है, किञ्च आत्मा का सदा सांख्यमत में अनुमान से ही ज्ञान माना है याते अपने पराये आत्मा में अपरोक्षता परोक्षता भेद ना होने से पराये आत्मावत् अपने आत्मा रूप धर्मी के प्रत्यक्ष बिना दुःख रूप धर्मों का प्रत्यक्ष न होने से तिनके नाश की इच्छा नहीं बने यह सार है ॥ ९९ ॥

तव जो भोग मोक्ष उर माने । ताको हेतु प्रधान बखाने ।
सो हम करकै अंगीकार । दूषण भाषे हैं बहुसार ॥१००॥

दोहा

अब सांखी ते मत विषे, बने भोग नहिं मोक्ष।
कृतहानि ते आदि लै, लागे बहुविधिदोष ॥१०१॥

चौपाई

पुरुष अकर्ता तोहि बतायो । भोक्ता ताही को पुनि गायो ।
अकर्ता जे भोक्ता भव होवे । अकृत लगे कृत सब खोवै ॥१०२॥
खाय और औरै तृप्तावै । और जले औरै दुख पावै ।
या विधि नियम गयो जगमाहीं । नियम हेतुको पायत नाहीं ॥१०३॥

पूर्व भोग मोक्ष का अङ्गीकार करके तिनके वास्ते प्रधान की प्रवृत्ति और बुद्धिमानों की शास्त्र में प्रवृत्ति नहीं बने यह कथन किया अब वह भोग मोक्ष ही नहीं बने यह कहे "तव" इति तव जो-तुमने, जो, ताको हेतु–भोग मोक्ष का हेतु, प्रधान बखाने नाम प्रधान की प्रवृत्ति कहीं, सो नाम भोग मोक्ष ॥ १०० ॥

ना बनने में हेतु कहे "कृत हानि ते" इति कृत नाम किये की, हानि नाम निष्फलता से लेकर अकृत की प्राप्ति आदिक अनेक दोष लगने से वह नहीं बने ॥ १०१ ॥

कृत हानि आदि स्पष्ट करने हेतु अनुवाद करे "पुरुष" इति, अकर्ता नाम "प्रकृति ना विकृति पुरुष विचार" इहाँ प्रकृति ना कहने से उपादानतावत् कर्तापना रूप निमित्तता से रहित, ताही को नाम अकर्ता को, सांख्यमत में ऐसे अङ्गीकार है जो पुरुष अकर्ता है पुनः भोक्ता है प्रकृति करे है । भोगे नहीं ॥ १०२ ॥

"अकृत लगे" इत्यादि पाठ से कही वार्ता स्पष्ट करे "खाय" इति, या विधि नियम गयो कहिये कही रीति से जो खाय सोई तृप्ति होवे यह लोकप्रसिद्ध नेम दूर हुआ जगत् में, जाते विना इस वात जो पुरुष करे सोई भोगे और कोई इस नेम का हेतु नहीं प्राप्त होवे, याते कर्तापने साथ जो पूर्व करे सो उत्तर भोगे ऐसा भोक्तापने का नेम दूर भया देह भिन्न आत्मा की भी सिद्धि नहीं होवेगी, काहे ते जो पूर्व सोई उत्तर

दोहा

कैसे भोग असङ्ग मैं, सकै न को निर्धार।
अर्थ कौन प्रधान को, कहो सकल सु विचार ॥१०४॥

भोगे ऐसे नेम माने ही कर्ता रूप देह को परलोक में ना जाने से तहाँ कर्मफल का भोग नहीं होवेगा, याते कर्मफलभोग के और प्रकार ना बनने से पूर्व देह से भिन्न कर्ता रूप जीव अवश्य मानना यह "कृत हानि ते आदि ले" इहाँ कहे आदि शब्द से दोष जान लेना ॥ १०३ ॥

ननु असंग में और रीति से भोग का निर्णय बने हैं यह आशंका कर कहे "कैसे" इति, कैसे भोग असंग में कहिये वास्तविक ते गुणों के साथ सम्बन्धरहित में, औ याही ते निर्विकार में काहू रीति से भोग का निर्णय नहीं बने इहाँ यह भाव है=सांख्य यह कहे है जो करे सो भोगे ऐसा नेम ना माने, पूर्व जो तुमने किये कर्म की निष्फलता औ अकृत की प्राप्ति का प्रसंग पुनः और के भोजन में और को तृप्ति का प्रसंग तथा देह भिन्न आत्मा की असिद्धि का प्रसंग कह्या सो कोऊ नहीं बने, काहे ते ? पूर्व हमने कर्मों की गुणों की प्रवृत्ति के प्रतिबन्ध नाश की हेतुता कही है याते कर्मों के कर्तापने से पुरुषों को भोक्तापना ही बने है, किन्तु भोक्तापना पुरुष और गुणों की शक्तियों का किया है काहे ते ? पुरुष दर्शन शक्ति वाला है याते भोक्ता है औ गुण रचना शक्ति वाले हैं याते भोग्य हैं वह भोक्ता भोग्य दोनों हमारे शक्तियों को व्यर्थता मत होवे ऐसे जानकर उत्साह से प्रवृत्त होवे हैं याते गुणों साथ पुरुष का "अहं-भोक्ता" इस प्रतीति सिद्ध अभिमान रूप सम्बन्ध सिद्ध होवे है तासे अर्थ ते पुरुष को तापरूप भोग सिद्ध होवे है यह सांख्य और रीति कहे है सो भी बने नहीं काहे ते ? पुरुष वास्तविक ते गुण सम्बन्ध रहित है। याही ते निर्विकार है याते अभिमान आत्म सम्बन्ध रूप विकार के ही तामे ना रहने से तिस द्वारा होने वाला ताप रूप भोग काहू रीति से नहीं बने। किञ्च स्वामी के भोग हेतु प्रवृत्ति भये सेवकों की प्रवृति स्वार्थ से देखी है औ भोक्ता शक्तिहीन प्रधान का भोगादि रूप प्रयोजन सम्भवे नहीं, याते ताकी प्रवृत्ति नहीं बने यह सिद्ध करने हेतु पूछे "अर्थ कौन" इति अर्थ कौन प्रधान को कहिये प्रयोजन क्या है प्रधान का, पुरुष को भोग मोक्ष देने में यह कहो, यदि चेतन की प्रवृत्ति में ही स्वार्थ कारण

अब सांखी पूर्वोक्त अर्थ में प्रयोजन कहता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

हम अविवेक ते भोग वखाने। नहिं को अर्थ प्रधानहि ठाने।
दयालु निजार्थ विना जगमाहीं। करे कर्म छाने कछु नाहीं ॥१०५॥

अव सिद्धान्ती पूर्वोक्त तर्क का विकल्पों कर निराकरण करता है ।

काहे को अविवेकहि गावो। ताको रूप सुमोहि वतावो।
पुरुष एक दूसर प्रधान। ताही को जो ऐक्य ज्ञान ॥१०६॥

ताको तुम अविवेकहि गावो। नरको जाते भोग वतावो।
अथवा संस्कार ता केरे। ताहीको अविवेकहि टेरे ॥१०७॥

होवे है, जड़ की में नहीं, यह आशंका होवे तब तो पर के प्रयोजन सिद्धि हेतु प्रवृत्त होना भी चेतन में ही बने है, जड़ में नहीं, याते भोग मोक्ष रूप प्रयोजन हेतु प्रधान की प्रवृत्ति कहनी भी असंगत, याही ते उत्साह को भी चेतन धर्म होने ते उत्साह से शक्तियों की सफलता हेतु प्रवृत्ति होवे है यह भी कथन दूर हुआ ॥ १०४ ॥

अनादि अविवेक बीज से ही प्रकृति के प्रवृत्ति के सम्भव कर स्वार्थ विना भी प्रकृत्ति की प्रवृत्ति से भोग बने है यह आशंका करे "हम" इति स्वार्थ विना प्रवृत्ति में दृष्टान्त कहे "दयालु" इति ॥ १०५ ॥

अघट शब्द में आकार के घटाभाव अर्थवत् अविवेक शब्द में आकार का विवेकाभाव अर्थ है वा अधर्म शब्द में अकार के धर्मविरुद्ध अर्थवत् अविवेक शब्द में अकार का भेद ज्ञान विरुद्ध अभेद ज्ञान अर्थ है, वा अभेद ज्ञान को अधिक काल ना रहने से ताका कार्य संस्कार अर्थ है यह खण्डनार्थ अविवेक शब्दार्थ पूछे "काहे को" इति, विकल्प करे "पुरुष" इति ऐक्य ज्ञान—अभेद ज्ञान अर्थात् पुरुष प्रकृति है ऐसा भ्रम रूप विशिष्ट ज्ञान ॥ १०६ ॥

ता केरे—अभेद ज्ञान के ॥ १०७ ॥

दोहा

अथवा भेद ज्ञानको जो भव माहिं अभाव।
जो अविवेकहि रूप है, सोई कहो प्रभाव ॥१००॥

चौपाई

भिन्न पदार्थं ऐक्य ज्ञान। शशक शृङ्गवत ताको मान।
अन्यथा ख्याति न ते मतमाहीं। और ठौर को आवे नाहीं ॥१०९॥

भेद ज्ञान को = प्रकृति पुरुष से भिन्न है ऐसे निश्चय का जो भव माहिं अभाव नाम जो संसार में अग्रह है अर्थात् अख्याति के अंगीकार ते भेदाग्रह को अविवेक कहता है, सोई कहो प्रभाव नाम वही कहो अविवेक का स्वरूप ॥ १०८ ॥

भिन्न पदार्थों का अभेद ज्ञान भी भ्रम रूप ही होवेगा ता में असत् ख्याति आदिक अनेक मत हैं तिनमो क्रमते असत्ख्याति अन्यथाख्याति अनिर्वचनीयख्याति का प्रकाश कर खण्डन करे "भिन्न" इति, ताको नाम भिन्न पदार्थों के ऐक्य को, "ताको" शब्द से ज्ञान का आकर्षण किये भिन्न पदार्थों का प्रमा रूप अभेद ज्ञान ना भये भी विपर्यय रूप "इदं रजतम्" आदिक ज्ञान को सर्व के अनुभव सिद्ध होने ते शशशृङ्गवत् कथन असंगत होवेगा याते "ताको" शब्द से भिन्न पदार्थों का अभेद ही लेना, यद्वा विशेषणाभाव प्रयुक्त भी विशिष्टाभाव होवे है जैसे दण्ड मात्र दूर होने से दण्डी दूर हुआ कथन होवे है याते ऐक्य ज्ञान में ऐक्य नाम अभेद रूप विषय को असत् होने से तिस प्रयुक्त ज्ञान को शशशृङ्ग तुल्यता कथन है याते "ताको" शब्द से अभेद ज्ञान लेने में भी दोष नहीं, सो यह असत् रूप अभेद के ज्ञान को अविवेकता मनवावतेने अख्याति मानते को असत् ख्याति का प्रसंग दिया भाव जानना। ननु होवे असतख्याति का प्रसंग जब हम पुरुष औ प्रकृति में अपने अपने प्रसिद्ध रहे अभेद को लेकर अभेद ज्ञान न माने यह आशंका कर कहे "अन्यथा" इति, ना होने में हेतु कहे "और" इति और ठौर को—अपने अपने प्रसिद्ध रहे भी। प्रकृति आदिकों का आवे नाहीं नाम प्रकृति पुरुष रूप दो पदार्थों में भान होवे नहीं अर्थात् दोष वशते अन्य देश की वस्तु का अन्य में भान अन्यथा ख्याति कहावे है सो तेरे मत में है नहीं, याते तासे भी निर्वाह नहीं ॥ १०९ ॥

अन्यथा ख्याति रूप है जोई । आगे प्रकट कहेंगे सोई ।
अनिर्वाच्य जो ऐक्यज्ञान । सो मत वेदांती पहिचान ॥११०॥
ताको कहै अविवेक बनाय । हमरे मत में परिहै आय ।
उभयपाश रज्जूगल तेरे । ऐसे मनमहि आवत मेरे ॥१११॥
ऐक्यज्ञान जाते नहिं होयो । संस्कार को ताते खोयो ।
या विधि दोनों पक्ष निवार । अब तीसरको करौं प्रहार ॥११२॥
अभाव नाम तत्त्वांतर जोई । सांख्यमाहिं मान्यो नहिं सोई ।
अधिकरण रूप अभाव बखाने । सो विवेक ते होय न हाने ॥११३॥

इहाँ सामान्य ते कहे रूप को थोड़ा मान कर कहे "अन्यथा" इति । ननु होवे अन्यथा ख्याति का प्रसंग, जब हम पुरुषादिकों में रहने वाले अभेद का भाव माने, हम तो पुनः वेदान्त मत में अविद्या के तादात्म्यवत् अनादि अनिर्वचनीय अभेद का पुरुष प्रकृति में भान माने हैं यह आशंका कर कहे "अनिर्" इति ॥ ११० ॥

अनिर्वाच्य का भान मानते को अपने मत का प्रसंग कहे "ताको" इति, अनिर्वाच्य का अंगीकार किया वेदान्त मत में प्रवेश का भय कर उसका त्याग करे तब असत् वा अन्यथा ख्याति को अंगीकार औ तिन मतों के भय कर उनका त्याग करे तब याका अंगीकार यह कहे "उभय" इति ॥ १११ ॥

कैमुतिक न्याय से संस्कार का परिहार करे "ऐक्य" इति, तीसर को—अख्यातिवादी के सिद्धान्त रूप भेदाग्रह को ॥ ११२ ॥

अभाव—अधिष्ठानरूपता कर चौबीस में अन्तर्गत है वा अधिष्ठान रूप ना होने कर अतिरिरिक्त रूप है यह विकल्प कर तीसरे का परिहार करैं "अभाव" इति तत्वान्तर नाम चौबीस तत्त्वों से भिन्न तत्त्व, सांख्य माहि मान्यो नहिं सोई नाम वह सांख्य सिद्धान्त में मान्य नहीं सोई नाम वह सांख्य सिद्धान्त में मान्या नहीं या भय ते प्रथम मानों तब तत्त्व तो चौबीस ही रहेंगे परन्तु बन्ध के हेतु रूप अविवेक का विवेक ज्ञान से नाश होने कर पुरुष की मुक्ति होवे सो नहीं होवेगी यह कहे "अधिकरण" इति ॥ ११३ ॥

सोरठा

आतम और प्रधान, है अधिकरण अभाव का।
होय न ते मतहान, मोक्ष न कोई होय जग ॥११४॥

तोटक छन्द

नहिं नाश वखानत हो तिनको। जगहेतु बखानतहो जिनको।
नहिं चेतननाश उचारत हो। विधि कौन सु मोक्ष सुधारतहो॥११५॥

भुजंगप्रयात छन्द

प्रधानं विनाशी बखानो विचारो। हने जीव बंधं मतं जाय थारो।
अनाशी प्रधानं सदा तोहि मानी। हनीवात सोई विनाशी बखानी११६

तोटक छन्द

पुनि जीव विनाशी तोहि कहे। कहु मोक्षवधू अबकौन गहे।
पति संग सती वह मोक्ष भई। पति हेरत श्वास निकार गई॥११७॥

दोहा

नर दयालु दृष्टांत जो, भाख्यो तोहि वनाय।
सो ऐसे नहिं हेरियो, परहित कर्म कमाय ॥११८॥
परको दुःख निहार कै, दुखी होय नर दयाल।
स्वदुख के परिहार हित, करे सु कर्म विशाल ॥११९॥

ना हानि स्पष्ट करे "आतम" इति ॥ ११४ ॥

पुरुष प्रधान का न नाश होना स्पष्ट करे "नहिं" इति ॥ ११५ ॥

मोक्ष सिद्धि हेतु प्रधान का नाश कहे हैं यह आशंका कर मत हानि कहे "प्रधानं" इति, मत का जाना बतावे "अनाशा" इति, सोई अनाशी मानना रूप ॥ ११६ ॥

मोक्ष सिद्धि हेतु जीव का नाश माने है यह कहते प्रति, "व्याज चाहते को मूल हानि" रूप न्याय का अवसर सूचन करे "पुनि" इति तोहि कहे—तूं कहे ॥ ११७ ॥

अविवेक को भोग हेतुता अंगीकार स्थल में स्वार्थ बिना प्रवृत्ति में दृष्टान्त की विषमता कहे "नर" इति ॥ ११८ ॥

स्वार्थ कहे "परको" इति, स्वदुःख के परिहारहित नाम अपने

चौपाई

नहिं अविवेक को धर्मी कोई। जाहि अधार जगतमों होई।
एक पुरुष दूसर प्रधान। एकअसंग द्वितीय जड़ मान ॥१२०॥
अविवेकादि जड़माहिं न होई। असंगमाहिं छुहे नहिं कोई।
ज्यों या धर्मी नहिं निर्णीत। त्यों विवेक को धारो चीत ॥१२१॥
सो अब धर्म कौंनको होई। धर्मी ताहिं बने नहिं दोई।
एक असंग द्वितीय जड़ हइये। दोनोंमाहिं विवेक न पइये ॥१२२॥
विना विवेक बने नहिं मोक्ष। कैसे जीव सु त्यागे दोष।

पूर्वपक्षी— अब सांखी स्वमत में युक्ति कहे हैं।

ननु-बोध बुद्धिको धर्म पछानो। और न धर्मी ताको मानो ॥१२३॥
सोई देय जननको मोक्ष। ताते जीव सु त्यागे दोष।

अब सिद्धान्ती पूर्वोक्त युक्ति का विकल्पों कर खण्डन करता है।

सिद्धान्ती—

नहिं सम्यक् यहमतो तुम्हारो। जड़ता हेतु ताहिमो धारो ॥१२४॥

दुख के परिहार वास्ते, सो यह अपने दुःख कापरिहार ही प्रयोजन है ॥११९॥

रहो विना विचार अविवेक का जैसा कैसा स्वरूप पुनः भोगों के जनक अविवेक रूप धर्म का धर्मी कोई नहीं वने यह कहे "नहिं" इति जाहि अधार—जिस धर्मी के आश्रित, धर्मी ना होने में हेतु कहे—"एक असंग" इति ॥ १२० ॥

बन्ध के हेतु अविवेक के धर्मिवत् मोक्ष के हेतु भूत विवेक का भी धर्मी कोई निर्णय नहीं होवे याते ताको मोक्ष हेतुता नहीं बने, यह मोक्ष की असिद्धि कथन का आरम्भ करे "ज्यों" इति या धर्मी नाम अविवेक का धर्मी ॥ १२१ ॥

सो–विवेक, अब—विचार काल में ॥ १२२ ॥

ननु मत होवे प्रकृति पुरुष में विवेक, सत्गुण प्रधान प्रकृति के कार्य बुद्धि में ताके सम्भव ते ताही कर पुरुष की मुक्ति होवे है यह आशंका करे "ननु" इति ॥ १२३ ॥

सोई—बुद्धि का धर्म विवेक, दोष नाम वन्ध। बुद्धि विवेकहीन है, जड़ होने ते, घटवत्, यह परिहार करे "नहिं" इति ॥ १२४॥

होय विवेक बुद्धिके माहीं । वन्धन हरे जीवके जाहीं ।
सो कहु आतम सङ्गति पाय । उत विना सङ्गति ताहि मिटाय ॥१२५॥
प्रथमे जीव ससङ्गहि भयो । असङ्ग सिद्धांत तुम्हारो गयो ।
द्वितीय करे न काहू मोक्ष । अथवा हरे सकल नरदोष ॥१२६॥
यह नर बंध यही भवमुक्ता । याहि विखे नहिं हेरी युक्ता ।
तर्क गाढ़ शंकाथी जोई । भई निराश सांख्यमत सोई ॥१२७॥
ईक्षण पूर्व सृष्टि बखान । वेद करे सांखीमतहान ।
याते बृद्ध हमारे जेई । कर्ता पुरुष बखाने तेई ॥१२८॥

होवो विवेक का विना विचारे बुद्धि में सम्भव, तथापि ताको वन्ध नाशकता आत्मा के सम्वन्ध से है वा विना सम्वन्ध है इन विकल्पों से खण्डन हेतु कहे "होय" इति होय नाम होवो, जाही नाम जावे, सो नाम बुद्धिगत विवेक, सङ्गति = सम्बद्ध ॥ १२५ ॥

सम्बन्ध पक्ष में मतहानि कहे "प्रथमे" इति दूसरे सम्वन्धाभाव को सबमें समान होने ते याके साथ सङ्गति है ताकी मोक्ष करे है । जाके साथ सङ्गति नहीं ताको वन्ध रहे है ऐसे एक पक्ष के सिद्ध करने वाली युक्ति के अभाव कर मोक्ष होवे तो सबकी ना होवे तो सबकी यह कहे "द्वितीय" इति ॥ १२६ ॥

विनिगमना विरह सूचन करे "यह" इति, युक्ता नाम एक पक्ष का साधक प्रमाण। "तर्क गाढ़ पूर्व मत माहीं" यह आशंका करते का राजी नामा पूछे "तर्क" इति, भई निराश हुई खण्डन—सो यह राजी नामा पूछा है ॥ १२७ ॥

ननु होवे युक्तियों से मत का बाध, वेद से तो बाध नहीं, यह आशंका कर व्यासोक्त पञ्चम सूत्र के मूलभूत वेद को बाधकता कहे "ईक्षण" इति ईक्षण पूर्व सृष्टि बखान कहिये "एकोऽहम् बहुस्याम्" ऐसी इच्छा है पूर्व जाके ऐसी उत्पत्ति को कहता हुआ वेद सांख्यमत की हानि करे है याही ते पुरुष को कर्तापना भी सम्यक् है सोई कहे "याते" इति, याते—ईक्षण पूर्वक सृष्टि कहते वेद का चेतन पुरुष को हेतुता में तात्पर्यते ॥ १२८ ॥

अब तटस्थ और सिद्धान्ती के प्रश्नोत्तर ।

तटस्थ—

ननु कपिलमत जे अनुसारे । ते सर्वज्ञ सुताहि उचारे ।
ताते ताहि बखान्यो जोई । साचो नर उर धारे सोई ॥१२९॥

सिद्धान्ती—

शिष्य बखान्यो सर्व ज्ञान । बुद्ध अर्हंत समान पछान ।
ते भी तिंह सर्वज्ञ बखाने । ताही को उर क्यों नहिं माने॥१३०॥

दोहा

तटस्थ—

कपिल बनायो सांख्य को, सो भगवत अवतार ।
कैसे खण्डन सो कियो, सिद्धान्ती—**यहि शंका नहिं धार ॥१३१॥**
सांख्य बनायो जाहिने सो भगवतते आन ।
ईश निराश न कीन तिहिं हेतू परम पछान ॥१३२॥

सर्वज्ञ ऋषिकर कथित होने ते ही मत सम्यक् है, याते युक्तियों से हमारी वाणी वन्द भये भी मत असम्यक् नहीं यह पूर्वपक्षी का हार्द सुन कर तटस्थ कहे "ननु" इति ताते—सर्वज्ञ होने ते, ताहि—कपिल मुनि ने ॥ १२९ ॥

शिष्यों ने गुरु को कही सर्वज्ञता ताके मत में प्रवृत्ति की हेतु रूप प्रामाणिकता का साधक नहीं होवे अन्यथा बौद्ध मत में भी प्रवृत्ति होनी चाहिये यह परिहार करे "शिष्य" इति सर्वज्ञान—सर्वज्ञता, ते भी—बुद्ध अर्हन्त के शिष्य भी ॥ १३० ॥

वेद प्रतिपाद्य को अवैदिकों की समानता कथन उन्मत्तता का सूचक है यह कापिलों की आशंका का तटस्थ पुनः अनुवाद करे "कपिल" इति, वेद प्रतिपाद्य कपिल और हैं यह कहे सिद्धान्ती "यहि" इति ॥ १३१ ॥

आन होने में हेतु कहे "ईश" इति, ईश निराश नाम ईश्वर का खण्डन, सो यह ईश्वर का खण्डन करना ही आन होने में बड़ा हेतु है आप ईश्वर होते तौ अपना खण्डन करना तिनमें ना होता यह भाव है। यद्यपि आप ईश्वर भी बुद्ध ने अपना खण्डन किया है या ते उक्त हेतु को

चौपाई

कपिल नाम ते अहे समान । और विलक्षण सकल पछान ।
ऋषि प्रसूनु कपिल बड़भाग । ज्ञान परम अरु भरे विराग ॥१३३॥
या विधि वेद महात्म भाखे । कर्दमसूनु कपिल उर राखे ।
सगर तनय प्रतप्ता जोई । ताहि महात्म भाखै सोई ॥१३४॥
कपिलमाहिं गति भाखी जोई । गौतममाहिं पछानो सोई ।
जो जो वेद विरुद्ध बखाने । ताता मों गति ऐसी जाने ॥१३५॥

सवैया

तटस्थ—
सांख्यमतो उरहेर हतो अब योग महेश्वर बैन बखानै ।
है परमेश्वर चालक ताहि सुनाहिं प्रधान स्वतन्त्र ठाने ।
आहि कुलाल समान सदा वह कार्य कोटि अनेक पछाने ।
या विधि बैन बखानत हैं
सिद्धान्ती—अब होत सुनो मत ताहि को हानै ॥१३६॥

अनीशता सिद्धि की हेतुता नहीं बने यह आशंका होवे है, तथापि काहू के प्रतारणार्थ न होकर ईश्वर का खण्डन करना हेतु है या ते कपिल अनीश्वर है, काहू के प्रतारणार्थ न होकर ईश्वर का खण्डन करने ते यह अनुमान जान लेना ॥ १३२ ॥

अनीशता सिद्ध भये कपिल नाम ही समान है यह कहे "कपिल" इति, विलक्षणता कहे "ऋषि" इति ऋषि प्रसूनु—कर्दम ऋषि का पुत्र, कपिल बड़ भाग—उत्तम ऐश्वर्य वाला, उत्तम ऐश्वर्यता का प्रकाश कहे "ज्ञान" इति ज्ञान परम—तीनों कालों के ज्ञान वाला, पुनः भरे वैराग-वैराग्य कर पूण ॥ १३३ ॥

सगर तनय प्रतप्ता—सगर राजा के पुत्रों का दाहकर्त्ता, सोई-वेद ॥१३४॥

जगह-जगह मत प्रवर्तकों के शिष्यों की रीति से तटस्थ की आशंका वारण हेतु कहे "कपिल" इति ॥ १३५ ॥

(इति सांख्यमत खण्डन)

ननु उक्त दोषों ते जड़ प्रधान को स्वतः जगत कारणता की असिद्धि से सांख्य मत को अग्राह्य भये भी पूर्व कहे अनुमान सिद्धि ईश्वर रूप

चौपाई

देह विहीन परात्म थारो। करण विहीन सदा निर्धारो।
कार्य अनुगुण इच्छा जोई। ताहि विहीन बखानो सोई ॥१३७॥

निमित्त कारण सहित प्रधान को कारणता की सिद्धि ते प्रधान को उपादान औ ईश्वर को निमित्त मात्र मानता पातञ्जल मत सर्वथा ग्राह्य है यह पातञ्जलों की आशंका सुनावे तटस्थ "सांख्य" इति, योग महेश्वर—पातञ्जल शैव, किस प्रकार बैन कहे है यह पूछते को बखानत पर्यन्त से उत्तर कहे है "है" इति है परमेश्वर चालक ताहि कहिये पूर्व कहे अनुमान सिद्ध ईश्वर है प्रेरक तिस प्रकृति का, पूर्वमतवत् हम प्रधान की स्वतन्त्र प्रवृत्ति नहीं मानें अर्थात् प्रकृति को ही उभय रूप कारण नहीं कहे किन्तु वह उपादान, पुरुष निमित्त मात्र ऐसे कहें हैं, दृष्टान्त से निमित्त मात्रता बोधन करे "आहि" इति, जो जिसका निमित्त होवे है सो तिसका उपादान नहीं होवे यह नेम है याते, ईश्वर अनुपादान होने को योग्य है, निमित्त होने ते, कुलालवत् या अनुमान से आहि कुलाल समान सदा वह नाम है सो ईश्वर घटादिकों के निमित्त कारण कुलालवत् सर्वदा काल निमित्त मात्र कारण पुनः घटत्वादिधर्मों से घटादिकों के जानने वाले कुलालादिकों को ही तिनकी की निमित्तता देखने से सम्पूर्ण कार्यों को असाधारण धर्म से जानकर ही तिनका निमित्त होवे है यह ईश्वर को सर्वज्ञता कहे "कार्य" इति, कार्य कोटि कहिये कार्यों के असाधारण धर्म अनेक जाने है अर्थात् असाधारण धर्मों से सम्पूर्ण कार्यों को औ तिनके उपादानों को जाने हैं याते सर्वज्ञ है। भाव यह=सर्व के जानने वाले को सर्वज्ञ कहे है सर्व का जानना सर्व पद से जीवों को भी सन्भवे है औ सर्व वस्तु की रचना तिनसे चित्त कर भी नहीं होवे याते ईश्वर के जानने में विशेष कहना सो विशेष यह है—जीव सर्वपद से सर्वपने रूप साधारण धर्म से सर्व को जाने है, औ ईश्वर तिन घटादिक धर्मियों को घटत्वादिक रूप विशेष धर्मों से सर्व को जाने है याते ईश्वर सर्वज्ञ है। या विधि कहिये—इस प्रकार योग महेश्वर बैन कहे है, तटस्थ का कथन सुन कर सिद्धान्ती खण्डन की प्रतिज्ञा करे "अब" इति ॥ १३६ ॥

अदृष्ट की कल्पना दृष्ट के अनुसार होवे है या ते कुलाल दृष्टान्त वाले पूर्व कहे अनुमान से ईश्वर में निमित्तता मात्र माने प्रेरक ईश्वर में

यत्न विहीन परात्म थारो। प्रधानादिक निरवयव उचारो।
रूपादिक तेहीन प्रधान। सदा अतीन्द्रिय ताको मान ॥१३८॥
बिना प्रत्यक्ष चलावै कैसे। उदाहरण नहिं पइये तैसे।
चेतन रूप कुलाल पछानो। तन अरु करण ताहिके मानो ॥१३९॥

दृष्टान्त रूप कुलालवत् स्थूल देह वाह्यान्तर इन्द्रिय तथा, जाने है, इच्छा करे है, यत्न करे है, नेम से प्रथम जगत उपादान प्रधान गोचर अपरोक्ष ज्ञान तदन्तर जगत् रचों यह इच्छा ता से पीछे जगत् रचना का उद्यम औ प्रेर्य प्रधान में प्रेर्य मृत्तिकावत् अवयव तथा रूप यह सभी कहने होवेगे और ईश्वर में तथा प्रधान में तुम्हारे मत विषे इनमें एक का भी सम्भव नहीं, काहे ते ? ईश्वर को असंग चिन्मात्र कहने से देह इन्द्रिय, तथा जगद् उपादान प्रधान में रूप ना होने से ताका चाक्षुष अपरोक्ष ज्ञान औ इच्छा उद्यम सम्भवे नहीं औ प्रधान में अवयवों का अन्यथा भाव रूप परिणामी उपादानता के बोज अवयव, तथा अपरोक्ष का हेतु नील पीतादि रूप सम्भवे नहीं। याते प्रेरक प्रेर्य दोनों अंश में दृष्टान्त की समानता के अभाव ते ईश्वर में प्रेरकता रूप निमित्तता भी सम्भवे नहीं यह कहे "देह" इति, करण विहीन नाम—वाह्यान्तर इन्द्रिय हीन, कार्य अनुगुण इच्छा नाम जगत् रूप कार्य के रचनानुकूल इच्छा, ताहि विहीन नाम—वैसी इच्छा रहित ॥ १३७ ॥

ईश्वर में प्रेरकता योग्य सामग्री का अभाव कहकर प्रधान में प्रेर्यता की सामग्री की न्यूनता कहे "प्रधान" इति "प्रधानादिक" पाठ से आदि शब्द से परमाणुओं का ग्रहण जानना, परमाणुओं का ग्रहण यह दोष न्याय मत में भी आवे है यह सूचनार्थ है, प्रधानादिक निरवयव उचारो कहिये प्रेर्य प्रधान को तुम अवयव हीन कहते हो याते तामें अवयवों का अन्यथा भाव रूप परिणामी उपादानता नहीं बनेगी, पुनः रूपादिक ते हीन कहिये प्रकृति चाक्षुष अपरोक्ष के हेतु नीलादि पुनः त्वाच प्रत्यक्ष के हेतु स्पर्श ते हीन है याते सदा अतीन्द्रिय नाम नित्य ही धर्मादिकों वत् इन्द्रियजन्य ज्ञान का अविषय अर्थात् सर्वदा ताको अनुमान गम्यमानो ॥ १३८ ॥

औ मानकर यह कहो प्रेर्य के प्रत्यक्ष बिना ईश्वर ताको कैसे प्रेरे कोई दृष्टान्त नहीं बने सोई कहे "बिना" इति। उदाहरण नहि पइये

माटी आदि सावयव स्वरूप । रूपादिक जामाहिं अनूप ।
निज नन्दनोकर ताहि निहारे । बहुरो हस्तमाहिं निर्धारे ॥१४०॥
चक्रादिक में डारे जबही । बहुरो घट उपजावे तबही ।
याहि अर्थको सगरे जानै । नाहिं विवाद याहिमें ठानै ॥१४१॥
तैं भाख्यो परमेश्वर जोई । आहि कुलाल विलक्षण सोई ।
प्रधानादिक जेई जग हेतू । मृद विलक्षण धरे निजकेतू ॥१४२॥
ताते जग उपजावन जोई । अहे असंगत तामें सोई ।

अब पूर्वपक्षी स्वमत में युक्ति कहे है ।

पूर्वपक्षी—

ननु देही निज देहहि प्रेरे । करण विनाही बुध जन टेरे ॥१४३॥
तैसेही परमात्म जोई । करण विहीन पछानो सोई ।

अब सिद्धान्ती कर उक्त युक्ति का खण्डन ।

सिद्धान्ती—

प्रधानादिक ईश्वर की देहा । जो उर अन्तर मानी एहा ॥१४४॥

तैसे कहिये ऐसा कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होवे जिसमें प्रेर्य उपादान के प्रत्यक्ष विना प्रेरक से प्रेरणा समझे उलटा पूर्वोक्त कुलाल दृष्टान्त में प्रेरक प्रेर्य दोनों अंश में और रीति है सोई कहे "चेतन" इति, करण नाम वाह्यान्तर इन्द्रिय ॥ १३९ ॥

नेत्रों से देख के हाथ में तौलने से उपादान गोचर अपरोक्ष ज्ञान कह्या ॥ १४० ॥

याहि अर्थ को नाम चेतन रूप कुलाल से लेकर कहे अर्थ को ॥१४१॥

दृष्टान्त से दार्ष्टान्तिक की विषमता कहे "तैं" इति मृद विलक्षण—मृत्तिका से विलक्षणता अर्थात् जुदाई, धरे निज—रखते हैं अपनी केतु कितनीक अर्थात् प्रधानादिक जगत् हेतु मृत्तिका आदिक दृष्टान्त से निरवयता आदि रूप बहुत सी विलक्षणता रखते है ॥ १४२ ॥

शरीरादिहीन को प्रेरणा में दृष्टानुसारिता कहे "ननु" इति, देही—जीव ॥ १४३ ॥

देह इन्द्रियशून्य जीव को देह इन्द्रियों की ही प्रेरकता देखी है, घटादिकों की नहीं, याते तिसके समान ईश्वर को प्रधान की प्रेरकता,

शरीरी कर्ता जो भवमाहीं । भोगे फल संशय कछु नाहीं ।
ज्यों वह जीव शरीरी हइये । पुण्यपाप को कारण पइये ॥१४५॥
भोगे ताके फलहि अपार । त्यों परमात्म उरमैं धार ।
पुण्य पाप उपजावै जोई । ताको फल भोगे पुनि सोई ॥१४६॥
ताते भयो सो जीव समान । वन्ध मोक्ष अवतामैं मान ।
सृष्टि उपावन दूरहि गयो । उलटोजीव ईशते भयो ॥१४७॥
कुलाल समान देहको मानो । दूषण या विधिके पहिचानो ।
करुणानिधि परमात्म जोई । दुःख हेतु जग रचे न सोई ॥१४८॥

सवैया

है करुणानिधि एक स्वतन्त्र, सुराग विहीन परातम जानो ।
जीवन दुःखनिदान सदा जग, नाहि रचे उर अन्तर आनो ॥
और अधीन बखानत ताहि सु, ईश्वर को अवजीव पछानो ।
ईशहि प्रेरक और कहे अब, औरन औरहि और बखानो ॥१४९॥

प्रधान को ईश्वर की देह मानकर ही कहनी होगी, यदि कहो मान कर ही कहे हैं तब जो जो शरीर है सो सो भोगायतन है ऐसे शरीर को भोगायतनता का नेम है याते ईश्वर भोक्ता होने के योग्य है, शरीरी होने ते, जीववत्, या अनुमान से जीव तुल्यता कर ईशता का बाध भये, पूर्वोक्त दोषों के दूर होने से भी निस्तारा नहीं यह कहे "प्रधान" इति, आदि शब्द से नैयायिक मत में परमाणु आदिक जानने॥ १४४॥

शरीरी कर्ता—शरीर वाला पाप पुण्य का कर्ता, दृष्टान्त में नेम दिखावे "ज्यों" इति पुण्य पाप को कारण—पुण्य पाप का कर्ता ॥१४५॥

ताके—पुण्य पाप के, त्यों होना स्पष्ट करे "पुण्य पाप" इति ॥१४६॥

ताते—भोक्ता होने ते, समान भये पुरुष विशेषादि प्रतिज्ञा की हानि कहे "बन्ध" इति ॥ १४७ ॥

किञ्च ईश्वर को, करुणानिधि औ वीतराग औ स्वतन्त्र होने ते भी जीवों के दुःखों के मूल भूत जगत् की रचना करनी नहीं बने यह कहे "करुणा" इति दुःख हेतु—जीवों के दुःखों का आदि कारण ॥ १४८॥

ना रचना स्पष्ट करे "है" इति, करुणा निधि एक को भी पराधीन होकर रचना की निवृत्ति हेतु स्वतन्त्रता कही, पुनः करुणानिधि स्वतन्त्र

चौपाई

तातै भई अनवस्था भारी । जो किनहूँते जाय न टारी ।
अरु जे ताहि स्वतंत्र गावो । बहुरो भवको हेतु बतावो ॥१५०॥
बिना निमित्तविषम उपजावै । सो कैसे जगदीश कहावै ।
दुःखाढय प्रपञ्च उपजायो । दोष युग्म परमेश्वर आयो ॥१५१॥
देवनको वह सुखी उपावै । नरकमाहिं जन दुःख दिखावै ।
सुखी दुखी मानव उपजाये । विषम निर्घृण्यदोषद्वयआये ॥१५२॥
दोष युक्त अनीश्वर होई । ताते भयो अनीश्वर सोई ।
क्लेशादिक ते जो असंगा । इत्यादिक लक्षण ते भंगा ॥१५३॥

को भी, इच्छा वशते रचना की निवृत्ति दिखावने हेतु राग-विहीनता कही, निदान—दुःखों का आदि कारण, रचे है, हठ से ऐसे कहो तव पराधीन होकर रचे है वा स्वतन्त्र, स्वतन्त्र भी अपने प्रयोजन की इच्छा से रचे है, यह विकल्प कर प्रथम में परतन्त्र को जीवता औ अनवस्था कहे "और" इति, और अधीन—अदृष्टादिकों के परतन्त्र, जीव पछानो–जीव जानो अर्थात् ईश्वर जीव होने के योग्य है, परतन्त्र होने ते, या अनुमान से जीवता जानो, जीवता कह कर अनवस्था कहे "ईशहिं" इति, "औरन" यह "देहली दीपक न्याय" से दोनों ओर लगा लेना ॥ १४९ ॥

तातै—और और मानने ते, भारीपना कहे "जो" इति स्वतन्त्र भी अपने प्रयोजन की इच्छा से रचे है या दूसरे में भी, ईश्वर जीव होने को योग्य है, दोष वाला होने ते, या अनुमान से जीवता, पुनः लक्षण हानि कहे "अरु" इति ॥ १५० ॥

बिना निमित्त नाम विषमता के कारण रूप कर्मादिकों से बिना सुखी दुखी, सो—निमित्त से बिना विषम उपजावने वाला, दुःखाढ्य—दुख है बहुत जिसमें ऐसा ॥ १५१ ॥

ईश्वर में समदर्शीपने का नाशक पंक्तिभेद रूप विषमता औ दयालुता का नाशक क्रूरतारूप निर्घृणता दोष स्पष्ट करे "देवन को" इति ॥१५२॥

दृष्टान्त कहे "दोष" इति, दोषयुक्त अनीश्वर होई कहिये दोषों वाला जीव है, ताते—जीववत् दोषयुक्त होने ते, अनीशता भये ताको क्लेशादि-

भयो, निहारे काहे नाहीं। पूर्व अपर चितारे नाहीं।

अब पूर्व पक्षी स्वमत में दोष का उद्धार करता है।

पूर्वपक्षी—

ननु जग प्राणी कर्म अपार। पुण्य पाप हैं वहुत प्रकार ॥१५४॥

सो जाके जा विधिके पाये। ता प्रति तैसे तन उपजाये।

सुखी दुखी कर्मन अनुसार। होवै सकल जीव संसार ॥१५५॥

ताते दुष्ट न नाथ हमारे। काहे ताप्रति दोष उचारे।

अब सिद्धान्ती कर पूर्व पक्षी की उक्त युक्ति का खण्डन।

सिद्धान्ती—

कर्म अपेक्ष्य रचे संसार। जो परमात्म तौ उर धार ॥१५६॥

अन्योअन्यआश्रयता दोष। ईश्वरमाहिं न होवै मोक्ष।

कर्म अचेतन आप न चलै। ताको नाथ चलावै भले ॥१५७॥

युक्तता कर क्लेशादि हीनता रूप लक्षण हानि से पूर्वापर ग्रन्थ का विरोध ना देखते को उन्मत्तता सूचन करे "क्लेश" इति, लक्षण ते भंगा—लक्षणों ते रहित ॥ १५३ ॥

"भयो" पूर्व के संग, भयो—होयो ईश्वर, उन्मत्तता प्रकट करे "निहारे" इति, पूर्व—पीछे कही क्लेशादि हीनता औ अपर कहिये अब जीवताकर युक्तता, चितारे नाहीं नाम चेते नाहीं।

आवे ईश्वर में दोष औ लक्षण हानि, जब कर्मों से विषमता ना माने यह आशंका करे "ननु" इति ॥ १५४ ॥

ता प्रति नाम तिस का ॥ १५५ ॥

ताते—कर्म को सुख-दुःख रूप विषमता का हेतु होने ते, दुष्ट—विषमता आदि दोषयुक्त, अन्योन्याश्रय से उक्त व्यवस्था के परिहार हेतु कहे "कर्म इति, तौ उर धार–हृदय में धार ॥ १५६ ॥

क्या ? कहते को कहे "अन्योअन्य" इति, मोक्ष-निवृत्ति, अन्योन्याश्रयता प्रकट करे "कर्म" इति ॥ १५७ ॥

नाथ चलाये कर्म अपार। फल उपजावे यों उर धार।
वहुरो कर्म प्रेरहै जैसे। सृष्टि उपावै ईश्वर तैसे ॥१५८॥
या विधि ईश्वर कर्म अधीन। परस्पराश्रय यों उरचींन।

अव तटस्थ के आक्षेप द्वारा सिद्धान्ती और पूर्व-पक्षी का उत्तर प्रश्न।

तटस्थ—

ननु-पूर्व सर्ग कर्म को पावै। तासो उत्तर सर्ग उपावै ॥१५९॥

सिद्धान्ती—

पूर्व सर्ग कर्म पुनि कैसे। दूषण ताहि विषे पुनि तैसे।
सर्ग कर्म की माला जोई। अनवस्था परिहारी सोई ॥१६०॥

पूर्वपक्षी—

ननु-वींजांकुरकी माला जैसी। होहि ताहिकी माला तैसी।

सिद्धान्ती—

वीजांकुरकी माला जोई। मान प्रत्यक्ष दिखाई सोई ॥१६१॥

कर्मों की प्रवृत्ति में ईश्वर की अपेक्षा कह कर ईश्वर की प्रवृत्ति में कर्म की अपेक्षा कहे "बहुरो" इति बहुरो—अपने चलने से पीछे ॥१५८॥

परस्परान्योन्याश्रय = ईश्वर प्रवृत्ति पर कर्माधीन औ पूर्व अवस्था को छोड़कर अवस्थान्तर होना रूप कर्मों का परिपाक गुणों की प्रवृत्ति के अधीन औ गुणों की प्रवृत्ति ईश्वर के अधीन औ ईश्वर की प्रवृत्ति पुनः कर्माधीन ऐसे अनेकों का भ्रमण रूप चक्रिका भी इहाँ जान लेनी। होवे अन्योन्याश्रय चक्रिका जब हम ता सर्गके कर्मों से ही ता सर्ग की व्यवस्था कहे यह आशंका करे "ननु" इति ॥ १५९ ॥

पूर्व सर्ग की व्यवस्था ता सर्ग के कर्मों को ही लेकर है वा ता से पूर्व सर्ग के कर्मों को लेकर है यह विकल्प कर प्रथम में उक्त दोष कहे "पूर्व" इति, ताहि विषे—पूर्व सर्ग के कर्मों विषे, तैसे—पूर्ववत्—अन्योन्याश्रय आदि, दूसरे में अनवस्था कहे "सर्ग" इति माला—पंक्ति ॥ १६० ॥

ननु अनवस्था मात्र को दोषता माने वीजाङ्कुर का भी कार्य कारण भाव नहीं बनेगा औ प्रसिद्ध देखिये है या ते इहां भी ताके समान अनवस्था हानिकर नहीं, यह आशंका करे "ननु" इति, होवे इहां भी अनवस्था को दोषता का अभाव, जब बीजाङ्कुर के अन्वय व्यतिरेक को

ता माला महि नहिं को मान । काहे ताको करे बखान ।
बिन प्रमाण मानना ऐसो । अन्धारूप पछाने जैसो ॥१६२॥
अरु पुनि ईश्वर चालक जोई । ताहि सम्बन्धकहो को होई ।
अध्यस्तसंबंधनमान्यो तोही । साचो कौन बतावो मोहीं ॥१६३॥
निरावयव अक्रिय प्रधान । तैसेही परमात्म जान ।
ताको नहि संयोगहि होई । निरावयव अक्रिय है दोई ॥१६४॥

प्रत्यक्ष सिद्धता कर तिनकी अनवस्था को प्रामाणिकतावत् प्रकरण की अनवस्थो को प्रामाणिकता होवे, इहां तो पुनः अनुमान सिद्ध पर्वत की अग्नि में लम्बाई-चौड़ाई आदिक विशेषों के प्रत्यक्ष समान अभान होनेवत्, कर्म और ईश्वर पुनः परम्परा कर सर्गादि रूप प्रधान को आप ही अनुमान गम्यता कर तिनके अन्वयव्यतिरेक के ना भान होने से अनवस्था को प्रामाणिकता नहीं बने यह परिहार करे "वीजाङ्कुर" इति ॥ १६१ ॥

मत होवे प्रमाण तौ भी अङ्गीकर करे है तहां कहे "बिन" इति ॥ १६२ ॥

किञ्च प्रेर्यसाथ कार्यानुकूल करण रूप प्रेरणा योग्य सम्बन्ध है वा नहीं ? है पक्ष में भी कल्पित है वा वास्तविक है ? इन विकल्पों से पुनः प्रपञ्चासिद्धि हेतु कहे "अरु" इति, ताहि सम्बन्ध—चालक का सम्बन्ध, कहा को होई—कहो कौन है अर्थात् अध्यस्त है वा वास्तविक है ? प्रथम की असिद्धि कहे "अध्यस्त" इति, अध्यस्त सम्बम्ध न मान्यो तोहो नाम अख्याति के अङ्गीकार से काहू विषय को अध्यस्तता ना मानने ते, तैंने हमारी तरह ईश्वर प्रधान का अनिर्वचनीय तादात्म्य मान्या नहीं, या ते तां से चाल्य चालकता नहीं बने, दूसरे के निराश हेतु पूछे "साचो" इति साचो कौन नाम वास्तविक कौन है अर्थात् संयोग है वा समवाय है वा तादात्म्य है ॥ १६३ ॥

संयोग की असिद्धि हेतु अवयव क्रिया रूप सामग्री का घाटा कहे "निरावयव" इति ॥ १६४ ॥

अपरिच्छिन्न दोनों तै माने । कैसे ताहि संयोग बखाने ।
अरुजो ताहिसावयवबखानो। क्रियावंत उर भीतर मानो ॥१६५॥
तौ सावयव सक्रिय ह्वै जोई । घटसम अहै बिनाशी सोई ।
त्यों प्रधान परातम थारो । भयो विनाशी यों उर धारो ॥१६६॥

भुजङ्ग प्रयात छन्द

गुणं न प्रधानं गुणी ईश नाहीं । समवाय कैसे वने दोनमाहीं ।
नहीं व्यक्ति दोई तथा जाति मानै । समवाय कैसे सु ताको बखानै १६७

चौपाई

अत्यन्त विलक्षण दोनो हइये । नहिं तादात्म्य ताको पइये ।
विना सम्बन्ध चलावन जोई । शशे शृङ्ग सम जानो सोई ॥१६८॥

निरवयव या अक्रिय भी आत्मा का न्यायमत में मन से संयोग मानने वत् ईश्वर प्रधान का बने है यह आशंका का कर विना विचारे विभु अविभु का कथञ्चित् भये भी अवयव क्रियाहीन विभु का किसी प्रकार नहीं बने यह कहे "अपरिच्छिन्न" इति अपरिच्छिन्न—विभु "अर्थी दोषं न पश्यति" या न्याय से मत में ना माने भी अवयव क्रिया अङ्गीकार करते को, पुरुष प्रकृति नाशी है, सावयव सक्रिय होने ते, घटवत्, या अनुमान से परास्त करने हेतु कहे "अरु जो" इति ॥१६५–१६६ ॥

गुण गुणी, अवयव अवयवी, क्रिया क्रियावान्, जाति व्यक्ति, विशेष नित्यद्रव्य, के अभाव ते ईश्वर प्रधान का समवाय भी नहीं बने यह कहे "गुणं" इति तथा जाति माने नाम दोनों जाति माने अर्थात् पुरुष व्यक्ति औ प्रधान जाति वा प्रधान व्यक्ति औ पुरुष जाति ऐसे नही अङ्गीकार किये, यद्वा नहीं दोई तथा व्यक्ति जाति माने, यह अन्वय करना तथा नाम गुणगुणी भाववत् ॥ १६७॥

नैयायिक के समवाय की जगह मीमांसक ने माने भेदाभेद रूप तादात्म्य को भी अत्यन्त भिन्नों में ना होने ते तीसरा भी नहीं बने यह कहे "अत्यन्त" इति, अत्यन्त विलक्षण—जड़ता चेतनता आदि से अत्यन्त भिन्न, ताको—अत्यन्त विलक्षणों को, प्रेरक के प्रेर्य के साथ सम्बन्ध के नहीं पक्ष में प्रेरणा की असिद्धिरूप दोष कहे "विना" इति, चलावन—प्रेरणा ॥ १६८ ॥

अब पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का प्रश्न उत्तर रूप सम्वाद कहते हैं।

पूर्वपक्षी—

ननु-विना संबन्ध चलावन जोई। शशे शृङ्ग सम कैसे होई।
कृष्णायसको चुम्बक प्रेरे। विना संबंध सकल जन टेरे॥१६९॥

सिद्धान्ती—

लोह चलावन चुम्बक माहीं। विना संबंध बने वह नाहीं।
जो वह बिना संबंध चलावै। अति प्रसङ्ग भव भीतर आवै॥१७०॥
जेतो लोह अहे भव माहीं। दौर चले सब ता ढिग माहीं।
लोह विहीन जगत सब होवै। निज व्यवहार सकलजन खोवै॥१७१॥

पूर्वपक्षी—**ननु-ताहि संबंध बताओ कौन।**
सिद्धान्ती—**भाखौ प्रकट सुनो वह जौन।**
निरावरण है सन्निधि जोई। ताहि संबंध पछानो सोई॥१७२॥

पूर्वपक्षी—

ननुचुम्बक ससंग उचारे। अरु जे ग्रंथकार हैं भारे।
असंग होय कै प्रेरे जोई। तामें कहे उदाहरण सोई॥१७३॥

होवे प्रेरणा में सम्बन्धहेतुक, जब सम्बन्धहीन को प्रेरकता ना देखी होवे यह उक्त दोष के वारण हेतु आशंका करे "ननु" इति, कृष्णायस—लोहे को, विना सम्बन्ध=पूर्व के संग॥ १६९॥

अति प्रसंग दोष के भयकर तहां भी सम्बन्ध सिद्ध भये सम्बन्धरहित को प्रेरकता में दृष्टान्तासिद्धि से उक्त दोष वैसे ही है यह परिहार करे "लोह" इति अति प्रसंग—अतिव्याप्ति॥ १७०॥

अति प्रसंग स्पष्ट करे "जेतो" इति॥ १७१॥

संयोग आदिक दो तीन से अतिरिक्त को सम्बन्धता ही न जानता प्रश्न करे "ननु" इति, ताहि सम्बन्ध नाम लोह-चुम्बक का सम्बन्ध, अनेकों को सम्बन्धता का ज्ञानी उत्तर कहे "भाखौ" इति, सम्बन्ध कहे "निरावरण" इति, निरावरण सन्निधि—आवरण रहित समीयता, ताहि सम्बन्ध—चुम्बक का सम्बन्ध॥ १७२॥

वृद्धों के अभिप्राय को ना जानता हुआ वृद्धों के कथन साथ विरोध

तातै वृद्ध विरुद्ध बखान्यो । जो संबंध ताहिको मान्यो ।

सिद्धान्ती—

संयोग संबंध आदि हैं जे ते । वही निषेध करैंसे तेते ।।१७४।।

यह संबंध निषेधे नाहीं । अति प्रसंग हेर उरसाहीं ।

सन्निधि सत्ता सकल उचारै । तातै यह संबंध न टारै ।।१७५।।

पूर्वपक्षी—

ननु-वही संबंध हमारे हइये । प्रेरक नाथ ताहि को पइये ।

सिद्धान्ती—

निदर्शनमें सन्निधि है जोई । ते मतिमाहिं बने नहिं सोई ।।१७६।।

जे सिन्निधि वह नित्य बखानो । सदा सृष्टि प्रलय नहिं मानो ।

सांख्य निराश दूषण हैं जेई । आये निखिल यहाँ अब तेई ।।१७७।।

की आशंका करे "ननु" इति ससंग—सम्बन्ध सहित, भारे—यथार्थवक्ता, तामें—असंग होकर प्रेरणा वाले में ।। १७३ ।।

तातै—ससंग कहने से, प्रसिद्धों के निषेध में ही वृद्धों का तात्पर्य है अन्यथा अतिप्रसंग होवेगा यह वृद्धों का अभिप्राय कहे सिद्धान्ती "संयोग" इति, वही नाम संयोगादिक, ते—वृद्ध, तेते—सारे अर्थात् सम्पूर्ण ग्रन्थकार संयोगादिकों का ही निराश करे हैं ।। १७४ ।।

ना निषेध में हेतु कहे—"अतिप्रसंग" इति, सन्निधि सत्ता—निरावरण समीयता रूप सम्बन्ध का चुम्बक में होना, तातै नाम अति प्रसंगते ।। १७५ ।।

दीर्घदृष्टिहीन प्रकरण में भी ता सम्बन्ध का अङ्गीकार करे—"ननु" इति, वक्ष्यमाण दोषों से वह कार्य साधक नहीं बने यह परिहार करे "निदर्शन" इति, निदर्शन में—दृष्टान्त में, बने नहिं सोई के आगे नित्य अनित्य विकल्पों से शेष ।। १७६ ।।

प्रथम में कारण के विद्यमान भये कार्य विलम्ब ना देखने से सदा उत्पत्ति भये, प्रलय की असिद्धि होवेगी औ कर्म रूप सहकारी से व्यवस्था मानो तब सांख्यमत में, "कर्म नेम तें नेम को" इत्यादिक पाठकर कहे अन्योन्याश्रयादिक दोष होवेंगे यह कहे "जे सन्निधि" इति ।। १७७ ।।

अरु जे कहे अनित्य बनाय । कारण ताको मोहि बताय ।
एक परात्म द्वितीय प्रधान । तामहि कारण कौन बखान ॥१७८॥
बने न कारण यामहिं कोई । निरावयव अक्रिय है दोई ।
तृतीय जीव जे हेतु उचारो । निरावयव अक्रिय वह धारो ॥१७९॥

अब पूर्व पक्षी सिद्धान्ती की व्यवस्था में प्रतिबन्धी रूप प्रश्न करता है ।
पूर्वपक्षी—

ननु-तुमरे मत ईश्वर है जोई । किह विधि सृष्टि उपावै सोई ।
निर्विकार परमात्म जोई । सो अधिष्ठान कौन विधि होई ॥१८०॥

उक्त दोषों ते दूसरा माने तब तहां भी ताकी अनित्यता में सावयव सक्रिय प्रकृति पुरुष रूप अनित्याश्रय वीज है वा सावयव सक्रिय रूप तीसरा जीव रूप पटल बीज है वा आकाश के शब्द गुणवत् सन्निधि की जन्यता वीज है या भाव से कारण पूछे "अरु जे" इति, ताको नाम अनित्यता को, मोहि बताय से पूछे कारणों में भी उत्थानिका में कहे प्रथम पक्ष के निषेध अर्थ पूछे "एक" इति ॥ १७८ ॥

दोनों में कोई एक माने तहां कहे "बने न" इति, ना बनने में हेतु कहे "निरावयव" इति, निरावयव अक्रिय है दोई कहिये पुरुष प्रकृति रूप आश्रय अवयव क्रिया शून्य है याते अनित्य न होने से वह अनित्यता में वीज नहीं बने, याते दो घटों की समीपता नाश में तृतीय घट रूप पटलवत् तृतीय जीव रूप पटल कहो तब वह भी नहीं बने यह दूसरे विकल्प को असिद्धि कहे "तृतीय" इति, जे कर पुरुष प्रकृति की समीपता दूर करने में सम्भव जानकर तृतीय नाम तीसरा जीवरूप पटल कहो तब अवयव क्रिया के अभाव ते ताको पटलता ही नहीं बने यह कहे "निरावयव" इति, तीसरे विभुओं की सन्निधि को जन्यता के अभाव ते तासे अनित्यता की तो सम्भावना ही नहीं बने ॥ १७९ ॥

वेदान्तमत में निर्विकार असंग को माया की प्रेरकता में मानी युक्तियों को साधक बाधक की तुल्यता से मानने हेतु आशंका करे "ननु" इति, किह विधि कर कही बात स्पष्ट करे "निर्विकार" इति, निर्विकार परमात्म जोई नाम क्रिया शक्ति आदिक विकार शून्य जो परमात्मा सो–वह निर्विकार अधिष्ठान कौन विधि होई नाम माया सम्बन्धादिकों

ता प्रतिवन्धी का उत्तर

सिद्धान्ती—

माया अनिर्वाच्य है जोई। अहै अनंत शक्ति मत सोई।
ताहि सबल परमात्म जोई। निखिल प्रपंच उपावै सोई ॥१८१॥
स्वप्नसृष्टिको ज्यों प्रमाता। त्यों अधिष्ठान ईश विख्याता।
स्वप्न समान सृष्टि उपजावै। कोविद वेद सकल यों गावै ॥१८२॥
याहि पक्ष उपपादन जोई। वादि निरास अंतमें होई।
युक्ति उक्ति जेती कछु और। भाखेंगे सब ताही ठौर ॥१८३॥

बिना माया का प्रेरक कैसे बने, इहां यह भाव है=माया—सम्बन्ध बिना तो परमात्मा को जगत् कारणता नहीं, औ माया संग माने असंगता आदिक लक्षणों की हानि आदिक अनेक दोष होवेंगे याते जिस प्रकार तुम शरीरादि रहित पुनः सम्बन्धादिक हीन को माया की प्रेरकता कहोगे वैसे हम भी कहेंगे ॥ १८० ॥

कहो हमारी तरह प्रेरकता जब अनिर्वचनीय सर्वशक्ति-सम्पन्न माया के साथ वास्तविक संग के अभाव काल में ही कल्पित संग मानो, पुनः अनुमान सिद्ध ईश्वर में ही दृष्टान्त की समानता की अपेक्षाकर शरीरादिकों की कल्पना होवे है, रूप आदि विषयों के सिद्ध करने में चक्षु आदिकोंवत्, अपना विषय सिद्ध करने में दृष्टान्त की समानता की चाह ना करने वाली श्रुति के कहे अर्थ में काहू बात की कल्पना नहीं होवे ऐसे शरीरादिकों की कल्पना का वारण मानो या अभिप्राय से उत्तर कहे—"माया" इति, ताहि सबल=कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध से तदाश्रय ॥ १८१ ॥

माया सबल को जगत् कारणता दृष्टान्त से स्पष्ट करे "स्वप्न" इति ॥ १८२ ॥

माया सबल को जगत् रचना में बाधक युक्तियों के परिहार हेतु कहे "याहि" इति, उपपादन—युक्ति सहित कथन, वादि निराश अन्त में होई—वादों का खण्डन कर, "ननु ब्रह्म असंग ना कारण होई" इत्यादिक से लेकर कहेंगे उक्ति—स्वप्न दृष्टान्तादिक, युक्ति—अर्थ ते "ते गत को आचार्य कहे" ऐसी श्रुतियाँ ॥ १८३ ॥

पूर्वपक्षी—अब पूर्व पक्ष सांख्य और सिद्धान्ती का प्रश्न उत्तर रूप सम्वाद।

ज्यों कोविद अरु वेद बतायो। सबल ब्रह्म तैं कारण गायो।
त्योंही ईश हमारो जोई। मम आगम में भाख्यो सोई ॥१८४॥

सिद्धान्ती—

ताहि विषे भाख्यो प्रधान। ताहीको उर कारण मान।
नहिं ते आगम स्वतहि प्रमाण। वेद विरुद्ध ताहि पहिचान ॥१८५॥
वेद विरुद्ध मान जे होई। बौद्धमाहिं अपराध न कोई।
वेद एक अद्वैत बताये। ते आगम नानाजी गाये ॥१८६॥
जीव ईशको भेद निवारे। तत्त्वमसि आभेद उचारे।
ते आगममें भाख्यो भेद। ताते मूल न ताको वेद ॥१८७॥

ननु होवे उक्त दोष जब हमारे आगम में भी प्रधान सहित को उपादानता ना मानी होवे यह पर को स्वमत का अदर्शनमात्र मानकर जीतने वास्ते आशंका करे "ज्यों" इति ॥ १८४॥

ताके कथन को कपटरूपता प्रगट करे "ताहि" इति प्रधान के आगे जगत् का उपादान शेष (कर लेना) ननु होवे तब तर्कों की प्रतिष्ठा के अभाव ते आगमोक्त प्रधान को ही जगत् की उपादानता यह आशंका कर, प्रथम आगम भी स्वतः प्रमाण है वा वेदमूलक होने ते है यह विकल्प कर वेद विरोध ते प्रथम की असिद्धि कहे "नहिं" इति, आगम शास्त्र, स्वतः न प्रमाणता में हेतु कहे "वेद" इति ॥ १८५ ॥

वेद विरुद्ध को भी स्वतः प्रमाणता अंगीकार में बाधक कहे "वेद" इति, बौद्ध माहिं—बुद्ध के शास्त्र में, एक उक्ति से दूसर को असिद्धि औ पहले में वेद विरोध कहे "वेद" इति ॥ १८६ ॥

तत्त्वमसि आभेद उचारे नाम महा वाक्यरूप वेद "तूँ ब्रह्म है" ऐसे अभेद कहे है, ताते-जीव ईश का अभेद और जीवों को नाना कहने से, यद्यपि मत होवे स्वतःप्रमाणता पुनः वेद अमूलक होने ते प्रमाणता वेद-वत् सर्वज्ञ ईश्वर ऋषि का वचन होने ते ही प्रमाण है यह आशंका होवे है, तथापि आगम को प्रमाणता सिद्ध भये ताके कर्ता को सर्वज्ञ ईश्वरता की सिद्धि औ सर्वज्ञ ईश्वरता के सिद्ध भये आगम को प्रमाणता की सिद्धि रूप अन्योन्याश्रय से यह पक्ष का भी सम्भव नहीं ॥ १८७ ॥

अब सिद्धान्ती तटस्थ को अभिमुख कर सांख्य योग की वेद-विरुद्धता को स्पष्ट करे हैं।

(नराज छन्द)

सुसांख्य योग शैव वेद हीन जो बखानियो।
प्रधान हेतु सृष्टिको सुजीव भेद मानियो ॥
सुजीव ईश भेद मान मूल जो उचारही।
निहार वेदसारको विदग्ध सो निवारही ॥१८८॥

सुवेद मूल जो कहे न ताहिको निवारही।
असङ्ग जीव चेतनं सुव्यापकं उचारही ॥
सु अष्ट अङ्ग योग जो पतंजली उचार है।
तिसे निषेध ना करैं विचार चित्त धार हैं ॥१८९॥

(भुजंगप्रयात छन्द)

निषेधं प्रधानं इहाँ जान लीजै।
रही अंश जोई सु आगे कहीजै ॥
महावाक्य अर्थं जहाँ मैं बखानों।
सु जीवेशभेदं तहाँ हानि जानो ॥१९०॥

वेद विरुद्धों के निराश की प्रतिज्ञा कर्ता को वैदिकों के निराश से प्रतिज्ञा हानि हुई यह तटस्थ की बात सुनकर "वेद विरुद्ध वाद हैं जेते" इहां प्रतिज्ञा में अंश ते वेद विरुद्धों का भी ग्रहण सूचन करे "सुसांख्य" इति, विदग्ध—पण्डित ॥ १८८ ॥

सूचित को स्पष्ट करे "सुवेद" इति ॥ १८९ ॥

वेद विरुद्धों का निराकरण भी अप्रकरण में अनुचित है यह सूचन करे "निषेध" इति निषेधं प्रधानं—निषेध प्रधान का अर्थात् सांख्य मत में केवल प्रधान का और पातञ्जल शैव मत में प्रधान को उपादानता का, आगे का निर्णय कहे "महा वाक्य" इति, अंश कहे "सुजीवेश" इति ॥ १९० ॥

अब तटस्थ नारदपंचरात्र अनुयायी मत का सिद्धान्ती को अभिमुख कर प्रतिपादन करता है ।

चौपाई

तटस्थ—

याहि ठौर कछु अवसर पाय । सात्वतमन्य बोल्यो तब आय ।
वासुदेव सब सृष्टि उपाई । नारद पंचरात्र में गाई ॥१९१॥
वासुदेव इक अहे नियंता । जाको निशदिन सेवे संता ।
ज्ञानस्वरूप निरंजन जोई । परमार्थ तत्त्व एक पुनि सोई ॥१९२॥
प्रकृति निमित्त सो उभय स्वरूप । वासुदेव ही अहे अनूप ।
आत्म चार प्रकार बनायो । चतुर्व्यूह ताते कहलायो ॥१९३॥
वासुदेव इक व्यूह पछानो । द्वितीय संकर्षण मनमें आनो ।
तृतीय प्रद्युम्न भये जगमाहीं । अनिरुद्ध नाम चौथो पुनि आहीं॥१९४
वासुदेव परमात्म जानो । संकर्षणनाम जीव पहिचानो ।
प्रद्युम्न नाम मननीके गायो । अनिरुद्ध नाम अहंकार बतायो॥१९५॥

ननु होवे ईश्वर को वेद विरुद्ध निमित्त मात्रता कहता पातञ्जलमत अग्राह्य, पुनः जीव प्रकृति रूप चिद् अचिद् तत्त्वों विशिष्ट ईश्वर को, वेद सिद्ध अभिन्न निमित्त उपादानता कहता, पञ्च रात्रमत तो सर्वथा ग्राह्य है, यह कहते सात्वतों के मत का अनुवाद करे तटस्थ "याहि" इति, याहि ठौर नाम शास्त्रार्थ के स्थान में, अवसर-समय, सात्वत मन्य नामना-भक्त होकर आपको भक्त मानने वाला सात्वत का वाक्य कहे "वासुदेव" इति, स्वकपोल-कल्पितता दोष की निवृत्ति हेतु कहे "नारद" इति ॥ १९१ ॥

नियन्ता-चिद् अचित् का प्रेरक, सन्ता-नारदादिक, परमार्थ तत्त्व-चिद अचिद् से श्रेष्ठ तत्त्व ॥ १९२ ॥

प्रकृति निमित्त-उपादान निमित्त, चतुर्व्यूह-चार मूर्ति ॥ १९३ ॥

चारों के नाम कहे—"वासुदेव" इति ॥ १९४ ॥

यदुवंश प्रसिद्ध वासुदेवादिकों में स्वसंकेत कहे "वासुदेव" इति ॥ १९५ ॥

तिनमें वासुदेव है जोई । परम प्रकृति पछानो सोई ।
इतर संकर्षण लौं हैं जे ते । कार्य रूप पछानो ते ते ॥१९६॥
प्रभु ते जीव संकर्षण भयो । मन प्रद्युम्न ताते भव लयो ।
मनते लीनो भव अहंकार । अनिरुद्ध नाम ताहीको धार ॥१९७॥
याविधि सृष्टि उपाई सारी । वासुदेव भक्तभयहारी ।
जीव जगत में आयो जोई । वेद पढ़े हरि सेवे सोई ॥१९८॥
योग करे वंदन पुनि धारे । पूजा ताकी बहु विस्तारे ।
शतं वर्ष लौं सेवे जबहीं । होय क्लेश क्षीण सब तबही ॥१९९॥
वासुदेवको प्राप्त होवै । दुःख अनेक आपने खोवै ।
है परमात्म ते वह न्यारो । सेवक ताको सदा विचारो ॥२००॥
ऐसे सात्वतमन्य बखानै । अपनो पक्ष नीठ उर नानै ।

अब सिद्धान्ती पूर्वपक्षी को वेद विरुद्ध जान के खण्डन करे हैं ।

सिद्धान्ती—

याहि पक्षमें दूषण सार । वृद्ध बखानै सुन निर्धार ॥२०१॥
जीव जन्म भाख्यो तुम जोई । प्रथम बने नहिं सम्यक् सोई ।
जन्मवानभव भीतर जो है । घट ज्यों सकल विनाशी सोहै ॥२०२॥

परम प्रकृति नाम-सर्व की अपेक्षा कर अवधि रूप उपादान ॥१९६॥

अतिरिक्तों को कार्यता अरु अवान्तर उपादानता स्पष्ट करे "प्रभु ते" इति ॥ १९७ ॥

जीव की मुक्ति का प्रकार कहे "जीव" इति, वेद पढ़े यह उपलक्षण है, याते यथाधिकार पाठ करे ॥ १९८ ॥

शतं वर्ष लौं—सौ वर्ष पर्यन्त, सो यह भी यावत् जीवन पर है ॥१९९॥

प्राप्त के आगे समानता शेष (कर लेना) । समानता को प्राप्त होना स्फुट करे "है" इति, समानता-निर्दुखादिक रूपों से जाननी ॥ २०० ॥

अनुवाद की समाप्ति करे तटस्थ "ऐसे" इति, नीठ उर आनै—दृढ़ हृदय में मानकर, सिद्धान्ती कहे "याहि" इति ॥ २०१ ॥

युक्ति श्रुति सूत्र गीता इन चारों के विरोध से प्रथम जीव जन्म के परिहार का आरम्भ करे "जीव" इति, जीव जन्म भाख्यो तुम जोई

जीव विनाशी जाते भयो । मोक्ष पक्ष अब तेरो गयो ।
कार्य कारण पावै जबही । होवै लीन रहै नहिं तबही ॥२०३॥
त्योंही जीव परमात्म पाय । होवै लीन आप मिट जाय ।
अरु पुनि वासुदेव है जोई । चेतन रूप बखान्यो सोई ॥२०४॥
चेतन है परिणाम विहीनो । साचो उपादान नहिं चीनो ।
जो परिणामी चेतन होई । क्षीर समान विनाशी सोई ॥२०५॥

कहिये "प्रभु ते जीव संकर्षण भयो" इस रीति से जीव का जो जन्म कह्या प्रथम वही यथार्थ नहीं सम्भवे, जीव विनाशी होने के योग्य है, जन्य होने ते, घटवत्, यह जीव जन्म के असम्भव में अनुमान रूप युक्ति कहे "जन्म" इति ॥ २०२ ॥

विनाशता सिद्ध भये वेद पाठ आदिकों की निष्फलता, सूचक विनाशी को, मोक्ष की असिद्धि कहे "जीव" इति दृष्टान्त से मोक्ष पक्ष का जाना स्पष्ट करे "कार्य" इति, जबही कै आगे निमित्त वशते नाश द्वारा शेष (कर लेना) । कार्य घटादिक उपादेय, कारण मृत्तिका आदिक उपादान को, पावे जबही कहिये काहू दण्ड प्रहारादिक निमित्त वशते नाश होकर जब पावे हैं, तबही—ताही समय कारण में लय हो जावे हैं, पृथक् काहू काम के योग्य नहीं रहते हैं ॥ २०३ ॥

दार्ष्टान्तिक में कहे "त्यों ही" इति त्यों ही नाम घटादिक कार्यवत्, होवे लीन का अर्थ कहे "आप" इति. आप मिट जाय—आप निवृत्त होवेगा, ऐसे भये आश्रय के अभाव ते, क्लेश क्षीणता रूप मुक्ति की असिद्धि होवेगी । किञ्च उक्त युक्तियों से जीव को उपादेय कार्यता की असिद्धिवत्, वासुदेव परिणामी रूप वास्तविक उपादान है वा विवर्तोरूप अवास्तविक उपादान है इन विकल्पों के दोषों से वासुदेव को उपादानता भी नहीं बने, यह कहे "अरु पुनि" इति । चेतन रूप बखान्यो सोई नाम "ज्ञान स्वरूप निरञ्जन सोई" ऐसे पूर्व तुमने वह चेतन रूप कथन किया औ एकरस चेतन में वास्तविक अन्यथा भावरूप परिणाम बने नहीं याते तामें परिणामी रूप वास्तविक उपादानता भी नहीं बने ॥ २०४ ।

सोई कहे "चेतन" इति साचोउपादान—वास्तविक रूप परिणामी उपादान, होवे परिणामी उपादान दोष क्या ? तहाँ कहे "जो" इति,

यह है पक्ष तुम्हारो जोई। मूलकुठार पछानो सोई।
विवर्त वाद नहिं उरमें मानै। किह विधि चेतन हेतु बखानै ॥२०६॥

अब सिद्धान्ती वैष्णव मत का विकल्पों कर खण्डन करे है।

अरु पुनि जीव उपायो जोई। नाम संकर्षण भाख्यो सोई।
उपावनते पूर्व वह आहि। अथवा नयो उपायो ताहि ॥२०७॥
उपावन ते जो पूर्व होई। कैसे ताहि उपावै सोई।
जाकी सत्ता पूर्व होई। ता उत्पत्ति करे नहिं कोई ॥२०८॥

चेतन नाशी होने को योग्य है, परिणामी होने ते, क्षीरवत्, या अनुमान से विनाशता होवेगी, यह दोष है, या ते निज सिद्धान्तरूप वृक्ष के नाश हेतु यह परिणामी उपादानता कुठार है॥ २०५॥

सोई कहे "यह" इति, ननु उक्त दोष ते मत बनो परिणामी उपादान हम अवास्तविक अन्यथा भावरूप चेतन का विवर्त ही जीव को माने है, यह सुनकर कहे "विवर्त" इति ऊपर से जे मेरे प्रतारण हेतु कहता हुआ, सर्व को वास्तविक मानता अवास्तविक अन्यथा भाव चित्त विषे नहीं माने, याते किस रीति से चेतन को उपादान कारणता कहेगा अर्थात् निरवयव चेतन को आरम्भकता कै भी अभाव ते काहू रीति से उपादानता नहीं कह सकेगा॥ २०६॥

किञ्च होवे वासुदेव को कथञ्चित् उपादानता, तथापि उत्पत्ति ते पूर्व रहे को उत्पन्न करे वा नया उपावे है, इन विकल्पों से जीव के जन्म की असिद्धि कथन का आरम्भ करे "अरु पुनि" इति विकल्प करे "उपावन" इति, उपावन ते नाम असत् का सत् करना रूप नैयायिक मत में मानी उत्पत्ति ते, पुनः तिरोभूत का आविर्भावरूप शाङ्कर मत में मानी उत्पत्ति ते, पूर्व वह है अथवा नया उपाया है॥ २०७॥

उत्पत्ति ते पूर्व, सत् में असत् का सत् करना रूप उत्पत्ति ना करने ते कारण निष्फल होवेगा यह प्रथम का परिहार करे "उपावन" इति, उपावन ते—उत्पत्ति ते, कैसे ताहि उपावै—किस प्रकार ताकी उत्पत्ति करे अर्थात् किसी प्रकार नहीं करे काहू प्रकार सेना करना स्पष्ट करे "जाकी" इति, ता नाम पूर्व सत्तावाले की, उत्पत्ति—असत् की सत्ता॥ २०८॥

तामे कारण होवे व्यर्थ । लहे न ताहि विषे कछु अर्थ ।
द्वितीय पक्षमें दूषण जोई । भाखें वृद्ध सुनो तुम सोई ॥२०९॥
नूतन जंतु उपायो जोई । ताको पुण्य पाप नहिं दोई ।
बिना पुण्य पाप नहिं देह । यह है पुण्य पापको गेह ॥२१०॥
सुख दुखके जो भोग अपार । देह बिना कैसे निर्धार ।
भोग बिना बंधन नहिं होई। बंध नाश मोक्ष पुनि खोई ॥२११॥
भोग मोक्ष बिन सेवन जोई । ईश्वरमाहिं करे नहिं कोई।
ईश उपासन भाखे जेई । भये ग्रन्थ व्यर्थ अब तेई ॥२१२॥
या विधिको दूषण गण आयो। जीव जन्म कहु काते गायो ।

अब पूर्व पक्षी स्वमत की साधक श्रुति दृष्टान्त रूप युक्ति प्रतिपादन करे है ।

पूर्वपक्षी—

विस्फुलिंग दृष्टांत दिखायो ।जीव जन्म वेद में गायो ॥२१३॥

मत करो असत् की सत्ता रूप उत्पत्ति दोष क्या ? तहाँ कहे "तामें" इति, व्यर्थ का अर्थ कहे "लहे" इति, अर्थ-सफलता । पूर्व-पूर्व के अभाव ते उत्तरोत्तर की असिद्धि दोष देकर दूसर का परिहार करे "द्वितीय" इति ॥ २०९ ॥

"दोई" के आगे अपने पूर्व अपने कारण रूप विहित निषिद्ध कर्म के अभाव ते शेष (कर लेना) । देह ना होने में हेतु कहे "यह" इति, पुण्य पाप को गेह—पुण्य पापों का घर अर्थात् पुण्य पापों कर रचित स्थान विशेष ॥ २१० ॥ २११ ॥

"ईश्वर मांहि" पूर्व के साथ ॥ २१२ ॥

काते—कौन प्रमाण ते, वा दोष युक्त होने ते किस वास्ते । ननु निर्दोष पुरुष का वाक्य होने ते अप्रामाणिकता की आशंका रहित श्रुति प्रतिपाद्य अर्थ में युक्तियों का विरोध तुच्छ होवे है, याते जीव की उत्पत्ति में कोई आशंका नहीं या अभिप्राय से आशंका करे "विस्फुलिंग" इति । विस्फुलिंग—अग्नि के कणिका, वेद में—जैसे अग्नि ते विस्फुल्लिग उपजे हैं ऐसे अक्षर परमात्मा ते जीव उपजे हैं ऐसे अर्थ वाली श्रुति में ॥ २१३ ॥

अब सिद्धान्ती पूर्व पक्षी की उक्त युक्ति का श्रुति, सूत्र, स्मृति, द्वारा निषेध करते हुए विकल्पों कर निराकरण करे हैं।

सिद्धान्ती—

विस्फुलिंग दृष्टांतहि जोई। जीव जन्म नहिं भाखै सोई।
कारण कार्य संघात अपार। उपजे जो कर्मन अनुसार ॥२१४॥
वही उपाधि जीवकी माने। उपाधिक आविर्भाव बखाने।
याही ते श्रुत्यंतर जोई। निषेधे जीव जन्मको सोई ॥२१५॥
सो यह आतम अजहि महान। अजर अमर अमृत पहिचान।
या विधि श्रुति अनंत उचारे। जीव जन्म को दूर निवारे ॥२१६॥
सूत्रकार व्यास हैं जोई। जन्म असंभव भाखें सोई।
ताते काहे जन्म उचार्यो। सूत्रकार जिह दूर निवार्यो ॥२१७॥

जन्म प्रतिपादक श्रुति का घट के जन्म मात्र से घटाकाश को पैदा हुआ कथनवत्, सूक्ष्म स्थूल संघात रूप उपाधियों के जन्म से, जन्म कथन में तात्पर्य है, याते युक्ति विरोध भी तुच्छ नहीं, ऐसे ना माने अनेक श्रुतियों से विरोध होवेगा, यह परिहार करे "विस्फुलिंग" इति, सोई के आगे निरुपाधिक शेष (कर लेना) कार्य कारण संघात नाम स्थूल सूक्ष्म शरीर ॥ २१४ ॥

उपाधिक आविर्भाव बखाने—उपाधि सम्बन्ध से जन्म कहे है अर्थात् घट रूप उपाधि के जन्म मात्र से आकाश का जन्म कथनवत् कार्य-कारण संघात के जन्म से जन्म कहे है, याही ते नाम औपाधिक आविर्भाव कहने ते। श्रुत्यन्तर=और श्रुति ॥ २१५ ॥

अर्थ ते जन्म निषेधिक श्रुतियें पड़े "सो यह" इति। अजहि=जन्म विकार रहित, महान—व्यापक, अजर=अवस्था हानि रहित, अमर= प्राणवियोग रूप मरण रहित, अमृत=मोक्षरूप, अनन्त=अनेक ॥२१६॥

कही श्रुतियों के अर्थ की दृढता हेतु श्रुतियों के तात्पर्य निर्णय कर्त्ता व्यास की स्मृति कहे "सूत्र" इति, अल्पाक्षरों से बहुत अर्थ बोधन करने वाली जो वेदान्तादि शास्त्रों का मूलरूप ऋषियों की वाणी ताका नाम सूत्र है, जन्म असंभव कहिये पूर्व वेदानुसारी युक्तियों से जीव के जन्म का असंभव, ताते=असंभव कहने ते ॥ २१७ ॥

तथाच सूत्रं = "उत्पत्त्यसंभवात्"

अरु पुनि जीव जन्म है जोई। गीतामाहि निषेध्यों सोई।
उपजे जीव कदाचित् नाहीं। ताते मरण नाहिं या माही ॥२१८॥
अज अरु नित्य जीव यह जानो। शाश्वत अयं पुराण पछानो।
यों निज वासुदेवही गायो। साचो वहकै तोहि बतायो ॥२१९॥
वासुदेवको झूठ बखानै। किह विधि सात्वत तोहि पछानै।
ताते वासुदेव जो गाई। साची बात पछानो साई ॥२२०॥

व्यास सूत्र दिखावे "तथा च" इति, उत्पत्यसम्भवात् = उक्त युक्तियों से जीव की उत्पत्ति नहीं बने, जन्माभाव में सूत्र रूप व्यास स्मृति कह कर वासुदेव स्मृति कहे "अरु पुनि" इति, सोई—जीव जन्म, वा जिनसे जीव का जन्म मानते हो वह वासुदेव ही, घटादिकोवत् भाव रूप होने से जीव में भी षट्विकारों की आशंका कर तिनकी निवृत्ति हेतु कहे वासुदेव के वाक्य को अर्थ ते पढ़े "उपजे" इति जन्म का निषेध कर मरण का निषेध करे "ताते" इति। ताते—जन्म रहित होने ते ॥२१८॥

आद्यन्त विकारों कानिषेध करके अस्ति और वृद्धि रूप विकारों के निषेध में क्रम ते हेतु कहे "अज" इति, अज होने ते, जन्य वस्तु को जन्मान्तर होने वाला सत्ता का सम्बन्ध रूप अस्ति विकार नहीं बने औ नित्य सदा एक रस होने ते, परिणाम द्वारा होने वाला अवयवों का वृद्धि रूप विकार नहीं बने, चारों का निषेध कर क्रम ते क्षीणता औ विपरिणाम का निषेध करे "शाश्वत" इति शाश्वत–निरन्तर अर्थात् अवयव रहित कहने से अवयवों का संकोच रूप क्षीणता का निषेध किया, औ पुराण—पुरातन कहने ते प्रथम नूतन को ही पूर्व रूप को छोड़कर रूपान्तर होना रूप नूतनता भूत विपरिणाम का निषेध किया, यों नाम ऐसे, चार विरोध श्रवण कर नीचे नेत्र किये को पूछे "साचो" इति वह—वासुदेव कर कथित जन्माभाव ॥ २१९॥

"आरत काहि न करे कुकर्मा" या न्याय से ताके कहे को झूठ कहते को भगतपने का घाटा कहे "वासुदेव" इति वासुदेव को झूठ बखानै-वासुदेव को झूठा कहे, ताते = ताको झूठा मानते को सात्वता के धोखे ते ॥ २२० ॥

युक्ति श्रुति अरु सूत्रकार । चौथो वासुदेव निर्धार ।
जीव जन्म यह पक्ष तुम्हारे । चहूं विरुद्ध सदा निर्धारे ॥२२१॥
अरु पुनि जीव संकर्षण जोई । कैसे मन उपजावै सोई ।
देवदत्त भव कर्त्ता जोई । करण कुठार जने नहिं सोई ॥२२२॥
जीव तुम्हारे कर्ता हइये । मनही करण ताहिको पइये ।
ताते मन उपजावन जोई । युक्ति हीन पहिचानो सोई ॥२२३॥
मनको जीव उपावै जबहीं । करणांतरको चाहे तबहीं ।
सो करणांतर जीव उपायो । अथवा स्वतः सिद्ध वह गायो ॥२२४॥
प्रथम पक्ष अनवस्था होई । करणांतर बिन बने न सोई ।
द्वितीय जासो मन उपजायो । वही करण मन मनमें आयो ॥२२५॥

जीव जन्माभाव प्रतिपादन की समाप्ति करे "युक्ति" इति युक्ति—अनुमान ॥ २२१ ॥

किञ्च वासुदेव से जीवों की उत्पत्ति के असम्भववत्, युक्ति औ सूत्र विरुद्ध होने से जीव से मन की उत्पत्ति भी नहीं बने यह कहे "अरु पुनि" इति, कैसे—किस प्रकार, अर्थात् तासे ताको, वा करणान्तर से, वा ना ता से, नाकरणान्तर से, प्रथम की असिद्धि कहे "देवदत्त" इति "जने नहिं सोई" के आगे ता से शेष (कर लेना) ॥ २२२ ॥

मत जनो देवदत्त ता से ता को, प्रकरण में क्या ? तहाँ कहे "जीव" इति, ताते नाम ता मन से, ता मन की उत्पत्ति करनी, युक्ति हीन कहिये—देवदत्त से ता कुठार की ताही कर उत्पत्ति ना देखने से दृष्टान्त रहित है ॥ २२३ ॥

विकल्पों से दूसरे के परिहार हेतु प्रथम करणान्तर की चाह कहे "मन को" इति, विकल्प करे "सो" इति ॥ २२४ ॥

प्रथम में अनवस्था कहे "प्रथम" इति, अनवस्था में हेतु कहे "करणान्तर" इति, दूसरे स्वतःसिद्ध करण ही मन होवे ? ऐसे भये मन को जीव जन्यता का कथन व्यर्थ है यह कहे "द्वितीय" इति, मनमें आयो—मेरे चित्त विषे आवे है ॥ २२५ ॥

प्रथम करण जीव को जोई। मन इत नाम कहीजे सोई।
स्वतः सिद्ध करणांतर जोई। जो उसमें मन मानो सोई ॥२२६॥
तौ अब काहे जन्म बखानो। स्वतः सिद्ध ताहिको मानो।

अब पूर्व पक्षी का व्याकुलता से कथन।

पूर्वपक्षी—

ननु करणांतर चाहे नाहीं। स्वतंत्र जीव उपावै ताहीं ॥२२७॥
नहिं अनवस्था यामें होई। और न दूषण यामें कोई।

अब सिद्धान्ती वादी के मत में दोषान्तर कथन करता है।

सिद्धान्ती—

अब इक दूषण औरै आवै। मनको कल्पन दूर मिटावै ॥२२८॥
करण रहित जीव है जोई। जो समर्थ कार्य को होई।
तौ मनकल्पन तोहि व्यर्थ। मन यों जीव जने सब अर्थ ॥२२९॥
ताते मन उपजावन जोई। अहे असंगत जानो सोई।
याही ते भव सूत्रकार। याहि पक्षको करे परिहार ॥२३०॥

मन में आवने में हेतु कहे "प्रथम" इति, मन इत नाम कहीजे कहिये मन ऐसे नाम कर वही कहा जावे है ॥ २२६ ॥

ऐसे भये स्वतः सिद्ध करणान्तर को मन में मन मानो तौ जन्म मत कहो यह कहे "स्वतः सिद्ध" इति। तीसरे को लेकर आशंका करे "ननु" इति, करणान्तर चाहे नाहीं नाम और करण को नहीं चाहे पुनः ताकी उत्पत्ति में ताको भी नहीं चाहे यह ऊपर से जान लेना ॥ २२७ ॥

अंगीकार का फल कहे "नहिं" इति, और न दूषण या में कोई नाम ताकी उत्पत्ति में ताकी अपेक्षा ना करने ते, आत्माश्रयादिक रूप और दोष भी इस पक्ष में कोई नहीं। करण ते बिना मन के हेतु जीव को ही मनवत्, जगत् की हेतुता होवे, मन से क्या काम? या न्याय से परिहार करे "अब" इति ॥ २२८ ॥

दूषण स्पष्ट करे "करण" इति ॥ २२९ ॥

ताते—उक्त दोष ते, मन उपजावन—जीव ने जगत् की रचना हेतु मन की रचना, अहे असंगत—है व्यर्थ, याही ते—उक्त युक्तियों कर रचना के असम्भव ते ॥ २३० ॥

तथाच सूत्रं—"नच कर्तुःकरणम्"

कर्ता जीव बखान्यो जोई। ताते करण मनो नहिं होई।
याही सूत्रका अर्थ पछानो। ताते जीव हेतु नहिं मानो ॥२३१॥

अब पूर्व पक्षी प्रकारान्तर से स्वमत का स्थापन करता है।

पूर्वपक्षी—

संकर्षणादि तीन हैं जेई। नहिं जीवादि पछानो तेई।
वासुदेव सम ईश्वर जानो। ज्ञानस्वरूप सकल पहिचानो ॥२३२॥
सम ऐश्वर्य समबल जानों। तेज शक्ति सम ताहि पछानों।
चारों ईश्वर रूप समान। बहुरो एक व्यवस्था जान ॥२३३॥
वासुदेव सम तीनों जेई। उपजे वासुदेव ते तेई।
ऐसे हमरे अंगीकार। जीव जन्म नहिं करे उचार ॥२३४॥

अब सिद्धान्ती उक्त वादी के मत में विकल्प कर दोष निरूपण करे है।

सिद्धान्ती—

कुशा काश अवलंबन जैसो। यह सिद्धांत तुम्हारो तैसो।
चारो ईश बखाने जोई। प्रथम असंगत जानो सोई ॥२३५॥

"नहिं होई" के आगे उक्त युक्तियों से शेष (कर लेना) ताते—सूत्र विरुद्ध होने ते ॥ २३१ ॥

उक्त दोषों के परिहार हेतु आशंका करे "संकर्षणादि" इति, जीवादि में आदि शब्द से मन अहंकार जान लेने। जीवादि नहीं तो क्या हैं? तहाँ कहे "वासुदेव" इति, समानता कहे "ज्ञान" इति ॥ २३२ ॥

सम ऐश्वर्य नाम तुल्य ही स्वतन्त्रता है, औ समबल नाम तुल्य ही रचना में सहकारियों का सम्पादन है औ तुल्य ही नादबना रूप तेज है औ शक्ति सम नाम तुल्य ही पदार्थों के रचना की सामर्थ्य है एवं पराक्रम रूप वीर्य भी समान है तात्पर्य जीवों से ईश्वर की विशेषता द्योतक ज्ञानादि षड्गुण सबके समान है सोई कहे "चारो" इति ॥२३३॥

व्यवस्था कहे "वासुदेव" इति जीवजन्महिं करे उचार नाम जीवादिक मानकर जन्म नहीं कहते है किन्तु ईश्वर मान कर कहे हैं याते जीवादिक पक्षों में कहे दोष नहीं होवेंगे यह भाव है ॥ २३४ ॥

कही व्यवस्था खण्डन में उक्त दोषों को प्रबल रहे भी एक से ही

नाराच छन्द

वासुदेव एकही अनेक काज को करे।
न आस और ईश को विचार चित्तमें धरे॥
अजागले स्थनंसमं न और ईश मानिये।
सुचार कौन काज तोहि भाखिये बखानिये॥२३६॥

भुजङ्ग प्रयात छन्द

चहूं ईश माने सुनो बात मेरी। नियंता सु एकं गई बात तेरी।
सुचारो नियंता भये ईश जाते। नहीं जे नियंता गहे ताहि काते॥२३७

चौपाई

परमार्थ तत्त्व एक पुनि सोई। यहभी बात सुनो अब सोई।
चारों ईश्वर रूप बखानो। परमार्थ तत्त्व चार ही मानो॥२३८॥

प्रेरणादि व्यवहार सिद्ध भये चारों को ईश्वरता पुनः चारों को ईश्वरता माने एक ही नियन्ता है औ परमार्थ तत्त्व है इस सिद्धान्त की हानि रूप दोषोन्तरों को समझ कर उपहास करे "कुशा काश" इति नदी के प्रवल वेग में पड़ा पुरुष जैसे अकिंचित्कर कुशा काश नाम दभ-काही के तृण का पार गमन हेतु आश्रयण करे तिसके समान यह तुम्हारा निष्फल सिद्धान्त है॥ २३५॥

निष्फलता प्रकट करे "वासुदेव" इति, भाखिये बखानिये—कहता हैं कहो, अर्थात् चार किस वास्ते कहता है कहो॥ २३६॥

सिद्धान्त हानि कहे "चहूँ" इति, गई बात तेरी कहिये "वासुदेव इक अहे नियन्ता" यह सिद्धान्त नाश हुआ तुम्हारा, बात जाने में हेतु कहे "सुचारो" इति होवे सिद्धान्त हानि जब हम संकर्षण आदिकों को नियन्तृता माने, यह आशंका कर अङ्गीकार को निष्फलता कहे "नहीं" इति॥ २३७॥

अपर सिद्धान्त हानि कहे "परमार्थ" इति, खोई जाने में हेतु कहे "चारो" इति॥ २३८॥

तुमरे मत ईश्वर है जोई । परमार्थ तत्त्व कहीजै सोई ।
अरु पुनि वासुदेव सम जेई । उपजे कौन प्रकारहि तेई ॥२३९॥

भुजंग प्रयात छन्द

यथा वासुदेवो तथा ते पछानो । समंईश जाते सु आपे बखानो ।
जनेताहि कैसे नहि जान जाई । नहीं शक्ति कोई सुतामें बताई ॥२४०॥

चौपाई

चारों के गुण समहि बखाने । अतिशय नाहिं किसूमहि माने ।
अतिशय शक्तिवान है जोई । जगत माहिं कारण है सोई ॥२४१॥

अव पूर्व पक्षी को मौन देखकर तटस्थ पूर्व पक्षी के सिद्धान्त का अनुवाद करता है तटस्थ—

पंच रात्र सिद्धांती जोई । तारतम्य नहिं माने सोई ।
ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति है जोई । ताको भेद न मानै कोई ॥२४२॥

मानना गले पावे "तुमरे" इति, कार्य की अपेक्षा कर उत्पत्ति ते पूर्व अपने में कार्य की सूक्ष्म अवस्था रूप जो अधिक शक्ति, तिस वाला कारण होवे है औ तुमने शक्ति सम कहने से अधिक शक्ति मानी नहीं याते वासुदेव से तिनकी उत्पत्ति कहनी हमारी अकल में नहीं आवे है यह उपेक्षा करे "अरु पुनि" इति, कौन प्रकार—किस प्रकार अर्थात् काहू रीति से नहीं ॥ २३९ ॥

काहू रीति न उपजना स्पष्ट करे "यथा" इति कोई के आगे "अधिक" शेष कर लेना ॥ २४० ॥

पुनः भली प्रकार स्पष्ट करे "चारों के" इति, अतिशय—अधिक ॥ २४१ ॥

ननु पञ्चरात्र सिद्धान्ती ने अन्तको ज्ञानादिक गुणों का, पुनः वासुदेवादिक गुणियों का, आपस में अभेद माना है याते उक्त दोष नहीं यह शंका करे "पंचरात्र" इति, तारतम्य—अधिक न्यून, ज्ञान ऐश्वर्य-शक्ति—ज्ञान और ऐश्वर्य और शक्ति औ ईश्वर को अर्थात् गुण गुणी को ॥ २४२ ॥

आत्म चार प्रकार बनायो । चतुर्व्यूह ताते कहलायो ।

अब सिद्धान्ती तटस्थ उक्तार्थ का युक्ति पूर्वक निराश करे है ।

सिद्धान्ती—

या भीतर कछु अहे विचार । सो सुनियो नीके निर्धार ॥२४३॥
चतुरसंख्या भाखी जोई । कैसे वासुदेवमहि होई ।
एक अनेक व्यूह सब सो है । वासुदेव बिन और न को है ॥२४४॥
ब्रह्मादिक चीटीलौं जेतो । भगवत व्यूह पछानो तेतो ।
आत्म सर्व प्रकार बनायो । सर्व व्यूह ताते कहलायो ॥२४५॥
स्मृति वेद पुराणन माहीं । भगवत बिन कछु मान्यो नाहीं ।
वासुदेवही सर्व स्वरूप । बहु विधि भयो सु एक अनूप ॥२४६॥
रहो विचारांतरथो जोई । सार अर्थ प्रकट अब होई ।
जीवादिक उपजावन जोई । वेद विरुद्ध निराशै सोई ॥२४७॥

भुजंगप्रयात छन्द

निमित्तं उपादान ईशं बखानै । निराशैं न सोई भली भाँति मानै ।
यतो वेदनीके सु ऐसे उचारै । अहे कौन भूमें जो ताको निवारै॥२४८॥

भेद नहीं तो चार प्रकार कैसे यह आशंका कर कहे "आत्म" इति । आत्मा को अनेक प्रकार बनावने से अनेक व्यूहता सिद्ध भये, चार व्यूहता का नेम असंगत यह परिहार करे "या भीतर" इति, या भीतर—अभेद मान कर भी चार प्रकारता कथन में ॥ २४३ ॥

विचार कहे "चतुर" इति, कैसे—किस प्रकार अर्थात् किसो प्रकार नहीं, किसी प्रकार न होना कहे "एक" इति ॥ २४४–२४५ ॥

अनेक व्यूहता कथन को प्रामाणिकता कहे "स्मृति" इति, अर्थ ते स्मृति श्रुति पढ़े "वासुदेव" इति ॥ २४६ ॥

आगम में तैसा कहने से मत सम्यक् है यह आशंका कर आगम स्वतः प्रमाण है वा वेदमूलक होने से प्रमाण है इत्यादि विचार को निष्फल जान कर कहे "रहो" इति, विचारान्तर—और विचार, सार अर्थ कहे "जीवादिक" इति ॥ २४७ ॥

ग्रहण योग्य सारांश कहे "निमित्तं" इति, निमित्तं उपादान ईशं

चौपाई

और उपासन भाख्यो जोई। मानैं शीश धार हम सोई।
वेद पुराण अहे भव जे ते। ईश उपासन भाखैं तेते ॥२४९॥
वृद्ध हमारे वेदी जेई। ईश उपासन भाखैं तेई।
सोढीवंश केतु लौं जेते। ईश उपासन भाखैं तेते ॥२५०॥

बखानै कहिये "प्रकृति निमित्त सो उभय स्वरूप" या पाठ से जो उभय विध कारणता ईश्वर को कही, सोई कहिये—उभय विध कारणता हम खण्डन नहीं करे किन्तु भली प्रकार परवादियों की अनेक तर्कों को दूर करके माने है, यतो नाम जिस कारण ते, ऊर्णनाभितन्तु आदि दृष्टान्तो से वेद भली प्रकार ऐसे कहिये—निमित्त उपादान उभय स्वरूप ईश्वर है यह कहे है या ते श्रुति सिद्ध वार्ता को कौन आस्तिकवादी है जो केवल युक्ति से दूर करे अर्थात् श्रुति सहित युक्ति से केवल युक्ति को निर्बल होने से कोई दूर नहीं कर सके ॥ २४८ ॥

ईश्वर को निमित्त उपादानतावत्, वेद पुराण गुरुवचन सम्मत होने से पूर्व कही ईशोपासना भी हम सत्कार से माने हैं यह कहे "और" इति, पूर्व जो उपासना भाख्यो कहिये "जीव जगत् में आयो जोई" से लेकर ईश्वर भक्ति कही सो भी हम माने है मानने में हेतु कहे "वेद" इति ॥ २४९ ॥

गुरु सम्मति कहे "वृद्ध" इति, वृद्ध–बड़े, अर्थात् परम गुरु नानक, ईश उपासन भाखैं तेई कहिये "राम न जपो अभाग तुम्हारा" "पतित पुनीत आसंख होहि हरि चरणी मन लाग" ऐसे कहे हैं, सोदी वंश केतु लौं जेते कहिये सोड़ियों के वंश में ध्वजारूप, "जप मन सत नाम सदा सत नाम" ऐसो कहते गुरु रामदासजी से लेकर "विन हरि नाम ना वाचन पै है" ऐसे गुरुगोविन्द सिंहजी पर्यन्त ईश्वर की भक्ति कहे हैं। या ते ईश्वर को निमित्त उपादानता औ उपासनांश में यह मत हमको प्रमाण है याते उपादानता आवश्य माननी, न माने पातञ्जल मत में असंग ईश्वर को अमूर्त्त प्रधान की प्रेरकतारूप निमित्तता के भी असम्भववत्, और मत में भी निमित्तता नहीं बनेगी याते पृथिवी में ऐसा कोई नहीं जो इस प्रामाणिक बात को न माने ॥ २५० ॥

अब तटस्थ शास्त्रार्थ के लिये सिद्धान्ती को अभिमुख करके कहे है।

दोहा

तटस्थ—

ननु उपासन जो कह्यो, साची बात प्रमान।
उपादान पुनि ईश को, कैसे कीन बखान ॥ २५१ ॥

भुजंगप्रयात छन्द

निमित्तं उपादान ईशं उचारै। जु भाखै सु भूमें न कोई निवारै।
इसो जो बखानो नहीं चित्त आवै। यतो तर्क वेत्ता सु औरे बतावै॥२५२॥

ननु पातञ्जल मत में ईश्वर को असंग माने है औ प्रधान को अमूर्त माने है औ लोक में संगी कुलाल को मूर्तरूप मृत्तिका की प्रेरकता देखो है, याते असंग को अमूर्त्त की प्रेरकता के असम्भव ते निमित्तता न बने भी हम ईश्वर को सर्व मूर्त्त द्रव्य का संयोगी माने हैं औ परमाणुओं को मूर्त्त माने हैं, याते संगी ईश्वर को मूर्त्तरूप परमाणुओं की प्रेरणा से निमित्तता बने हैं औ "मृद्घट है" ऐसे मृद् साथ घट के अभेद-वत् "ईश्वर घट है" ऐसे ईश्वर साथ घटादिकों का अभेद न देखने से उपादानता ईश्वर को काहू रीति से नहीं बने, या नैयायिक की आशंका का तटस्थ अनुवाद करे "ननु" इति, पूर्व जो ईश्वर की उपासनांश अङ्गीकार करी सो साची नाम यथार्थ वार्ता है याते वेद पुराण ता में प्रमाण हैं पुनः ईश्वर को जो सहित अहङ्कार से तुमने उपादान कथन किया सो कैसे कोन बखान नाम वह तुमसे काहू रीति से नहीं कह्या जावे ॥ २५१ ॥

"कैसे कीन बखान" से कही बात स्पष्ट करे "निमितं" इति जु भाखै सुभूमें न कोई निवारै कहिये "अहै कौन भू में जो ताको निवारै" इस रीति से जो कहते हो पृथिवी में ताको कोई वादी नहीं दूर कर सके" नहीं चित्त आवै कहिये तुम्हारा ऐसा कथन उपादानता अंश विषे हमारे चित्त विषे नहीं आवे, यतो नाम जिस कारण ते, तर्क वेत्ता नाम युक्ति को जानने वाले नैयायिक और प्रकार कहे है ॥ २५२॥

चौपाई

ज्यों नैयायिक बैन उचारै । सो सुनिये नीके निर्धारै ।
निमित्त हेतु ईशको गावै । उपादान परमाणु बतावै ॥२५३॥
तामें युक्ति कहे इक भारी । कोय न सके सुताहि निवारी ।
मृदअन्वित घट देखे सारे । ईश युक्त नहिं कोउ निहारे ॥२५४॥
उपादान जाको जो होई । ताहि युक्त कार्य सो होई ।
ऐसी व्याप्ति सकल बखानै । अहे कौन जो याहि न मानै ॥२५५॥

और बतावना स्पष्ट करे "ज्यों" इति, तिनके कहे वचन कहे "निमित्त" इति, आगे कहनी व्याप्ति से उपादानता को बाध कर ईश्वर निमित्तमात्र कारण है यह कहे हैं पुनः ज्ञान के अभाव रूप अज्ञान को भाव रूप जगत् की उपादानता न होने से जगत् का उपादान कारण चार भूतों के परमाणु को बतावे हैं ॥ २५३ ॥

और तामें कहिये ईश को निमित्तता औ परमाणुओं को उपादानता में, एक आगे कहनी व्याप्ति रूप भारी नाम प्रबल युक्ति कहे हैं जिस प्रवलता से ताहि नाम तिस युक्ति को कोई नहीं दूर कर सके, उपादान साथ उपादेय के अभेद का प्रत्यक्ष जो प्रवल युक्ति का ग्राहक प्रमाण ताका द्व्यणुकादि क्रम से कपाल रूप भई घट हेतु रूप मृत्तिका में भाव और ईश्वर में अभाव दिखावे "मृद्" इति, मृद् रूप उपादान साथ, अन्वित नाम युक्त अर्थात् "मृद् घट है" इस रीति से अभिन्न घट को सम्पूर्ण लोक प्रत्यक्ष करे है औ ईश कहिये ईश्वर रूप उपादान साथ युक्त नाम "घट ईश्वर है" ऐसे अभिन्न कोई प्रत्यक्षवादी भी नहीं करे है औ प्रत्यक्ष से ही यह व्याप्ति ग्रहण होवे है ॥ २५४ ॥

प्रत्यक्ष से ग्रहण करी व्याप्ति कहे "उपादान" इति, उपादान कहिये नैयायिक बोली से समवायिकारण जाको नाम जिन घटादिकों के, जो होई कहिये जो मृत्तिका आदिक हैं। ताहि--युक्त नाम तिन मृत्तिका आदिक उपादानों के साथ अभिन्न, सो नाम वह घटादिक कार्य होवे हैं ऐसी व्याप्ति नाम नेम सर्वत्र है, वह नैयायिक उपादान स्थल में कहे है। औ इहां वह उपादान साथ उपादेय के अभेद का नेम भान होवे नहीं, याते ईश्वर को उपादानता नहीं बने, किन्तु उपादानता का अभाव

भुजङ्गप्रयात छन्द

भई सृष्टि सारी रची ईश जैसी ।
अहे रीति जैसी कहौं आज तैसी ।
प्रबोधं सु नित्यं तथा चाहि जानो ।
कृति ताहि की जो तथा नित्य मानो ॥२५६॥

चौपाई

मूर्तद्रव्य जहाँलग जोई । ताहि संयोग करे प्रभु सोई ।
मिलि मूर्तपरमाणु साथ । धरणी आदि रचे जगनाथ ॥२५७॥

है काहेते ? जैसे जो जिस उपादान वाला है सो तिस युक्त होवे है यह नेम है तैसे जो जिस साथयुक्त नहीं वह तिस उपादान वाला नहीं पूर्व से उलटा यह भी नेम है याते, घटादि प्रपञ्च, ईश्वर रूप उपादान वाला होने को योग्य नहीं, तिस साथ अभिन्न न होने ते, जल साथ घटवत्, या अनुमान से उपादानता अंश दूर होवे है कार्य का जाके संग अभेद होवे वह उपादान कहिये है, जाके संग अभेद न होवे, वह निमित्त कहिये है। अहे कौन भू में इत्यादिक कथन कर्ता को अपना बल जनावे "अहे" इति, याहि न मानै—इस नेम को न मानै पानी में पत्थर तरे है या बात में काहू का विश्वास न देखने ते वेद प्रतिपाद्य अर्थ का भी युक्ति सिद्ध का ही अङ्गीकार होवे है, युक्ति रहित का नहीं, याते युक्ति से ईश में निमित्त मात्रता सिद्ध भये सब को वही अङ्गीकार करने योग्य है यह भाव है ॥ २५५ ॥

ईश्वर को उपादानता खण्डनकर्ता निमित्तमात्र से जगत रचना का प्रकार कहे "भई" इति, प्रकार कहने हेतु प्रथम कार्य के उपादान गोचर अपरोक्ष ज्ञान इच्छा प्रयत्न वाले ही कुलाल को निमित्तता देखने से ईश्वर में भी रचना योग्य सामग्री तथा जीव ज्ञानादिकों से विशेष कहे "प्रबोधं" इति, प्रबोधं सुनित्यं कहिये जीवोंके ज्ञानवत् काहू सामग्री से न जन्य होने ते ईश्वर के ज्ञानादिक नित्य हैं पुनः एक एक है, प्रबोधं—ज्ञान, चाहि—इच्छा, कृति—उद्यम ॥ २५६ ॥

पातञ्जल मत के दोषों की अप्राप्तिसूचन करे "मूर्त" इति, मूर्त द्रव्य कहिये पृथिवी आदिक चार भूतों के जो परमाणु हैं, ताहि नाम तिन

अब सिद्धान्ती न्याय मत का खण्डन करे है ।

दोहा

सिद्धान्ती—

नैनपाद कणभुक् तथा, ऐसे भाखे ज्ञान ।
युक्ति हीन उर हेर के, नहिं माने सुज्ञान ॥२५८॥

चौपाई

ज्ञान नित्य तैसे तिहचाह । यत्न नित्य ईश में आह ।
कार्य निखिल सदा तब होई । प्रलय जनक हेतु नहिं कोई ॥२५९॥

परमाणुओं का अर्थात् पृथिवी परमाणु साथ पृथिवी परमाणु का, जल परमाणु साथ जल परमाणु का, अग्नि परमाणु साथ अग्नि परमाणु का, वायु परमाणु साथ वायु परमाणु का वह परमेश्वर मिलाप करे है याते "जगत् रचों" ऐसी अपनी इच्छा से, मिलि मूर्त कहिये परमाणु रूप मूर्त द्रव्यन साथ मिल कर तिन परमाणुओं के संयोग से धरणी आदि नाम स्थूल पृथिवी आदिकों को वह जगत् का नाथ ईश्वर रचे है । मूर्त अमूर्त भेद से द्रव्य दो प्रकार से हैं । दोनों में अल्प परिमाण और क्रिया वाले पृथिवी जल अग्नि वायु मन यह पांच मूर्त द्रव्य है । आकाश, काल, दिशा, आत्मा यह विभु निष्क्रिय चार अमूर्त द्रव्य हैं, गुण वाली वस्तु का नाम द्रव्य होवे है ॥ २५७ ॥

उपादानता न मानते नैयायिक के मत में नित्य ज्ञानादिरूप अपराध ते प्रलय की असिद्धि आदिक दोषों से ईश्वर को निमित्तता भी नहीं बने या अभिप्राय से तटस्थ प्रति मत को अग्राह्यता सुनावे सिद्धान्ती "नैन" इति नैनपाद—गौतम मुनि, औ कणभुक्—कणाद मुनि, ज्ञान—विचार; सु ज्ञान=बुद्धिमान् ॥ २५८ ॥

कारण के विद्यमान भये कार्य विलम्ब न देखने से प्रलय की असिद्धि कहे "ज्ञान" इति, तब होई नाम कार्य मात्र के हेतु ज्ञानादिक जे नित्य हैं तब सर्वदा सर्वकार्य होवेंगे, होने में बीज कहे "प्रलय" इति याते ज्ञानादिकों विना भाव कार्यों के नाशरूप प्रलय का जनक और कोई कारण नहीं, ताते निखिल कार्यों के सर्वदा रह्या निखिल कार्य द्रव्यन का ध्वंस रूप प्रलय नहीं बनेगी यह भाव है ॥ २५९ ॥

अब सिद्धान्ती विकल्प रूप युक्ति से न्याय मत का खण्डन करे है ।

सवैया

फूलनको फल को पुनि नियम सु कौन करे अब हेतु न कोई ।
ईश अधीन सु सृष्टि कही अरु तागुण नित्य भनै तुम सोई ॥
नाहिं विलम्ब सु ईश करे पुनि, शीत सु ग्रीषम की गतिखोई ।
नाहिं सहायक और कहै पुनि, नियम करे भवभीतर जोई ॥२६०॥

चौपाई

सहकारी और ईशको मान । दूषण को जु करै परहान ।
तामें दूषण प्रकट बखानो । तुमनीके उर अंतर मानो ॥२६१॥

ईश्वर के ज्ञानादिकों को नित्यता औ एकता मानते वादी के मत में पुष्प ज्ञान को ही फलज्ञान औ ताकी इच्छा को ताकी इच्छा, औ ताके उद्यम को ही ताका उद्यम होनें ते सामग्री वाले कार्यों के समकाल में होने के नेम कर पुष्प काल में ही फल के भये व्यवस्था भी दूर होवेगी यह दूसरा दोष कहे "फूलन" इति। नियम-पहले फूल, पीछे फल ऐसी व्यवस्था, न करने में हेतु कहे "अब" इति, नित्य ज्ञानादिकों को कारणता अङ्गीकार काल में, हेतु न कोई—और हेतु कोई नहीं, संक्षेप ते कही बात को दो तुकों कर स्पष्ट करे "ईश" इति, ईश अधीन सुसृष्टि कहो नाम "भई सृष्टि सारी" इत्यादि पाठ से, ता गुण—ईश के गुण, सोई—ज्ञानादिक, किञ्च जाके होने से सदा सर्व का होना प्राप्त भया, न होने से न होना भी कह सके ऐसा कोई सहकारी माना नही, याते ईश्वर ज्ञानादिकों को नित्य रह्या प्रलय की असिद्धि औ व्यवस्था हानि का निराश नहीं बने, यह कहे—"नाहिं" इति ॥ २६० ॥

जिनके होने, न होने कर कार्यों का होना, न होना बने ऐसे देश, काल, अदृष्ट,—प्रतिबन्धकाभाव, प्रागभाव रूप सहकारी मान यह बुद्धि बतावे "सहकारी इति, दूषण को प्रलय को असिद्धि और अव्यवस्था को परहान-निवृत्ति। मानते को कहे "ता में" इति, ता में—सहकारी के अंगीकार में ॥ २६१ ॥

सहकारी ताको नित्य बखानो। अथवा ताहि अनित्यहि मानो।
सहकारी नित्य सदाही होई। अनित्य माहि दूषण पुन सोई ॥२६२॥

दोहा

जे सहकारी को जने, सहकारी बिन सोय।
भवरचना में हेर उर, तैसे क्यों नहिं होय ॥२६३॥

चौपाई

सहकारी में सहकारी और। कहे अनवस्था लहे न ठौर।
अरु पुनि ईश्वर इच्छा जोई। तृतीय स्वरूप कहीजै सोई ॥२६४॥

दूषण कथन हेतु विकल्प करे "सहकारी" इति ताको—ईश्वर को, ताहि—सहकारियों को, अनित्यहि मानो—जन्य कहता है, प्रथम पक्ष में दोष कहे "सहकारी" इति, सहकारी नित्य नाम सहकारियों को सर्वदा माने, सदा ही होई—सर्व काल कार्य होवेंगे, नित्यवस्तु में न होने से न होना, कहन को अशक्य होने कर, होने में होने की आवश्यकता भये प्रलय की असिद्धि आदिक वैसे ही होवेंगे यह भाव है, या भय से जन्य कहो तब आप भी कार्य भये याते तिनकी उत्पत्तिकाल में सर्व की उत्पत्ति का औ सर्व की उत्पत्तिकाल में तिनकी उत्पत्ति का प्रसंग होवेगा यह कहे "अनित्य" इति सोई—सर्वदा कार्यों का प्रसंगरूप ही ॥ २६२ ॥

किञ्च दुर्जन तोष न्याय से रहो जन्य सहकारी का अंगीकार तथापि ताकी रचना में ईश्वर अन्य सहकारी की अपेक्षा करे है वा नहीं इन विकल्पों विषे दूसरे के स्वीकार में सहकारी के अंगीकार को निष्फलता कहे "जे" इति, तैसे—सहकारी बिना रचने को समर्थ ॥ २६३ ॥

प्रथम में अनवस्था कहे "सहकारी" इति, अनवस्था शब्द का अर्थ—"लहे न ठौर" किञ्च ईश्वर की इच्छा को एक होने से जो उत्पत्ति की इच्छा है वही स्थिति, संहार की इच्छा है याते कारण के विद्यमान रहे उत्पत्तिकाल में ही स्थिति प्रलय भी हुए चाहिये यह कहे "अरु" इति ॥ २६४ ॥

सृष्टीच्छा रक्षेच्छा दोई। संहारेच्छा तीसर पुन होई।
सत संकल्प ईश है जोई। युगपत् सफल करे त्रयसोई ॥२६५॥
सृजन पालन और संहार। सब कार्य को युगपत् धार।
कर्म व्यवस्था हेतू जोई। प्रथम निराश किये हम सोई ॥२६६॥
अरु अनुमानिक ईश्वर जोई। उभय प्रकार हेतु सो होई।
भूम्यादिक कार्य है जोई। प्रकृति निमित्त एक ते होई ॥२६७॥

तीनों के नाम कहे "सृष्टीच्छा" इति सृष्टाच्छा सृजन की इच्छा अर्थात् उत्पत्ति की इच्छा, रक्षेच्छा—रक्षा की इच्छा अर्थात् स्थिति की इच्छा, संहारेच्छा—प्रलय की इच्छा सत संकल्प—सफल इच्छा वाला, सो यह वक्ष्यमाण युगपत् सफल कथन में हेतु है, अर्थात् जिससे सफल इच्छा वाला है याते युगपत् नाम एक काल में ही, सफल करे त्रय सोई नाम उत्पत्ति आदिक फलों सहित करेगा तीनों को वह ॥ २६५ ॥

"युगपत् सफल" का अर्थ स्पष्ट भरे "सृजन" इति ननु सहकारी कारणों के समीप होने न होने कर उत्पत्ति आदिकों के होने न होने की व्यवस्था बने हैं यह आशंका कर कहे "कर्म" इति, प्रथम निराश किये नाम "सहकारी ताको नित्य बखानो" इत्यादि कथन से पहले खण्डन किये ॥ २६६ ॥

किञ्च क्षित्यादिकं, कर्तृजन्यं, कार्यत्वात्, घटवत्, या अनुमान से निमित्त रूप कर सिद्ध होता हुआ ईश्वर अनुमानान्तर से उपादान भी होवे है, यह आत्मा को अद्वैत बोधन में तात्पर्यवादी उपादानता सिद्ध करे "अरु" इति, अनुमानिक कहिये जो "क्षित्यादिकं" इस अनुमानसिद्ध ईश्वर है, उभय प्रकार नाम-निमित्त उपादान दो ही रीति से जगत् का कारण वही होवे है, अनुमानिक कहने का यह भाव है=नास्तिक साथ विवाद काल में चार भूतों से जगत् रचना स्वभाव से होवे है और कर्ता कोई नहीं, यह ताकी वाणी सुनकर स्वभाव से जगत् माने तब चित्रकार विना चित्र भी होना चाहिये औ होवे नहीं, याते यह नेम मानना जहां-जहां कार्यता है तहां-तहां कर्ता कर जन्यता है, जैसे घट में कार्यता है औ कुलालकर्ता कर जन्यता है, तैसे भूत भौतिक प्रपञ्च में कार्यता रहे है याते कर्ता कर जन्यता भी अवश्य माननी। वह कर्ता भी जीवों के यत्न से ताकी रचना न देखने से और ही मानना, वही ईश्वर है, इस रीति

कार्यत्व ही हेतु बखानो । ऊर्णनाभि तन्तु सम जानो ।
जो कुलाल दृष्टांत बखाने । शुद्ध निमित्त ईशको माने ॥२६८॥

निराज छन्द

कुलालके समान तो सुदेह ताहि मानिये ।
गहै प्रमाणु जाहिसों सु हाथको बखानिये ॥
कुलालके समानसो अनित्य बोध होवई ।
सदा प्रमाणु नापिखे कभी कभी सु जोवई ॥२६९॥

से प्रथम वह अनुमान से ही सिद्ध होवे है पश्चात् युक्ति सिद्ध अर्थ में श्रुति भी प्रमाण होवे है याते पहली बात को लेकर वह अनुमानिक कहा जावे है उपादानता साधक अनुमान कहे "भूम्यादिक" इति, भूम्यादिक कार्य है जोई नाम जो पृथिवी जलादिक औ घट अङ्कुरादिक अर्थात् भूत-भौतिक कार्य है, प्रकृति निमित्त एक ते होई नाम उपादान निमित्त एक से है अर्थात् भूम्यादिक कार्यों का निमित्त उपादान एक ही है ॥ २६७ ॥

कहे साध्य की सिद्धि में हेतु क्या कहें ? औ दृष्टान्त क्या जाने ? तहां कहे "कार्यत्व" इति, कार्यत्व-कार्यपना भूम्यादिक कार्य यह पक्ष है "प्रकृति निमित्त एक ते" यह साध्य है "कार्यत्व" यह हेतु है। ऊर्ण नाभि की तन्तु दृष्टान्त है. साध्य का या में संशय होवे वह पक्ष कहावे है, अनुमान से जाकी सिद्धि करी चाहे वह साध्य कहावे है, पक्ष में साध्य की सिद्धि करने वाला चिह्न हेतु कहावे है, साध्य औ हेतु के निश्चय वाली जगह दृष्टान्त कहावे है, ऐसे भये भूम्यादि कार्य, एक निमित्त उपादान वाले होने को योग्य है, कार्यपने ते, ऊर्ण नाभि तन्तुवत्, यह ईश्वर को उपादानता साधक अनुमान सिद्ध भया। ननु जो जिसका उपादान है वह तिसका निमित्त नहीं याके समान जो जिसका निमित्त है वह तिसका उपादान नहीं, यह भी व्याप्ति है, याते, ईश्वर अनुपादान होने को योग्य है, निमित्त होने ते, कुलालवत्, या अनुमान से ईश्वर में उपादानता का वाध कर शुद्ध निमित्तता सिद्ध होवे है, यह आशंका कर कहे "जो" इति, शुद्ध निमित्त—निमित्तमात्र, अर्थात् अनुपादान जेकर कहो ॥ २६८ ॥

तब निमित्तमात्र ईश्वर को, निमित्तमात्र कुलालवत् जगत् रचना में, जन्य ज्ञान औ देहादि सापेक्षा भी मानो, ऐसे भये नित्य ज्ञान मत हानि

चौपाई

अनित्य ज्ञान ईश्वर जब होयो। नित्य ज्ञान मत तेरो खोयो।
सांग कुलाल लये मृद जाल। लय उपजावै घटकी माल ॥२७०॥

दोहा

बहुरो पावे भोगको, सांग कुलालहि जोय।
कर्म-अधीनहि भोग सो, ईश यथा नहिं सोय ॥२७१॥

चौपाई

त्यों ईश्वर परमाणु गहै। सर्ग उपाय भोग त्यों लहै।
भोग होय कर्मन आधीन। करे कर्म नहिं ईश्वर चीन ॥२७२॥

दोहा

निमित्त हेतुता ईशकी, भई तर्क ते हानि।
अब परमाणु हेतुता, तर्कहीन पहिचान ॥२७३॥

औ पातञ्जल मत में "शरीरी कर्ता जो" इत्यादि पाठ से कहे दोषों से ईशता की हानि होवेगी यह कहे "कुलाल" इति ॥ २६९ ॥

अनीश्वरता स्पष्ट करे "सांग" इति, सांग—अंगों सहित अर्थात् अंगों वाला कुलाल, "लय" पद का पूर्व सम्बन्ध कर लय मृद्-मृत्तिका लेकर, पुनः जाल लय—दण्डादिक निमित्त कारणों का समुदाय लेकर, उपजावै घट की माल नाम रचे है घटों की पंक्ति ॥ २७० ॥

सांग कुलालहि जोय—अंगों वाले कुलाल को देख, कर्म अधीनहि भोग सो नाम वह घटादिकों की रचना जन्य सुख-दुख में काहू एक का साक्षात्काररूप भोग कर्माधीन होवे है औ ईश को यह सम्यक् नहीं सोई कहे "ईश" इति, ईश यथा नहिं सोय वह कर्माधीन भोग ईश को यथा नाम यथार्थ नहीं अर्थात् भोक्ता को जीवता के नेम ते ईश को भोग यथार्थ नहीं यद्वा जब कर्माधीन भोग वाला हुआ तब ईश यथा नहिं सोय—वह यथार्थ ईश्वर नहीं, किन्तु कथनमात्र ईश्वर है औ वास्तविक ते जीव है यथार्थ के स्थान दोहे का पाठ बिगड़ने से "यथा" लिखा है ॥ २७१ ॥

वास्तविक ईशता का न होना कहे "त्यो" इति, सर्ग उपाय—जगत् की रचना करके ॥ २७२ ॥

परमाणुओं को उपादानता खण्डन के आरम्भ हेतु कहे "निमित्त" इति, निमित्त हेतुता कहिये "निमित्त हेतु ईश को गावे" इस पाठ से कही

चौपाई

तटस्थ—

नैयायिक सप्त पदार्थ मानै । भिन्न भिन्न तिहि नाम वखानै ।
सो संक्षेप ते करौं उचार । काकदंत समअधिक विचार ॥२७४॥

भुजङ्गप्रयात छन्द

सु द्रव्यं गुणं कर्म सामान्य जानो ।
विशेषं समवाय षष्ठो पछानो ॥
अभावं यही सात संख्या उचारं ।
सुनौधादि भेदं असारं विचारं ॥२७५॥

ईश्वर को निमित्त कारणता, तर्क ते—"कार्य निखिल सदा तव होई" इत्यादिक युक्तियों से दूर हुई, औ अब—निमित्तता खण्डन से पीछे, "उपादान परमाणु बतावे" पाठ से कही उपादानता भी वक्ष्यमाण रीति से युक्तिरहित होवे है जानो ॥ २७३ ॥

निषेध को विधान बिना न बनने से परमाणुओं के प्रसंग ते प्रथम दूसर अध्यायों में खण्डन करने योग्य सभी पदार्थ कहे "नैयायिक" इति तिहि नाम पदार्थों के नाम, संक्षेप ते काहे कहते हो विस्तार से कहो तहाँ कहे, "काकदन्त" इति, काकदन्त—काक के दन्तों के विचार सम निष्फल हैं ॥ २७४ ॥

नाम कहे "सुद्रव्यं" इति, पदार्थ—वस्तु के द्रव्यादिक सात भेदों के विचार को असारतावत् द्रव्यादिकों के नवधादिक भेदों का विचार भी असार है यह कहे, "सुनौधादि" इति, आदि शव्द से गुणादिकों के चौबीस आदिक भेदों के विचार को असारता जान लेनी, यद्यपि नवधादिक भेदों के विचार को असारता कहने से लक्षण परीक्षा छोड़ नाम लेने की अयोग्यता सूचन करी, तथापि नाम से भी न जानी वस्तु के खण्डन को अयोग्य होने से नाम दिखावे हैं। द्रव्यादिक सातों में पृथिवी १, जल २, अग्नि ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६, दिशा ७, आत्मा ८, मन ९ यह नव भेद द्रव्य के हैं। रूप १, रस २, गन्ध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व १३, स्नेह १४, शव्द १५, बुद्धि १६,

सुख १७, दुख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२, अधर्म २३, संस्कार २४ यह चौवीस भेद गुण के हैं। मिनती रूप व्यवहार के असाधारण कारण का नाम परिमाण है। चार प्रकार का भी आगे परम मध्यम भेद से दो प्रकार का है परमाणुद्व्यणुक घट आकाशादिकों में क्रम ते रहे हैं। उत्क्षेपण १, अपक्षेपण २, आकुञ्चन ३, प्रसारण ४, गमन ५ यह पाँच भेद कर्म के हैं। ऊपर गिरना, तले गिरना, एकत्र करना, पसारना, यह उत्क्षेपणादिक चारों के अर्थ हैं। सत्ता जाति यह दो भेद सामान्य के हैं, है पना रूप सत्ता है, औ घटपना आदिक जाति है। विशेष अनन्त प्रकार का है पृथिवी आदिक चारों के परमाणु औ आकाशादिक पाँच इन नित्य द्रव्य मात्र में रहे हैं, अंगीकार तिनका ऐसे है घटपटादिकों के परस्पर भिन्न होने में कपाल औ तन्तु आदिक अवयव कारण है औ सर्व जगत् के आदि कारण परमाणुओं को निरवयव मानने से, तिनके अवयव वने यहीं, याते पृथिवी आदिक तत्त्वों के परमाणुओं का परस्पर भेद न सिद्ध होने से पृथिवी जलादि रूप कार्यों का सांकर्य प्रसंग होवेगा याते परमाणुओं का परस्पर भेद सिद्ध करने वाली वस्तु, अवश्य माननी चाहिये वही विशेष है वह पुनः स्वरूप ते परस्पर भिन्न है औ नित्य द्रव्यन का तैंसे भेद करे हैं, जैसे वेदान्त मत में अज्ञान का स्वरूप ते अध्यास है ओर इन्द्रियादिकन का अध्यास करे है, समवाय एक प्रकार है, अंगीकार तिसका भी ऐसे है, जो-जो विशिष्ट ज्ञान है सो-सो काहू विशेषण को काहू विशेष्य को काहू सम्बन्ध को विषय करने वाला हावे है, यह नेम है, जैसे "दण्डी" यह विशिष्ट ज्ञान दण्ड विशेषण को, पुरुषविशेष्य को, दण्ड पुरुष के सम्बन्ध को, विषय करे है, तैंसे "रूप वाला घट है" यह विशिष्ट ज्ञान भी विशेषण विशेष्य औ तिनके सम्बन्ध को विषय करने वाला कहना सो सम्बन्ध घट, द्रव्य का औ रूपगुण का, संयोग तो बने नहीं, काहे ते? संयोग दो द्रव्यन में होवे है याते संयोग का बाध भये समवाय सिद्ध होवे है औ एकता तो एक ते हीं अनेक व्यवहारों के सिद्ध भये अनेकों को हेतुता मानने को अनुचित होने ते है॥ यद्यपि समवाय को एक होने ते घटगत रूप समवाय ही आकाश में शब्द का समवाय है औ जहाँ जिसका सम्बन्ध रहे तहाँ तिसके सम्बन्धी के रहने का नेम है याते आकाश में रूप का सम्बन्ध रहे सम्बन्धी रूप के आने कर "रूपवान् आकाशः" इस प्रतीति का प्रसंग

चौपाई

तापरिपाटी यों पहिचानो । या में भेद न रंचक मानो ।
क्रियावंत परमाणु माने । तिनही ते सब जगत बखाने ।।२७६।।
अनारब्ध कार्य बहु काल । स्वगुण धार रही अणुमाल ।
बहुर सृष्टि कालके साहीं । जीव माहिं अदृष्ट जे आहीं ।।२७७।।

होवेगा, याते समवाय को अनेकता माननी उचित है, काहे ते ? अनेकता माने शब्द समवाय से रूप समवाय भिन्न हैं याते उक्त प्रतीति का प्रसंग नहीं होवेगा, यह अशंका होवे है, तथापि रूप विशिष्ट समवाय का अधिकरणपना ही वैसी प्रतीति का नियामक है औ आकाश में रूप विशिष्ट समवाय का अधिकरणपना रहे नहीं, याते तादृश प्रतीति का प्रसंग दूर होने से, समवाय को एकता समीचीन है औ एक होने ते ही, समवाय नित्य है, आकाशवत्, या अनुमान से ताको नित्यता सिद्ध होवे है। प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अत्यन्ताभाव अन्योन्याभाव भेद से अभाव चार प्रकार का है, "इन तन्तुओं में वस्त्र होवेगा" इस प्रकार उत्पत्ति ते प्राग्नाम पूर्व कार्य के उपादान में सिद्ध भये अभाव का नाम प्रागभाव है। "नष्ट भया" इश बोली से सिद्ध भये अभाव का नाम प्रध्वंस है, "इस स्थान में वह वस्तु नहीं" ऐसी बोली से सिद्ध भये अभाव का नाम अत्यन्ताभाव है, "यह, वह नहीं" पुनः वह, यह नहीं" ऐसी बोली से सिद्ध भये अभाव का नाम अन्योन्याभाव है, तथा भेद भी याही का नाम है, रहो अधिक विचार काकदन्त समानता कथन के डर से ।।२७५।।

खण्डन योग्य पदार्थों के विशेष विचार की अयोग्यता सूचन कर खण्डनार्थ किञ्चित् प्रक्रिया दिखावे "ता" इति, परिपाटी—प्रक्रिया, भेद-फर्क, प्रक्रिया कहे—"क्रिया" इति क्रियावन्त नाम प्रलय काल में स्वतः क्रिया वाले, तिनहीं ते—क्रियावन्त परमाणुओं ते। २७६ ।।

अनारब्ध कार्य नाम—नहीं आरम्भ किया कार्य का जिन्होंने, ऐसे क्रियावन्त परमाणुओं का पंक्ति, वहुत चिर, स्वगुण–अपने रूपादिक गुणों को धारण किये प्रलय में रहती है, चार भूतों के परमाणुओं की पंक्ति में धारे हुये समग्र गुण यह हैं, पृथिवी के परमाणु रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्व, वेग रूप संस्कार, इन चतुर्दश गुणों को धारण कर रहे

तिनहीं के प्रभु होय अधीन । निज इच्छा जग जने प्रवीन ।
परमाणुको प्रभु दियो मिलाय। कार्य जन्यो सु सहज सुभाय ॥२७८॥
दुहूं मिले ते भयो द्वचणुक । तीन द्वचणुक ते भयो त्र्यणुक ।
या विधि क्रमकर जगतबनाये । कारण गुण कार्य गुण जाये ॥२७९॥

हैं। जल के परमाणु गन्ध को छोड़ स्नेह को मिलाय यहो चतुर्दश गुणों को धारण कर रहे हैं, तेज के परमाणु रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, नैमित्तिक द्रवत्व, वेग रूप संस्कार, इन एकादश गुणों को धारण कर रहे हैं।' वायु के परमाणु स्पर्श, संख्या, परमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व. वेगरूप संस्कार, इन नव गुणों को धारण कर रहे हैं। गुण क्रिया सहित उपादान परमाणुओं का स्वरूव कह कर तिन से रचना की रीति कहे "वहुर" इति, वहुर नाम—प्रलय से अनन्तर उत्पत्ति के समय विषे, जीव माहि—जीव विषे, जो फल देने को सन्मुख हुये धर्माधर्म है ॥ २७७ ॥

तिनहीं के नाम–तिन अदृष्टों के ही फल दातापने स्वभाव से परमेश्वर अधीन होकर, निज इच्छा कहिये "जगत् की रचना हेतु परमाणुओं का मिलाप होवे" ऐसी अपनी इच्छा से जगत् रचे है सोई स्पष्ट करे "परमाणु" इति सहज सुभाय कहिये जोवोंवत् बिना विशेष परिश्रम द्वयणुकादि ब्रह्माण्ड पर्यन्त कार्य रचना ॥ २७८ ॥

द्वयणुकादिक कार्य कैसे हुये तहां कहे "दुहूँ" इति या विधि नाम चार त्र्यणुकों से चतुरणुक औ पांच चतुरणुकों से पञ्चाणुक आदि क्रम से स्थूल ब्रह्माण्ड पर्यन्त जगत् बनाया, कारण द्रव्योंते कार्य द्रव्यों की उत्पत्ति का प्रकार कह कर कारणगुणों से कार्यगुणों की उत्पत्ति का प्रकार कहे "कारण" इति। कारण गुण कहिये परमाणु द्वयणुक आदिकों के रूप रसादिक गुणों से कार्य कहिये द्वयणुक त्र्यणुक आदिकों के रूप रसादिकों को ईश्वर रचे है अर्थात् परमाणु के रूप से द्वयणुक में रूप, रस से रस, गन्धादिकों से गन्धादिक रचे हैं, परन्तु परमाणु के परिमाण से द्वयणुक का परिमाण औ द्वयणुक के परिमाग से त्र्यणुक का परिमाण इन दो स्थान में परिमाण से परिमाण नहीं रचे, किन्तु संख्या से परिमाण रचे है, आगे परिमाण से रचे है ॥ २७९ ॥

परमाणु माहि द्वित्व है जोई। द्वयणुक परिमाणआरंभक सोई।
द्वयणुकमाहित्रित्वसंख्या जोई। त्र्यणुकपरिमाणआरंभकसोई।२८०॥
परमाणु अणु परिमाणहि जोई। नाहिं आरंभक माने सोई।
अणु परिमाण जन्य जो होई। अणुते अणुतर होवै सोई॥२८१॥

सोई कहे "परमाणु" इति, परमाणु माहि कहिये दो परमाणुओं में, द्वित्व नाम दोपना रूप संख्या है सोई नाम वह द्वित्व संख्या ही द्वयणुक के परिमाण का आरम्भक है। आगे द्वयणुक माहि कहिये तीन द्वयणुकों में जो त्रित्व संख्या नाम तीनपना रूप गिनती है सो त्र्यणुक के परिमाण का आरम्भक है॥ २८०॥

संख्या को परिमाण की आरम्भकता छोड़ कर रूपादिकों वत्, अणु-परिमाण को आरम्भक मानो तहाँ कहे "परमाणु" इति न आरम्भक मानने में हेतु कहे "अणु" इति, इहाँ यह भाव है = तन्तुओं से वस्त्रवत् परमाणुओं से द्वयणुक आदिक उपजे हैं तन्तु रूप से वस्त्रगत रूपवत्, परमाणुओं के रूप रसादिक गुणों से द्वयणुक आदिक में रूप रसादिक गुण उपजे हैं तहाँ भी यह विशेष है—जिस जाति वाला गुण कारण में रहे है उसी जाति वाले गुण की कार्य में उत्पत्ति करे है, भिन्न जाति वाले की नहीं, काहे ते ? तन्तु के नीलरूप से पट में नीलरूप ही होवे है, पीत नहीं। पुनः अपने से अधिक को रचे है, काहे ते ? जेता एक तन्तु में रूप है दो चार मिलने से तासे अधिक ही होवे है याते कारणगुणों में कार्यगुणों की रचना विषे यह नेम सिद्ध हुआ "जो कारण गुण कार्य-द्वयणुकादिकों में परम्परा सम्बन्ध से पहुँच कर अपनी जाति वाले औ अपने से उत्कृष्ट रूप गुणों को रचे है", परन्तु परमाणु के परम अणु परिमाण में औ द्वयणुक के मध्यम अणु परिमाण में, कहै नेम का संकोच है, काहे ते ? यह जगत् में अनुभव सिद्ध वात है जो दो, तन्तुओं से एक डोरो बनायी जावे तामें इन एक एक तन्तु के मध्यम महत्व परिमाण की अपेक्षा कर महत्तर होवे है, न्यून नहीं होवे, याते जो कारण गुणों से कार्यगुण में विशेषता माने है तिसने यह भी अवश्य मानना, जैसे महत्व से रचित में महत्तरता प्रसिद्ध है, तैसे अणु से बने में ताकी अपेक्षा कर अणुतरता भी अवश्य होवेगी, ऐसे भये परमाणु की अपेक्षा कर द्वयणुक में न्यून परिमाण, औ द्वयणुक की अपेक्षा कर त्र्यणुक में

परमाणु निरावयवतैं माने । सदा अनाशी ताहि बखाने ।

सिद्धान्ती—

यह प्रक्रिया ताकी उर मानो । तामें दूषण प्रकट पछानो ॥२८२॥

न्यून परिमाण होवेगा, याते त्र्यणुक का नेत्रों से प्रत्यक्ष होवे है सो नहीं होवेगा, काहे ते ? परमाणु द्वयणुक का प्रत्यक्ष न देख कर शास्त्रकारों ने यह प्रत्यक्ष की सामग्री कल्पी—जो जिस वस्तु में रूप औ प्रकाश के सम्बन्ध तथा चक्षु के सम्बन्ध सहित महत्व परिमाण रहेगा ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवेगा और का नहीं, औ परमाणु द्वयणुक में महत्व परिमाण रहे नहीं, याते जैसे तिनका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होवे तैसे त्र्यणुक में तिनसे भी न्यून परिमाण सिद्ध होने से ताका भी नेत्र से प्रत्यक्ष नहीं होवेगा, औ होवे है, याते प्रत्यक्ष के और रीति से न बनने ते यह मानना—जो जेते पदार्थ शास्त्रकारों ने माने सो प्रमाण से माने है, बिना प्रमाण शशश्रृङ्गों को कोई नहीं माने, याते जो वस्तु प्रसिद्ध होवे ताकी काहू रीति से बनने की कल्पना कर लेनी, ऐसे भये द्वयणुक त्र्यणुक के परिमाण की, परमाणु औ द्वयणुक के परिमाण से रचना नहीं होवे, किन्तु दो परमाणुगत द्वित्व संख्या से द्वयणुक के परिमाण की, औ तीन द्वयणुक की त्रित्व संख्या से त्र्यणुक के परिमाण की रचना होवे है, आगे चतुरणुक आदिकों में त्र्यणुक आदिकों के परिमाण से परिमाण की रचना होवे है इत्यलम् ॥ २८१ ॥

मेरु सरसो के परिमाण का भेद अवयवों की न्यूनता औ अधिकता से है औ अवयवों की न्यूनता अधिकता कहीक अवयवधारा के ठहरने से सिद्ध होवे है, न ठहरे ताको असिद्ध भये सरसो छोटी, मेरु बड़ा यह कथन दूर होवेगा, या भय से सरसो आदिकों से चली अवयवधारा का द्वयणुक के आगे परमाणु पर ठहरना अवश्य मानना, पुनः यहाँ ठहरना मान्या ताको अनित्य माने तब बिना उपादान उपादेयों की उत्पत्ति का प्रसंग होवेगा, याते तिनको नित्यता भी सिद्ध होवे है सोई कहे "परमाणु" इति, सदा अनाशी—नित्य, खण्डन का आरम्भ करे सिद्धान्ती "यह प्रक्रिया" इति, तामें—प्रक्रिया में ॥ २८२ ॥

अब सिद्धान्ती उक्त न्याय मत का विकल्पों कर खण्डन करे हैं।

स्वतः सिद्ध क्रिया है जोई। कार्य हेतु होय नहिं सोई।
जो ताको पुनिहेतु बखानो। कार्य सदा होय मत हानो ॥२८३॥
अनारब्ध कार्य बहु काल। स्वगुण धार रही अणु माल।
यह मत तेरो भयो विनाशी। जाते सृष्टि सदा प्रकाशी ॥२८४॥
ताते कार्य कारण जोई। भाखो क्रिया कौन ते होई।
यत्नवान ईश्वर है जोई। ताहि संयोग हेतु तिह होई ॥२८५॥
अथवा कर्मवदातम जोई। ताहि संयोग हेतु तिह होई।
उत मूर्तद्रव्यांतर जोई। ताहि संयोग हेतु तिह होई ॥२८६॥
ईश संयोग हेतु नहिं होई। प्रथम निराश कियो है सोई।
कर्मवान जीव है जोई। ताहि संयोग हेतु जो होई ॥२८७॥

द्वयणुकजनक परमाणु दो के संयोग का हेतु भूत परमाणु की क्रिया स्वतः सिद्ध है, वा निमित्त वशते है यह विकल्प कर प्रथम में प्रलय की असिद्धि रूप दोष कहे "स्वतः" इति, न होने में बीज कहे "जो" इति ॥ २८३ ॥

मत हानि प्रकट करे "अनारब्ध" इति, मत के विनाश में हेतु कहे "जाते" इति ॥ २८४ ॥

कहे दोष के भयकर निमित्तवश ते उपजी क्रिया को संयोग हेतु कहो, तब यह क्रिया कौन कारण ते है यह दूसरे के खण्डन हेतु पूछे "ताते" इति, "कार्यकारण जोई–क्रिया भाखो–कौन ते होई" यह अन्वय कर "कौन ते होई" शब्द कर सूचित विकल्प प्रकट करे—"यत्नवान" इति, ताहि संयोग—यत्न वाले ईश्वर का परमाणुओं के साथ संयोग, हेतु तिहि होई कहिये कारण परमाणुओं की क्रिया है ॥ २८५ ॥

कर्मवदातम नाम कर्मवान् जीव, उत मूर्त द्रव्यान्तर—अथवा परमाणुओं से और मूर्तद्रव्य ॥ २८६ ॥

प्रथम की असिद्धि कहे "ईश" इति, न होने में हेतु कहे "प्रथम" इति, सोई नाम वह ईश्वर संयोगरूप हेतु, "ज्ञान नित्य तैसे नित्य चाह" इत्यादि पाठ से हमने पहले निराश नाम खण्डन करा, याते नहीं बने,

प्रलय काल होय जग सारो । तैसे जीव सदा निर्धारो ।
परमाणु ते प्रलय में औरा । मूर्तद्रव्य लहै नहिं ठौरा ॥२८८॥
नहिं तव कीनो अङ्गीकार । कार्य कैसे बने तुम्हार ।
यथाकथंचित क्रिया होई । तौ निरवयव मिले नहिं दोई ॥२८९॥
एक देश संयोग बखानै । निरावयवता ह्वै है हानै ।
सर्व संयोग बखानो जबही । एक देश मत जावै तबही ॥२९०॥

मत बनो प्रथम ? कर्मवान् जीव का संयोग हेतु होवे तहाँ कहे "कर्म" इति, ताहिं संयोग नाम कर्मवान् जीव का संयोग, जेकर परमाणु क्रिया का हेतु होवे ॥ २८७ ॥

तव "प्रलयकाल होय जग सारो" कहिये प्रलयकाल विषे भी सम्पूर्ण जगत् होवेगा, होने में सामग्री का होना कहे "तैसे" इति, तैसे कहिये—उत्पत्ति स्थिति कालवत्, मुक्ति काल को छोड़कर जीव सर्वदा कर्मों वाला रहे है, याते कारण विद्यमान भये कार्य विलम्ब न देखने से कर्मों वाला जीव रूप सामग्री के प्रलयकाल में भी रह्या परमाणु क्रिया से जगत् रचना सदा भये प्रलय की असिद्धि होवेगी । तीसर की तो नांगीकार ते ही असिद्धि है सोई कहे "परमाणु" इति ठौर न लेने में अनङ्गीकार हेतु कहे "नहिं तव" इति ॥ २८८ ॥

तव नाम तुमने, यद्यपि मन मूर्त्त मान्या है तौ भी ताकों परमाणु क्रिया की हेतुता नहीं अङ्गीकार करी, याते संयोग रूप कार्य तुम्हारे काहू रीति से नहीं बने । किञ्च उत्पत्ति में संयोग को कारणता कहनेवत्, पूर्व प्रलय में परमाणु पर्यन्त विभाग को हेतुता कहनी औ विभाग संयोगवत् क्रिया—सापेक्ष है औ क्रिया कही रीति से बने नहीं याते पूर्व प्रलय के ही असिद्ध भये "अनारब्ध कार्य बहु काल" यह सर्वथा बिना विचारे कथन है, क्रिया बिना प्रसिद्ध रचना की अन्यथा अनुपपत्ति कर कथञ्चित् क्रिया की कल्पना करो, तौ भी संयोग के हेतुभूत अवयवों के अभाव ते संयोग नहीं बने सोई कहे "यथा" इति, यथा कथञ्चित् क्रिया = बिना प्रसिद्ध रचनादिकों की अन्यथानुपपत्ति आदिक युक्तियों से ॥२८९॥

"मिले नहिं दोई" प्रतिज्ञा सिद्धि हेतु परमाणु दो का संयोग एक देश से होवे है वा सर्व देशों से होवे है यह विकल्प कर प्रथम में सिद्धान्त

नहिं छिद्र एक एकके माहीं । द्वितीय प्रवेश करे यह नाहीं ।
बिना प्रवेश न सर्व संयोग । ताते सो है त्यागन योग ॥२९१॥

दोहा

सम्पूर्ण संयोग जो, अनुभवरूढ़ न होय ।
शश विषाण सम हेर उर, माने नाहीं कोय ॥२९२॥

अब पूर्वपक्षी स्वमत के रक्षणार्थ परमाणुओं के कल्पित देश मान कर कहे हैं ।

पूर्वपक्षी—　　　　　　चौपाई

ते ते दिश अवछेदक जेई । कल्पित देश बनावै तेई ।
कल्पित देशवान अणु जोई । प्रदेश संयोगवंत है सोई ॥२९३॥

हानि कहे "एक देश" इति, एक देश नाम एक अवयव से अर्थात् एक परमाणु के अवयव का संयोग कहिये मिलाप जेकर तूं कहे, तब एक अवयव कथन को द्वितीय आदिक सापेक्ष होने से परमाणुओं को सावयवता सिद्ध भये, निरावयवता ह्वै है हानि कहिये परमाणु निरवयव है इस तुम्हारे सिद्धान्त की हानि होवेगी । निरवयवता सिद्धान्त की रक्षा हेतु दूसरा कहो तब जिन पदार्थों में कोई अवयव से संयोग रहे हैं तिनही में, और अवयव से ताका अभाव रहे है इस तुम्हारे अव्याप्यवृत्तिता सिद्धान्त की हानि होवेगी, सोई कहे "सर्व" इति, सर्व संयोग नामसर्व अवयवों से मिलाप, एक देशमत—संयोग को अव्याप्यवृत्तिता सिद्धान्त ॥ २९० ॥

किञ्च छिद्ररहित एक वस्तु में दूसरी का प्रवेश न देखने से सर्व-संयोग पक्ष बुद्धि में भी नहीं आवे यह दूसरे में दूसरा दोष कहे "नहि छिद्र" इति, नहि छिद्र एक = छिद्ररहित जो एक, वा एक के माहीं कहिये तिस एक के विषे, यह नाहीं—कही बात बुद्धि में नहीं आवे, मत प्रवेश करो हानि क्या ? तहाँ कहे "बिना" इति, ताते—विना प्रवेश सर्व संयोग न होने ते, सो नाम सर्व संयोग पक्ष ॥ २९१ ॥

संयोग का बुद्धि में न आना स्पष्ट करे "सम्पूर्ण" इति, अनुभव रूढ़ न होय कहिये बुद्धि में नहीं आवे, बुद्धि में न आना भी तिसका प्रतिबन्ध वशते है, यह नहीं, किन्तु स्वरूप से ही न होने कर है, याते ताको कोई नहीं माने यह कहे "शश" इति ॥ २९२ ॥

ननु सर्व संयोग पक्ष अनंगीकार से ता पक्ष के दोष नहीं, पुनः परमाणुओं में वास्तविक अवयवों बिना भी कल्पित अवयवों को मानकर

निरावयव मत होय न हाने । जाते कल्पित देश बखाने ।

अब सिद्धान्ती वादी के उक्त कथन में इष्टापत्ति मानकर वादी को निग्रह कोटि में गिराता है ।

सिद्धान्ती—

यह प्रभाषण तुमरो जोई । मम अनुकूल पछानो सोई ॥२९४॥
कल्पित देश बखाने जेई । जो कार्य निर्वाहक तेई ।
तौ यह माया वाद पछानो । ते सिद्धांत अब दूर पलानो ॥२९५॥
संयोग किये पुन अङ्गीकार । परमाणु भिन्न द्व्यणुक असार ।

तिनों द्वारा परमाणुओं में संयोग का अभाव रहे संयोग को एक देश मत की भी हानि नहीं, यह बात कहने हेतु प्रथम परमाणुओं में देशरचना का कारण कहे "ते" इति, ते ते दिश–सो सो पूर्व पश्चिम दिशा रूप जो अवच्छेदक कहिये अपने विशेष रूप परमाणुओं का व्यावर्तक हैं, तेई कहिये वही, परमाणुओं में कल्पित देश रचे हैं अर्थात् देश रहित ब्रह्म में माया प्रभाव से देश कल्पनावत् "पूर्व में परमाणु है" "पश्चिम में परमाणु है" इन प्रतीतियों से पूर्व पश्चिम दिशा और दिशा के परमाणुओं से अपने परमाणुओं की जुदाई करती हुई तिनसे संयोग सिद्धि हेतु कल्पित देशों को रचे है, कल्पित देश कह कर तिनसे फल सिद्धि कहे "कल्पित" इति, कल्पित अवयवों वाला जो एक परमाणु है, प्रदेश संयोगवन्त हैं सोई कहिये वह कल्पित देश वाले दूसरे परमाणुओं के साथ सम्बन्ध वाला है ॥ २९३ ॥

ननु होवे संयोग सिद्धि निरावयव मत तो दूर हुआ यह आशंका कर संयोग को अव्याप्यवृत्तिता रूप सिद्धान्त की रक्षावत् निरवयवता रूप सिद्धान्त भी कल्पित मानने से दूर नहीं होवे यह कहे "निरावयव" इति । व्याज की इच्छा करते का मूल भी पूर हुआ या न्याय का प्रसंग देख कर कुशल मनावे "यह" इति यह प्रभाषणकल्पित देश मानकर संयोग मानना रूप कथन ॥ २९४ ॥

अपने सिद्धान्त का प्रवेश रूप अनुकूलता स्पष्ट करे "कल्पित" इति, निर्वाहक–साधक, तौ यह = तब कल्पित को कार्य साधकता मानना रूप, माया वाद पछानो कहिये कल्पित होकर विचित्र रचना की हेतुता कथन रूप हमारा माया वाद जान, स्व सिद्धान्त का प्रवेश कह कर परसिद्धान्त

कार्य कारण का तादातम । तातेभिन्न लहे नहिं आतम ॥२९६॥
अवयव अवयवी को समवाय । जो तूँ भाखे मोहि बनाय ।
तौ समवाय संबन्धहि जोई । ताहि सम्बन्ध कहो को होई ॥२९७॥
जो सम्बन्ध न ताको होई । ताहि सम्बन्ध कहे नहिं कोई ।
संगीभिन्न असंगहि जोई । अन्य पदार्थ सम है सोई ॥२९८॥

की हानि रूप अनुकूलता कहे "ते सिद्धान्त" इति, वास्तविक मानकर कार्य का हेतु कहना रूप तुम्हारा सिद्धान्त ॥ २९५ ॥

किञ्च रहो विना विचारे संयोग का अंगीकार तथापि तादात्म्य से भिन्न कार्य कारण के सम्बन्ध को न कह्या जाने ते, परमाणुओं से अत्यन्त भेद वाले द्व्यणुक की सिद्धि नहीं होवे, जिस रूप से उपादेय उपादान का कार्यकारण भाव होवे हैं तिस रूप से अत्यन्त भिन्नों का ही होवे है याते कारण में कार्य का अत्यन्त भेद होने कर कारण में कार्य को अनिर्वाच्यता नहीं बने इस पक्ष के परिहार हेतु कहे "संयोग" इति, असारता प्रकट करे "कार्य" इति-ताते-कार्य का कारण के साथ तादात्म्य होने ते, भिन्न लहे नहि आतम कहिये कारण से जुदा नहीं लेता कार्य अपना स्वरूप अर्थात् याते कार्य कारण का तादात्म्य ही सम्बन्ध वने है ताते परमाणुओं साथ द्व्यणुक का अत्यन्त भेद नहीं सिद्ध होवे ॥ २९६ ॥

ननु हम कार्य कारण का समवाय कहे हैं याते तुम्हारा कहा तादात्म्य नहीं सिद्ध होवे यह आशंका कर कहे "अवयव" इति, समवाय सम्बन्धियों साथ भिन्न है, वा अभिन्न है, भिन्न पक्ष में भी ताका सम्बन्धियों साथ सम्बन्ध है, वा नहीं यह विकल्प कर प्रथम में प्रथम मानते को पूछे "तौ समवाय" इति तौ नाम समवाय को अवयव अवयवी की सम्बन्धता अंगीकार काल में ॥ २९७ ॥

प्रथम के मनावने हेतु दूसर में सम्बन्धता-हानि रूप दोष कहे "जो" इति जेकर अवयवी अवयवी रूप सम्बन्धियों साथ समवाय का सम्बन्ध न होवे तब, ताहि सम्बन्ध कहिये समवाय को अवयव अवयवी का सम्बन्ध कोई नहीं कहेगा, कही वात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "संगी" इति संगीभिन्न कहिये सम्बन्धियों से भिन्न होकर, असंगहि जोई नाम तिनके साथ सम्बन्ध रहित जो समवाय है, वह अन्य पदार्थ सम है कहिये तन्तु पट

जो सम्बन्ध बखानों और । भई अनवस्था नाशी ठौर ।
स्वरूप सम्बध सम्बन्ध न होई । उभय अधीन न जाते सोई ॥२९९॥

दोहा

जो सम्बन्धी सों कहै, ताहि अभेद बनाय ।
तौ इक दूषण और अब, नीके दयों सुनाय ॥३००॥

रूप सम्वन्धियों से भिन्न होकर तिनके साथ समवाय रहित घटवत् है, याते उक्त रूप घट जैसे तिनका सम्वन्ध नहीं कहावे है तैसे भिन्न होकर तिन साथ सम्वन्ध रहित हुआ समवाय भी घटवत् तिनका सम्बन्ध नहीं कहावेगा। यद्वा सोई नाम वह समवाय अन्य पदार्थ सम है कहिये संयोगवत् अर्थात् घट पट रूप सम्वन्धियों से भिन्न होकर तिन साथ सम्बन्ध रहित हुआ संयोग जैसे तिनका सम्बन्ध नहीं देखा किन्तु समवाय सम्वन्ध से सम्वद्ध, हुआ ही सम्बन्ध देखा है तैसे सम्वन्धियों से भिन्न होकर तिन साथ सम्बन्ध रहित हुआ समवाय भी संयोगवत् सम्बन्ध नहीं कहावेगा याते समवाय का सम्वन्ध तिनमें अवश्य मानना पहला दृष्टान्त सम्भव से है, दूसरा परम मूल मेल से है ॥ २९८ ॥

सम्वन्धियों से भिन्न होकर तिनके साथ सम्वन्ध रहित को सम्वन्धता हानि के भय कर प्रथम मानते को अनवस्था कहे "जो" इति, भई अनवस्था नाशी ठौर कहिये सम्वन्धियों से समवाय के सम्बन्ध का और सम्वन्ध न माने असम्वन्धता भय से प्रतियोगिता आदि और सम्बन्ध माने ताका आगे मानने कर ताका भी आगे मानने कर हुआ मूल हानि कर्त्ता अनवस्था दोष। ननु सम्बन्धियों से भिन्न भी समवाय का पृथिवी में घटाभाव के स्वरूप सम्बन्धवत्, सम्वन्धियों साथ स्वरूप सम्वन्ध कहे है याते अन्य पदार्थ समानता नहीं, पुनः स्वरूप को और सम्वन्ध की अपेक्षा न होने ते, अनवस्था भी नहीं यह आशंका कर, सम्वन्धी स्वरूपता कर तिनके अनाश्रित स्वरूप में, सम्वन्धियों से भिन्न होकर तिन दो के आश्रित होना रूप सम्वन्ध लक्षण न आवने से सम्वन्धता ही नहीं बने यह कहे "स्वरूप" इति, सम्वन्धता हानि में हेतु कहै "उभय" इति ॥ २९९ ॥

उक्त दोषों ते, मत होवे सम्बन्धियों से भिन्न कर समवाय की सिद्धि, हम ताका तिन साथ अभेद कहे हैं ? यह कहते प्रति समवाय के साथ

चौपाई

अभेद कहे पुनि कार्य जाय । सो प्रकार अब कहौं बनाय ।
द्व्यणुक भयो समवाय अभिन्न। सो परमाणु ते नहिं भिन्न ॥३०१॥
या विधि शेष परमाणु होई । कार्य दियो सकल तैं खोई ।
जो विपरीत सो कहो बनाय । रहे द्व्यणुक परमाणु जाय ॥३०२॥

अब सिद्धान्ती समवाय सम्बन्ध के स्वरूप की असिद्धि कथन करता है ।

अरु समवाय बखान्यो जोई । उभय सम्बन्धी आश्रय सोई ।
एक सम्बन्धी जो मर जाय । तौ समवाय नाश को पाय ॥३०३॥

अभिन्न द्व्यणुक का परमाणुओं साथ अभेद होने कर परमाणु शेष रह्या, द्व्यणुक रूप कार्य की हानि, औ या भय से उलटा माने द्व्यणुक शेष रहने से नित्य माने परमाणु दूर होने से सिद्धान्त हानि रूप दूषण देने हित कहे "जो" इति ॥ ३०० ॥

दूषण सुनावने हेतु कही बात का अनुवाद करे "अभेद" इति, कैसे जावे है तहां कहे "सो" इति सो प्रकार–कार्य जाने की रीति, उत्थानका में कह्या प्रकार सुनावे "द्व्यणुक" इति ॥ ३०१ ॥

ननु हम द्व्यणुक साथ समवाय का औ समवाय साथ परमाणु का अभेद माने हैं याते कार्य की हानि नहीं यह आशंका कर कहे "जो" इति, विपरीत-उलटा अर्थात् द्व्यणुक के साथ समवाय का, औ समवाय के साथ परमाणुओं का जेकर अभेद कहे, तब द्व्यणुक शेष रहे परमाणुओं के दूर होने से, सिद्धान्त हानि होवेगी सोई सूचन करे "रहे" इति ॥३०२॥

अब समवाय को मूल ते खोने हेतु ताके साधक "नित्यसम्बन्धः समवायः" या समवाय लक्षण के परिहार का आरम्भ करे "अरु" इति, अरु नाम पुनः "अवयव अवयवी को समवाय" इस रीति से जो तुमने समवाय कथन किया, सोई नाम वह सम्बन्धियों से भिन्न होकर, तिन दोनों के आश्रित का नाम सम्बन्ध कहने से, परमाणु द्व्यणुक रूप दोनों सम्बन्धियों के आश्रय नाम आश्रित ही होवेगा, और उभयों के आश्रित होकर जीवने वाला सम्बन्ध जो नाम जेकर, द्व्यणुकरूप एक सम्बन्धी नाश होवेगा तौ वह समवाय भी अवश्य नाश को प्राप्त होवेगा ।।३०३।

नित्य समवाय सम्बन्ध वखानो । वह लक्षण अव हानि पछानो ।
एक सम्बन्धी आश्रय होय । तौ सम्बन्ध बने नहिं सोय ॥३०४॥
दोय सम्बन्धी आश्रय होई । नाम सम्बन्ध कहीजै सोई ।
यह लक्षण अव तेरो हान । एकै आश्रय कियो वखान ॥३०५॥
कार्य कारण माने जेई । भिन्न अत्यन्त वखाने तेई ।
ताहि संयोग सम्बन्धहि होई । कुंडवदर ज्यों और न कोई ॥३०६॥

होंवे नाश दोष क्या ? तहाँ नित्यता अंश के दूर होने कर लक्षण हानि यह कहे "नित्य" इति, नित्य होवे औ सम्बन्ध होवे सो कहिये समवाय, ऐसे तुम समवाय का लक्षण कहते हो, औ कही रीति से नित्यता अंश बने नहीं याते एक अंश के दूर होने से वह समग्र लक्षण अब दूर हुआ पछानो, ऐसे भये लक्षण की असिद्धि का प्रसंग। ननु होवे तब लक्षण हानि जब हम परमाणुओं के आश्रित मानकर नित्यता न माने यह आशंका कर समवाय को सम्बन्धिता खोने हेतु सम्बन्ध लक्षण की हानि कहे "एक" इति ॥ ३०४ ॥

न बनने में, दो तुकों से सम्बन्ध लक्षण बताकर, तीसरी में ताकी हानि रूप बीज कहे "यह" इति, लक्षण हानि में एक के आश्रित मानना रूप हेतु कहे "एकै" इति ॥ ३०५ ॥

किञ्च उक्त रीति से समवाय दूर भये अत्यन्त भिन्नता कर अभिमत कार्य कारण का कुण्ड वदरवत् संयोंग ही मानना होवेगा, यह पुनः कहने योग्य रीति से बने नहीं या अभिप्राय से संयोग मनवावे "कार्य" इति, कार्यकारण माने जेई कहिये उपादेय उपादान रूप जो कार्य कारण माने है वह न्यायमत में अनेक प्रकार से अत्यन्त भिन्न कर रहे है सोई दिखावे हैं, मृत्पिण्ड साथ जल का आनयन नहीं बने औ घट साथ भित्त की चिनती नहीं बने, याते कार्य भेदते कार्य कारण अत्यन्त भिन्न है, तथा पूर्व काल में कारण होवे है औ उत्तर काल में कार्य होवे है, ऐसे काल भेद से भी अत्यन्त भिन्न है, तथा पिण्डाकार कारण होवे है औ पृथु बुध्नोदराकार कार्य होवे है ऐसे आकार भेद से भी भिन्न है तथा तन्तुओं में पट औ पट में तन्तु ऐसा शब्द न देखने से शब्द से भी भिन्न है या ते ताहि नाम अत्यन्त भिन्न कार्य कारणों का कुण्ड बदरवत् संयोग सम्बन्ध ही बनेगा, और कोई समवाय आदि कोई नहीं बनेगा, इहाँ यह

अब सिद्धान्ती उक्त मत में आचार्य उक्त दोष कथन कर
वेद विरुद्ध जान के उपहास करता है ।

(तोटक छन्द)

अब दूषण और बखानत हौं ।
मत वेदविहीन सुजानत हौं ।
जग शंकर ते मत दूर करे ।
वह दूषण औधि न जात परे ॥३०७॥

भाव है=आधाराधेय रूप अयुत सिद्धों के "इसमें यह है" ऐसे ज्ञान के हेतु सम्बन्ध का नाम समवाय है जिन दो में एक वस्तु न नाश हुई एक के आश्रित ही स्थित रहे वह अयुत सिद्ध कहिये है, अवयवी गुण क्रिया जाति विशेष पदार्थ न नाश हुये अवयवादिकों के आश्रित ही स्थित रहे है याते अयुत सिद्ध हैं, औ अवयवी आदिक अवयव आदिकों में रहे हैं याते आधाराधेय रूप है, तिनका "अवयव में अवयवी है" इत्यादि ज्ञान समवाय से होवे है याते ऐसे ज्ञान का हेतु समवाय है यह कणाद आदिकों का मत है, सो असंगत है, काहे ते ? कही रीति से समवाय खण्डित है औ "इसमें यह है" ऐसी प्रतीति "कुण्ड में वदर है" इस रीति से संयोग सम्बन्ध से भी सम्भवे है याते संयोग ही मानना होवेगा, सो पुनः क्रिया के अधीन होवे है औ क्रिया पूर्व कही रीति से वने नहीं, याते और गति के अभाव ते सम्बन्धी व्यवहार सिद्धि हेतु तादात्म्य की आवश्यकता भये सिद्ध हुआ "परमाणु भिन्न द्वयणुक असार" ॥ ३०६ ॥

किञ्च द्रव्य के उपादानों का नाम अवयव होवे है औ तिनके कार्य का नाम अवयवी होवे है, पुनः वह अवयवी समवाय सम्वन्ध से अवयवों में रहे हैं यह नैयायिक कहे हैं अव समवायवत्, ताके खोने हेतु और रीति से पुनः द्वयणुक को असारता कथन का आरम्भ करे "अब" इति, दूषणों का प्रताप कहें "मत" इति, जानत हौ के आगे "जिन से" शेष (कर लेना), मत में वेद विहीनता का निश्चय ही दूपणों का प्रताप है वह दूषण कौन से हैं जिनते वेद विहीनता का निश्चय होवे है तहाँ कहे "जग" इति, जग शंकर ते मत दूर करे कहिये जिन दूषणों से शंकराचार्य ने जगत् में तेरा मत खण्डन किया है, वह हैं, पुनः तिनका प्रताप कहे "वह" इति, वह दूषण नाम आचार्य के कहे दूषण, औधि नाम अन्त

चौपाई

अवयवों माहिं अवयवी जोई । एकहि माहिजे पूर्ण होई ।
कर्ण विषे गो होवै सारी । दूधदुहे ताते नर भारी ॥३०८॥
औ तामें गो नाना होई । एकै गो यह कहे न कोई ।
जो पुनि एक देश कर रहै । अवयवांतर ता हित वह गहै ॥३०९॥

का है अर्थात् तेरी युक्ति रूप खण्डन कर रहित है, याही ते न जात् परे कहिये तेरी युक्तियों से परे नहीं जावेंगे अर्थात् निवृत्त नहीं होवेंगे, बहु पाठ होवे तो बहुत दूषण "औधि" यह मत का विशेषण कर लेना अर्थात् तेरा मत बहुत दूषण की अवधि रूप है याही ते न जात परे नाम आचार्य के दूषणों से नहीं जाना पावेगा ॥ ३०७ ॥

अवयवों में अवयवी पूर्ण होकर रहे है वा एक देश कर रहे है यह विकल्प आचार्य के कहे दोष देने हेतु, प्रथम का अनुवाद करे "अवयवों" इति, एकहि माहि जे पूर्ण होई कहिये शृङ्ग पुच्छ खुर कर्णादि रूप एक एक अवयव में ही जेकर सारा अवयवी रहे है ऐसे कहो तब कान रूप एक अवयव में ही सारी गौ होवेगी, होवो सारी दोष क्या ? यह आशंका कर अवयवी को ही स्तन आदि रूप कर दुग्धादिकों की हेतुता देखता हुआ ताके कार्यों का प्रसंग कहे "दूध" इति ॥३०८॥

सर्व अवयवों से पूरित घट को एक जगह रह्या दूसरी जगह ताका रहना न देखने से कर्ण पुच्छादि अवयवों में जुदा जुदा अवयवी होने से अवयवियों को नानापने का प्रसंग भी होवेगा सोई कहे "औ" इतिं होवे नाना, दोष क्या ? यह आशंका कर लोगों के अनुभव का विरोध रूप दोष कहे "एकै" इति, कहे दोषों के भय से एक देश कर रहे है यह दूसरा मानो तब द्व्यणुक के रहने हेतु आगे कहने योग्य नियम से परमाणु और अवयव चाहेंगे ऐसे भये अनवस्था औ मेरु सरसों को समानता का प्रसंग होवेगा यह कहे "जो पुनि" इति, जो कहिये जेकर पुनः अवयवी अवयवों में एक देश से रहे है यह कहो तब ता हित कहिये—अवयवों में एक देश से रहने वास्ते वह—अवयवी अपने अधिकरण रूप अवयवों के एक देशादि रूप और अवयवों को अवश्य चाहेगा यह अक्षरार्थ है, भाव यह है="जो वस्तु जिस वस्तु में जिस देश से रहे है, वह देश रहने वाली वस्तु के अधिकरण का अधिकरण होवे है" जैसे—काहू वृक्ष में

अवयवांतर में कैसे होई । पूर्ण कहे दूषण है सोई ।
वा में एक देश कर होई । अवयवान्तरको चाहे सोई ।।३१०।।

शाखा देश में वानर का संयोग होवे है मूल देश में ताका अभाव है, तहाँ वानर का संयोग वृक्ष में शाखा देश से रहे हैं यह कह्या जावे है औ या कहने से जो वस्तु: = वानर संयोग वस्तु, जिस वस्तु में–जिस वृक्ष में, जिस देश से रहे है–वह शाखा देश वानर संयोग के अधिकरण वृक्ष का अधिकरण ही देखिये है, काहे ते ? वृक्ष अवयवी है, शाखा अवयव है, अवयव अवयवी का अधिकरण होवे है, याते "शाखा में वृक्ष है" यह अनुभव यथार्थ है, "वृक्ष में शाखा है" यह अनुभव भ्रम है, तैसे अवयवी अवयवों में एक देश से रहे हैं, इहाँ भी वानर संयोग स्थानापन्न जो गो रूप अवयवी, वृक्ष स्थानापन्न जिन शृङ्गादिक अवयवों में जिस एक देश से रहे है वह देश भी अवयवी गो के अधिकरण शृङ्गादिक अवयव का अधिकरण ही पूर्व कहे दृष्टान्त से सिद्ध होवेगा औ ऐसा होने से गोआदिक अवयवियों के स्थान में तो नैयायिक मत में कोई दोष नहीं काहे ते ? काहू शस्त्र से रेत कर, वा वरीक पीसकर, जैसे शृंगादिकों के परमाणु पर्यन्त टुकड़े हो सकें वह तिनके अवयव हैं याते गो आदिक अवयवियों के रहने हेतु शृंगादिक अवयवों के आगे अवयव सिद्ध होने में कोई दोष नहीं, परन्तु वेदान्ती का अवयव-अवयवी स्थान में यह सर्वत्र प्रश्न है याते जब द्वयणुक रूप अवयवी परमाणु रूप अवयवों में एक देश से रहे है यह पूछेंगे तब इहां भी वह नेम पूर्ववत् अवश्य मानना पड़ेगा औ मानें वानर संयोग स्थानापन्न द्वयणुक के वृक्ष स्थानापन्न परमाणुओं में रहने हेतु मान्या वह शाखा स्थानापन्न पूर्वादि दिशा भेद से सिद्ध हुआ, एक देश भी द्वयणुक के अधिकरण परमाणुओं का अधिकरण ही अवश्य कहना पड़ेगा ऐसे भये परमाणुओं के आगे अवयव सिद्ध होने से पूर्व कह्या "परमाणु निरावयव ते माने" यह सिद्धान्त दूर होवेगा, दूसरे अवयव धारा के कहूँ भी न ठहरे नैयायिक मत में मेरु सरसो की समानता का भी प्रसंग होवेगा ।। ३०९ ।।

अनवस्था औ तुल्य परिमाणता दोष स्फुट करने हेतु तिन अवयवान्तरों में पुनः वह कैसे रहे है यह पूछे "अवयवान्तर" इति, कैसे होई नाम किस प्रकार है अर्थात् पूर्ण है वा एक देश से है प्रथम मानते प्रति पूर्वोक्त दोष कहे "पूर्ण" इति, दूषण है सोई कहिये अवयवी के

ऐसे कहे अनवस्था आई। कार्य बने न कतहूँ राई।
अरु परमाणु ते द्व्यणुक जोई। उपजे नाहिं कदाचित् सोई ॥३११॥
परमाणुमाहिं द्व्यणुक असत्य। सो कारण ते होय न सत्य।
जो असत्य सत्य पुन होई। शशे शृङ्ग उपजावै कोई ॥३१२॥
असत्य द्व्यणुक को कारणजोई। शशविषाण को कारण सोई।
ज्यों बालूते तेल न होई। वंध्यासुत उपज्यो नहिं कोई ॥३१३॥
त्यों परमाणु ते द्व्यणुक नाहीं। सो असत्य है ताके माहीं।
उत्पत्ति ते पुर्व तिहँमाहीं। भाषे सत्य असत्ता नाहीं ॥३१४॥

कार्य के प्रसंग औ नानापने का प्रसंग रूप, कहे दोषों के डर से तिनमें, एक देश कर रहे हैं यह कहो, तब पूर्व कही रीति से वह अपने रहने वास्ते और अवयवों की इच्छा करेगा ऐसे भये अनवस्था होवेगी ॥३१०॥

सोई कहे "ऐसे" इति, ऐसे कहे नाम अवयवों में अवयवी एक देश कर रहे है ऐसे कहे। किञ्च न्यायमत में उपादान में उपादेय का प्रागभाव रूप असत्कार्य वाद मानने से भी शश शृंगादिकों वत्, असत्पने रूप धर्म वाले द्व्यणुक की परमाणुओं से उत्पत्ति नहीं बने यह अङ्गुलि फेरे "अरु" इति ॥ ३११ ॥

न उपजने में असत्पना हेतु कहे "परमाणु" इति, असत्य–उत्पत्ति ते पूर्व कारण में सत्ताहीन, सो नाम द्व्यणुक, कारण ते—अदृष्ट आदिक निमित्त कारणों ते, होय न सत्यनाम सत्यरूप नहीं होवेगा, जेकर निमित्त कारणों के प्रताप से असत्य भी सत्य होवे है ऐसे कहो तब द्व्यणुक आदिकों के साथ असत्पने की समानता कर ऐसे प्रतापियों से शश-शृंग भी उत्पन्न हुये चाहिये यह कहे "जो असत्य" इति, जो असत्य नाम जेकर असत्य वस्तु भी काहू निमित्त से सत्य होवे है तब, शशेशृंग उपजावै कोई कहिये असत्य उत्पत्ति करने के स्वभाव वाला होने से वह निमित्ति शश शृंग की भी उत्पत्ति करे ॥ ३१२ ॥

कही बात को स्पष्ट करे "असत्य" इति, कहे दोषों ते असत्य के उपजने की असिद्ध कहे "ज्यों" इति ॥ ३१३ ॥

नाहीं में हेतु कहे "सो" इति, सो असत्य है ताके माहीं कहिये बालू में तेलवत्; द्व्यणुक असत्य है परमाणुओं विषे, यद्यपि "एते सूत्र में वस्त्र

कार्य सत्यवाद यह होयो। गोप मतो अपनों तैं खोयो।

पूर्व द्व्यणुक की असारता का प्रतिपादन किया अब कार्य
गुणों की असारता प्रतिपादन करे हैं।

अरु पुनि कार्य गुण है जेई। कारण गुण महिं आहि न तेई ॥३१५॥

होवेगा" "एती मृत्तिका में घट होवेगा" इस रीति से हम उत्पत्ति से पूर्व कारणों में कार्यों का प्रागभाव कहे हैं औ काहू स्थान में शश शृंग नहीं, इस रीति से शश शृंग का सर्वत्र अत्यन्ताभाव है, याते घटादिकों में असत्पना प्रागभाव प्रतियोगिता रूप है, औ शश शृंगों में असत्पना अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता रूप है, याते अज्ञान तत्कार्य में व्यावहारिक प्रातिभासिक औ ब्रह्म में पारमार्थिक सत्तावत् इहां असत्पने का भेद होने ते, शश शृंगवत् द्व्यणुक भी कारणों ते सत्य नहीं होवेंगे यह कथन असम्यक् है यह आशंका होवे है, तथापि सिद्धान्त में "सदेव सोम्य" इत्यादिक श्रुतियों से उत्पत्ति से पूर्व सम्पूर्ण कार्यों की सत्ता सुनी जावे है याते प्रागभाव के ही दूर होने से, असत् कारण वाद असंगत है यही "अरु परमाणु" से लेकर "ताके माहीं" पर्यन्त पाठ का तात्पर्य है, कहे दोषों के भय से उत्पत्ति ते पूर्व कारण में कार्य की सत्ता मानते प्रति असत् कार्य वाद रूप सिद्धान्त की हानि हेतु कहे "उत्पत्ति" इति, तिहँ माहीं—परमाणुओं में। जेकर तू कहे द्व्यणुक सत्य है तिनका प्रागभाव नहीं ॥ ३१४ ॥

तब यह कार्य सत्यवाद रूप पर मत सिद्ध हुआ, होवे कार्य सत्यवाद, दोष क्या ? तहां कहे "गोप" इति, गोप मतो कहिये कारण में कार्य का प्रागभाव रूप असत् कार्य वाद अपना मत तैंने खोया अर्थात् तेरा असत् कार्यवाद जाता रहा, यद्यपि पूर्व "जाकी सत्ता पूर्व होई", इत्यादि सात्वत मत में कही रीति से उत्पत्ति ते पूर्व कारण में कार्य की सत्ता माने कार्यों की उत्पत्ति हेतु कारण सामग्री के ग्रहण को व्यर्थता होवेगी, तैसे प्रागभाव साधक "इन तन्तुओं में वस्त्र होवेगा" या अनुभव का औ "असदेवाग्रे आसीत्" या श्रुति का विरोध होवेगा याते उत्पत्ति से पूर्व कारण में कार्य का प्रागभाव अवश्य मानना इस रीति से असत् कार्य वाद रूप गोप्यमत का जाना नहीं बने यह आशंका होवे हैं, तथापि सत् कार्य वादी सांख्य के मत में या का यह उत्तर है, शक्ति वाला ही कारण होवे है शक्ति हीन

सो कैसे कार्य में जाये। पूर्वले सब दूषण आये।
द्व्यणुकमाहिं गतिभाखी जोई। कार्य गुणमहिं मानो सोई ॥३१६॥

नहीं होवे, सो शक्ति कारण में कार्य की सूक्ष्म अवस्था का नाम है, उत्पत्ति नैयायिक मत में असत् की सत्ता का नाम है सांख्य वेदान्त मत में तिरोभूत का आविर्भाव का नाम है, याते उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण मृदादिकों में सूक्ष्म रूपता कर स्वतः सत्य रहे घटादिकों की स्थूल रूप से आविर्भाव कहिये प्रगट करना रूप उत्पत्ति करने वास्ते सामग्री के ग्रहण को व्यर्थता नहीं औ पूर्व कह्या अनुभव "छिपा हुआ प्रकट होवेगा" या बात को सिद्ध करे है, श्रुति असत् कहिये अप्रकट नाम रूप वाला प्रपञ्च हुआ इस अर्थ को कहे है याते विरोध नहीं, उलटा "सदैव" इत्यादि श्रुति की समानता है औ असत् पक्ष की तो पूर्व कहे दोषों ते ही सिद्धि नहीं होवे, याही ते सामग्री वश ते घटादिकों की तुमारी मानी असत का सत् होना रूप उत्पत्ति भी दूर भई यह सांख्य रीति से समाधान है। वास्तव ते तो सत् के आविर्भाव हेतु सामग्री के ग्रहण को सफलता मानते सांख्य के मत में भी वह आविर्भाव सत् है वा असत् है यह पूछे इन विकल्पों में प्रथम माने सामग्री के ग्रहण को व्यर्थता, दूसरा माने असत् कार्य वाद के ग्रहण का प्रसंग, याते नैयायिक मतवत् दोषों की समानता से सांख्य मत में माना स्वत, सत् का उपजना रूप सत् कार्य वाद भी श्रेष्ठ नहीं, किन्तु जैसे एक काल में घटादिक पदार्थ ब्रह्म सत्ता से ही सत् है ऐसे उत्पत्ति से पूर्व भी ताही से सत् है, "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इत्यादिक श्रुतियों से ब्रह्म की सत्ता बिना स्वरूप ते सत् नहीं औ आविर्भाव तिरोभाव तो मायामय पदार्थों के मायावत् अनिर्वाच्य है, याते हमारे मत में आविर्भाव सत् है वा असत् है इन विकल्प पक्षों के दोष भी नहीं आवे हैं यह तत्त्व है। किञ्च परमाणुओं से द्व्यणुक की असिद्धिवत्, कारण गुणों साथ कार्य गुणों का सम्बन्ध का विचार किये कारण गुणों को कार्य गुणों की जनकता भी नहीं बने यह "कारण गुण कार्य गुण जायो" कर कही बात के खण्डन का आरम्भ करे "अरु पुनि" इति, 'तेई' के आगे काहू सम्बन्ध कर शेष (कर लेना) ॥ ३१५ ॥

सो कैसे कार्य में जाये कहिये वह कारण गुण काहू सम्बन्ध कर अपने में न रहे कार्य गुणों को कार्य में कैसे रचे, न रचने में हेतु कहे

"पूर्वलें" इति पूर्वले दोषों को याद करावे "द्व्यणुक" इति द्व्यणुक माहिं गति भाखी जोई कहिये "संयोग किये पुनि अङ्गीकार" से लेकर सम्बन्ध की असिद्धि आदिक जो द्व्यणुक में रीति कही, वही सम्बन्ध की असिद्धि आदिक रीति द्व्यणुक के रूप आदिकों में मानो, इहां यह तात्पर्य है=समानाधिकरणता सम्बन्ध वाले पदार्थन का ही कार्य कारण भाव होवे है. व्यधिकरणों का नहीं, काहे ते व्यधिकरण पदार्थन का कार्य कारण भाव अङ्गीकार करिये तब काश्मीर के दण्ड को काशी के घट की कारणता होवेगी, याते समानाधिकरणता सम्बन्ध वाले पदार्थन का ही कार्य कारणभाव कहना "एक अधिकरण में वर्तनें को समानाधि-करणता सम्बन्ध कहे है" एक अधिकरण में वर्तना कार्य कारण का और सम्बन्ध से होवे है। जैसे दण्ड घट की समानाधिकरणता संयोग सम्बन्ध से है, घट कपाल की समानाधिकरणता समवाय औ तादात्म्य सम्बन्ध से है, काहे ते ? घट दण्ड दोनों चक्र में अपने अपने संयोग से रहे हैं, याते समानाधिकरण कहिये हैं। औ घट कपालों में समवाय सम्बन्ध से रहे हैं, कपाल कपाल में तादात्म्य सम्बन्ध से रहे हैं, काहे ते ? अपने में सब वस्तु का तादात्म्य है, इस रीति से घट कपाल समानाधिकरण कहिये है ऐसे भये कारण गुणों साथ कार्य गुणों का समानाधिकरणता सम्बन्ध भी अवश्य कहना, सो समानाधिकरणता समवाय, सयोग, सम्बन्ध से नहीं बने, काहे ते ? अवयव अवयवी आदिकों में, पुनः द्रव्यों में ही होने के नियम वाले समवाय संयोग कू तिनकी सम्बन्धता बने नहीं, याते स्वसमवायिसमवेतत्व रूप परम्परा सम्बन्ध से परमाणुओं के रूपादि द्व्यणुक में रहे हैं। औ समवाय सम्बन्ध से द्व्यणुक के रूपादिक द्व्यणुक में रहे हैं, इस रीति से कार्य कारण गुणों का समानाधिकरणता सम्बन्ध बने हैं, इस प्रकार नैयायिक परमाणुओं के रूप रसादिक गुणों से द्व्यणुक के रूप रसादिक, गुणों की उत्पत्ति कहे हैं। सो यह भी सम्भवे नहीं, काहे ते ? स्वसमवायिसमवेतत्व रूप परम्परा सम्बन्ध समवाय-घटित है औ समवाय पूर्व कही रीति से, खण्डित है, याते तिसकर घटित परम्परा सम्बन्ध भी असिद्ध है, इस प्रकार सम्बन्धासिद्धि दोष जानना और "अवयवों माहिं" इत्यादि पाठोक्त विकल्पों के पुनः "अरु परमाणु ते द्व्यणुक जोई" इत्यादि पठोक्त असत् कार्यवाद के दोष नहीं जानने, काहे ते ? गुण के अवयव नहीं होवे (है) याते अवयवों में एक देश से रहे है वा सर्व देशों से रहे हैं इन विकल्पों के असम्भव ते, इनके दोष नहीं

अरु परमाणु संख्या जोई । नहिं परिमाण अरंभक सोई ।
जो संख्या परिमाणहिं जाये । तौ पुनि रूप गन्ध उपजाये ॥३१७॥
जो नहिं रूप गन्ध उपजावै । तौ संख्या परिमाण न जावै ।
विजाती गुण दोनो उर मानो । बाधक साधक तुल्य पछानो ॥३१८॥
ताते अणु परिमाणहि जोई । द्व्यणुक परिमाण अरंभक सोई ।
अणुते अणुतर भाख्यो जोई । नहिं आपादन तुम ते होई ॥३१९॥

बने, पुनः कार्य का प्राग्भाव अपने उपादान में होवे है, औ द्रव्य में ही उपादानता के नियम ते, गुणादिकों को उपादानता सम्भवे नहीं, याते कारण गुणों में कार्य गुणों की उपादानता न होने से कारण गुणों में कार्य गुणों का प्राग्भाव नहीं रहे, याते असत् कार्यवाद पक्ष के दोष नहीं किन्तु "द्व्यणुक माहि गति भाखी जोई" इस पाठ की सम्बन्धासिद्धि आदिक टीका में आदि शब्द से यथायोग्य द्व्यणुक औ द्व्यणुक के कार्य रूपादिकों में दोष जानने ॥ ३१६ ॥

किञ्च होवे कपाल के परिमाण की अपेक्षा कर घट में महत्व देखने से, अपनी अपेक्षा कर परमाणुओं के परिमाण को भी द्व्यणुक में महत्वारम्भकता, याते संख्या को भिन्न जाति वाले परिमाण की आरम्भकता नहीं बने, ऐसे न मानो रूप से गन्ध की उत्पत्ति का प्रसंग होवेगा यह "परमाणु माहिं द्वित्व है जोई" से लेकर कही बात के खण्डन का आरम्भ करे "अरु" इति, प्रतिबन्धी से संख्या को परिमाण की न आरम्भकता स्पष्ट करे "जो" इति ॥ ३१७ ॥

परिमाण न जावै कहिये परिमाण को न रचे, न रचने में बीज क्या ? तहां कहे "विजाती" इति, विजाती गुण दोनों उरमानों कहिये संख्यात्व, परिमाणत्व, रूप जुदी जुदी जातियां वाले संख्या औ परिमाण इन दोऊ गुणों को हृदय में मानो अर्थात् कार्य में कारण गुणों को अपनी जाति वाले पुनः अपने से अधिक गुण की जनकता का नेम मानने वाला तूं विजातीयपनाही संख्या से परिमाण की उत्पत्ति न होने में, बाधक जान, औ ईहां साधक माने तब साधक जान, सोई कहे "बाधक" इति ॥३१८॥

ताते नाम बाधक साधक तुल्यता कर संख्या को परिमाण का हेतु न होने ते, अणु परिमाणहि जोई कहिये परमाणुओं का जो अणु परिमाण,

परमाणुते अणुतर जोई । नाहिं प्रसिद्ध मानियो कोई ।
अप्रसिद्ध नापादन होई । शश के शृङ्ग समानहि सोई ॥३२०॥

वही द्वयणुक के परिमाण का आरम्भक है, भिन्न जाति वाली संख्या नहीं, याही ते जाके होने से त्र्यणुक का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होवेगा ऐसा पूर्व कह्या, अणुकर आरब्ध को अणुतरता का प्रसंग भी "बन्ध्या पुत्रः स देवदत्तः सुन्दरः" ऐसा कथन न देखने से तुमसे नहीं कहा जावे, सोई कहे "अणु" इति, आपादन—कथन ॥ ३१९ ॥

न कह्या जाने में, ताका प्रसिद्ध न मानना ही बीज कहे "परमाणु ते" इति, परमाणु ते अणुतर कहिये परमाणुओं के परम अणु परिमाण ते आगे अति सूक्ष्म, अप्रसिद्ध का ही आपादन करे हैं ? तहाँ कहे "अप्रसिद्ध" इति, न आपादन में हेतु कहे "शश" इति, इहाँ यह भाव है—जेकर कपालादिकी अपेक्षा कर घट में महत्वतर परिमाण की प्रसिद्धिवत् परमाणुओं के अणु परिमाण की अपेक्षा कर कही अणुतर परिमाण की भी प्रसिद्धि होवे, तब तो ता प्रसिद्ध अणुतर की द्वयणुक त्र्यणुक में आपत्ति बन जावे, पुनः वह अणुतर परिमाण तो कहीं जगत् में प्रसिद्ध नहीं याते ता अप्रसिद्ध का द्वयणुक त्र्यणुक में प्रसंग भी नहीं बने, ऐसे न माने "बन्ध्या पुत्र सम देवदत्त सुन्दर है" यह भी कथन हुआ चाहिये, "औ होवे नहीं" या ते अप्रसिद्ध अणुतर की आपत्ति दूर होने से संख्या से ताकी उत्पत्ति नहीं माननी, किन्तु परिमाण से परिमाण की माननी योग्य है, यद्यपि परमाणु में परम अणु परिमाण है, द्वयणुक में मध्यम अणु परिमाण है, याते द्वयणुक के अणु परिमाण की अपेक्षा कर अणुतर की परमाणु में प्रसिद्धि है, याते अणुतर के आपादन का अप्रसिद्ध आपादनता कथन असंगत है, इस रीति से अणुतर के प्रसंग ते अवश्य संख्या ते परिमाण की उत्पत्ति माननी योग्य है यह आशंका होवे है, तथापि न्याय मत में द्वित्व आदिक संख्या की अपेक्षा बुद्धि रूप ज्ञान से उत्पत्ति माने है अपेक्षा बुद्धि के नाश से द्वित्व आदिकों का नाश माने हैं, "यह एक है" "यह एक है" ऐसे कनेकों में एकत्व बुद्धि को अपेक्षा बुद्धि कहे हैं औ ज्ञान जीव ईश्वर दो में रहे है, याते प्रथम यह पूछे है द्वित्व आदिक संख्या रूप कार्य की उत्पत्ति जीवों के ज्ञान से होवे है, वा ईश्वर के ज्ञान से होवे है, इनमें प्रथम कहो तब जीवों को ज्ञान शरीरेन्द्रिय के सम्बन्ध से होवे हैं, और प्रलय काल में शरीरादिक सामग्री का असम्भव है, याते जीवों के अपेक्षा बुद्धि रूप ज्ञान के असम्भव ते,

अरु पुनि त्र्यणुक बखान्ये जोई। वही नित्य यह क्यों नहिं होई।

(अब पूर्वपक्षी की स्वमत में युक्ति)

पूर्वपक्षी—

चाक्षुष द्रव्य होय भव जोई। अहे अनित्य नित्य नहिं सोई ॥३२१॥

अरु सावयव बहुर भव होई। निरावयव नहिं माने कोई।

अब सिद्धान्ती कर उक्त युक्ति का खण्डन।

सिद्धान्ती—

तौ पुनि मूर्तद्रव्य सु जोई। नहिं निरवयव नित्य क्यों होई॥३२२॥

तासे द्वित्वादिक संख्या की उत्पत्ति नहीं सम्भवे, याते ईश्वर के अपेक्षा बुद्धिरूप ज्ञान से ताकी उत्पत्ति मानो, तब द्वित्वादिक संख्या का नाश नहीं होवेगा, काहे ते? द्वित्वादिक संख्या का नाश न्यायमत में द्वित्वादिक संख्या के जनक अपेक्षा ज्ञान के नाश से मान्या है, औ ईश्वर का ज्ञान न्यायमत में नित्य है याते ताके नाश बिना द्वित्वादिक संख्या के नाश का अभाव प्रसंग होवेगा, याते परमाणु द्व्यणुक का परिमाण ही द्व्यणुक त्र्यणुक के परिमाण की उत्पत्ति में हेतु है यह मानने की इच्छा रहितों ने भी अवश्य मानना ॥ ३२० ॥

किञ्च मेरु सरसो की समानता प्रसंग रूप युक्ति को त्र्यणुक में भी समान होने ते, प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध त्र्यणुक ही नित्य होवे है आनुमानिक परमाणु कल्पना से क्या काम है? यह परमाणुओं की नित्यता औ निरवयता खण्डन का आरम्भ करे "अरु पुनि" इति, ननु त्र्यणुक सावयव औ अनित्य होने के योग्य है, चाक्षुष द्रव्य होने ते, घटवत्, या अनुमान से त्र्यणुक को अनित्यता औ द्व्यणुकरूपता के अवयव सिद्ध होवे है, वह भी पुनः अनित्य औ सावयव होने को योग्य है, महत्व परिमाण वाले का आरम्भक होने ते, तन्तुवत्, या अनुमान से तिनको अनित्यता औ परमाणु रूप तिनके अवयव सिद्ध होवे है, पुनः वह मेरु सरसो की समानता प्रसंग के भय से निरवयव है, औ निरवयवभयों को भी तिनको नाशी माने तब बिना उपादान कार्यों की उत्पत्ति का प्रसंग होवेगा, याते नित्य हैं, या भाव से शंका करे "चाक्षुष" इति, चाक्षुष द्रव्य कहिये चक्षुजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय द्रव्य ॥ ३२१ ॥

त्र्यणुक में घटादिकोंवत्, चाक्षुष द्रव्यता हेतु रह्या भी मेरु सरसो के समानता प्रसंगरूप ड़रावे मात्र से सावयवता औ तासे अनित्यता नहीं

तैं मूर्त परमाणु मानै । ताको किह विधि नित्य बखानै ।
बहुरो होवै वहि सावयव । कैसे तिह भाखे निरवयव ॥३२३॥
मूर्तवस्तु होय जग जोई । अष्टदिशा संबंधी सोई ।
अष्ट अवयवनियम कर ताके । नातर बने संबंध न वाके ॥३२४॥
त्यों मूर्त परमाणू थारो । अष्ट अवयव नियम ते धारो ।
जो सावयव भव भीतर होई । घट ज्यों जान विनाशी सोई ॥३२५॥
यो परमाणु भयो विनाशी । कैसे ताहि कहै अविनाशी ।
भारी युक्ति बखानी जोई । अब निराश सुन ताको होई ॥३२६॥

रहे, अन्यथा परमाणु सावयव होने को योग्य है, मूर्त द्रव्य होने ते, घटवत्, या अनुमान से अष्ट दिशा सम्बन्ध हेतु अष्ट अवयवों के सिद्ध भये, पुनः परमाणु अनित्य होने को योग्य है, सावयव द्रव्य होने ते, या अनुमान ते अनित्यता के सिद्ध भये और युक्ति को भी इहां न होने से वह ड़रावा भी नहीं माने या भाव से परिहार करे सिद्धान्ती "तौ पुनि" इति ॥ ३२२ ॥

ननु होवो मूर्त को सावयवता, औ सावयव होने से अनित्यता, हमको क्या ? तहां कहे "तैं" इति, ताको-तिनको-निरवयव के आगे, "मूर्त होंने ते" शेष (कर लेना) ॥ ३२३ ॥

कही बात को पुनः स्पष्ट करे "मूर्त" इति, नातर—नहीं तो अर्थात् ऐसे न माने ॥ ३२४–३२५ ॥

पूर्व कही रीति से परमाणुओं को सावयवता विनाशिता सिद्ध होने ते, पुनः "परमाणु घट है" ऐसे घटादिकों साथ अभेद न भान होने से, वह कारण नहीं, किन्तु "घट जड़ है", "अनित्य है", "अनिर्वचनीय है" "तथा सत्य है" ऐसे जड़ता, अनित्यता, अनिर्वाच्यता तथा सत्यता, धर्म वाले अज्ञान औ ब्रह्म साथ घटादिकों का अभेद भान होने से, तिनकों उपादानता बने है, यह पूर्व "ता में युक्ति कहै इक भारी" इत्यादि पाठ से कही ईश्वर में अनुपादानता के खण्डन हेतु कहे "भारी" इति भारी युक्ति कहिय "उपादान जाको जो होई" इत्यादि उपादान उपादेय के अभेद मूलक व्याप्ति ॥ ३२६ ॥

मृदअन्वित घट भाख्यो जोई। परमाणु हेतु न सूचै सोई।
मृद् अकार परिणत अज्ञान। कारण वाकों करत बखान ॥३२७॥

"उपादान जाको" इत्यादि व्याप्ति की सिद्धि करने वाला कार्य कारण के अभेद का प्रत्यक्ष होवे है, औ इहां वह परमाणुओं को हेतुता नहीं सूचन करे किन्तु कही रीति से परमाणु क्रिया, परमाणु संयोग, परमाणु द्व्यणुक का समवाय, परमाणुओं में द्व्यणुक का रहना, परमाणु में द्व्यणुक का प्रागभाव तथा तुम्हारे अभिमत नित्य, औ निरवयव रूप, परमाणुओं को स्वरूप ते दूर होने ते महादादि क्रम से मृद्रूप कर परिणत हुये अज्ञान को ही सूचन करे है "मृद्" इति "मृदअन्वित घट भाख्यो" कहिये द्व्यणुकादि क्रम से कपालाकार भये मृद् रूप उपादान के साथ अन्वित नाम अभिन्न–घट है ऐसा जो तुमने अभेद का प्रत्यक्ष कह्या प्रथम वह कही रीति से परमाणु क्रिया औ द्व्यणुकादिकों की असिद्धि तथा सर्वथा सत्य रूप कर माने परमाणुओं को स्वरूप ते दूर होने से, तिनको अनिर्वच्चनीय घटादिकों का हेतु न सूचै नाम उपादानता नहीं जनावे, किन्तु मृदअकार कहिये महदादि क्रम से कपालाकार मृत्तिका रूप कर परिणत नाम परिणामता को प्राप्त भया जो ब्रह्माश्रित अज्ञान, वाको नाम तिस अज्ञान को ही "मृद्घट है" यह अभेद का प्रत्यक्ष घटादिकों की हेतुता कथन करे है, इहां यह भाव है=अज्ञान शब्द का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, किन्तु सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय भाव रूप वस्तु है सो पुनः न्याय मत में द्व्यणुकादि क्रम से कपाल रूप मृत्तिका भये परमाणुओं को परम्परा घटादिकों की उपादानतावत्, महदादि क्रम से परिणत भया अज्ञान अनिर्वचनीय घटादिकों का उपादान है, काहे ते ? कार्य को अपने समान स्वभाव वाले कारण की अपेक्षा होवे है, औ नेम से सत्य रूप कर माने परमाणुओं में अनिर्वाच्यता रूप समान स्वभाव बने नहीं, याते वह उपादान नहीं, किन्तु "अनिर्वचनीय घट है" ऐसे अनिर्वचनीय अज्ञान के साथ घटादि कार्यों के अभेद का प्रत्यक्ष होकर ता प्रत्यक्ष से "उपादान जाको जो होई" इत्यादि व्याप्ति ग्रह होवे है, याते अज्ञान उपादान है, यह प्रत्यक्ष सूचन करे है ऐसे भये ब्रह्म भिन्न निखिल को आविद्यक होने से, परमत के परमाणु भी एक मूलाज्ञान का ही सूक्ष्म रूप परिणाम विशेष है, याही ते अवयव धारा को अज्ञान में ठहरने से मेरु सरसों की समानता का प्रसंग नहीं होवे, इस रीति से

परिणामी हेतु यही जग हइये। विवर्त हेतु ईश्वर त्यों पइये।
अज्ञात स्फुरण सत्ताविशिष्ट। भाखे जगको इष्ट अनिष्ट ॥३२८॥

अज्ञान सर्व का उपादान है तथा "घट सत्य है" यह भान होवे है, ऐसे सच्चित् रूप ईश्वर साथ घटादिकों के अभेद प्रत्यक्ष से "उपादान जाको" इत्यादि व्याप्तिग्रह से ईश्वर सर्व का उपादान है ॥ ३२७ ॥

ननु अज्ञान को उपादानतावत् "घट सत् है" ऐसे प्रत्यक्ष से तुमने ईश्वर को उपादानता कही वह पुनः ईश्वर को निरवयव होने ते, आरम्भी संघाती रूप बने नहीं, याते अज्ञानवत् परिणामी रूप मानो, तौ ब्रह्म अनित्य होने को योग्य है, परिणामी होने ते, क्षीरवत्, या अनुमान से अनित्यता होवेगी यह आशंका कर, वा एकरस ब्रह्म में परिणाम के असम्भव ते, ताको उपादानता ही नहीं बने, यह आशंका कर उपादानता की व्यवस्था कहे "परिणामी" इति, उपादान की सत्ता के साथ समान सत्ता वाला होकर तिस की अवस्था विशेष रूप जो परिणाम, ताको हेतु जगत में यह अज्ञान ही है, औ विवर्त हेतु ईश्वर त्यों पइये नाम उपादान की सत्ता से भिन्न सत्ता वाला होकर तिसकी अवस्था विशेष रूप जो विवर्त तिसका कारण तैसे ईश्वर है, याते परिणामी न मानने कर ताको अनित्यता नहीं बने औ विवर्ती मानने कर एक रसता में भेद न होने से उपादानता की असिद्धि नहीं, ईश्वर में उपादानता सिद्ध करने वाली व्याप्ति का मूलभूत प्रत्यक्ष दिखावे "अज्ञात" इति "अज्ञात स्फुरण सत्ता विशिष्ट. जग को इष्ट–अनिष्ट भाखे" यह अन्वय कर, अज्ञात नाम अद्वयानन्द रूप से स्वाश्रित अज्ञान का विषय जो ब्रह्म ता ब्रह्म की स्फुरण सत्ता विशिष्ट, जग को कहिये "घट सत् है" "घट भान होवे है" "सर्प सत्त है" "सर्प भान होवे है" इन प्रतीतियों से सत्ता चेतनता के तादात्म्य सहित जगत् को, इष्ट अनिष्ट भाखे कहिये "घट सुख का साधन है" सर्प "दुख का साधन है" ऐसे कहे है याते "घट सत्य है" ऐसे ईश्वर साथ घटादिकों का अभेद देखने से "उपादान जाको" इत्यादि व्याप्ति ग्रहण होने से ईश्वर को उपादानता में आशंका नहीं, पुनः या अज्ञान के प्रभाव से ईश्वर में उपादानता आदिक कल्पना बने है ता अज्ञान को उपादानता में भी कोऊ आशंका नहीं ॥ ३२८ ॥

शंकापंक याहिमों जोई । स्वप्ने जलधारा सब धोई ।
माटीयुक्त स्वप्नघट होई । चिद अज्ञान विन हेतु न कोई।।३२९।।
नैयायिक मत ऐसे गयो । बौद्ध निराश अवसर यह भयो ।

ननु दृष्टान्त की अप्रसिद्धि ते घटादिकों को अनिर्वाच्यता दूर होने से तिनका उपादान अज्ञान नहीं सिद्ध होवे है, तथा ऊर्णनाभि के नाश भया भी तन्तुओं के देखने से तामें उपादानता की भावना दूर होने कर दृष्टान्त के अभाव ते ब्रह्म को उपादानता भी नहीं बने यह आशंका कर कहे "शंका" इति, याहि मों नाम—अज्ञान औ चेतन को उपादानता में जो शंका रूप पंक है सो स्वप्न के दृष्टान्त रूप जलधारा से सब दूर होवे है, स्वप्न दृष्टान्त कहे "माटी" इति, माटीयुक्त कहिये मृत्तिका साथ अभिन्न जो स्वप्न घट प्रतीत होवे है, ताका चेतन औ अज्ञान बिना उपादान और कोई नहीं, इहां यह भाव है=स्थूल शरीर ते बाहर निकस कर लिंग शरीर से बाह्य पदार्थों का अनुभव माने स्थूल देह को मृतकवत् अमंगलता का प्रसंग होवेगा, याते जाग्रत घटादिकों के भान रूप अन्यथा के, पुनः "घट को देखता हूँ" ऐसे अनुभव से स्मृति के अभाव ते ख्याति अख्याति के पुनः "घट का ज्ञान" या वचन से बुद्धि भिन्नता कर प्रतीत हुए बाह्य घटादिकों को बुद्धि रूपता के अनंगीकार से, आत्मख्याति के अनंगीकार से, सत् रूपता को दुर्निरूप्य होने ते, पुनः असत् के साथ इन्द्रिय सम्बन्ध बिना ताके भान के अयोग्य ते, असत्ख्याति के अनंगीकार से, असत् रूपता को स्पप्न घटादिकों में दुर्निरूप्य होने ते, जैसे स्वप्न घटादि अनिर्वचनीय है तद्वत् जाग्रत घटादिक भी अनिर्वचनीय होने को योग्य है, दृश्य होने ते, ऐसे अनुमान से जाग्रत घटादिकों के अनिर्वाच्यता सिद्ध भये, तिनका कारण स्वसमान अनिर्वचनीय अज्ञान सिद्ध होवे है और प्रथम तो जिन अवयवों से ऊर्णनाभि तन्तु का उपादान है तिन अवयवों को अनाशी होने ते, दृष्टान्त का अभाव नहीं बने याते उपादनता बने है। दूसरे "स्वप्न गज सत्य है" ऐसे स्वप्न पनार्थों के सत् रूप पुरुष साथ तादात्म्य से स्वप्नदर्शी पुरुष को तिनकी अभिन्न निमित्त उपादानता सिद्ध होने ते, मुख्य दृष्टान्त स्वप्न ही है याते दृष्टान्त के अभाव ते ब्रह्म को उपादानता नहीं बने यह आशंका भी दूर भयी ।। ३२९ ।।

बौद्ध निराश अवसर यह भयो कहिये बौद्धमत के खण्डन का यह

तटस्थ—

चार बुद्ध के शिष्य पछानो । यामें भेद न रंचक मानो ॥३३०॥
सौत्रांतिक नाम एकको हइये । दूसर वैभाषिक जग कहिये ।
योगाचार तृतीय पहिचान । माध्यमिक चौथो उर मान ॥३३१॥
तिन चारों में द्वै जे आदि । तिनको प्रकट दिखावौ बाद ।
भूमीजल अरु अग्नि समीर । चार भूत यह जानो धीर ॥३३२॥

इस रीति से अवसर प्राप्त हुआ, नैयायिक आत्मा को स्थिर माने है, अन्य पदार्थों का बार बार उत्पत्ति नाश माने है, जैसे काहूपात्र में धरा स्थित जल जब हिलाया जावे, तब ताके प्रथम स्थानों में मिले अवयवों का विभाग होकर पूर्व अवयवी का नाश होवे है, तदनन्तर पुनः अवयवों का मिलाप होकर स्थितिकाल में नया अवयवी उपजे है, इस रीति से सम्पूर्ण अवयवी नाशी, आत्मा स्थिर अविनाशी यह कहे है याते नैयायिक आधे का विनाश भानने से अर्धवैनाशिक कहिये हैं। बौद्ध सर्व का नाश मानने से सर्ववैनाशिक कहिये है इस रीति से अर्धवैनाशिक मत दूर हुआ, सर्ववैनाशिक के निराकरण का समय हुआ याते अब बौद्धमत खण्डन होवेगा, बौद्ध नाम बुद्ध के शिष्यन का है, सो पुनः चार हैं सोई कहे "चार" इति ॥ ३३० ॥

चारों के नाम कहे "सौत्रान्तिक" इति ॥ ३३१ ॥

क्षणिक होने ते, इन्द्रिय सम्बन्ध पर्यन्त न रहने वाले वाह्य विषयों की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण न हुआ भी, बुद्धि में होने वाला प्रतिबिम्ब अपने जैसे बिम्बपूर्वक होने को योग्य है, प्रतिबिम्ब होने ते, दर्पणगत मुख प्रतिबिम्बवत्, या अनुमान से तिनकी सिद्धि होवे है, या सौत्रान्तिक के, और इन्द्रिय सम्बन्ध हुए बिना बुद्धि में ही प्रतिबिम्ब के होने का अन्य मार्ग न होने से, इन्द्रिय सम्बन्ध से तिनका प्रत्यक्ष ही होवे है या वैभाषिक के मतभेद रहे भी क्षणिकता औ वाह्य पदार्थों के अंगीकार अंश को समान मान कर दोऊ को मिला कर खण्डन करने हेतु "तिन" इति, भोक्ता भोग्य भेद से बाहर अन्तर के दो रूप संघात में, बाहर का भोग्य संघात कहे "भूमी" इति ॥ ३३२ ॥

ता परमाणु को संघात । बाह्य जगत जानो विख्यात ।
बाह्यको ऐसे उर आन । अंतर को अब करौं बखान ।।३३३।।
मानवादि देह जगतात । जानो पंच स्कंध संघात ।
पांचों का यह नाम पछान। रूप प्रथम दूसर विज्ञान ।।३३४।।
संज्ञा संस्कार मिल चार । वेदन पंचमको निर्धार ।
विषय और पुनि इंद्रिय जोई। रूप स्कंध कहिंजे सोई ।।३३५।।
आलयधारावाही ज्ञान । ऐन्द्रिक निर्विकल्प विज्ञान ।
द्वितीय स्कंध रूप यह जान। अब तीसर को करौं बखान ।।३३६।।

ता परमाणु को संघात कहिये चार भूतों के परमाणुओं का पुञ्ज रूप ही वाह्य घटादिक पदार्थ प्रसिद्ध जानो, अर्थात् घटादिक अवयवी, अवयव रूप ही जानो। भोग्य कह कर भोक्ता संघात के कथन का आरम्भ करे "अन्तर" इति ।। ३३३ ।।

पञ्च स्कन्धों का पुञ्जरूप मानवादि देह भोक्ता संघात रूप अन्तर्जगत् है सोई कहे "मानवादि" इति, विज्ञान नाम बुद्धि ।। ३३४ ।।

नाम क्रम से स्वरूप कहे "विषय" इति, विषयों को अन्तर कथन इन्द्रियों के सम्बन्ध ते पुनः देह की आरम्भकता से जानना, ऐसे न माने विषयों के बाहर होने ते अन्तर संघात में ग्रहण असंगत होवेगा ।। ३३५ ।।

विज्ञान स्कन्ध का रूप कहे "आलय" इति अन्य मतों में "सोऽहम्" प्रत्यभिज्ञा से अहम् रूप आत्मा को स्थिर माने है, बौद्धमत में क्षणभङ्गुर माने है, याते जब पूर्व क्षण वाले आत्मा का नाश होवे है, तब उत्तर क्षण में तासे अपने जैसे उत्तर की उत्पत्ति होवे है, इस रीति से प्रवाह रूपता कर वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था में बना रहे है, याही ते पट के एक स्थान कस्तूरी रखे, उत्तर तन्तुओं में पूर्व पूर्व तन्तुओं से गन्ध के सञ्चारवत् पूर्व पूर्व ज्ञान से अनुभव किये पदार्थ के संस्कार उत्तर उत्तर में जावे है, याते कालान्तर में वह वस्तु "देखी" "सुनी" इत्यादि स्मृति भी बने है, इस जाग्रत से लेकर सुषुप्ति पर्यन्त धारावाही नाम सन्तान सन्तानी प्रवाहरूपता कर वर्तमान जो

तृतीय अहे पुन पांच प्रकार। संज्ञा गुण क्रिया निर्धार।
जाति विशिष्ट प्रतीति मिल दोई। पंच प्रकार प्रकट यह होई ॥३३७॥

सविल्पक, आलय नाम अहं ज्ञान, पुनः ऐन्द्रिक कहिये चक्षुरादि इन्द्रिय-जन्य, जो निर्विकल्पक कहिये नाम गुण जात्यादिरूप विशेषणों की योजनाहीन "कुछ है" ऐसा ज्ञान, द्वितीय नाम विज्ञान स्कन्ध का रूप जानो, यह अक्षरार्थ है। भाव यह है=सविकल्पक निर्विकल्पक भेद से ज्ञान दो प्रकार का होवे है दोनों में विशेषण सहित विशेष्य के ज्ञान को सविकल्पक कहे हैं जैसे "पाचक" यह पाक क्रिया रूप विशेषण सहित विशेष्य पुरुष का ज्ञान है, पुनः "अहम्" यह अहंता धर्मसहित अहं विशेष्य का ज्ञान है याते सविकल्पक कहिये है। सविकल्पक से भिन्न नाम जाति गुण क्रियास्वरूप सम्बन्ध इनकी योजनाहीन ज्ञान निर्विकल्पक कहिये है जैसे "किञ्चिदस्ति" अर्थात् कुछ है यह अन्धकार में वा अपरिचित वस्तु में नाम जात्यादि विशेषणों की योजनारहित ज्ञान होवे है, याते इद्रियजन्य निर्विकल्पक कहिये है, सो यह निर्विकल्पक ज्ञान पुनः "अहम्-अहम्" ऐसे प्रवाहरूप आलय ज्ञान "विज्ञान स्कन्ध" कहिये है, संज्ञा को विषय करने ते "अयं घटः" इत्यादिक सविकल्पक ज्ञानं "संज्ञा स्कन्ध" कहिये है। ताका स्वरूप कहे "अव" इति अब कहिये विज्ञान स्कन्ध निरूपणानन्तर, तीसर नाम संज्ञा स्कन्ध का निरूपण करता हूँ॥ ३३६॥

निरूपण करे "तृतीय" इति, तृतीय अहे पुनि पाँच प्रकार कहिये तीसरे संज्ञा स्कन्ध को पांच रूप सिद्ध करने वाले प्रकार पांच हैं याते वह पांच तरह का है। प्रकार नाम विशेषण का है, पांच प्रकारों के नाम कहै "संज्ञा" इति, संज्ञा नाम स्वरूप का औ वाचक पद का है, याते संज्ञा कहिये वाचक पद, औ गुण—रूप रसादिक, क्रिया—पचन-पठनादिक, तीन विशेषण यह निर्णय कर। तथा जाति—घटत्व पटत्वं आदि सामान्य धर्म, औ विशिष्ट प्रतीति कहिये सम्बन्ध मिल दोई नामं यह दोऊ मिला कर, पंच प्रकार प्रकट यह होई कहिये पंच विशेषण प्रकट है। विशिष्ट प्रतीति शब्द का विशिष्ट ज्ञान अर्थ त्याग करं पारिभाषिक सम्बन्ध अर्थ करना ग्रन्थान्तरों के विरोध परिहार हेतु है अन्यथा विरोध होवेगा॥ ३३७॥

गो प्रकट यह संज्ञा जानो। शुक्लकृष्ण गुण ताके मानो।
गमन तथा गोक्रिया हइये। गोत्वसुतामहि जाति जु पइये ॥३३८॥
शृङ्गी पुच्छवती पदचार। विशिष्ट प्रतीति यही निर्धार।
पंच प्रकार बखाने जेई। याविधि प्रकट दिखाये तेई ॥३३९॥

विशेषण कह कर तिन पांचो का कथञ्चित् एक में सम्भव देखकर, परम मूलोक्त "डित्थः, नीलः, पाचकः, ब्राह्मणः, कुण्डली" इन पांचों के स्थानों में एक उदाहरण कहे "गो" इति, गो ऐसा सविकल्पक ज्ञान प्रकट संज्ञा नाम वाचक पद को लेकर जानो, पुनः शुक्ल गो में शुक्ल, औ कृष्ण में कृष्ण ज्ञान, ताके शुक्ल कृष्णरूप गुणों को लेकर मानो सोई कहे "शुक्ल" इति, गो में "शुक्ला" "कृष्णा" ऐसे अविकल्पक ज्ञान विषे ताके शुक्ल कृष्णरूप गुण विशेषण मानो, और गो में "गो" ऐसे सविकल्पक ज्ञान में गमन क्रिया विशेषण है, सोई कहे "गमन" इति, गो में "गो" ऐसे सविकल्पक ज्ञान में, तथा नाम पूर्ववत् अर्थात् शुक्ल ज्ञान में शुक्ल गुणवत् "गच्छतीति गो" व्युत्पत्ति से गौ की गमन क्रिया-विशेषण है औ अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न गो व्यक्तियों में "गो, गो" ऐसे सविकल्पक ज्ञान में तिन विषे होने वाली गोत्व जाति विशेषण पाइये है ॥ ३३८ ॥

पुनः गो व्यक्ति में "शृंगी" इत्यादिक सविकल्पक ज्ञानों में शृंगादिकों का समवाय आदि सम्बन्ध विशेषण है सोई कहे "शृंगी" इतिं, गो में "शृंगी" तथा "पुच्छवती" पुनः देहली दीपक न्याय से वती का आगे भी सम्बन्ध कर वती पद चार कहिये "चार पदवती" ऐसे सविकल्पक ज्ञानों में विशिष्ट प्रतीति कहिये शृंगादिकों का समवाय सम्बन्ध ही निश्चय करो। कहे पञ्च प्रकारों के कथन की समाप्ति करें "पञ्च" इति, ज्ञान की पञ्च रूपता सिद्ध करने वाले जो पांच प्रकार नाम विशेषण कहे वह यह "या विधि प्रकट दिखाये" नाम "गो प्रकट" इत्यादि पाठ से प्रसिद्ध कर दिखाय दिये, याते तिन विशेषणों के भेद से विशिष्ट ज्ञान पांच प्रकार का सम्भवे है। यद्यपि परम मूल में "डित्थः" इत्यादि औ या ग्रन्थ में "गो प्रकट" इत्यादि पंच प्रकार का सविकल्पक ज्ञान संज्ञा-स्कन्धकह्या तहां यह आशंका होवे है 'स्वराज्य सिद्धि' में—"डित्थः" उदाहरण कहने से वस्तु का स्वरूप विशेषण प्रतीत होवे है, "गो प्रकट"

इहां संज्ञा पद का वाचक अर्थ कहने से ज्ञान का विशेषण वाचक पद प्रतीत होवे है याते परम मूल का विरोध हुआ ? उत्तर—तथापि विरोध नहीं, काहे ते ग्रन्थन में बहुत स्थानों में "स्वरूप, गुण, क्रिया, जाति, सम्बन्ध" से शब्द प्रवृत्ति निमित्त पांच लिखे हैं, बहुत स्थानों में "स्वरूप, गुण, क्रिया, जाति, सम्बन्ध, वाचकपद" यह षट् प्रवृत्ति-निमित्त लिखे हैं, संज्ञा शब्द से "स्वरूप" औ वाचक पद दोनों का ग्रहण होवे है काहेते ? देवदत्त संज्ञा यज्ञदत्त संज्ञा इस रीति से वाचक का नाम संज्ञा अति प्रसिद्ध है, स्वरूप का नाम प्रवृत्ति निमित्तों के विवरण में "संज्ञा नाम स्वरूपम्" ऐसे कथन से प्रतीत होवे है आगे जो शब्दों के अपने अर्थों में वतर्ने में निमित्त होवे है वही सविकल्पक ज्ञान में विशेषण होवे है, जैसे पाचक शब्द का रसोइये में वर्तने में पकावन रूप क्रिया निमित्त है सोई "पाचक" ऐसे ज्ञान में विशेषण है याते जो शब्द के अर्थ में वर्तने में निमित्त होवे है, सोई ज्ञान में विशेषण कहिये है निमित्त क्रिया आदिक प्रसिद्ध है, काहे ते ? पाक क्रिया वाला "पाचक" कहा जावे है शुक्ल गुण वाला "शुक्ल" कहा जावे है, कुण्डल सम्बन्ध वाला "कुण्डली" कहा जावे है ब्राह्मणत्व जाति वाला "ब्राह्मण" कहा जावे है, डित्थपना स्वरूप वाला "डित्थ" कहा जावे है, डित्थपना स्वरूप इस रीति से है छिन्नस्कन्ध अर्थात् कटे डाली वाले वृक्ष को "डित्थ" कहे हैं जाको ठूठ कहे हैं तामें डित्थपना धर्म "क्रिया में गुण में सम्बन्ध में" गिनती के अभाव ते गुण क्रिया सम्बन्ध रूप नहीं, जातिपना साधक के अभाव ते जाति स्वरूप नहीं, किन्तु छिन्नस्कन्धपना रूप ताका स्वरूप है, ता निमित्त को लेकर "डित्थ" कहा जावे है औ ताही विशेषण को लेकर परम मूल में संज्ञा का डित्थ मिला कर पांच उदाहरण कहे; औ मौक्ष पन्थ प्रकाश में वाचक नाम को लेकर कहे। काहे ते ? नाम भी इस रीति से निमित्त होवे है जैसे कोई कहे—"अमुक पुरुष घट को कहता हुआ" तहां घट भूत अर्थ में तो कथन सम्भवे नहीं, काहे ते ? उच्चारण मुख से शब्द का होवे है, अर्थ को अक्षररूपता के अभाव ते ताका सम्भवे नहीं, औ जिसके उच्चारण से जिसका बोध होवे वह ताका अर्थ होवे है, इहां घट नामोच्चारण ते घट नाम का ही बोध होवे है याते घट नाम ही घट शब्द का अर्थ है, पुनः बिना निमित्त शब्द का काहू अर्थ में वर्तन होवे नहीं, याते घट नाम ही घट-नाम के उच्चारण में डित्थवत् स्वरूप ते निमित्त है इस रीति से घटादि नामों के उच्चारण

अब स्कन्धार्थ का प्रतिपादन करते हुए बाह्यान्तर प्रपञ्च की क्षणिकता कहे हैं।

राग द्वेष मोह मद रूप। धर्माधर्म मोह तम कूप।
स्कंध संस्कार यह गायो। सो मैं तोको भाख सुनायो ॥३४०॥
सुख दुःखको अनुभव हैं जोई। वेदन नाम कहीजै सोई।
पांच स्कंधन को संघात। इहते भिन्न न आतमतात ॥३४१॥
इनको आत्म धीर बतावे। इनते भिन्न न सो ठहरावे।
बाहर भीतर जो संघात। सब क्षणभंगुर है एकान्त ॥३४२॥
भाव रूप जगत में जोई। विद्युवत क्षणभंगुर सोई।
सोयं इति प्रत्यभिक्षा ज्ञान। दीपकज्वाला ज्यों पहिचान ॥३४३॥

में घटादिक नाम भी निमित्त है औ घटादि शब्दजन्य ज्ञान में गुणादिकोंवत्, विशेषण है, याते वाचक नाम-रूप संज्ञा को लेकर मोक्ष पन्थ में पांच उदाहरण कहे इस रीति से नाम रूप संज्ञा को पञ्चम उदाहरणता के सम्भव ते मूल, परममूल का विरोध नहीं इत्यलम् ॥ ३३९ ॥

संस्कार स्कन्ध का स्वरूप कहे "राग" इति, "तम कूप" मोह का विशेषण है ॥ ३४० ॥

वेदन का स्वरूप कहे "सुख" इति, "सुख दुख को अनुभव है जोई" नाम जो सुख दुख का ज्ञान है वह "वेदन" नाम स्कन्ध कहिये है। आत्मजिज्ञासुन को आत्मोपदेश करे "पांच" इति, रूप आदि पांचन का जो समुदाय है इतने भिन्न कहिये इन पांचन के समूह ते जुदा आत्मा नहीं किन्तु यही आत्मा है ॥ ३४१ ॥

समूह को आत्मता में प्रमाण कहे "इनको" इति, धीर नाम बुद्धादि आचार्य, इनते भिन्न नाम विचार करे वक्ष्यमाण "स्वयं प्रकाश ते आत्म सोई" ऐसे आलय विज्ञान को आत्मता मानते हुए भी अन्त को इनके अन्तर्गत को ही मानते, पृथक् नहीं, यह ठहरावते। भोक्ता भोग्यरूप निखिल जगत् को क्षणिकता की प्रतिज्ञा को "बाहर" इति बाहर भीतर कहिये अन्तर बाहर यावत् भोक्ता भोग्यरूप जगत् है सो सब एकान्त नाम नेम कर क्षण क्षण में नाश होने वाला है इस कहने से सर्वपक्ष कर क्षणिकता साध्य की प्रतिज्ञा करे ॥ ३४२ ॥

कहे साध्य को सिद्ध करने वाले हेतु की साथ साथ व्याप्ति कहे "भाव" ईति, जो वस्तु जगत् में भावरूप नाम सद्रूप है वह सभी

ऐसे शिष्यन कर उपदेश। करे नरक में जाय प्रवेश।

अब सिद्धान्ती कर उक्त क्षणिक वादी का विकल्पों कर खण्डन।

सिद्धान्ती—

वहु दूषण गण तामत आहि। भाखों प्रकट सुनो अब ताहि ॥३४४॥

क्षणिक परमाणु संघ जगभौन। कह्यो सिद्धांत मानते कौन।
मान बिना नहिं मेय प्रसिद्ध। जाते मान करे ता सिद्ध ॥३४५॥

घटपटादि विद्युतवत् नाम बिजली के समान क्षण क्षण में नाश होने वाली है, अर्थात् जो जो सत् है, सो सो क्षणिक है, यह नेम है, याते भोक्ता भोग्य सब क्षणिक है, सत् होने ते, विद्युतवत्, या अनुमान से सर्व को क्षणिकता सिद्ध हुए कोई पदार्थ स्थिर नहीं सिद्ध होवे। अनु पूर्व कालवर्ती घटादिकों साथ उत्तरकाल वर्ती घटादिकों की एकता सिद्ध करती हुई प्रत्यक्षरूप "सीऽयंघटादि" प्रत्यभिज्ञा पदार्थों को स्थिरता सिद्ध करे है याते क्षणिकता सिद्ध करते अनुमान को अग्नि शीतलता साधक अनुमानवत्, बाधित होने ते, तासे सर्व को क्षणिकता सिद्ध नहीं होवे, यह अशंका कर प्रत्यभिज्ञा उत्तर में पूर्व की समानतामात्र सिद्ध करने ते एकता अंश में भ्रमरूप है याते तासे क्षणिकतारूप साध्य का अभाव नहीं सिद्ध होवे, यह वार्ता सहित दृष्टान्त के कहे ,'सोऽयम्" इति, "वही घटादि यह है" ऐसे स्थिरता सिद्ध कर्ता प्रत्यभिज्ञा ज्ञान "दीपक ज्वाला ज्यों पहिचान" कहिये सोई यह दीपशिखा है इस ज्ञान के समान एकता अंश में भ्रमरूप जानो ॥ ३४३ ॥

अनुवाद की समाप्ति करे तटस्थ "ऐसे" इति, करे-करयो, सिद्धान्ती तटस्थ प्रति कहे "वहु" इति ॥ ३४४ ॥

प्रथम प्रमाणअमूलकता दिखावने हेतु मतसाधक प्रमाण में प्रश्न करे "क्षणिक" इति, "परमाणु संघ जगभौन क्षणिक सिद्धान्त कौन मानते कह्या" यह अन्वय कर परमाणुओं का जगत् भौन क्षणिक है यह सिद्धान्त कौन प्रमाण ते कथन किया है अर्थात् या सिद्धान्त में कोई प्रमाण है वा नहीं? नहीं पक्ष में प्रमेय की असिद्धि कहे "मान" इति ॥ ३४५ ॥

मान प्रत्यक्ष न या महिं होई। सन्निकृष्टको भासै सोई।
क्षणभंगुर जग भीतर जोई। सन्निकर्षलौं रहै न सोई ॥३४६॥
सम्बन्ध जन्मलौं स्थिर माने। क्षणभंगुर मत होवै हाने।
प्रत्यक्ष योग परमाणु नाहीं। कहे सम्बन्ध सिद्ध कछु नाहीं॥३४७॥
व्याप्ति विना नाही अनुमान। क्षणिक व्याप्ति ते होय न भान।
याही ते उपमान न होई। क्षणभंगुर कर हत्यो सोई ॥३४८॥

"है" पक्ष में भी प्रत्यक्ष है वा अनुमान है वा उपमान है वा शब्द है इन विकल्पों में प्रथम मानते प्रति ताकी असिद्धि कहे "मान" इति, या महिं कहे सिद्धान्त में, न होने में हेतु कहे "सन्निकृष्ट" इति, सन्निकृष्ट को नाम अपने साथ सम्वन्ध वाली वस्तु को, भासै सोई नाम प्रकाशे है वह, औ भणभंगुर सम्बन्ध पर्यन्त रहे नहीं, सोई कहे "क्षण" इति, सन्निकर्ष लौं—सम्बन्ध पर्यन्त, अर्थात् चक्षुरादिक इन्द्रियरूप प्रत्यक्ष प्रमाण अपने साथ सम्बन्ध वाली वस्तु को सिद्ध करे है और क्षणिक को सम्बन्ध पर्यन्त न रहने से ताके साथ सम्बन्ध बने नहीं, याते ताकी सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं ॥ ३४६ ॥

प्रत्यक्ष प्रमाण से ताकी सिद्धिहेतु सम्बन्ध की उत्पत्ति पर्यन्त वस्तु की स्थिति माने है यह आशंका कर मतहानि कहे "सम्बन्ध" इति, किञ्च महत्व परिमाण उद्भूतरूप आलोक संयोग सहित चक्षु संयोग 'बाह्य द्रव्य' चाक्षुष प्रत्यक्ष में सामग्री है औ परमाणुओं में महत्परिमाण के अभाव ते वह सामग्री बने नहीं, याते चक्षु संयोग माने भी परमाणुओं का प्रत्यक्ष नहीं होवेगा यह सिद्धान्त हानि मान कर भी माने सम्बन्ध को निष्फलता कहे "प्रत्यक्ष" इति ॥ ३४७ ॥

प्रत्यक्ष दूर होने ते, व्याप्ति और सादृश्य, औ पद पदार्थ के सम्बन्ध ज्ञानरूप सामग्री के अभाव ते, अनुमानादिक भी नहीं बने, प्रथम पक्ष में साध्य की व्याप्ति सहित हेतु के ज्ञानरूप अनुमान की असिद्धि कहे "व्याप्ति" इति, व्याप्ति विना नाहीं अनुमान नाम जहां जहां साधन है तहां तहां साध्य है ऐसे साध्य साधन के एक जगह रहने के नेम विना नहीं होवे व्याप्ति सहित हेतु का पक्ष में ज्ञान, अर्थात् जेकर जहां जहां सत्पना है तहां तहां क्षणिकता है ऐसे साध्य साधन के एक जगह रहने का नेम प्रत्यक्ष से प्रतीत होवे तब ऐसे नेमरूप व्याप्ति सहित सत्पनेरूप हेतु का

शब्द न ताको करे प्रकाश । शब्द सुने क्षणभंगुर नाश ।
घकार टकार वर्ण द्वय जेई । एक समय उपजे नहिं तेई ।।३४९।।
क्रम कर उपजे मुखमें दोई । श्रवण ताहिको क्रम कर होई ।
चारकाल घट इस्थित कहे । क्षणभंगुर मत अपनो दहे ।।३५०।।

नराजछन्द

न मान मूल ते मतं सु भ्रांति मूल जानिये ।
सु वेद लोकहीन कौन काज ताहि मानिये ।।
न भोग मोक्ष को करै अनर्थ हेतु धारई ।
सुडार दूर याहि को न धीरको विचारई ।।३५१।।

पक्ष जगत् में क्षणिकता की व्याप्ति सहित "सत्पने वाला जगत् है" ऐसे अनुमान बन जावे वह तो पुनः व्याप्ति अंश साधक प्रत्यक्ष बिना दूर होने से बने नहीं, सोई यह कहे "क्षणिक" इति, इन्द्रिय सम्बन्ध पर्यन्त साद्दश्य न रहने से ही साद्दश्य ज्ञानरूप उपमान भी क्षणिक वस्तु का साधक नहीं बने सोई कहे "याही ते" इति, याही ते नाम साद्दश्य का प्रत्यक्ष न होने ते ही, उपमान भी ताका साधक नहीं बने, काहे ते ? क्षणभंगुर कर हत्यो सोई नाम सर्व को क्षणिक मानते ने सर्व के अन्तर्गत साद्दश्य को अर्थ ते क्षणिकता कहने से दूर किया उपमान भी ।। ३४८ ।।

शाब्दज्ञान में भी पदज्ञानादिकोंवत् विषय को सामग्री मानकर विषयाभाव ते शब्द को ताकी प्रकाशकता का अभाव सूचन करे "शब्द" इति, शब्द भी नहीं करता क्षणिक की प्रसिद्धि, न करने में हेतु कहे "शब्द" इति, शब्द के श्रवण होने पर्यन्त क्षणभंगुर का नाश हो जावे है, नाश होना स्पष्ट करे "घकार" इति ।। ३४९ ।।

क्रम कर—आगे पीछे, ननु मत करे प्रकाश जब शव्दजन्य ज्ञान पर्यन्त विषय की स्थिति न माने यह आशंका कर मत हानि कहे "चार" इति, अत्यन्त असत् शशशृङ्गादिकों का भी शब्द से ज्ञान देखने कर "शब्द न ताको" इत्यादि कथन प्रौढ़िवाद से है वास्तविक ते तो अनुमित्यादिक ज्ञानों में प्रत्यक्षवत् विषय को कारणता न होने कर शव्दसे ताका प्रकाश न होने में पद का न प्रत्यक्ष होना ही हेतु समीचीन है ।। ३५० ।।

प्रमाण अमूलकता कह कर ताही ते मत को भ्रममूलकता कहे "न मान" इति, म मान मूल ते मतं नाम नहीं है प्रमाण प्रसिद्धि में

कवित्त

आपनी सु बुद्धि को प्रसिद्ध लोकमें करै
जो मानते विरुद्ध ही सिद्धांत को बखानिये ।
किधौं प्रमोह के बसे पिशाच देह ते धसे
विवेक बुद्धि तेनशे वके व्यर्थ जानिये ।
किधौं सुवेदलोककी करै कल्याण हेर के
निरर्थ दुःख हेतु द्वेष तोहि नीच ठानिये ।
तीन पक्षहूँ विषे सुदोष ते मतं विषे,
सुलोकवेदहीन कौनकाज ताहि मानिये ॥३५२॥

कारण जिसका ऐसा तेरा मत है, अर्थात् अप्रमाणिक है, याही ते कहे "सुभ्रान्ति" इति, भ्रान्तिमूलक रजतादिकों की प्रवृत्ति ते प्रयोजन सिद्धि न देखने से भ्रममूलक मत से भी प्रयोजन सिद्धि नहीं होवेगी यह सूचन करे "सुवेद" इति, लोक वेद हीनता ही स्पष्ट करे "न भोग" इति, भोग नहीं देवे है याते लोक हीन है, मोक्ष नहीं करे याते वेद हीन है, भोग मोक्ष के न करने ते ही अनर्थों का हेतु धारण करे है, सोई कहे "अनर्थ" इति, अनर्थ हेतु धारई कहिये अनर्थों का मूल निश्चय करेंगे औ अनर्थों का मूल निश्चय करने ते ही बुद्धिमान् दूर त्याग कर विचारेंगे नहीं सोई कहे "सुडार" इति ॥ ३५१ ॥

"इदं रजतादि" वाणीवत् पुरुष की वाणी को प्रमाण मूलकता बाधभये दोष मूलकता ही में अवसान मान कर, क्रम ते राग, मोह, द्वेष, की मूलकता स्पष्ट करे "आपनी" इति, आपनी सुबुद्धि को प्रसिद्ध लोक में करै कहिये लोक में ऐसे अपनी श्रेष्ठ बुद्धि को प्रकट करे है। जो मानते विरुद्ध ही सिद्धान्त को बखानिये नाम प्रमाणों ते उलटे ही सिद्धान्त को कथन करे है, अर्थात् सर्व प्रमाणों से विरुद्ध भी क्षणिकता हम स्थापन कर सकते हैं यह अपनी बुद्धि की जोरावरी प्रकट करे है, मान लेवे तब तो सबते उलटा कहकर अपनी प्रसिद्धि औ पूजा आदिकों की इच्छा रूप राग मूलकता ही सिद्ध होवे है, न माने तब यह है सोई कहे "किधौं" इति, "किधौं प्रमोह के बसे विवेक बुद्धि ते नसे" यह अन्वय कर किधौं प्रमोह के बसे किधौ पिशाच देह ते धसे विवेक बुद्धि

चौपाई

ते सिद्धांतमें दूषण और। कहौं अनंत न पावे ठौर।
जड़ परमाणु क्रिया विहीन। क्रिया बिना मिलनों नहिं चीन॥३५३॥
क्रिया जन्म लौं रहै न तेई। चणभंगुर भाखे है जेई।
स्वतः न क्रिया तामहिं होई। भिन्न न कर्ता मान्यो कोई॥३५४॥

ते नसे कहिये अथवा प्रमाण वस्तु को तत्त्व के न जानने के अधीन होकर विवेक-बुद्धि ते नसे नाम तेरी विचार की बुद्धि नाश हो गई, याते महा-मूर्खो के समान व्यर्थ वाणी बोले है, वा पिशाच देह ते धसे नाम तेरी देह में पिशाच का प्रवेश होने ते तेरी विचार बुद्धि नाश भई इसते बोले है, मान लेवे, तव भूतावेश ते वा वास्तविक ते न जानकर भ्रम ते कहने से मोहमूलकता सिद्ध होवे है, छिपावे तव द्वेष है सोई कहे "किधौं" इति, निरर्थ दुख हेतु द्वेष तोहि नीच ठानिये—निष्प्रयोजन दुखों का हेतु द्वेष तुमने नीच करिये है, निष्प्रयोजन द्वेष करने वाले का नाम नीच होवे है याते "नीच" कथन है, सर्व पक्षों में मत हेय है यह कहे "तीन" इति, तीन पक्षहूँ विषे सुदोष ते मतं विषे—बुद्धि की प्रसिद्धि आदिक तीनों पक्षों विषे रागादिक मूल है तेरे मत विषे, याही ते मानने योग्य नहीं यह कहे "सुलोक" इति॥ ३५२॥

मत को हेयता सूचक प्रमाण अमूलकता पुनः दोष मूलकता कहकर प्रमाणों का विरोध भी दिखावे "ते" इति, कहौं अनन्त पूर्व संग (अन्वय कर लेना)। परमाणुओं में क्रिया स्वतः सिद्ध है वा भिन्न कर्ता के सम्वन्ध से है ? यह विकल्प कर जड़ होने ते पुनः क्षणिक होने ते, तिन में स्वतः क्रिया नहीं बने यह प्रथम की असिद्धि कहे "जड़" इति, जड़ यह परमाणुओं को स्वतः क्रिया हीनता में हेतु है अर्थात् जिसते जड़ है इसी ते स्वतः क्रिया हीन है॥ ३५३॥

"क्षणभंगुर भाखे" कथन क्रिया जन्म लौं न रहने में हेतु है अर्थात् जिसते क्षणिक है इसीते क्रिया जन्म लौं नहीं रहे, प्रथम विकल्प का उपसंहार करे "स्वतः" इति, कहे दोषों ते परमाणुओं में स्वतः क्रिया नहीं होवे, मत होवो स्वत भिन्न कर्ता के सम्वन्ध से कहे है ? तहां कहे "भिन्न" इति॥ ३५४॥

भुजंगप्रयात छन्द

सरं तंतु माटी इने आदि जानो।
कटाकार पाटं घटं चित्त आनो ॥
कुरंडं कुविंदं कुलालं विनाही।
अहे नियम सारे बने तीन नाही ॥३५५॥

चौपाई

जो तुम भिन्न बखानो कर्ता। सो अस्थाई कै क्षण मरता।
जो अस्थाई ताहि बखानो। क्षणभंगुर मत होवै हानो ॥३५६॥
क्षणभंगुर जे कर्ता होई। जन्य जन्म लौ रहै न सोई।
जन्य जन्म लो रहै न जोई। कर्ता ताहि कहे नहिं कोई ॥३५७॥
परमाणु संघ बखान्यो जोई। करे विकल्प बने नहिं सोई।
संघ परमाणु ते है न्यारो। अथवा ताहि अभिन्न उचारो ॥३५८॥

तुमने भिन्न कर्ता मान्या नहीं, औ जड़ की भिन्नकर्ता विना प्रवृत्ति होवे नहीं यह बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "सरम्" इति, सरम्-सरकड़ा, कराकार-टट्टी रूप, कुरंड-कटकर्ता, कुविन्द-जुलाहा ॥ ३५५ ॥

भन्नकर्ता के सम्बन्ध से कहे है यह कहते प्रति विकल्पों से दूसरे के परिहार हेतु कहे—"जो तुम" इति, प्रथम में सिद्धान्त हानि कहे "जो" इति ॥ ३५६ ॥

दूसरे तो कार्य की उत्पत्ति काल में न रहने कर ताको कर्तापना ही नहीं बने यह कहे "क्षण" इति, कर्ता ताहि कहे नहिं कोई कहिये कार्य के जन्मपर्यन्त न रहने वाली वस्तु को कर्ता कोई नहीं कहे, किन्तु रहने वाली को ही कहे है, याते उत्तर क्षणिक की उत्पत्तिपर्यन्त पूर्व को न रहने से उत्तर का कर्तापना नहीं बने, ऐसे न माने कुलाल के मरणानन्तर होने वाले घट के कर्तापने का भी मरे कुलाल को प्रसंग होवेगा, क्षणिक नाम अपनी उत्पत्ति ते पूर्व, उत्तर, काल के संग न स्पर्श करने वाली वस्तु का होवे है ॥ ३५७ ॥

किञ्च और रीति से विचार किया भी बाहर जगत् परमाणु पुञ्जरूप नहीं सिद्ध होवे यह "ता परमाणु को संघात" से लेकर कही बात के

प्रथमे ते सिद्धांत पलानो । भिन्न अवयवी जाते मानो ।
द्वितीय तिह प्रत्यक्ष न होई । ऐंद्रिक नहिं परमाणु कोई ।।३५९।।

अब क्षणिकवादी परमाणुओं के समुदाय के प्रत्यक्ष में दृष्टान्त दिखाता है ।

पूर्वपक्षी—

ज्यौं इककेश दूर नहिं देखै । तत् समुदाय प्रकट जन पेखै ।
त्यों परमाणु एक अगोचर । तिह समुदाय होय जनगोचर ।।३६०।।

खण्डन का आरम्भ करे "परमाणु" इति, संघ कहिये संघात, विकल्प करे "संघ" इति ॥ ३५८ ॥

भिन्न पक्ष के अंगीकार में सिद्धान्त हानि कहे "प्रथमे" इति, सिद्धान्त हानि में हेतु कहे "भिन्न" इति, भिन्न अवयवी कहिये परमाणुओं ते जुदा संघात, सिद्धान्त हानि भय कर अभिन्न कहो तब महत्व परिमाण हीनता कर प्रत्यक्ष के अयोग्य परमाणुओं के साथ अभिन्न होने ते अवयवी का प्रत्यक्ष नहीं होवेगा, सोई कहे "द्वितीय" इति, प्रत्यक्ष न होने में हेतु कहे "ऐन्द्रिक" इति, ऐन्द्रिक नहिं परमाणु कोई कहिये महत्व परिमाण के अभाव ते इन्द्रियों का विषय नहीं परमाणु कोई, याते तिसके साथ अभिन्न अवयवी का भी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होवेगा, इहां यह भाव है=जो परमाणु, आकाश, तथा अन्धकारस्थ घट, औ पृष्ठ पीछे-स्थित पदार्थों का नेत्र से प्रत्यक्ष न देखकर ग्रन्थकारों ने क्रम ते महत् परिमाण, उद्भूतरूप पुनः प्रकाश का सम्बन्ध औ इन तीनों सहित नेत्र का सम्बन्ध, यह चक्षु जन्य प्रत्यक्ष की सामग्री मानी है औ परमाणुओं में महत्परिमाण के अभाव ते वह सामग्री बने नहीं, याते तिनका नेत्रों से पुनः महत्परिमाण-विशिष्ट स्पर्श के अभाव ते त्वचा से भी ग्रहण न होने कर तिसके साथ अभिन्न संघात का भी नहीं होवेगा ।। ३५९ ।।

प्रत्येक परमाणुओं में महत्परिमाण न रहने से प्रत्यक्ष के अयोग्य भये भी समुदाय में ताके रहने से परमाणुओं साथ अभिन्न संघात का प्रत्यक्ष बने है यह दृष्टान्त से आशंका करे "ज्यों" इति, अगोचर-इन्द्रियों का अविषय ।। ३६० ।।

अब सिद्धांती उक्त दृष्टान्त को विषम कहता है ।

सिद्धान्ती—

केश न एक अतींद्रिय होई । निकट पर्‍यो पेखै सब कोई ।
त्यों परमाणु नाहिं निहारे । कैसे तिह प्रत्यक्ष उचारे ॥३६१॥

संघात वाद में दूषणराश । सुनिये और तजो तिह आस ।
प्रथम प्रथम जोई संघात । सो उत्तर उत्तर को तात ॥३६२॥

स्व समान उत्तर उपजाये । अथवा ताहि विलक्षण जाये ।
अथवा कोई न नियम बखानो । तीनों में दूषण उर आनो ॥३६३॥

प्रथम पक्ष में दूषण सार । कहौं प्रकट उर भीतर धार ।
बीजते अंकुर ताते डाल । ताते पत्र फूल विशाल ॥३६४॥

एक केशवत् एक परमाणु को गोचरता नहीं बने यह परिहार करे "केश न" इति, प्रत्येक में न रहने वाला धर्म समुदाय में नहीं रहे या नियम ते जिन एक एक वस्तुओं में इन्द्रिय ग्रहण की योग्यता नहीं रहे तिनके समुदाय में भी नहीं रहे, ऐसे न माने वायु के संघात के भी चाक्षुष का प्रसंग होवेगा यह उत्तर का भाव है ॥ ३६१ ॥

किञ्च संघात वाद में और भी अनन्त दोष श्रवण करो यह कहे सिद्धान्ती "संघात" इति, "सुनिये और" पूर्व साथ मिलाकर, हे तटस्थ ! पूर्व कहे दोषोंवत् संघात वाद में और भी अनन्त दोष श्रवण करो औ श्रवण करके तिसके ग्रहण को आशा त्यागो, दूषण राशि सुनावने हेतु ताके सिद्धान्त का अनुवाद करे "प्रथम" इति, प्रथम प्रथम कहिये पूर्व-पूर्व जो संघात है, सो उत्तर-उत्तर को तात कहिये वह उत्तर-उत्तर को उत्पन्न करे है, यह जो तुम्हारा सिद्धान्त है, ता में हम यह पूछे हैं ॥३६२॥

पूछे "स्व" इति, ताहि—उत्तर को, दूषण के अभाव ते तीनो कहे ? तहाँ कहे "तीनों" इति ॥ ३६३ ॥

तीनों विषे प्रथम में दोष क्या है ? तहाँ कहे "प्रथम" इति, विसदृश की उत्पत्ति का अभाव प्रसंगरूप दोष कहने हेतु जगत् में विसदृशों की प्रसिद्धि दिखावे "बीज" इति ॥ ३६४ ॥

अहै .विसदृश ते जगमाहीं । सो उपजे नहिं ते मतमाहीं ।
द्वितीय सर्व भाव के लक्षण । क्षण क्षण माहिं सो होय विलक्षण॥३६५॥
उपजे बीजसो जा क्षणमाहीं । अंकुर जने द्वितीय क्षणमाहीं ।
तृतीय कांडहि पात विशाल । चौथे होय फूल की माल ॥३६६॥
दिन अरु मास विलंब न होवै । सर्व क्षण क्षण में जन जोवै ।
तृतीय नर पुद्गल है जोई । द्वितीय क्षण सुर होवै सोई ॥३६७॥
बहुर मनुष्य हाथी ह्वै जाय । होय तुरंग चले भूधाय ।
भोजन पात्र में धर आगे । जेवन लगे हलाहल आगे ॥३६८॥
निश्चय का मैं करै न कोई । निश्चय हेतु दयो सब खोई ।
निश्चय विना न कार्य होई । निश्चय हेतु न मान्यो कोई ॥३६९॥

अहै विसदृश ते जगमाहीं कहिये बीजादिक और-और प्रकार के प्रसिद्ध हैं जगत् में, औ स्वसमान की उत्पत्ति मानने ते तेरे मत में न हुआ चाहिये, कहे दोषों ते दूसरा मानो तब क्षण-क्षण में सर्वपदार्थों की विलक्षणता का प्रसंग होवेगा, सोई कहे "द्वितीय" इति, द्वितीय सर्वभाव के लक्षण कहिये विलक्षण की उत्पत्ति अंगीकार पक्ष में सर्वपदार्थों के स्वरूप क्षण क्षण में और और प्रकार के हुए चाहिये ॥ ३६५ ॥

तथा उत्पन्न मात्र बीज ते अंकुरादिकों की उत्पत्ति प्रसंग भी हुआ चाहिये सोई कहे—"उपजे" इति, काण्डहिं नाम डाले ॥ ३६६ ॥

ऐसे भये दिवस औ मासों का विलम्ब नाम देर न हुई चाहिये, किन्तु सम्पूर्ण-वस्तुओं को पुरुष क्षण क्षण में देखे, पुनः उलटा भी उत्पत्ति का प्रसंग हुआ चाहिये तथा बट बीज से अश्वत्थ का अंकुर भी हुआ चाहिये याते दिन मासों में सदृशों की तथा बीज अंकुरादिक विलक्षणों की अनुभव सिद्ध उत्पत्ति हेतु दोऊ रीति की अनेमता रूप तीसरा मानो तब तहां भी मनुष्यादि शरीर द्वितीयादिकक्षण में देव वा हस्ती वा तुरग होवेंगे याते सर्व वस्तुओं में विश्वास के अभाव का प्रसंग होवेगा यह कहे "तृतीय" इति ॥ ३६७ ॥

हलाहल—विष ॥ ३६८ ॥

ऐसे भये प्रवृत्ति का मूलरूप विश्वास सर्वत्र दूर होवेगा सोई कहे "निश्चय" इति विश्वास काहू वस्तु में कोई न करेगा, न करने में हेतु

तातें सर्व भावको नियंता । उपजावन पालन पुन हंता।
सर्वशक्ति चेतन इक हइये । ता बिन कार्य न कोई पइये ॥३७०॥

अब पूर्वपक्षी स्वपक्ष में युक्ति कहता है ।

दोहा

पूर्वपक्षी—

ननु जो पांच स्कंध ही, भापे मोहि बनाय ।
मिले परस्पर ते जबै, लेवे चित उपजाय ॥३७१॥
भोक्ता चेतन होय जग, प्रेरे जड़हि उदार ।
निश्चयते लै आदि जे, साधे सब व्यवहार ॥३७२॥

अब सिद्धान्ती कर उक्त युक्ति का खण्डन ।

सिद्धान्ती—

चेतन बिन नहिं मिले स्कंध · बिन कर्ता ते है जड़ अन्ध ।
बिना संघात न चित्त प्रकाश । भोक्ता की अब छोड़ो आश ॥३७३॥

कहे "निश्चय" इति, पूर्वक्षण से नेमहीन की उत्पत्ति मानने ते यह वस्तु ऐसे हो होवे है, ऐसे विश्वास का मूल जो पदार्थों का नेम सो सब दूर किया याते विश्वास नहीं बनेगा, मत होवो विश्वास, बिगाड़ क्या ? तहां नहीं कार्यों की असिद्धि ते और कछु, सोई कहे "निश्चय" इति, कार्य—प्रवृत्ति आदिक ॥ ३६९ ॥

कहे दोषों से अवश्य सर्व का प्रेरक उत्पत्ति आदिकों का कर्ता ईश्वर मान यह कहे "ताते" इति, ताते—निश्चय बिना प्रवृत्ति आदिकों के न बनने ते, सर्वशक्ति चेतन इक हइये—सम्पूर्ण ज्ञानादिक शक्तियों वाला चेतन ही एक सर्व का कर्ता है तिस बिना कार्य कोई नहीं ॥ ३७० ॥

ननु होवे तब विश्वास के अभाव ते कार्यों की असिद्धि, जब हमारे पाँच स्कन्धों के मिलाप कर उत्पन्न भई चेतनता वाले भोक्ता का सद्भाव न होवे, पुनः ताही को यावत् काल जैसे रचना अपेक्षित है तावत् काल तैसी का कर्तापना न होवे यह आशंका करे "ननु" इति ॥ ३७१ ॥

"आदि जे" इहां आदि शब्द से प्रवृत्ति आदिक जानने ॥ ३७२ ॥

होवो उक्त मनोराज्य का साधक जड़ों का मिलाप, जब जड़ पुष्पों को स्वतः माला रूपता देखी होवे यह कहे सिद्धान्ती "चेतन" इति, अन्ध = मिलने को असमर्थ ॥ ३७३ ॥

भोक्ता बिन कर्ता नहिं कोई। कर्तृत्व नियम कहाँते होई।
कर्तृत्व नियम जबै यों गयो। कार्य नियम कहाँते भयो ॥३७४॥

अब सिद्धान्ती विकल्पों कर क्षणिकवादी के मत का खण्डन करे है।

अरु पुनि भोक्ता काहि बतावो। संघी भिन्न संघातहि गावो।
अथवा ता पांचोंको होई। उततामें है एकहि कोई ॥३७५॥
प्रथम गयो सिद्धांत तुम्हार। भिन्न अवयवी कियो उचार।
द्वितीय एक मतो नहिं होई। देह नाश क्षणभीतर जोई ॥३७६॥
एक देह लै बाहर जावे। द्वितीय गृह भीतर ठहरावे।
तीसर सद्मशिखर में जावे। चौथे मार्ग में अटकावे ॥३७७॥
या विधि वाद करें ते जबहीं। होवे नाश देहको तबहीं।
तृतीय निर्धारण नहिं होई। भोक्ता याते बने न कोई ॥३७८॥

पूर्वपक्षी—

आलय ज्ञान धारा है जोई। स्वयं प्रकाशते आत्म सोई।
आत्मको जन भोक्ता कहे। संतान रूप सो सदही रहे ॥३७९॥

भोक्तृत्व के दूर भये नेम से तासे संग होने वाला कर्तापना भी नहीं बने, याते "यावत्" इत्यादि कथन भी असिद्ध हुआ सोई कहे "भोक्ता" इति, कर्तृत्व नियम–कर्ता का नियम दूर होने से ही कार्यों का नियम दूर हुआ सोई कहे "कर्तृत्व" इति ॥ ३७४ ॥

भोक्ता का भी सर्वथा असिद्धि कहने, हेतु पूछे "अरुपुनि" इति, संघी भिन्न संघातहि = स्कन्धों से भिन्न तिनके समुदाय को कहता है ॥ ३७५ ॥

प्रथम में सिद्धान्त हानि कहे "प्रथम" इति, सिद्धान्त हानि में हेतु कहे "भिन्न" इति, दूसरे में एकमत के अभाव ते देह का नाश कहे "द्वितीय" इति ॥ ३७६ ॥

देह नाश होना ही स्पष्ट करे "एक" इति, ॥ ३७७ ॥

तीसरे में विनिगमनाविरह रूप दोष कहे—"तृतीय" इति, निर्धारण नाम निर्णय अर्थात् पांचों में यह भोक्ता है ऐसा निश्चय, याते—निर्धारण न होने ते ॥ ३७८ ॥

अहंतावत् स्वप्रकाशता भी आत्मा का चिन्ह है औ पांच स्कन्धों में स्वप्रकाशता आलयज्ञानधारा में है, याते वह आत्मा है औ "अहं भोक्ता"

करणकलापहि प्रेरे सोई । यह विधि तिहँ निर्धारण होई ।
सिद्धान्ती—
यह निर्धारण तुमरो जोई । नहिं नीके मन आवत सोई ॥३८०॥

भुजंगप्रयातछन्द

क्षणं ज्ञान जोई वही सो बखानी ।
किधौं ते सुधारो नियारी प्रमानी ॥
दुहूँ पक्ष माहीं सुनो दोष जोई ।
मतं ते पलानो गहे नाहिं कोई ॥३८१॥

कथन से भोक्तापना अहन्ता के अधिकरण आत्मा में भान होवे है याते आत्मा भोक्ता है, इस रीति की विनिगमना से पांचों में एक का निर्णय बने हैं यह आशंका करे "आलय" इति, आलय ज्ञानधारा नाम "अहम्" "अहम्" ऐसे ज्ञानों का प्रवाह अर्थात् प्रवाहाकार आलयज्ञान, एक पक्ष सिद्ध करने वाली युक्ति को विनिगमना कहे है सो इहां स्वप्रकाशत्व, आत्मता का साधक युक्ति है औ आत्मत्व, भोक्तृत्व का साधक युक्ति है, याते विनिगमना विरह नहीं, विरह नाम अभाव का है, ननु जाके होने ते भोक्तृत्व बने वह क्षणिक होने ते आलय ज्ञान की धारा ही नहीं बने यह आशंका कर कहे "सन्तान" इति, सन्तान रूप सो सद ही रहे कहिये सन्तान सन्तानी रूपता कर वर्तमान हुई वह धारा सर्वदा काल बनी रहे है, याते पिता मृत भये पुत्र को ताके ऐश्वर्य की प्राप्तिवत्, पूर्व ज्ञान गत प्रेरकत्वादि धर्मों को उत्तर में आवने से ही वहीं नियत काल में घटादिकों के करण दण्डादिकों को प्रेरे है इस रीति से भोक्ता संघात का निर्णय बने है ॥ ३७९ ॥

सोई कहे "करण" इति, वक्ष्यमाण विकल्पों के दोषों से खण्डित जानकर निर्धारण को असम्यकता कहे "यह" इति, नहिं नीके मन आवत सोई कहिये चित्तमें सम्यक् नहीं आवे है ॥ ३८० ॥

सम्यक् न आवना स्फुट करने हेतु विकल्प करे "क्षणम्" इति, वही सो बखानी नाम क्षणभंगुर जो बुद्धि है तद्रूप ही अर्थात् तदभिन्न ही वह धारा कहते हो, किधौ नाम अथवा, वह धारा तुमने भिन्न प्रमाण करी है अर्थात् भिन्न कहते हो, उभय में दोष न सुनावने से दोनों कह सके हैं ? तहां कहे "दुहूँ" इति ॥ ३८१ ॥

चौपाई

प्रथमे धारा गई पलाय । जाते भिन्न न मानी काय ।
द्वितीय आत्म निश्चल जोई । नामांतर कर भाख्यो सोई ॥३८२॥
अरु पुनि ते मत आत्म जोई । क्षणभंगुर मान्यो तैं सोई ।
जाके अर्थ भोग पुनि होई । नहिं स्थिर भव भोक्ता कोई ॥३८३॥
महानुभाव होवौं मैं आप । ताहि निमित्त करे बहु ताप ।
साधन धार लहे निज मोक्ष । जाते हरो सकल जग दोष ॥३८४॥
यह भ्रम तोको भयो अपार । जाका नहिं पावै जड़ पार ।
क्षणभंगुर आत्मा बखानै । सो आगम क्षण होवै हानै ॥३८५॥

अभेद पक्ष में दोष कहे "प्रथमे" इति, प्रथमे नाम अभेद पक्ष में, धारा दूर हो गई, जाते कहिये जिस हेतु ते तुमने क्षणिक ज्ञानों से भिन्न नहीं मानी, काय—आलय ज्ञान धारा की देह, ऐसे भये छिन्न प्रवाह वाली नदी के जलवत् दूर दूर होने ते परस्पर वार्ता न जानते क्षणभङ्गुर ज्ञानों की एक सलाह न मिल्या भोगों की इच्छा कर संघात रचना करनी बनेगी यह भाव है । उक्त दोष ते दूसरा कहो तब हमारे मत का प्रवेश प्रसंग यह कहे "द्वितीय" इति, आत्म निश्चल जोई कहिये भिन्न पक्ष में जो निश्चल आत्मा सोई नामान्तर कहिये आलय ऐसे और नाम कर कह्या, याते हमारे मत का प्रवेश होने ते तेरे सिद्धान्त की हानि ॥३८२॥

किञ्च जिसके भोगार्थ संघात होवे सो स्थिर भोक्ता कोई नहीं याते भोग, भोग हेतु ही होवेगा, ऐसे भय भोक्ता ने ताकी इच्छा न करी चाहिये यह कहे "अरु पुनि" इति, सोई नाम वह आत्मा तैंने क्षणभङ्गुर मान्या है याते जिसके वास्ते भोग होवे ऐसा भोक्ता कोई न होने ते, भोग को भोगार्थता प्राप्त भये भोक्ता को ताकी इच्छा करनी नहीं बनेगी· याते फलाभाव ते शास्त्र भी व्यर्थ होवेगा ॥ ३८३ ॥

क्षणिक होने ते मुक्ति साथ तेरा सम्बन्ध न भये मुक्ति भी, मुक्ति हेतु ही होवेगी याते "मुक्त होवों" ऐसी इच्छा भी तेरे को भ्रम ही है सोई कहे "महानुभाव" इति, महानुभाव—बड़ा ॥ ३८४ ॥

यह भ्रम—महानुभाव होवों इत्यादि भ्रम, अपारता कहे "जाका" इति, भ्रमपना स्पष्ट करे "क्षण" इति ॥ ३८५ ॥

साधन फल लौं रहै न सोई। साधन करे न फल हित कोई।
शास्त्र तेरो भयो व्यर्थ। जाते होय न नर को अर्थ ॥३८६॥
जो तूं कह्यो प्रत्यभिज्ञा भ्रांति। सब क्षणभंगुर है एकांत।
सो असत्य दूषण अतिसार। जाको नहिं पइये उद्धार ॥३८७॥
जो प्रत्यभिक्षा भ्रमहि बखानैं। भोजनादि होवै तिहँ हानैं।
अपूर्व वस्तु हेरे जन कोई प्रवृत्ति निवृत्ति न तामें होई ॥३८८॥

जिन भोग मोक्ष के प्रतिपादन से शास्त्र को सार्थकता होवे तिनको कही रीति से दूर होने कर तिनके वास्ते शास्त्र का आरम्भ भी व्यर्थ सोई कहे "शास्त्र" इति, व्यर्थता में हेतु कहे "आते" अर्थ—भोग मोक्ष प्रयोजन ॥ ३८६ ॥

उत्तर भोजन में पूर्व की समानता का ज्ञाता जब एक न होवे तब उत्तर में पूर्व की समानता देखकर "यह मेरे अनुकूल है" ऐसा प्रवृत्ति का जनक ज्ञान ही न होवे, औ होवे है याते उत्तर भोजन में प्रवृत्ति के जनक अनुकूल ज्ञान की अन्यथानुपपत्ति से उत्तर भोजन में पूर्व की समानता का ज्ञाता एक सिद्ध होवे है याते "सो ऽहं" आत्म प्रत्यभिज्ञा को तथा ताके दृष्टान्त कर "सोई यह विद्युत् है" इत्यादिक अनात्म प्रत्यभिज्ञा को भ्रमत्वरूपता नहीं बने ऐसे भये पूर्व कहे अनुमान को बाधित होने से, ताके भरोसे सर्व को क्षणभंगुर करना असंगत, यह "सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा ज्ञान" इत्यादि पाठ से कहे अर्थ के खण्डन का आरम्भ करें "जो तूँ" इति, एकान्त—नेम कर, सो असत्य कहिये प्रत्यभिज्ञा को भ्रमरूपता और निखिल को क्षणिकरूपता मानना मिथ्या है, याते तामे दूषण अतिसार कहिये भोजन आदिकों का न बनना रूप अतिश्रेष्ट दोष है दूषण की श्रेष्ठता कहे "जाको" इति ॥ ३८७ ॥

न उद्धार होने वाला दूषण कहने हेतु वादी का कह्या याद करावे "जो" इति, जो कहिये जेकर "सोऽहम्" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा को भ्रमनाम स्थिरता धर्म के अभाव वाले क्षणिक आत्मा में स्थिरता का विपर्यय रूप कहो, तब अपने क्षणवर्ती भोजनादि पूर्व न देखने से नया होवेगा ऐसे भये पूर्व की समानता देखे बिना तामें अनुकूलता ज्ञान नहीं होवेगा औ अनुकूलता ज्ञान बिना प्रवृत्ति नहीं होवेगी याते भोजनादि नाम

यह अनुकूल यही प्रतिकूल। ऐसे ज्ञान दुहूंका मूल ।
जो भोग्यो आत्म सुख जने। तिहँ अनुकूलतया जन गने ॥३८९॥

जो भोग्यो दुख देवै भारे। सो प्रतिकूल सदा उर धारे।
अन उपभुग्त सजाती जोई। तामें नहिं होवै यह दोई ॥३९०॥

याही ते नहिं होय प्रवृत्ति । अरु ताते नहिं होय निवृत्ति।
पूर्व दिनमें भोग्यों जैसे। प्राप्त भयो आज मोहिं तैसे ॥३९१॥

प्राणरक्षार्थ अन्न का खाना औ जलपानादि दूर होवेंगे, दूर होना स्पष्ट करे "अपूर्व" इति, अपूर्व कहिये नई वस्तु को देखकर कोई पुरुष भी पूर्व दृष्ट की समानता को देखकर होने वाले अनुकूल ज्ञान बिना तामें प्रवृत्ति नाम लगे औ निवृत्ति नाम हटे नहीं ॥ ३८८ ॥

अपूर्व में प्रवृत्ति का अभाव बोधन हेतु प्रथम प्रवृत्ति का बीज कहे "यह" इति, दुहूँ का नाम प्रवृत्ति निवृत्ति का, प्रवृत्ति निवृत्ति के हेतु अनुकूल प्रतिकूल शब्दों के अर्थों कहे "जो" इति। आत्म-अपने आप को तिह अनुकूलतया कहिये तिस वस्तु को अनुकूलरूप करके पुरुष माने है ॥ ३८९ ॥

भारे-अति, इहां भाव यह है=जो वस्तु भोजन करी सुख देवे ताको अनुकूल जाने है, जो दुख देवे ताको प्रतिकूल जाने है या कहने से सुख-साधनताज्ञानप्रवृत्ति में कारण है दुख साधनताज्ञान निवृत्ति में कारण है यह सिद्ध हुआ, अपूर्व में प्रवृत्ति निवृत्ति के बीज का अभाव कहे "अन उपयुक्त" इति पूर्व भोजन करी वस्तु उपभुक्त कहिये है औ जाति से तुल्य वस्तु उपभुक्त सजातीय कहिये है, पूर्व न भोजन करी वस्तु के साथ समान जाति वाली नई वस्तु अन उपभुक्त सजातीय कहिये है ताही को अपूर्व कहे है, तामें नाम तिस अनुपभुक्त सजातीय में, समानता देखे बिना अनुकूल प्रतिकूल दोई ज्ञान नहीं होवे ॥ ३९० ॥

दोई न होने ते तिनों के कार्य प्रवृत्ति निवृत्ति नहीं होवे सोई कहे "याही ते" इति, याही ते—अनुकूल ज्ञानाभाव ते, ताते–प्रतिकूल ज्ञान के अभाव ते, अनुकूल ज्ञान के अभाव ते प्रवृत्ति का अभाव कह कर भाव ते होना कहे "पूर्व" इति ॥ ३९१ ॥

ऐसे धार लिये मन माहीं। तभी प्रवृत्ते ताके माहीं।
पूर्व उत्तर अनुगत रूप। मानो चेतन एक अनूप ॥३९२॥
जो जग दुहूँकालको जानै। तामें इष्ट अनिष्ट बखानैं।
जो नहिं ताका अंगीकार। भोजन नहिं मत बने तुम्हार ॥३९३॥
भोजन बिन मरणा अब आयो। ऐसे काहि सिद्धांतहि गायो।
गत दिन में भोग्यों मैं जैसे। ओदन दियो मात मोहिं तैसे॥३९४॥
यों बालक निज अनुगत मानि। भोजनकी नहिं कर्ता हानि।
तूं तो बालक ते अबुद्धा। जाके नहिं कछु हइये शुद्धा ॥३९५॥
यों प्रत्यभिक्षा भ्रमहिं निवार्यो। सम्यक् तिहँ प्रमाण उचार्यो।
निदर्शन मेघलता को जोई याही ते परिहरियो सोई ॥३९६॥

ताके माहीं—उपभुक्त सजातीय में, फलित कहे "पूर्व" इति ॥३९२॥

कैसा माने ? तहाँ कहे "जो" इति, जो अनुगत चेतन जगत् में, दुहूँ नाम पूर्वोत्तर दोई कालों को जाने है औ जान कर ता में नाम दोनों कालों विषे वस्तुओं में, इष्ट-अनिष्ट सुख-साधन दुख-साधनता कहे है, सिद्धान्त हानि भय कर न माने तब भोजन हानि होवेगी सोई कहे "जो" इति ताका-एक का ॥३९३॥

ऐसे काहि सिद्धान्तहि गायो कहिये ऐसे सिद्धान्त को किस वास्ते कथन किया अर्थात् ऐसा सिद्धान्त कहने वाला तूं बालक ते भी मूर्ख है सोई कहे "गत" इति, ओदन = भात ॥३९४॥

हानि—त्याग ॥३९५॥

"यों प्रत्यभिज्ञा भ्रमहिं से लेकर कहे पाठ से लब्ध हुई सुनावे "यों" इति, यों कहिये पूर्व कही रीति से, "सोऽहम्" इस आत्म प्रत्यभिज्ञा को भ्रमत्व दूर किया, औ तिह नाम प्रत्यभिज्ञा को भ्रमत्व दूर करने में, प्रमाण—यथार्थ पूर्व भुक्त सजातीय में पुरुष प्रवृत्ति की अन्यथानुपपत्ति से पूर्वोत्तर का दृष्टा एक अवश्य मानना यह अर्थापत्ति कह्या याते, "जो मैं गत साल में आम खाता हुआ सोई मैं तिस जैसे आम को अब खाता हूँ" ऐसी प्रत्यभिज्ञा से आत्मा को स्थिरता सिद्ध भये, "सर्वं क्षणिकं, सत्वात्, विद्युतवत्, इस पूर्वोक्त क्षणिकता साधक अनुमान को "पावक" शीतल

अन्तर्ध्यान भई तिहँ सोई। स्वरूप नाश नहिं ताको होई।
अरु पुनि ते मत विद्या जोई। प्रकट अविद्या जानो सोइ ॥३९७॥

होने को योग्य है, द्रव्य होने से, जलवत् या अनुमानवत् बाधितपना है, याते तासे सर्व को क्षणिकता सिद्ध नहीं होवे, इस रीति से क्षणिकता साधक अनुमान बाधित है पुनः महानस रूप दृष्टान्त के बल से पर्वत में अग्नि का अनुमिति ज्ञान देखने से अदृष्ट वस्तु की कल्पना सर्वत्र दृष्ट के अनुसार होवे है औ इहां अर्थापत्ति से आत्म-प्रत्यभिज्ञा में भ्रमत्व दूर भया तिस को दृष्टान्त कर "सेयं विद्युत्" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा यथार्थ होने को योग्य है, अबाधित अर्थ गोचर प्रत्यभिज्ञा होने ते, आत्म-प्रत्यभिज्ञावत्, या अनुमान से विद्युत् आदि अनात्म प्रत्यभिज्ञा में यथार्थता सिद्ध हुये, प्रथम जो जो सत् है सो सो क्षणिक है जहां ऐसी व्याप्ति ग्रहण करे ऐसा दृष्टान्त स्थल नहीं बने याते अदृष्ट कल्पनापत्ति के भय से भी अनुमान से क्षणिकता नहीं बने यह कहे "निदर्शन" इति, निदर्शन नाम क्षणिकता साध्य सिद्ध करने में दृष्टान्त, मेघलता नाम बिजली का है सो याही ते कहिये दृष्टान्त रूपता कर विद्युत् आदि प्रत्यभिज्ञा को यथार्थता साधक आत्म प्रत्यभिज्ञा को भ्रमत्व दूर करने से ही, परिहरियो नाम दूर किया ॥ ३९६ ॥

ननु सन्तान रूप विद्युत् को उत्पन्न कर पूर्वक्षणवर्ती विद्युत् का स्वरूप से नाश हो जावे है, याते ताकी प्रत्यभिज्ञा को यथार्थता न सिद्ध होने से दृष्टान्त की अप्रसिद्धि नहीं, यह आशंका कर परिहार करे "अन्तर्" इति, अन्तर्ध्यान कहिये वह बिजली अभ्रों के अन्तर्गत हो जावे है, स्वरूप ते तिसका नाश नहीं होवे अन्यथा किञ्चिद् विलम्ब से ताका चमत्कार न हुआ चाहिये, नहीं स्वरूप से नष्ट हुये घट से जलानयन देखिये। सन्तान का प्रकाश मानो तब वह पूर्व सन्तान की असिद्धि में कहे दोषों से खण्डित है याते और प्रकार से निर्वाह न देखकर अन्तर्गतता ही माननी ऐसे भये दृष्टान्त की असिद्धि तदवस्थ। किञ्च क्षणिक माने "तत् ज्ञान" के विषय को "इदं ज्ञान" नहीं विषय करे औ इदं ज्ञान के विषय को तद्ज्ञान नहीं विषय करे औ परस्पर विषय न किया दो पदार्थों की सादृश्य का ग्रहण नहीं होवे याते बुद्ध मत में उत्तर में पूर्व की सादृश्य को विषय करने ते भ्रम रूप प्रत्यभिज्ञा होवे है यह कथन भी दूर होवेगा, याते विद्युत् आदिक स्थिर मानने ऐसे भये दृष्टान्ताऽप्रसिद्धि

निश्चल आतम वेद बखानै । अरु पुनि लोग सकल यह जानै ।
सोई मैं यह भाषे सारे । क्षणभंगुर नहिं कोय उचारे ॥३९८॥

तामे क्षणभंगुर जो ज्ञान । ताको विद्या करे बखान ।
इनते परे न और अविद्या । अहै अविद्या तेरी विद्या ॥३९९॥

विप्रलंभक वाक जग जैसो । तिह प्रतिपादक शास्त्र तैसो ।
होय और अरु और दिखावै । विप्रलंभक ताते कहलावै ॥४००॥

विप्रलंभक बैनन मान । भयो प्रवृत्त होय तिह हान ।
दुष्ट पंथको कर उपदेश । डार विपिनमें दिये क्लेश ॥४०१॥

त्यों तेरोही दर्शन जोई । नरक पंथ उपदेशे सोई ।
किह विधि माने तिहप्रमान । जाते होय जननको हान ॥४०२॥

पुनः भी तैसे ही, किञ्च अवाधित विषय को विषय करने वाला ज्ञानपना विद्या में विद्यापना है औ यासे उलटा अविद्या है सो तेरी विद्या में सम्भवे है याते अविद्या है यह दोषान्तर कहे, "अरुपुनि" इति ॥ ३९७ ॥

वेद लोक विरोध से अविद्यापना स्पष्ट करे "निश्चल" इति, वेद विरोध सूचन कर लोक विरोध कहे "अरु पुनि" इति, जानने का प्रकार कहे "सोई" इति ॥ ३९८ ॥

तामें—निश्चल विषे, ताको—तिस ज्ञान को, इनते परे—निश्चल में क्षणिकता ज्ञान ते परे अर्थात् वेद लोक सिद्ध निश्चल में बाधित रूप क्षणिकता के ज्ञान ते परे और अविद्या कोई नहीं, किन्तु यही अविद्या है ॥ ३९९ ॥

अविद्या होने से ही तेरा शास्त्र ठगी है सोई कहे "विप्रलम्भक" इति, विप्रलम्भकवाक—ठग का वाक्य, तिह प्रतिपादक—निश्चल आत्मा में क्षणिकता का प्रतिपादक, तैसो—ठग वाक्यवत्, विप्रलम्भक की समानता दिखाने हेतु विप्रलम्भक शब्द की प्रवृत्ति में बीज कहे "होय और" इति ॥ ४००-४०१ ॥

त्यों—विप्रलम्भक वाक्यवत् ॥ ४०२ ॥

क्षणभंगुर जानेगो जोई । वैदिक कर्म करे नहिं कोई ।
निष्कर्म नहिं इस्थित होई । उलटे कर्म करेगो सोई ॥४०३॥
या विधि परे नरकमें जाय । देवेगो यम बहुत सजाय ।
सुख ते जन प्रतारण करे । तेभी जाय नरकमें परे ॥४०४॥
इत्यादिक दूषण आमोच । ग्रंथ बढ़न ते करौं संकोच ।
श्रेयको चाहे भवमें जोई । दुष्ट मतो यह त्यागे सोई ॥४०५॥
दोनोंको मत भयो निराश । अब तीसर बोल्यो धर आस ।

अव बुद्ध के शिष्य 'योगाचार' क्षणिक विज्ञानवादी के मत का तटस्थ अनुवाद करे हैं तटस्थ—

सर्व जगत क्षणभंगुर सत्य । उत्तर क्षणमें होय असत्य ॥४०६॥

नरक पन्थ की उपदेशता स्पष्ट करे "क्षण" इति, कोई नाम नित्य वा नैमित्तिक वा प्रायश्चित्तादि अर्थात् सुख की इच्छा कर नित्यादि कर्मों का आरम्भ तो सुख काल में भी अपनी स्थिरता के निश्चय से होवे है औ क्षणविपर्यय वाले को स्थिरता का निश्चय होवे नहीं, याते वेदविहित कर्म नहीं करेगा औ इन्धन साथ अग्नि का सम्बन्ध रह्या दाह के न हटनेवत् कर्म के कारण शरीर आदिकों साथ स्थिर आत्मा का सम्बन्ध रह्या अशुभ कर्म होवेगा ही सोई कहे "निष्कर्म" इति, निष्कर्म—कर्मरहित, उलटे—अवैदिक अर्थात् निषिद्ध ॥ ४०३ ॥

या विधि—इस प्रकार अर्थात् निषिद्ध करने से, जनप्रतारण—जनों का ठगना, ठगने ते ही नरक में पड़ेगा सोई कहे "ते भी" इति ॥ ४०४ ॥

आमोच - बुद्ध मत की युक्तियों से न दूर होने वाले कहे दोषों से, निरर्थक निर्युक्तिक निष्प्रमाणिक जान कर मुमुक्षु त्यागे यह पूर्व कहे दूषणों का फल कहे "श्रेय" इति, दुष्ट नाम निष्प्रमाणिकता आदिक दोषों युत ॥ ४०५ ॥

रहो उक्त दोषों ते पूर्वोक्त मत अग्राह्य, पुनः उक्त दोषों के अभाव ते हमारा ही ग्राह्य है या अभिप्राय से बोलते तीसरे का अनुवाद करे तटस्थ—"दोनों" इति, "निराश" के आगे "देखकर" शेष (कर लेना), "धर आश" के आगे "मत स्थापन" की शेष (कर लेना) । तीसरे की बोली सुनावे "सर्व" इति ॥ ४०६ ॥

प्रथम प्रथम ते उत्तर होवै । रहै सन्तान सदा नर जोवै ।
तैसे सर्व स्वलक्षण जानो । ग्राह्य ग्राहक भेद न मानो ॥४०७॥

सर्व को क्षणिक माने उत्तर क्षण में भान नहीं होवेगा ? यह आशंका कर, सन्तान सन्तानी प्रवाह द्वारा उपलम्भ बने है यह कहे "प्रथम" इति, पूर्व मत में भोक्ता भोग्य रूप निखिल जगत् को स्कन्ध औ परमाणु पुञ्जतावत् इहां निखिल को बुद्धि रूपता है सोई कहे "तैसे" इति तैसे—पूर्व मतवत्, स्व नाम बुद्धि के ही, लक्षण कहिये आकार विशेष सम्पूर्ण घटादिक पदार्थ जानो यह अक्षरार्थ है, भाव यह है=अन्यमतो में ज्ञान को निराकार माने है, औ विषयों को साकार माने है याते घट पटादि रूप विषयाकारता ज्ञान में विषयन के सम्बन्ध से होवे है, विषयों के सम्बन्ध विना नहीं होवे, हमारे मत में ज्ञान साकार है याते सम्पूर्ण मृत्तिका पाषाणादि विषय पूर्व मत में चार भूतों की परमाणु पुञ्जतावत्, हमारे मत में बुद्धि के ही आकार हैं इस रीति से बुद्धि भिन्न कोई वस्तु नहीं, किन्तु वेदान्त मत में सर्व को मायामयतावत्, सर्व बुद्धि स्वरूप है । ननु सर्व को बुद्धि स्वरूपता माने घटादिक विषय ग्राह्य है, ज्ञान विषयी ग्राहक है, ऐसे तिनका परस्पर प्रतीत होता भेद दूर होवेगा याते वह परस्पर भिन्न है, ऐसे भये सर्व को बुद्धि स्वरूपता नहीं बने, यह आशंका कर कहे "ग्राह्य" इति, विषयग्राह्य है, ज्ञान ग्राहक है, ऐसे ग्राह्यता ग्राहकता रूप से तिनका परस्पर प्रतीत होता भेदमत अंगोकार करो किन्तु इस रीति से एक रूप मानो, जैसे सांख्य मीमांसक अभाव को अधिकरण रूप कहे हैं औ स्वरूप में "घटाभाव वाली पृथिवी है" ऐसे घटाभाव पृथिवी का प्रत्यक्ष प्रतीत होता आधाराधेय भाव बने नहीं, काहे ते ? एक वस्तु में आधाराधेय भाव माने आत्माश्रय दोष होवे है याते ताके निर्वाह हेतु यथा सांख्य मीमांसक एक ही वस्तु में घटाभाव पने से आधेयता औ भूतलपने से आधारता ऐसे रूप भेद से आधारता आधेयता माने हैं तैसे, वा जैसे वेदान्ती एक ही अन्तःकरण को स्वप्न में विषयपने से ग्राह्यता औ इन्द्रियपने से ग्राहकता माने हैं, तथा हम भी एक ही ज्ञान में ज्ञानत्व रूप से ग्राहकता औ विषयत्व रूप से ग्राह्यता माने हैं याते ज्ञान विषय का भेद किञ्चिद् नहीं ॥ ४०७ ॥

बाहर अर्थ निवारण जोई । अहे सो अभिमत हमको सोई ।
विज्ञान विना नहिं औरो कोई । जाते तर्क हीन है सोई ॥४०८॥
सो परमाणु किधौं समूह । प्रथमे अक्ष अगोचर ऊह ।
द्वितीय ता निर्णय नहिं होई । दुर्निरूप्य नहीं माने कोई ॥४०९॥
बाहरवत् अंतर विज्ञान । भासे यों उर अन्तरमान ।
योगाचार तृतीय मत एह । सो सब जानौ दूषण गेह ॥४१०॥

अपने एक विरोधी के तिरस्कार कर्ता और विरोधी को मित्र मान कर कहे "बाहर" इति, अभिमत-वाञ्छित, बुद्धि का भी तहां ही तात्पर्य होने ते यह भाव है। तर्कहीन है कहिये याते युक्ति रहित है ॥ ४०८ ॥

युक्ति रहितता दिखावने हेतु विकल्प करे "सो" इति, सो परमाणु किंधौ समूह कहिये वह बाहर पदार्थ परमाणु स्वरूप है, वा तिनका समूह स्वरूप है ? परमाणु रूप पक्ष में प्रत्यक्ष का अभाव प्रसंग रूप दोष कहे "प्रथमे" इति प्रथमे अक्ष अगोचर कहिये परमाणु रूपता अंगीकार पक्ष में घटादिक पदार्थों को महत् परिमाण के अभाव ते नेत्रों के अविषय, ऊह नाम जान, अर्थात् तिनका प्रत्यक्ष नहीं होवेगा या भय से दूसरा माने तब "जड़ परमाणु क्रिया विहीन" इत्यादिक में कही रीति से क्रिया के न होने ते समूह भाव का ही निर्णय नहीं होवे सोई कहे "द्वितीय" इति, मत होवो निर्णय तौ भी अंगीकार करना ? तहां कहे "दुर्निरुप्य" इति, निरूपण करने को कठिन अर्थात् जो वात न कही जाय ताको कोई नहीं माने ॥ ४०९ ॥

ननु तर्क हीनता कर बुद्धि से भिन्न पदार्थ कोई नहीं तब "ज्ञान का विषय घट है" ऐसे वुद्धि से भिन्नता कर भान किसका होवे है ? तहां कहे "वाहर" इति वाहरवत् कहिये ज्ञान का विषय घट है ऐसे वुद्धि से भिन्नवत् होकर अन्तर विज्ञान नाम एक विज्ञान ही, भासे कहिये प्रतीत होवे है, ऐसे हृदय में जानो भाव यह है—जैसे ग्रीवास्थ मुख ही दर्पण रूप उपाधि की समीपता से दर्पणस्थ प्रतीत होवे है, मुख से जुदी दर्पण में ताकी छाया नहीं होवे, ऐसे बुद्धि ही संस्कार मात्र कारण से भूत-भविष्यत् विपयाकारतावत्, वर्तमान विषयाकार होवे है तासे भिन्न विषय

सिद्धान्ती—

सर्व जगत क्षणभंगुर होय। जो उत्तरक्षण रहै न कोय।
सोई घट यह कोय न जानै। अर्थ सकल को होवे हानै ॥४११॥

पूर्वपक्षी—

स्वसादृश्य उत्तर उपजाये। याते अर्थ न कोई जाये।

सिद्धान्ती—

क्षणभंगुर नहिं कारण होई। पूर्व सम्यक् भाख्यो सोई ॥४१२॥
ताते यथायोग अस्थाई। मानो बात न विगरे काई।
संतान बखानी तैने जोई। तर्कहीन पहिचानो सोई ॥४१३॥

कोई नहीं, याते बुद्धि भिन्न विषय अंगीकारवाद तुम भी भूत भविष्यत् विषयों ते बिना संस्कार मात्र कारण ते ज्ञान को भूत भविष्यत् विषयाकारता माननेवत् वर्तमान काल में भी ताही कारण ते ज्ञान घटाकार, पटाकार होवे है, कुछ अपने से भिन्न विषयों को लेकर नहीं होवे यह अवश्य मानो, तटस्थ समाप्ति करे "योगाचार" इति ॥ ४१० ॥

सर्व को क्षणिकता अंगीकार किया "सोई घट है" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा नहीं बनेगी औ उत्तर में पूर्व की समानता को लेकर भ्रमरूप माने तब "जो प्रत्यभिज्ञा भ्रमहिं बखाने" इत्यादि पाठ में कही रीति से भोजन प्रवृत्ति आदिक अर्थों की हानि होवेगी याते अवश्य सर्व को स्थिर मानो यह "सर्व जगत् क्षणभंगुर सत्य" इत्यादि पाठ कर कही बात का खण्डन करे "सर्व" इति, अर्थ सकल को—भोजन प्रवृत्ति आदिक सम्पूर्णों का ॥४११॥

नदी जलवत् पूर्व की समानता को देखकर उत्तर उपजे पदार्थों में प्रत्यभिज्ञा औ ताही को लेकर प्रवृत्ति बने है ? यह आशंका करें "स्व सादृश्य" इति, अर्थ—प्रवृत्यादिक। "संघात वाद में दूषण राश" इत्यादि ग्रन्थ से कहे दोषों कर क्षणिक को कारणता नहीं सिद्ध होवे यह कहे सिद्धान्ती "क्षण" इति ॥ ४१२ ॥

ताते—क्षणिक माने प्रत्यभिज्ञा आदिकों की असिद्धि ते, पूर्व जो "रहे सन्तान सदा नर जोवे" यह कह्या, ताके खण्डन का आरम्भ करे "सन्तान" इति ॥ ४१३ ॥

अब सिद्धान्ती क्षणिक विज्ञानवादो के मत का विकल्पों कर खण्डन करे हैं ।

चौपाई

संतान संतानी भिन्न वखानो। अथवा ताहि अभिन्नहि मानो।
प्रथमें सो क्षणभंगुर आहि। अथवा नित्य वखानो ताहि ॥४१४॥
प्रथम प्रथम में रहनो जोई। सो असत्य क्षणभंगुर सोई।
द्वितीय सव क्षणभंगुर गायो। सो असत्य तिहँ नित्य बतायो ॥४१५॥
प्रथम द्वितीय में रहै न सोई। तिह अभिन्न क्षणभंगुर होई।
यहि विधि तिह रहनो है जोई। नीके समझ असंगत सोई ॥४१६॥

दोहा

सर्व स्वलक्षण मान उर, वाहर अर्थ अभाव।
भाख्यो तोहि वनायके, जानो वही अभाव ॥४१७॥

तर्क हीनता दिखावन हेतु विकल्प करे "सन्तान" इति, प्रथम में पुनः विकल्प करे "प्रथमें" इति ॥ ४१४ ॥

भिन्न होकर क्षणभङ्गुर है या पक्ष में "रहे सन्तान सदा नर जोवे" इहां जोवन का हेतु रूप कर कहे रहने की असिद्धि कहे "प्रथम" इति, सो असत्य—रहना मिथ्या है, हेतु कहे "क्षण" इति, क्षणभंगुर सोई कहिये सन्तानीवत् सन्तान को भी क्षणभंगुर होने ते देखने पर्यन्त रहना नहीं वने, मत होवो प्रथम में रहना, हम दूसरा माने है ? तहां सिद्धान्त हानि कहे "द्वितीय" इति, द्वितीय—नित्य पक्ष में ॥ ४१५ ॥

अभिन्न पक्ष में तो रहने की सम्भावना ही नहीं वने यह कहे "प्रथम" इति, प्रथम द्वितीय में नाम अभिन्न पक्ष में, न रहने में हेतु कहे "तिह" इति, तिह अभिन्न क्षणभंगुर होई कहिये क्षणभंगुर रूप सन्तानी के साथ अभिन्न होने ते सन्तान भी क्षणभंगुर होवेगी याते ताका रहना नहीं वने ॥ ४१६ ॥

"प्रमाणो से अर्थ वाहर देखता हुआ" "तैसे सर्वस्व लक्षण जानो" पाठ कर कहे अर्थ के खण्डन का आरम्भ करे "सर्व" इति, जानो वही अभाव नाम वाहर पदार्थों के अभाव कहने का ही अभाव अर्थात् अपना कथन ही मिथ्या जान और वाहर पदार्थ तो सब ज्यों के त्यों है ॥ ४१७॥

चौपाई

बाह्य अर्थ अभावहि मानै । कौन युक्ति तिहँ माहिं बखानै ।
उपलंभक प्रमाण न हइये । याते बाहर अर्थ न पइये ॥४१८॥
अथवा तिह उपलंभ न होई । याते ताहि न माने कोई ।
उपलंभक उपलंभहि जोऊ । अहै प्रगट भव भीतर दोऊ ॥४१९॥
नयनादिक उपलंभक हइये अर्थ उपलंभ सकल जन पइये ।
जे तव अर्थ न अंगीकार । ज्ञान न होवे अर्थाकार ॥४२०॥

कही बात स्पष्ट करने हेतु पूछे "वाह्य" इति, कौन युक्ति तिहँ माहिं बखानै कहिये वाह्य पदार्थों का अभाव कहने में युक्ति कौन कहता है अर्थात् वाह्य पदार्थों के ज्ञान का जनक जो प्रमाण ताका अभाव रूप युक्ति कहता है ? वा प्रमाण जन्य ज्ञान का अभाव रूप युक्ति कहता है, सोई प्रकट करे "उपलम्भक" इति, उपलम्भक प्रमाण न हइये कहिये उपलम्भ के साधन नेत्र आदिक प्रमाण नहीं, जिस ते वाह्य पदार्थों की प्राप्ति नहीं होवे ॥ ४१८ ॥

अथवा प्रमाणों के रहे भी, तिनका उपलम्भ नाम ज्ञान नहीं होवे या हेतु ते तिनको कोई नहीं माने सो यह ज्ञान के जनक नेत्र आदिक प्रमाणों का अभाव रूप वा तिनसे विषयों का ज्ञान न होना रूप दोऊ युक्तियों नहीं बने यह कहे "उपलम्भ" इति ॥ ४१९ ॥

दोनों का भाव दिखावे "नयनादिक" इति, नेत्रादिक इन्द्रिय उपलम्भ के साधन और अर्थ उपलम्भ हइये—नेत्रादिकों से घटादिकों का ज्ञान सर्व जनो विषे प्राप्त होवे है याते बाहर अर्थों के अभाव कहने में यह दो युक्ति न होने से वाह्य पदार्थ अवश्य मानने। ननु "घटाकार ज्ञान है" "पटाकार ज्ञान है" इन अनुभवों के अनुसार ज्ञान में विषयाकारता तुम वाह्य अर्थ वादियों को भी अवश्य कहनी पड़े है औ वाह्य विषे "सो परमाणु किंधौ समूह,, इस कही रीति से दुर्निरूप्य है याते वासना अधीन विषयाकार हुये ज्ञान से ही सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध भये. ज्ञान भिन्न अर्थ कोई नहीं मानना ? यह आशंका कर कहे "जे" इति, जेकर तुमको ज्ञान भिन्न अर्थ नाम घटादिक विषयों का अंगीकार नहीं, तव मूषा विना रजतादिकों को मूषाकारता की असिद्धिवत् ज्ञान को घटपटाकारता

ज्ञान विचित्र कारण जोई। ज्ञान भिन्न अर्थ है सोई।
ज्ञान बिना नहिं अर्थहि कोई। जानो यहै असंगत सोई ॥४२१॥
यह घट ज्ञान यही पट ज्ञान। भिन्न विशेषण दोनों मान।
ज्ञान विशेष्य एक तिह हइये। यहि विधि भेद बिना नहिं पइये॥४२२
घट प्रत्यक्ष स्मरण घट केरो। विशेषण घट एको यह हेरो
विशेष ज्ञानको है अति भेद। यह विधि कहै न बने अभेद ॥४२३॥

रूप विषयाकारता की भी असिद्धि होवेगी, वासना से सिद्धि कहो ताका आगे खण्डन होवेगा ॥ ४२० ॥

तातें अवश्य ज्ञानभिन्न विषय मानों सोई कहे "ज्ञान" इति, ज्ञान भिन्न अर्थ सिद्ध कर योगाचार को हानि कहे "ज्ञान" इति ॥ ४२१ ॥

अथवा ज्ञान भिन्न अर्थ न माने ज्ञान को अर्थाकारता की असिद्धिवत्, "घट ज्ञान" "पट ज्ञान" इहां विशेषण घट पट का भेद और विशेष्य ज्ञान की एकता प्रसिद्ध भासे है तहां विशेषणभूत अर्थ न माने नाना विशेषणों वाला ज्ञान भी असिद्ध होवेगा यह कहे "यह" इति, "यह घट ज्ञान है" "यह पट ज्ञान है" इहां अन्य पदार्थों के ज्ञान से अपने विशेष्य ज्ञान को जुदा करने वाले घट पट रूप विशेषण भिन्न नाम जुदे जुदे जानो औ तिह कहिये तिन घट पट रूप विशेषणों का ज्ञानत्वेन ज्ञान विशेष्य एक है ऐसे जानो सो यह विशेषणों का भेद और विशेष्य की एकता तिनके भेद बिना नहीं बने यह कहे "यहि" इति, यहि विधि कहिये विशेषणों का भेद और विशेष्य की एकता, ज्ञान विषयों का भेद अंगीकार करे विना नहीं प्राप्त होवे किन्तु भेद माने प्राप्त होवे है ऐसे न माने विषय रूप विशेषण दूर करे, ज्ञान भी नाना विशेषणों वाला दूर होवेगा ॥ ४२२ ॥

ज्ञान भिन्न अर्थ न माने विशेषणों का भेद विशेष्य की एकता की असिद्धिवत्, विशेष्य का भेद विशेषण की एकता भी दूर होवेगी यह कहे "घट" इति, घट का जो प्रत्यक्ष ज्ञान औ घट का जो स्मरण ज्ञान, इन दोनों का विशेषण कहिये पट के प्रत्यक्ष, स्मरण से, अपने विशेष्यों को जुदा करने वाला "घट" यह एक ही देखो औ विशेष ज्ञान को है अति भेद कहिये विशेष्य रूप ज्ञानों का प्रत्यक्षपने स्मरणपने रूप धर्मों कर अतिशय भेद है तिनका अभेद माने यह विधि वने न कहिये विशेषण की

ज्ञेय भिन्न भिन्न तिह ज्ञान। ऐसे ही उर अन्तरमान।

अव पूर्वपक्षी व्याप्ति के बल से ज्ञान ज्ञेय का अभेद प्रकारान्तर से प्रतिपादन करे हैं।

पूर्वपक्षी—

ननु सुनिये इक और प्रकार। जोसों नीको मतहि हमार ॥४२४॥
जो जा संग नियम सो लहिये। ताते भिन्न न सो जग कहिये।
जैसे चंद्र द्युति जगमाहीं। चंद्र भिन्न नहिं सो कछु आही ॥४२५॥
ज्ञान संगही अर्थ लहीजै। ताते भिन्न न अर्थ कहीजै।

अब सिद्धान्ती उक्त आक्षेप का उत्तर कर रहे हैं।

सिद्धान्ती—

तोहि कह्यो यह नियम विचार। सो असत्य जाते व्यभिचार ॥४२६॥

एकता औ विशेष्यों का भेद नहीं बनेगा (मूल में "यह विधि बने न कहै" यह पाठ भी है) ॥ ४२३ ॥

याते ज्ञान ज्ञेय का परस्पर भेद अवश्य मानना यह कहे "ज्ञेय" इति। ननु मत होवे दोषों के समान होने ते, पूर्व कही रीति से वाह्य अर्थों के अभाव की सिद्धि पुनः "जो वस्तु जिस वस्तु साथ नेम कर भान होवे है वह वस्तु तासे अभिन्न होवे है" जैसे चन्द्र साथ नेम कर भान होता द्विधाभाव चन्द्रमा साथ अभिन्न है यह नेम है याते घटादि वाह्य विषय ज्ञानाभिन्न होने को योग्य है, नेम कर ज्ञान के साथ भान होने ते, चन्द्रगत द्विधा भानवत् या अनुमान से ही वाह्य अर्थों के अभाव की सिद्धि होवे है औ विशेष्य विशेषण रूप कर भेद बुद्धि तो एक ही चन्द्रमा में द्विधाभावभ्रमवत् भ्रमरूप है या भाव से पूर्वपक्षी आशंका करे "ननु" इति, प्रकार—वाह्य अर्थों के अभाव सिद्ध करने की रीति, प्रकार का माहात्म्य कहे "जासो" इति ॥ ४२४ ॥

प्रकार सुनावे "जो" इति। ("जैसे चन्द्र द्वित्व जग माही" ऐसा पाठ भी है) चन्द्र द्वित्व नाम नेत्र के दोष से चन्द्रगत दो रूपता, चन्द्र भिन्न नहिं सो कछु आही कहिये वह चन्द्रमा से भिन्न किञ्चित् नहीं, किन्तु चन्द्रमा रूप है ॥ ४२५ ॥

दृष्टान्त में ग्रहण करी व्याप्ति वाले हेतु के जोर से पक्ष में साध्य सिद्धि करे "ज्ञान" इति, ताते नाम ज्ञान ते। जाके प्रताप से अनुमान से घटादिकों को ज्ञान रूपता सिद्ध कर बुद्धि भिन्न पदार्थों की असत्ता

आलोक रूप दोनों कर नियम । सहि उपलंभै नाहिं अनियम ।
दोनों भिन्न सकल जन माहीं । कहे अभिन्न बने यह नाहीं ॥४२७॥
विचित्र ज्ञान सुजाते होई । ऐसो अर्थ भिन्न है कोई ।

अव क्षणिक विज्ञानवादी प्रकारान्तर से विज्ञानार्थ का अभेद कहता है ।

पूर्वपक्षी—

ननु इक और प्रकारहि हइये । ज्ञान भिन्न अर्थ नहिं पइये ॥४२८॥

सूचन करनी है प्रथम वह नेम ही झूठा है, याते अनुमान से घटादिकों को ज्ञान रूपता न सिद्ध होने ते ज्ञान विषयों की भेद बुद्धि ही सच्ची है यह परिहार करे सिद्धान्ती "तोहि" इति असत्पने में हेतु कहे "जाते" इति, जाते नाम जिस हेतुते नेम में व्यभिचार है ताते नेम असत्य कहिये झूठा है ॥ ४२६ ॥

साध्य के अभाववाले स्थान में हेतु का रहना नेम में व्यभिचार होवे है, ताके दिखावन हेतु स्थल कहे "आलोक" इति, आलोक सूर्यादिकों का प्रकाश, और रूप नील पीतादिक, कर नियम नाम नेम कर, सहि उपलम्भै कहिये प्रकाश विना अन्धकार में रूप का ज्ञान न होने से नेम कर "जहां रूप ज्ञान होवे तहां प्रकाश" ऐसा एकत्र देखिये है या वार्ता का अनेम नहीं, परन्तु हैं दोनों सम्पूर्ण जगत् में, भिन नाम जुदे, अभिन्न कहे तौ वने नहीं इस रीति से नेम कर आलोक साथ भान होना रूप हेतु रह्या भी रूप में आलोक का अभेद न रहने से, अभेदरूप साध्य के अभाव वाले आलोक रूपस्थल में, साथ भान होना रूप हेतु का रहना नेम में व्यभिचार है औ व्यभिचारी नेम वाले हेतु से एक जगह साध्य सिद्धि का विश्वास दूर हुआ और स्थान में भी "जहां यह हेतु रहेगा तहां अवश्य साध्य होवेगा" यह भरोसा दूर होने से साथ भान होने रूप हेतु से ज्ञान विषयों का अभेद सिद्ध होवे नहीं, याते यह मान ॥ ४२७ ॥

सोई कहे "विचित्र" इति । ननु मत होवे व्यभिचारी नेम से घटादिकों को ज्ञान रूपता की सिद्धि, तथापि कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक वाली वस्तु को ता कार्य की कारणता का नेम है औ ज्ञान विचित्रता रूप कार्य के साथ वासना की विचित्रता रूप कारण का स्वप्न मों वासना के विचित्र होने ते ज्ञान का विचित्र होना, न होने से

भवमें जे अन्वय व्यतिरेक। तेई करे सो परम विवेक।
वासन जाते होय विचित्र। ताही ते जग ज्ञान विचित्र ॥४२९॥
जौ नहिं वासन तैसे होई। ज्ञान विचित्र कहे न कोई।
स्वप्ने विखे अर्थ के भेद। वासन कर पइये सब भेद ॥४३०॥
ताते अर्थ न कारण हइये। वासन हेतु ताहिको पइये।

अब सिद्धान्ती क्षणिकवादी की उक्त युक्त का खण्डन करता है।

सिद्धान्ती—
यह प्रकार तब मिथ्या हइये। स्वप्न समान जाग्रत नहिं पइये। ४३१॥

न होना, ऐसा अन्वय व्यतिरेक सर्व के अनुभव सिद्ध है, याते वासान से ही ज्ञान विचित्रता बने है, ज्ञानभिन्न अर्थ कोई नहीं, किन्तु जो जो वासनामूलक ज्ञान है सो सो सर्व असत्य विषय वाला है इस नेम मूलक "विवादास्पदीभूत घटादिक ज्ञान असत् विषय वाले होने को योग्य है, वासना मूलक होने ते, "स्वप्नवत्" इस अनुमान से बुद्धि भिन्न विषय कोई नहीं सिद्ध होवे या भाव से आशंका करे "ननु" इति ॥ ४२८ ॥

प्रकार बतावे "भव में" इति, तिसके होने से तिसका होना अन्वय कहिये है औ तिसके न होने से तिसका न होना व्यतिरेक कहिये है। परम विवेक कहिये बुद्धि भिन्न पदार्थों के असत्पने का सिद्धकर्ता बड़ा विचार। परम विवेक का हेतु रूप अन्वय दिखावे "वासन" इति, जाते नाम जिस हेतु ते, ताही ते नाम तिस हेतु ते, अर्थात् जिससे वासना विचित्र है तिसी ते ज्ञान विचित्र है ॥ ४२९ ॥

अन्वय दिखाकर व्यतिरेक दिखावे "जौ नहिं" इति, तैसे—विचित्र, अन्वय व्यतिरेक कर सिद्ध भई कारणता वाली वासना को दृष्टान्त में अर्थ हेतुता दिखावे "स्वप्ने" इति, स्वप्न अवस्था मो (स्वप्ने विना अर्थ के भेद" इति, पाठान्तर) बिना ही अर्थ के भेद कहिये घटादिक पदार्थों को विचित्रता से वासना कर कहिये घटादिक वस्तुओं के संस्कारों कर ही, पइये सब भेद नाम सम्पूर्ण घटादिकों के आकार पाइये है अर्थात् घटादिकों के आकारों से ही ज्ञान घटाकार पटाकार होवे है ॥ ४३० ॥

ताते नाम स्वप्न मो वासना मात्र ते ही ज्ञान विचित्रता बन जाने ते, अर्थ न कारण हइये कहिये ज्ञान विचित्रता कारण कोई घटादिक पदार्थ नहीं, किन्तु ताहि को कहिये ज्ञान विचित्रता का कारण वासना हो है,

स्वप्न अर्थवत बाध सुनाहिं। जाग्रत सम नहिं पइये ताहि।
बाध विना नहिं अर्थ अभाव। ताते आहि सो ताको भाव ॥४३२॥
वस्तुविचार करे जे कोई। स्वप्ना अर्थ विना नहिं होई।
अनिर्वचनी प्रातिभासिक सिद्ध। स्वप्ने माहिं सुअर्थ प्रसिद्ध॥४३३॥

ज्ञान विचित्रता नाम ज्ञान को घटादिरूपता का है औ वासना नाम घटादिकों के संस्कारों का है। मुक्ति में ज्ञान को हेतुतावत् घटादिक ज्ञानों के असत् विषय वालापने में वासनामूलकता को हेतुता नहीं बने, किन्तु बाध को बने है, ऐसे न माने बाध को वासनारूपता के अभाव ते जाग्रत् ज्ञानजन्य बाध से स्वप्न पदार्थों को असत्पना नहीं सिद्ध होवेगा औ होवे है याते वासनामूलकता को छोड़ कर बाध को ही मानना औ जाग्रत् पदार्थों का बाध होवे नहीं, याते तिनकी असत्रूपता नहीं सिद्ध होवे या अभिप्राय से "ननु इक और प्रकारहि हइये" कहते को सिद्धान्ती कहे "यह" इति, मिथ्यापने में हेतु कहे "स्वप्न" इति, स्वप्न पदार्थों समान जाग्रत् नहीं पाये, ताते तेरा कह्या प्रकार झूठा है ॥ ४३१ ॥

जाग्रत् की स्वप्न समानता न पावन में हेतु कहे "स्वप्न" इति, स्वप्न के पदार्थोंवत् बाध कहिये कार्यों की निवृत्ति नहीं होवे ताते, जाग्रत् सम नहि पइये ताहि नाम जाग्रत् के घटादिक स्वप्न घटादिकोंवत् असत् रूप नहीं, किन्तु सत् है. मत होवे स्वप्न पदार्थोंवत बाध, वासना-मूलकता से ही असत् है? तहां कहे "बाध" इति, बाध विना नहीं अर्थ अभाव कहिये पदार्थों को असत्पना नहीं सिद्ध होवे है ताते तिनको सत् रूपता ॥ ४३२ ॥

पूर्व "जाग्रत ज्ञानों के विषय भी वासनामूलक होने ते स्वप्नवत् असत्य है" ऐसे कहते पूर्वपक्षी के दृष्टान्त का अंगीकार करके अबाधित-पने रूप विशेष्यता से जाग्रत् घटादिक असत् रूप नहीं, यह परिहार कर बुद्धि भिन्न वियषों की सिद्धि करी, अब तो यामें व्याप्ति ग्रहण कर पक्ष में साध्य सिद्ध करें वह दृष्टान्त भी बने नहीं यह कहे "वस्तु" इति, स्वप्ना अर्थ विना नहि होई नाम स्वप्नज्ञान पदार्थों बिना वासनामात्र से नहीं बने, स्वप्न में अर्थ कैसे है? जिनसे बिना दृष्टान्तरूप स्वप्न ज्ञान नहीं बने? तहां कहे "अनिर्वचनी" इति, अनिर्वचनीनाम सत्य असत्य रूप कर कहने को अशक्य, प्रातिभासिक सिद्ध नाम प्रातिभासिक रूप

अरु पुनि ज्ञान विचित्र सु जोई । तेरे मत महिं कार्य सोई ।
ताको हेतु वासना गावै । वासन हेतु सु कौन बतावै ॥४३४॥
ज्ञान भिन्न ज्ञेय है जोई । ते मत माहिं सत्य नहिं सोई ।
ताते ज्ञेय न कारण होई । वासन हेतु बने नहिं कोई ॥४३५॥
अरु पुनि ज्ञान वासना जेई । परस्परहेतु बखाने तेई ।
तौ इक दूषण औरे आवै । कार्य को वह मूल उठावै ॥४३६॥
ज्ञान विचित्रते वासन चित्रा । ताते होय सु ज्ञान विचित्रा ।
अन्योअन्यआश्रयता होई । कार्य दियो सकल वह खोई ॥४३७॥
वासन जन्म जाहि ते होई । ऐसो हेतु और नहिं कोई ।
बाह्य अर्थ कर अंगीकार । जाते वासन बने तुम्हार ॥४३८॥

कर विद्यमान, स्वप्ने माहि—स्वप्न अवस्था मो गजादिक प्रसिद्ध हैं याते स्वप्न ज्ञान को दृष्टान्तता दूर होने से वासनामूलकता हेतु से घटादिकों को असद् रूपता नहीं सिद्ध होवे ॥ ४३३ ॥

किञ्च होवे "दुर्जन तोष न्याय" से वासना को ही ज्ञान विचित्रता की हेतुता, तथापि ज्ञान विचित्रता का हेतुरूप वासना कौन कारण से है यह ज्ञान विचित्रता की हेतुरूप कर कही वासना के खण्डन का आरम्भ करे "अरु पुनि" इति, कार्य सोई—तेरे सिद्धान्त में वह कार्य है, कौन बतावै नाम कौन कहता है अर्थात् ज्ञान भिन्न ज्ञेय है वा कोई और कहे है ॥ ४३४ ॥

प्रथम की असिद्धि कहे "ज्ञान" इति, दूसरे की असिद्धि सूचन करे "वासन" इति ॥ ४३५ ॥

ननु मत बने ज्ञान भिन्न ज्ञेय वा और कारण, हम परस्पर हेतु कहे है तहां अन्योन्याश्रय से परिहार हेतु कहे "अरु पुनि" इति, दूषण का प्रताप कहे "कार्य" इति ॥ ४३६ ॥

अन्योन्याश्रय दोष का हेतुरूप परस्पर अपेक्षा कहे "ज्ञान" इति, होवे अन्योन्याश्रय दोष, क्या ? तहां कहे "कार्य" इति ॥ ४३७ ॥

कहे दोष ते और हेतु बने नहीं, याते अवश्य बाह्य अर्थ मान जिसते वासना बने ! सोई कहे "वासन" इति ॥ ४३८ ॥

एक स्थाई मानों कोई । जाहि विषे पुन वासन होई ।
जो क्षणभंगुर ताहि बखानो । वासन मूल करो पुन हानो ॥४३९॥
वासन ज्ञान दोई अभेद । अथवा ताहि अहे कछु भेद ।
अभेद जन्य जनक नहिं होई । विज्ञान वाद भेद हत होई ॥४४०॥
उभय पाश रज्जूगल डार । वासन ज्ञान भिन्न उरधार ।
बाहरवत अंतर विज्ञान । भासे यों तैं करयो बखान ॥४४१॥
जो वाहर नहिं अर्थहि कोई । उपमा ताहि कौनकी होई ।
बाहर अर्थ घटादिक जेई । उपमा हेतु होहिंगे तेई ॥४४२॥
उपमा हेतु अर्थ जग जोई । नाहिं अभाव ताहि को होई ।
जो नहिं बाहर अर्थहि माने । क्षणभंगुर विज्ञान बखाने ॥४४३॥

वासना सिद्धि हेतु वाह्य अर्थों के अंगीकारवत् वासना का आश्रय भी एक स्थिर अवश्य मान यह कहे "एक" इति, स्थायी नाम स्थिर, सिद्धान्त हानि के भय से ता आधार को क्षणिक मानो तब पूर्व विज्ञान के साथ सम्बन्धहीन उत्तर विज्ञान में संस्कारों के न पहुँचने से तिनकी मूल ते ही हानि करेगा सोई कहे "जो" इति, ताहि नाम वासना के आश्रय को, जेकर क्षणभंगुर कहो तब वासन मूल करो पुन हानो कहिये वासना को मूलते ही दूर करोगे ॥ ४३९ ॥

और रीति से वासना को विचित्रता की असिद्धि कथन हेतु विकल्प करे "वासन" इति, प्रथम में कार्यकारण भाव की असिद्धि कहे "अभेद" इति, जन्यजनक की असिद्धि कथन इहां अत्यन्त अभेद के अभिप्राय से जानना, अन्यथा भेद सहित अभेद में, कथञ्चित् मीमांसक ने मानने से दोष की असिद्धि होवेगी, दूसरे में "विज्ञान बिना नहिं औरे कोई" या सिद्धान्त की हानि कहे "विज्ञान" इति ॥ ४४० ॥

डार—डलवा कर, और रीति से वाह्य पदार्थ मनावन हेतु पूर्व का अनुवाद करे "वाहर" इति ॥ ४४१ ॥

उपमा ताहि नाम बाहरवत् भासे है ऐसे समानता, तिस बुद्धि को किसकी होवे है ॥ ४४२ ॥

सिद्धान्त हानि भय कर न मानते प्रति व्यवहारों की असिद्धि रूप बाधित हेतु कहे "जो" इति, जेकर बाहर घटादिकों का अंगीकार न

तौ नहिं होय सकल व्यवहार। जाको जगमें बहु विस्तार।
यह है शिष्य यहै गुरुभारा। यह सेवक यह सेव्य हमारा ॥४४४॥
यही बोध्य यह बोधक हइये। यह वादी प्रतिवादी पइये।
यही बंध यह जानो मोक्ष। पाय मोक्ष जन त्यागे दोष ॥४४५॥
शास्त्र याके हेतु बनाऊँ। याहीको मैं पाठ पढ़ाऊँ।
यह मेरो है बहु हितकारी। कभी न मे आज्ञा इन टारी ॥४४६॥
इत्यादिक व्यवहार अपार। ताको तै सब मूल उखार।
साधन करे मोक्ष हित कोई। द्वितीय क्षण आत्म नहिं होई ॥४४७॥
कहो मोक्ष अब कौने होई। ते सिद्धांत दियो सब खोई।
बोलन के हित करे उपाय। क्षणभंगुर आत्म मरि जाय ॥४४८॥
सिद्धांत याहि ते मूक प्रमान। याते नहिं कछु होवे हानि।
तटस्थ—
क्षण विज्ञान वाद हत मान। शून्य यों निजमत करे वखान ॥४४९॥

करे। पुनः घटाकार विज्ञान को भी क्षणभंगुर कहिये क्षण क्षण में नाश होने वाली मानो तब सम्पूर्ण व्यवहार दूर होवेंगे ॥ ४४३ ॥

सोई कहे "तौ" इति, व्यवहार कहे "यह" इति ॥ ४४४ ॥

प्रतिवादी—सिद्धान्ती ॥ ४४५–४४६–४४७ ॥

कोने होई—कौन होवे अर्थात् कोई न होवेगा, न होने में हेतु कहे "सिद्धान्त" इति, ते सिद्धान्त दियो सब खोई कहिये विज्ञान को क्षण-भंगुरता रूप तेरे सिद्धान्त ने वाह्य पदार्थों के न मानने से भोगवत् मोक्ष भी दूर करी ॥ ४४८ ॥

निष्फल निष्प्रामाणिक सिद्धान्त की अपेक्षा कर काहू का बिगाड़ न करने से मूकता को श्रेष्ठता कहे "सिद्धान्त" इति, पूर्व कहे सिद्धान्त से काहूँ का नुकसान न करने ते मूक प्रमाण कहिये मूकता श्रेष्ठ है, श्रेष्ठता में काहू रीति की हानि न करनी हेतु बतावे "याते" इति। ननु कहे दोषों ते मत होवे क्षणभंगुर रूप सद् विज्ञान को हेतुता, पुनः बीज के वैसे रहे अङ्कुर उपजे है वा नाश भये उपजे है ? इन विकल्पों में उत्पत्ति के असम्भव औ अनुभव बिरोध रूप दोषों ते प्रथम छोड़ दूसरा

अव क्षणिकवादी को निराश देखकर शून्यवादी स्वमत का स्थापन करे है ।

पूर्वपक्षी—

चौपाई

निरुपाख्य शून्य है जोई निखिल पदार्थ कारण जोई ।

अब सिद्धान्ती ताको मिथ्या कहे हैं ।

सिद्धान्ती—

ननु भवकारण शून्य न होई । तव सातीर्थ कह्यो न कोई ।।४५०।।
बुद्ध न ताको कियो उपदेश । तातो झूठा तवव्यपदेश ।

अव शून्यवादी स्वमत के सिद्धचर्थ व्यवस्था करता है ।

पूर्वपक्षी—

ऐसे मत तुम कहो वनाय । देवों सकल व्यवस्था लाय ।।४५१।।

माने अर्थ ते वीज नाश रूप शून्य को ही अङ्कुर की उपादानतावत् असद् विज्ञान को ही सम्पूर्ण कार्यों की उपादानता है या अभिप्रायवाले शून्यवादी के मत का उत्थान करे तटस्थ "क्षण" इति, शून्य नाम शून्यवादी ।। ४४९ ।।

शून्यवादी का व्याख्यान सुनावे "निरुपाख्य" इति, निरुपाख्य शून्य है जोई कहिये जाति गुण क्रिया रूप धर्मरहित जो बीज नाशादि रूप शून्य है, वही निखिल कहिये सम्पूर्ण अङ्कुरादिकों का कारण है, अनेकों से विरुद्ध कहता एक झूठा होवे है, इस लोक प्रसिद्धि को लेकर सिद्धान्ती आशंका करे "ननु" इति, न होने में हेतु कहे "तव" इति, तव सातीर्थ कह्यो न कोई कहिये तेरे गुरु भाइयों ने कोई नहीं कहा, याते जगत् का कारण शून्य नहीं, किन्तु सत्य है ।। ४५० ।।

मत कहे हमारे गुरु भाई गुरु का तो परम सिद्धान्त है ? यह आशंका करते प्रति परम सिद्धान्त होता तो मोक्ष कामियों को अवश्य उपदेश करता औ किया नहीं, याते तेरा कथन झूठा है यह दोष कहे "बुद्ध न" इति, व्यपदेश-कथन, परमत की उपदेशादिक व्यवस्था को न जानकर, वा अनेक भ्रम ज्ञानियों की बात मानकर उपालम्भ देते प्रति कहे "ऐसे" इति, बनाय कहने से उत्थानिका में कही बात सूचन करी ।। ४५१ ।।

शून्यवाद गुरुके मनमाहीं । सो नहिं आवे ता उर माही ।
'सौत्रांतिक' 'वैभाषिक जेई । अपरिपक्व चित्त थे तेई ।४५२।।
तामन बाहर अर्थ निवेश । लख्यो गुरु उर हरण क्लेश ।
तब ताके आशय अनुसार । उपदेश कियो गुरु परम उदार ।।४५३।।
बाहर अर्थ वादके द्वार । शून्य विपे चित ताका धार ।
ईषत् पक्व चित्त थो तीजो । विज्ञान विना नहिं माने बीजो ।।४५४।।
ताको कीनो त्यों उपदेश । करुणानिधि गुरु हरण क्लेश ।
ताही द्वार शून्य में आन्यो । ताको बंध सकल गुरु भान्यो ।।४५५।।
मोको पिख उत्तम अधिकारी । शून्यवाद भाख्यो उदारी ।
मो मति माहि न कछू विरोध । एही सबको है अनुरोध ।।४५६।।

व्यवस्था लावे "शून्य" इति, ता उरमाहीं नाम तिह्नों के उर विषे, न आवने में बीज कहे "अपरिपक्व" इति ।। ४५२ ।।

ता मन-तिनों के मन का वा तिनों के मन में, आशय-इच्छा ।।४५३।।

इच्छानुसारी उपदेश करने ते शून्य में तिनका चित्त कैसे स्थित किया, तहां कहे "बाहर" इति बाहर अर्थवाद के द्वार कहिये पूर्व कही युक्ति से खण्डित कारणता वाले क्षणिक रूप बुद्धि भिन्न पदार्थों के उपदेश द्वारा शून्य विषे कहिये "निरुपाख्य बीजाभावादिकों विषे तिनका चित्त स्थापन किया अर्थात् तुम्हारी कही युक्तियों से क्षणिक को कारणता की असिद्धि ते, पुनः स्थिरता का उपदेश न करने से अर्थ ते शून्य में तिनका चित्त स्थापन किया आगे भी "द्वार कहने का यही भाव जानना, इर्षत् पक्व"–किञ्चित् पक्व, बीजो-दूसरा ।। ४५४ ।।

ताही द्वार नाम विज्ञान को क्षणिकता कथन द्वारा ।। ४५५ ।।

अनुरोध–अनुसार होने योग्य ।। ४५६ ।।

शून्य को न श्रवण से तिनों ने कही नहीं और तिनको अनधिकारी जानकर बुद्ध ने उपदेश किया नहीं, यह तिनके न कहना औ बुद्ध के न उपदेश करण की व्यवस्था कह कर कथन को झूठता दूर करे "ताते" इति, अनुवाद की समाप्ति करे तटस्थ "चौथे" इति ।। ४५६ ।।

बुद्ध कियो गुरु यों उपदेश। ताते झूठ न में व्यपदेश।

अब सिद्धान्ती शून्यवादी की उक्त व्यवस्था को युक्ति से खण्डन करे है।

तटस्थ—**चौथेको मत यह निर्धारो।**

सिद्धान्ती—**तामें दूषण प्रकट विचारो॥४५७॥**

निरुपाख्य शून्य ते कार्य। देखे नाहीं कदाचित् आर्य।
जो अभाव भाव उपजावै। चिरविनष्ट कण अंकुर जावै॥४५८॥

शश विषाण ते उपजे भाव। देखे सकल लोभ प्रभाव।
नहिं देखे सो कौने कारण। ताते ताको जान अकारण॥४५९॥

बीज नाशादि रूप अभाव ते भाव की उत्पत्ति अंगकार किये अभावता में भेद न होने से चिर विनष्ट बीज औ शशश्रृंगों से भी सदा अंकुरादिकों की उत्पत्ति देखी चाहिये और यह बात देखे कोई नहीं, याते बीज नाशादिकों को शशश्रृंगादिकों वत् कारणता नहीं बने या अभिप्राय से परिहार करे "निरुपाख्य" इति, आर्य—श्रेष्ठ, न देखे कहन का भाव प्रकट करे "जो" इति, जेकर सत्ताहीन बीज नाशादिक भाव—उपजावै कहिये "अङ्कुर है" इत्यादिक प्रतीति सिद्ध सत्ता वाले अङ्कुरादिकों को जने तब अभावता में भेद न होने ते, चिर विनष्ट कण कहिये बहुत काल का नष्ट हुआ बीज भी अङ्कुर की उत्पत्ति करे॥ ४५८॥

पुनः असत्पने की समानता कर, शश—विषाणतै उपजे भाव कहिये शशश्रृंगों ते भी सत्ता वाले पदार्थों की उत्पत्ति हुई चाहिये औ देखे सकल लोक प्रभाव कहिये सम्पूर्ण लोक तिनका प्रताप अर्थात् स्वरूप देखे, पुनः देखता कोई नहीं, याते न देखने में क्या कारण ? सोई पूछे "नहिं" इति, नहिं देखे सो कौने कारण कहिये देखता कोई नहीं यामें कौन कारण है अर्थात् कोई प्रतिबन्ध कारण है, वा कारण न होना कारण है ? प्रतिबन्ध तो शून्य से कभी भी कार्य न देखन ते कह नहीं सकते, याते दूसरा जानो सोई कहे "ताते" इति, जान अकारण कहिये कार्य न देखने ते शश श्रृंगादिकों को कारणता हीन जानो अर्थात् शश श्रृंगादिकों से कार्य न देखने में तिनको कारण न होना ही कारण जानो औ तिनके समान बीज नाशादिकों को भी जानो॥ ४५९॥

बीजनाश मृद पिंड विनाश। शशे शृङ्गके तुल्य प्रकाश।
निरुपाख्य तीनों सम लक्षण। नहिं अंकुर घट जने विलक्षण ॥४६०॥

कारण जे सम लक्षण होई। जन्य विलक्षण कहे न कोई।
सम तंतु ते समहि पटादि। यही नियम सब लखे अनादि ॥४६१॥

शश विषाण ते क्यों नहिं होय। यामें उत्तर कह्यो न कोय।
कार्य सकल विलक्षण जानों। शून्य हेतु ताते नहिं मानों ॥४६२॥

अभाव विलक्षण जाते होई। इसो विशेषण मानो कोई।
नीरजमाहिं नील है जैसे। शून्यविषे विशेषण तैसे ॥४६३॥

किञ्च शुक्लपने रूप एक धर्म वाली तन्तुओं कों, नीलत्व पीतत्व रूप विलक्षण धर्मों वाले पटों की जनकता न देखने ते निरुपाख्यत्व रूप समान धर्म वाले बीज नाशादिक भी अङ्कुरत्व घटत्व आदिक विलक्षण धर्मों वाले कार्यों को न जनेंगे, किन्तु अपने जैसे को ही जनेंगे यह शून्य को हेतुता मानने में दूसरा दोष कहे "बीज" इति, "तुल्य प्रकाश" का अर्थ कहे "निरुपाख्य" इति, सम लक्षण कहिये निरुपाख्यपने से तीनोंसमरूप ताते, नहिं अङ्कुर घट जने विलक्षण कहिये सर्व के अनुभव सिद्ध अंकुरपने घटपने वाले विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति न करेंगे ॥४६०॥

विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति न करने में सहित दृष्टान्त के हेतु कहे "कारण" इति, सम तन्तु ते समहि पटादि—अर्थात् नील तन्तु ते नील औ शुक्लों ते शुक्ल ॥ ४६१ ॥

कहे दोष युग्म ते शून्य को कारणता नहीं यह फलित कथन हेतु दोऊ का अनुवाद करे "शश" इति ॥ ४६२ ॥

बीज नाशादि रूप शून्य को कारणता में हठ है तो शश शृंगों से उत्पत्ति के वारण हेतु पुनः विलक्षण कार्यों की सिद्धि हेतु नीरज में नीलवत् शून्य में बीजनाशत्व औ मृद्पिण्डविनाशत्व धर्मों से भेद मान यह उपदेश करे "अभाव" इति, कैसा माने? तहां कहे "नीरज" इति ॥ ४६३ ॥

सवैया

नील अधार सु नीरजके सम, नाहि अभाव कहो अब सोई।
आहि अधार विशेषणको भव, माहिं अभाव न सो पुन होई॥
नाहिं अधार बने शशशृङ्ग, अभाव अहै भव भीतर जोई।
नाहिं अभावकि माहिं विशेषण, नीरजनील समान सु कोई ॥४६४॥

अब शून्यवादी अभावों की विलक्षणता सिद्धचर्थ प्रतियोगी की विलक्षणता प्रतिपादन करे है।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

प्रतियोगी वैलक्षण्य जोई। अभाव विलक्षण कारण सोई।
या विधि भये अभाव विलक्षण। ताते कार्य होय विलक्षण ॥४६५॥

मानते प्रति, विवाद का आश्रय कारण सत् होने को योग्य है, विशेषण का आश्रय होने ते, नीरजवत्, यह दो तुकों से शून्यता का अभाव कहे "नील" इति अब—विचार काल में, सोई=वह बीज नाशादिरूपशून्य, नील के आश्रय कमलवत् असत् मत कहो। असत् न कहने में हेतु कहे "आहि अधार" इति, है जो आश्रय विशेषण का संसार में कमलवत् वह असत् नहीं होवे है। ननु विशेषण की आधारता रहो हम भावता नहीं अंगीकार करें ? तहां कहे "नाहि" इति ॥ ४६४ ॥

अभाव विलक्षण होने को योग्य है, प्रतियोगिता सम्वन्ध से प्रतियोगी रूप विलक्षण विशेषण का आश्रय होने ते, संयोगवत्, या अनुमान से कारणों की विलक्षणता सिद्ध भये, कार्यों की विलक्षणता बने है और "नील अधार" इत्यादि पाठ से विशेषण के आश्रय को कही भावता तो आप को भी अभावत्व वाले को भावता न मानने से प्रौढिवाद है या अभिप्राय से आशंका करे "प्रतियोगी" इति, प्रतियोगियों का बीजत्व पुनः मृद्पिण्डत्व धर्मों से जो विलक्षणपना है, अभाव विलक्षण कारण सोई कहिये अंकुरादिकों के कारण रूप बीज नाशादिकों की विलक्षता का वह कारण है याते, या विधि-कही रीति से प्रतियोगियों की विलक्षणता से, होवे है बीज नाशादि जुदे जुदे आगे, ताते कहिये तिन विलक्षण हुए अभावों ते, कार्य होय विलक्षण कहिये भिन्न-भिन्न अंकुरादि कार्य होवे है, इहां यह भाव है = मूल में जो प्रतियोगियों की विलक्षणता से

अब सिद्धान्ती उक्त उक्ति का विकल्पों कर खण्डन करे है।

सिद्धान्ती—

विलक्षण नहिं प्रतियोगी होई। विलक्षण हेतु कह्यो नहिं कोई।
और हेतु जे ताहि बखानो। अनवस्था पुन प्रकट पछानो ॥४६६॥

अभावों की विलक्षणता कही ताका यह अभिप्राय है अपने-अपने असाधारण धर्मों से प्रथम प्रतियोगी विलक्षण होवे है पीछे ते प्रतियोगिता सम्बन्ध से अपने-अपने अभाव साथ मिलकर तिन अभावों का भेद करे है, जैसे असाधारण धर्म से विलक्षण हुआ प्रतियोगी, प्रतियोगिता सम्बन्ध से, सम्बन्ध साथ मिलकर ताका भेद करे है, सोई दिखावे हैं= अभाव सम्बन्ध दोनों प्रतियोगियों वाले होवे है "जिसका अभाव होवे, जिसका सम्बन्ध होवे वह वस्तु तिसकी प्रतियोगी कहिये है" जैसे दण्ड के सम्बन्ध का दण्ड प्रतियोगी है पुनः दण्डत्व रूप असाधारण धर्म से प्रथम वह औरों से विलक्षण होवे है, पीछे ते प्रतियोगिता सम्बन्ध से, अपने सम्बन्ध साथ मिलकर ताका इतरों के सम्बन्धों से भेद करे है ऐसे इहाँ भी बीजत्व मृद्पिण्डत्व धर्मों से बीजाभाव का बीज औ मृद् पिण्डाभाव का मृत् पिण्ड रूप प्रतियोगी विलक्षण होवे है औ विलक्षण होकर पीछे ते प्रतियोगिता सम्बन्ध से अपने-अपने अभाव साथ मिलकर तिन अभावों का भेद करे है, पुनः तिन भिन्न भये कारण रूप अभावों से अंकुरादि कार्य भिन्न होवे है ॥ ४६५ ॥

होवे प्रतियोगियों की विलक्षणता से अभावों की विलक्षणता जब प्रथम काहू रीति से प्रतियोगियों की विलक्षणता होवे सोई पुनः नहीं बने, यह परिहार करे सिद्धान्ती "विलक्षण" इति, विलक्षण न होने में हेतु कहे "विलक्षण" इति, विलक्षण हेतु कह्यो नहिं कोई कहिये प्रतियोगियों की विलक्षणता का हेतु कोई कह्या नहीं, याते प्रतियोगियों की विलक्षणता नहीं बने, जेकर बीजादिकों के अवयवादिक रूप हेतुओं से बने है ऐसे कहो, तब वह अवयव भी परस्पर भिन्न भये हुए प्रतियोगियों को विलक्षण करे है वा अभिन्न भये हुये करे है ? इन विकल्पों में दूसरा माने तिनका परस्पर भेद न भये तिनसे प्रतियोगियों का न भये, तिनसे अभावों का न भये, तिनसे कार्यों का नहीं होवेगा, याते प्रथम कहो तब अवयवों की भेद सिद्धि हेतु और, पुनः तिनों की भेद सिद्धि हेतु और, ऐसे आगे आगे माने अनवस्था होवेगी यह कहे—"और" इति ॥ ४६६ ॥

जो प्रतियोगी अंगीकार । शून्यवाद नहिं बने तुम्हार ।
अशून्य शून्य प्रतियोगी होई । नाहि अभाव बने अब सोई ॥४६७॥
जासो अन्वित कार्य होई । उपादान पहिचानो सोई ।
ज्यों कटकादिक हेम विकार । हेम युक्त जन लखे उदार ॥४६८॥
घट है सत्यं सत्य कुसूल । सत्य पछानो याते मूल ।
परम तज्ञ गुरु 'अर्जुन' नाम । यही बखान्यो सुखके धाम ॥४६९॥
"आप सत्य धारी सब सत्य । तिस प्रभु ते सकली उतपत्य"।
उद्दालकऋषि सुत प्रति गायो । सत्य हेतु सब जगत बतायो ॥४७०॥
सत्यहि सोम्य यह आगे भयो । सतही ते याने भव लयो ।
ऐसे वेद विषे पुनि भाख्यो । शून्यवाद दूर कर नाख्यो ॥४७१॥

पुनः प्रतियोगियों को अभाव से विरुद्ध स्वभावता का नियम ते प्रतियोगी अंगीकार किया सर्वशून्य सिद्धान्त की भी हानि होवेगी, यह अनवस्था कह कर प्रतियोगियों से विलक्षणता मानते प्रति सर्वशून्य सिद्धान्त की हानि कहे "जो" इति, शून्यवाद का न बनना स्पष्ट करे "अशून्य" इति, अशून्य शून्य प्रतियोगी होई कहिये प्रतियोगी को अभाव से विरुद्ध स्वभावता के नेम ते सद् वस्तु ही असत् रूप अभाव का प्रतियोगी होवेगी ऐसे भये ताको असत् मत कहो ॥ ४६७ ॥

किञ्च स्वर्ण साथ कुण्डलवत्, सत् साथ कार्यों के अभेद भान से भी शून्य को कारणता नहीं बने यह कहे "जासो" इति, विकार–कार्य, हेम युक्त—"कुण्डल सुवर्ण ही है" ऐसे तासे अभिन्न ॥ ४६८ ॥

सत् साथ कार्यों का अभेद दिखावे "घट है" इति, कुसुल नाम भड़ोला, युक्ति सिद्ध अर्थ में श्रेष्ठों की सम्मति कहे "परम" इति ॥४६९॥

गुरु वाक्य कहे "आप" इति, आप सत्य—कारण सत्य, धारी सब सत्य नाम उत्पत्ति ते पूर्व अपने में सूक्ष्म रूपता कर स्थापन कर रखा घटादिक प्रपञ्च सत्य है, तिस प्रभु ते नाम—ऐसे समर्थ रूप सत्य कारण ते, सकली उतपत्य–लिङ्ग शरीर से लेकर ब्रह्माण्डान्त उत्पन्न होवे है॥४७०॥

अर्थ ते पुत्र प्रति कह्या "सदैव सोम्येदमग्र आसीत्" यह वेद वाक्य पढ़े "सत्यहि" इति, सत्यहि—सत्य के साथ अन्वित ही सोम्य—हे प्रियदर्शन ! यह घटादिक प्रपञ्च आगे—उत्पत्ति ते पूर्व, भयो—होता हुआ, सतही ते

शून्य मूल जे जगको होई । घटपट शून्य कहै सब कोई ।
खर विषाणके सम सब होई । नाहि निहारे ताको कोई ॥४७२॥
धन अर्थी के पकरन लागे । भार दुखी पुनि काहि त्यागे ।
शून्यवादको करे विधान । आन वादको करहै हान ॥४७३॥

अब सिद्धान्ती स्वयुक्ति को स्पष्ट करता हुआ दुर्जनतोष
न्याय से वादी के मत में दूषणान्तर को कहे है ।

चौपाई

शून्य आत्मा तब जड़ मान्यो । याते विधि निषेध सब भान्यो ।
कौन शून्यको साधक हइये । जाकर शून्य तुण्डते पइये ॥४७४॥
प्रत्यक्ष न साधक ताको होई । इंद्रिय साथ संबंध न कोई ।
संबंध विना नहीं ऐंद्रिक ज्ञान । सबही भौम नियम पहिचान ॥४७५॥

याने भवलयो—सत् में रहे हुए ने सत् ते ही उत्पत्ति लई, दूर कर नाख्यो—दूर कर गेर्‌या ॥ ४७१ ॥

सत को छोड़कर हठ से शून्य को उपादान मानते प्रति बाधक कहे "शून्य" इति, जेकर शून्य ही सर्व जगत् का मूल कहिये उपादान होवे तब, घट पट शून्य कहै सब कोई कहिये "घट असत्य है" पट असत्य है" ऐसे सर्व को अनुभव हुआ चाहिये घटपट शून्य कहे पाठ का फलित कहे "खर" इति, होवे ऐसे दोष क्या ? तहां कहे "नाहि" इति ॥ ४७२ ॥

के पकरन लागे नाम क्या पकरने लगे, काहि त्यागे नाम क्या त्यागे अर्थात् शून्य वाद की विधि और अन्य मतों का निषेध, पुनः अपने आप को भी शून्य मान कर जिस हेतु ते तुमने सम्पूर्ण विधि निषेध दूर किये याते सर्व के अन्तर्गत भार को भी असत् होने ते, कुछ नहीं त्यागेगा सोई यह कहे "शून्य" इति, विधान-विधि, हान-निषेध ॥ ४७३ ॥

याते शून्य मत की विधि, अन्यमतों का निषेध, पुनः आत्माको शून्य मानने ते, किञ्च शून्य की सिद्धि करनेवाले प्रमाण के अभाव ते शून्य का स्वरूप ही नहीं सिद्ध होवे याते कैसे कहे जो वह जगत् का उपादान है या अभिप्राय से पूछे "कौन" इति ॥ ४७४ ॥

प्रत्यक्ष साघक है, कहते प्रति कहे "प्रत्यक्ष" इति, न साधकता में

व्याप्ति विना नाहिं अनुमान । शून्य व्याप्ति को नहिं ज्ञान ।
सहचर नियमको कहे व्याप्ति । बुद्धि उदार जे जगआपति ॥४७६॥
जहाँ धूम भव भीतर होई । अग्नि तहाँ माने सब कोई ।
धूम समान तहाँ नहिं कोई । शून्य भान कहु काते होई ॥४७७॥
सर्व विलक्षण शून्य तुम्हारो । नहिं उपमान ताहिमें धारो ।
शब्द प्रमाण न ताके माहीं । जाते मान न माने ताहीं ॥४७८॥

हेतु कहे "इन्द्रिय" इति, मत होवे सम्बन्ध ? तहाँ कहे "सम्बन्ध" इति ॥ ४७५ ॥

ननु न होवे प्रत्यक्ष से सिद्धि, हम अनुमान से माने है ? तहां कहे "व्याप्ति" इति, व्याप्ति बिना नाहि अनुमान कहिये हेतु साध्य के एक जगह रहने के नेम बिना, नहीं बने व्याप्ति सहित हेतु का पक्षमें ज्ञान रूप अनुमान. मत बनो व्याप्ति बिना, व्याप्ति के होने से तो रहो ? तहाँ कहे "शून्य" इति व्याप्ति ग्रहण करने वाले प्रत्यक्ष के दूर करने से ताका ज्ञान ही नहीं होवे याते अनुमान कैसे बने अर्थात् जेकर अग्नि धूमकी व्याप्ति ग्रहण करने वाले "अग्नि की व्याप्ति वाला धूम है" ऐसे प्रत्यक्षवत् "शून्य की व्याप्ति वाला अमुक हेतु है" ऐसा प्रत्यक्ष होवे, तब तो व्याप्ति के होने से अनुमान बन जावे पुनः वह तो प्रत्यक्ष काहू को है नहीं याते ताके न होने से, व्याप्ति के दूर भये अनुमान ही नहीं बने, प्रकरण ते व्याप्ति का लक्षण कहे "सहचर" इति सहचर नियम को—साध्य साधन के एक जगह रहन के नियमको व्याप्ति कहे है ॥ ४७६ ॥

व्याप्ति का स्वरूप कहे "जहाँ" इति, धूमसमान तहाँ नहि कोई नाम अग्नि साथ धूमवत्, शून्य के साथ एक जगह मिलकर रहनेवाला हेतु तुम्हारे मत में कोई नहीं, याते शून्यभान नाम शून्य की अनुमिति कहो कैसे होवे ॥ ४७७ ॥

ननु मत बनो अनुमान, हम उपमान को ही ताका साधक धारण करे है ? तहां कहे "सर्व" इति, शब्द से ही ताकी सिद्धि माने है ? तहां कहे "शब्द" इति, न होने में हेतु कहे "जाते" इति, जिस हेतु ते प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाण बिना तू बौद्ध और को प्रमाणता न मानता अर्थ ते शब्द को प्रमाण नहीं माने याते शून्य की सिद्धि में शब्द भी नहीं ॥ ४७८ ॥

या विधि मान अहे जग जेते । शून्य माहिं पइये नहिं ते ते ।
मान बिना मेय भव जोई । खर विषाण सम जानों सोई ॥४७९॥
साक्षी कर तिह ज्ञान वखानो । सर्व शून्य मत होवे हानो ।
दुर्जनतोष न्याय उर मान । दूषणको अब करौं वखान ॥४८०॥
निर्विशेष जो अहे अभाव । जे वह कार्य जनन स्वभाव ।
सब कार्य सब ठौरे होई । यत्न न ताहित करहै कोई ॥४८१॥
खेती वणिज न करने जाई । घरही में सब ही फल पाई ।
पुरुष प्रयत्न भयो सब व्यर्थ । रह्यो न ताको भवमें अर्थ ॥४८२॥
शून्य सर्वको सुलभ सुहइये । कार्य सकल ताहि ते पइये ।
सर्व शून्य को जो है ज्ञान । फल ताको है आतम हान ॥४८३॥

मत होवो साधक प्रमाण, ऐसे ही जगत् का कारण शून्य कहे है तहां कहे "मान" इति ॥ ४७९ ॥

ननु तुम्हारे मत में साक्षी से अज्ञान की सिद्धिवत्, हम भी जगत् कारण शून्य की सिद्धि साक्षी से माने हैं याते प्रत्यक्षादिकों को साधकता न भये भी कोई दोष नहीं? यह आशंका करते प्रति साक्षी भी तुमने क्षण-भंगुर विज्ञान ही कहना होवेगा ताका पुनः साक्ष्यभूत शून्य साथ सम्बन्ध नहीं यह दोष रह्या भी दोषान्तर कहे "साक्षी" इति । किञ्च रहो दुर्जन की प्रसन्नता हेतु अप्रामाणिक भी शून्य को विचित्र जगत् की हेतुता, तथापि शून्य रूप कारण को सर्वत्र होने से सर्व कार्यों की सर्वत्र उत्पत्ति का प्रसंग भये पुरुष प्रयत्न को व्यर्थता होवेगी या अभिप्राय से कहे "दुर्जन" इति ॥ ४८० ॥

दोष कहे "निर्विशेष" इति, निर्विशेष निरुपाख्य, यत्न-पुरुषों का उद्यम ॥ ४८१-४८२ ॥

उद्यम की व्यर्थता में कारण सामग्री की सुलभता हेतु कहे "शून्य" इति, शून्य सर्व को सुलभ सुहइये कहिये निर्विशेष बीज नाशादिक सर्व पुरुषों को बिना उद्यम प्राप्त है औ कार्य सकल ताहि ते पइये कहिये कार्य सम्पूर्ण बीजनाशादिक शून्य ते ही प्राप्त होवे है याते घटादिकों की उत्पत्ति हेतु कुलालादिकों को सामग्री ग्रहण का उद्यम व्यर्थ होवेगा औ व्यर्थ है नहीं, याते सम्पूर्ण अंकुरादिकोंके सत्‌रूप बीजादिक ही कारण

हैं। यह मानने की इच्छा रहित बौद्ध ने भी अवश्य मानना। पुनः मतके आरम्भ काल में उत्थानका विषे जो, जेकर बीज वैसा ही रहे तब अंकुर की उत्पत्ति न बने याते अवश्य बीज नाश अंकुर ते पूर्व मानना ऐसे अर्थ ते बीज नाश को कारणता का लाभ होने से बीजादिक कारण नहीं, किन्तु विचार किया सम्पूर्ण निमित्त उपादानों का शून्य में अवसान होने ते मृत्तिका में अवसान वाले घट को मृत् स्वरूपतावत् सर्व को शून्यता सिद्ध होने से सर्व का उपादान निमित्त शून्य ही है कुछ अंकुर के बीज धरणी सलिल संयोगादिक, पुनः घटादिकों के कपाल-दण्डादिक नहीं, यह बात कहो ताका यह समाधान जान लेना=जो सिद्धान्त में नाश वस्तु अपने उपादानों में कार्यों की सूक्ष्मावस्था रूप भाव वस्तु है, अभाव नहीं, याते बीज नाशादिकों को अपने अवयवों में सूक्ष्म रूप भाव होने ते शून्य को उपादानता नहीं, यदपि हम नहीं कहते जो दण्ड घट का कारण नहीं, किन्तु दण्ड घट का कारण है ऐसे ही कहे है परन्तु सत् दण्ड कारण है यह नहीं कहते किन्तु विचार किया सत् कारण कीं न सिद्धि होने ते असत् दण्ड कारण है ऐसे कहे है, तथाहि=सत् को कारणता मानते वादी प्रति यह पूछे है—कारण में सत्ता विशेषण हैं वा उपलक्षण है? विशेषण कहे तब विशिष्ट में वर्तन वाले धर्म को विशेषण में वर्तन के नेम ते सत्ता में भी कारणता आवेगी औ सत्ता में आई कारणता भी सत्ता रहित सत्ता में माने तब सत्ता रहितता कर सत्ता को असत् होने ते तिस सत्ता विशिष्ट दण्डादिकों को असत् होने कर आप ही असत् कारण की सिद्धि होवे है, या भय ते सत्ता में सत्ता मानो तब वह स्वरूप सत्ता है वा सत्तान्तर है, प्रथम माने—आत्माश्रय, दूसरा माने—अन्योन्याश्रय आदि दोष होवेंगे। कहे दोषों के भय ते उपलक्षण पक्ष का अंगीकार करे तब सत्ता को कारणता कोटि ते बाहर होनेकर असत् को ही कारणता की प्राप्ति होवेगी इस रीति से सत् को कारणता की सिद्धि नहीं होवे याते शून्य ही सर्व का निमित्त उपादान है यह आशंका होवे है, तथापि उपलक्षण रूप भी कौवे से देवदत्त के गृह को "काक वाला" कथनवत् उपलक्षण रूप भी सत्ता से दण्डादिक सत् कहावे है याते कारण में सत्ता को उपलक्षण मानने से असत् को कारणता नहीं बने, कभी होने वाली व्यावर्तक वस्तु को उपलक्षण कहे है, जैसे "काक वाला देवदत्त का गृह है" इहां काक कभी होने वाला है औ व्यावतर्क है याते उपलक्षण है, किञ्च सर्व शून्यता ज्ञान का फल तुम

वही सु तैं जड़ मोक्ष बखानी । फलकाहे वह आतम हानी ।
उलटो जनको भयो अनर्थ । ते सिद्धांत ते नहिं कछु अर्थ ।।४८४।।
आतम नाशकमें जन द्वेष । करे, सो जाते लहे कलेश ।
ते शास्त्रमें जनको द्वेष । बढ़े, सु जाते लहे कलेश ।।४८५।।
सर्व जनोंका करे अनिष्ट । कथं तोहि जड़ होवै इष्ट ।
नरकपात तोको ह्वै भारा । जाको नाहिं अहे कछु पारा ।।४८६।।

सटस्थ—

मुक्त-कच्छ मत भयो निराश । अब जैनी मत करौं प्रकाश ।
ऐसे आप विवसन बतावैं । ज्यौंका त्यों सिद्धांत दिखावैं ।।४८७।।

पूर्वपक्षी—

जीव अजीव आस्रव इक मान । संवर निर्जर बंध पछान ।
सप्तम मोक्ष पदार्थ हइये । याविधि सप्त पदार्थ पइये ।।४८८।।

आत्म हानि रूप मुक्ति मानते हो औ वह काहू को वाञ्छित नही, उलटी आवाञ्छित है याते ताके प्रतिपादक शास्त्र को निष्फलता पुनः अनर्थता है या अभिप्राय से उपहास हेतु कहे "सर्वशून्य" इति ।। ४८३ ।।

उपहास करे "वही" इति फल पद का देहली दीपक न्याय से पूर्व भी सम्बन्ध कर वह आत्महानि रूप मुक्ति ही सर्व शून्यता ज्ञान का तुमने हे जड़ ! फल कथन किया औ वह आत्महानि फल काहे नाम फल क्या हुआ ? उलटा पुरुषों को अनर्थ हुआ याते तेरे सिद्धान्त ते कुछ फल नहीं अर्थात् तेरे सिद्धान्त का प्रतिपादक शास्त्र भी निष्फल है ।। ४७४ ।।

निष्फलता कहकर शास्त्र को अनर्थता कहे "आतम" इति, "करे" पूर्व के संग, होवे आत्मनाशक सर्पादिकों में द्वेष, रंचक भी क्लेश न देनेवाले शास्त्र में तो नहीं ? यह आशंका कर कहे "ते" इति ।। ४८५ ।।

असत् मार्ग का उपदेश कर जगत् का बुरा करने से तेरे को भारी नरक होवेगा, उपहास कर यह खेद भी मनावे "सर्व" इति, भारा का अर्थ कहे "जाको" इति ।। ४८६ ।।

पूर्वमत खण्डन हुये को देखकर अपना स्थापन की इच्छा कर आशंका करते जैनी के मत का अनुवाद करे तटस्थ "मुक्त" इति,

कर संक्षेप बतावे कोई । जीव अजीव दोउ पुन होई ।
और दिखावे पंच प्रकार । सो मैं कहौं सकल विस्तार ॥४८९॥
जीव एक पुद्गल है दूजो । धर्म पदार्थ जानो तीजो ।
अधर्म तुरी पंचम आकाश । यह विधि पंच प्रकार प्रकाश ॥४९०॥
जीव कहीजै तीन प्रकार । अर्हंत आदि जे परम उदार ।
ताको नित्य सिद्ध पहिचानो । यामें भेद न रंचक मानो ॥४९१॥
ताकी शिष्य पंक्ति में जेई । भवमहि मुक्त कहावैं तेई ।
तिनते भिन्न जीव हैं जेते । भव में बद्ध कहावैं तेते ।॥४९२॥
भू ते आदि चार जो हइये । युग्म स्थावर जंगम पइये ।
यह षट् पुद्गल रूप बतावैं । याते भिन्न धर्म दिखलावें ॥४९३॥

मुक्त कच्छ नाम धोती की लांग न बांधने वाले बौद्ध, विवसन-दिगम्बर ॥ ४८७-४८८ ॥

आश्रव आदिको का अजीव में अन्तर्भाव कर जीव अजीव पदार्थ दो मानने वाले का मत कहे "कर संक्षेप" इति, मतान्तर कहे "और" इति ॥ ४८९ ॥

विस्तार कहे "जीव" इति ॥ ४९० ॥

इहां यह विवेक है दूसरे मत में प्रथम मत के अभाव आदिक पांच का औ तीसरे मत के पुद्गल आदिक चार का अजीव में अन्तर्भाव है, पहले तीसरे मत में पुद्गल अजीव शब्द पर्याय है प्रथममत में तीसरे मत के धर्माधर्म का बन्ध में, आकाश का मोक्ष में अन्तर्भाव है, तीसरे मत में आश्रव का अधर्ममें सम्बर निर्जर दो का धर्म में बन्ध का धर्माधर्म दो में, मोक्ष का आकाश में अन्तर्भाव है। गिनती कर तीनों मतों के लब्ध भये जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्जर, बन्ध, मोक्ष, धर्माधर्म आकाश रूप दशों में प्रथम जीव का विवेचन करे "जीव" इति, प्रथम प्रकार कहे "अर्हन्त आदि" इति, आदि शब्द से तेईस और जान लेने, नित्यसिद्ध-नित्ययुक्त, यामें भेद—नित्य मुक्ततामें भेद ॥ ४९१ ॥

दूसरा प्रकार कहे "ताकी" इति, ताकी-अर्हन्त आदिकों की, तीसरा प्रकार कहे "तिनते" इति ॥ ४९२ ॥

पुद्गल पदार्थ कहे "भूते" इति, भूते आदि—पृथिवी आदिक वायु

(नराज छन्द)

सु मोक्षपंथ में सुनो प्रवृत्ति को दृढ़ावई ।
इसो जो कर्म भूमिमें सुधर्म कै कहावई ॥
प्रसिद्ध नाहिं को लखे सदाऽनुमेय जानिये ।
प्रवृत्ति हेतु एक मोक्षपंथ को पछानिये ।४९४॥

चौपाई

संसार स्थिति जाते पुन होई । अधर्म पदार्थ भाखे सोई ।
लोक अलोक भेद कर भास । दोविधिका जानो आकाश ॥४९५॥
भवमें जीव बद्ध हैं जेते । प्रथम अकाश लहे नर तेते ।
भव ते मुक्त भये नर जेई । द्वितीय अकाश लहे नर तेई ॥४९६॥
करण प्रवृत्ति आस्रव जगजान । शमदमादि संवर पहिचान ।
पुण्य पाप जाते क्षय होई । निर्जर रूप पछानो सोई ॥४९७॥

पर्यन्त, पुद्‌गल नाम अवयवो से बढ़ने घटने वाली वाली वस्तु का होवे है ऐसे यह है ॥ ४९३ ॥

सुमोक्ष पन्थ में नाम श्रेष्ठ मोक्ष के मार्ग ज्ञान में, सुनो जो कर्म प्रवृत्ति कहिये उद्यम को दृढ़ावे ऐसे जो कर्म है पृथिवी में सुधर्म कहावे है ता धर्म को प्रसिद्ध नाहि को लखे—इन्द्रियों से प्रत्यक्ष कोई नहीं देखे किन्तु सदा अनुमेय जानिये नाम सर्वदा काल अनुमान गम्य है पर्वत में अग्निवत्, पुरुषों में ताका साधक हेतु कहे "प्रवृत्ति" इति, धर्म के सिद्ध करने में मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति एक हेतु है अर्थात् अमुक धर्मी है मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होने ते, ऐसे मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति ही ताका साधक चिन्ह है ॥४९४॥

औ अमुक अधर्मी है, संसार में स्थित होने ते, ऐसे अधर्म की सिद्धि भी अनुमान ते कहे "संसार" इति आकाश तत्त्व का विवेचन करे "लोक" इति, भास प्रतीत होता हुआ ॥ ४९५ ॥

वन्धों का स्थान रूप प्रथम कहे "भव में" इति, दूसरे को मुक्तों की स्थानता कहे "भवते" इति ॥ ४९६ ॥

विषयों विषे इन्द्रियों की प्रवृत्ति रूप आश्रव कहे "करण" इति प्रवृति के रोकने वाला सम्बर पदार्थ कहे "शम" इति, पाप पुण्य कर्मों के

तप्त शिला आरोहण रूप । पुण्य पाप नाशक अनूप ।
घाती कर्म चतुर्विधि हइये । ताको रूप प्रकट जग पइये ॥४९८॥
तत्त्वज्ञान ते नाहीं मोक्ष । आहि विपर्यय भारी दोष ।
अर्हंत दर्शन नाहिं प्रमाण । बंधन करे सो किहविधि हान ॥४९९॥
बहु विधि ग्रंथकार हैं जेते । तिन दिखलाये मार्ग तेते ।
विशष अवधारण तामें जोई । नाहिं कदाचित होवे सोई ॥५००॥
यहि विधि तीन ज्ञान जिन जाये । घाती कर्म तीन ते गाये ।
मोक्षपंथ की जो प्रवृत्ति । ताहीको जो करे निवृत्ति ॥५०१॥
ऐसो विघ्न रूप है जोई । घाती कर्म तुरी है सोई ।
'ज्ञानावरणी' पहिलो जान । 'दर्शानवरणी' द्वितीय मान ॥५०२॥
'मोहनी' नाम तीसरो हइये । 'अन्तराय' तुरी जग पइये ।
यह चारोंको नाम पछान । श्रेयघाती ते घाती जान ॥५०३॥
जानन योग्य तत्त्वसुहि हइये । सो जग इसी नाम कर कहिये ।
अर्हंत शिष्य आवली रूप । ऐसो गोत्र परम अनूप ॥५०४॥

नाशक तप्त शिला में स्थित होने रूप निर्जर का स्वरूप कहे "पुण्य" इति, ॥ ४९७ ॥

संसार में डूबना रूप बन्ध पदार्थ घाती अघाती भेद से दो प्रकार का आठ विध कर्म है ता कर्म में प्रथम चार प्रकार के घाती का विवेचन करे "घाती" इति ॥ ४९८ ॥

विपर्यय—उलटा ज्ञान अर्थात् मुक्ति के कारण में मुक्ति की अकारणता का ज्ञान, अप्रमाणभूत "इदं रजतम्" ज्ञान से शुक्ति में प्रवृत्तभये को रजत का लाभ न देखने से अप्रमाण भूत शास्त्र भी बन्ध हानि नहीं करेगा यह किह विधि कथन का भाव है ॥ ४९९ ॥

विशेष अवधारण—इसका सम्यक् है इसका असम्यक् है ऐसा निश्चय मार्गों में ॥ ५००-५०१ ॥

क्रम ते कर्मों के नाम कहे "ज्ञानावरणी" इति ॥ ५०२ ॥

घाती कहने में हेतु कहे "श्रेय" इति ॥ ५०३ ॥

घाती कहकर चार प्रकारका अघाती कहे "जानन" इति, तत्त्व-

ताके विपे वासमुहि पाये । यह त्रयनिश्चय जो उपजाये ।
सो त्रयकर्म उत्तम पहिचानो । याहि विपे कछु भेद न मानो ॥५०५॥
जौ लौं ज्ञान उदय पुन होई । तौ लौं जीवन साधे सोई ।
तुरी कर्म तैसो यह हइये । नाम चहूँके योंकर कहिये ॥५०६॥
'वेदनीय' पहिले को मान । 'नामक' नाम द्वितीय पहिचान ।
'गोत्रक' नाम तीसरो हइये । 'आयुप' नाम तुरीका पइये ॥५०७॥
श्रेय अघाती चारों कर्म । यही, प्रकट नहिं कीजे भर्म ।
संसार माहिं डूबनो जोई । बंध पदार्थ जानो सोई ।५०८॥
नष्ट भये जाके सो कलेश । ताको वासन रही न लेश ।
अनावरण घन ज्ञान स्वरूप । सुखकी सीमा परम अनूप ॥५०९॥
ऐसो आत्म ऊपर जावै । आलौकिक आकशहि पावै ।
तामें इस्थित होना जोई । मोक्ष पदार्थ जानो सोई ॥५१०॥
और कहे पुनि और प्रकार । सो मैं कहौं सकल विस्तार ।
धर्माधर्म बाँध्यो जोई । संसारमाहिं डूबे नर सोई ।५११॥

वास्तविक रूप, दूसरा ज्ञान कहे "सो" इति, सो नाम वह जगत् में, इसी नाम कहिये अमुक नाम कर कहिये है अर्थात् अमुक इस नाम वाला है हमारा भी वही होवे ऐसे ज्ञान का हेतु दूसरा अघाती कर्म है ॥ ३०४ ॥ ५०५ ॥

ज्ञानकी उत्पत्ति पर्यन्त जीवना सिद्ध करने वाला चौथा कर्म कहे "जौ लौं" इति ॥ ५०६ ॥

नाम कहे "वेदनीय" इति ॥ ५०७ ॥

यही पूर्व के संग (अन्वय कर लेना), घाती के अवतरण में कह्या बन्ध का स्वरूप सूचन करे "संसार" इति ॥ ५०८ ॥

मोक्ष का स्वरूप निरूपण करे "नष्ट" इति, ताकी वासना—क्लेशों के संस्कार ॥ ५०९ ॥

ऐसो आत्म-पूर्व कहे निश्चय वाला जीव, ऊपर जाकर क्या पावे है ? तहाँ कहे "आलौकिक" इति ॥ ५१० ॥

मतान्तर कहे "और" इति ॥ ५११ ॥

तत्त्वज्ञान जाहिको होई । धर्माधर्म दिये वह खोई ।
तुंबक जल अगाध के तले । ताके पाथर होवै गले ॥५१२॥
गल ते टूटजाहि वह जबही । ऊर्ध्व तुंबक जावै तबही ।
त्योंही जीव ऊर्ध्वको जावै । सदा निरंतर नहिं ठहरावै ॥५१३॥
ऐसो मोक्ष बतावै और । सदा गमन नहिं पइये ठौर ।
पूर्व कहे पदार्थ जेते । अनैकांत रहहि ज्यों तेते ॥५१४॥

पाथर—पाषाण ॥ ५१२ ॥

त्यों ही—पाषाण मुक्त तुंबीवत्, सदानिरन्तर-पूर्व के साथ (अन्वय करना), सदा निरन्तर—व्यवधान बिना सर्वदा काल ॥ ५१३ ॥

दो प्रकार से वस्तु का अभाव प्रतीत होवे है एक निज रूप से, दूसरा पर रूप से, निज रूप से वस्तु का अभाव, जहां वस्तु न होवे तहां कहा जावे है, जैसे जहां घट न होवे घटत्व रूप से घट नहीं कहा जावे हैं, पर रूप से वस्तु का अभाव, जहां वस्तु पड़ी होवे तहां भी कहा जावे है, जैसे जहां घट होवे तहां भी पटत्व रूप से घट नहीं कहा जावे है, प्रथम अभाव को "समानाधिकरणरूपावच्छिन्नाभाव" कहे है, दूसरे को "व्यधिकरण रूपावच्छिन्नाभाव" कहे है यह वार्ता "सावेसप्त" अगले पाठ के सुगम बोधार्थ याद रखे कहे पदार्थों को एक रूप मानिये तब घटादिक घटत्व पटत्वादि सर्व रूपों से सर्व देशों कालों में सद् वा असद् होने को योग्य है, एक रूप होने ते, शशश्रृंगवत्, जो एक रूप होवे है वह सर्व रूपों से सर्व देशों कालों में सत् वा असद् होवे है, जैसे असद्पने रूप एक रूपता वाले शशश्रृंग शशश्रृंगता समानाधिकरण रूप से, तथा घटत्वादि व्यधिकरण रूपों से सर्व देशों कालों में असत् है ऐसे एक एक रूप होने ते घटादिकों को घटत्व पटत्वादि सर्व रूपों से सर्व देशों कालों में सद् रूप वा असद् रूप सिद्ध भये, देशादिक भेद से होने वाला ग्रहण त्याग नहीं बनेगा औ अनेक रूपता मानने से तो वस्तु के कहीं औ कभी होने से वह बने है, याते ग्रहण त्याग की अन्यथानुपपत्ति ते काहूं काहूं रूप से परस्पर विरुद्ध भी अस्ति नास्ति आदिक दो दो धर्मों को लेकर पदार्थों में प्रवृत्त होने वाले १. "स्यादस्ति, २. स्यान्नास्ति, ३. स्यादस्ति नास्ति, ४. स्पादवक्तव्यः, ५. स्यादस्ति चावक्तव्यः, ६. स्यान्नास्ति चाक्तव्यः, ७. स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यः" या न्याय से

एक एक वस्तु है जोई। सप्त प्रकार कहीजै सोई।
सप्तभंगनय परम उदार। साधे सप्त सु सप्त प्रकार ॥५१५॥
जो एकांत वस्तु जगमाहीं। सदा सत्य असत्ता नाहीं।
सर्वत्र सर्वरूपकर होई। हानि आदान करे नहिं कोई। ५१६॥

पदार्थ मात्र को सप्त प्रकारता रूप अनैकान्तना सिद्ध होवे है सोई कहे "पूर्व" इति, अनैकान्त रहहि ज्यों तेते कहिये अनेक रूप जैसे होवे तैसे रहे है ॥ ५१४ ॥

दो से लेकर परार्द्ध पर्यन्त में अनेकता मान कर व्यवस्था कहे "एक" इति, सप्त प्रकारता का नेम कैसे ? तहां कहे "सप्त भंग" इति, सप्त नाम अस्तिपने आदिक सातों विषे जो एक जगह रहने में विरोध, ता विरोध के भंग नाम नाश विषे जो है, नय नाम ग्रहण त्याग की अन्यथानुपपत्ति रूप युक्ति वह सम्पूर्ण पदार्थों को सात सात रूप सिद्ध करे है, पूर्व कहे "स्यादस्ति" आदिकों को पदार्थों में घटाना ऐसे है—जो "स्यादस्ति" आदिक शब्दों में "स्यात्" पद का अर्थ कथञ्चित् अर्थात् काहू रूप से है औ अस्ति आदिकों के अर्थ होने आदिक हैं ऐसे भये विद्यमान घट में होना कहने की इच्छा भये घटपने रूप से "स्यादस्ति" कथन होवे है औ विद्यमान का निषेध कहने की इच्छा भये पटत्व रूप के तामें न होने से ता रूप से "स्यान्नास्ति" कथन होवे है, औ क्रम से दोऊ के कहने की इच्छा भये "स्यादस्ति नास्ति" कथन होवे है औ युगपद उभय के कथन की इच्छा भये अस्तिपने नास्तिपने को एक काल में .वाणी कर कहने को अशक्य होने से "स्यादवक्तव्य:" का कथन होवे है औ पहले चौथे के क्रम से कहन की इच्छा भये पञ्चम का कथन होवे है और दूसरे चौथे के कथन की इच्छा भये छठें का कथन होवे है और तीसरे चौथे के कहन की इच्छा भये सातवें का कथन होवे है ऐसे एकत्व अनेकत्व औ नित्यता अनित्यादिक दो दो विरुद्ध धर्मों को लेकर कही युक्ति के सर्वत्र जुड़ने कर सर्व को अनेकान्त सिद्ध भये वेदान्त मत में जगत् कारण-ब्रह्म को सत् एक रूप मानना असंगत हैं इहां यह भी बात जानने योग्य है=जो वस्तु में सद् औ असद् रूप उभय एकान्तों का भंग किया, प्राप्त भये अनिर्वाच्य बाद के निराश हेतु चौथा है, ऐसे ही क्रम सेसत्यता असत्यता पुन: अनिर्वाच्यता के परिहार हेतु पञ्चम आदिक तीन हैं ॥ ५१५ ॥

सप्त प्रकारता सिद्ध करता सप्तभंग नय ही दिखावे "जो एकान्त"

है नाहीं नहिं कोय बतावै । ता विन जन व्यवहारहि जावै ।
अनैकांत कर अंगीकार । मानव साधे सव व्यवहार ॥५१७॥
कहूँ कदाचित् होवै कोई । हानि आदान होय तव दोई ।

तटस्थ—

ऐसे जैन दिगम्बर भने । दूषणगणते बुध नहिं गने ॥५१८॥

अव सिद्धान्ती जैनमत में विरुद्धता को दर्शाता हैं ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

एक अर्थ नहिं सप्त प्रकार । होवे कदे करो निर्धार ।
विरुद्ध धर्म एकके माहीं । करे प्रवेश सु देख्यो नाहीं ॥५१९॥
जो विरुद्ध एकके माहीं । करे प्रवेश वैर तिहँ नाहीं ।
त्यों विरुद्ध भव भीतर जोई । दयो तिलांजलि नाश्यो सोई ॥५२०॥

इति, एकान्त एक रूप, सदा सत्य-सर्व कालों में सत् ही है, असत्ता नहीं—काहू काल में असत् नहीं, पुनः वह सर्वत्र सर्व रूप कर होई=सर्व देशों में सर्व रूपों से है, हानि आदान ग्रहण त्याग ॥ ५१६ ॥

ग्रहण त्याग की अनुपपत्तिवत् "है नाहीं" व्यवहार भी नहीं बनेंगे सोई कहे "है नाहीं" इति, ताविन—है नाहीं बताये विना, एकान्त में व्यवहार की असिद्धि कह कर अनेकान्त में ताकी सिद्धि कहे "अनैकान्त" इति ॥५१७॥

अनैकान्त में व्यवहारों का सिद्ध होना बतावे "कहूँ" इति, कहूँ—काहूँ देश में कदाचित्, काहूँ—काल में, तटस्थ समाप्ति करे "ऐसे" इति, बुध नहि गने—बुद्धिमान् अच्छा नहीं मानते ॥ ५१८ ॥

ग्रहण त्याग की अन्यथानुपपत्ति से अंगीकार किये अनेकान्त के खण्डन की इच्छा करता हुआ सिद्धान्ती कहै "एक" इति, "होवे कदे" पूर्व के साथ (अन्वय कर लेना), करो निर्धार कहिये एक वस्तु कभी भी सप्त प्रकार नहीं होवै ऐसे निश्चय करो। कभी भी सप्त प्रकार न होने में हेतु कहे "विरुद्ध" इति, विरुद्ध धर्म एक में प्रवेश करे यह बात देखी नहीं, याते एक एक अर्थ सप्त प्रकार नहीं ॥ ५१९ ॥

विरुद्धों का भी एक में प्रवेश होवे तिनका वैर नहीं ? यह आशंका करते प्रति विरोध का उच्छेद प्रसंग रूप दोष कहे "जो" इति ॥ ५२० ॥

शीत उष्ण एकहिमहिं होई । विरोधी ताहिं कहे नहि कोई ।
पावक को जो शीत वखानै । भ्रांति सु ताहि न कोऊ ठानै ॥५२१॥
है अरु नाहीं धर्म विरुद्ध । यद्यपि कल्पित भव प्रसिद्ध ।
धर्मी एकरूप तिहँ हइये । निराधार नहिं कल्पित पइये ॥५२२॥
जो हइये निज आतम रूप । सो असत्य नहिं सत्य स्वरूप ।
जो ताको असत्य वतावै । होय असत्य सत्य नहिं गावै ॥५२३॥
व्यवहारिक जग रूप है जोई । नाहिं असत्य सत्य पुनि सोई ।
अधिष्ठानकर सत्ता हइये । स्वतः न सत्ता ताकी पइये ॥५२४॥

विरोध के दूर भये तिसको लेकर शीत उष्ण विरोधी हैं, पुनः अग्नि को शीत कहने वाला भ्रमी होवे है, यह भी पुरुषप्रसिद्धि दूर होवेगी सोई कहे "शीत" इति ॥ ५२१ ॥

ननु जेकर है नाहीं धर्म वास्तविक, होवे तब परस्पर विरुद्ध होने ते शीत उष्णवत् एक धर्मी में प्रतीत न होवे औ होवे है याते शुक्ति रूप एक अधिष्ठान में भान होते रजत भोडरादिकोंवत् कल्पित है, ऐसे भये शीत उष्ण रूप वास्तविक धर्मों को छोड़कर कल्पितों को ही एक जगह मानने से विरोध का नाश पुनः पावक शीत कहते को भ्रान्ति कथन को भी हानि नहीं होवे याते अनेकान्त पक्ष समीचीन है ? यह आशंका करते प्रति, धर्मी को एक रूप होने से ही अनेकान्त पक्ष की सिद्धि नहीं होवे यह कहे "है अरु" इति, धर्मी के पूर्व यद्यपि (का अन्वय कर लेना) सम्बन्ध हेतु "तथापि" लगा लेना, धर्मी को एक रूपता में हेतु कहे "निराधार" इति ॥ ५२२ ॥

संक्षेप ते कही धर्मी को एक रूपता स्पष्ट करे "जो" इति, जो अपना आत्मतत्त्व है सो असत्य नहि कहिये वह असत्य नही है किन्तु सत्य-स्वरूप कहिये सद्रूप ही है, असद् रूप ही होवे ? कहते प्रति, आत्म हानि रूप अनिष्ट ते सद् रूपता मनावे "जो" इति, जो कोई आत्मा को असत्य बतावे, सत्य नहिं गावै नाम बतावे, तब होय असत्य कहिये वह अपने आपको असत् कहने से आप ही दूर हो जावेगा याते आत्मा को एक स्वरूप ही मानना ॥ ५२३ ॥

आत्मा को एक स्वरूपतावत्, व्यावहारिक काल में प्रत्यक्षादि

अब जैन मतावलम्बीवादी व्यवस्था कर कहता है।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु हइये जग सत्य स्वरूप। अनैकांत नहिं ताको रूप।
कोई कहूँ कहूँ जग हइये। कहूँ कहूँ को नाहीं पइये ॥५२५॥
यह जो दोविधि को व्यवहार। दीनों तैं सकलो निर्वार।
सत्यरूप भव भीतर जोई। सर्व ठौर सर्वात्म होई ॥५२६॥

अब सिद्धान्ती पूर्वोक्त शङ्का का निराश करता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

यहि आशंका तेरी जोई। अतिशय तुच्छ न माने कोई।
व्यवहारिकसत्यन संशयलेश। देश काल संबंध विशेष ॥५२७॥

प्रमाण सिद्ध जगत् भी व्यावहारिक सत्य एक रूप ही है सोई कहे "व्यवहारिक" इति, व्यवहारिक जग रूप है जोई कहिये व्यवहार काल में जो व्यावहारिक रूप जगत् है सो भी असत् नहीं, किन्तु सत् ही है, स्वतः सत्ताहीन कल्पित को सद् रूपता कैसे? तहाँ कहे "अधिष्ठान" इति ॥ ५२४ ॥

कहे दोषों से जेकर जगत् को सत् रूप ही मानिये तब "कहूँ है", "कहूँ नहीं", यह दो प्रकार का व्यवहार दूर होवेगा याते व्यवहारों की अनुपपत्ति से अवश्य अनेकान्त मानना, या अभिप्राय से कहे "ननु" इति, कोई कहूँ कहूँ जग हइये नाम कोई वस्तु काहूँ काहूँ देश में जगत में है पुनः कहूँ कहूँ को नाहीं पइये कहिये काहूँ काहूँ देश में कोई वस्तु नहीं पाये है ॥ ५२५ ॥

यह जो दो विधि को व्यवहार कहिये कोई वस्तु कहूँ है, कहूँ नहीं, यह जो दो प्रकार का व्यवहार है सो तुमने सकलो निर्वार कहिये निर्वार दिया व्यवहारों के निवारण में हेतु कहे "सत्य" इति ॥ ५२६ ॥

व्यावहारिक सत्य ही वस्तु में परिच्छिन्न रूप कर काहूँ देश काल के सम्बन्ध की चाह कर कल्पे सत्पने से "है कथन", औ काहूँ देश काल के सम्बन्धाभाव की चाह कर कल्पे असत्पने से "नहीं कथन" होवे है, याते

परिच्छिन्न रूप जग चाहे । याते ते दोनों निर्वाहे ।
परिच्छिन्न वस्तु जहँ होई । ईहाँ है भाखे सब कोई ॥५२८॥
अरुपुनि नाहिं जहाँ वह होई । ईहाँ नहिं भाखे सब कोई ।
पूर्ण रूप होय जग जोई । नभ ज्यों सर्व ठौर में सोई ॥५२९॥

वस्तु में वास्तविक अनेक रूपता मानने का कुछ प्रयोजन नहीं या अभिप्राय से कहे "यहि" इति, यहि आशंका कहिये वस्तु को एक रूपता अंगीकार किये आस्ति नास्ति कथन का असिद्धि की जो तेरी आशंका है सो अतिशय तुच्छ है, कोई नहीं माने, आशंका में तुच्छता का बीज प्रकट करे "व्यवहारिक" इति, प्रपञ्च को व्यावहारिक सत्य एक रूपता में संशय रञ्चक नहीं, तो आस्ति नास्ति दो रूप व्यवहार कैसे होवे है ? तहां कहे "देश" इति, "चाहे" पर्यन्त पाठ का पूर्व सम्बन्ध कर, पुनः परिच्छिन्न रूप करके देश काल सम्वन्ध विशेष चाहे यह अन्वय कर, व्यावहारिक सत्य एक रूप ही घटादिकों को परिच्छिन्न रूप करके कहिये परिच्छिन्न रूप ते देश काल सम्बन्ध विशेष चाहे नाम काहूँ देश काल के सम्बन्ध को चाह कर जगत् विषे आस्ति नास्ति व्यवहार के निर्वाहक सत्पने असत्पने का कल्पना होवे है, जैसे सर्वथा सत्ता शून्य अभाव में "अत्राभावोऽस्ति", पुनः "अत्राभावोनास्ति" प्रतीतियों क निर्वाह हेतु पुरो देश वर्तमान काल के सम्बन्ध सम्बन्धाभाव से सत्पने असत्पने का कल्पना होवे है ॥ ५२७ ॥

याते नाम देश काल के सम्बन्ध सम्बन्धाभाव की अपेक्षा कर सत्पने असत्पने का कल्पना ते, ते दोनों निर्वाहे कहिये आस्ति नास्ति दोनों निर्वाह सिद्ध होवे है. कही बात को स्पष्ट करे "परिच्छिन्न" इति, परिच्छिन्न वस्तु कहिये देश-कालादि परिच्छेद वाले घटादिक दैशिक कालिक सम्बन्ध से या देश काल में होवे तहां सम्बन्ध को अपेक्षा कर वस्तु की वास्तविक सद् एक रूपता के अविरोधीभूत कल्पे सद्पने से "इहाँ घट है" ऐसे सब कोई कहे हैं ॥ ५२८ ॥

पुनः या देश काल में वह घटादिक न होवे तहां सम्बन्धाभाव की अपेक्षा कर कल्पे असत्पने से "इहाँ नहीं है" ऐसे सब कोई कहे है सोई कहे "अरु पुनि" इति, परिच्छिन्न वस्तु के कहूँ कहूँ होने में काहू को संशय नहीं यह कथन हेतु प्रथम पूर्ण को व्यापकता में संशय नहीं यह कहे "पूर्ण" इति ॥ ५२९ ॥

परिच्छिन्न रूप वस्तु है जोई। कहूँ कहूँ नहिं संशय कोई।
या विधि होवै सब व्यवहार। जो तैं कह्यो सु दो प्रकार ॥५३०॥
अरु परमार्थ दृष्टि निहारे। जगत रहै नहिं ब्रह्म विचारे।
धर्मी जगत नहीं अब जाते। अनेकांत साधो अब काते ॥५३१॥

कौन सब ? तहां कहे "जो" इति, इहां यह पूर्व पक्षी का भाव है= जो वस्तु एक सत् वा असत् रूप ही है ताको पूर्व कहे अनुमान ते सर्व रूपों से सर्व देशों कालों में सिद्ध होने से सत् में 'काहूं देश काल में' "नहीं" कथन औ असत् में काहूँ देश काल में "है" कथन नहीं होवेगा। औ "इहां घट है" "उहां नहीं", पुनः "अब घट है" "तब नहीं था" ऐसे कथन घटादिकों में प्रसिद्ध होवे है, याते कहे व्यवहारों को और रीति से न बनने ते घटादिकों को अनेक रूपता वास्तविक है ऐसे भये जगत् कारण-ब्रह्म को भी सत् एक रूपता नहीं बने, और सिद्धान्ती का यह हार्द है=जो आकाशादिक पूर्ण पदार्थ सर्वत्र है यामें कोई संशय नहीं, पुनः घटादिक परिच्छिन्न कहूँ कहूँ है यामें भी काहूँ को संशय नहीं, याते परिच्छिन्न रूप करके घटादिकों का या देश काल में सम्बन्ध है तहां ताकी अपेक्षा कर कल्पे सत्पने को लेकर "है" कथन होवे है, पुनः जहां जाका सम्बन्ध नहीं तहां ताकी अपेक्षा कर कल्पे असत्पने को लेकर "नहीं" कथन होवे है औ कल्पित सत्पने असत्पने का वस्तु की वास्तविक एकरूपता साथ विरोध नहीं, याते कही रीति से सम्पूर्ण ग्रहण त्यागादि रूप व्यवहारों को और रीति से बनने ते पूर्व कह्या सप्तभंगनयरूपअर्थापत्ति प्रमाणाभास रूप है पुनः पर्वत में धूम रहो, अग्नि नहीं रहे इस विपक्ष किये जेकर धूम अग्नि के अभाव वाले में भी रहे तब घटवत् अग्नि का कार्य न हुआ चाहिये, इस दण्डवत्, घटादिकों में एक रूपता रहो, पुनः सर्व रूपों से सर्व देशों, कालों में सद् वा असद् होना मत रहो इस विपक्ष में दण्ड को न होने से उलटा जेकर घट सर्व देशों, कालों में होवे है तब सर्वत्र सर्वदा प्राप्त हुआ चाहिये इस बाधक युक्ति से अनुमान भी प्रमाणाभास है याते काहूँ को भी वास्तविक अनेक रूपता नहीं बने ॥ ५३० ॥

व्यावहारिक दृष्टि कर कही रीति से निर्वाह है और परमार्थ दृष्टि किये तो शुक्ति ज्ञान भये रजत का पता न लगनेवत्, जगत् रूप धर्मी का

एक एक वस्तु है जोई जो पुनि सप्त सप्त विधि होई।
विरोधी सकल परस्पर हइये। ते सकले एकहि महि पइये ॥५३२॥
जो पदार्थ सु तैं दिखलाये। दूषण तामें आप लगाये।
सप्त विधा तामें है जोई। अनैकांत पहिचानो सोई ॥५३३॥
इष्टापत्ति न दूषण कोई। या विधि कहन न तुमते होई।
सप्त क्रियाका होय विघाता। होय अनंत न ते अब साता ॥५३४॥

ही पता न लगने ते अनेक रूपता कहां बैठे यह "एक अर्थ नहिं" पाठ से लेकर ग्रन्थ का भाव कहे "अरु" इति ॥ ५३१ ॥

किञ्च अनेकान्त को भी अनेकान्त होने से अनेकान्त वादी से, पदार्थ में अनेकान्तता भी नहीं कही जावे, पुनः अपनी कही सप्त प्रक्रिया का व्याघात होवेगा या भाव से कहे "एक" इति, एक एक वस्तु नाम एक एक जो जीवादि पदार्थ है, जो नाम जेकर, वह सप्त प्रकारता रूप अनेकान्त से सात सात प्रकार के होवे है यह कहो तब विरोधी नाम परस्पर विरोधवाले जे अस्ति आदिक सात प्रकार वह सभी एक एक में प्राप्त होवेंगे ॥ ५३२ ॥

ऐसे भये जो जीवादिकों में पदार्थ नाम "अस्ति" आदिक सप्त प्रकार विभाग से तुमने दिखाये, तामे नाम तिन सात प्रकारों में दोष आप ही लगा दिये। कौन दोष लगाये पहचाने ? तहां कहे "सप्त" इति, तामें नाम तिन "अस्ति" आदिक सप्त प्रकारों में जो सप्त विधा नाम सप्त प्रकारता वस्तु है, सर्व को अनेकान्त मानने से औ सप्त प्रकारता को सर्व के अन्तर्गत होने से वह सात प्रकारता भी जीवादिकोंवत् अनेकान्त जानो ॥ ५३३ ॥

होवो सप्त विधा अनेकान्त भली बात है कोई दोष नहीं, हम यह कहे हैं ? तहां कहे "इष्टापत्ति" इति, इष्टापत्ति कहिये सप्त विधा नेम अनेकान्त होना भली बात है, कोई दोष नहीं, इस प्रकार का कहना तुमसे नहीं हो सके काहे ते ? सप्त क्रिया का कहिये "स्यादस्ति" आदिक तुमारी कही सप्त प्रक्रिया का विघाता नाम नाश होवेगा औ सप्त प्रकारता रूप संकोचक धर्म के दूर हुआ बन्धा दूर हुआ जल के फैलनेवत् जीवादि पदार्थ भी अनन्त प्रकार के हो जावेंगे न साता नाम सात रूप नहीं रहेंगे ॥ ५३४ ॥

सप्त प्रतिज्ञा होय विरोध । ऐसे प्रकट पिखो उर शोध ।
जीव अजीव होय अब जाई । अजीव जीव कर नाम कहाई ॥५३५॥
स्यादस्ति यह वाद तुम्हारो । सप्तभंगी जिहँ नाम उचारो ।
सो अब ते मत भीतर आयो । ते सिद्धान्त को नियम उठायो ॥५३६॥
जो यह जीव जीव ही होई । और प्रकार न माने कोई ।
तौ एकांत वाद यह आयो । अनैकांत तैं दूर वहायो ॥५३७॥

दोहा

जो ऐसे नहिं मानिये, निज मत उत्तम मान ।
तौ उत्तमता तिहँ सुनो, करे सकल को हान ॥५३८॥

चौपाई

अनैकांत ही रूप वखानै । प्रवृत्ति निवृत्ति होय तव हानै ।
शास्त्र अर्थका होय अनियम । अनैकांत महिं बने न नियम ॥५३९॥

ऐसे भये सप्त प्रतिज्ञा का नाश हुआ सोई कहे "सप्त" इति, किञ्च जैन मत में जीवादिकों में "स्याज्जीव", "स्यादजीव" इत्यादि भंगों के सम्भव ते जीवादिकों को जीवादि रूपता का नेम दूर भया, ता रूप से विभाग भी नहीं वनेगा यह कहे "जीव" इति ॥ ५३५ ॥

जीव को अजीव औ अजीव को जीव होने में हेतु कहे "स्यादस्ति" इति, "भीतर आयो के आगे जीवादिकों विषे शेष (कर लेना) ते सिद्धान्त को—जीव जीव ही ऐसे को ॥ ५३६ ॥

जीव को एकान्तमाने सर्वानेकान्त की हानि कहे "जो" इति ॥ ५३७ ॥

इते दोष सुनकर भी अनेकान्त पक्ष का आग्रह न छोड़ते को कहे "जो" इति, जो ऐसे नहिं मानिये नाम देश काल के सम्बन्ध विशेष की अपेक्षा कर कल्पे सत्पने असत्पने से आस्ति नास्ति व्यवहार जेकर न माने तव तुम्हारे मत की उत्तमता सम्पूर्ण व्यवहारों की हानि करेगी ॥ ५३८ ॥

"करे सकल को हान" वाक्य कर कही वात स्पष्ट करे "अनैकान्त" इति, अनेम में हेतु कहे "अनैकान्त" इति ॥ ५३९ ॥

अविश्वासते शिष्य न पढ़ें । सो अब जाय गर्तमें पड़ें
नहिं ते शास्त्रकी गति ऐसी । होवै सकल लोक गति तैसी । ५४०॥
कोई कहूँ प्रवृत्ते नाहीं । अविश्वास सकल मन माहीं ।
कोई कहूँ प्रवृत्ते जबहीं । अनर्थ लहे ताते वह तबहीं ॥५४१॥
धर्माधर्म ता फलहि अनियम । ताको जाते कहो न नियम ।
इष्ट देवको पूजन जाय । होकर सिंह लये वह खाय ॥५४२॥
भोजन जगमें करे न कोई । मरण कारणसो निश्चय होई ।
विष को तृप्ति हेतु जन मान । भोजन करे होय हत प्राण ॥५४३॥
जलको पान करे ना कोई । दाह हेतु जानि डर होई ।
व्यवस्था शून्य जगत ह्वै गयो । ते सिद्धांत ते काज न भयो ॥५४४॥
अनैकांत कर अंगीकार । साधे सकल लोक व्यवहार ।
सो विपरीत होय अब गयो । व्यवहार शून्य लोक सब भयो ॥५४५॥
अरु ते शास्त्र सिद्ध सु ज्ञान । संशय है निःसंशय मान ।
इक धर्मीमें धर्म विरुद्ध । भासे, संशय रूप प्रसिद्ध ॥५४६॥

गर्त में—नरक रूप (गड्ढे में), शास्त्र मात्र में ही अनिश्चय नहीं होवेगा किन्तु सर्व व्यवहारों में होवेगा सोई कहे "नहिं" इति ॥ ५४०-५४१ ॥

ता फलहि—धर्माधर्म के फल सुख दुःखों का, ताको—धर्मादिकों का ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥ ५४४ ॥

आश्चर्य की बात है जो व्यवहार सिद्धि हेतु मान्या अनेकान्त व्यवहार का नाशक हुआ यह उपहास करे "अनैकान्त" इति ॥ ५४५ ॥

किञ्च संशय ज्ञान का जनक रूप तेरा शास्त्र प्रमाण नहीं बने, यह शास्त्र को अप्रमाणता रूप दोषान्तर कहे "अरु" इति, शास्त्र सिद्ध—शास्त्र जन्य, संशय है निःसंशय मान-संशय रूप है यह बात विना संशय मान, संशय रूपता निश्चय करावने हेतु, संशय का लक्षण कहे "इक" इति, इक धर्मी में नाम एक पुरोवर्त्ति पदार्थ में, धर्म विरुद्ध भासे कहिये जुदे जुदे अधिकरणों में रहने वाले धर्म भान होने यह संशय का रूप कहिये लक्षण है प्रकट ॥ ५४६ ॥

स्थाणु किधौं यह मानव हइये। जैसो यह तैसो सो पइये।
अरु भव पूर्व मुक्ते जेई। अर्हंतादि सकल अब तेई ॥५४७॥
बंधनपाय लहे दुख भारी। अनैकांतमत गहे विचारी।
शास्त्र उपाय विना सब मोक्ष। होवै, यामें कछू न दोष ॥५४८॥
शास्त्र उपाय करे जे कोई। ताते ताको बंधन होई।
जैन कह्यो परमाणु वाद। धर्माधर्मादिक परवाद ॥५४९॥
अनैकांत कहि तिनहीं हने। भिन्न न दूषण तामें गने।
मदमत्ता भवमें ज्यों बोले। मिथ्या सर्व न तत्त्व विरोले। ५५०॥

उदाहरण से संशय रूपता स्फुट करे "स्थाणु" इति स्थाणु किधौ यह मानव हइये कहिये वास्ताविक ते स्थाणु में यह स्थाणुपने वाला "स्थाणु है" वा पुरुषपने वाला "पुरुष है" जैसे यह स्थाणुत्व पुरुषत्व रूप परस्पर विरुद्ध धर्मों को अवगाहन करने वाला संशय ज्ञान है; तैसे एक धर्मी में अस्ति नास्ति आदिक विरुद्ध धर्मों को अवगाहन करने वाला तेरे शास्त्र जन्य ज्ञान भी स्थाणु पुरुषवत् संशय रूप ही है, याते स्थाणु पुरुष ज्ञान के जनक सदोष चक्षुआदिकोंवत्, तेरा शास्त्र भी अप्रमाण है। किञ्च अनेकान्त वादी मत में मोक्ष आदिक विषय भी सप्तभंगनय के आवने से नित्यमुक्त अर्हन्त आदिकों को बन्धन प्रसंग होवेगा पुनः बिना ही शास्त्र उपाय से सर्व पुरुषों की मुक्ति का प्रसंग होवेगा और शास्त्र उपाय से बन्ध का प्रसंग होवेगा यह और दोष कहे "अरु" इति ॥५४७॥

भारे दुख पावने में बीज कहे "अनैकान्त" इति, "होवै" पूर्व के साथ (अन्वय कर लेना) ॥ ५४८ ॥

ननु ईश्वर और अज्ञान से भिन्न जगत् कारण कोई नहीं, इस बात में प्रवृत्त भयो ने तुमने जैन मत में परमाणु औ अदृष्टों को जगत् कारणता में तो कोई दोष नहीं दिया याते तिनको जगत् कारणता की असिद्धि नहीं होवेगी ? यह काहू की आशंका श्रवण कर उत्तर कहे "जैन" इति, धर्माधर्मादिक परवाद नाम धर्माधर्मादिकों का कथन "आदि" शब्द से कालादिक निमित्त जान लेने ॥ ५४९ ॥

"कैमुतक न्याय" से मुमुक्षुओं को जैन मत का त्याग सूचन हेतु कहे "मद" इति, "मिथ्या सर्व" पूर्व के साथ (अन्वय कर लेना) ॥ ५५० ॥

अरु ग्रह जाके करे प्रवेश । सो पुनि करे यथा व्यपदेश ।
त्यों जैनी सिद्धांत बखानै । उत्तमजन नहिं कोई मानै ॥५५१॥
उत्तम त्याग करे मत जोई । श्रेयार्थी तिहँ गहे न कोई ।
संक्षेप उक्ति मैं भाख्यों जोई । जैन सिद्धांत हन्यो अब सोई ॥५५२॥
परिणामी नित्य बखान्यो जोई । सूक्ष्मस्थूल लखे सब सोई ।
भिन्नाभिन्न जीवके माहीं । कारण कहे बने सो नाहीं ॥५५३॥
जो परिणामी कारण होई । क्षीर समान मरेगो सोई ।
नित्य वचन ता भीतर जोई । उन्मत्त प्रलाप बरोबर सोई ॥५५४॥
जीव अभिन्न बखान्यो जोई । किंचित् ज्ञान पछानो सोई ।
सूक्ष्मस्थूल सकल नहिं जानै । किह विधिकारण ताहि बखानै॥५५५॥

अरु ग्रह—पुनः भूत, व्यपदेश-कथन, त्यों—मदमत्त, भूतावेश वाले वत् ॥ ५५१ ॥

पूर्व संक्षेप ते मतों की प्रक्रिया के कथन समय में जो परिणामी औ नित्यादिक जगत् कारण का स्वरूप कह्या ताके निरास का आरम्भ करे "संक्षेप" इति ॥ ५५२ ॥

हनन की प्रतिज्ञा कर "संक्षेप उक्ति मैं भाख्यो जोई" से कही वार्ता को "परिणामी" पाठ से लेकर "कारण" कहे पर्यन्त से स्पष्ट करे "परिणामी" इति ॥ ५५३ ॥

जगत् कारण अनित्य होने को योग्य है, परिणामी होने ते, क्षीरवत्, इस अनुमान कर अनित्य सिद्धभये ताको नित्य कथन उन्मत्तता का सूचक है यह न बनना स्पष्ट करे "जो" इति, नित्यवचनताभीतर नाम नित्यता का कथन अनित्य में ॥ ५५४ ॥

परिणामी नित्य कथन में दोष कहकर, "ईश्वर अल्पज्ञ होने को योग्य है, जीवाभिन्न होने ते, जीववत्" या अनुमान से अल्पज्ञता सिद्ध-भये सर्वज्ञता नहीं बनेगी याते भिन्न मानो तब, "ईश्वर जड़ होने को योग्य है, जीवसे भिन्न होने ते, घटवत्, या अनुमान से ईश्वर को जड़ता होवेगी यह भिन्नाभिन्न मानने में दो दोष कहे "जीव" इति, किञ्चित्ज्ञान—अल्पज्ञ ॥ ५५५ ॥

भिन्न जीव ते हइये जोई । घट ज्यों होय अचेतन सोई ।
उक्त दोषगणते लहि त्रास । जैन मतो सब भयो निराश ।।५५६।।

दोहा

तटस्थ—

जैनी मतो निरास पिख, कहे मीमांसक आय ।
हेतु निखिल संसार को, सो सुनिये चित लाय ।।५५७।।

चौपाई

सर्वज्ञ ईशमें नहिं प्रमाण । ताते हेतु न सो पहिचान ।
श्रुति प्रधान क्रिया भव गावै । सिद्ध अर्थमें मान न पावै । ५५८।।

उक्त दोषों के समूह ते यद्यपि हम केवल भिन्नाभिन्न नहीं माने, किन्तु भिन्नाभिन्न उभय माने हैं, याते भिन्नता को देखकर अभिन्नपक्ष के पुनः अभिन्नता को देखकर, भिन्नपक्ष के दोष नहीं होवेंगे यह आशंका होवे है, तथापि तेज तिमिरवत् विरोधी होने ते, उभय की सम्भावना ही नहीं बने ।। ५५६ ।।

कर्म, ब्रह्म, की सिद्धि पूर्व उत्तर मीमांसक वेद विना और प्रमाण से माने नहीं औ लौकिक वैदिक शब्द का सिद्ध पदार्थ में शक्ति ज्ञान होवे नहीं, औ शक्ति ज्ञान हुये विना सिद्ध पदार्थ में पद से अर्थ स्मृति औ शाब्द बोध भी होवे नहीं, याते सूक्ष्म स्थूल निखिल का ज्ञाता सर्वज्ञ ईश्वर जगत् का कारण सिद्ध होवे नहीं या मीमांसक की आशंका का अनुवाद करे तटस्थ "जैनी" इति, जैनी का मत निरास नाम खण्डित हुआ देख कर बड़े आनन्द युत हुआ मीमांसक आय कर कहे है—जो निखिल संसार का हेतु कहिये निमित्त उपादान रूप कारण है सो चित्त लगाय कर हमारे पास ते श्रवणकरिये ।। ५५७ ।।

निज मत प्रसिद्धि हेतु सुनावने हेतु प्रथम सांख्य भिन्न और आस्तिकों के मत में तथा जैन मत में अंगीकार किये सर्वज्ञ ईश्वर की सर्वथा असत्ता कहे "सर्वज्ञ" इति, सर्वज्ञ ईश में कहिये "सूक्ष्म स्थूल सर्वको जानै" ऐसे जैन मत में कही रीति से सूक्ष्म स्थूल निखिल के ज्ञाता सर्वज्ञ ईश्वर के सद्भाव में नहीं प्रमाण—वेद प्रमाण नहीं, औ वेद रूप शब्द प्रमाण

कार्य युक्त अर्थ भव जोई। शब्द प्रमाण ताहिमें होई।
घटमानय यों वृद्ध उचारे। वालक ताढिग खरो निहारे ॥५५९॥

विना और प्रत्यक्षादिक प्रमाणों से हम ईश्वर को सिद्धि माने नहीं, याते वह भी नहीं, ताते नाम तिस हेतु ते अर्थात् अपनी सिद्धि में अन्य प्रमाण सहित वेद प्रमाणहीन होने ते, वह प्रमाणहोन सर्वज्ञ ईश्वर अप्रामाणिक शशशृंगवत् जगत् कारण नहीं बने, याते कर्मादिक कारण है, "सर्वज्ञ ईश में नहि प्रमाण" या वार्ता को स्पष्ट करे "श्रुति" इति, श्रुति कहिये वेद रूप शब्द प्रमाण, "प्रधान क्रिया" का क्रियाप्रधान अन्वय कर, क्रिया प्रधान कहिये प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप कार्ययुक्त साध्यवस्तु को ही कहे है याते सिद्ध अर्थ में कहिये प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप क्रियाहीन अर्थ में मानन पावै कहिये वह वेद रूप शब्द "शक्ति ज्ञान, पदार्थ स्मृति, शब्दबोध" यह तीनों न होनेसे, प्रमाणता को नहीं प्राप्त होवे, किन्तु प्रवृत्ति रूप कार्य युक्त साध्य अर्थ में ही तीनों के होने से, तहाँ हो प्रमाणता को प्राप्त होवे है ॥ ५५८ ॥

सोई कहे "कार्य" इति, जोई कहिये जो संसार में "करे" "धरे" "उपासे, "जाने", या "न करे" "न धरे" "न उपासे" "न जाने" इस रीति से विधान विधि, वा निषेध विधि, विधायक पद वोधित प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप क्रिया साध्य पदार्थ है ताहि में कहिये तिसी अर्थ में शक्तिग्रह आदिक तीनों को होने से, लौकिक वैदिक शब्द सभी प्रमाण कहिये प्रमा ज्ञान के साधक होवे है और में नहीं होवे है। क्रिया युक्त में ही शक्ति ज्ञान, पदार्थ स्मृति, शाब्द बोध होने से, प्रमाण होवे है यह कही वार्ता दृष्टान्त से स्पष्ट करे "घट" इति, आगे कहनी वार्ता समझने हेतु इहाँ यह जान लेना चाहिये=एक काम कहने वाला होवे है, एक सुन के करनेवाला होवे है, एक कहने वाले का शब्द सुनके करने वाला के किये कामको देखकर "यह काम इसने जानकर किया है", बिना जाने नहीं किया है, औ जाना कहने वाले की बोली से है, विना बोली नहीं जाना, इस रीति से ताहो वस्तु को तिस की बोली का अर्थ रूप जानने की चाह वाला होवे है, तिन तोनों के क्रम से उत्तम वृद्ध, मध्यम वृद्ध, बालक यह नाम है, तिन तीनों में जिस काल में वृद्ध कहिये उत्तम वृद्ध, घटमानय नाम "घट को लाओ" ऐसे मध्यमवृद्ध पुरुष प्रति कहे है तव ताका शब्द सुनकर तिसके समीपवर्त्ती जानने की इच्छा वाला बालक, "जिसका इसने नाम लिया है, "वह इसके शब्द का अर्थ है"

मध्यम वृद्ध घटं लै आयो। तब बालक मन ऐसे आयो।
घटानयन कार्य है जोई। तादृशज्ञान साध्य पुनि सोई ॥५६०॥
हेतु न और ज्ञानको कोई। शब्द हेतु पहिचानों सोई।
या विधि भयो शक्तिको ज्ञान। सिद्ध अर्थमें भयो न मान ॥५६१॥

ऐसे ताकी ल्यावन क्रिया से जान लेवेगा, जो "यह घट है" ऐसे ताके समीप तिस वस्तु की ओर देखे है ॥ ५५९ ॥

ताही समय उत्तम वृद्ध की वाणी सुनकर मेरे को यह "घट लाओ" कहे है याते मैं अवश्य ले आऊँ ऐसे जानकर वह मध्यम वृद्ध जब घट ले आया, तब नाम तिस काल में, मध्यम वृद्ध के किये घट लावन रूप काम को देखकर जैसे मैं जो कोऊ काम करता हूँ सो जानकर करता हूँ, तैसे इसनें भी जान के किया है, बिना जाने नहीं किया, बालक के चित्त विषे यह कल्पना होवे है, "ऐसो आयो" मूल पाठ से कही कल्पना स्पष्ट करे "घटानयन" इति, "घटानयन कार्य है जोई" इसने जो घट का ल्यावन रूप क्रिया करी है, वह क्रिया तादृश ज्ञान साध्य कहिये यह मेरे को ल्यावन हेतु कहे है याते मैं ले चलों, ऐसे ज्ञान जन्य है, बिना ज्ञान नहीं, काहे ते ? "जो जो चेतन की विलक्षण क्रिया होवे है, सो सो जान के होवे है" यह नेम है, याते यह घट ल्यावना जानने से हुआ है, विलक्षण क्रिया होने ते, मेरी विलक्षण क्रियावत्, इस रीति से घट की ल्यावन क्रिया में वहबालक ज्ञानजन्यता निश्चय करे है, इहां यह विशेष जान लेना = घटानयन कार्य तथा तादृश ज्ञान साध्य यह पक्ष साध्य कहे औ विलक्षण क्रिया होने ते, मेरी विलक्षण क्रियावत्, यह हेतु दृष्टान्त अनुमान की पूर्णता वास्ते ऊपर से कहे। ऐसे ही दूसरे में भी ऊपर से कहेंगे ॥ ५६० ॥

कही रीति से एक अनुमान से ल्यावन क्रिया में ज्ञानजन्यता निश्चय करके, अब "ज्ञान इसको बिना शब्द के नहीं हुआ", यह दूसरा ज्ञान में शब्दजन्यता का अनुमान करे "हेतु" इति, हेतु न और ज्ञान को कोई कहिये "क्रिया सब जान के होवे है" बिना जाने नहीं होवे है" औ जानना वस्तु का प्रत्यक्ष आदि षट् प्रमाणोंसे होवे है, तिन षट् में इसने काम में लगावने वाले का शब्द सुनकर "यह काम करो" ऐसे जान के किया है, याते इस काम का जानना इसको केवल उत्तम वृद्ध

के शब्द से हुआ है, बिना शब्द और ज्ञान का कारण कोई नहीं किन्तु शब्द है, याते शब्द हेतु कहिये शब्द रूप कारण वाला वह ज्ञान हमने पहचानों नाम जान्या अर्थात् "जो कार्य जिस कारण साथ अन्वय-व्यतिरेक वाला होवे है, वह तिस जन्य होवे है" याते यह ज्ञान शब्द जन्य होने को योग्य है, शब्द साथ अन्वयव्यतिरेक वाला होने ते, दण्ड साथ अन्वयव्यतिरेक वाले घटवत्, या अनुमान से शब्दजन्य निश्चय किया, आगे शब्द भी अपने अर्थ को तब कहे जब शब्द का अर्थ साथ कोई सम्बन्ध होवे सो सम्बन्ध शब्द का अर्थ साथ वृत्तिरूप ही सम्भवे है और कोई बने नहीं, वह वृत्ति शक्ति, लक्षणा, के भेद ते दो प्रकार की है गौणी का लक्षणा में, और व्यञ्जना का अनुमान में, अन्तर्भाव होने से गौणी व्यञ्जना मेलकर चार प्रकार की नहीं। दोनो में घटानयन क्रिया ज्ञानजन्य है, ज्ञान शब्द जन्य है, याते घट पद आनयन क्रिया विशिष्ट व्यक्ति में शक्ति रूप सम्बन्ध वाला है इस रीति से "घटमानय" वाक्यगत घटपद को आनयन क्रिया विशिष्ट घट में शक्ति है, ऐसे साध्य रूप अर्थ में शक्ति ज्ञान हुआ, सिद्ध में नहीं हुआ सोई कहे "या विधि" इति, या विधि कहिये "घटमानय" इत्यादि पाठ से पूर्व कही रीति से बालक को हुआ उत्तम वृद्ध के शब्दरूप व्यवहार से औ मध्यम वृद्ध के आनयन क्रियारूप व्यवहार से शक्ति को कहिये घट पद की घट रूप अर्थ में भेद सहित अभेद रूप तादात्म्य सम्बन्धात्मक वृत्ति का, और अन्य मतों में ईश्वरेच्छादि रूप वृत्ति का, ज्ञान नाम प्रवृत्ति-निवृत्तियोग्य साध्य में ही घट पद का "ल्यावन क्रिया विशिष्ट घट अर्थ है" ऐसा जानना ओ सिद्ध अर्थ में कहिये ज्ञान, वृक्ष, घर, उठाओ, लाओ, ऐसे विधायक पदन सहित वाक्य कहे बिना "भूतल में घट है", "घट हुआ" "घट होवेगा" ऐसे केवल वाक्य से बालक को इस अर्थ में घट पद की शक्ति है याते यह घट पद का अर्थ है ऐसा शक्ति का ज्ञान कहीं नहीं भान हुआ, याते सिद्ध घटादिकों में शक्ति ज्ञान हुए बिना, शक्ति ज्ञान से उत्तर काल में कभीक "घट ल्याऊँ" इत्यादि वाक्य सुनके जिसका वृद्ध व्यवहार से मेरो को अनुभव हुआ था वह "यह अर्थ है" घट पदजन्य घटरूप अर्थ का स्मृति ज्ञान और सम्पूर्ण पदजन्य पदार्थों में स्मृति ज्ञान से उत्तरकाल में "सम्पूर्ण पदार्थों के क्रिया कर्मादि सम्बन्ध का ज्ञानरूप" शाब्दबोध भी न होने ने ताकी सिद्धि नहीं होवे, एवं वैदिक वाक्यन से भी सिद्ध की सिद्धि नहीं होवे ॥ ५६१ ॥

कहुँ सर्वज्ञ शब्द उचार्‍यो। 'वागधेनु' सम सो निर्धार्‍यो।
'वाचं धेनु' उपासे जोई। उत्तम फल भव पावै सोई ॥५६२॥

याते वेद मे जो "यः सर्वज्ञः स सर्व वित्" इत्यादि ईश्वर बोधक वचन भान होवे है वह उत्तम फल प्राप्ति हेतु वाणी की धेनु रूप कर उपासना करे ऐसे वाणी की धेनु रूपता प्रशंसावत्, जो जगत् कारण है ताकी सर्वज्ञ जानकर उपासना करे ऐसे जगत् कारण की प्रशंसा बोधन करे है याते अर्थवाद रूप है, प्रमाण नहीं, यह कहे "कहूँ" इति, कहूँ सर्वज्ञ शब्द उचारयो नाम "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इत्यादि श्रुतियों में जो सर्वज्ञ पद कहा है वह वागधेनु कहिये "वाचं धेनुमुपासीत" श्रुति में कहे उपासना अर्थ वाणी को धेनु पदवत् "जो जगत् कारण है ताकी सर्वज्ञ जानकर उपासना करे" ऐसे उपासनार्थ जगत् कारण की स्तुति परक जानिये, याते प्रशंसा मात्र बोधन से अर्थवाद रूप है, सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि में प्रमाण नहीं, "स्तुति निन्दा दो में काहूँ एक का बोधक वचन अर्थवाद कहिये है", वह अर्थवाद वचन स्वतन्त्र प्रमाण नहीं होवे, किन्तु विधायक साथ मिलकर होवे है, मिलकर होने में यह बीज है स्वतन्त्र अर्थवाद वाक्यन का अर्थ कहीं बाधित है कहीं प्रसिद्ध का कथन रूप अनुवाद है जैसे वेद में लिखा है "वायु शीघ्रगामी देवता है" सो वायु का शीघ्रगमन लोक प्रसिद्ध है याते यह अनुवाद सुनकर श्रोता को कुछ फल का लाभ नहीं होवे और वेद वचन का श्रवण फल हेतु होवे है याते वायु देवतावाले याग के विधायक वचन साथ मेल कर "वायु देवता वाले याग से शीघ्र फल प्राप्त होवे है" ऐसा अर्थ बोधन करने से वह प्रमाण है, तैसे "जो सर्वज्ञ है सो सर्ववित है" यह सुनने से लाभ नहीं किन्तु जगत् कारण की उपासना में कहे वेद वाक्यन साथ मिलकर "जो जगत् कारण है ताकी वाणी की धेनुरूपतावत् उत्तम फल प्राप्ति हेतु सर्वज्ञ जानकर उपासना करे" इस रीति से प्रमाण है, स्वतन्त्र नहीं, स्वतन्त्र तत् पदार्थ के बोधक वेद वचन जगत् के कारण कर्मों के अंगरूप देवता के बोधन से अर्थवाद है एवं "तत्त्वमस्यादि", अभेद बोधक वचन "कर्म करने वाला जीव उत्तम देवभाव को प्राप्त होवे है", ऐसे उत्तम देव भावता बोधन द्वारा स्तुति करने से अर्थ वाद रूप है, सर्वज्ञ शब्द का वाग् धेनुवत् निर्धारण सुनावने हेतु वाग् धेनु कथन का निर्धारण सुनावे "वाचम्" इति, वाचं नाम जो पुरुष वाणी की गोरूप जानकर उपासना

ताते ईश न कारण हइये । कारण और जगत्को पइये ।
जीव अदृष्ट परमाणु दोई । यथायोग्य भव कारण होई ॥५६३॥

करे, सोई नाम वह संसार में उत्तम फल को पावे है जैसे यह प्रशंसा है, तैसे "जो जगत् कारण को सर्वज्ञ जान कर उपासे वह भी उत्तम फल को प्राप्त होवे है" यह भी प्रशंसा है इस रीति से वेद सर्वज्ञ ईश्वर के सद्भाव में प्रमाण नहीं ॥ ५६२ ॥

ताते नाम अपनी सत्ता में प्रमाण रहित होने ते, ईश्वर जगत् कारण नहीं, किन्तु जगत् कारण और है, और कारण कहे "जीव" इति, यथा योग्य नाम क्रम से निमित्त उपादान कारण है, ईश्वर अज्ञान नहीं, इहां "जैनी मतोनिरास पिख" से लेकर "ताते ईश न कारण हइये" पर्यन्त पाठ का स्पष्ट भाव यह है:=सम्पूर्ण भावाभाव रूप प्रमेय वस्तु का होना प्रमाणों से सिद्ध होवे है विना प्रमाण काहू का होना सिद्ध होवे नहीं औ मीमांसक मत में षड्प्रमाणान्तर्गत शब्द-प्रमाण से केवल साध्य की ही सिद्धि होवे है, सिद्ध को सिद्धि होवे नहीं, पुनः और कोई प्रमाण धर्म, ब्रह्म की सिद्धि में मीमांसक मत में मान्या नहीं, औ सम्भवे भी नहीं, तथाहि प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापति, अनुपलब्धि, भेद से भिन्न षट्प्रमाणोंमें प्रथम बाह्यान्तर भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का है सो दोऊ प्रकार का ईश्वर सिद्धि में प्रमाण नहीं, काहे ते ? ईश्वर रस गन्ध शब्द स्वरूप नहीं, याते रसना, घ्राण, श्रोत्र से सिद्ध होवे नहीं, तैसे रूप रस वाला द्रव्य स्वरूप नहीं, याते त्वचा चक्षु से सिद्ध होवे नहीं, इस रीति से ईश्वर सिद्धि में बाह्य प्रत्यक्ष नहीं, तैसे आन्तर भी नहीं, काहे ते ? आन्तर प्रत्यक्ष मन से अपने आत्मा का ही होवे है, दूसरे का नहीं होवे, याते दूसरे आत्मावत् ईश्वर का भी नहीं होवे, तैसे अनुमान भी नहीं, काहे ते ? जैसे वह्नि का साधक धूम हेतु है, ऐसे ईश्वर का साधक कोई हेतु नहीं सम्भवे, तैसे उपमान भी नहीं, काहे ते ? जैसे गवय में गोका सादृश्य रहे है तैसे ईश्वर में काहू का सादृश्य रहे नहीं, तैसे अर्थापत्ति भी नहीं, काहे ते ? जिस वस्तु की अन्यथानुपपत्ति से ईश्वर की सिद्धि होवे ऐसे कोई रात्रि भोजन साधक पुरुष की पीनतावत् ईश्वर का चिह्न नहीं, तैसे अनुपलब्धि भी नहीं, काहे ते ? अनुपलब्धि से केवल अभाव की सिद्धि होवे है औ ईश्वर में अभाव रूपता का अङ्गीकार नहीं, इस रीति से शब्द बिना अन्य प्रमाणों

से ईश्वर की सिद्धिसम्भवे नहीं, वैसे शब्द से भी नहीं बने, काहे ते ? शब्द सें वस्तु सिद्ध होने में प्रथम यह प्रक्रिया है जैसे काहू पुरुष को जब नेत्र से घट का प्रत्यक्ष ज्ञान उपजे है तब वह ज्ञान नेत्रजन्य हुआ याते नेत्र तामें करण होवे है औ घटसाथ नेत्र के सम्बन्ध बिना नहीं होवे याते घट का सम्बन्ध द्वार होवे है औ प्रकाश के सहकार बिना अन्धेरे में नहीं उपजे, याते प्रकाश का सम्बन्ध सहकारी कारण होवे है, घट का प्रत्यक्षज्ञान फल है, तैसे शब्द से भी जब काहू पुरुष को घट का ज्ञान उपजे है तब कानों में घट पद के श्रावण ज्ञान बिना नहीं होवे, याते पद का श्रावण ज्ञान करण है औ विदेशी बोली सुने भी तासे अपने अर्थ का ज्ञान नहीं होवे, याते घट पद से अपने घट रूप अर्थ का ज्ञान द्वार है औ घट पद से अपने घट रूप अर्थ का ज्ञान भी शक्तिवृत्ति ज्ञान की सहायता बिना नहीं होवे, याते शक्ति ज्ञान सहकारी कारण है सो सहकारी कारणरूप शक्ति वृत्ति का ज्ञान, १. व्याकरण, २. कोश, ३. उपमान, ४. आप्तवाक्य, ५. व्यवहार, ६. वाक्य शेष, ७. विवरण, ८. प्रसिद्ध पद की समीपता, इन आठ कारणों से होवे है, आठों में व्यवहार से शक्ति ज्ञान की रीति "घट मानय यों वृद्ध उचारे" से ले "या विधि भयो शक्ति को ज्ञान" पर्यन्त पाठ से मूल में दिखाई औ आगे दिखावेंगे, शेषन से ऐसे होवे है, यथा "रामः" इहां राम पद के उत्तरवर्ती विसर्ग की एकत्व संख्या में शक्ति है यह व्याकरण ते शक्ति ज्ञान होवे है, उपमान से आगे दिखावेंगे। नीलादि पदों का नीलगुण वाला भी अर्थ होवे है ऐसे नीलादि पदों की नीलादि गुण में औ नीलादि विशिष्ट गुणी में शक्ति कोश ते प्रतीत होवे है, पिक पद का वाच्य "कोकिल है" ऐसे पिकादि पदों का कोकिल आदि अर्थों में शक्तिज्ञान आप्त वाक्य ते होवे है, यव (जौ) का नाम शास्त्री लोग कहे हैं, तथा बसन्त ऋतु में और सब औषधि सूख जावे है औ कणशों वाले यह बड़े प्रसन्न हुए स्थित रहे है या वाक्य शेष ते यव पद की शक्ति का ज्ञान होवे है एक पद के समान अर्थ वाले दूसरे पद से प्रथम पद के अर्थ का कथन विवरण कहिये है "गज घूमता" कह्या गज पद के अर्थ ज्ञान हीन को "हस्ती घूमता है" कहने से शक्ति ज्ञान विवरण से होवे है। कमलों में द्विरेफ गुन्जार करे है इहां प्रसिद्ध पद कमल को समीपता से द्विरेफ पद की भ्रमर में शक्ति प्रतीत होवे है, इस रीति से आठों से शक्ति ज्ञान होवे है परन्तु सर्व की अपेक्षा कर प्रथम शक्ति वृत्ति का

ज्ञान वृद्ध व्यवहार ते ही होवे है औ साध्य में ही होवे है, पश्चात् शक्तिज्ञानसहकृत उपमान आदिकों से सिद्ध में होवे हैं, जैसे उत्तम वृद्ध का "गामानय" कहा वाक्यश्रवणकर मध्यम वृद्ध गवानयन करे है और ता मध्यम वृद्धकृत गवानयन को देखकर "गोपद का वाच्यार्थ जान लेवों" ऐसे शक्ति ज्ञान की इच्छा वाला बालक "इदं गवानयनं, ज्ञानजन्यं, विलक्षण क्रियात्वात्, मदीय विलक्षण क्रियावत्" ऐसे गो की आनयन क्रिया में मध्यम वृद्ध के ज्ञान की कार्यता का अनुमान करे है औ ज्ञान में, "तादृश ज्ञानं, शब्द जन्यं, शब्दान्वयव्यतिरेकवत्वात्" यो यद् अन्वय व्यतिरेकवत् तद् तज्जन्यं यथा "दण्डान्वयव्यतिरेकवान् घटः दण्ड जन्यः" इस रीति से शब्दजन्यता का अनुमान करे है औ शब्द काहू वृत्ति रूप सम्बन्ध बिना अर्थ में ज्ञान नहीं जने किन्तु वृत्ति रूप सम्बन्ध से जने है. याते प्रथम दो चार मिली चीजों में जैसे दूर से वा मोटी निगाह से एकता प्रतीत होवे है पीछे अच्छी तरह से देखे उनमें एक एक जुदी निगाह आवे है, तैसे पहले "घटमानय" सुनकर जानने वाला समुदाय की आनयन क्रिया विशिष्ट घट में शक्ति ग्रहण करे है पीछे "घट ले जावो", "गो लावो", इत्यादिक और वाक्यन मेंक्रम से आनयन पद घट पद के अकथन काल में, तिनके अर्थों की अप्रतीति औ कथन काल में प्रतीति रूप अन्वय व्यतिरेक से घट पद का वाच्य व्यक्ति मात्र है ऐसे घटादि पदों की केवल व्यक्ति में शक्ति ग्रहण करे है, इस रीति से वृद्ध व्यवहार द्वारा प्रथम साध्य में शक्ति ग्रहण कर, पश्चात् शक्ति ज्ञान सहकृत उपमान आदिकों से सिद्ध में करे है, जैसे गोपद के शक्ति ज्ञान की सहायता से आरण्यक पुरुष ते श्रवण करी सादृश्य को गवय में देखकर "यह पशु गवय पद वाच्य है" ऐसे गवयपद की गवय में शक्ति को ग्रहण करे है ऐसे ही शक्ति ज्ञान की सहायता सहित कोशादिकों से घटादिक पदों की कलशादिक अर्थों में शक्ति ग्रहण करे है, इस रीति से प्रथम साध्य में शक्तिग्रह होकर पश्चात् उपमान आदि कारणों से सिद्ध में होवे है। सिद्ध साध्य शब्द प्रकरण में बार बार आवे है याते तिनका अर्थ लिखे है—"प्रवृत्ति निवृत्ति योग्य वस्तु साध्य कहिये है" "प्रवृत्तिनिवृत्ति योग्यताहीन वस्तु सिद्ध कहिये है" प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों प्रयत्न के भेद हैं, प्रवृत्ति निवृत्ति योग्यता, प्रवृत्ति निवृत्तिरूप, प्रयत्न साध्यता रूप है, प्रतीति ताकी प्रेरणा बोधक "ले आवो" "ले जावो" इत्यादि पद सहित वाक्य ते होवे है, याते वह प्रेरणा

बोधक पद का अर्थ है काहे ते ? "जिस पद के न उच्चारण से जिसकी प्रतीति न होवे, औ जिस पद के उच्चारण से जिसका बोध होवे, वह तिसका अर्थ होवे है", आगे 'घटमानय' इत्यादि वाक्य श्रवण कर "आनयन क्रिया मेरे यत्न साध्य है" ऐसे प्रथम तिस प्रेरणा बोधक पद के अर्थ प्रवृत्ति निवृत्ति रूप यत्न साध्यता धर्म का आनयन क्रिया में अन्वय होवे है पश्चात् क्रिया द्वारा घटादिकों में होवे है काहे ते ? यह अनुभव है प्रथम कर्ता के प्रयत्न से क्रिया उपजे है तदनन्तर कर्मादिक उपजे हैं याते साक्षात् साध्य पदार्थ क्रिया होवे है परम्परा कर्मादिक होवे हैं औ "गो सदृश गवयः है" भूतल में घट है" इत्यादि वाक्यन में जान, बूझ, देख, इत्यादि प्रेरणा बोधक पदों के अभाव ते तिनके अर्थ यत्न साध्यता धर्म के सम्बन्ध रहित गवय आदिक सिद्ध होवे हैं कही रीति से व्यवहार ते साध्य में, उपमानादिकों ते सिद्ध में शक्ति ज्ञान होवे है औ शक्ति ज्ञान होकर दोनों में पदार्थ-स्मृति औ शाब्द बोध होवे है, याते आगे कहनी "ते घर पूत भयो भव मंडन" इत्यादि अनुभव सिद्ध रीतिसे साध्यवत् सिद्ध ईश्वर की भी "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इत्यादि वैदिक शब्दन ते शक्ति ज्ञान, पदार्थ स्मृति शाब्द बोध होने ते, सत्ता सिद्ध होवे है यह सर्व की रीति है और मीमांसक तो ऐसे कहे हैं = उत्तम वृद्ध का वचन सुनकर घटानयन क्रिया मेरे प्रयत्न साध्य है, मध्यम वृद्ध को ऐसे आनयन में यत्न साध्यता का ज्ञान होवे है, सो ज्ञान का विषय यत्न साध्यता प्रेरणा बोधक आनयन पद का अर्थ औ घट में घटत्ववत् आनयन क्रिया में विशेषण है, याते ताका अन्वय प्रथम आनयन क्रिया में होवे है तदनन्तर क्रिया द्वारा घटादिक कर्म में होवे है याते उत्तम वृद्ध का वाक्य श्रवण कर, करी मध्यम वृद्ध की आनयन क्रिया को देख के ताके जनक ज्ञानका अनुमान करता हुआ बालक "घटमानय" वाक्य गत पद मात्र से यत्न साध्यता विशेषण और आनयन क्रिया विशेष्य वाले साध्य गोचर विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त होवे है सो विशिष्ट ज्ञान व्याप्य है विशेषण ज्ञानता का व्यापक है, काहे ते ? विशेषण ज्ञान पूर्व काल में, औ अन्य देश में भी होवे है, विशिष्ट ज्ञान विशेषणज्ञान से उत्तर काल में औ विशेषण वाले देश में होवे है, जैसे दण्डज्ञान दण्डीज्ञान से पूर्व काल में औ पुरुष शून्य देश में भी होवे है याते व्यापक है औ दण्डीज्ञान दण्डज्ञान से उत्तर काल में और दण्ड वाले पुरुष में ही होवे है याते व्याप्य है, व्याप्य की सत्ता व्यापक के अधीन होवे है याते व्यापक दूर भया व्याप्य स्वयं दूर होवे है जैसे अग्नि दूर हुए धूम

इति मीमांसक बैन उचारे । सो असत्य नहिं सार विचारै ।

अब सिद्धान्ती मीमांसक मत का श्रुति, युक्ति द्वारा निराकरण करे है ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

यह सर्वज्ञ सर्ववित कहिये । ज्ञानमयी जाको तप कहिये । ५६४।।
इत्यादिक हैं श्रुति सु जेती । ईश्वर माहिं प्रमाण सु तेती ।
वेद बखाने क्रिया प्रधान । सिद्ध ईश में नहिं प्रमान ।।५६५।।

आपही नहीं रहे है, पुनः दण्ड ज्ञान दूर हुए दण्डीज्ञान स्वयं दूर होवे है, तैसे गवानयन मेरे यत्न साध्य है या विशिष्ट ज्ञान मात्र का व्यापक जो यत्न साध्यता का ज्ञान ताके जनक प्रेरणा बोधक पदों के अभाव ते वह ज्ञान न हुए विशिष्ट ज्ञान स्वयं दूर होवे है, याते "गों सदृशो गवयः" ऐसे उपमान आदिकों से शक्ति ज्ञान ही न होने से, तिनसे पदार्थ स्मृति, शाब्द बोध भी नही होवे है, किन्तु यह सब मूक वाक्य है तद्वत् "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इत्यादिक अर्थवाद भी मूक वाक्य है, याते तिनसे ईश्वर सिद्धि नहीं होवे इत्यलम् ।। ५६३ ।।

दोष योग्यता सूचन करता हुआ तटस्थ समाप्ति करे "इति मीमांसक" इति, इति नाम "सर्वज्ञ ईश में नहि प्रमाण" ऐसे वचन कहे है परन्तु सो नाम वह, तिनके कहे वचन असत्य है, काहे ते ? जिस कारण ते तिनमें श्रेष्ठ विचार नही, तटस्थ का वचन सुनकर प्रथम "सर्वज्ञ ईश में नहि प्रमाण" इत्यादि पाठ से जगत् कर्ता सर्वज्ञ ईश की सिद्धि में प्रमाण नहीं कहते मीमांसक प्रति ईश्वर की सिद्धि में वेद प्रमाण कहे सिद्धान्ती "यह" इति यह नाम जो ईश्वर, पदार्थत्व वस्तुत्व आदि रूप सामान्य धर्म से सर्व गोचर ज्ञान वाला है, वही सर्व वित कहिये नाम घटत्व पटत्वादि विशेष धर्म से सर्व गोचर ज्ञान वाला है, पुनः ज्ञानमयी जाको तप कहिये सर्वगोचर ज्ञान रूप ही जिसका तप है, कृच्छ्र चान्द्रायण रूप नहीं ।। ५६४ ।।

"इत्यादिक" इहां आदि शब्द से और भी "यः काल कालो गुणी सर्वं विद्या" इत्यादिक ईश्वर साधक श्रुति जान लेनी, वह सभी ईश्वर विषे प्रमाण है याते सर्वज्ञ ईश्वर जगत् का कारण है, ईश सद्भाव में श्रुति प्रमाण कह कर, पूर्व मीमांसक ने वेद क्रिया प्रधान वस्तु को कहे है याते

ऐसो मतो तुम्हारो जोई । करौं निराश सुनो अब सोई ।
घटमानय यह ज्यों प्रमाण सिद्ध अर्थ में त्यों पहिचान ॥ ६६॥
शाब्द बोध याहि ते जैसो । सिद्ध अर्थ में होवै तैसो ।

(अब मीमांसक और सिद्धान्ती का प्रश्नोत्तर रूप सम्वाद)

पूर्वपक्षी—
ननु किह ठौरसु तोहि निहार्‍यो । जाते तामें मान उचार्‍यो ॥५६७॥

सिद्धान्ती—
उत्तर कहौं सुनो चित लाई । ऐसी ठौर सु दयौं दिखाई ।
कार्य तहाँ कदाचित नाहीं । शब्द प्रमाण आहि तामाहीं । ५६८॥

सिद्ध ईश्वर विषे प्रमाण नहीं यह कह्या खण्डन हेतु ताका अनुवाद करे "वेद" इति ॥ ५६५ ॥

निराश सुनावे "घटमानय" इति, ज्यों कहिये जिस प्रकार शक्ति ज्ञान, पदार्थ स्मृति शाब्द बोध का जनक होने ते साध्य वस्तु बोधन में "घटमानय" यह वाक्य प्रमाण हैं, सिद्ध अर्थ में नाम प्रवृत्ति निवृत्ति शून्य अर्थ में, शक्ति ज्ञान, पदार्थ स्मृति, शाब्दबोध, तीनों के जनने से "तेरे घर पुत्र हुआ" इत्यादि सिद्ध वाक्यन को पुनः तद्वत् "नः सर्वज्ञः, इत्यादि सिद्ध वाक्यन को तैसे प्रमाण जानो ॥ ५६६ ॥

तुल्य प्रमाणता जानने में शाब्द बोध की समानता भी कहे "शाब्द" इति, शाब्द बोध = घट कर्म वाली आनयन क्रिया का कर्ता तूँ है, ऐसा शब्दजन्यज्ञान, याहि ते नाम घटमानय वाक्यते जैसे होवे है, सिद्ध अर्थ में नाम क्रिया हीन अर्थ में भी, होवे तैसो कहिये साध्यवत् ही "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" नाम जो सामान्य रूप से सर्व गोचर ज्ञान वाला है ऐसे वही विशेष रूप से सर्व गोचर ज्ञान वाला है ऐसे श्रुतियों से शब्दजन्य ज्ञान होवे है याते "घटमानय" वाक्य को यथार्थ ज्ञान की करणता कर प्रमाणतावत् यह भी यथार्थ ज्ञान का करण होने ते प्रमाण है ऐसे भये "नहीं प्रमाण" कथन असंगत, न देखी बात से ही मत जीतने की इच्छा करे या अभिप्राय से पूछे "ननु" इति, तामें—सिद्ध में ॥ ५६७ ॥

सिद्धान्ती उत्तर कहे "उत्तर" इति, तहां—उस ठौर में ॥ ५६८ ॥

सवैया

ते घर पूत भयो भव मंडन, वंश वधावन कारण सोई ।
हे नृप आहि सुता तुमरी भव, गर्भ गहे कुलरीति सु खोई ॥
होत प्रसन्न भयो मुख पूर्व, वहुर मलीन भयो दुख जोई ।
या विधि लोकविषे पिखिये पुनि, सिद्धप्रमाण तथा श्रुति होई॥५६९॥

चौपाई

जीव ब्रह्म एकता जोई । आगे प्रकट कहेंगे सोई ।
सो पुनि नित्य सिद्ध पहिचान । योंही तामें वेद प्रमान । ५७०॥
'वाग्धेनु' सम भाषण जोई । ताते अहे असंगत सोई ।
स्वार्थमाहिं न वाधक कोई । उपासन पर कहो कैसे होई ॥५७१॥

ठौर कहे—"ते घर" इति, भवमण्डन—पृथ्वीभूषण, या विधि—मुख की प्रसन्नता मलिनता रूप हेतुओं से, लोक विषे नाम लौकिक वाक्यन में जैसे प्रमाणता वने है, तैसे सिद्ध की वोधक श्रुतियों को भी होवे है, इहां यह भाव है=ते घर पूत भयो औ सुता तुमारी ने गर्भ ग्रहण किया, यह वाक्य श्रवण कर भई मुख प्रसन्नता मलीनता को देखकर प्रसन्नता मलीनता सकारणक है, कार्य होने ते, या अनुमान से, प्रसन्नता मलीनता के हेतु मुख दुख सकारणक है, कार्य होने ते, या अनुमान से ताके हेतु ज्ञान का औ ज्ञान शब्द जन्य है, और कारण न देखने से, इस अनुमान ते ज्ञान के हेतु शब्द का ग्रहण करते वालक ने सिद्ध भी पुत्रजन्म औ सुता के गर्भ ग्रहण में शब्द की शक्ति ग्रहणकरी है, याते कार्य तहां न रहे भी शाब्द वोध देखने ते, साध्य में शक्ति ग्रह का नेम नहीं, याते "सर्वज्ञादिक" पदों से भी अपने अपने अर्थों का ज्ञान होने कर सिद्ध भी ईश्वर, श्रुति से सिद्ध होने से ताको जगत् कारणता समीचीन है ॥५६९॥

कही वात का अन्यत्र भी उपदेश करे "जीव" इति ॥ ५७० ॥

उक्तरीति से सिद्ध में शक्तिग्रह दिखलाकर वाक्य को उपासना परत कथन की असंगति कहे "वाग्धेनु" इति, ताते—वेद को सिद्ध में भी प्रमाण होने ते, असंगतता में हेतु कहे—"स्वार्थ" इति, स्वार्थ माहिं—मुख्यार्थविषे, न वाधक कोई नाम शक्ति ग्रहाभावादिक कोई वाधक नहीं, याते उपासना परकश्रुति कैसे बने अर्थात् जैसे "वाग्धेनु" इत्यादिक

ईश्वर माहिं वेद प्रमान । एक कह्यो दूसर अनुमान ।
होय विचित्र कार्य जोई । तथा ज्ञानमत साध्य सु होई ॥५७२॥
विचित्र कार्यत्व हेतु उर आनो। दृष्टांत विचित्र सद्म पछानो ।
प्रमाण उतंस वेद निज गायो । अरु अनुमान प्रकट दिखलायो॥५७३॥
निर्जर प्यारे ईश्वर जोई । या विधि सिद्ध पछानो सोई ।
कारण ताते होवे सोई । तेरे कहे न कारण दोई ॥५७४॥

अब मीमांसक मत के अदृष्टानुवाद के खण्डन का अतिदेश कर कहते हैं ।

दोहा

जहिं नैयायिक मत हन्यो, बहु विधि युक्ति उदार ।
अदृष्ट परमाणु दोनमें, सोई लेहु विचार ॥५७५॥

चौपाई

यों मीमांसक मतहि निवार्‍यो । कर संक्षेप न बहु विस्तार्‍यो ।
अब पुनि और कहे मत जोई । सो सुनिये भाखौं अब सोई ॥५७६॥

वाक्यन में तात्पर्य का न बनना धेनु पद को मुख्यार्थता का बाधक है, ऐसे इहां कोई नहीं, याते "उपासना परतः कथन असंगत है ॥ ५७१ ॥

सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि में वेद को प्रमाणता कहकर, ताकी दृढ़ता हेतु अनुमान करे "ईश्वर" इति, एक कह्यो पूर्व के संग (अन्वय कर कर लेना), अनुमान करे "होय" इति, "विचित्र कार्य पक्ष है, साध्य कहे "तथा" इति, तथा ज्ञानमत साध्य नाम विचित्र कार्यों को विषय करने वाला जो ज्ञान ता ज्ञान वाले कर जन्य है, ऐसे ज्ञान वाला जीवों को अल्पज्ञ होने ते और ही बने है, सोई ईश्वर है यह भाव है ॥ ५७२ ॥

हेतु कहे "विचित्र" इति, विचित्र कार्यत्व—विचित्र कार्यपना, विचित्रकार्यं, विचित्रकार्यविषयकज्ञानवत् साध्यम्, विचित्रकार्यत्वात्, विचित्र सद्मवत्, यह ईश्वर साधक अनुमान का स्वरूप जान लेना, उत्तंस-शिरोमणि ॥ ५७३ ॥

प्रमाण दिखाकर प्रमाणाभाव ते ईश्वर को असिद्धि कहते के कान खैंचे "निर्जर" इति, निर्जर प्यारे नाम देवपशु, ताते—प्रमाण सिद्ध होने ते, दोई—अदृष्ट परमाणु ॥ ५७४ ॥

हमारे कहे दोऊ कारण काहे नहीं ? तहां कहे "जहिं" इति ॥५७५-५७६॥

अब तटस्थ जगत कारणवाद में मतान्तर कथन करे हैं।

चौपाई

तटस्थ—

केचित् ब्रह्मा हेतु बतावैं। श्रुति स्मृति तामें दिखलावैं।
हिरण्यगर्भ समवर्तत भयो। भूतपती जग ता निर्मयो ॥५७७॥
ऐसे श्रुति कहे निर्णीत। जग कारण ब्रह्मा धर चीत।
भूतन का कर्ता निज आदि। ब्रह्मा अग्रे रहे अनादि ॥५७८॥
ऐसे स्मृति सु हेतु बतावै। संशय को सब पुंज मिटावै।

सिद्धान्ती—

ताको दूषण देय संन्यासी। परमहंस निज ब्रह्म निवासी ॥५७९॥
जैसी श्रुति स्मृति इह हइये। तैसो और नहीं क्या पइये।
ब्रह्माको जाने उपजायो। निखिल वेद पुनि जाहि पढ़ायो॥५८०॥
ऐसी श्रुति और पुनि हइये। जाकी गति नहिं औरे पइये।
तैं दिखलाई स्मृति जोई। ता प्रथमांश न देख्यो कोई ॥५८१॥
प्रथम शरीरी ब्रह्मा हइये। पुरुष नाम कर सो जग कहिये।
ताके प्रथम भाग अस कहियो। सो है जीव न संशय रहियो ॥५८२॥

तामें ब्रह्मा को हेतुता में, श्रुति पढ़े "हिरण्यगर्भ" इति हिरण्यगर्भ-ब्रह्मा, समवर्ततभयो—उत्पत्ति ते पूर्व काल में होता हुआ, भूतपती—भूतों का वह स्वामी है औ सम्पूर्ण जगत् तिसने रचा है ॥ ५७७ ॥

स्मृति कहे "भूतन का" इति, निज आदि आपही आदि है, ताकी आदि और नहीं ॥ ५७८ ॥

खण्डन का आरम्भ करे "ताको" इति, संन्यासी—वेद सिद्ध कारण के सम्यक् निश्चय वाले शङ्कराचार्य आदिक ॥ ५७९ ॥

दूषण कहे "जैसी" इति, और श्रुति कहे "ब्रह्मा को" इति ॥ ५८० ॥

और स्मृति दिखावन हेतु कहे "तै दिखलाई" इति, ताप्रथमांश-तिस स्मृति का प्रथम भाग ॥ ५८१ ॥

अर्थते प्रथम भाग कहे "प्रथम" इति, सो है जीव नाम ब्रह्मा जीव

परार्ध दोय ताकी है आउ । याते भी वह जीव स्वभाउ ।
सम वर्तत अरु कर्ता आदि । उत्तर कार्य करण अनादि ॥५८३॥

अब तटस्थ सिद्धान्ती को प्रतिज्ञा हानि रूप उपालम्भ देता है ।

चौपाई

तटस्थ—

वेद विरुद्ध वाद हैं जे ते । करौं निराश याहिमें ते ते ।
यह विधि अहे प्रतिज्ञा थारी । सो अब काहे तोहिं विसारी ।५८४॥
मीमांसक हैरण्यगर्भ हैं जेई । वैदिक दोन पछानो तेई ।
ताको मत अब तोहि निवार्‍यो । ताते पूर्व वचन विसार्‍यो ॥५८५॥

सिद्धान्ती—

सत्य बखानी वैदिक दोई । नाहिं अवैदिक भाखे कोई ।
वैदिक अंश ताहि की जेती । नाहिं निषेधी यामें तेती ।५८६॥

है अर्थात् "ब्रह्मा जीव है, शरीरी होने ते, जीववत्" या अनुमान से ताको जीवता में संशय नहीं ॥ ५८२ ॥

ब्रह्मा जीव है, परिमित आयु वाला होने ते, जीववत्, या अनुमान से भी ताको जीवता सिद्ध होवे है यह कहे "परार्ध" इति, परार्द्ध संख्या के १८ वें स्थान का नाम है। ननु श्रुति गत "समवर्तत" औ स्मृतिगत "आदि" पद से ब्रह्मा ही निरपेक्ष कारण प्रतीत होवे है यह आशंका वारण हेतु कहे "समवर्तत" इति, अर्थात् श्रुति स्मृति में "समवर्तत" और "आदि कर्ता" कथन उत्तर कार्य की अपेक्षा कर अनादिता तात्पर्य से है, और जीवभये, ईश्वर, हिरण्यगर्भ, विराट्, इस प्रकार ग्रन्थों विषे ईश्वर के रूपों ये हिरण्यगर्भ की गणना कैसे ? या आशंका का परिहार तो गौणी वृत्ति से सूक्ष्म प्रपञ्च का नियन्ता ईश्वर भी ताका अर्थ है याते तीनों में गणना है, ऐसे होवे है ॥ ५८३ ॥

तटस्थ सिद्धान्ती प्रति प्रतिज्ञा हानि रूप निग्रह स्थान कहे "वेद" इति ॥ ५८४ ॥

प्रतिज्ञा का विसारणा स्पष्ट करे "मीमांसक" इति, हैरण्यगर्भ—ब्रह्मा के उपासक, ताको—दोनों को, ताते—वैदिको का मत निवारणे ते ॥५८५॥

जिस अंश में वेदानुसारता है वाको न दूर करने से, प्रतिज्ञा हानि दोष नहीं, यह बोधन हेतु सिद्धान्ती सत्कार करे "सत्य" इति ॥ ५८६ ॥

याग स्वर्ग दोनों भव जेई साधन साध्य बखाने तेई ।
ब्रह्मा कारण भव में जोई । सो उत्तर कार्य कर होई ॥५८७॥
सो हम नाहिं निवारण करियो । मिथ्या काहि उलंभ उचरियो ।
वेद विरुद्ध अंश थी जेती । वही निषेधी यामें तेती ।५८८॥
या विधि वाद विरोधी जे ते । सुधी निषेध करें सब ते ते ।
या विधि वादी करे निराश । वैदिक मत अब होय प्रकाश ॥५८९॥
माया सबल ब्रह्म है जोई । सब प्रपंच उपावै सोई ।

पूर्वपक्षी—

ब्रह्म असंग न कारण होई । निर्विकार जाते है सोई ॥५९०॥
माया संग जे तामहिं कहो । असंगादिक सब लक्षण दहो ।
लक्षण दहो न कार्य बन है । एक प्रकार न बहु विधि जन है ॥५९१॥

वैदिक अंश कहे "याग" इति, साधन साध्यनाम करण फल, मीमांसकों की वैदिक अंश कहकर हैरण्यगर्भों की कहे "ब्रह्मा" इति, उत्तर कार्य कर—उत्तर कार्य की अपेक्षा कर ॥ ५८७ ॥

सो नाम याग को साधनता औ स्वर्ग को साध्यता मीमांसक मत में, और उत्तर कार्य की अपेक्षा कर ब्रह्मा को अनादिता हैरण्यगर्भ मतमें ॥५८८॥

"कीजे सो प्रकार प्रकाश" पूछकर विचार चलावते प्रति विरोधी पक्षों के खण्डन का उपसंहार सुनावे "या विधि" इति, विरोधी वादियों के निरास का प्रकार सुनाकर पातञ्जल मत में "याहिपक्ष" इत्यादि पाठ से करी प्रतिज्ञा पूरी करे "या विधि" इति ॥ ५८९ ॥

वैदिक मत का प्रकाश करे "माया" इति, मायासवलब्रह्म कहिये माया उपहित ईश्वर संज्ञा को प्राप्त भया जों शुद्धब्रह्म निद्रा-शक्ति विशिष्ट जीववत्, सम्पूर्ण चराचरात्मक प्रपञ्च को उत्पत्ति करे है अर्थात् सम्पूर्ण प्रपञ्च का ऊर्णनाभिवत् उभयविध कारण होवे है। ननु ब्रह्म तुम्हारे मत में संग रहित है पुनः क्रिया शक्ति आदिक विकार हीन है औ लोकमें संगी पुनः क्रिया शक्ति आदिक विकार वाले कुलालादिकों को कारणता देखी है, याते ब्रह्मको कारणता नहीं बने ? यह आशंका करे "ब्रह्म" इति ॥ ५९० ॥

मत होवे असंग निर्विकार को कारणता, हम माया का संग पुनः

जाते एक रूप है जोई। वहु विधि क्यों उपजावे सोई।
शुक्ल तंतु भव भीतर जहाँ। शुक्लो पट उपजावै तहाँ ॥५९२॥
कार्य बहुरो सदहूँ होई। शक्ति विशिष्ट सदा है सोई।
शक्ति निराश्रय कहूँ न हइये। जन्य न सो काहूँकी पइये ॥५९३॥
कदाचित् कार्य जाकर होई। अस सहकारी भाखो कोई।
सो उपकार जने के नाहीं। द्वितीय पक्ष तिहि मानो काहीं ॥५९४॥
कारण महिं उपकाराधान। प्रथम पक्ष कूटस्थहि हान।
सत्य उपायो कार्य जोई। नाहिं असत्य होत अब सोई ॥५९५॥

मायाकृत विकार मान कर कहे हैं? यह आशंका कर संगरहित में, संगमाने असंगता, पुनः विकार रहित में विकार माने, निर्विकारता रूप कूटस्थता आदिक ब्रह्म के लक्षण दूर करोगे सोई कहे "माया" इति। किञ्च "खाया भी लशुन रोग दूर न हुआ" या न्याय से असंगादिक लक्षणों के दूर किये भी शुक्ल तन्तुओ से शुक्ल ही पट देखने कर, एक रूप उपादान से विचित्र रचना नहीं वनेगी यह दोषान्तर कहे "लक्षण" इति, न जनने में हेतु कहे "एक" इति ॥ ५९१ ॥

एक को वहु विध न जनना शुक्ल तन्तुओ के दृष्टान्त से स्पष्ट करे "जाते" इति ॥ ५९२ ॥

सामग्रीं के सत्त्व से सर्वदा कार्य प्रसंगते प्रलय की भी असिद्धि होवेगी यह दोषान्तर कहे "कार्य" इति, सामग्री का सत्त्व कहे "शक्ति" इति, सदा विशिष्टता सिद्ध करे "शक्ति" इति, अर्थात् शक्ति ब्रह्म बिना और के आश्रित नहीं, पुनः अनादि है याते ब्रह्म सदा शक्ति विशिष्ट है ऐसे भये सदा सर्व कार्य होने कर प्रलय दूर होवेगी ॥ ५९३ ॥

सहकारियोंके सहकार से कभी कार्य होने ते, प्रलय की असिद्धि नहीं ? यह आशंका कर कहे "कदाचित्" इति, कदाचित् कार्य कहने से प्रलय की सिद्धि कही, होवे सहकारियों से प्रलय की व्यवस्था, परन्तु सहकारी अपने होने काल में कछु सहायता करे है वा नहीं ? यह पूछे "सो" इति, नहीं पक्ष में अंगीकार को निष्फलता कहे "द्वितीय पक्ष" इति ॥ ५९४ ॥

अंगीकार को सफलता सिद्धि हेतु सहकारियों के किये सहायतारूप

सत्य निषेध न करहै कोई । ताहि निषेध कहो क्यों होई ।
'नेति नेति' यह श्रुति जो व्यर्थ । बिना निषेध लहै नहिं अर्थ ॥५९६॥
होवे जन अनमोक्ष प्रसङ्गा । जाते भव नहिं होवे भङ्गा ।
व्यर्थ भयो गुरु या जगमाहीं । ताको अर्थ न को भव माहीं ॥५९७॥
इत्यादिक दूषण बहु आवै । वैदिक काहि सिद्धान्त ठहरावै ।

अब सिद्धान्ती पूर्वपक्षी को सदृष्टान्त उत्तर देता है ।

सिद्धान्ती—

दूषणको करहौं उद्धार । सावधान मनमें निर्धार ॥५९८॥
मायाका आध्यासिक संगा । असंग विषे नहिं लक्षण भंगा ।
नील गगन ज्यों अहै असंगी । अध्यास अधीन भये ते संगी ॥५९९॥

विकार से विकार होने कर ब्रह्म को निर्विकारता रूप कूटस्थता दूर होवेगी यह कहे "कारण" इति, कारणमहिं—मायासबल रूप जगत् के हेतु ब्रह्म में सहकारी, उपकाराधान कहिये सहायता धारण करे है अर्थात् उपकार जने है, इस प्रथम पक्ष में कूटस्थ की हानि होवेगी। किञ्च कटु बीज से उपजे अंकुर को कटुता नेमवत् सत् के कार्य को सत्यता होने ते निषेध रूप विषय के अभाव ते, ताही को बोधन से सार्थक होनेवालीं "नेह नानास्ति" श्रुति को भी व्यर्थता होवेगी यह और दोष कहे "सत्य" इति ॥ ५९५ ॥

न असत्य होने में हेतु कहे "सत्य निषेध" इति ॥ ५९६ ॥

प्रपञ्च का निषेध न भये, ताकी निवृत्ति सहित परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति का अभाव प्रसंग औ मुक्ति के अभाव भये, ताकी प्राप्ति हेतु गुरु धारण को व्यर्थता होवेगी सोई कहे "होवे" इति ॥ ५९७ ॥

इत्यादिक – इहां आदि शब्द से वैराग्यआदिकसाधनों के धारण को निष्फलता होवेगी यह जान लेना, दूषणों के रह्या ठहरावना कठिन है वा न रह्या भी, दूसर तो बीजाभाव ते प्रतिज्ञा मात्र है, प्रथम कहे तब उद्धार सुनो सोई कहे "दूषण" इति ॥ ५९८ ॥

संगादिकों को कल्पित मानने से असंगादिक लक्षणों की हानि नहीं, याते ब्रह्म को कारणता बने है या अभिप्राय से कहे "माया का" इति,

तौ असंगता नहिं तिहँ हान । तैसोही यह संग पछान ।
लक्षण रहे सो कार्य बनहै । एको बहुविधि को जग जन है ॥६००॥
निद्रायुक्त पुरुष ज्यों कोई । बहु विधि स्वप्न उपावै सोई ।
त्योंही ईश रचे जग सारा । भुवन चतुर्दश जो विस्तारा ॥६०१॥
माया त्रिगुण रूप यह हइये । शुक्ल तंतुसम सो नहिं पइये ।
लोहित,शुक्ल,कृष्ण,गुण तीन । बहु विधि जगत रचे यों चीन ॥६०२॥

दोहा

तीन वर्णकी तंतु ज्यों, लोहित शुक्ल सु श्याम ।
विचित्र पट उपजाय है, देखे जन अभिराम ॥६०३॥

चौपाई

शुक्ल तंतु दृष्टांतहि जोई । ताते अहै असंगत सोई ।
सहकारी तुरि, वेमा, हइये । वासन कर्म इहाँ त्यों पइये ॥६०४॥

वास्तविकसंगाभाव को, कल्पित संग दूर नहीं करे यह बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "नील" इति ॥ ५९९ ॥

तौ नाम संगी भये भी, "लक्षण दहो न कार्य बन है" या दोष का उद्धार करे "लक्षण रहे" इति ॥ ६०० ॥

एक को अनेक जनकता में दृष्टान्त कहे "निद्रायुक्त" इति ॥ ६०१ ॥

वास्तविक तो ब्रह्मवत् माया भी उपादान है वह पुनः गुणत्रयरूप होने ते विचित्र है याते शुक्ल तन्तुओं का दृष्टान्त ही विषम है या अभिप्राय से कहे "माया" इति, क्रम ते रजो सतो तमो का स्वरूप कहे "लोहित" इति, लोहित-रक्त, कृष्ण काला ॥ ६०२ ॥

विचित्र को विचित्रजनकता में दृष्टान्त कहे "तीन" इति ॥ ६०३ ॥

दृष्टान्त विषमता कहे "शुक्ल तन्तु" इति, "कार्य बहुरो सदहूँ होई" पाठकर सूचित प्रलय की असिद्धि रूप दोष का उद्धार करे "सहकारी" इति, वेमा-नलां, तुरी—या पैं वस्त्र बेष्टन करे हैं वह काष्ठ, दृष्टान्त में तन्तुवाय के सहकारी कहकर मायासबल के सहकारी कहे "वासन कर्म" इति, वासन नाम वस्तुओं के संस्कार, इहां—माया सबल में ॥ ६०४ ॥

ते सहकारी जागे जबही । भव उपजावै ईश्वर तबही ।
अनिर्वचनीय उपकारहि जने । कूटस्थादिक लक्षण नहिं हने ॥६०५॥
अनिर्वाच्य भव कार्य मान । 'नेति नेति' यह श्रुति प्रमाण ।
रज्जु माहिं उरग उर मान कंपै को होवै भय मान ॥६०६॥
आप्त करे सोतिहँ उपदेश । नहीं सर्प यह रज्जु विशेष ।
त्योंही श्रुति अर्थको पावै । अर्थवती नहिं व्यर्थ कहावै ॥६०७॥
जैसो जग तैसो जन बंधा । ताको पाय लहे दुख अंधा
बंधन हर्ता गुरु जग हइये । व्यर्थ कहो सो कैसे पइये ॥६०८॥
ते गतिको सु आचार्य कहे । या विधि श्रुति सकल भ्रम दहे ।
या विधि दूषण भये उद्धार । निश्चित भयो सिद्धान्त हमार ॥६०९॥

उपकार जनन पक्ष में कूटस्थता हानि दोष का वारण करे "अनिर्वचनीय" इति, कूटस्थ आदिक नाम निर्विकार आदिक, कल्पित विकार काल में वास्तविक निर्विकारता रहे है यह अनिर्वचनीय मानने का भाव है ॥ ६०५ ॥

प्रपञ्च को असत्य भये दोषन की असिद्धि प्रसंगवत्, सत्य भये निषेध नहीं बनेगा याते निषेध की अन्यथानुपपत्तिरूपअर्थापत्ति ते प्रपञ्च को अनिर्वाच्यता सिद्ध होने कर "नेहनानास्ति, श्रुति व्यर्थ नहीं, किन्तु संसार को अनिर्वाच्यता बोधन में सार्थक है सोई कहे "अनिर्वाच्य" इति, अनिर्वाच्य भव कार्य मान कहिये संसार को अनिर्वाच्यता बोधन कर "नेति नेति" यह श्रुति प्रमाण है कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "रज्जु" इति, उरग–सर्प ॥ ६०६ ॥

उपदेश कहे "नहीं" इति, रज्जुविशेष नाम कोईक सनीकी वा मुञ्ज की रस्सी है, त्यों ही—आप्तोपदेशवत ॥ ६०७ ॥

वन्ध नाशकता कर गुरु को सफलता बोधन हेतु कहे "जैसो" इति, अन्धा-ज्ञान-हीन ॥ ६०८ ॥

ननु बुद्धि के बल से किये श्रुति के विचारजन्यज्ञान से ही बन्ध नाश भये गुरु तो पुनः भी व्यर्थ ही रह्या ? यह अशंका वारण हेतु छान्दोग्य में काहू प्रति अग्नियों के कहे हुए "आचार्यस्ते गतिर्वक्ता"

उक्त अर्थ में वादी पुनः शंका करे है

चौपाई

पूर्वपक्षी—

बीजांकुरका कारण देखे। ब्रह्म सत्य नहिं कारण लेखे।
घट पट में गति जानो ऐसी। ब्रह्म माहिं कारणता कैसी ॥६१०॥
जासो कार्य अन्वित होई। भवमें कारण भाखे सोई।

सिद्धान्ती—

बीज युक्त नहिं अंकुर देखे। कारण ताको किह विधि लेखे ॥६११॥
सत्ता युक्त जन्य सब हइये। स्फुरण तथा तामें घन पइये।
अनुकूल ज्ञान ते सुख बहु देहै। ब्रह्म हेतु बुध याते गेहै ॥६१२॥

इस वाक्य को अर्थ ते पढ़े "ते गति" इति, दूषण आवने से वैदिक सिद्धान्त काहे कहे है? यह कहते प्रति कहे "या विधि" इति ॥ ६०९ ॥

"जासो कार्य अन्वित होई" इस पूर्वोक्त नियम को लेकर ब्रह्म को उपादनता में आशंका करे "बीजाङ्कुर" इति, घट पट में गति जानो ऐसी कहिये अपने कारण कपाल, तन्तु, साथ बीजाङ्कुरवत् अभेद का प्रत्यक्ष समान जानो, कैसी के आगे "अभेद का प्रत्यक्ष न देखने से" शेष कर (लेना), काहू वस्तु का ब्रह्म साथ अर्थात् ईश्वर साथ अभेद न देखने से, ताको कारणता काहू रीति से नहीं बने ॥ ६१० ॥

काहू रीति से न बनने में बीज कहे "जासो" इति, जिसके साथ कार्य युक्त होवे, संसार में कारण तिसको कहे है औ "ब्रह्म साथ अङ्कुर है" ऐसे काहू का अन्वय प्रतीत नहीं होवे, याते ताको उपादानता नहीं बने, "ब्रह्म घट है" ऐसा प्रत्यक्ष न भये भी "घट सत्य है" भान होवे है" प्रिय है" ऐसे सत्तादिकों साथ घटादिकों का अभेद देखने ते उपादानता में विवाद नहीं, प्रत्युत "बीज अङ्कुर है" ऐसा प्रत्यक्ष न होने से ताही को कारणता कैसे? यह परिहार करे "बीज युक्त" इति, बीज युक्त नाम बीजान्वित ॥ ६११ ॥

ब्रह्म में कार्यों का अन्वय दिखावे "सत्ता" इति, सत्ता युक्त-सत्तान्वित, स्फुरण-चैतन्य, तथा—सत्तावत्, तामे-कार्यों में, घन-एकरस, पइये—है, अनुकूल ज्ञान ते नाम "घटादिक कार्य सुख के साधन हैं" ऐसे जानने ते,

है अंकुर भासे तिहँ रूप। अति सुन्दर सुख जने अनूप।
ऐसो जनको अनुभव हुइ है। और कहै अनुभव वह खुइ है॥६१३॥
घट पटमें ऐसी गति जानो। यामें भेद न रंचक मानो।

अव वादी और सिद्धान्ती का प्रश्न उत्तर रूप सम्वाद

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ब्रह्म सत्य जो कारण अहै। धानः ताहित क्यों जन गहै॥६१४॥

घटादि कार्य सुख देते हैं यह कहने से सुख का अन्वय दिखाया, याते—सत्ता आदिकों साथ कार्यों का तादात्म्य प्रतीत होने ते॥ ६१२॥

एक कार्य में सच्चिदानन्द का तादात्म्य दिखावे "है" इति, है अङ्कुर-सत् है, भासे तिहँ रूप नाम "अङ्कुर भान होवे है" पुनः अतिशय सुन्दर होने ते अनूप सुख को जने है, ऐसे सत् भान प्रेय साथ तादात्म्य वाला होने ते सम्पूर्ण जगत् सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म उपादान वाला है, ब्रह्म उपादानता में अनुभव दिखावे "ऐसो" इति, ऐसो कहिये "है अङ्कुर" इत्यादि पुरुषों को प्रत्यक्ष रूप अनुभव होवे है, याते ताके अनुरोध से अवश्य ब्रह्म को उपादानता माननी। ननु सत्ता जाति के सम्बन्ध से विषयों में "है" कथन का पुनः विषयता सम्बन्ध से ज्ञान के रहने से "भासे" कथन का सम्भव होनेसे "है अङ्कुर" इत्यादि अनुभवोंसे ब्रह्म को उपादानता नहीं सिद्ध होवे? यह आशंका कर कहे "और कहे" इति, और कहे नाम "है अङ्कुर" इत्यादि अनुभवों को सत्ता समवायादिकों ते कह्या समवाय को न्याय मत में कही रीति से खण्डित होने ते औ ब्रह्म भिन्न सत्ता में प्रमाणाभाव ते, तथा ब्रह्म भिन्न ज्ञान औ आनन्द में भी प्रमाणाभाव ते, कहे अनुभव सर्वथा दूर होवेंगे, याते सच्चिदानन्द ब्रह्म के तादात्म्य ते ही उक्त अनुभवों का सम्भव होने ते ब्रह्म को कारणता में संशय नहीं॥ ६१३॥

ऐसी नाम अङ्कुरवत्। घटादिकों के दो-दो उपादान न देखकर बीज को उपादानता में आशंका करे "ब्रह्म" इति, धाना—बीज, ताहित—अङ्कुरहित॥ ६१४॥

सिद्धान्ती—

कारण ब्रह्म न संशय कोइ। धाना ग्रहण भली विधि होई।
धानाकार विवर्त्यों जोई। ब्रह्मांकुर उपजावै सोई ॥६१५॥
स्वप्न विषे नर धानाकार। होवे अंकुर हित उरधार।
ताको गहे न कारण सोहै। पुरुष हेतु नहिं संशय कोहै ॥६१६॥
या विधि मूल विचारे जोई। पुरुष हेतु उरधारे सोई।

पूर्वपक्षी—

माया मिल कारण तैं कह्यो। ऐसो नियम कहो किह लह्यो ॥६१७॥

सिद्धान्ती—

सब जग देखे नहिं को झगरो। इन्द्रजाल नर नीके पकरो।
माया कर सबही वह जनै। यामें नहिं संशय को गनै ॥६१८॥

अङ्कुर को ब्रह्म विवर्तता में द्वार भूत धाना का ग्रहण सफल है यह कहे "कारण" इति, द्वारता दिखावे "धानाकार" इति ॥ ६१५ ॥

विवर्तता साधक दृष्टान्त कहे "स्वप्न" इति "होवे अङ्कुर हित" पूर्व के साथ (अन्वय कर लेना), ताको गहै—पुरुष के ग्रहण किये, न कारण सो है नाम धाना मात्रकारण नहीं, किन्तु पुरुष है, अर्थात् पुरुष ओर दृष्टि किये धाना को द्वारता मात्र सिद्ध होवे है मूल कारणता नहीं ॥ ६१६ ॥

या विधि मूल विचारे नाम कही रीति से जो कोई पुरुष अङ्कुर का बीज, ताके ताकेअवयव, तिनके तिनके अवयव, ऐसे महत्तत्व पर्यन्त विचार करे, तब सर्व का परिणामी मूल मायावत् विवर्ती परम मूल ब्रह्म ही सिद्ध होवे है, पुरुष शब्द से दृष्टान्त दार्ष्यन्तिक रूप जीव ब्रह्म दोऊ लेने, कही रीति से होवे पुरुष को जगदूपादानता सिद्धि पुनः मायावाले को कारणता का नेम कहाँ देख्या है ? याते माया साथ मिलकर कारणता कहते हो ? यह आशंका करे "माया" इति, ऐसो नियम कहिये माया साथ मिलकर कारणता का नेम ॥ ६१७ ॥

माया वाले को कारणता की प्रसिद्धि कहे "सब" इति, झगरे रहित जगह पकरावे "इन्द्र" इति, इन्द्रजाल नर नाम इन्द्रजाल वाला मदारी पुरुष, माया मिल कारणताका नेम देखनें वास्ते भली प्रकार पकड़ो ॥६१८॥

इच्छा कर जग जने युगीश्वर। ज्योंही त्यों तुम जानो ईश्वर।
विश्वामित्र सु जग उपजायो, माहिं पुराण सकल वह गायो ।।६१९।।
त्यों परमेश्वर रचे संसार। यामें नहिं संशय कछु धार।
अवांतर भेद भयो है जैसे। भाखौं प्रकट सुनो अब तैसे ।।६२०।।

अब पञ्ची करण का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन करते हैं।

चौपाई

पूर्व पंचभूत उपजाये। बहुरो पंचीकरण बनाये।
एक एक भूत है जोई। दो प्रकार विभेद्यो सोई ।।६२१।।
तामें एक भाग गहि लीनो। चार प्रकार वही कर दीनो।
आप आपनो वृद्ध विभाग। ताको करे सकल ते त्याग ।।६२२।।

माया साथ मिलकर ईश्वर जगत् रचना भी बड़े श्रम से नहीं करे, किन्तु इच्छा मात्र से ही करे है यह बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "इच्छा" इति. इच्छा कर नाम इच्छा से ही जैसे योगीश्वर जगत्-रचना कर लेवे है, तैसे इच्छा से ही ईश्वर जगत् रचना करे है यह तुम जानो, इच्छा से किस योगीश्वर ने जगत् रचा है ? तहां कहे "विश्वामित्र" इति ॥ ६१९ ॥

ननु क्या घटादिकों को महत्तत्ववत् ईश्वर साक्षात् माया से रचे है ? यह श्रवण कर व्यवस्था बतावे "अवान्तर" इति, अवान्तर भेद भयो है जैसे कहिये बीचमें जो कुछ विशेष हुआ है सो प्रकट करता हूँ श्रवण करो ॥ ६२० ॥

अवान्तर भेद कहे "पूर्व" इति, पूर्व पंचभूत उपजाये नाम स्थूल भूतों ते पूर्व माया से महत्तत्त्व, ता से त्रिधा अहंकार, ता से सूक्ष्म भूतों की उत्पत्ति करी, औ बहुरो कहिये तिनकी उत्पत्ति से पीछे तिनकी पृथक् पृथक् सतोअंश ते क्रम ते आदित्य, दिक्, पृथिवी, वरुण, वायु देवतों वाले चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वग्, ज्ञानेन्द्रिय, मिश्रित से क्रम ते चन्द्र, ब्रह्मा, शंकर, विष्णु देवतों वाले 'मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, अन्तःकरण, तथा तिनकी पृथक्-पृथक् रजोअंश ते क्रम ते अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, प्रजापति देवतों वाले वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, कर्मेन्द्रिय, मिश्रित ते प्राणापान, समान, व्यान, उदान पञ्चप्राणोवत्, तमोअंश प्रधानों से तिनसे,

आन आन वृद्धके माहीं । जाय मिले चारो भव माहीं ।
एक वृद्ध चारो लघु जानो । या विधि पंचीकरण पछानो ।।६२३।।

पञ्चीकरण बनाय कहिये पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतो की उत्पत्ति करी। ननु मिलीतन्मात्रा से महाभूतों की उत्पत्ति पञ्चीकरण शब्दार्थ है वा तिनमें एक-एक के पांच-पांचकर एक-एक भूत की मुख्य-मुख्य अंश में पञ्च समुदाय करना पञ्चीकरण शब्दार्थ है ? तिनमें प्रथम कहो तब पञ्चतन्मात्रा को एक की उत्पत्ति में ही समाप्त हो जाने से आकाशानन्तर वायु की उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये औ दूसरा कहो तब एक-एक महाभूत में पांचों कहे चाहिये यह आशंका कर पञ्चीकरण का प्रकार कहे "एक-एक" इति ।। ६२१-६२२।।

या विधि पञ्चीकरण पछानो कहिये इस प्रकार पञ्चीकरण जानो, यद्यपि कही रीति से हमने पञ्चभूतों की उत्पत्ति पुनः तिनका पञ्चीकरण जान्या परन्तु "छादोग्य उपनिषद्" में परमात्मा से तेज की, "प्रश्न" में प्राण की, अरु और "उपनिषदों" में और और रीति से उत्पत्ति श्रवण ते पूर्व पञ्चभूत उत्पन्न किये बहुरो तिनका पञ्चीकरण किया यह वार्ता नहीं बने किन्तु छोन्दोग्य में तेज आदिक सृष्टि श्रवण ते तेज, जल, पृथिवी के दो दो कर, पुनः दो में एक भाग के दो कर अन्य की अंशों में जोड़ने से त्रिवृती करण ही बने है। किञ्च पञ्चीकरण प्रक्रिया से आकाश वायु में पृथिवी आदिकों के भाग आने से आकाश वायु के चाक्षुषप्रत्यक्ष का प्रसंग होवेगा, न आने से पञ्चीकरण व्यर्थ होवेगा याते भी पञ्चीकरण नहीं बने, तथापि तैत्तरीय उपनिषद् में आत्मा ते आकाशादि पांचभूतों की सृष्टि श्रवण करी है याते छान्दोग्य विषे तेज के आदि में आकाश वायु की कल्पना कर लेनी और जहाँ क्रम न होवे तहाँ क्रम की कल्पना कर लेनी। पुनः जहाँ सर्वथा ही अक्रम प्रतीत होवे तहाँ कल्पित में अधिष्ठान की अनुस्यूतता औ "नेह नानास्ति" निषेध को काहू रीति से निषेध्य समर्पकता कर अधिष्ठान में कल्पित को मिथ्यात्व बोधन में तात्पर्य जान लेना, याहीते "पंचतत्व को तनु रच्यो जानहु चतुर सुजान" इस क्रम-बोधक वाक्य साथ, "साचे ते पवना भया पवने ते जल होय" "जल ते त्रिभवन साज्या घट घट घट जोति समोय" इस अक्रम बोधक श्रीरागस्थ गुरुवाक्य का विरोध नहीं ।। ६२३ ।।

वृद्ध भाग पाँचों में मान। नभ आदिक व्यवहार पछान।
आकाश माहिं शब्द इक हइये। वायु विषे दोनों गुण पइये ॥६२४॥
शब्द स्पर्श दोय पहिचानो। तेज माहिंतीन त्यों जानो।
शब्द रु स्पर्श रूप यह तीन। जलके माहिं चारों पुन चीन ॥६२५॥
शब्द स्पर्शरूप रस जानो। पृथ्वी माहिं पाँच पहिचानो।
शब्द स्पर्श रूप रस गंध। पाँचो का पाये सम्बन्ध ॥६२६॥
या विधि धर्म विभागहि भयो। ताते अंड पुनर्भव लयो।
चौदह लोक भयो तामाहीं। जामें जीव रहै भवमाहीं ॥६२७॥
तीन शरीरवान प्रमाता। ताको जीव कहै विख्याता
कारण लिंग स्थूल पछानो। तीन सु देह जीवकी जानो ॥६२८॥
आनंदमय कोश है जोई। कारण देह पछानो सोई।
व्यष्टि एक जीवको हइये। समष्टि तथा ईश को पइये ॥६२९॥

ऐसे भये मुख्य अंश में पञ्चसमुदाय करना पञ्चीकरण माने एक एक में पाचों कहे चाहिये या आशंका का परिहार भी अधिक क्षत्री न्यून अन्य जातिवाले ग्राममें "क्षत्रियों का ग्राम" कथनवत् वृद्ध भागों को मानकर होवे है सोई कहे "वृद्ध" इति, नभ आदिक व्यवहार पछान कहिये आकाश आदिकों में "आकाश" इत्यादि कथन होवे है तथा वृद्ध भागों को मानकर ही आकाश आदिकों में पृथिवी आदिकों के रूपवत् भाग आने से भी चाक्षुष प्रत्यक्ष का प्रसंग नहीं, धर्मी का विभाग कहकर धर्म विभाग कहे "आकाशमाहिं" इति ॥ ६२४-६२५-६२६ ॥

ताते-जुदे जुदे धर्मों वाले पञ्चीकृत पञ्च महाभूतों ते, अंड पुर्नभव लयो कहिये ब्रह्माण्ड उत्पन्न भया, जामें—जिन चौदह लोकों में जीव रहे हैं संसार विषे ॥ ६२७ ॥

जीव किसका नाम है ? तहां कहे "तीन" इति, तीन शरीरों के नाम कहे "कारण" इति ॥ ६२८ ॥

तीनों के स्वरूप कहे "आनन्दमय" इति, खड्ग को म्यानवत् आत्मा को आच्छादन करने से आनन्दमय आदिक कोश कहावे है, तत् पदार्थ के निरूपण में जीव की देहों के निरूपण का प्रयोजन कहे "व्यष्टि" इति ॥६२९॥

कोश तीनमें लिंग शरीर । व्यष्टि जीवको जानो धीर ।
समष्टि तथा ईश्वरको आहि । भाख्यो प्रकट निबंधन माहिं ॥६३०॥
कर्म इन्द्रिय पाँच पहिचानो । पाँच तथा भव प्राणहि जानो ।
यहि दश भये इकत्र जबही । कोश प्राणमय जानो तबही ॥६३१॥
कर्म इन्द्रिय सहित मन जोई । मनोमय कोश पछानो सोई ।
पंच ज्ञान इन्द्रिय भव हइये । छठी बुद्धि तामें पुन पइये ६३२॥
यह विज्ञान कोश पहिचानो । तीनों कोश लिंग तनु जानो ।
अपंचीकृत पंच भवभूत । ताही ते यह भयो प्रसूत ॥६३३॥
यह स्थूल देह जग जोई । कोश अन्नमय भाख्यो सोई ।
व्यष्टि स्थूल जीवको हइये । समष्टि स्थूल ईशको पइये । ६३४॥
प्राज्ञ जीव कारण तनमाहीं । तैजस होय लिंगके माहीं ।
विश्व स्थूल देहमें जानो । या विधि तीन नाम पहिचानो ॥६३५॥
ईश्वर हिरण्यगर्भ पहिचानो । वैश्वानर वैराजहि जानो ।
क्रम कर तीन उपाधि सु माहीं । तीनों संज्ञा ईश्वर माहीं ॥६३६॥
या विधि उपज्यो बहु विधि राजा । श्रीमान भाखे वैराजा ।
ता मनमें उपज्यो बहुकाम । सुखको कहूँ न हेरे नाम ॥६३७॥
जैसे को कामी भव माहीं । युवती बिना ताहि सुख नाहीं ।
यों विचार कियो मन माहीं । भोग न होवै या तन माहीं ॥६३८॥

निवन्धन माहिं—ग्रन्थों विषे ॥ ६३० ॥

"कोश तीन में लिंग शरीर" या वाक्यार्थ ज्ञान के हेतु कोश कहे "कर्मेन्द्रिय" इति, कर्मेन्द्रिय—वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ, पांच प्राण-प्राणापान समान उदान व्यान ।। ६३१ ॥

दूसर कहे "कर्म इन्द्रिय" इति, तीसर कहे "पांच" इति, पांच ज्ञानन्द्रिय-श्रोत्र, त्वक्, चक्षु:, रसना, घ्राण ॥ ६३२ ॥

लिंग शरीर का कारण कहे "अपंची" इति, अपंचीकृत-पञ्चीकरण-रहित सूक्ष्मभूत, प्रसूत उत्पन्न ॥ ६३३-६३४-६३५-६३६ ॥

विराट् पद का अर्थ कहे "या विधि" इति, या विधि उपज्यो-पूर्व

तातें और देह उपजावों । जाके संग सुख बहु पावों ।
यों सङ्कल्प करेउ तिन जबहीं । द्विधा देह हेऱ्यो पुनि तबहीं ॥६३९॥
एक पुरुष द्वितीय पुन नारी । जाते भयो सकल विस्तारी ।
ज्यों सीपीमें कीटक होई । दो पुट भिन्न करे भव सोई ॥६४०॥
त्यों प्रभु एकके दोय बनाये । ताको हेर हर्ष उर पाये ।
स्वयंभूमनु पुरुष पहिचानो । सतरूपा नारी उर मानो ॥६४१॥
मनुकी सकल सृष्टि है जेती इनते भई पछानो तेती ।
अपने निज कर्मन अनुसार । नारी मनमें कियो विचार । ६४२॥
मेरा पिता किधौं यह भाई । मोको याकी सार न काई ।
इनके संग रमों मैं कैसे । दुराचार नारि जग जैसे ॥६४३॥
काम ग्रसे जाको उर माहीं । पुरुष धर्मको जाने नाहीं ।
मैं तो धर्म भली विधि जानों । कैसे ता विपरीतहि ठानों ॥६४४॥

कही रीति से उत्पन्न होकर, बहुविधिराजा नाम अनन्त प्रकार से प्रकाशमान हुआ जो ईश्वर, श्रीमान-शोभावान्, आचार्य लोक ता ईश्वर को भाखे वैराजा कहिये विराट् कहे है, ता मन में नाम तिस विराट् के चित्त विषे ॥ ६३७-६३८ ॥

द्विधा देह—दो देह ॥ ६३९ ॥

जाते-जिस स्त्री-पुरुष ते, एक ते दो बनानें में औ अपने अलग रहने में दृष्टान्त कहे "ज्यों" इति ॥ ६४० ॥

पुरुष नाम कहे "स्वयंभू" इति, स्त्रीका नाम कहे "सत-रूपा" इति ॥ ६४१-६४२ ॥

विचार कहे "मेरा" इति, मेरा पिता किंधौ यह भाई कहिये विराट् के साथ "आत्मा वै जायते पुत्रः" इस वाक्य से अभेद देखने से मेरा पिता है, वा साथ उत्पन्न होने ते मेरा भाई है यह मेरो को कोई खबर नहीं, दुराचार-व्यभिचारिणी ॥ ६४३ ॥

ता विपरीतहि ठानों—धर्म से उलटा करों अर्थात् कैसे अधर्म को ॥ ६४४ ॥

तातें मैं उत्तम भव नारि। राखौं धर्म परौं भव पारि।
या विधि कियो बहुत विचारा। पुरुष निवारणमें मन धारा ॥६४५॥
निवारण ताहि अशक्य निहार। बहुरि कियो मनमाहिं विचार।
अब मैं होवों अंतर्ध्यान। जाते धर्म न होवे हान ॥६४६॥
तबही तिन गोरूप निर्मयो। बैल पुरुष ताही क्षण भयो।
गो की सृष्टि तभी पुन भई। बहुरि नारि बड़वा ह्वै गई ॥६४७॥
पुरुष तुरंग होय पुनि गयो। अश्व सृष्टि ताते भव लयो।
या विधि नारि गहे वपु जोई। पुरुष होय क्षण भीतर सोई ॥६४८॥
नारी-पुरुष रूप जग जोई। या विधि उपज्यो सकलो सोई।
पृथ्वी माहिं औषधी होवै। ताको खाय बहुत सुख जोवै ॥६४९॥
पित अरु मात उदरके माहीं। भोगेउ अन्न पके भवमाहीं।
वीर्य होय पिता तनमाहीं। शोणित होय मातके माहीं ॥६५०॥
ऋतुके समय दोऊ मिल जावै। योंही स्थूल देह उपजावै।
स्थूल देह है चार प्रकार। जेरज अंडज स्वेदज धार ॥६५१॥
उद्भिद् रूप तुरी जग हइये। या विधि चारखानि भव पइये।
"गुरु गोविंद" प्रकट यह गायो। सब जन को संदेह मिटायो ॥६५२॥
"अंडज जेरज स्वेदज कीनी। उद्भिद खानि बहुर रचदीनी"।
मानवादि जेरज यह जानो। विहंगमादि अंडज उरआनो ॥६५३॥

तातें—धर्म के सम्यक् जान लेने ते ॥ ६४५ ॥

अशक्य—मुशकिल ॥ ६४६ ॥

वड़वा—घोड़ी ॥ ६४७-६४८ ॥

स्थूल देहों की उत्पत्ति का प्रकार कहे "पृथिवी" इति ॥ ६४९-६५०-६५१ ॥

स्थूल देहों की चार प्रकारता में गुरुस्मृति कहे "गुरु" इति ॥ ६५२ ॥

जेरज आदिक शब्दों के अर्थ कहे—"मानवादि" इति ॥ ६५३ ॥

यूकादि स्वेदज भव हइये । तृण पादप उद्भिद् जग पइये ।
या विधि भयो सकल संसार । सीप विषे रूपे समधार ॥६५४॥
असंग अद्वितीय परातम जोई । माया सबल उपावै सोई ।
जीव रूप कर करे प्रवेश । माहिं जगत प्रभु जो अखिलेश॥६५५॥

दोहा

वाद कुपंथ निवार के, निजमत कीन उधार ।
चेतन सत सुख धाममें, अनृत कह्यो संसार ॥६५६॥
हरि गुरु पाद मनायके, पायों अर्थ सु जोय ।
गुलाबसिंह यों भाख्यो, हेरि मुक्त नर होय ॥६५७॥

इति श्रीमन् मानसिंह चरणशिष्य गुलाबसिंहेन
गौरीराये आत्मजेन विरचिते मोक्षपंथ
प्रकाशे तत्पदवाच्यार्थ निर्णयो नाम
प्रथमो निवासः ॥ १ ॥

पादप—वृक्ष ॥ ६५४-६५५ ॥
अनृत—मिथ्या ॥ ६५६ ॥
फल कहे—"हेरि" इति ॥ ६५७ ॥

इति श्रीमत् गुलाबसिंहचरणशिष्य ताराहरिकृते मोक्ष-पन्थप्रकाश-
प्रकाशे स्वयंप्रभाविवरणे प्रथमो निवासः ॥ १ ॥

❀ समाप्तः ❀

"श्रीजानकीवल्लभो विजयते"



द्वितीय निवास

अब ग्रन्थकार द्वितीय निवास के निर्विघ्न समाप्त्यर्थ
गणेशजा का स्मरणात्मक मंगल करे हैं।

दोहा

शिवसुत नाथ गणेश जी, सुमिरौं विघ्नविनाश।
घनानन्द भवहर सदा, करो सुबुद्धि प्रकाश ॥ १ ॥

नगस्वरूपिणीछन्द

सदा-सुखं सुवालनं। सु देवि गोद पालनं।
शशांक शोभ भालनं। विरोध कोप कालनं ॥ २ ॥

---

१ ॐ सद्गुरु प्रसादि

दोहा

शंकर पुन दशगुरुन के पद द्वन्द्व कर द्वन्द्व।
वन्दबार बहु करतहौं त्वं पद शोध स्वछन्द ॥ १ ॥

श्रेष्ठों की रीति जानकर ग्रन्थ के मध्य में भी मङ्गल करे "शिवसुत" इति। "विघ्नविनाश घनानन्द सदाभवहर शिवसुत नाथ गणेशजी सुमिरौं सुबुद्धिप्रकाश करो" यह अन्वय है, ताका—विघ्नों के नाश करने वाले घनानन्द नाम एक रस आनन्दरूप, सदा भक्तो के संसार-हर्ता शिव के पुत्र उत्तमऐश्वर्य वाले गणेश जी मैं तुम्हारा स्मरण करता हूँ तुम कृपाकर मेरी श्रेष्ठ वुद्धि का प्रकाश करो यह अर्थ है ॥ १ ॥

अधिक विघ्नों का थोरे मंगल से नाश नहीं होवेगा यह समझ कर पुनः मंगल करे "सदा" इति, नित्य सुख स्वरूप श्रेष्ठ बालक को, वा परतन्त्र बालकों की अपेक्षा कर वाञ्छित की प्राप्ति द्वारा सर्वदा सुख वाले बालक को, पुनः श्रेष्ठ जो पार्वती की गोदी तिस विषे, पालनं-पालना को प्राप्त हुये को, पुनः शशांक कहिये चन्द्रमा कर शोभित मस्तक वाले को, पुनः विरोधी नाम वैरियों को कोप कर कालरूप को ॥ २ ॥

सुभक्त एक पालनं। विशाल लोल काननं।
नमाम्यहं नमाम्यहं। नमाम्यहं जगाननं ॥ ३ ॥

अब मूल सिंचन न्याय से श्री रामचन्द्रजी का नमस्कारात्मक मंगल करे हैं।

दोहा

चित्स्वरूप परमात्मा, मदन-मदन श्री राम।
गजगामी जनभयहरण, चरण-शरण अभिराम ॥ ४ ॥

छपैछन्द

मदन-कदन जन- सदन रदन गत जलज-वदन वर।
सरण हरण-भय करण भरण जन वरद धरणधर ॥
मरण हरण सर-धरण वरण-घन करण सकल गत।
तरन-तरन-वर धरन-धरन धर सरन सकल मत ॥
पद पदम, पदमवर सम-सरस सरण-हरण-अघ अज-करण।
भगत सकलगत जपत जग जय जय अमल अज अमर शरण ॥ ५ ॥

पुनः और देवताओं की अपेक्षा कर श्रेष्ठ भक्तों के एक ही पालक को, पुनः विशाल नाम बड़े औ लोल नाम चञ्चल कर्णों वाले को, नमाम्यहं नमाम्यहम्—में नमस्कार करता हूँ मैं नमस्कार करता हूँ पुनः मैं नमस्कार करता हूँ गजमुख वाले को, "नमाम्यहं" का तीन वार कथन सदासुखं सुवालनं ऐसे सबके संग सम्बन्ध का सूचक है याते पुनरुक्ति दोष नहीं ॥ ३ ॥

ईश्वर का मंगल करे "चित्" इति, चेतनस्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्र, मदन-मदन कहिये काम के काम हैं अर्थात् सर्व पुरुषों से अधिक सुन्दरता वाले मदनवत् मदन से अधिक सुन्दरता वाले राम हैं, पुनः गजगामी नाम हस्ती सम अचञ्चल गमन वाले हैं औ जनभयहरण नाम पुरुषों को संसार समुद्र का भय दूर करने वाले हैं औ जिनके चरण शरण नाम आश्चर्य (पूर्ण) आश्रय हैं ॥ ४ ॥

ईश्वर मंगल को सर्व कार्यों का साधक जानकर अज अमर शरण रूप राम की जय हो, जय हो, जय हो, ऐसे विस्तार से आशीर्वाद रूप मंगल करने हेतु अज अमर रूप राम के विशेषण कहे "मदन" इति, मदन-कदन-सुन्दरता की न्यूनता प्रकट करने मात्र ते मदन के नाशक

की, पुनः जन सदन—प्राणियों के निवास स्थान रूप राम की, यद्वा मदन-कदन जन सदन-मदन के नाश कर्ता महादेव के जन-मानो चित्त की स्थिति हेतु सदन की, सो यह बात रामायणों में प्रसिद्ध है, पुनः रदन गत—हस्तीवत् अचञ्चल गमन वाले की, मुक्ताक्षरता, भंग के भय कर दकार में इकार नहीं, नहीं तो रदवाले का नाम "रदिन" चाहिये था, ऐसे आगे भी जानना। पुनः जलजवदनवर—जलज सम सुन्दर मुख वाले की, वा जलज को कष्ट कादिक दोष युत होने से तासे श्रेष्ठ मुख वाले को, पुनः सरण हरण भय नाम सहित रण-शब्द के अर्थात् रावण को मारकर तेरो को लंका देवेंगे ऐसे प्रतिज्ञा रूप वोली से विभीषण आदिकों का भय दूर करने वाले की, रण नाम "शब्द" का कोष में प्रसिद्ध है, पुनः करण भरण—सृष्टिकर्ता, स्थिति कर्ता की, वा विष्णु को पालकता अधिकार ते करुणा करके पोषण कर्ता की, पुनः जन वरद-ध्रुवादिकों को अटलपदादिक रूप वरदाता की, पुनः धरणधर—रघुवंशी राजा की, धरण धर कोष में पर्वत औ राजा का नाम प्रसिद्ध है, पुनः मरण हरण भक्तों का प्राण वियोग रूप मरण हरण वाले को, पुनः सरधरण—वाण-धारण वाले की, पुनः वरणघन—श्रावण के मेघ सम श्याम रूप वाले की, पुनः करणसकलगत—विद्यादिक गुणों कर हीन गजेन्द्र आदिकों की मुक्ति करने वाले की, पुनः तरन नाम युवा तरन—सूर्य अर्थात् मध्याह्न के सूर्य से भी श्रेष्ठ ताके प्रकाशक, औ एक रस प्रकाश वाले होने ते वर-श्रेष्ठ की, वा संसार समुद्र के तरन तरवे को तरनवर नाम श्रेष्ठ नौका की, तरणि नाम नौका का कोष में प्रसिद्ध है, इकार हीनता कहे हेतु से हैं (पाठान्तर तरण है) णकार के स्थान नकार का उच्चारण भाषा की सम्प्रदाय से है पुनः धरन धरन धर—सेतु बन्धन हेतु धरनधर पर्वतों को धरन-धारण कर्ता की पुनः सरण सकल मत—प्रतिपाद्य रूपता कर सकलमतों के सरण आश्रय की, यद्वा धरन-पृथिवी को वराह रूप से धरन-धारण कर्ता की, पुनः धर सरन सकलमत-सकलमतों के सरन मार्गों की, धर पृथिवी की अर्थात् नाटक में कही "शैव कहे शिव मूरति" इत्यादि रीति सकलमतों के मार्गों कर प्राप्य रूप एक की, सरण नाम मार्ग का कोष में प्रसिद्ध है, णकार के स्थान में नकार कथन औ इकार हीनता का उक्त समाधान जान लेना, पुनः पद पदम पदमवर-पद्मों से श्रेष्ठ चरणों कमलों वाले की, पुनः सम एक रस की, पुनः सरस आनन्द सहित की, रस नाम आनन्द का "रसो वै सः" इस श्रुति में

अब हितोपदेष्टा गुरुजी के चरण कमलों को नमस्कार करे हैं।

सवैया

दीननके भवताप निवारण, तारण सेवकके गण जोऊ।
मोहमतंग निवारण सिंह, सदा शरणागति आवत कोऊ॥
हारण बंध निवारण भेद, अछेद निवारण कारण ओऊ।
हैं गुरुके पद कंज उदार, सु बंदतहौं कर जोर सु दोऊ। ६॥

अब सिद्धान्ती प्रसंगसंगति करते हुए त्वम्पद का वाच्यार्थ निरूपण करे है।

चौपाई

पूर्व वादी करे निरास प्रथमपर्व में सुखी निवास।
तत् पदवाच्य निरूपण भयो। सीतापति उद्यम उरदयो॥ ७॥

प्रसिद्ध है, पुनः सरण हरण अघ–आश्रय आये अजामिल आदिकों के पाप हरने वाले की पुनः अज करण-ब्रह्मा के करने वाले की, पुनः भगत सकल गत जपत जग—जगत् में भक्तजन सकलगत-सर्वव्यापी जानकर जिसे जपते हैं, ऐसे अज अमर शरण कहिये जन्म मरण विकार हीन सर्व के अधिष्ठान रूप राम की जय हो॥ ५॥

गुरु चरणों के नमस्कार लक्षण मंगल की इच्छा करता हुआ तिनकी बड़ाई सुनावे "दीनन" इति, "है गुरु के पद कंज उदार" पाठ का "दीनन के भवताप निवारण हैं गुरु के पद कंज "उदार" ऐसे सर्वत्र अन्वय कर दीनन के नाम जिज्ञासुओं के, संसार में आध्यात्मिक आदिक दुखों के दूर करने वाले, जो है चरण कमल गुरुओं के श्रेष्ठ, पुनः तारण सेवक के गण जोऊ नाम सेवकों के समूहों को मुक्त करने वाले जो है चरण श्रेष्ठ, पुनः जो कोई पुरुष भव में शरण आवे ताके मोह रूप हस्ती को नाश करने में सदा शेर सरीखे बल वाले चरण श्रेष्ठ पुनः हारण बन्ध–कर्तापने आदिक बन्धनों का दूर करने वाले, औ निवारण भेद—जीव जगत् आदिक भेदों के दूर करने वाले, और अछेद—शस्त्रादिकों करके न दूर होने वाला जो अज्ञान, ताके नाश करने का कारण एक वही जो हैं गुरुके चरण कमल श्रेष्ठ तिनको में हाथ दोऊ जोड़ कर बन्दना करता हूँ॥ ६॥

लक्षण प्रमाण स्वरूप से वाक्यार्थ ज्ञानोपयोगो "त्वम्" पदार्थ के निरूपण हेतु अनेक वादियों के मतों के निरास पूर्वक लक्षण प्रमाण

त्वंपदवाच्यार्थ है जोई। करौं निरूपण सुनिये सोई।
साक्षी सर्व सदा सुखरूप। बाध विहीन असंग स्वरूप ॥ ८ ॥
ऐसो चेतन भाख्यो जोई भयो जीव भव भीतर सोई।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन। यही अवस्था उरमें चीन ॥ ९ ॥

स्वरूप से किये तत् पदार्थ के निरूपण का स्मरण करावे "पूर्व" इति, पूर्ववादी नाम पूर्व पक्षी, करे निरास—परास्त किये, कहाँ ? यह इच्छा भये कहे "प्रथम" इति, प्रथम पर्व में प्रथम अध्याय में (निवास में), याही ते विरोधी वादियों के परास्त करने ते, सुखी निवास नाम सुख वाला निवास अर्थात् वाक्यार्थ ज्ञानोपयोगी वस्तु के निरूपण कर सुख से हमारा वसना हुआ। पूर्व करे निरूपण को परमेश्वर कृपा का फल कहे "सीता" इति ॥ ७ ॥

पूर्व कही वात का स्मरण करवाय कर इस अध्याय (निवास) में कहने योग्य बात में सावधान करे "त्वम्" इति, त्वम् पद वाच्यार्थ निरूपण की प्रतिज्ञा करके प्रथमे जैसे चेतन में औपाधिक त्वं पद वाच्यता है ता चेतन का स्वरूप कहे "साक्षी" इति साक्षी सर्व कहिये सर्व का साक्षाद् द्रष्टा अर्थात् चेतन है, पुनः सदा सुख रूप नाम सर्वदा काल आनन्द स्वरूप है पुनः बाध विहीन नाम नाश रहित है अर्थात् सत् चित् आनन्द रूप है, असंग स्वरूप नाम संग से अर्थात् काहू के वास्तविक सम्बन्ध से रहित है ॥ ८ ॥

ऐसो चेतन नाम जो सत् चित् आनन्द स्वरूप चेतन कह्या, सोई नाम वही, अवस्थात्रय के संग से जीव नाम "त्वं" पद वाच्य हुआ, जिनके संग से जीव हुआ वह अवस्था त्रय कौन जाने ? तहां कहे "जाग्रत" इति, "इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्षादि ज्ञानकर उपलक्षित काल जाग्रत" कहिये है, सुषुप्ति में इन्द्रियों का सर्वथा अभाव होवे है, स्वप्न में वासना मात्र इन्द्रिय रहे है, प्रसिद्ध इन्द्रियों का मन में लय हो जावे है याते स्वप्न सुषुप्ति में इन्द्रिय जन्य ज्ञान के अभाव ते तिनमें अति-व्याप्ति नहीं, जाग्रत में भी कोई उदासीन काल ऐसा होवे है तहां कोई ज्ञान रहे नहीं औ नेत्र निमीलन प्राणों के अधिक गमनादिकों के अभाव ते स्वप्न सुषुप्ति भी तिस काल में होवे नहीं, याते तिस काल में कहे लक्षण की अव्याप्ति दूर करने हेतु ज्ञान कर उपलक्षित काल कह्या,

तीन अवस्था संगी जोई। त्वंपदवाच्य कहीजैं सोई।
बुद्धि उपाधि जीव तिहँ नाम। सुखी दुखी सो अपूर्ण काम ॥१०॥

उपलक्षित कहने से वह दोष होवे नहीं, काहे ते ? "जो वस्तु कभी होवे औ व्यावर्तक होवे सो उपलक्षण कहिये है" जैसे "काक वाला देवदत्त का गृह है" इहां काक सर्वदा नहीं, औ अन्य गृहों से देवदत्त के गृह का व्यावर्तक है याते उपलक्षण है औ "उपलक्षण से लखी गई वस्तु उपलक्षित कही है", याते गृह काकोपलक्षित है ऐसे ज्ञान शून्य जाग्रत काल भी काहू-काहू पदार्थ के ज्ञानकर उपलक्षित होवे है। "जाग्रत संस्कार जन्य अन्तःकरण वृत्ति ज्ञानकर उपलक्षित काल स्वप्न" कही है। सुषुप्ति में अन्तः-करण का अविद्या में लय होवे है याते तहां अन्तःकरण की वृत्ति नहीं होवे औ जाग्रत काल में वह वृत्ति होवे है तहां वह जाग्रत के संस्कार जन्य नहीं, किन्तु इन्द्रियअनुमानादिजन्य होवे है याते कहे लक्षण की जाग्रत सुषुप्ति में अतिव्याप्ति नहीं, औ उपलक्षण कहने से ज्ञान शून्य काल में अव्याप्ति नहीं, "नित्य सुख रूप परमात्मा को औ अविद्या को विषय करने वाली अविद्या की वृत्तिकर उपलक्षित काल का नाम सुषुप्ति है", "मैं सुखी सोया कुछ न जानता हुआ" इस रीति से सोये उठे पुरुष को जाग्रत काल में सुषुप्ति के सुख की औ कुछ न जानने रूप अज्ञान की स्मृति होवे है सो स्मृति अपने जनक अनुभव जन्य संस्कार पूर्वक होवे है याते सुषुप्ति में अविद्या की वृत्ति रूप अनुभव होने तें सुषुप्ति काल तिसकर उपलक्षित है, साक्षात् अविद्या की वृत्तिकर उपलक्षित कहने से जाग्रत स्वप्न में अतिव्याप्ति नहीं, काहे ते ? जाग्रत स्वप्न में "मैं परम सुखी हूँ औ अज्ञानी हूँ" इस रीति से परम सुख औ अज्ञान विषयक परम्परा अविद्या का परिणाम अन्तःकरण की वृत्ति होवे है, साक्षात् नहीं होवे, साक्षात् शुक्ति रजतादि गोचर होवे है सो परमसुख औ अविद्या गोचर नहीं होवे याते तिनमें लक्षण नहीं जावे, इस रीति से जाग्रत आदिक जो तीन काल है यही जीव की अवस्था चित्त में जानो ॥९॥

औ पूर्व कही रीति से चेतन का स्वरूप औ अवस्थात्रय जानकर प्रतिज्ञा किया वाच्यार्थ यह जानो, सोई कहे "तीन" इति, तीन अवस्था संगी कहिये जाग्रत आदिक तीन कालन के कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध वाला जो चेतन वही त्वं पद वाच्य नाम "त्वं" इस पद का शक्य कहिये है पुनः जैसे शुद्ध चेतन का आभास ग्रहण करने वाली वा शुद्ध चेतन से

अवच्छेद करने वाली ईश्वर की उपाधि माया है, तैसे शुद्ध चेतन का आभास ग्रहण करने वाली वा शुद्ध चेतन से अवच्छेद करने वाली तिस त्वं पद वाच्य की उपाधि बुद्धि कहिये है, पुनः माया में आभासित का वा मायावच्छिन्न का जैसे ईश्वर नाम है, तैसे बुद्धि में आभासित का वा बुध्यवच्छिन्न का जीव नाम कहिये है, इहां यह भाव है = जीव ईश के स्वरूप निर्णय में प्रथम आचार्यों के आभास, प्रतिबिम्ब, अवच्छेद, तीन वाद हैं, तीनों में "आभास" पञ्चदशीकारादिकों का है, "प्रतिबिम्ब" विवरणाचार्य का है, "अवच्छेद" वाचस्पति मिश्र का है। आभास प्रतिबिम्ब का इतना भेद है—आभासवादी उपाधिरूप उपादान में बिम्ब वस्तु की समीपता रूप निमित्त से आभास धर्मी की उत्पत्ति माने हैं, प्रतिबिम्बवादी उपाधि की समीपता रूप निमित्त से बिम्ब रूप उपादान में बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्व धर्मों की उत्पत्ति माने हैं, अवच्छेद वाद का औ इन दोनों का इतना भेद है, दोनों वादी जल में चन्द्र सूर्यादि रूपवान् बिम्बों के, वा आकाशरूप नीरूप बिम्ब के आभास प्रतिबिम्बवत् उपाधियों में चेतन का आभास प्रतिबिम्ब माने हैं, अवच्छेदवादी नीरूप वस्तु में नीरूप वस्तु के आभास प्रतिबिम्ब खण्डन कर, घट मठादि रूप उपाधियों से आकाश के अवच्छेदवत् अन्तःकरण माया रूप उपाधियों से शुद्ध का अवच्छेद माने हैं, आगे आभास प्रतिबिम्ब का हेतु उपाधियां भी आभासवादी मतभेद से अन्तःकरण, अविद्या, वा माया, अविद्या रूप माने है। प्रतिबिम्बवादी एक अज्ञान ही माने है, अवच्छेदवादी अन्तःकरण, तद्भाव वा माया अविद्या माने है, चेतन के आभासवादी कोई तीन भेद माने है कोई चार माने है, प्रतिबिम्बवादी दो माने है, अवच्छेदवादी तीन माने है सोई संक्षेप से सर्व दिखावे है = "कार्य रूप अन्तःकरण उपाधि में चेतन का आभास जीव कहिये है", "कारण रूप माया उपाधि में चेतन का आभास ईश्वर कहिये है", बिम्ब-चेतन शुद्ध कहिये है यह सर्वज्ञ मुनि कहे हैं, "शुद्ध चेतन के आश्रित मूल प्रकृति में चेतन का आभास ईश्वर कहिये है", "मूल प्रकृति के अविद्या रूप अनन्त अंशों में चेतन का प्रतिबिम्ब जीव कहिये है", बिम्ब चेतन शुद्ध कहिये है यह प्रकटार्थकार कहे है, "शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया में चेतन का प्रतिबिम्ब ईश्वर कहिये है", "मलिन सत्वगुण प्रधान अविद्या में चेतन का प्रतिबिम्ब जीव कहिये है", बिम्ब चेतन शुद्ध कहिये है यह तत्वविवेककार कहे हैं। विक्षेप शक्तिः प्रधान माया में चेतन का आभास

ईश्वर कहिये है, आवरण शक्ति प्रधान अविद्या में चेतन का प्रतिबिम्ब जीव कहिये है, बिम्ब चेतन शुद्ध कहिये है यह कोई कहे है, सो इन चारों मतों में चेतन तीन प्रकार का है औ पञ्चदशीकार के मत में कूटस्थ, ब्रह्म, जीव, ईश, भेद से चेतन चार प्रकार का है, "बुद्धि का अधिष्ठान चेतन कूटस्थ कहिये है"। "माया का अधिष्ठान शुद्ध चेतन ब्रह्म कहिये है", "वुद्धि में चेतन का आभास जीव कहिये है", "वुद्धि की वासना विशिष्ट माया में चेतन का आभास ईश कहिये है"। पूर्व कहे पांचों मतों में जीव ईश दोनों आभास हैं, याते शुद्ध चेतन की समीपता रूप निमित्त से उपाधि रूप उपादानों में उपजे हैं, याही ते महा वाक्य में आभासो की बाध समानाधिकरणता है औ उपाधियों के अधिष्ठानों की मुख्यसमानाधिकरणता है औ विवरणाचार्य यह कहे हैं = दर्पण रूप एक उपाधि से ग्रीवास्थ बिम्बरूप मुख में जैसे वृत्ति के वेग से प्रतिबिम्बभाव प्रतीत होवे है, तैसे अज्ञानरूप एक उपाधि से शुद्ध चेतनरूप बिम्ब में प्रतिबिम्बभाव प्रतीत होवे है सो बिम्ब प्रतिबिम्ब जुदे नहीं, किन्तु एक ही शुद्ध चेतन रूप उपादान में उपाधि की समीपता रूप निमित्त से बिम्बत्वरूप ईशता और प्रतिबिम्बत्वरूप जीवता जुदी-जुदी उपजे है, इस रीति से धर्म मात्र के भेद से चेतन के दो भेद हैं वास्तविक ते वह एक है, याही ते इस मत में महावाक्य में मुख्य समानाधिकरणता है और अवच्छेदवादी वाचस्पति मिश्र यह कहे है—रूपरहित वस्तु का प्रतिबिम्ब काहू न देखने ते रूप रहित ब्रह्म का भी नहीं बने, याते अन्तःकरणावच्छिन्न जीव है, अन्तःकरणानवच्छिन्न ईश्वर है, वा अविद्यावच्छिन्न जीव है, मायावच्छिन्न ईश्वर है, यद्यपि रूप रहित वस्तु का प्रतिबिम्ब नाङ्गीकार किये गम्भीरता रहित जल में गम्भीरता को और प्रकारसे न बनने से गम्भीर रूप आकाश का प्रतिबिम्ब अवश्य मानना ऐसे अर्थापत्तिप्रमाण ते रूपरहित आकाश का प्रतिबिम्ब बने हैं, तैसे रूपरहित ब्रह्म का भी सम्भवे है यह आशंका होवे है, तथापि जहाँ और गति न मिले तहां ही अर्थापत्तिप्रमाण को अवकाश होवे है, जहां और गति मिल जावे तहां नहीं होवे, याते गम्भीर वस्तु के संस्कार सहित अविद्या रूप सामग्री से उपजे गम्भीरता को लेकर ही स्वल्प जल में "इदं जलं गम्भीरं" ऐसा व्यवहार सिद्ध भये, आकाश का प्रतिबिम्ब नहीं सिद्ध होवे औ आकाश का प्रतिबिम्ब न सिद्ध भये ब्रह्म का भी नहीं बने, अथवा या वस्तु में आरोपित वा अनारोपित रूप होवे ताही का प्रति-

विम्ब होवे है, और का नहीं, याते आकाश में आरोपित रूप होने ते ताका प्रतिविम्ब सिद्ध भये भी दोऊ प्रकार के रूप रहित ब्रह्म का नहीं बने, याते घट मठावच्छिन्न आकाश की महाकाश से घट मठ को अवच्छेदकतावत् स्वावच्छिन्न चेतन की व्यापक ब्रह्म से उपाधियों को अवच्छेदकता ही बने है, इस रीति से वाचस्पति त्रिविध चेतन कहे हैं औ दोनों का खण्डन कर अवच्छेदवाद स्थापन करे हैं, परन्तु वह दोनों वाद भाष्यकार को सम्मत हैं, याते तिनकी स्थापना ऐसे है—जैसे घट में रूप है तैसे घट के रूप में आगे कोऊ रूप नहीं, औ प्रतिविम्ब ताका देखिये है याते रूपरहित रूपवत् ब्रह्म का भी प्रतिबिम्ब बने है, जेकर कहे रहो रूपरहित रूप गुण का, हम तो रूपरहित ब्रह्म द्रव्य का नहीं बने यह कहे हैं यह आशंका होवे, तब रहो तुम्हारा द्रव्य में नेम, हम तो ब्रह्म को गुण क्रियारहित होने ते द्रव्य नहीं माने, याते रूपवत् ताका होने में कोई रोक नहीं, पुनः "एकधा वहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्" इत्यादिक श्रुतियों से भी आभास, प्रतिबिम्ब बने हैं। और वासिष्ठ ग्रन्थ में पूर्वोक्त तीनों वादों से विलक्षण अजातवाद का अंगीकार है तदनुसारी अन्य ग्रन्थों में वह इस रीति से सिद्ध किया है अपने साथ समान सत्ता वाले जलयुक्त घटादिकों के सम्बन्ध से आकाश में प्रति-विम्बता वा आभासता वा अवच्छिन्नता सम्भवे है, विषम सत्तावाले मरुस्थल के जल औ इन्द्र जालरचित घट के सम्बन्ध से नहीं सम्भवे औ इहाँ ब्रह्म की सत्ता से सत् कहावने वाले स्वतः सत्तारहित अविद्या तत्कार्य की ब्रह्म साथ तुल्यता है नहीं, किन्तु बन्ध्यापुत्रादिकोंवत् अविद्या तत्कार्य अत्यन्त असत् है, याते तिनके साथ ब्रह्म का सम्बन्ध ही न कह्या जानेते, तिस सम्बन्ध से होनेवाले अवच्छेदादिकों की तो क्या कहें, ताते यह मानना जो कल्पित सम्बन्ध से न हुआ ही कुन्ती के बेटे कर्ण में राधा पुत्रपने के भ्रमवत् अवच्छेदादिक विकार रहित ब्रह्म में जीवत्व अध्यास होवे है, कुछ ब्रह्म को प्रतिबिम्ब वा अवच्छेद रूप जीवता की प्राप्ति नहीं होवे, अपनी अविद्या से जीव भाव को प्राप्त भया ब्रह्म ही या पक्ष में निखिल प्रपञ्च की कल्पकतावत् सर्वज्ञत्वादिक धर्मों सहित ईश्वर का कल्पक है, याते ईश्वर भी या पक्ष में जीव कल्पित है औ जीव कल्पित ईश्वर स्मरण ते फल का लाभ भी स्वप्न में कल्पित राजा के सेवन ते फल के लाभवत् बने है, कही रीति से अविद्या के प्रभाव ते अपनी ब्रह्म रूपता भूलकर भये जीवत्व भ्रम की "तत्त्वमसि"

आदिक वाक्यजन्यसाक्षात्कार ते निवृत्ति होवे है या मत में जीव एक है पुनः ता जीव कल्पित ईश्वर भी एक ही है. अनेक नहीं, यद्यपि "गर्भस्थ वामदेव प्रतिपेदे", इत्यादिक वामदेवादिकों की मुक्ति प्रतिपादक श्रुतियों से वह मुक्त इतर जीवबद्ध ऐसे नाना जीव प्रतीत होने ते जीव एक है यह कथन बने नहीं यह आशंका होवे है, तथापि जैसे एक ही स्वप्न द्रष्टा पुरुष को कोईक पुरुष गहन वन में सिंहादिकों से भयभीत होते तथा कोईक प्रिय वस्तु के सम्बन्ध से अति आनन्द होते प्रतीत होवे है तहाँ गहन वन में भयभीत होना तथा आनन्द होना स्वप्न द्रष्टा पुरुष को नहीं, किन्तु अपने आभास रूप पुरुषों को है, तद्वत् बन्ध मोक्ष की प्राप्ति अविद्यासहित ब्रह्म रूप जीव को नहीं, किन्तु जीवाभासों को है, याते कहे वाक्यन से जीवाभास ही नाना सिद्ध होवे हैं, जीव नहीं। ननु होवे जीवाभास नाना, जीव एक ही रहो, परन्तु अविकृत ब्रह्म को ही जीव रूप होने ते अविद्या की निवृत्ति रूप मोक्ष किसके ज्ञान ते होवेगी ? इस प्रश्न में तेरे ज्ञान ते होवेगी, वा काहू के ज्ञान ते भी नहीं होवेगी यह उत्तर है, हेतु यह जो आत्मा में बन्ध का कभी भी सद्भाव नहीं, याते नित्य मुक्त आत्मा की मुक्ति पूर्व हुई वा आगे होवेगी यह कहना नहीं बने, या अभिप्राय ते इस मत में मुक्ति प्रतिपादक श्रुतियों को अर्थवादता कथन करे है, कुछ बन्ध आत्मा में है आजतक कोई मुक्त भया नहीं, प्रयत्न से आगे होवेंगे या अभिप्राय से शुक आदिकों की मुक्ति प्रतिपादक श्रुतियों को अर्थवादता नहीं, बीज यह= जो जेकर बन्ध के रहे वेदान्त श्रवणादिकोंसे शुक आदिकों की मुक्ति नहीं हुई तब आगे भी किसकी होवेगी यह समझकर जिज्ञासुओं की वेदान्त श्रवण में प्रवृत्ति नहीं होवेगी याते आत्मा में बन्ध शशशृंग तुल्य है आत्मा सर्वदा काल मुक्त रूप है तामें कभी भी बन्ध नहीं बने, यह श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानियों की दृष्टि है, औ वेदान्त श्रवण में जिज्ञासुओं की प्रवृत्ति तो आत्मा में अत्यन्त असत्य रूप भी बन्ध की भ्रान्ति से होवे है, जाको भ्रान्ति नहीं, ताकी नहीं होवे यह शास्त्र का सार है ऐसे पूर्व कहे आभास प्रतिबिम्बादिक मतों में भी एक के खण्डन और दूसरे के मण्डन में कुछ आग्रह नहीं किन्तु जिस मत से जिस पुरुष को अद्वितीय आत्मा का ज्ञान होवे सोई मत उसके वास्ते श्रेष्ठ है यह भी शास्त्र का सार है इस रीति से वुद्धि उपाधिवाले को मतभेद से जीवता सूचन कर अब प्रतिबिम्बभूत मुख में ही दर्पण उपाधिकृत श्यामता पीतता

कर्म करे फल उरमें धारे । ताहित लोक परलोक सिधारे ।
बहुरो नाना विधि दुख जोवै । ज्ञान पाय सकले दुख खोवै ॥११॥

अब पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का प्रश्नोत्तर रूप सम्वाद ।

पूर्वपक्षी—

ननु आत्मा असंग बतायें । अवस्था संग कथं तिन पाये ।
बुद्धि उपाधि सुखादिक जेते । कर्म फलादिक सकले तेते ॥१२॥

आदि विकारोंवत् यह तामे उपाधिकृत अनर्थ है यह कहे "सुखी" इति, सुखी नाम सुख वाला होवे है, दुखी नाम दुख वाला होवे है और अपूर्ण-काम कहिये इच्छानुसार पदार्थों के न प्राप्त होने से ब्रह्मलोक पर्यन्त कामना की पूर्ति रहित होवे है ॥ १० ॥

औ कर्म करे कहिये शुभाशुभ मिश्रित तीन प्रकार के कर्मों का कर्ता होवे है औ तिन कर्मों को करके भोगने वास्ते पीछे ते तिन कर्मों के "मैं यज्ञ किया स्वर्ग पाऊँगा" ऐसे स्वर्गादि रूप फलों को हृदय में धारण करे है औ धारण कर ताहित नाम तिन धारण किये सुख दुख फलों के हित चार खानि अन्तर्गत चौरासी लक्षयोनि के चक्र में पड़ा घटी यन्त्रवत् लोक परलोक में गमन करे है औ बहुरो नाम जाने से पीछे इष्ट अनिष्ट पदार्थों के सम्बन्ध ते लोक-परलोक में नाना प्रकार के दुखों का अनुभव करे है औ अनुभव करता हुआ कभी काहू पुण्य-प्रताप ते वैराग्यादिक साधन सहित हुआ गुरु समीप पहुँच के, तासे निजस्वरूप का ज्ञान पाय कर रज्जु ज्ञान से सर्पादि भ्रान्ति के नाशवत् सम्पूर्ण दुखों को, तिनके मूलभूतअविद्या सहित अत्यन्त नाश करे है ॥ ११ ॥

तीन अवस्था का संगी होकर चेतन जीव कहावे है यह श्रवण कर पूर्वपक्षी आशंका करे "ननु" इति आत्मा असंग बताये कहिये "बाध-विहीन असंग स्वरूप" इस रीति से पूर्व तुमने आतमा को असंग कह्या याते तिस संग मात्र के अभाव वाले आत्मा ने घट के अभाव वाले स्थान में विरोधी रूप घट का रहना न देखने ते निज रूप में अवस्था त्रय का संग किस रीति से पाया भाव यह—विरोधी होने ते काहू रीति से नहीं पाया जावे, याते दण्ड संग के अभाव वाले पुरुष में दण्ड के अभाववत् अवस्था संग रहित आत्मा में अवस्थात्रय और "बुद्धि उपाधि" पाठ से ले "परलोक सिधारे" पर्यन्त पाठ से पूर्व कहे बुध्युपाध्यादिक भी तामें कोई नहीं बने सोई कहे "बुद्धि" इति ॥ १२ ॥

लोक परलोक गमन है जोई । असंग विषे नहिं बने सु कोई ।

सिद्धान्ती—

यह आशंका तुमरी जोई । करौं परिहार सुनो अब सोई ॥१३॥

असंग विषे नहिं तात्त्विक संगा । अध्यासिक होय सकल परसंगा ।

सीपि विषे ज्यों रूपो भासे । त्यों आतममें सकल प्रकाशे ॥१४॥

पूर्वपक्षी—

ननु सीपिको जो नहिं जानै । तौ तामें नर रजत बखानै ।

यों अज्ञान अहे तामाहीं । कार्य रजत होय ता माहीं ॥१५॥

असंग में विरोध से अवस्था संगादिक कोई नहीं बने यह आशंका का भाव सुनकर ताके परिहार की प्रतिज्ञा करे सिद्धान्ती "यह" इति ॥ १३ ॥

असंग में वास्तविक संग माने दोष है वा कल्पित संग माने भी इनमें प्रथम का सिद्धान्त में अनंगीकार कहे "असंग" इति, असंग विषे कहिये वास्तविक ते निखिल अवस्था आदिकों के संग मात्र रहित आत्मा विषे, तात्विक नाम अवस्थात्रय आदिकों का वास्तविक संग नहीं बने, याते प्रथम का अंगीकार नहीं, और दूसरे में दोष कहो तब घट घटाभाववत्तुल्यसत्तावाले अभाव प्रतियोगी का ही मिलकर रहने भी विरोध होवे है, कल्पित रजत औ ताके अभाववत् भिन्न सत्तावालों का नहीं होवे, याते वास्तविक संग के अभाव काल में ही अवस्थात्रय आदिकों का कल्पित संग बने है यह कहे "अध्यासिक" इति अध्यासिक कहिये कल्पित होवे है सम्पूर्ण अवस्थात्रयआदि, पर नाम अनात्मा का आत्मा में संग, कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "सीपी" इति, भासे के आगे कल्पित शेष (कर लेना) ॥ १४ ॥

शुक्ति में आध्यासिक रजतवत् आत्मा में आध्यासिक संग सम्भवे है यह वार्ता श्रवण कर रजतवत् संग को आध्यासिकता, अध्यास की सामग्री के अधीन कहनी होवेगी औ त्रिविध दोष, संस्कार, सामान्य का ज्ञान, विशेष का अज्ञानरूप अध्यास की सामग्री में प्रथम सूर्य में तमवत् स्वप्रकाश ज्ञानरूप अधिष्ठान में निखिल सामग्री के बीज भूत ज्ञान के विरोधी विशेष अंश के अज्ञान का ही सम्भव नहीं, औ शुक्ति में पूर्ण सामग्री का सम्भव है, याते शुक्ति रजत दृष्टान्त को विषम होने ते, रजत-

आत्म स्वप्रकाश सम भान । ताहि विषे कैसा अज्ञान ।
ताबिन नहिं होवे अध्यास । मिथ्या तेरो वचन विलास ॥१६॥

सिद्धान्ती—

स्वप्रकाश आत्म है जोई । भानु समान न वैरी सोई ।
ताही कर भास्यो अज्ञान । कार्य सकल करावे भान ॥१७॥

वत् संग को आध्यासिकता न भया ताको पूर्व "ज्ञान पाये सकले दुख खोवै" से कही ज्ञान-निवर्तता भी नहीं बने यह "करौं परिहार" कथन सुनकर कोपयुक्त हुआ आशंका करे "ननु" इति, जो कहिये जिसकाल में शुक्ति को नील पृष्ठ त्रिकोणता रूप विशेष अंश से पुरुष नहीं जाने, तौ नाम तिस काल में, तामें कहिये शुक्ति रूप अधिष्ठान विषे पुरुष "इदं रजतम्" ऐसे रजत का कथन करे है, भाव यह—जिस काल में विशेष रूप से शुक्ति का पुरुष को अज्ञान होवे है, तिस अज्ञान काल में शुक्ति विषे कल्पित रजत का कथन करे है, याते यों नाम कही रीति से, ता माहीं नाम शुक्ति रूप अधिष्ठान में रजत का हेतु अज्ञान, अहे कहिये विद्यमान है जाही ते ता माहीं कहिये तिस शुक्ति रूप अधिष्ठान में शुक्त्यवच्छिन्न चेतन आश्रित अज्ञान का कार्य रजत होवे है, वा अन्यमतों में रजत को कार्यता न मानने से, कार्य रजत कहिये इन्द्रियोंवत् स्वज्ञानादिकों में विषय को भी हेतु होने ते रजत के कार्य "इदं रजतम्" ज्ञान और तैसा कथन रजतार्थी को प्रवृत्ति होवे है ॥ १५ ॥

तिस शुक्ति विषे दृष्टान्त विषमता प्रकट करने हेतु दृष्टान्त में अज्ञान सिद्धकर दार्ष्टान्तिक में ताका अभाव कहे "आतमा" इति, अपना आप सूर्य के समान स्वयं प्रकाश है याते ताहि विषे कहिये तिस सूर्यवत् स्वयं प्रकाश आत्मा विषे, अज्ञान कैसे बने भाव यह ज्ञान अज्ञान के परस्पर विरोध ते प्रकाश मो अन्धकारवत् अज्ञान तामें काहू रीति से नहीं बने, मत बनो दोष क्या तहां ? नहीं अध्यास की असिद्धि से और कुछ यह कहे "ता बिन" इति, कोप प्रकट करे "मिथ्या" इति, तेरो वचन विलास मिथ्या नाम तेरी वाणी का प्रतिपाद्य संगादिकों को आध्यासिकता कथन झूठा है ॥ १६ ॥

काच रूप उपाधि रहित सूर्य को तृणों की प्रकाशकता औ उपाधि सहित को दाहकतावत्, वृत्ति रूप उपाधि रहित स्वप्रकाश को अज्ञान

अरु पुनि भानु निदर्शन जोई । कल्पित में अनुकूली सोई ।
तात्त्विक तमको सविता मारे । अध्यासिक को नहिं परिहारे ॥१८॥
पेचक कल्पित जो तम अहै । सो सविताके भीतर रहै ।
ताते जो दृष्टांत दिखायो । सो सिद्धांत अनुकूलहि आयो ॥१९॥
मैं अज्ञानी यों अज्ञान । अनुभव को सब करे बखान ।
यों अज्ञान भयो प्रतिभास । रजत समान जने अध्यास ॥२०॥

की प्रकाशकता औ वृत्यवच्छिन्न भयो को ताकी नाशकता से अज्ञान का तामें असम्भव नहीं, ऐसे न माने जगत् में अज्ञान पदार्थ की ही असिद्धि होवेगी यह कहे "स्वप्रकाश" इति, स्वप्रकाश ज्ञानरूप जो आत्मा है वह भानु समान कहिये अन्धकार साथ सूर्य के समान वृत्ति बिना अज्ञान का विरोधी नहीं, उलटा साधक प्रमाण है यह न वैर में हेतु कहे "ताही" इति, ताही कर कहिये तिस स्वप्रकाश शुद्ध कर ही, भास्यो नाम प्रकाश्य हुआ—अज्ञान अहंकारोपहित साक्षी में आयकर अपने सम्पूर्ण कार्यों को "मैं देह हूँ" "मैं इन्द्रिय हूँ" ऐसे प्रतीत करावे है ॥ १७ ॥

किञ्च "कुबरी को लतकारी" इस लौकिक न्याय से भिन्न सत्ता वालों का विरोध न देखने से बाधकता में दिया दृष्टान्त भी सिद्धान्त का साधक है यह कहे "अरु पुनि" इति अनुकूलता प्रकट करे "तात्त्विक" इति, सविता—सूर्य ॥ १८ ॥

प्रसिद्ध अन्धेरे से अतिरिक्त तम कौन है जाका सूर्य नहीं प्रहार करे पुनः वह तामे रहे है ? यह आशंका कर कहे "पेचक" इति, पेचक ऊलूक, ताते नाम कल्पित तम को सविता में रहने ते ॥ १९ ॥

कही रीति से स्वप्रकाश का अज्ञान साथ अविरोध सिद्ध कर सिंहावलोकन न्याय से "ताही कर भास्यो" कथन को स्पष्ट करे "मैं" इति, यद्वा ननु मत होवे स्वप्रकाश का विरोध, तथापि अज्ञान सिद्धि में प्रमाण कौन है ? यह आशंका कर सर्व प्रमाणों का प्रकाशक रूप साक्षी प्रत्यक्ष कहे "मैं" इति "अनुभव को" पाठ पूर्व साथ मेल कर, मैं अज्ञानी कहिये अज्ञान का आश्रय मैं हूँ ऐसे अपने में अज्ञान के प्रत्यक्ष रूप अनुभव को सब करे बखान कहिये सम्पूर्ण जीव कथन करे है याते यों नाम कहिये कही रीति से "मैं अज्ञानी" या अनुभव से, प्रतिभास नाम प्रतीत हुआ अर्थात् शुद्ध स्वप्रकाश में सिद्ध भया अज्ञान, रजत समान

कहिये रजतवत् मिथ्या रूप अध्यास को जने है, यद्यपि "मैं" "अहम्" शब्द पर्याय है अहं शब्द का वाच्य अहंकार विशिष्ट है याते "मैं अज्ञानी" या अनुभव से अहंकार विशिष्ट जीवात्मा में ही अज्ञान की आश्रयता के भान ते शुद्ध स्वप्रकाश में आश्रयता नहीं बने, कथंचित् बने तौ भी ज्ञान अहंकार विशिष्ट जीवात्मा में है, अज्ञान शुद्ध में है, याते ज्ञानाज्ञान को व्यधिकरण होने ते अन्य मन्दिरगत प्रकाश से अन्य मन्दिरगत अन्धकार की निवृत्ति न देखने से अहंकारविशिष्टजीवगत, तत्त्वज्ञान से शुद्धगत अज्ञान की निवृत्ति नहीं होवेगी याते पुनः भी शुद्धस्वप्रकाश में अज्ञान की आश्रयता नहीं सम्भवे, यह आशंका होवे है, तथापि दाहाश्रय अग्नि के लोहे में तादात्म्याध्यास से "अयो दहति" लोहा दाह करे है कथनवत् अज्ञान के आश्रय रूप शुद्ध चेतन साथ अहंकार विशिष्ट के तादात्म्याध्यास से अहंकार विशिष्ट में आश्रयता की प्रतीति होवे है, वास्तविक ते अहंकारविशिष्टजीव अज्ञान के अधीन सम्भव वाला होने ते अपने से पूर्व रहे अज्ञान का आश्रय नहीं बने, तैसे अज्ञान विशिष्ट ईश्वर भी अपने से पूर्व रहे अज्ञान का आश्रय नहीं बने, कहा भी है संक्षेपशारीरक में—जैसे मन्दिर से पूर्वं रहे अन्धेरे का पीछे होने वाला मन्दिर आश्रय विषय नहीं होवे, ऐसे जीव ईश रूप प्रतिबिम्बन से पूर्व रहे अज्ञान के यह भी आश्रय विषय नही होवे, किन्तु स्वप्रकाश शुद्ध ही अज्ञान का आश्रय है, वही पुनः अपने से अभिन्न जोव में रहे ज्ञान का आश्रय है, याते ज्ञानाज्ञान को समानाधिकरण होने से, पूर्व कही व्यधिकरण होने से जीव निष्ठ तत्त्व ज्ञान से शुद्ध गत अज्ञान को निवृत्ति नहीं होवेगी यह आशंका भी दूर होवे है, इस रीति से अज्ञान का आश्रय शुद्ध है, "तैसे मैं नहीं जानता" या अनुभव से विषय भी शुद्ध है। यद्यपि अज्ञान की विषयता शुद्ध में अज्ञानकृत आवरण ही कहना होवेगा औ शुद्ध को स्वप्रकाश होने ते आवरण तामें सम्भवे नहीं, कथंचित् सम्भवे तौ पट कर आवृत हुए घट के अभानवत्, आवृत होने ते चेतन का भान ही नहीं होवेगा औ प्रकाशक के असिद्ध भये अज्ञान भी असिद्ध हो जावेगा, याते ब्रह्म को विषयपना नहीं बने यह आशंका होवे है, तथापि जैसे तम रूप राहु ने आच्छादन कर खैर के अंगारवत् किया भी चन्द्रमा, आप स्फुरण होता हुआ ताको प्रकाशे है ऐसे अद्वैत आनन्दरूप अंशों को आच्छादन कर असत्य, आभान का आपादन करने वाले अज्ञान कर आच्छादित भया भी आत्मा आप स्फुरण होता

अब पूर्वपक्षी सिद्धान्ती उक्त अविद्या के स्वरूप का
विकल्पों कर खण्डन करे है ।

पूर्वपक्षी—

ननु अविद्यासत्य स्वरूप । उत असत्य कहो तिहँ रूप ।
प्रथमें बाध न ताको होई । सत्य रूप आत्म सम सोई ॥२१॥
द्वितीय भान कहो क्यों होई । शशेश्रृङ्ग सम भाखी सोई ।
अरु वह बंध मूलबिन होई । मूल न और दिखायो कोई ॥२२॥

हुआ "मैं अज्ञानी" ऐसे अज्ञान को प्रकाशे है, याते स्वत: आवरणस्वरूप औ आवरण रहित अंशान्तर शून्य घटादिकों के दृष्टान्त में भेद होने ते आत्मा का सर्वथा अभान औ सर्वथा अभान भये प्रकाशक के अभाव ते अज्ञान की असिद्धि यह दोऊ बात नही बनै यह तत्त्व है ॥ २० ॥

पूर्व कहे "मैं अज्ञानी" अनुभव से काहू वस्तु का न जानना या जानकर भूल जाना रूप ज्ञान का प्रागभाव, तथा प्रध्वंसाभाव ही सिद्ध होने ते, पुन: अघटवत् निषेधार्थक अकार वाले अज्ञान पद से भी ज्ञानाभाव के ही प्रतीत होने ते, वेदान्ती को अभिमत भावाभाव से विलक्षण कल्पित रूप अज्ञान की काहू रीति से न सिद्धि भये, तासे आध्वासिक संग नहीं बने इस अभिप्राय से कल्पित अज्ञान की सर्वथा विकल्पो से असिद्धि कहने हेतु, नैयायिक आदिक आशंका करे "ननु" इति, अविद्या आत्मवत् सत्य स्वरूप नाम अत्यन्तसत् स्वरूप कहते हो, उत नाम अथवा शशश्रृंगवत् अत्यन्त असत् रूप कहते हो, अविद्या अत्यन्त सत् रूप है यह आशंका कर "अविद्या ज्ञान से बाध होने योग्य नहीं" पारमार्थिक सत् होने ते, आत्मवत, यह ज्ञान को व्यर्थता सूचन करे "प्रथमें" इति, न बाध में हेतु कहे "सत्य" इति ॥ २१ ॥

अविद्या न भान होने को योग्य है, अत्यन्त असत्य रूप होने ते, शशश्रृंगवत्, पुन: कर्तापना आदिक बन्ध, स्वभाव सिद्ध होने को योग्य है, अकारणक होने ते, अग्नि उष्णवत्, यह क्रम ते "मैं अज्ञानी" इस प्रत्यक्ष की असिद्धि तथा स्वभावसिद्ध बन्ध का आग्नि उष्णवत् नाश न होने ते, ज्ञान को व्यर्थता सूचन करे "द्वितीय" इति, मूल बिन—कारण बिन, अर्थात् स्वभाव सिद्ध, औ मूल मानने से स्वभाव सिद्धता नहीं बने यह आशंका कर, न दिखावन से नहीं यह परिहार करे "मूल न" इति ॥२२॥

उभय स्वरूप विरोधी अहै । कोविद कोय न ताको गहै ।
आत्म ते यह न्यारी मानो । उत आत्म अभिन्न बखानो ॥२३॥
प्रथमें और ठौर नहिं देखी ।न्यारी कहो सु किह विधि लेखी ।
जाते और ठौर नहिं हइये । अग्नि उष्ण ज्यों ताते पइये ॥२४॥
द्वितीय होवे नित्य स्वरूप । आत्म भिन्न न ताको रूप ।
ताको बाध कहे जे कोई । आत्म बाध प्रकट तिहँ होई ॥२५॥
भिन्नाभिन्न विरोधी अहे । पूर्व सम ताको उर गहे ।
अरु यह निरावयव तुम मानो । उत सावयव सु ताहि बखानो॥२६॥

ननु सत् रूपता को देखकर असत् पक्ष के, औ असत् रूपता को देखकर सत् पक्ष के, दोष दूर करणार्थ उभय स्वरूप कहे है ? यह आशंका कर कहे "उभय" इति, भिन्नाभिन्न विकल्पों से कल्पित की असिद्धि हेतु कहे "आत्म ते" इति, न्यारी नाम अत्यन्त भिन्न मानते हो, उत—अथवा आत्मा से अत्यन्त अभिन्न कहते हो ॥ २३ ॥

आत्मा ते न्यारी माने है ? तहां कहे "प्रथमें" इति, किह विधि लेखी— किस प्रकार लखी अर्थात् काहू रीति से नहीं लखी, याते न्यारी न लखने ते, अग्नि उष्णवत् ब्रह्म का स्वभाव माननी सोई कहे "जाते" इति, पइये के आगे "ब्रह्म का स्वभाव" शेष (कर लेना), ऐसे भये स्वभाव भूत वस्तु का नाश न होने कर ज्ञान को व्यर्थता होवेगी, यह भाव है ॥२४॥

अविद्या आत्मा ते अभिन्न कहते हैं ? यह आशंका कर, अविद्या सत् रूप होने को योग्य है, आत्मा साथ अत्यन्त अभिन्न होने ते, आत्मवत्, या अनुमान से सत् रूपता सिद्ध भये सिद्धान्त में मानी असत् रूपता की असिद्धि सूचन करे "द्वितीय" इति, नित्य स्वरूपता में हेतु कहे "आत्म" इति, आत्मा ते भिन्न नहीं या हेतु ते अविद्या का रूप, ताते अविद्या अपने साथ अभिन्न आत्मावत् सत् होवेगी पुनः ज्ञान से ताका नाश अंगीकार करे तब, "आत्मा नाशी होने को योग्य है, अविद्या साथ अत्यन्त अभिन्न होने ते, अविद्यावत्" या अनुमान ते आत्मा के बाध प्रसंग से शून्यवाद की प्राप्ति सूचन करे "ताको" इति ॥ २५ ॥

पूर्व सम सत् असत् उभय रूवतावत् निरवयव सावयव विकल्पों से कल्पित की असिद्धि हेतु कहे "अरु" इति ॥ २६ ॥

प्रथम पक्ष परिणामहिं हीन । याकोनि ज उर अंतर चीन ।
अवयव अन्यथा जाके होवै । ताको नर परिणामी' जोवै ।।२७।।
द्वितीय कार्य रूप पछानो । क्रिया नाश ताहि उर मानो ।
अनन्त अवयव कल्पना करो ।आदि जनक नहिं सो उर धरो। २८।।

निरवयव माने है ? यह आशंका कर अविद्या परिणाम से रहित होने को योग्य है, निरवयव होने ते, ब्रह्मवत्, यह सिद्धान्त में अविद्या को मानी हुई परिणामी उपादनता की असिद्धि कहे "प्रथम" इति, प्रथम पक्ष परिणार्माहं हीन कहिये निरवयव पक्ष में अविद्या परिणाम रहित है ऐसे अविद्या को हृदय में जानो। ननु जाने तब हृदय में अज्ञान को अपरिणामी जब जैसी बात को देखकर पुरुष और को परिणामी देखे है वह बात निरवयव अज्ञान में न बने ? यह आशंका कर कहे "अवयव" इति अवयव अन्यथा जाके होवै नाम दुग्धवत् जा वस्तु के अवयव और प्रकार के हो जाये अर्थात् पूर्व पतले हैं तो आगे सघन, पुनः पूर्व कोमल हैं तौ आगे सघन पुनः पूर्व कोमल हैं तौ आगे कठिन हो जावे ताको पुरुष परिणामी कहे हैं औ अज्ञान को सिद्धान्त में निखयव मानने ते ताका परिणाम बने नहीं, याते अज्ञान परिणामी उपादान है यह तुम्हारा सिद्धान्त दूर होवेगा ।। २७ ।।

परिणामी उपादानता सिद्धान्त की रक्षा हेतु अविद्या को सावयव मानो, तब कार्यता पुनः क्रिया नाश्यता औ अनन्तावयव कल्पना पुनः आदिजनकत्वाभाव रूप दोष चतुष्टय से वह भी नहीं बने सोई कहे "द्वितीय" इति द्वितीय कहिये अविद्या को सावयवता अंगीकार पक्ष में सावयव पटादिकों को नेमकर तन्तु आदिक अवयवों का कार्य देखने से सावयव अविद्या को भी तिनके समान, कार्य नाम जन्य द्रव्य जानों, सो पुनः अविद्या को षड् में अनादि मानने से बनें नहीं अन्यथा "अविद्या अनादि है" यह सिद्धान्त दूर होवेगा और कार्यतावत् क्रिया नाशताहि उर मानो कहिये सावयव घटादिकों का मुद्गर प्रहारादि रूप क्रिया से नाश देखने कर सावयव अविद्या का भी तिनके समान क्रिया से ही नाश होवेगा, ऐसे भये ज्ञान को व्यर्थता होवेगी औ अनन्त अवयव कल्पना करो कहिये अविद्यावत् अविद्या के आवरण विक्षेप रूप अवयवों में भी अविद्या के अवयव सावयव हैं, या निखयव हैं इन विकल्पों में

तीसर पक्ष तथा उर मान। पुनि काहे मैं करौं बखान।
यथा कथंचित् यों उर मानो। ताहि संबंध कहो को ठानो ॥२९॥

दूसरा मानने में अविद्या रूप परिणाम का असम्भव देखकर, प्रथम मानो तब तहां भी पूर्ववत् विचार किये तुम अनवस्था का ठिकाना रूप अनित्य भूत अनन्त अवयवों की कल्पना करोगे। ननु न्याय मत में परमाणु औ सांख्य मत में प्रधानवत्, अन्त्य अवयवों को नित्य मानने ते तहां विश्राम भये अनवस्था का ठिकाना रूप कल्पना नहीं करेंगे ? ऐसे कहो तब अद्वैत प्रतिपादक श्रुति साथ विरोध होवेगा याते तिनको नित्यता दूर भये दोष का ठिकाना रूप कल्पना करोगे हो, पुनः सावयव वस्तु की कारणता ताके अवयवों को देखने ते, आदि जनक नाम मूला अविद्या ही सर्व का आदि कारण है यह अपना सिद्धान्त भी हृदय से दूर करो ॥ २८ ॥

उरमान—सिद्धान्ती को कहे तू हृदय में जान। वा विरोधी मानकर मैं ही क्या कहूँ, ननु "मैं अज्ञानी" या अनुभव के विषय ज्ञान के प्रागभाव प्रध्वंस मों प्रथम प्रागभाव भी स्वरूप ज्ञान को नित्य होने ते, वृत्ति ज्ञान का ही कहना होवेगा, वह पुनः वृत्ति ज्ञान रूप प्रतियोगी को जानकर कहते हो वा बिना जाने ? इन विकल्पों में प्रथम मानें वृत्ति ज्ञान के ही सिद्ध भये ताके अभाव की असिद्धि से वह विषय नहीं, या भय से दूसरा कहो तब "प्रतियोगी ज्ञानाधीन ज्ञानवाला होना" अभाव का लक्षण है, याते प्रतियोगी ज्ञान बिना अभाव का ज्ञान ही प्रसिद्ध न होने ते "मैं अज्ञानी" इस अनुभव का नियम ज्ञान का प्रागभाव नहीं बने औ प्रध्वंस पक्ष में भी घटादिकों के नाशवत् ज्ञान का नाश अभाव रूप नहीं होवे किन्तु स्मृति का जनक संस्कार रूप होवे है, सो संस्कार धर्मादिकोंवत् इन्द्रिय का विषय नहीं होवे याते "मैं अज्ञानी" यह प्रत्यक्ष रूप अनुभव ही दूर होवेगा, इस ते "अज्ञानी" इस अनुभव का विषय अज्ञान शब्द का अर्थ अभाव से भिन्न नव विकल्पो के दोषों को न सहारने वाला कल्पित रूप और ही है, याही ते अज्ञान पद में अकार का अर्थ भी निषेध नहीं, किन्तु "अधर्म शब्द में" धर्म विरोधी होवे सो कहिये अधर्म, ऐसे विरोधी अर्थवत् ज्ञानविरोधी अज्ञान ऐसा ही अर्थ है, याते "अज्ञान पद से भी ज्ञानाभावरूप अज्ञान नहीं सिद्ध होवे किन्तु ज्ञान विरोधी भावरूप ही सिद्ध होवे है ? यह आशंका कर कहे

जाकर चिद् भीतर जो होई । मोको कहो प्रकट तुम सोई ।
संयोग तदात्म ता उर मानो । उत समवाय सु नीके ठानो ॥३०॥
प्रथमे द्रव्य दुहूँको मानो । तौ संयोग तुंड ते भानो ।
क्रियावंत पुनि होय सावयव । नहिं उर में धर ते निरवयव ॥३१॥
सगुण विनाशी दूषण जेते । आय लगे आत्म महिं तेते ।
द्वितीय तादात्म्य तौ होई । जन्य जनक जो यामें कोई ॥३२॥

"यथा" इति, यथा कथंचित्—जैस कैसें अर्थात् कही रीति से बड़े बल कर जो हृदय में मानो तौ मानो, परन्तु चेतन में वह काहू सम्बन्ध से रहे है वा बिना सम्बन्ध रहे है ? इन विकल्पों के दोषों से अधिष्ठान में अज्ञान न रह्या, संग को आध्यासिकता नही बने, या अभिप्राय से सम्बन्ध पूछे "ताहि" इति ॥ २९ ॥

जाकर—जिस सम्बन्ध कर, सोई वह सम्बन्ध कहो ? "को" "जाकर" शब्द कर सूचित विकल्प स्फुट करे "संयोग" इति, संयोग तदात्म ता उर मानो कहिये जो संयोग है सो हृदय में मानते हैं वा जो तादात्म्य है सो हृदय में मानते हो, उत—अथवा, समवाय सुनीके ठानो नाम समवाय को भली प्रकार मानते हो ॥ ३० ॥

संयोग कहे है ? आशंका कर संयोग को द्रव्यों में होने के नियम ते दोनों को प्रथम द्रव्यमान, पुनः क्रिया औ अवयव रूप सामग्री की चाह वाले संयोग की सिद्धि हेतु तिनको क्रियावन्त पुनः सावयव मान यह कहे "प्रथमे" इति, प्रथमे—संयोग के अंगीकार पक्ष में, ननु होवे सावयव दोष क्या ? यह आशंका कर निरवयवता निर्गुण अविनाशिता सिद्धान्त की हानि आदिक दोष सूचन करे "नहिं" इति, नहिं उर में धर ते निरवयव कहिये माया ब्रह्म को सावयव सिद्ध भये हृदय में निरवयव मत मानो ॥ ३१ ॥

निरवयवता की हानिवत् द्रव्य को गुणवाला होने के नियम ते आत्मा को सगुण सिद्ध भये निर्गुणता की हानि, तथा सगुण सावयव द्रव्य को विनाशता के नेम ते आत्मा को नाशपने का प्रसंग भी होवेगा यह कहे "सगुण" इति, सगुण विनाशी दूषण जेते कहिये निर्गुणता औ अविनाशिता सिद्धान्त के दूर करनेवाले जो गुण वाला होना औ विनाशी होना इत्यादिकदोष, सो सम्पूर्ण आत्मा में आये प्राप्त होवेंगे, याते

दोनों अनादि या मत तेरो । जन्य जनक नहिं यामें हेरो ।
यामें कोइक जन्य बखानो । श्रुति विरोध प्रकट तव जानो।।३३।।
'अजा अविद्या' श्रुति बखाने । त्यों 'अज' उर आत्मको माने ।
तृतीय गुण अरु गुणी न कोई । तृतीय संबंध कहो क्यों होई ।।३४।।
जाति सु व्यक्त्यादिक सब जेते । दोनों विषे नहिं माने तेते ।
बिना संबंध रहन है जोई । खर विषाण सम जानो सोई ।।३५।।

संयोग मत मानो। ननु उक्त दोषों ते मत होवे संयोग, माया ब्रह्म में भेदाभेद रूप तादात्म्य के प्रयोजक उपादान उपादेय रूप कार्यकारण भावको तथा गुणगुणी भावादिकों की असिद्धि से तादात्म्य भी नहीं बने यह कहे, "द्वितीय" इति, द्वितीय तादात्म्य तौ होई कहिये तादात्म्य के अंगीकार पक्ष में तादात्म्य सम्बन्ध भी तब बने, जब यामें कहिये माया ब्रह्म में कोई उपादेय उपादानरूप कार्यकारण होवे तथा गुणगुणी-भावादिक होवे सो पुनः कोई नहीं बने ।। ३२ ।।

न बनना स्पष्ट करे "दोनों" इति, दोनों अनादी या मत तेरो कहिये "जीवेशौ विशुद्धाश्चित् तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितो र्योगः षडस्माकमनादयः ।।" इस वार्तिककार के वचन ते माया ब्रह्म दोनों अनादी हैं यह तुम्हारा सिद्धान्त है, याते इनमें काहू को जन्य जनक मत देखो तथा काहू को गुण गुणी आदिक रूप मत देखो, ऐसे भये तादात्म्य नहीं बने, तादात्म्य सिद्धि हेतु "अर्थी दोषं न पश्यति" न्याय से काहू को जन्य मानो तब श्रुति से विरोध होवेगा सोई कहे "यामें" इति ।। ३३ ।।

श्रुति का विरोध काहे होवेगा ? तहां कहे "अजा" इति, अर्थात् श्रुति दोनों को जन्मरहित कहे है औ तुम जन्म मानो हो, याते उलटा कहने से विरोध होवेगा। ननु कहे दोषों ते संयोगवत् तादात्म्य भी मत बने हम माया ब्रह्म का समवाय माने हैं ? यह आशंका कर गुणगुणी भावादिकों की असिद्धि ते समवाय भी नहीं बने यह कहे "तृतीय" इति, कहो क्यों होई नाम कहो कैसे होवे अर्थात् काहू रीति से नहीं होवे ।। ३४ ।।

काहू रीति से न होना स्पष्ट करे "जाति" इति, "जाति सुव्यक्त्या-दिक" शब्द से क्रिया क्रियावान्, अवयव-अवयवी, विशेष, नित्य द्रव्य,

अब उक्त पूर्वपक्ष का दो उक्ति से खण्डन।

सिद्धान्ती—

पूर्व पक्ष कियो तव जेतो। दो उक्ति मों हनहौं तेतो।
नवधा माहिं न कोई माने। अनिर्वाच्य हम ता उर ठाने ॥३६॥

जान लेना, याते यह सिद्ध भया जो माया ब्रह्म दोही में गुणगुणी भावादिकों की असिद्धि ते समवाय भी नही बने, इहां जन्यजनकरूप तथा जाति व्यक्त्यादिक समान सामग्री वाले भी तादात्म्य और समवाय का भिन्न-भिन्न खण्डन, नैयायिक इनके सम्बन्ध को समवाय कहे हैं। औ मीमांसक भेदाभेद रूप तादात्म्य कहे है, ऐसे मतभेद से नाम मात्र सूचन अर्थ है और कुछ विशेष नहीं वास्तविक ते तो जन्य जनक तथा गुणगुणी औ जाति व्यक्ति भावादिकों को दोऊ में न होने से तादात्म्य समवाय दोऊ नहीं बने, ऐसे एकठा ही खण्डन करना उचित था यह जानना और इहां यह भी जानना निरावरण सन्निधिआदिक और भी सम्बन्धों के होने से पूर्व पातञ्जल मत में तथा इहाँ संयोग आदिक तीनों का खण्डन करना या अभिप्राय से है एक वस्तु का अपर वस्तु में रहना इनसे होवे है निरावरण सन्निधि आदिक सम्बन्धों से "यह दोऊ वस्तु सम्बन्धी है" ऐसे सम्बन्धी मात्र व्यवहार होवे है, आश्रय आश्रयीभाव की सिद्धि नहीं होवे याते आश्रय आश्रयीभाव की सिद्धि न करने से ही खण्डित होने से तिनका पृथक् खण्डन अपेक्षित नहीं, मत बनो काहू सम्बन्ध से अविद्या का चिद् में रहना, हम बिना सम्बन्ध ही रहना कहे हैं? यह आशंका कर सम्बन्ध बिना रहन की सम्भावना दूर करे "विना" इति, बिना सम्बन्ध रहन है जोई कहिये सम्बन्ध, बिना जो अविद्या का चेतन में रहना है वह गर्दभ के शृंगवत् असत् है अर्थात् सम्बन्ध विना रहना नहीं बने, ऐसे न माने काशी के घट का मथुरा में रहने का प्रसंग होवेगा ॥ ३५ ॥

उक्त दोषों ते अविद्या का सत्य आदि रूपों से निर्वचन अर्थात् कथन न होने से स्वरूप अनिर्वाच्य है पुनः वास्ताविक रूप संयोग आदिक सम्बन्धों का निर्वचन न होने ते औ सम्बन्ध बिना रहना माने अतिव्याप्ति के भय ते रहने योग्य सिद्ध हुये तादात्म्य सम्बन्ध भी अनिर्वाच्य है इन दो उत्तरों को चित्त में स्थापन कर कहे "पूर्व" इति, दो उक्ति नाम दो बोली मों अर्थात् दो बोलियों से पहली बोली कहे "नवधा"

इति, नवधा माहिं न कोई माने नाम उक्त दोषों ते सत्यादिक नव प्रकारों में कोऊ नहीं मानते किन्तु हम-वेदान्ती अनिर्वाच्य कहिये अविद्या को सत्यआदिक रूपों से दुर्निरूप्य कहे हैं। ननु मानो अज्ञान को दुर्निरूप्यता स्वरूप अनिर्वाच्यता परन्तु अनिर्वाच्यता न कह्या जाना रूप है अर्थात् कहने का अभाव रूप है वा विषय औ ज्ञान बिना कहना न देखने ते, ज्ञान औ विषय जो कहने में निमित्त, तिन निमित्तों का अभाव रूप है ? कहने का अभाव रूप है यह प्रथम तो बने नहीं, काहे ते ? सिद्धान्त में अनिर्वाच्य रूप कर अंगीकृत भी शुक्ति रजत में "इदं रजतम्" ऐसे कहने का भाव देखिये है याते निर्वचन के निमित्तों का अभाव रूप कहे है यह दूसरा मानो, तब दूसरे भी कहने के निमित्त ज्ञान का अभाव रूप है वा ज्ञान के विषयों का अभाव रूप है ? ज्ञान का अभाव रूप है ऐसे कहो तब रजतादिकों का ज्ञान न भये "यह रजत है" ऐसे कथन को ही अशक्य होने ते ज्ञान का अभाव तो सिद्ध नहीं होवे, याते विषयों का ही कहना तहाँ विषय भी सत् नहीं, "वा असत्" नहीं ? विषय सत् नहीं कहो, तब सत् असत् दोऊ को परस्पर का प्रतिषेध रूप होने ते सत् विषय का निषेध किया, असत् विषय को शेष रहने से, असत् ख्याति का प्रसंग होवेगा या भय ते विषय असत् नहीं, ऐसे कहो ? तब सत् विषय को शेष रहने से सत्, ख्याति का प्रसंग होवेगा याते दोऊ में काहू एकमत में विषय को सत् या असत् रूप कर श्रेष्ठ निरुपण के सम्भव ते दुर्निरुप्यता स्वरूप अनिर्वाच्यता अज्ञान को नहीं बने, ऐसे न माने वेदान्त मत में ब्रह्म को धर्म-रहित मानने से, सतपने धर्म को लेकर सत् रूप से कहने को, औ असत्पने के तामें सर्वथा अनंगीकार ते ताको लेकर असत् रूप से कहने को अशक्य होने से, ब्रह्म को भी दुर्निरूप्यता स्वरूप अनिर्वाच्यता का प्रसंग होवेगा औ ब्रह्म में न माने ब्रह्मवत् अज्ञान तत्कार्य में भी अनिर्वाच्यता के अभाव का प्रसंग होवेंगा इहां यह शंका होवे है, ताका समाधान ऐसे है=धर्म से बिना स्वरूप को लेकर भी पदार्थन का निर्वचन सम्भवे है जैसे घटादिकों में "घटादि सत् है" कथन होवे है, तैसे सत्ता में भी "सत्ता सत् है" कथन होवे है, तहां घटादिकों में सत् कथन अपने से भिन्न सत्ता रूप धर्म को लेकर होवे है औ सत्ता में सत् कथन अपने स्वरूप को लेकर होवे है काहे ते ? सत्ता में और सत्ता रूप धर्म लेकर सत् कथन माने तहां भी और और मानने से अनवस्था होवेगी, याते ऐसे स्वरूप को लेकर नैयायिक "सत्तासत्" निर्वचन माने है तैसे हम

और संबंध न कोई अहै। अध्यस्त तादात्म्य कोविद कहै।
नभ अरु नीलम को जग जैसो। ताहि संबंध पछानो तैसो ॥३७॥

भी असत् रूप अज्ञान से भिन्न कर जिज्ञासु को ब्रह्म बोधन में प्रवृत्त भये सत् पद कल्पित की निवृत्ति को अधिष्ठानरूपता सिद्धान्त ते ब्रह्म का स्वरूपभूत जो बाध्य का अभाव ताको लेकर कहे हैं, ऐसे माने हैं, याते धर्म से बिना भी ब्रह्म के निर्वचन के सम्भव ते ताको अनिर्वाच्यता नहीं बने औ ताको अनिर्वाच्यता दूर भये दृष्टान्त के अभाव ते अज्ञान को अनिर्वाच्यता के अभाव का प्रसंग नहीं यह तत्त्व है ॥ ३६ ॥

दूसरी बोली कहे "और" इति, और सम्बन्ध न कोई अहै कहिये पूर्व कहे दोषों ते ब्रह्म में अनिद्या का वास्तविक रूप संयोगादिक सम्बन्ध कोई नहीं, किन्तु तादात्म्य है वह भी अविद्यावत् सत् आदिक रूपों से दुर्निरुप्य है ऐसे पण्डित कहे हैं, सोई कहे "अध्यस्त" इति, अध्यत तादात्म्य कोविद कहै कहिये अविद्यावत् अविद्या का तादात्म्य भी अनिर्वचनीय पण्डितजन कहे हैं। पुनः अविद्यावत् निखिल प्रपञ्च भी अध्यस्त है याते ताका भी "घट सत्" "घट प्रिय है" इत्यादिक प्रतीतियों ते कल्पित-तादात्म्य ही जाना। ननु तादात्म्य को अध्यस्तता पुनः सम्बन्धियों के, जन्य जनक भाव बिना होना हम कैसे पछाने ? यह आशंका कर कहे "नभ" इति, नभ अरु नीलम को जग जैसो कहिये आकाश और नीलता का जैसे अपने सम्बन्धियों के जन्यजनकभाव बिना पुनः असत् रूप तादात्म्य सम्बन्ध है, ताहि नाम माया ब्रह्म का तादात्म्य भी, तैसो—सम्बन्धियों के जन्यजनकभाव बिना पुनः अध्यस्त रूप जानो अर्थात् रूप मात्र के अभाव वाले नभ में "नीला नभ है" ऐसे नील का तादात्म्य प्रतीत होवे है औ विचार किये वह नील रूप सम्बन्धिवत् दुर्निरूप है याते अध्यस्त है, पुनः नील रूप सम्बन्धिवत् वह भी आकाशावच्छिन्न चैतन्यगत तूलाविद्या का कार्य है याते अपने सम्बन्धी नीलरूप औ आकाश के जन्यजनकभाव से बिना है इस प्रकार अध्यस्त औ सम्बन्धियों के जन्य-जनक भाव बिना होने को तादात्म्य में प्रसिद्ध होने ते तद्वत् मायाब्रह्म का भी जानो बने है, ऐसे भये जन्यजनकभाव को तादात्म्य की प्रयोजकता सादियों में है, नभनीलवत् अनादि में नहीं ॥ ३७ ॥

जन्यजनकभाव है जोई । सादि माहिं पछानो सोई ।
अनादि माहिं होय विन ताहीं । नील तादात्म्य ज्यों नभ माहीं ।। ३८ ।।

अव उक्त अर्थ में शंका पूर्वक समाधान ।

पूर्वपक्षी—

ननु यद्यपि अविद्या अहै । आत्म में जैसे तूँ कहै ।
तदपि नहिं अध्यासहि होई । सादृश्य विन: बने नहिं कोई ।। ३९ ।।
सीपीरूप निदर्शन जोई । सादृश्य विन वह वने न कोई ।
चाकचिक्य कर दोउ समान । याही ते तहि रजत ज्ञान ।। ४० ।।

सोई कहे "जन्य" इति, जन्यजनकभाव है जोई नाम तादात्म्य का प्रयोजक जो उपादानउपादेयरूप कार्यकारणभाव है वह सादि तन्तु पटादिकों में है, अनादि माहिं कहिये आदि रहित माया ब्रह्म में तो तिससे बिना ही तादात्म्य होवे है जैसे आकाश में नीलरूप का तादात्म्य है ।। ३८ ।।

ननु कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध से होवे आत्मा में अनिर्वचनीय अज्ञान का रहना, तथापि समानता बिना कोयले में रजत ज्ञान न देखने से औ समानता से देखने ते, अध्यास में अज्ञानवत् आरोप्य अधिष्ठान का सादृश्य भी कारण है सो इहां बुद्धि उपाधि है मुख्य जिसमें, ऐसे तेज से तमवत् विरुद्ध स्वभाव वाले अवस्था तीन का आत्मा में वह बने नहीं याते असंग में पुनः भी आध्यासिक संग की असिद्धि है या अभिप्राय से आशंका करे "ननु" इति, "आत्म में" पूर्व साथ मिलाकर, यद्यपि पूर्व कही रीति से आत्मा में अविद्या है जैसे तुमने कह्या है, तदपि नाम तौ भी अध्यास नहीं बन सके, काहे ते ? सादृश्य कहिये आरोप्य अधिष्ठान की समानता बिना वह सम्भवे नहीं, और तो क्या कहें प्रथम जिससे अविद्या को अध्यस्तता कही वह दृष्टान्त ही सादृश्य बिना नहीं बने ।। ३९ ।।

सोई कहे "सीपी" इति, सादृश्य से ताका बनना दिखावे "चाक" इति, चाकचिक्य कर दोऊ समान कहिये सुफेदी चिकनाई कर आरोप्य अधिष्ठान रूप शुक्ति रजत दोऊ समान हैं, याही ते नाम इसी ते, तहि नाम शुक्ति में रजत ज्ञान होवे है ।। ४० ।।

कोयलेमों नहिं रजत ज्ञान । सादृश्य विन नीके पहिचान ।
आत्म और अनात्म जोई । अहै विलक्षण दोनों सोई ॥४१॥

सिद्धान्ती—

सर्व अंग सादृश्य न कोई । यथा कथंचित जहँतहँ होई ।
आत्म अरु हंकार समान । अंतरत्व कर नीके मान ॥४२॥
एतो गहि हंकाराध्यास । आत्म माहिंसु भयो प्रकाश ।
बुद्धि मनादिक सकले ऐसे । ता अध्यास आत्म महिं तैसे ॥४३॥

सादृश्य के होने से रजताध्यास का होना रूप अन्वय दिखलाकर, न होने से न होना रूप व्यतिरेक दिखावे "कोयले" इति, भली प्रकार जानो सादृश्य विना कोयले में रजत ज्ञान नहीं होवे इस प्रकार दृष्टान्त में अन्वय व्यतिरेक कर सादृश्य को कारणता निश्चित है औ दार्ष्टान्तिक में "आत्म और अनात्म जोई" वह दोनों अहै विलक्षण नाम सादृश्य रहित है, याते तिनका अध्यास नहीं वने ॥ ४१ ॥

साधारण असाधारण उभयविध धर्मों से समान अंगीकार किये तो आनन्द जनकतारूप चन्द्रगत धर्म को मुख में रह्या भी चन्द्रत्व के न रहने से "चन्द्र सदृश मुख" यह कथन दूर होवेगा याते कोई आनन्द जनकता रूप धर्म से चन्द्रमुख को समान कथनवत्, इहां भी स्थूल शरीरान्तर्गतत्व रूप अहंकार का और आत्मा का सादृश्य वने है, याते अध्यास की असिद्धि नहीं, यह सिद्धान्ती परिहार करे "सर्वअंग" इति, सर्व अंग सादृश्य न कोई कहिये साधारण असाधारण दोऊ धर्मों से समान कोऊ वस्तु नहीं, किन्तु यथाकथंचित् जहँ तहँ होई कहिये जैसे कैसे अर्थात् साधारण धर्म से समानता मुखचन्द्र, महानसपर्वत, शुक्ति रजतादिकों में जहां तहां बने है औ साधारण धर्म से आत्मा अहंकार भी समान है सोई कहे "आत्म" इति, आत्म अरु हंकार समान कहिये अपना आप औ अवस्थात्रय में प्रधानीभूत अहंकार यह दोनों समान हैं, अन्तरत्व कहिये अन्तरपने रूप समानताकर भली प्रकार मानो ॥ ४२ ॥

एतो गहि हंकाराध्यास कहिये इते अन्तरपने रूप सादृश्य को ग्रहण कर हो आत्माविषे "अहं" ऐसे अहंकार के अध्यास का प्रकाश होवे है और बुद्धि मनादिक सकले ऐसे कहिये अन्तरपने से ही बुद्धि

पूर्वपक्षी—

नीलपृष्ठ त्रिकोण अभान । इदमअंश को होवे भान ।
तबही रजत होय ता माहीं । और प्रकार न को भव माहीं ।।४४।।
आत्म तेरो अंश विहीन । तामें नहिं अध्यासहि चीन ।
निरंश पदार्थ जो होय भान । तौ ताको कछु नाहिं अभान ।।४५।।

मन इद्रिय प्राण भी आत्मा के समान है, ता नाम तिनका अध्यास भी आत्मा में, तैसे—अहंकारवत् होवे है ।। ४३ ।।

सर्वथा ज्ञात अज्ञात शुक्ति से रजत अध्यास न देखने ते अध्यास में अज्ञान सादृश्यवत्, अन्वयव्यतिरेक कर सामान्य अंश का ज्ञान औ विशेष अंश का अज्ञान भी कारण हैं औ तुमारे मत में निरंश अंगीकार किये ब्रह्म में अंशों के प्रभाव से होने वाला ज्ञानाज्ञान दोऊ एक काल में अंशों विना बने नहीं, याते सर्वथा अज्ञातता की प्राप्ति से पुनः भी अध्यास नहीं बने यह आशंका करे वादी "नील" इति, नीलपृष्ठ त्रिकोण अभान कहिये नीलोपीठ त्रिकोण रूप शुक्ति के विशेष अंश का अर्थात् अधिष्ठान-भूत असाधारण स्वरूप का जब अज्ञान होवे है और इदमअंश को कहिये पुरोवर्ती देशकाल सम्बद्ध का आधारभूत—साधारण रूप का जब ज्ञान होवे है, "तब ही रजत होय ता माही" तिसी काल में शुक्ति विषे अध्यास का विषय रूप रजत होवे हैं इसते और कोई रीति है नहीं ।। ४४ ।।

और दार्ष्टान्तिक में, आत्म तेरो अंश विहीन कहिये निरंशता प्रति-पादक श्रुतियों से पुनः सांश को घटवत् अनित्यता अंगीकार से आत्मा तुमारे मत में अंशरहित है, याते तामें नाम आत्मा में जानो अहंकार आदिकों का अध्यास नहीं बने, न बनने में हेतु कहे "निरंश" इति, निरंश पदार्थ जो होय भान कहिये जेकर अंशरहित वस्तु चक्षुः सम्बन्ध निरावरण घटवत् प्रतीत होवे, तब तिसका किञ्चित् मात्र अज्ञान नहीं रहे और चक्षुः सम्बन्ध रहित घटवत् न प्रतीत होवे तब तिसका किञ्चित् मात्र ज्ञान नहीं होवे अर्थात् निरंश वस्तु जेकर भान होय तौ सर्वथा भान ही होवे है औ न होय तौ सर्वथा अदृष्ट ही रहे है ऐसे भये दोऊ पक्षों में अध्यास नहीं सिद्ध होवे, अध्यास के लोभ कर आत्मा में अंश अंगीकार करो तब निरंशता सिद्धान्त की हानि होवेगी ।। ४५ ।।

सिद्धान्ती—

वास्तव अंश न तामें कोई । आविद्यक सकली तिहँ होई ।
सद्वय अनानंद अज्ञान जड़त्वसत्ता हीन पछान ॥४६॥

अध्यास सिद्धि हेतु आत्मा में वास्तविक अंश का अंगीकार किये सिद्धान्त हानि का प्रसंग देते हो वा कल्पित अंश माने भी ? यह विकल्प कर प्रथम की असिद्धि कहे "वास्तव" इति, कल्पित अंश रहे भी वास्तविक रूप निरंशता सिद्धान्त की हानि नहीं, यह समझकर दूसरे का अंगीकार करे "आविद्यक" इति, आविद्यक सकली तिहँ होई कहिये अविद्या के अधीन है स्थिति जिन्हों की ऐसी, वा जितना चिर अविद्या है तितना चिर है रहना जिन्हों का, ऐसी सम्पूर्ण तिस आत्मा की अंश है, इहां यह भाव है="जो वाक्य जिस ते जिसका भेद बोधन करे है तिस ते तिसके विरुद्ध धर्मों को लेकर करे है" यह नेम है, याते मोक्ष कामी जिज्ञासु को अविद्या ते एक रस अखण्ड ब्रह्म का भेद बोधन करने वाले "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादिक वाक्य भी अविद्या के असत् जड् दुःख रूप अंशों से विरुद्ध रूप धर्मों को लेकर करे है यह अवश्य कहना, पुनः वह सत्पने आदिक धर्म ब्रह्म में वास्तविक माने, वास्तविक धर्मों वाले घटादिकों को नाशी देखने ते ब्रह्म को नाशीपने का प्रसंग होवेगा याते क्रम ते नैयायिक बौद्ध चार्वाक मत में आकाश, बुद्धि विषयानन्दादिकों में प्रसिद्ध माने हुए सत्पने आदिकों की अविद्या वश ते ब्रह्म में कल्पना है, ऐसे ही "एक अद्वितीय राजा है" इत्यादिकों में प्रसिद्ध रहे अद्वितीयपने आदिकों की कल्पना जान लेनी इस प्रकार कल्पित अंशों के अंगीकार ते भानाभान के सम्भव ते अध्यास की असिद्धि नहीं, पुनः निखिल प्रपञ्चवत् अंशों को भी आत्मा में कल्पित मानने ते सिद्धान्त की हानि नहीं। यद्यपि अहंकारादिकों के अध्यास हेतु जैसे अंशों का अंगीकार किया है ऐसे अंशों को अध्यस्त कहने से तिनके अध्यास हेतु अंशों की अवश्य अपेक्षा होवेगी तहां और अंश माने अनवस्था, न माने अध्यास की असिद्धि, यह आशंका होवे है, तथापि अध्यास सादि अनादि भेद से दो प्रकार का है तहां सादि में अंशो की अपेक्षा भये भी, अज्ञान के अध्यासवत् अंश के अध्यास को अनादि होने ते कारण की अपेक्षा न भये अंसों की अपेक्षा नही' जिनसे विरुद्ध रूप ब्रह्म के अंशों की कल्पना है, प्रथम वह अज्ञान के सामान्य विशेष अंश

अद्वयानंद आहि चिद रूप। सत्यरूप आतम अनूप।
अज्ञान विरुद्ध अहै तिहँ अंश। या कर आतम भये सअंश ॥४७॥
अद्वितीयानन्द को अज्ञान। सत्य और चेतन पुनि भान।
तौ अध्यास होय ता माहीं। संशय याहि विषे कछु नाहीं ॥४८॥

कहे "सद्वय" इति, सद्वय अनानन्द अज्ञान कहिये सद्वयत्वं, अनानन्दत्व अर्थात् द्वैत, दुख, यह "अहं दुखी" "द्वयी" ऐसे अध्यास में भान होने वाले अज्ञान के सामान्य अंश हैं और जडत्व सत्ता होन पछान कहिये अपने भान में और को अपेक्षता तथा स्वतन्त्र सत्ता शून्यता यह अध्यास काल में न भान होने ते अज्ञान के विशेष अंश जानो ॥ ४६ ॥

पुनः अद्वयानन्द आहि चिद रूप कहिये अद्वयत्व, आनन्दत्व, अध्यास काल में न भान होने से ब्रह्म के विशेष अंश हैं और चिद्रूपता तथा सत्यरूप कहिये सत्यरूपता, अनुपम आत्मा के सामान्य अंश है सांश भी आत्मा इन अज्ञान की विरुद्ध अंशों से हुआ, सोई कहे "अज्ञान" इति, अज्ञान विरुद्ध अहै तिहँ अंश कहिये अज्ञान की अंशों साथ विरोध वाले हैं तिस आत्मा के अंश, याकर नाम इस बात कर अर्थात् अज्ञान के अंशों से विरुद्ध अंशों कर आत्मा हुआ अंशों सहित ॥ ४७ ॥

होवे ब्रह्म में अंश पुनः अध्यास कब होवे है ? तहां कहे "अद्वितीय" इति, अद्वितीयानन्द को आज्ञान कहिये जब अद्वितीय आनन्द का अज्ञान होवे है पुनः सत् औ चेतन का भान होवे है, तौ नाम तब आत्मा में अज्ञान का अध्यास होवे है, इसमें कोई सन्देह नहीं, इहां अज्ञान, सादृश्य, सामान्यविशेषअंश इन तीनों को स्थापन कर अवस्थात्रय संग को अध्यासता मानते साम्प्रदायिकों का यह तात्पर्य है = विशेष अंश का अज्ञान होने से अध्यास होवे है, न होने से नहीं होवे है, याते विशेष अंश का अज्ञान अध्यास का उपादान है औ रज्जु आदिकों साथ चक्षुः संयोग हुए सर्पादिक अध्यास होवे है, न हुए नहो होवे है, याते चक्षुःसंयोगजन्य प्रत्यक्षप्रमारूप सामान्य अंश का ज्ञान अध्यास के उपादान में क्षोभ द्वारा अध्यास का हेतु है तहां भी दो पक्ष हैं, एक तो ऐसे कहे हैं—अधिष्ठानगत इदन्ता औ इदन्ता के सर्प रजतादिक में

सम्बन्ध को विषय करता हुआ "इदंरजतम्" "अयं सर्पः" ऐसा सर्प रजतादि विषयक भ्रम होवे है केवल अध्यस्त-गोचर भ्रम माने "सर्पः" "रजतम्" ऐसे आकार के प्रसंग ते, अधिष्ठान की इदन्ता औ ताके सम्बन्ध को त्याग के केवल सर्प रजतादि गोचर भ्रम होवे नहीं, याते इदं वस्तु का द्विधा ज्ञान होवे है प्रथम तो इन्द्रिय अधिष्ठान के संयोग ते इदमाकार प्रमाभूत अन्तःकरण की वृत्ति ज्ञानरूप होवे है, औ दूसरा वृत्तिज्ञानउपहितचेतनस्थअविद्या का परिणाम सर्प रजतादि गोचर भ्रम होवे है वह भी कल्पित में "इदं पदार्थ" के तादात्म्य को विषय करता हुआ "इदं" को विषय करे है, इस प्रकार सम्पूर्ण अपरोक्ष भ्रम इदमाकार हुए अध्यस्ताकार होवे है कोई ऐसे कहे हैं। औ अनेक ऐसे कहे हैं=इन्द्रिय अधिष्ठान के सम्बन्ध ते उत्पन्न भये अन्तः-करण की वृत्ति रूप इदमाकार प्रमाज्ञान से क्षुब्ध अविद्या का परिणाम ज्ञान केवल अध्यस्ताकार होवे है व्यवहारिक पदार्थाकार अविद्या का परिणाम न होने ते इदमाकार सम्भवे नहीं, किन्तु स्वजन्यप्रातिभासिक पदार्थाकार ही अविद्या का परिणाम भ्रम वृत्ति होवे है, याते केवल अध्यस्त में ही भ्रम ज्ञान की विषयता है, अधिष्ठान की इदन्ता में नहीं, और अध्यस्त मात्र विषयक भ्रम माने ताका "सर्पः" रजतम्" ऐसा आकार हुआ चाहिये, याते इदमाकार हुए भ्रम अध्यस्ताकार होवे है, प्रथममत की या आशंका का यह परिहार है=जैसे सर्पादिकों के अधिष्ठान निष्ठ इदन्ता की कल्पित में प्रतीति होवे है, तैसे आभास रूप सर्पादि ज्ञानों के अधिष्ठान इदमाकार वृत्ति में "इदं पदार्थ" विषयकत्व है, ता इदं पदार्थ विषयकत्व का भान सर्पादि ज्ञानो में उपजे है, या हेतु ते इदमाकारत्वहीन भ्रम ज्ञानमों इदमाकारता का भान बने है, इस प्रकार "अयं सर्पः", "इदं रजतम्", ज्ञान दो हैं तिनमें इदमाकार वृत्ति यथार्थ है और सर्प रजताद्याकार वृत्ति भ्रम है इदं वृत्ति अवच्छेदेन भ्रमवृत्ति की उत्पत्ति होने ते अवच्छेदकता सम्बन्ध से इदमाकार वृत्ति भ्रम वृत्ति का अधिष्ठान है, अधिष्ठान अध्यस्त का भेद नहीं होवे याते "अयं सर्पः" "इदं रजतम्" इस प्रकार दोनों वृत्तियों का अभेद भासे है, ऐसे भ्रम वृत्ति को अध्यस्त मात्र गोचरता अनेक ग्रन्थकार माने हैं इस रीति से जहां अध्यास होवे है, तहां सामान्य ज्ञान, दोष, विशेष का अज्ञान, अध्यास के हेतु हैं, यह साम्प्रदायिक मत है ॥ ४८ ॥

अब तटस्थ सांप्रदायिक मत से अतिरिक्त 'कवितार्किक चक्रवर्त्ति नृसिंह भट्टोपाध्याय' की रीति से द्वैतवादियों के आक्षेप का प्रतिक्षेप करते हैं।

तटस्थ—

पक्षांतर इक औरे अहे। विन अज्ञान और नहिं चहे।
ताही कर होवे अध्यास। भान अभान न कछु परकाश ॥४९॥

पूर्व अन्य वादियों सम सामान्य ज्ञान सादृश्य को भी अध्यास कारणता मानते साम्प्रदायिकों की रीति से अवस्थात्रय संयोग को अध्यासता दिखलाकर अब संस्कार सहित अज्ञान को अध्यास कारणता मानते नरसिंह भट्टोपाध्याय की रीति से अवस्थात्रय संयोग को अध्यासता दिखावे "पक्षान्तर" इति, पक्षान्तर इक और अहे कहिये पूर्व कहे साम्प्रदायिकों के मत से एक और पक्ष है वह, विन अज्ञान कहिये अज्ञान से बिना अध्यास में और सामान्य ज्ञानादिक काहूँ की अपेक्षा नहीं करे, किन्तु ताहो कर कहिये संस्कार सहित अज्ञान से ही अध्यास होवे है, भान अभान नाम सामान्य अंश का ज्ञान, विशेष अंश का अज्ञान, अध्यास के हेतु हैं या बात का कछु प्रकाश नहीं करना बने, इहों भानाभान न कछु परकाश कहते उपाध्याय का यह तात्पर्य है=साम्प्रदायिकमत में जे इन्द्रिय अधिष्ठान संयोग के अन्वय व्यतिरेक से इन्द्रिय अधिष्ठान संयोगजन्यप्रत्यक्ष प्रमारूप सामान्य अंश का ज्ञान अध्यास के उपादान में क्षोभ द्वारा अध्यास का हेतु है यह कह्या तहां कारणता निश्चायक अन्वय व्यतिरेक से यामें साक्षात् कारणता सम्भवे तामें परम्परा कारणता कल्पना अयोग्य होवे है, याते अधिष्ठान इन्द्रिय-संयोग कू सामान्य ज्ञान द्वारा अध्यास कारणता त्यागकर, केवल अधिष्ठान इन्द्रिय संयोग को कही अध्यास में साक्षात् कारणता माननी योग्य है औ सामान्य ज्ञान से अविद्या में क्षोभवत् दुष्ट इन्द्रिय संयोग से ही अविद्या में क्षोभ मानना योग्य है, याते अधिष्ठान का सामान्य ज्ञान अध्यास का हेतु न होने ते "सत्यंज्ञान मनन्तं ब्रह्म" इत्यादि वाक्य भी कल्पित निवृत्ति को अधिष्ठान रूपता सिद्धान्त ते ब्रह्म के स्वरूप भूत कल्पित द्वय के अभाव रूप अद्वयत्व को लेकर सद्वय रूप अज्ञान से ब्रह्म को भिन्न कर बोधन करे है, तथा स्वभान में अन्य भासक की अपेक्षा के अभाव रूप चेतनता को लेकर जड़ अज्ञान से भिन्न कर बोधन करे हैं। तथा बाध्य के अभाव रूप सत्ता को लेकर असत् अज्ञान से भिन्नकर

प्रथमे इदं मात्र मुहि भान। पाछे ते मुहि रजत सु ज्ञान।
यों अनुभव नहिं काहू हइये। ताते ज्ञान न दो तिहँ पइये ॥५०॥
इदं रजत यह अनुभव एक। ताहीका अब करौं विवेक।
या अनुभव ते प्रथम अभान। यों सबही जन करे बखान ॥५१॥

बोधन करे है, ऐसे अन्यत्र भी जान लेना, याते कल्पित अंश मानने का कुछ काम नहीं तथा सादृश्य बिना भी "नीलं नभः" इत्यादिक अध्यासों के अनुभव ते सादृश्य का भी कुछ काम नहीं, इस रीति से सामान्य ज्ञान, सादृश्य दोष, अध्यास के हेतु नहीं, किन्तु "नयनादिक द्वारहिं को पाय" इत्यादि पाठ से चतुर्थ अध्याय (निवास) में घटादिकों को गौण अपरोक्षता प्रतिपादन स्थल में कहने योग्य रीति से प्रमाता चेतन साथ अभिन्न विषयावच्छिन्न चेतन में रहने वाली दुष्ट इन्द्रिय संयोग से क्षुब्ध हुई तूलाविद्या से स्वपरिणाम रूप सर्पादि अध्यास होवे है औ अधिष्ठान अध्यस्त को एक ज्ञान की विषयता नियम से "अयं सर्पः", "इदं रजतम्" ऐसे अधिष्ठान अध्यस्त को विषय करने वाली दुष्ट इन्द्रिय संयोगजन्य भ्रम रूप अन्तःकरण की वृत्ति एक होवे है, इदमाकार प्रमा रूप अन्तः-करण की, औ रजताकार भ्रमरूप अविद्या की, ऐसे दो नहीं होवे, तथा हि—दो ज्ञान वादी साम्प्रदायिक तथा अन्य वादियों को पूछे है भ्रम से पूर्व इदं पदार्थाकार प्रमा वृत्ति का अंगीकार अनुभावानुरोध से है वा भ्रम भूत कार्य की अनुपपत्ति से है ? तिनमें प्रथम तो बने नहीं ॥ ४९ ॥

सोई कहे "प्रथमे" इति, प्रथमे इदं मात्र मुहि भान कहिये पहले इदं मात्र का मेरे को ज्ञान हुआ, पाछे ते कहिये तदनन्तर मेरो को रजत ज्ञान हुआ, यों नाम ऐसा अनुभव किसी को नहीं, ताते तिहँ नाम "अयं सर्पः" इत्यादि भ्रम स्थल में ज्ञान दो नहीं प्राप्त होवें ॥ ५० ॥

किन्तु 'इदं रजतम्, यह नाम यह अनुभव एक है ताही का नाम' तिस एक अनुभव का ही, अब विचार करता हूँ, विचार करे "या" इति, या अनुभव ते प्रथम अभान कहिये "इदं रजतम्" इस अनुभव से प्रथम मेरे को कुछ न प्रतीत हुआ ऐसे सभी पुरुष कहे हैं याते अन्तःकरण की वृत्ति रूप "इदं रजतम्" यह अनुभव एक है, इहां यह जानना = जो पूर्व दो मत कहे तिनमें प्रथम मत में एक प्रमा रूप इदमाकार अन्तःकरण की वृत्ति औ दूसरी इदं को विषय करती हुई रजत गोचर "इदं रजतम्"

उक्त उभय पक्ष में अन्तपक्ष का अवलम्वन कर 'धर्मी ज्ञानवादी' शंका करे हैं।

पूर्वपक्षी –

अधिष्ठान समज्ञान सु जोई । अध्यास हेतु पहिचानो सोई ।
कार्य कर कल्प्यों हम सोई । ताविन नहिं अध्यासहि होई ॥५२॥
विना अज्ञान और न चहै । ताते यही असंगत अहै ।

सिद्धान्ती—

ऐसे काहे करे वखान । सो कारण यामों नहिं मान ॥५३॥

ऐसे भ्रमरूप अविद्या की वृत्ति होवे है ऐसे इदं का द्विधा भान मान्या सों किसी के अनुभव में स्थित होवै नहीं, किन्तु सर्पादि ज्ञानवत् इदं गोचर ज्ञान भी एक ही अनुभव में आवे है, इसते प्रथम मत अनुभवानुसारी नहीं, औ दूसरे मत में इदं गोचर दो वृत्ति तो नहीं मानी, परन्तु "अयं सर्प" "इदं रजतम्" इनमें इदमाकार प्रमा औ सर्प रजताकार भ्रमवृत्ति होवे है ऐसे दो-दो ज्ञान माने हैं सो भी शुक्ति ज्ञान से बाध उत्तर काल में तेरे को कैसा भ्रम हुआ था ? या प्रश्न का "अयं सर्पः" "इदं रजतम्" ऐसा हुआ था ऐसा उत्तर कहने से और इदमाकार प्रमा हुई सर्पाकार भ्रम हुआ ऐसा उत्तर न कहने से अनुभव अनुसारी नहीं, इसते अधिष्ठान इन्द्रिय संयोगजन्य इदमाकार ज्ञान प्रमा है औ ता प्रमाजन्य रजतादि गोचर इदं पदार्थ विषयक वा इदं वस्तु अविषयक अविद्या की वृत्तिरूप ज्ञान आभास है इस प्रकार ज्ञान दो का स्वीकार अनुभव अनुरोध ते नहीं बने ॥ ५१ ॥

अनुभवानुसार ते ज्ञान दो की सिद्धि न भये भी, हम भ्रमरूप कार्य की अनुपपत्ति से भ्रम भिन्न सामान्य ज्ञान का अंगीकार करे हैं यह दूसरा पक्ष को लेकर साम्प्रदायिक आशंका करे "अधिष्ठान" इति, "ननु" आशंका वाचक पद है (यद्यपि चौपाई में "ननु" शव्द नहीं है तथापि अध्याहार कर लेना चाहिये) अधिष्ठान का जो सामान्य ज्ञान है वह तिस बिना अध्यास की अनुपपत्ति से हमने अध्यास का हेतु पहचानो नाम जान्या है सोई कहे "कार्य" इति, कार्य कर कल्प्यों हम सोई कहिये वह सामान्य अंश का ज्ञान हमने कार्य कर नाम अध्यास रूप कार्य से कल्प्या है, याते ता बिन कहिये सामान्य ज्ञान बिना अध्यास नहीं होवे ॥ ५२ ॥

अब 'धर्मी ज्ञानवादो' के मत में सामान्य ज्ञान ही अन्वय व्यतिरेक युक्ति से हेतु है यह कहे है ।

पूर्वपक्षी—

जब अधिष्ठान संयोग न होई। तौ रजतादिक बने न कोई ।
इन्द्रियोग होय पुनि जबहीं। ज्ञान समान जने वह तबहीं ।।५४।।

दोहा

तब पाछे पुन रजत भ्रम, होवे नरहि अपार ।
प्रवृत्ति रूप ते आदिले, साधे सब व्यवहार ।।५५।

इस रीति से भ्रमभिन्न सामान्य ज्ञान की सिद्धि होने ते पूर्व कह्या असंगत है यह कहे "बिना" इति, ताते यही असंगत अहै कहिये अर्थापत्ति प्रमाण कर सिद्ध भये सामान्य ज्ञान को अध्यास का कारण होने ते "बिना अज्ञान और न चहै" यह कहना असंगत है, सामान्य ज्ञान से बिना भी घटादिक अध्यासों के अनुभव से अध्यास मात्र में सामान्य ज्ञान को कारण न होने ते अध्यास रूप कार्य की अनुपपत्ति से सामान्य ज्ञान की कल्पना नहीं बने या भाव से उपाध्याय परिहार करे "ऐसे" इति, ऐसे काहे करे बखान कहिये "ताते यही असंगत अहै" ऐसे किस वास्ते कथन करे है, वक्ष्यमाण रीति से अर्थापत्ति दूर होने से सो नाम वह सामान्य ज्ञान कारण है इस कहने में कोई प्रमाण नहीं, किन्तु प्रमाण-रहित है ।। ५३ ।।

प्रमाणहीनता श्रवण कर साम्प्रदायिक प्रमाण की आशंका करे "जब" इति, जब अधिष्ठान संयोग न होई कहिये शुक्ति आदिक अधिष्ठानों साथ इन्द्रिय संयोग जब न होवे तब रजतादिक अध्यास होवे नहीं, औ अधिष्ठान साथ इन्द्रिय योग होय कहिये जिस काल में इन्द्रिय संयोग होवे तबही कहिये तिस काल में ही वह इन्द्रिय संयोग सर्वथा अधिष्ठान ज्ञान जने—अध्यास की असिद्धि से किञ्चिद् भानरूप सामान्य ज्ञान को उत्पन्न करे है ।। ५४ ।।

तब पाछे कहिये तिस सामान्य ज्ञान से पीछे पुरुष को, रजत भ्रम कहिये रजत का अध्यास होवे है औ रजत भ्रम होकर उत्तर काल में प्रवृत्ति रूप ते आदि लें कहिये प्रवृति शब्द प्रयोग रजत की इच्छा यह सब व्यवहार करे है ।। ५५ ।।

चौपाई

याहि सु तामों मान पछान । मानाभाव क्यों करे बखान ।

उक्त वादी के प्रति 'उपाध्याय' का समाधान।

सिद्धान्ती—

अधिष्ठान संयोग उचारे । सो हमहूं नहिं दंड निवारे ॥५६॥

याहि सुतामों मान पछान कहिये यह पूर्वकहीअर्थापत्ति सामान्य ज्ञान को अध्यास कारणता में प्रमाण जानो याते प्रमाण सद्भाव ते प्रमाणाभाव काहे कहते हो, इहां यह भाव है=शुक्ति आदिकों से इन्द्रिय संयोग हुए अध्यास होवे है, न हुए नहीं होवे, इस प्रकार के अन्वय व्यतिरेक से अधिष्ठान से इन्द्रिय के संयोग को अध्यास हेतुता सिद्ध होवे है वह हेतुता भी संयोग का अध्यास में और रीति से उपयोग न होने ते सामान्य ज्ञान द्वारा ही बने है, साक्षात् अध्यास में कारणता कहे तो बने नहीं, काहे ते? आत्मा में अहंकार आदिक अध्यास अधिष्ठान इन्द्रिय के संयोग बिना भी अनुभव सिद्ध है याते अध्यास मात्र में अधिष्ठान का सामान्यज्ञान कारण है रजतादिक अध्यासों के अधिष्ठान का सामान्यज्ञान इन्द्रिय संयोग ते होवे है और अहंकार आदिक अध्यासों का अधिष्ठान प्रत्यगात्मा आप ही प्रकाश रूप है इस प्रकार निज प्रकाशहीन अधिष्ठानों के सामान्य ज्ञान द्वारा ही इन्द्रिय संयोग का अध्यास में उपयोग है, बिना नहीं, याते अधिष्ठान का सामान्य ज्ञान हेतु है, अध्यास कार्य है, जहां, कार्य का भान होवे, कारण का न होवे, तहां कार्य की अन्यथानुपपत्ति से कारण की कल्पना होवे है, याते भ्रमस्थल में इदमाकार प्रमा को अनुभव सिद्ध न रहे भी भ्रम रूप कार्य की सामान्य ज्ञान बिना अनुपपत्ति से सामान्य ज्ञान की भ्रम ते पूर्व कल्पना बने है, शुक्ति आदिक अधिष्ठानों से इन्द्रिय संयोग हुये अध्यास होवे है न हुए नहीं होवे, इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक से जो इन्द्रिय संयोग अध्यास कारण कह्या वह अध्यास कारण हम भी कहे हैं परन्तु इतने कहने से सामान्य ज्ञान को कारणता नहीं सिद्ध होवे यह परिहार करे उपाध्याय "अधिष्ठान" इति, अधिष्ठान संयोग उचारे कहिये अन्वय व्यतिरेक से अधिष्ठान इन्द्रियका संयोग जो तुमने अध्यास का हेतु मान्या वह हम भी दण्ड से दूर नहीं करे किन्तु माने है ॥ ५६ ॥

ताते दुष्टेन्द्रिय संयोग। कारण भयो न वारण योग।
ज्ञान सामान्य न हेतु अहै। सोकाहे तूं पुन पुन कहै ॥५७॥

ताते नाम दण्ड से दूर न करने से, दुष्ट इन्द्रिय का संयोग सामान्य ज्ञान में परम्परा कारणता कल्पना को अयोग्य होने से साक्षात् कारण बने है यह बात हटावने योग्य नहीं, याते सामान्य ज्ञान तथा सादृश्य, अध्यास के कारण नहीं, याते वह कारण है ऐसे बारबार तू किस वास्ते कहता है, इहां भी यह तात्पर्य है = अन्वय व्यतिरेक से साक्षात् कारणता वाले तूलाविद्या क्षोभक इन्द्रिय संयोग का तो हम भी अध्यास में ग्रहण करे हैं परन्तु सामान्य को ग्रहण नहीं करे तथाहि—सामान्य ज्ञान से बिना अध्यास मात्र न बने तौ अध्यास कारणता सामान्य ज्ञान में सिद्ध होवे, सो अधिष्ठान के सामान्य ज्ञान बिना भी "सन् घटः" ऐसे घटादिक अध्यासों को अनुभव सिद्ध होने ते (सामान्य ज्ञान को कारणता) सिद्ध होवे नहीं, घटादिक अध्यास ते पूर्व जो सामान्य ज्ञान वादी सामाान्य ज्ञान माने तब ताको यह पूछे हैं अधिष्ठान इन्द्रिय संयोग जन्य अन्तःकरण की वृत्तिभूत सामान्य ज्ञान घटादिक अध्यास का हेतु है। वा चेतन प्रकाश रूप सामान्य ज्ञान हेतु है? तिनमें घटादिक अध्यासों का अधिष्ठान अज्ञानावच्छिन्नब्रह्मरूपरहित है याते ब्रह्मरूपअधिष्ठान विषयक चक्षुः जन्य वृत्ति के अभाव ते प्रथम नहीं बने याते दूसर मानो तब स्वरूप प्रकाश को आवृत्त होने ते ताको अध्यास हेतुता माने शुक्ति आदिकों में इन्द्रिय संयोग बिना भी रजतादिक अध्यास का प्रसंग होवेगा याते आवृत्त प्रकाश रूप सामान्य ज्ञान अध्यास हेतु नहीं, इस प्रकार घटादिक अध्यासों से पूर्व सामान्य ज्ञान के अभाव ते अध्यास मात्र में सामान्य ज्ञान को हेतुता दूर होने से अध्यास रूप कार्य की अनुपपत्ति ते सामान्य ज्ञान में कारणता कल्पना नहीं सम्भवे, इस रीति से अनुभव अनुरोध ते वा कार्यान्यथानुपपत्ति से सामान्य ज्ञान में अध्यास हेतुता का असम्भव है, तैसे सादृश्य बिना भी नीलनभादि निरूपाधिक और लोहितस्फटिकादिक सोपाधिक अध्यासों के अनुभव से व्यभिचारी होने ते सादृश्य भी अध्यास कारण नहीं बने किन्तु संस्कार सहित अज्ञान ही अध्यास हेतु बने है ॥ ५७ ॥

अब 'धर्मी ज्ञानवादी, के मत में साहश्यज्ञानरूप सामान्य ज्ञान को अध्यास में हेतुता कथन करते हैं ।

पूर्वपक्षी—

साहश्य बिन नाहीं अध्यास । यह मैं कियों सु प्रथम प्रकाश ।
दूर देश पट हइये जोई । चतुष्कोण कर भासे सोई ॥५८॥
तौ नहिं होय कंज अध्यास । कोउ न ताहि करे परकाश ।
कतर कियो वह पद्म समान । सो जब होवे याको भान ॥५९॥
ता पाछे नर पद्म उचारे । सो कारण हम ताते धारे ।

अब उपाध्याय 'धर्मीज्ञानवादी' की उक्त शंका का निराकरण करता हुआ स्वमतानुसार अज्ञान को हेतु सूचन करता है ।

सिद्धान्ती—

यह आशंका पीनी जोई । होत निराश सुनो अब सोई ॥६०॥

व्यभिचारी होने ते साहश्य भी अध्यास हेतु सम्भने नहीं यह श्रवण कर वादी आशंका करे "साहश्य" इति साहश्य बिन नाहीं अध्यास कहिये साहश्य से विना अध्यास नहीं होवे यह हमने "कोयले मों नहिं रजत ज्ञान" इत्यादि पाठ से पूर्व ही प्रकट किया औ अब भी ताको कारणता दृष्टान्त से धारण करे है सोई कहे "दूर" इति, दूर देश में जो पट नाम वस्त्र है जब चतुष्कोण कर कहिये चारों कोनें से वह विस्तृत भान होवे है ॥ ५८ ॥

तब तामे कंज कहिये कमल का अध्यास नहीं होवें, याते कोई भी ताहि नाम तिस कमल के अध्यास का "यह कमल है" ऐसे प्रकाश नहीं करे औ कतर कहिये काट कर जब तिस वस्त्र को कमलवत् करे तब सो नाम कमलाकार वस्त्र जब जिसको भान होवे ॥ ५९ ॥

ता पाछे नाम तिस से पीछे पुरुष "यह पद्म है" ऐसे कहे हैं, याते सो नाम वह सहश्य अध्यास का कारण हम ताते—पूर्व कहे अन्वय व्यतिरेक से धारण करे है, इहां यह बोध्य है:—अध्यास में सामान्य को हेतुता मानने से साम्प्रदायिक तथा नैयायिक आदिक दोनों पूर्व पक्षी हैं, औ उपाध्याय सिद्धान्ती हैं याते यथा सम्भव मूल, टीका में दोनों की उक्ति जाननी तथाहि—जैसे उपाध्याय मत में रजतातिः अध्यास विषे इन्द्रिय संयोग हेतु मान्या है औ धटादिक में नहीं मान्या, याते इन्द्रिय संयोग

साद्दश्य बिन होवे अध्यास। नभ में नील रूप प्रकाश।
पीत शंख अरु नीलो नीर। लाल होय नीलो निश चीर ६१॥
चंदप्रभामें सब जन हेरे। नील विषे नहि संशय टेरे।
गुड़मों कटुक रसहि अध्यास। पित्त उपहित तिहँ करे प्रकाश। ६२॥

शून्य काल में रजतादिक अध्यास नहीं होवे औ घटादिक होवे है, तैसे हम अध्यास मात्र में अनावृत प्रकाश को हेतु माने तब घटादिक अध्यास में ताका व्यभिचार होवे सो माने नहीं, किन्तु व्यावहारिक अध्यास में आवृत अनावृत साधारण प्रकाश हेतु है औ प्रतिभासिक अध्यास में अनावृत प्रकाश हेतु है, याते रजतादिक अध्यास से पूर्व आवरण भंगार्थ इदमाकार प्रमाभूत सामान्य ज्ञान की अपेक्षा है औ घटादिक अध्यास में साधारण प्रकाश को हेतु होने ते आवृत प्रकाश सद्भाव से घटादिक अध्यास में वृत्ति की अपेक्षा सम्भवे नहीं, याते यह व्यवस्था बने है— सर्पादिक अध्यास सामान्यज्ञानरूप वृत्ति के अभाव काल में नहीं होवे औ घटादिक अध्यास होवे है, याते सामान्य ज्ञान में अध्यास कारणता निषेधाभिप्रायक "बिना अज्ञान और न चहै" यह नरसिंह आश्रम का कथन असंगत है तथा कमलाकार पट दृष्टान्त से साद्दश्य को अध्यास कारणता निश्चित होने ते नीलनभादि निरूपाधिकों में तथा लोहित स्फटिकादि सोपाधिकों में भी अन्ततो गत्वा पदार्थत्व रूप साद्दश्य के सम्भव ते साद्दश्य विना कोई अध्यास नहीं, याते साद्दश्य में अध्यास कारणता निषेधाभिप्राय से भी "बिना अज्ञान" इत्यादि कथन असंगत है पूर्व पक्ष श्रवण कर उपाध्याय परिहार प्रतिज्ञा करे "यह" इति, यह आशंका पीनी जोई नाम दृष्टान्त बल से साद्दश्य में अध्यास हेतुता मनावने वाली जो तुमारी कठिन आशंका है सो अब खण्डन करता हूँ श्रवण करो ॥ ६० ॥

निरास सुनावे "साद्दश्य" इति, साद्दश्य बिन होवे अध्यास कहिये साद्दश्य से बिना ही अध्यास होवे है, जैसे नभ नाम आकाश में "नीला नभ है" ऐसे नील रूप का प्रकाश होवे है और पीत शङ्ख कहिये शङ्ख में पीत रूप का, पुनः जल में नील रूप का, पुनः निश कहिये रात्रि में लाल वस्त्र नीला प्रतीत होवे है अर्थात् रक्त वस्त्र में नील रूप का अध्यास होवे हैं ॥ ६१ ॥

लाल वस्त्र नीला कब प्रतीत होता है ? तहां कहे "चन्द्र" इति,

इत्यादिक सादृश्यबिन अहे। प्रकट अध्यास सकल जन कहे।
तत्तत् रूप रसहि अज्ञान। तब तैसो होवे तिहँ भान ॥६३॥
ताते यह सदृशता जोई। अजाकंठ के थनसम होई।

(धर्मीज्ञानवादी)

पूर्वपक्षी—

ननु पीतिमा नयन गत जोई। नर नयनन सो देखै सोई ॥६४॥

चन्द्रप्रभा नाम चन्द्र की चाँदनी में सभी पुरुष देखे हैं नील तामें, यह नीला है कि नहीं ? ऐसे संशय कोई नहीं करे, पुनः गुड़ में कटुकरस का अध्यास, पित्त उपहित कहिये पित्त रूप उपाधिवाले पुरुष "गुड़ कटु है" ऐसा प्रकाश करे है, "स्वसमीपवर्ती में स्वकीय धर्म पहुँचावनेवाली वस्तु उपाधि कही है" याते स्वसमीपवर्ती जिह्वादिकों में अपने कटुता आदि धर्म पहुँचावने से पित्तादिक उपाधि हैं ॥ ६२ ॥

इत्यादिक सादृश्य बिन अहे कहिये पूर्व कहे अध्यासों से लेकर और भी लोहित स्फटिकादिक अध्यास सादृश्य से बिना प्रकट सभी जन मुख से कहे हैं, याते यह अवश्य मानना जो तत्तत् कहिये तिस तिस रूप रस का अर्थात् आकाश में रूपाभाव का, औ शङ्ख में शुक्ल रूप का, तथा जल में शुक्ल रूप का जब जिसको अज्ञान होवे, तब कहिये तिस काल में तैसो होवे तिहँ भान नाम रूपाभावादिक विशेष धर्मोंवाले आकाशादिकों में रूपादिकों की प्रतीति होवे है ॥ ६३ ॥

ताते कहिये इस रीति ते सादृश्य के व्यभिचार ते जहां सादृश्य होवे तहां भी वह अजागलस्तनवत् निष्फल है, इहां—अन्ततोगत्वा पदार्थत्व रूप सादृश्य लेकर सादृश्य को अध्यास कारणता में व्यभिचार दूर करते वादी ने यह आवश्य मानना जो पूर्व आरोप्य मात्र वृत्ति कर निश्चय किया सादृश्य ही उत्तर अधिष्ठानवर्ती कर निश्चय किया अध्यास हेतु होवे है, अन्यथा स्थाणु पुरुष उभय वृत्ति कर निश्चय किये उच्चपनेरूप सादृश्य को संशय हेतुता देखने से नीलनभादि निरूपाधिकों में तथा लोहित स्फटिकादि सोपाधिकों में माने पदार्थत्व रूप सादृश्यको संशय हेतुता प्राप्त होने ते नील नभादि निश्चित विपर्यय दूर होवेंगे याते उक्त सादृश्य अध्यास का उपयोगी नहीं, पुनः अन्य रीति का नील नभादिकों में बने नहीं, याते सादृश्य अध्यास कारण नहीं, तथा प्रतिभासिक अध्यास

ताका क्यों भाख्योअध्यास। शंख विषे यह मिथ्या भास।
(उपाध्याय का आक्षेप)

सिद्धान्ती—

नयन विषय जो पीतिमा अहै। ताहि कहो नर कैसे गहै ॥६५॥

ते पूर्व सादृश्य ज्ञान रूप सामान्य ज्ञान कर भी शङ्खादिकों के पीतादिक अध्यासों में व्यभिचार ते नियम नहीं तथाहि—रूप से बिना शङ्खादिक द्रव्य इदमाकार, वृत्ति के विषय हैं ? वा रूप विशिष्ट शङ्खादिक, विषय हैं ? इसमें प्रथम माने घट गतरूप का सन्देह हुआ चाहिये तथा वायु का चाक्षुष हुआ चाहिये। कहे दोषों से रूप विशिष्ट शङ्खादिविषय हैं यह दूसरा मानो तब तहां भी यह प्रश्न है—व्यावहारिक रूपादि विशिष्ट शङ्खादिकों को वृत्ति विषय करे हैं ? वा अध्यस्त पीतादि रूप विशिष्टों को विषय करे हैं ? प्रथम कहो तब शुक्ल पीत के विरोध से पीत भ्रम ही न हुआ चाहिये याते दूसरा मानो तब अध्यस्त पीत को अपने ज्ञान में अपनी अपेक्षा होने ते, आत्माश्रय होवेगा, किञ्च अध्यस्त रूप विशिष्ट शङ्खादिकों के ज्ञानको भ्रम रूप होने ते—"प्रमाज्ञान अध्यास हेतु होवे है" यह सामान्य ज्ञानवादी का नियम भी दूर होवेगा ताते कही रीति से सामान्यज्ञान में अध्यास हेतुता नहीं सम्भवे, किन्तु विचार के अभाव ते इन्द्रिय संयोग अज्ञान विषय क्षोभ द्वारा अध्यास हेतु सम्भवे है याते "बिना अज्ञान" यह कथन असंगत नहीं, शङ्ख में पीतता अध्यास रूप है, यह श्रवण कर पूर्वपक्षी आशंका करे "ननु" इति, पीतिमा नयन गत जोई कहिये नेत्र में रहने वाली जो पित्त पीतिमा है, वह–पुरुष, नयन नाम नेत्रों से देखे है ॥ ६४ ॥

याते ताका शङ्ख विषय अध्यास काहे कहते हो अर्थात् मिथ्याभास नाम मिथ्या वचन होने ते मत कहो, इहां यह तात्पर्य है=शङ्ख में पीतिमा का सर्व रजतादिकोंवत् स्वरूप से अध्यास नहीं किन्तु स्फटिक में जपा कुसुम वृत्ति लौहित्य के संसर्गाध्यासवत् नेत्रवर्ती पित्त पीतिमा के संसर्ग का शङ्ख विषे अध्यास है, याते शङ्ख में पीत के अनिर्वचनीय सम्बन्ध की उत्पत्ति होने ते, शङ्ख में पीतिमा अध्यास रूप नहीं, यह साम्प्रदायिक कहे हैं और नैयायिक आदिक मतों में अर्थाध्यास के अनंगीकार ते पीतिमा को अध्यासरूपत्वाभाव सर्वत्र वेदान्त में स्फुट है प्रथम पीतिमा के

आपन नयन नयन नहिं देखै। वह पीतिमा को किह विधि पेखै।
अरु वह पीत शंख मों हेरे। जाते पीत शंख मुख टेरे ॥६६॥
ताते नयन विषे वह नाहीं। पीतिमा अहै शंख के माहीं।

(धर्मीज्ञानवादी)

पूर्वपक्षी—

ननु जाके दृग दोषहि होई। तादृग पीत लखे सब कोई ॥६७॥

संसर्ग को अध्यासरूपता मानते साम्प्रदायिक प्रति यह पूछे है शङ्ख में पीतिमा के संसर्गाध्यास का हेतु पित्तपीतिमा ज्ञान है सो नयनदेशस्थ पित्तपीत्तिमा का प्रत्यक्ष ज्ञान होवे है वा शङ्ख देश में प्राप्त भये पीत द्रव्य की पीतिमा का होवे है ? यह विकल्प कर प्रथम के परिहार हेतु कहे "नयन" इति, नयन विषे जो पीतिमा अहै कहिये नेत्रों में जो पीतता है तदाश्रय पित्त साथ नेत्रगत अञ्जनवत् नेत्रज वृत्तिके सम्बन्धाभाव ते ताको कहो पुरुष कैसे अपरोक्ष करे अर्थात् काहू रीति से अपरोक्ष नहीं कर सके ॥ ६५ ॥

"कैमुतिक न्यायेन" काहू रीति से अपरोक्ष न करना स्फुट करे "आपन" इति, आपननयन कहिये अपने नेत्रों से अपने नेत्रों को ही अपरोक्ष नहीं कर सके याते वह भ्रमीपुरुष पीतिमा को कैसे अपरोक्ष करे अर्थात् कृष्णतावत् नेत्रसम्बन्ध के अभाव ते काहू रीति से नहीं कर सके याते पीतिमा विषयक परोक्ष वृत्ति कहो, तब अपरोक्ष वृत्तिस्थ साक्षी से ही पदार्थ का अपरोक्ष प्रकाश होवे है, अनुमानआदिजन्य परोक्ष वृत्तिस्थ से अग्नि आदिकों का अपरोक्ष प्रकाश न देखने ते परोक्ष वृत्तिस्थ साक्षी से शङ्ख में पीतिमा का अनुभव सिद्ध अपरोक्ष प्रकाश नहीं होवेगा, याते नयनस्थ पित्त पीतिमा का प्रत्यक्ष ज्ञान होवे है, या प्रथम पक्ष के अभाव ते अवश्य शुक्लाज्ञानजन्य "पीत" शङ्ख में ही मानना यह कहे "अरु" इति, पुनः वह—भ्रमी पुरुष पीतिमा शङ्ख में देखे है याते "शङ्ख पीत है" ऐसे मुख से कहे है ॥ ६६ ॥

ताते वह पीतिमा, नयन कहिये नेत्र विषे नहीं, किन्तु शुक्लाज्ञानजन्य अनिर्वचनीय पीतिमा शङ्ख में (है), याते प्रथम नहीं सम्भवे। ननु मत सम्भवे प्रथम हम शङ्ख देश में प्राप्त भये पित्त पीत का भान होवे है यह दूसरा माने है ? ऐसे द्वितीय को लेकर आशंका करे "ननु"

ताते पीतिमा है दृग माहीं । कैसे कह्यो सु तामो नाहीं ।
शंखओर दृग किरण पधारे । तब पीतिमता संग सिधारे ॥६८॥
पीत किरण कर व्याप्यो सोई । ताते पीत सकल वह होई ।
ताही ते नर पीत उचारे । या विधि दूषण सकल निवारे ॥६९॥
ताते सत्य पीतता अहै ता अध्यास सु किह विधि लहै ।

(उपाध्याय का ननु)

सिद्धान्ती—

ननु जे सत्य अहे ता माहीं । औरन भान होय क्यों नाहीं ॥७०॥

इति, दृग दोषहि होई कहिये जिसके नेत्र में काच कमल दोष होवे ताके दृगों को सब कोई पीत देखे हैं ॥ ६७ ॥

ताते पीतिमा दृग में है ऐसे भये तुमने कैसे कह्या नेत्र में नहीं, नेत्र में पीतिमा सिद्ध करके शङ्ख में ताके भान की रीति कहे "शङ्ख" इति, शङ्ख ओर दृग किरण पधारे कहिये जब शङ्ख की ओर नेत्र की किरण जावे है तब नाम तिस काल में नेत्र संयुक्त पित्त पीतिमा किरण के साथ जावे है ॥ ६८ ॥

इस प्रकार पीत किरण कर व्याप्यो सोई कहिये पित्त पीतिमा सहित किरण कर याते वह व्याप्त हो जावे है, ताते वह सभी पीत प्रतीत होवे है, ताही ते नाम पीत किरणों कर व्याप्त हो जाने ते ही पुरुष "शङ्ख पीत है" ऐसे कहे है, इस रीति से सकल कहिये सम्पूर्ण, "आपन नयन नयन नहिं" इत्यादि पाठ से कहे प्रथम पक्ष उक्ष दोष दूर होवे है ॥ ६९ ॥

ताते पूर्व कही रीति से नेत्रगत का ही भान होने ते पीतिमा सत्य नाम सच्ची है, याते ता नाम तिस पीतिमा को अध्यास रूप कैसे लखे अर्थात् काहू रीति से नहीं लख सके, किन्तु कही रीति से शङ्ख देश में प्राप्त भये पित्त पीतिमा का जब नेत्र से प्रत्यक्ष होवे है शङ्ख में तिसका ताही काल में तादात्म्य भासे है सो अन्य के गुण का अन्य गुणी में तादात्म्य सम्भवे नहीं, याते तहां अनिर्वचनीय तादात्म्य संसर्ग उत्पन्न होवे है इस रीति से द्वितीय पक्ष में पीतिमा के संसर्ग को अध्यासरूपता मानने ते पीतिमा को अध्यासरूपता नहीं बने यह भाव है। पीत रूपवान् पित्त का शङ्ख देश में गमन होने ते पीतता सत्य है यह कथन श्रवण कर

कांचन लिप्त कुम्भ ज्यों पीत। पीरो ही सब धरहै चीत।

(धर्मीज्ञानवादी का उत्तर)

पूर्वपक्षी—

इति शंकाको नहिं उर धारो। उत्तर यामों प्रकट विचारो ।७१॥
पित्तजन्य जो पीतिमा होई। ताको निकट गहे नर जोई।
सोई ताको दूरहि देखे। और न कोई ताको पेखे ॥७२॥
ज्यों विहंग अति ऊर्ध्व जावै। निकट देश जो ताको पावै।
ताहीको नभ भीतर भासे। और न ताको को परकाशे ॥७३॥

उपाध्याय सिद्धान्ती आशंका करे "ननु" इति, ननु जे सत्य अहे ता माही कहिये जेकर द्वितीय पक्ष में कहे प्रकार से पीतता सच्ची है शङ्ख विषे तब और पुरुषन को भान काहे नहीं होवे ॥ ७० ॥

जैसे काञ्चनलिप्त कुम्भ कहिये सुनहरी झाल वाले मन्दिरों के कलश पीत होवे हैं याते सब कोई तिनको पीरो नाम पीत ही चित्त में धारण करे हैं ऐसे पीत रूपवान् पित्त का निर्गमन माने कलश पीततावत् शङ्ख पीतता सर्व कू प्रतीत हुई चाहिये। दृष्टान्त से औरों को भान की अयोग्यता है या अभिमान से सामान्य ज्ञानवादी परिहार करे "इति शंका" इति, इति शंका को नाम सत्य है तो काञ्चन लिप्त कुम्भवत् सर्व को शङ्ख पीत हो प्रतीत हुआ चाहिये या आशंका को मत हृदय में धारण करो, न धारण में बीज कहे "उत्तर" इति ॥ ७१ ॥

उत्तर कहे "पित्त" इति, पित्तजन्य कहिये पित्त द्रव्य का कार्य जो पीतरूप है जो पुरुष ताको निकट नाम समीप देश में ग्रहण करे वही ताको दूर देश में देखे है और वाको कोई नहीं देखे ॥ ७२ ॥

जैसे विहंग नाम पक्षी जब अतिशय ऊपर को गमन करे है तब समीप देश में जो पुरुष ताको पावै—देखे है ताही नाम तिसी को वह आकाश में भान होव है, और वाको कोई नहीं प्रकाशे नाम देखे अर्थात् दोष सहित नेत्र से निकसते पित्त को जो पुरुष देखे ताही को शङ्ख में पीतिमा की प्रतीति होवे है, और को नहीं, जैसे पक्षी उड़ते को प्रथम ही जो पुरुष देखे ताही को दूर देश में पक्षी भान होवे है और को नहीं, या दृष्टान्त से सर्व कू प्रतीति की आपत्ति नहीं सम्भवे ॥ ७३ ॥

अब उपाध्याय स्वसिद्धान्ध कहता है ।

सिद्धान्ती—

इति शङ्का को करौं प्रहार । नीके तूँ उर अंतर धार ।
ताके चक्षु सु निकट प्रदेश । इतरकरे सु चक्षु निवेश ।७४।
ताको भान अहै दुर्वार ? पक्षीसम नीके उरधार ।
अरु निज नयन पीतता जोई । पक्षीसम नहिं हेरे कोई ॥७५॥
ताते और सो तर्क असार । पीतिमा शंखविषे उरधार ।
सो वह एक पुरुष ही भान। ताते कल्पित रजत समान ॥७६॥

दृष्टान्त विषमता से कह्या प्रकार नहीं सम्भवे या भाव से उपाध्याय कहे "इति शंका" इति, इति शंका को नाम दृष्टान्त से और को भान अयोग्यता की आशंका को, मैं परिहार करता हूँ यह वार्ता तुम भली प्रकार हृदय में धारण करो, दृष्टान्त विषमता कहे "ताके" इति, ताके कहिये पक्षी को देखने वाले पुरुष के चक्षुओं के समीप देश में, जब इतर नाम दूसरा पुरुष चक्षुओं का प्रवेश करे ॥ ७४ ॥

तब ताको पक्षी का सम भान होना, अहे दुर्वार कहिये कठिन है ? अपि तु अदुर्वार है यह भली प्रकार निश्चय करो अर्थात् द्वितीया के चन्द्र दर्शक पुरुष के नेत्र सन्निहित नेत्र वाले को चन्द दर्शनवत् पक्षी देखना तो सुलभ है पुनः अपने नेत्रों की जो पीतता है वह पक्षी के दृष्टान्त को विषम होने ते तासे भान की अयोग्यता न सिद्ध होने ते द्वितीय पक्ष भी नहीं सम्भवे ॥ ७५ ॥

ताते नाम तिसी कारण ते, ननु दोष वाले नेत्र से निकसे पित्त पीतिमा का दोष वाले नेत्र से ही अपरोक्ष होवे है, शुद्ध से नहीं होवे, याते अन्य पुरुषों को शङ्ख में पीतिमा के भान की आपत्ति नहीं इत्यादि और तर्क भी असार है तथाहि=अनुभूयमान स्मर्यमाण भेद से आरोप दो प्रकार का होवे है तिनमें अन्यत्र अनुभूत की अन्यत्र प्रतीति अनुभूयमान आरोप कहे है जैसे पुष्प में अनुभूत रक्तता के संसर्ग का स्फटिक में भान होवे है सो अनुभूयमान आरोप है । स्मृति के विषय को स्मर्यमाण आरोप कहे हैं, जैसे शुक्ति निष्ठ चाकचिक्यता देखकर रजत की स्मृति होवे है सो स्मर्यमाण आरोप है इन द्विविध आरोप से उक्त तर्क भी अनुभूयमान आरोप से बने है, स्मर्यमाण आरोप से नहीं और आकाश

पीतादिक जो रूप दिखाये। सो मैं कल्पित नीके गाये।
ज्ञान समान न सादृश्य हइये। गहि अज्ञान एकते पइये ॥७७॥
रूप विना नहिं चाक्षुष ज्ञान। यही नियम है सकल समान।
तहि तहि सत्य रूप है जोई। ताको प्रथम गहे नहिं कोई ॥७८॥
जे ताको पहिले यह भान। तौ नहिं पीतिमका तिहँ ज्ञान।
शुक्ल विरोधी पीतिमा केरे। ता भासे नहिं सो तिहँ हेरे ॥७९॥
रूप विना नहिं होवं भान। ताते कैसे ज्ञान समान।
आकाश पटादिक सकले जेते। गने न जाहिं अहे वह केते ॥८०॥

में तथा शुक्ल भूमिस्थ निर्मल जल में नीलता का अनुभूयमान आरोप सम्भवे नहीं, याते चक्षु इन्द्रिय से मेरो को आकाश नीला भान होवे है इस रीति से नीलता के ज्ञान में ऐन्द्रियकत्व नहीं बनेगा सो आगे निष्कर्ष पक्ष में दिखावेंगे। इस रीति से और तर्कों को असार होने ते शुक्ल के अज्ञानजन्य पीतिमा शङ्ख विषे कहिये शङ्ख में ही उपजे है, निर्णय करो। पुनः "विवादास्पदीभूत पीतरूप कल्पित होने को योग्य है, एक पुरुष को भान होने ते, रजतवत्" या अनुमान से कल्पित जानो सोई कहे "सो" इति, सोवह—सो पुनि ॥ ७६ ॥

कही रीति से पीतिमा को कल्पितता सिद्धकर प्रवल युक्ति कहने हेतु सामान्य ते कही की समाप्ति करे "पीतादिक" इति ॥ ७७ ॥

सामान्य ज्ञान में अध्यास हेतुता नाशक प्रवल युक्ति कहे "रूप" इति, रूप बिना नहिं चाक्षुष ज्ञान कहिये घट गत रूप में सन्देह औ वायु आकाश के चाक्षुष प्रसंग ते रूप बिना द्रव्य का चाक्षुष नहीं होवे यह नियम सर्व मतों में सम है याते द्रव्य के चाक्षुष प्रत्यक्ष में रूप हेतु अवश्य है औ तहि तहि नाम शङ्खादिकों में जो शुक्लादि सच्चे रूप हैं तिनके भान भये पीतादिकों के भान की असिद्धि प्रसंग ते तिनको कोई ग्रहण नहीं करे ॥ ७८ ॥

सोई कहे "जे" इति, ज्ञान न होने में हेतु कहे "शुक्ल" इति, शुक्ल विरोधी पीतिमा केरे कहिये शुक्ल रूप पीत रूप का विरोधी है, याते ता भासे नाम शुक्ल रूप के भान भये पुरुष पीत रूप को तहां नहीं देखेगा ॥७९॥

रूप बिना नहि होवे भान कहिये रूप के देखे बिना द्रव्य का चाक्षुष

ता अविच्छिन्न अहे चिद जोई। तूलाविद्या आश्रय सोई।
तामों दुष्टेन्द्रिय जब जावै। संगति पाय क्षोभ उपजावै ॥८१॥
क्षुब्ध अविद्या को परिणाम। रूपादिक नाना तिहँ नाम।
रूप विशिष्ट होय नभ जबही। नीलो नभ यों भासे तबही ॥८२॥
शंख नीर चीर गति ऐसी। माहिं अकाश कही गति जैसी।
ताते सादृश्यज्ञान समान। ताबिन भयो अध्यास पछान ॥८३॥

प्रत्यक्ष नहीं होवे, ताते नाम तिस हेतु ते अध्यास से पूर्व शङ्ख आदिकों का सामान्य ज्ञान कैसे कहेंगे अर्थात् काहू रीति से नहीं कह सकेंगे। याते कही रीति से सामान्य ज्ञान की असिद्धि ते शङ्ख आदिकों में ही प्रातिभासिक पीतिमा आदिकों की तद्विषयावच्छिन्न चेतननिष्ठ अविद्यारूप सामग्री से उत्पत्ति होवे है, यह अंगीकरणीय है "आकाश" इति, आकाश पटादिक सकले जेते कहिये नीलादि आरोपों के अधिष्ठान-भूत जेते आकाशादिक पदार्थ हैं वह गिने नहीं जाते ॥ ८० ॥

पुन: ता नाम तिन अगिनत आकाशादिकविषयावच्छिन्न जो चेतन है वह तूला कहिये विषयावरक अज्ञान का आश्रय है, स्वरूपावरक अज्ञान को मूल कहे हैं विषयावरक तूल कहे हैं। ननु रहो आकाशाद्य-वच्छिन्न चेतन, तूलाविद्या का आश्रय, परन्तु या कहने का प्रकरण में उपयोग क्या ? तहां कहे "तामों" इति, तामों नाम तिन तूलाविद्याश्रय चेतन के अवच्छेदक रूप आकाशादिकों में जब दोष विशिष्ट इन्द्रिय जावे है, तब संगति नाम तिन विषयों का सम्बन्ध पाय कर तदवच्छिन्न चेतननिष्ठ अविद्या में क्षोभ नाम कार्याभिमुखता रूप विक्षेप को उत्पन्न करे है ॥ ८१ ॥

पुन: क्षुब्ध कहिये कार्याभिमुख्यता रूप क्षोभयुत भई अविद्या का परिणाम – कार्य, तिहँ नाम आकाशादिकों में नाना रूपादि नाम वाले होवे हैं, जिन्हों सहित होने ते "नीलं नभ:" इत्यादि ज्ञान होवे है सोई कहे "रूप" इति ॥ ८२ ॥

कही रीति का भ्रममात्र में नेम कहे "शङ्ख" इति, ऐसी कैसी ? तहां कहे "माहिं" इति, फलित कहे "ताते" इति, इहां पक्षान्तर का यह निष्कर्ष है = द्रव्य के चाक्षुष-प्रत्यक्ष में रूपकारण है और सत्य रूपों का भान भये विरोधी होने ते कल्पितों का भान नहीं बने, याते अध्यास

ते पूर्व सामान्यज्ञान की असिद्धि ते तथा नील नभादि आरोप्य अधिष्ठानों में साद्दश्य की असिद्धि से सामान्य ज्ञान, साद्दश्य, अध्यास हेतु नहीं, किन्तु सदोष इन्द्रिय के सम्बन्ध ते उत्तर क्षण में विषयावच्छिन्न चेतन-निष्ठ अविद्या में कार्याभिमुखता रूप क्षोभ होकर तासे उत्तर क्षण में अविद्या के परिणाम पीतादिक होवे हैं, जिस क्षण में अविद्या के परिणाम पीतादिक होवे हैं, ताही क्षण में तिनको विषय करने वाली इदमाकार अन्तःकरण की वृत्ति की उत्पत्ति होवे है, वह अन्तःकरण का परिणाम रूप वृत्ति ज्ञान भी स्वकाल में उपजे पीतादिकों को विषय करता हुआ ही होवे है, याते "अयं शङ्खः पीतः" ऐसा होवे है, केवल इदं गोचर नहीं होवे औ पीतिमा आदिको साथ इन्द्रिय सम्बन्ध से विना भी स्वसम्वन्ध से तथा स्वतादात्म्य वाले के सम्बन्ध ते स्वकार वृत्ति मानने ते पीतिमादिकों साथ तादात्म्य वाले शङ्खादिकों साथ इन्द्रिय-सम्वन्ध ते ही वृत्ति पीतिमाद्याकार होवे है, याते "इदं साथ इन्द्रिय सम्बन्ध ते अध्यस्ताकार वृत्ति माने, घट साथ इन्द्रिय सम्बन्ध ते पटाकार हुई चाहिये" यह दोष भी नहीं, इस प्रकार अधिष्ठान अध्यस्त गोचर वृत्ति एक होवे है। प्राचीन मतवत् इदमाकार अन्तःकरण की औ पीताद्याकार अविद्या की ऐसे दो नहीं होवे, पुनः अविद्या में क्षोभ के हेतु भूत जिस दुष्ट इन्द्रिय के सम्वन्ध से अविद्या में क्षोभ द्वारा पीतिमा आदिक उपजे हैं, ताही सम्वन्ध से अन्तःकरण के परिणाम रूप वृत्ति ज्ञान की उत्पत्ति होवे है। इस रीति से शङ्खादिक अधिष्ठान साथ दुष्ट इन्द्रिय के सम्वन्ध से अन्तः-करण के परिणाम रूप ज्ञान की औ विषयावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्या के परिणाम पीतादिकों की एक काल में उत्पत्ति होवे है, याते शङ्ख का चाक्षुष ज्ञान होवे है, पुनः अन्तःकरण का परिणाम रूप भी "पीतः शङ्खः" ऐसा वृत्तिज्ञान पीत अंश में मिथ्या पदार्थ को विषय करने से भ्रमरूप है तिस अंश में प्रमा नहीं, पुनः ऐन्द्रियक है, काहे ते ? दु इन्द्रिय के सम्बन्ध ते उपजे है पुनः "चक्षु से पीतमा देखता हूँ" ऐसा अनुव्यवसाय होवे है, प्राचीनों का यह हार्द है=अविद्या में क्षोभ का जनक सामान्य ज्ञान है याते तिनके मत में इदमाकार वृत्ति से उत्तर काल में क्षोभवती अविद्या का परिणाम सर्पादिक होवे हैं, उत्तर काल-वर्ती वस्तु प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय होवे नहीं याते पीतादिक मिथ्या पदार्थ इदमाकार ज्ञान के विषय नहीं बने, किन्तु शङ्खादिक वास्तविक वस्तु विषय है याते इदमाकार ज्ञान प्रमा है, पीतादिकों को विषय करने

वाली अविद्या वृत्ति होवे है याते मिथ्या पदार्थ गोचर होने ते अविद्या वृत्तिरूपज्ञान भ्रम है, पुनः ऐन्द्रियक नहीं, काहे ते ? साक्षात् इन्द्रिय सम्बन्ध ते उपजे सो ऐन्द्रियक होवे है, भ्रमज्ञान साक्षात् इन्द्रिय के सम्बन्ध से नहीं उपजे, याते ऐन्द्रियक नहीं, किन्तु भ्रमज्ञान का अधिष्ठान इदमाकार वृत्ति इन्द्रिय सम्बन्ध से उपजे है औ अविद्या में क्षोभ द्वारा भ्रमवृत्ति को उपजावे है याते अविद्या क्षोभ द्वारा भ्रमवृत्ति की उत्पत्ति करने ते परम्परा भ्रमवृत्ति उपहित साक्षी में ऐन्द्रियकत्व प्रतीत होवे है; तात्पर्य यह—शङ्ख साथ इन्द्रिय सम्बन्ध से इदमाकार वृत्ति होवे है तामे साक्षी की अभिव्यक्ति औ अविद्या क्षोभ द्वारा भ्रम-वृत्ति की उत्पत्ति होवे है। आगे अध्यस्ताकार वृत्युपहित साक्षी से अध्यस्त का प्रकाश होवे है, इस प्रकार अध्यस्त के प्रकाशक चेतन की अभि-व्यंजक इदं वृत्ति जनकताकर परम्परा चक्षु की अपेक्षा ते साक्षी ज्ञान में ऐन्द्रियक कथन होवे है औ "चक्षु से देखता हूँ" यह अनुव्यवसाय सम्भवे है ऐसे व्यवस्था करे हैं, सो यह व्यवस्था भी अनुभूयमान स्मर्यमाण भेद ते द्विविध अध्यास में अनुभूयमान बने है, काहे ते ? जहाँ आरोप्य औ अधिष्ठान दोनों पदार्थ सन्निहित होवे तहाँ अन्यत्र अनुभूत की अन्यत्र प्रतीतिरूप अनुभूयमान अध्यास होवे है, जैसे "लोहितः स्फटिकः" अध्यास में रक्त पुष्प में अनुभूत रक्तता के सम्बन्ध की स्फटिक में प्रतीति होवे है, तैसे "पीतः शङ्खः" इहां रोग दूषित नेत्र सम्बन्धी किरण गत पित्त में अनु-भूत जो पीतिमा का सम्बन्ध ताकी शङ्ख में प्रतीति होवे है यह अनुभूयमान आरोप है, और "नीला नभ है" इहां, पुनः शुक्लभूमि में "नीलाजल है" इहां अनुभूयमान आरोप सम्भवे नहीं, काहे ते ? नील के अधिष्ठानरूप आकाश के तथा जल के समीप और कोई नीलाश्रय वस्तु है नहीं, पित्तपीतिमा पुष्परक्ततावत् जिसके संसर्ग का अनुभूयमान आरोप माने पुनः नीरूप आकाश का चाक्षुष बने नहीं, याते आकाशगोचर चाक्षुषवृत्ति के अभाव ते तत्राभिव्यक्त साक्षी से नील का प्रकाश न होने ते परम्परा भी ऐन्द्रियकत्व नहीं बने औ नेत्र से "नील जल तथा नील नभ देखता हूँ" ऐसे प्रतीति होवे है याते और रीति से ताकी अनुपपत्ति से आकाशा-वच्छिन्न चेतननिष्ठ इन्द्रिय-सम्बन्ध रूप क्षोभक से क्षुब्ध हुई अविद्या, तामें नील रूप की उत्पत्ति और नील रूप विशिष्ट आकाशगोचर नेत्र सम्बन्धजन्य अन्तःकरण की चाक्षुष वृत्ति एक काल में होवे है याते ऐन्द्रियकत्व निस्सन्देह है इस रीति से समदेशस्थ सत्य रजत, शुक्ति रजत,

गोचर भ्रमत्व प्रमात्व के सांकर्य वाले रजत ज्ञानवत् इदमंश में प्रमात्व रजतांश में भ्रमत्वयुक्त अन्तःकरण की वृत्ति रूप एक ज्ञान का अंगीकार है, दो का नहीं तथा अर्थाध्यास मात्र का अंगीकार है, अविद्या वृत्ति न मानने से ज्ञानाध्यास का अंगीकार नहीं, किन्तु इदमाकार वृत्ति में अभिव्यक्त साक्षी से ही अर्थन का प्रकाश होवे है यह पक्षान्तर मत है, तामें यद्यपि उक्ति युक्ति दोनों का विरोध है, तथाहि=सामान्य ज्ञान, दोष, संस्कार, यह अध्यास हेतु हैं ऐसे प्राचीनों की उक्ति है, सामान्य ज्ञान को कारण न माने तासे विरोध होवेगा सो विरोध अनेकवार तामें तदनुसारी को कल्याणकर नहीं, याते यह उक्ति विरोध हैं, युक्ति विरोध यह है इन्द्रिय संयोग को अध्यास कारणता मानकर सामान्य ज्ञान में न माने "अहम्" ऐसे अहंकारादिकों का अध्यास नहीं बनेगा, काहे ते ? अहंकार का अधिष्ठान साक्षी है वा ब्रह्म है, सो नीरूप है, याते तिनसे अध्यास योग्य इन्द्रिय सम्बन्ध सम्भवे नहीं। यह व्यावहारिक है हम प्रातिभासिक आध्यास मात्र में इन्द्रिय संयोग हेतु कहे हैं ? यह कहो तब काहू मत में यह भी प्रातिभासिक है, याते सामान्य ज्ञानको हेतु न माने अहंकाराध्यासकी असिद्धि यह युक्ति विरोध है, पुनः इदमाकार वृत्ति में अभिव्यक्त साक्षी से अध्यस्त का प्रकाश माने अध्यस्त पदार्थ की स्मृति नहीं होवेगी, बीज यह=जो अनुभवजन्य संस्कार ते स्मृति होवे है संस्कार, अनुभवनाश ते होवे है, साक्षी रूप ज्ञान नित्य है, ताका नाश होवे नहीं, हुये विना संस्काराभाव ते स्मृति नहीं होवेगी, जेकर जिस इदमाकार वृत्ति में अभिव्यक्त साक्षी से प्रकाश होवे है ताके नाश से संस्कार सद्भाव से स्मृति मानो तब तहां यह प्रष्टव्य है – साक्षी को अभिव्यञ्जक वृत्ति अध्यस्ताकार होवे है या नहीं ? दूसरे तदाकार न हुए से संस्कार स्मृति माने घटाकार से भी पटसंस्कार स्मृति हुई चाहिये, याते प्रथम मानो सो सम्भवे नहीं, काहे ते ? वर्तमान वस्तु प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय होवे है; अध्यस्त वस्तु भविष्यत् होने ते वर्तमान नहीं, याते स्मृति की असिद्धि युक्ति विरोध है, तथा एक ज्ञान को भ्रम प्रमा रूप माने भ्रमत्व प्रमात्व का सांकर्य होवेगा सो अप्रसिद्ध होने ते दोष रूप है जेकर सम देशस्थ सत्य रजत, शुक्ति गोचर-रजत, ज्ञान में वह प्रसिद्ध है, याते शाखा मूलभूत अवच्छेदक प्रभाव ते वृक्ष में, कपि-संयोग, तदभाववत्, बाधित विषयकत्व अबाधित विषयकत्व रूप अवच्छेदक प्रभाव से एक ज्ञान में भ्रमत्व प्रमात्व में समावेश सम्भवे है औ अवच्छेदक

माने बाधित विषयकत्व अबाधित विषयकत्व भी परस्पर भावाभाव रूप है, याते तिनके एक ज्ञान में समावेश वास्ते और अवच्छेदक मानने ऐसे भये तिनके भी और अवच्छेदक माने अनवस्था यह युक्ति विरोध है, पुनः भ्रमत्व प्रमात्व के सांकर्य वाला ज्ञान भी प्रसिद्ध नहीं, काहे ते? सत्य-रजत शुक्ति-रजत स्थल में सत्य-रजत गोचर अन्तःकरण वृत्ति का औ शुक्ति-रजत गोचर अविद्या वृत्तिरूपरजत-ज्ञान का सिद्धान्त में अंगीकार है परन्तु वह ज्ञान समानाकार है, याते तिनका भेद नहीं प्रतीत होवे इस रीति से अन्तःकरण-वृत्ति में प्रमात्व औ अविद्या-वृत्ति में भ्रमत्व के सम्भव ते भ्रमत्व प्रमात्व वाला एक ज्ञान मानना दृष्ट विरुद्ध है यह आशंका होवे है, तथापि यह सब विरोध आभास मात्र है तथाहि-सामान्य ज्ञान, दोष, संस्कार, अध्यास हेतु है सामान्य ज्ञान में हेतुता न माने उक्ति विरोध कह्या सो नहीं बने, काहे ते? "जिस रीति से जिज्ञासु को अद्वितीय ब्रह्म का बोध होवे वही रीति तिसके वास्ते सार है" यह प्राचीन वचन है, याते सामान्य ज्ञान से बिना भी अद्वैत बोध का उपयोगी पदार्थों में अध्यस्तता ज्ञान हुए उक्ति विरोध नहीं, दूसरे कारणता रहे न माने विरोध होवे है सो "पीतः शङ्खः" में सर्वथा व्यभिचार ते सामान्य ज्ञान में कारणता सम्भवे नहीं, जेकर उक्त अध्यास में "शङ्खः" यह भ्रम काल में भी भान होने ते, सामान्य ज्ञान है यह कहो तब पीतज्ञान से पूर्व नीरूप द्रव्य का चाक्षुप न होने से शङ्ख ज्ञान ही कैसे होवे है, यदि रूप वाले का चाक्षुष होवे है तहां कहीं रूप भाग को छोड़ के दोषवश ते केवल का ही होवे है यह कहो तब प्रथम रूप भाग को छोड़ के चाक्षुष का और कोई स्थल निश्चित नहीं, इहां विवाद है, याते सर्वथा ज्ञाताज्ञात में अध्यास न देखने से किञ्चिद् रूप से ज्ञाताज्ञात में होवे है, इस रीति से अध्यास रूप कार्य की अन्यथानुपपत्ति रूप अर्थापत्ति से सामान्य ज्ञान अध्यास हेतु कहना, सो अर्थापत्ति पूर्व कही रीति से प्रमाणाभास रूप है, याते अध्यास सामग्री में आपाततः सामान्य ज्ञान भी है ऐसे शिष्य को बुद्धि की वृद्धि मात्र में तात्पर्य वाली होने ते उक्ति विरुद्ध नहीं, पुनः बहुत भांति के युक्ति विरोध में प्रथम अहंकाराध्यास की असिद्धि रूप युक्ति विरोध भी नहीं, काहे ते? व्यावहारिक अध्यास में इन्द्रिय संयोग के संकोचवत् रहां प्रातिभासिक आन्तरीय अध्यास में भी संकोच है, याते यह विरोध नहीं, पुनः अध्यस्त का इदमाकार वृत्ति में अभिव्यक्ति से प्रकाश के स्वीकार में साक्षो की

याहि पक्षमें दूषण जेते। उद्घृत भये सकल वह तेते।
ताते सिद्ध भयो अध्यास। सो मैं करौं सकल परकाश ॥८४॥

अभिव्यञ्जक वृत्ति के नाश से स्मृति माने अध्यस्त को भविष्यत् होने से वृत्ति तदाकार नहीं होवे, याते अविद्या वृत्ति न माने स्मृति की असिद्धि सो यह युक्ति विरोध भी नहीं बने, काहे ते? शङ्खावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्या में क्षोभ द्वारा पीत रूप की उत्पत्ति औ पीत रूप विशिष्ट शङ्ख गोचर नेत्रसंयोगजन्यअन्तःकरण की चाक्षुष वृत्ति एक काल में होवे है, याते अध्यस्त विषय को ज्ञान के समकाल होने ते तद्गोचर वृत्तिनाश से स्मृति की असिद्धि नहीं, तैसे एक ज्ञान में भ्रमत्व प्रमात्व सांकर्य माने परस्पर भावाभाव रूप तिसके अवच्छेदक बाधित विषयकत्व अबाधित विषयकत्व के आगे अवच्छेदक माने अनवस्था, यह भी विरोध नहीं, काहे ते? वृक्ष में, संयोग, संयोगाभाव, के अवच्छेदक शाखा, मूल, परस्पर भावाभाव रूप नहीं, जिस हेतु से तिनको एक स्थान में रहने हेतु अन्य अवच्छेदक की अपेक्षा होवे, परन्तु वह भी काहू मूलत्वादि रूप अवच्छेदक धर्म से भिन्न हुए अवच्छेदक हैं वा न हुए? दूसरे तिनको परस्पर भिन्न न हुये भावाभाव रूप संयोग, संयोगाभाव, की अवच्छेदकता नहीं बनेगी, याते काहू काहू अवच्छेदक से भिन्न हुए कहो तब तहां भी अवच्छेदक माने अनवस्था होने ते काहू भी अवच्छेदक के भेद से विरुद्धों का समावेश नहीं कहना होवेगा, याते जैसे दृष्टान्त में शाखा मूल में रहने वाले शाखात्व मूलत्व अन्य अवच्छेदकहीन हुए स्वरूप ते अवच्छेदक हैं, तैसे बाधित विषयकत्वादिक भी बाधित विषयकत्वपने आदिकों से भिन्न हुए अवच्छेक हैं, याते पने में विश्राम ते अनवस्था नहीं, पुनः सत्य-रजत, शुक्ति-रजत स्थल में दो ज्ञान मान के प्रमात्व भ्रमत्व वाले ज्ञान की अप्रसिद्धि कहकर सांकर्य को अदृष्टता कहनी भी नहीं बने, काहे ते? अब पर्यन्त हमारे कही भी अविद्या वृत्ति का अंगीकार नहीं, याते इहां कैसे माने इत्यलम् ॥ ८३ ॥

कही रीति से सम्पूर्ण दोष दूर कर सिद्धान्ती तटस्थको सुनावे "याहि" इति, याहि पक्ष में नाम "बिना अज्ञान और नहिं चहे" इस पूर्व कहे उपाध्याय पक्ष में जेते दोष हैं वह सभी उद्धृत भये नाम दूर भये, औ ताते नाम कहे दोषों के दूर होने से, "असंग विषय नहिं तात्विक

अज्ञोहं   अज्ञानाध्यास । अहंभयो   अहंकाराध्यास ।
मैं देख्यों यह इन्द्रियाध्यास। अहं दुर्बल यह प्राणाध्यास ८५॥
मैं लेवों यह कर का जानो ।याविधि कर्मइन्द्रिय पहिचानो ।
मैं नर यह नरतनु अध्यास । पामर सकल करे परकाश ॥८६॥
मेरो धन सब गयो विलाय । मोको वहु दुःख लागे आय ।
यों नर धनअध्यास बखाने । धनके हानि हानि वह माने ॥८७॥
मो नारी सुत बांधव घने । बहु दुख पावै जाहि न गने ।
याको जीवन किहि विधि होई । यों जन सोच करे सब कोई ॥८८॥
यहि विधि नारी सुत अध्यास । सबही जन मुख करे प्रकाश

अब उक्त अज्ञानाध्यास में शंकापूर्वक समाधान का प्रतिपादन करते हैं ।

पूर्वपक्षी—

ननु अज्ञानाध्यास जो गायो । ताको हेतु न को दिखलायो ॥८९॥

संगा" इत्यादि पाठ से आरम्भया सिद्धभया जो अध्यास सो नाम वह अध्यास, सब मैं आकारों से प्रकट करता हूँ ॥ ८४ ॥

प्रकट करे—"अज्ञोऽहम्" इति, अज्ञोहं अज्ञानाध्यास कहिये "मैं अज्ञानी हूँ" यह आत्मा में अज्ञान का विपर्यय है और "अहं" यह अहंकार का विपर्यय है, तथा "मैं देखूँ" यह आत्मा में चक्षु का विपर्यय है, ऐसे "मैं स्पर्श करता हूँ" "गन्ध ग्रहण करता हूँ" "रस ग्रहण करता हूँ" "शब्द ग्रहण करता हूँ" यह और ज्ञानेन्द्रियों का विपर्यय जान लेना, तैसे अहं दुर्बल कहिये "मैं बलहीन हूँ" यह प्राणों का विपर्यय है ॥ ८५ ॥

कर्मेन्द्रिय का विपर्यय कहे "मैं" इति, मैं लेवों कहिये "मैं ग्रहण करता हूँ" यह आत्मा में हस्त का विपर्यय है, या विधि नाम इसी प्रकार "मैं चलता हूँ" "मैं बोलता हूँ" "मैं मल का त्याग करता हूँ" "मैं मूत्र का त्याग करता हूँ" यह चरणादिक कर्मेन्द्रियों के विपर्यय जान लेने। "अज्ञो हं" से कारण का औ आगे सूक्ष्म शरीर का अध्यास दिखाकर स्थूल का दिखावे "मैं नर" इति, "मैं नर तन" यह मनुष्य शरीर का विपर्यय सभी पामर पुरुष प्रकट करे हैं ॥ ८६ ॥

ऐसे धन पुत्र स्त्री आदिकों के विपर्यय हैं सो दिखावे "मेरो" इति॥८७-८८॥

विपर्यय ज्ञान औ तद्विषयरूप अध्यास मात्र संस्कारादि सहित

सिद्धान्ती—

स्व पर का निर्वाहक सोई । तामो और न भाख्यो कोई ।
चिद् भाने जो चेतन कहे । भेद को भेदक भेदहि अहे ॥९०॥

अज्ञान रूप सामग्री सापेक्ष है । औ अज्ञानाध्यास में स्व को हेतुता में आत्माश्रय औ अज्ञानान्तर को हेतुता में अन्योन्याश्रयादि दोष से अज्ञान कारण बने नहीं, याते अध्यास सामग्रो अजन्य "अज्ञोऽहम्" इस सच्चे ज्ञान के विषय अज्ञान को अध्यस्तता की असिद्धि ते, ताके होने से होने वाली ज्ञाननाश्यता नहीं सम्भवे, ऐसे भये ज्ञान औ तदर्थ शास्त्र निष्फल या अभिप्राय से आशंका करे "ननु" इति, अध्यास जो गायो कहिये पूर्व जो तुमने "अज्ञोऽहं" ऐसे आत्मा में अज्ञान का विपर्यय कहा ताको हेतु न को दिखलायो कहिये अहंकार आदिकों के विपर्यय में अज्ञान आदिक सामग्रीवत् तिसका कारण कोई नहीं दिखाया याते अध्यास सामग्रीजन्यता विना ताको अध्यस्तता दूर होने से ताके नाशक ज्ञान औ तदर्थ शास्त्र निष्फल है ॥ ८९ ॥

अज्ञानाध्यास की असिद्धि अज्ञान भिन्न कारण के अभाव ते कहते हो वा अज्ञान रूप कारण के अभाव ते कहते हो ? इनमें प्रथम तो पूर्व ही निराकरण किया याते मत बनो, दूसरे भी अज्ञान को स्वअध्यास में हेतुता दृष्टान्त के अभाव ते नहीं बने वा कोई आत्माश्रय आदिक और बीज है इनमें आत्माश्रय आदिक और बीज का तो बाधक साधक तुल्यता से परिहार करेंगे औ प्रथम के परिहार हेतु दृष्टान्त अनेक हैं या भाव से सिद्धान्ती कहे "स्व पर" इति, स्वपर का निर्वाहक सोई कहिये आत्मा में "अज्ञोहं" ऐसे अपने और "अहं" ऐसे अहंकारादिकों के अध्यास का कारण वह अज्ञान ही है याते तामें "अज्ञोहं" ऐसे अज्ञान के अध्यास में और कोई अज्ञान कारण नहीं कह्या, पर निर्वाहक को स्वनिर्वाहकता में दृष्टान्त कहे "चिद्" इति, चिद्भाने जो चेतन कहे कहिये जड़ वर्ग के प्रकाशक रूप चेतन के प्रकाश में, जैसे स्व प्रकाश होने ते और चेतन की अपेक्षा रहित चेतन आप ही कहिये है ऐसे अज्ञानाध्यास में भी अज्ञान भिन्न अज्ञान कारण की अपेक्षा नहीं, याते कारणाभाव ते अध्यास की असिद्धि से अध्यस्तता रूप मिथ्यात्व नहीं बने यह मिथ्यात्वाभावादिकों की आशंका भी विवृत्त भई । ननु दृष्टान्त-स्थल जहां वादी प्रतिवादी दोनों को विवाद न होवे वह होवे है औ

चेतन की स्वप्रकाशता में नैयायिक का इस रीति से विवाद है=जाग्रत् स्वप्न अवस्था में आत्मा विषे ज्ञान देखिये है सुषुप्ति से स्मृति, अनुभव रूप कोई ज्ञान नहीं देखिये है याते स्वरूप ते आत्मा घटादिकोंवत् जड़ है, मन के संयोग से तामें चेतन रूप ज्ञान गुण उपजे हैं ताके सम्बन्ध से आत्मा चेतन कहिये है, स्वरूप ते आत्मा चेतन नहीं, याते आत्मा का प्रकाश भी "अहं" ज्ञान से होवे है औ अहंज्ञान का प्रकाश और ज्ञान से होवे है, काहे ते ? न्यायमत में आत्मवत् ज्ञानगुण भी जड़ है औ जड़ हुआ भी घटादिकों को जड़ दीपवत् आत्मा को प्रकाशे है, स्वरूप को नहीं प्रकाशे, याते ताका प्रकाश और ज्ञान से होवे है, विषय प्रकाशक प्रथम ज्ञान का नाम व्यवसाय कहे हैं, व्यवसाय के प्रकाशक दूसरे ज्ञान का नाम अनुव्यववाय कहें हैं यथा "अहं" यह आत्मा का प्रकाशक ज्ञान व्यवसाय कहिये है; व्यवसाय का प्रकाशक "मामहं जानामि" अनुव्यवसाय कहिये है, इस रीति से वास्तविक ते जड़रूप औ ज्ञान गुण के योग से चेतन हुए, चिदात्मा के प्रकाश में वह आत्मा आप कारण नहीं, किन्तु आत्मा का प्रकाश "अहं" ज्ञान से होवे है अहं ज्ञान का प्रकाश "ममहं जानामि" कहिये मेरे को विषय करने वाले ज्ञान वाला मैं हूँ ऐसे दूसरे ज्ञान से होवे है याते चित् को स्व पर निर्वाहकता में दृष्टान्तता की असिद्धि से अज्ञान को दृष्टान्त बिना स्वाध्यास में हेतुता न होने से पूर्व कही आशंका निवृत्ति नहीं होवे यह आशंका श्रवण कर नैयायिकाभिमत दृष्टान्त कहे "भेद को" इति, इहां सुगम बोधार्थ प्रथम यह जान लेना लोकप्रसिद्ध जुदापने का नाम शास्त्र में भेद कहे हैं वह भेद एक का होवे है एक में रहे है, जैसे घट का भेद पट में रहे है "जिसका भेद होवे वह भेद का प्रतियोगी कहिये है" "जिसमें रहे वह धर्मी (अनुयोगी) कहिये है" जैसे घट का भेद है, याते घट भेद का प्रतियोगी कहिये है औ पट में रहे है याते पट भेद का धर्मी कहिये है, पुनः वह धर्मी प्रतियोगी कहूँ भावरूप, कहूँ अभावरूप, कहूँ भावाभाव रूप होवे है, जहां भाव का भाव में भेद कहना होवे तहाँ दोनों भाव रूप होवे है, जैसे घट का भेद पट में है इहां घट पट दोनों भावरूप हैं औ जहां अभाव का अभाव में भेद कहना होवे तहां दोनों अभाव रूप होवे है, जैसे अत्यन्ताभाव का भेद प्रध्वंसाभाव में है इहां दोनों अभाव रूप हैं औ जहाँ भाव का अभाव में, वा अभाव का भाव में कहेंगे तहां भावाभाव रूप होवे हैं जैसे घट का भेद घट के भेद में रहे है वा घट के भेद

का भेद, घट पट में रहे हैं, इहां दोनों भावाभाव रूप हैं, इस रीति से जहां भेद कहना होवे तहां धर्मी, प्रतियोगी, भेद, तीन की प्रतीति होवे है, भेद का बोधक शब्द कहीं "घट, नहीं पट" कहा जावे है, कहीं "घट भिन्न पट" कहा जावे है, कहीं "घट के भेदवाला पट" कहा जावे है" कहीं "पट के विषे घट का भेद" कहा जावे है अर्थ सबका एक है पाठ का भेद है। मूल ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने "घट के भेद विषे घट भेद" यह चौथी बोली लिखी है, पहली, दूजी, तीजी नहीं लिखी हैं औ दृष्टान्तता भेद को स्व पर निर्वाहकता में इस रीति स है=जहाँ "भिन्न" कथन वा "भेद वाला" कथन होवे है तहां "दण्डवान्" में दण्डवत्, भेद विशेषण प्रतीत होवे है, तिस वाला धर्मी विशेष्य प्रतीत होवे है याते "अदण्डी पुरुषों से जैसे "दण्डवान्" का दण्ड भेदक है. ऐसे अपने प्रतियोगी से भेद धर्मी का भेदक होवे है औ धर्मिवत् प्रतियोगी से अपना भेदक भी आप होवे है, काहे ते ? "घट के भेदवाला पट" इहां प्रतियोगी घट द्रव्य-पदार्थ है, भेद अभाव-पदार्थ है औ भावाभाव का अभेद न्यायमत में सम्भवे नहीं, किन्तु भेद सम्भवे है, याते घटाभिन्न घटभेद न कहा जाने से, ताही घट के पट में रहने वाले "प्रथम भेद में" ताही घट का सबको अपने मुख से "घटभिन्न घटभेद" ऐसे दूसरा भेद कहना होवे है ऐसे भये, घटभिन्न घटभेद नाम "घट के भेदवाला घटभेद" अर्थात् "घट के भेदविषे घट का भेद" यह कथन सिद्ध हुआ औ ऐसे कथन में, पट स्थानापन्न, पटवृत्ति, "प्रथम घटभेद" का भेदक दूसरा भेद भासे है, परन्तु सो सम्भवे नहीं, काहे ते ? न्याय-मत के भावधर्मी में रहने वाले अभाव को भिन्न माने हैं औ अभावधर्मी में रहने वाले अभाव को अधिकरण रूप माने हैं, याते दोनों को एकरूप होने ते पटधर्मी के घट प्रतियोगी से भेदक, "भेद का" घट प्रतियोगी से अपना भेदक और भेद नहीं है, किन्तु और भेद को प्रथम स्वरूप होने से आप ही है इस रीति से भेद को स्व पर भेदकता सम्भवे हैं, मूलपाठ का यह अर्थ है=भेद को नाम "घट के भेद वाला पट है" इहां घट प्रतियोगी से पटधर्मी के भेदक, भेद को भेदक नाम "घटभेद वाला, पटवृत्ति, घटभेद है" इहां प्रतियोगी घट से अपना व्यावर्तक भेदहि अहे कहिये पटवृत्ति प्रथम घटभेद में रहने वाले, दूसरे घटभेद को प्रथम स्वरूप होने ते आप ही है दूसरे को भिन्न माने अनवस्था भय ते और नहीं ॥ ९० ॥

घटके भेद विषे घट भेद। ते दोनों ते मतहिं अभेद।
धर्मी का भेदक है जोई। भेदको भेदक और न कोई ॥९१॥

पूर्व कही भेद को स्वपर भेदकता उदाहरण से स्पष्ट करने हेतु प्रथम अभाव में रहने वाले अभाव को एकरूपता सिद्ध करे "घट के" इति, घट के भेद विषे घट भेद कहिये "घट के भेद वाला पट है" इस प्रतीति सिद्ध पट में रहने वाले घट के भेद विषे जो ताही घट द्रव्य का "पट वृत्ति घट भेद घट के भेद वाला है" इस प्रतीति सिद्ध दूसरा भेद है, ते दोनों ते मतहि अभेद कहिये अभाव में रहने वाले अभाव को अधिकरण रूप मानने से वह दोनों तुमारे मत में एक रूप हैं, अनवस्था भय ते भिन्न नहीं। कही रीति से धर्मी वृत्ति प्रथम भेद में रहने वाले दूसरे भेद को एक रूपता सिद्धकर स्वपर भेदकता कहे "धर्मी" इति, धर्मी का भेदक है जोई कहिये "घट के भेद वाला पट है" इहां "अदण्डी" के व्यावर्तक दण्डवत् अपने प्रतियोगी घट से धर्मी पट का व्यावर्तक जो "घट भेद है" तिस घट भेद को, भेदक कहिये अपने प्रतियोगी घट से व्यावर्तक, और न कोई नाम और भेदान्तर नहीं, किन्तु "पट वृत्ति घट भेद, घट के भेद वाला है" इस प्रतीति सिद्ध भेदान्तर को अधिकरण रूप मानने से भेद आप ही है तद्वत् अज्ञान भी स्व अध्यास में हेतु आप ही है, इहां यह भाव है=भावाभाव दोनों में रहने वाला अभाव अधिकरण रूप होवे है यह सबका मत है, और भाव में रहने वाला अधिकरण रूप नहीं होवे, किन्तु अभाव में रहने वाला अभाव ही अधिकरण रूप होवे है यह तुमारा मत है तथाहि—भाव में रहने वाले अभाव को अधिकरण रूप माने जल गत गन्ध के अभाव का नासिका से प्रत्यक्ष नहीं होवेगा, काहे ते? "जिस इन्द्रिय से जो वस्तु ग्रहण होवे है, ताकी जाति का, औ ताके अभाव का, भी ताही से प्रत्यक्ष होवे है" यह नियम है, जैसे नेत्र इन्द्रिय से रूप का प्रत्यक्ष होवे है याते ताकी रूपत्व जाति का औ ताके अभाव का भी ताही से प्रत्यक्ष होवे है श्रोत्र आदिकों से नहीं, ऐसे भये गन्ध गुण औ गन्धत्व जातिवत् गन्धाभाव की भी कहे नियम ते नासिका से प्रत्यक्ष की आवश्यकता है, औ नासिका से प्रत्यक्ष सम्भवे नहीं, काहे ते? श्रोत्ररसनावत्, नासिका इन्द्रिय गुण को ग्रहण करे है, गुण के आश्रय को ग्रहण नहीं करे औ अधिकरण रूप माने गन्ध का अभाव जल स्वरूप कहना होवे है, याते जल स्वरूप "गन्ध के अभाव

बाधक साधक अहे समान । ताते सो उर अन्तर मान ।
याविधि सिद्ध भयो अध्यास । ता लक्षण अब करौं प्रकाश ॥९२॥
अन्यत् अन्यत्र ह्वै भान । याही को अध्यास पछान ।
पूर्व वृद्ध सकल जो भये । तिन योंही लक्षण निर्मये ॥९३॥

का" नासिका को आश्रय ग्रहण में समर्थ न होने ते ग्रहण नहीं होवेगा, इस ते भाव में रहने वाला अभाव जुदा होवे है औ अभाव में रहने वाले अभाव को अधिकरण रूप न माने तब पट वृत्ति प्रथम घट भेद का भेदक "पट वृत्ति घट भेद, घट के भेद वाला है" इस प्रतीति सिद्ध दूसरा औ दूसरे का भेदक "पटवृत्तिघटभेद वृत्तिघटभेद घटकेभेदवाला है" इस प्रतीति सिद्ध तीसरी ऐसे आगे आगे माने अनवस्था होवेगी, याते वह अधिकरण रूप है, ऐसे भये प्रतियोगी घट से अपने धर्मी का भेदक जो "घट भेद" ताका अपने प्रतियोगी से भेदक और कोई नहीं, किन्तु सत्ता के सत् कथन में सत्तावत्, तथा नित्य द्रव्यों के व्यावर्तक विशेषों की व्यावृत्ति में विशेषोंवत्, तथा घटादिकों के प्रकाशक दीप के प्रकाश में दीपवत् जैसे, धर्मियों का भेदक भेद धर्मी प्रतियोगी से अपना भेदक आप है, ऐसे सम्पूर्ण अहंकारादिकोंके आत्मा में अध्यास का कारण अज्ञान अपने अध्यास का भी कारण आप है ॥ ९१ ॥

ननु स्व अध्यास में अज्ञान को हेतुता मानने में आत्माश्रय आदिक दोष होवे हैं ? यह श्रवण कर पूर्व कहे दृष्टान्त से नही होवे, ऐसे न माने तुमारे भी होवेंगे यह कहे "बाधक" इति, बाधक नाम कार्य के नाश कर्ता आत्माश्रय आदिक, औ साधक नाम अध्यासरूप कार्य की सिद्धि कर्ता दृष्टान्त—दीपादिक, अहे समान कहिये तुल्य है जिस हेतु ते, ताते नाम तिसी ते, सो कहिये अज्ञान को स्व पर अध्यास निर्वाहकर्ता हृदयमें अंगीकार करो, इस प्रकार अध्यास की सिद्धि करके स्व प्रकाश में अज्ञानादिक सामग्री खण्डन कर अध्यास न मानते को कहे "या विधि" इति, या विधि कहिये एक ही रीति से, असंग आत्मा में अवस्थात्रय के संग का अध्यास तो प्रमाणों से सिद्ध हुआ, अब सत् आत्मा औ असत् शश शृंगों से ताकी भेद सिद्धि हेतु ताका लक्षण भी कहता हूँ सोई कहे "ता" इति ॥ ९२ ॥

लक्षण कहे "अन्यत्" इति, भ्रम भिन्न काल में "रजत नहीं शुक्ति",

ऐसे शुक्तिमे रजतका भेद भासे है औ शुक्ति में रजतत्व का अत्यन्ताभाव भासे है, याते अपने भेद से अपने धर्म के अत्यन्ताभाव से रजत भासे है, भ्रम कालमें "इदं रजतम्" कहिये "इदम् अभिन्न रजत है" ऐसे "इदं" साथ रजतका अभेद भासे है, पुनः जिस कारण ते रजत का इदं से अभेद है ताते "इदं वस्तु" रजतत्व जातिके सम्बन्ध वाली है ऐसे इदं में रजतत्व का "संसर्ग" भासे है, याते अपने अभेद से औ अपने धर्मों के संसर्ग से रजत भासे हैं, ऐसे भये लक्षण वाक्य का यह अर्थ है=अन्यत् नाम और का अन्यत्र कहिये अपने से भिन्न और अपने धर्मोंके अत्यन्ताभाव वाले अधिष्ठान विषे, ह्वै भान नाम होना, अपने अभेद ते औ अपने धर्मों के संसर्ग ते अविद्या की वृत्ति रूप विपर्यय ज्ञान, याही को नाम इसी ज्ञान को अध्यास जानो, तो यह-ज्ञानाध्यास पक्षमें लक्षण वाक्य का अर्थ है और वेदान्त में ज्ञानवत् अर्थों को भी अध्यास रूपता अंगीकार है याते अर्थाध्यास पक्षमें —अन्यत् नाम और अन्यत्र कहिये अपने से भिन्न औ अपने धर्मों के अत्यन्ताभाव वाले अधिष्ठान विषे ह्वै भान नाम होना अपने अभेद से औ अपने धर्मोंके संसर्ग ते विपर्यय ज्ञान का विषय, इसी को अध्यास जानो यह लक्षण वाक्यका अर्थ है, जैसे रजतका अपने से भिन्न औ अपने रजतत्व धर्म के अत्यन्ताभाव वाले शुक्ति रूप अधिष्ठान विषे रजत के अभेद से औ रजतत्व के संसर्ग से "इदं रजतम्" यह अविद्या वृत्ति रूप विपर्यय ज्ञान है, पुनः अपने अभेद ते औ रजतत्व के समवाय ते रजत ताका विषय है, याते रजत के अभाव वाली शुक्ति में "इदमाकार वृत्यवच्छिन्नचेतननिष्ठअविद्या" का परिणाम रजत ज्ञान, औ "शुक्तयवच्छिन्नचेतननिष्ठअविद्या" का परिणाम रजतादिक विषय दोनों अध्यास रूप है। ऐसे ब्रह्म, शशशृङ्ग भिन्न व्यावहारिक अवस्थादि रूप सम्पूर्ण विषय औ तिनके ज्ञान भी अध्यास रूप हैं, यद्यपि लक्षण में अपने से भिन्न में अपना अध्यास कहने से अर्थ ते अभाव वाले में अपना रहना बताया औ वह घट घटाभाव का एक स्थान रहना न देखने ते प्रतियोगी अभावरूप भावाभावका विरोधसे सम्भवे नहीं, तथापि "जिस सम्बन्ध से जिस रूप से जो जहाँ रहे है तिस सम्वन्ध से तिस रूप से तहाँ तिसका अभाव नहीं रहे" यह नियम है, जैसे संयोग सम्बन्ध से घटत्व रूप से जहाँ भूतल में घट रहे तहा तिसका संयोग सम्बन्ध ते तिस रूप से रहे अभाव साथ विरोध होवे है, समवाय सम्बन्ध से घटत्वरूप से घटवाले में ही "इहां घट नहीं" यह अभाव प्रतीति होने ते,

भुजंग प्रयात छंद

यही 'रामगीता' विषे राम भाख्यो।
गुणं सर्प केरोहि दृष्टांत राख्यो॥
कृपाकै बतायो गुणंसिंधु नीके।
जपे नाम जाके मिटे दुःख जीके॥ ९४॥

अन्य सम्बन्ध ते अन्य रूप ते रहे अभाव साथ विरोध नहीं होवे, यह जैसे अनुभव के अनुसार कल्पना है तैसे समसत्ता वाले ही प्रतियोगी अभाव का एक स्थान रहने में विरोध होवे है, भिन्न सत्तावाले प्रतियोगी' अभाव का नहीं होवे, यह भी कल्पना है, याते शुक्ति में कल्पित रजत औ व्यावहारिक ताके अभाव का एक स्थान समावेशवत् सम्पूर्ण व्यावहारिक प्रातिभासिक प्रपञ्च का अपने पारमार्थिक व्यावहारिक अभाव साथ मिल के ब्रह्मरज्जु आदिकों में रहने में विरोध नहीं, याते सम्पूर्ण व्यावहारिक प्रातिभासिक पदार्थ औ तिनके ज्ञान अध्यास रूप है यह तत्त्व है, लक्षण को यथार्थता सिद्धि हेतु वृद्धों की सम्मति कहे "पूर्व" इति॥ ९३॥

पूर्व वृद्धों में प्रथम परम वृद्ध भगवान् की सम्मति कहे "यही" इति, यही नाभ "अन्यत् अन्यत्र ह्वै भान" रूप ही—

"भ्रमात् और और में जु होय के दिखाय है।
अध्यास रूप कोविदा इसो जगत् गाय है॥"

यह "राम गीता" विषे, श्रीराम ने लक्षण कह्या है। औ लक्षण घटावने वास्ते :—

"असर्प रूप रज्जु में यथा अहि विभास है।
जगत ए परेश में तथा सुभ्रात! भास है॥"

यह, गुणं सर्प केरो कहिये रज्जु सर्प का दृष्टान्त रखा है, गीता वाक्य का अर्थ यह है = भ्रमात् कहिये प्रमाणचेतननिष्ठअविद्या की वृत्ति से, जो और में नाम अपने से भिन्न औ अपने धर्मों के अत्यन्ताभाव वाले धर्मी विषे, और नाम अधिष्ठान ते विषम सत्ता वाला अनिर्वचनीय वस्तु होकर प्रतीत होवे है, कोविदा-पण्डित जन, इसी को अध्यास कहे हैं, जैसे असर्प रूप रज्जु में कहिये सर्प से भिन्न सर्पत्व के अत्यन्ताभाव वाले रज्जु रूप धर्मी में, अधिष्ठान से विषम सत्ता वाला सर्प प्रतीत होवे है तैसे परेश कहिये ईश में, हे भ्राता! सम्पूर्ण जगत् प्रतीत होवे है॥९४॥

भाष्यकार श्रीशङ्कर नामा । सर्व करैं जिहँ पद परणामा ।
तिनभी मुखते योंही गायो । शारीरक भाष्य विषे दिखलायो ॥९५॥
आत्म और अनात्म जोई । मिले परस्पर दोनों सोई ।
'अन्योअन्य' भयो अध्यास । सत्य अनृत मिथुन परकाश ॥९६॥

अब वादी विकल्प कर मिथुन पद के अर्थ को पूछे है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

मिले परस्पर दोनों सोई । याको अर्थ कहो तुम कोई ।
जो संयोग अर्थ तिहिं गहो । तौ अध्यास न मुखते कहो ॥९७॥
दोनों सत्य मिले पुन दोई । घटपट ज्यों संयोगहि होई ।
जब तादात्म्य मुखते गावो । दूषण बहुविधि के तब पावो ॥९८॥

आचार्य की सम्मति कहे "भाष्य" इति, योंही नाम "स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः अध्यासः", ऐसे अध्यास मात्र का लक्षण कहते हुए "अन्यत् अन्यत्र ह्वै भान" रूप ही लक्षण शारीरक में दिखाया है।।९५।।

शारीरक भाष्य के आरम्भ में अध्यास सिद्धि पर कह्या अर्थ ते भाष्यकार का वाक्य पढ़े "आत्म" इति, आत्म और अनात्म जोई नाम अपना आप औ तद् भिन्न अज्ञान आदिक निखिल प्रपञ्च जो है जब यह दोनों ही परस्पर मिले तब, अन्यो अन्य कहिये परस्पर अध्यास हुआ, अध्यास शब्दार्थ कहे "सत्य" इति, मिथुन-परकाश कहिये आत्मा अनात्मा के तादात्म्यादिकों की परस्पर प्रतीति हुई, जैसे शुक्ति मैं रजत का, औ रजत में शुक्ति का तादात्म्य भासे है ॥ ९६ ॥

आरोप्य अधिष्ठान के मिलाप विचार में देने योग्य दोषों से पुनः अध्यास नहीं सिद्ध होवे, या अभिप्राय से अर्थ ते पढ़े "मिले" पद के अर्थ में आशंका करे "मिले" इति, याको नाम सम्बन्धी बोधक "मिले" पद के लक्षणा कर सम्बन्ध रूप मिलने को तुम, अर्थ नाम वाच्य क्या कहते हो ? अर्थात् संयोग कहते हो वा तादात्म्य कहते हो ? "संयोग कहे हैं ?" यह श्रवण कर संयोग सत्य रूप दो द्रव्यों का देखने ते अनृत को सत्यता प्राप्ति ते अध्यास रूपता की असिद्धि होवेगी यह कहे "जो संयोग" इति ॥ ९७ ॥

मुख ते अध्यास न कहना स्पष्ट करे—"दोनों" इति, दोनों सत्य

सत्य अनात्म आत्म जोई । परस्पर तदात्मता दोई ।
जो होयो तो भयो अनर्थ । अध्यास पक्षमें नहिं को अर्थ ॥९९॥
अभिन्न अनात्म आत्म जोई । होय विनाशी तद्वत् सोई ।
आत्म माहिं अभिन्न अनात्म । होय अनाशी ज्यों निज आत्म॥१००॥
प्रथम पक्ष निज आत्म भंगा । द्वितीय पक्ष अनमोक्ष प्रसंगा ।

अब द्वितीय पक्ष में सिद्धान्तरूप विचार का प्रतिपादन करते हैं ।

चौपाई

सिद्धान्ती—
संयोग पक्ष अनंगीकार । द्वितीय में कछु अहै विचार ॥१०१॥

कहिये आत्मा अनात्मा दोनों सत्य होवेंगे, पुनः दोई मिलेंगे तब घट पटवत् तिनका संयोग होवेगा, ऐसे भये संयोगी घट पट का परस्पर अध्यास न देखने ते तिनका अध्यास नही कहना बनेगा, याते तादात्म्य मानो, तब शून्य वाद औ मोक्षाभाव प्रसंग रूप दो दोष होवेंगे सोई कहे "जब" इति ॥ ९८ ॥

मुख से न कहता प्रथम तिन दूषण ओर दृष्टि कर ही अध्यास पक्ष को अनर्थता कहे "सत्य" इति, "जो होयो" पूर्व साथ मिलाकर, परस्पर तादात्म्यता को प्राप्त जब हुए तब अनर्थ हुआ ॥ ९९ ॥

अनर्थता का प्रकार कहे "अभिन्न" इति, अभिन्न अनात्म आत्म जोई नाम "अनात्मा साथ अभिन्न जो आत्मा वह नाशी होने को योग्य है, आनात्मा साथ अभिन्न होने ते, अनात्मवत्" या अनुमान से तद्वत् नाम अनात्मवत् नाशी होवेगा, याते आत्म माहिं अभिन्न अनात्म कहिये आत्मा में अनात्मा का अभेद कहो तब "अनात्मा, अविनाशी होने को योग्य है, आत्मा साथ अभिन्न होने ते, आत्मवत्" या अनुमान से वह अनात्मा अपने आत्मवत् अनाशी होवेगा ऐसे भये शून्य वाद प्राप्ति औ मोक्षाभाव प्रसंग रूप अनर्थ होवेंगे ॥ १०० ॥

सोई कहे "प्रथम" इति, शुक्ति का रजत में औ रजत का शुक्ति में तादात्म्य रूप हेतु रहे भी "नेदं रजतम्" बाधक ज्ञान से शुक्ति को नाशी-पना औ रजत को अविनाशीपना न देखने से, अविनाशिता विनाशिता में सत्ता कल्पितता को हेतुता माननी अवश्य है याते तादात्म्य पक्ष में

जाको भान स्वतंत्र होई। सत्य रूप पहिचानो सोई।
पराधीन सत्ता जिहिं होई। कल्पितरूप पछानो सोई ॥१०२॥
कल्पित को तादात्म्य हइये। संसर्गाध्यास सत्य को पइये।
ताते सत्य स्वतन्त्र होई। कल्पित सम नहिं नाशी सोई ॥१०३॥

कोई दोष नहीं, या भाव से सिद्धान्ती कहे "संयोग" इति, द्वितीय में कछु अहै विचार कहिये तादात्म्य पक्ष में कछुक विचार है ॥ १०१ ॥

सत्ता कल्पित शब्दों के अर्थों का चिन्तन रूप विचार कहे "जाको" इति, जाको भान स्वतन्त्र होई कहिये जिस वस्तु की प्रतीति अर्थात् सत्ता और के अधीन न होवे वह वस्तु सत्य रूप जानो और पराधीन सत्ता जिहि होई नाम और के अधीन सत्ता जाकी होवे, "वह वस्तु" कल्पित रूप जानो अर्थात् अपने होने वास्ते और का होना न चाहने वाली वस्तु वास्तविक होवे है औ चाहने वाली कल्पित होवे है, जैसे शुक्ति अपने होने वास्ते, रजत का होना न चाहने से सत्य है, औ रजत चाहने से कल्पित है ॥ १०२ ॥

विचार कहकर तादात्म्य सम्वन्ध कहे "कल्पित" इति, कल्पित को तादात्म्य हइये नाम कल्पित का अध्यास रूप तादात्म्य संसर्ग "सत्य वस्तु" में है औ संसर्गाध्यास सत्य को पइये नाम "सत्य वस्तु" का अध्यास रूप तादात्म्य सम्बन्ध कल्पित में है, इहां कल्पित का सत्य में औ सत्य का कल्पित में तादात्म्य पुनः सत्य के तादात्म्य को अध्यास रूपता कथन का यह मर्म है=जो अज्ञान औ ताके तादात्म्य से बिना भ्रम काल में अधिष्ठान विषे संस्कार सहित अविद्या रूप सामग्री वशते, सादि कल्पित वस्तु औ तिसका तादात्म्य, औ तिसके धर्मों का सम्बन्ध, पुनः कल्पित में अधिष्ठान का तादात्म्य, औ अधिष्ठान के धर्मों का सम्बन्ध यह पांच विषय उपजे हैं औ तदनन्तर होने वाला बाधक ज्ञान, सहित सामग्री के पांचों का नाश करे है, तहां भी यह रीति है=जो सहित तादात्म्य के, औ धर्मों के सम्बन्ध के कल्पित का स्वरूप से नाश करे है औ सम्पूर्ण विषयों सहित भ्रम नाशकता के स्वभाव ते तादात्म्य विशिष्ट रूप से अधिष्ठान का बाध करता हुआ भी भ्रमवत् अधिष्ठान बिना बाध के अयोग्य ते ताके धर्मों के सम्वन्ध सहित ताके तादात्म्य संसर्ग मात्र का बाध करे है, जैसे "इदं रजतम्" भ्रम काल विषे इदंरूपअधिष्ठान

अब 'कर्कटी कृपाणी' न्यायेन अनात्मा की विकल्पों पर
असारता प्रतिपादन करते हैं ।

अरु अनात्मा हइये जेतो । आत्म भिन्न असाचो तेतो ।
जो आत्मा अभिन्नहि होई । तौ अनात्मता हि तिन खोई ॥१०४॥
उभय प्रकार सो मिथ्या हइये । भिन्नाभिन्न विरोधी पइये ।
रूपो भिन्न न सत्ता पावे । सीपी सत्ता सकल बतावे ॥१०५॥
त्यों आत्मा अनात्म माहीं । सुधी विचारे निज मन माहीं ।
सर्वत्र अनुगत पुन जोई । अधिष्ठान पहिचानो सोई ॥१०६॥

में सामग्री वश ते, रजत औ ताका तादात्म्य, औ ताके धर्मों का सम्बन्ध, पुनः रजत में "इदं" का तादात्म्य, औ इदंपने का सम्बन्ध, यह पांच उपजे है, औ तदनन्तर सामग्री सहित विषयों का नाश करता "नेदं रजतम्" ज्ञान, सहित तादात्म्य के, औ रजतपने के सम्बन्ध के रजत का स्वरूप ते नाश करे हैं औ तादात्म्य विशिष्ट रूप से "इदं" का बाध करता हुआ भी निरधिष्ठान बाध के अयोग्य ते इदंपने के सम्बन्ध सहित "इदं" के तादात्म्य मात्र का बाध करे है, याते कल्पित वस्तु सत्य में स्वरूप ते अध्यस्त है औ सद् वस्तु का कल्पित में संसर्ग मात्र अध्यस्त होने ते, सत्य वस्तु स्वतन्त्र है अर्थात् अबाधित है कल्पितवत् नाशी नहीं, याते तादात्म्य में कोई दोष नहीं ॥ १०३ ॥

कही रीति से आत्मा को अविनाशिता बताकर अब "कर्कटी कृपाणो न्याय" से भिन्न अभिन्न पक्षों में पुनः तमः प्रकाशवत् विरोध से भिनाभिन्न तीसर पक्ष में सर्वथा अनात्मा को विनाशिता कहे "अरु" इति, असाचो नाम झूठा अर्थात् मिथ्या ॥ १०४ ॥

सत्य कल्पित को अविनाशिता विनाशिता दृष्टान्त से बतावे "रूपो" इति, रूपो भिन्न न सत्ता पावे नाम रूपा सोपी से भिन्न होकर स्वतन्त्र सत्ता को प्राप्त नहीं होवे औ सीपी सत्ता सकल बतावे कहिये रूपे से भिन्नकर "शुक्ति है" ऐसे सीपी की सत्ता को सब कोई कहे है अर्थात् रजत की परतन्त्र सत्ता है औ शुक्ति की स्वतन्त्र सत्ता है याते रजत कल्पित होने ते नाशी है, औ सीपी सत्य होने ते अविनाशी है ॥ १०५ ॥

त्यों आत्मा अनातम माहीं कहिये तैसे ही अर्थात् शुक्ति रजतवत् ही आत्मा अनात्मा विषे तादात्म्यरह्या भी सत्ता कल्पितता से, नाशिता,

व्यभिचारी भव भीतर जोई । कल्पित रूप पछानो सोई ।
दंड माल अरु भूमि दरार । कल्पित रज्जु विषे निर्धार ॥१०७॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति जेते । अनुगत आत्म कल्पित तेते ।
ते है आत्माको दुखदाई । तीन अवस्था जे पुन गाई ॥१०८॥
यों अध्यास लह्यो चित जाते । दुःख अनंत लहे वह ताते ।
यागादिक जे करे उदार । तेऊ लहे न दुखको पार ॥१०९॥

अविनाशित्ता, को बुद्धिमान् विचारे, तादात्म्य रह्या भी आत्मा अनात्मा को नाशिता अनाशिता और प्रकार से सिद्ध करे "सर्वत्र" इति, सर्वत्र अनुगत पुनः जोई कहिये जो वस्तु सम्पूर्ण कल्पितों के भानाभान काल में अनुस्यूत होवे वह वस्तु अधिष्ठान रूप जानो ॥ १०६ ॥

औ व्यभिचारी भव भीतर जोई कहिये जो वस्तु संसार में और के भान काल में अपना भान होने वाली है वह वस्तु कल्पित रूप जानो, जैसे दण्डमाल अरु भूमि दरार कहिये मन्द अन्धकार में, रज्जु विषे जहां पुरुष को "यह दण्ड है" वा "यह माला है" वा "यह भूमि की लीक (दरार) है" ऐसा भ्रम होवे तहां इदं रूपता कर अनुगत रज्जु में वह सभी कल्पित हैं ॥ १०७ ॥

तैसे, जेते कहिये जितने कोई जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है यह सभी अनुस्यूत आत्मा में कल्पित हैं, पुनः वह तीन अवस्था ही अपने तादात्म्य ते आत्मा को दुःख देने वाली है, परन्तु तिन कल्पितों का तादात्म्य रह्या भी "नायं सर्पः" बाधक ज्ञान से सर्प के नाश औ रज्जु के अनाशवत् "नेति नेति" वाक्यजन्यज्ञान से अनात्मा का नाश, आत्मा का अनाश सम्भवे है, याते "मिले" शब्द का अर्थ तादात्म्य मानने में आत्म भंग औ मोक्षाभाव प्रसंग रूप दोषों का गन्ध भी न होने ते निरंकुश आत्मा अनात्मा का अध्यास सिद्ध हुआ ॥ १०८ ॥

ऐसे लक्षण प्रमाणों से भली प्रकार अध्यास का निरूपण कर वैराग्य की दृढ़ता औ शास्त्र में लोगों की उदासीनता दूर करने हेतु अध्यास से प्राप्त भये अनर्थ कहे "यों" इति, सुख का साधन जानकर किये कर्म ही अनन्त दुख देवे हैं, याते दुख साधनों से दुखों की तो क्या कहे "यह कैमुतिक न्याय" से कहे "यागादिक" इति ॥ १०९ ॥

प्रथमे ईहाँ ते दुख पावे । वहुत यत्न कर द्रव्य मिलावे ।
खड्गधार सों अङ्ग चिरावे । तौ कछु धन भूपति ते पावे ॥११०॥
या विधि सकल यत्नके माहीं। सुधी विचारें दुख मनमाहीं ।
यों ता अर्जन माहिं कलेश । राखन में नहिं सुखकी लेश ॥१११॥
मे नारी सुत याहि न देखे । और न याको कोई पेखे ।
या हित गहे अकेलो चाले । गाड़नको नहिं दीपक जाले ११२॥
तहाँ भीतसों मस्तक फोरे । चुप कर रहे न कछु मुख वोरे ।
मौन गहे माटीको फोरे । लगे कुदाल पाँउको तोरे ।११३॥
भू में वहु दुख पाय गडाये । इत उत तिहँ ते दृष्टि वचाये ।
जवै जवै घरमें पग धारे । तवै तवै वह ठौर निहारे ॥११४॥
भली प्रकार न भोगे आप । भूपति का मनमें संताप ।
मत मेरे धनको यह हरे । याहित मलिन भेपकर फिरे ॥११५॥
याविधि संचन माहिं कलेश । कहूँ न पइये सुखकी लेश ।
याको नष्ट होय धन जवही । प्राण अंत दुख पावे तवही ॥११६॥
खर्च होय दश सौ में जवही । वहुत प्रकार सोच मन तवही ।
याविधि नर वहु दुखको पाये। यत्न करे कछु द्रव्य मिलाये ।११७॥
याविधि भयो इकत्र जवही । वहुत प्रकार सोच मन तवही ।
किनहूँ को गाड़चो रहि जावे । त्याग ताहि नर यमपुर जावे ।११८॥
केचित कोविद परम उदार । तासों यज्ञ करे विस्तार ।
यज्ञन में वहुविधि दुख पाय । ज्यों त्यों कर सुरलोकहि जाय। ११९॥

प्रथमे—पहले अर्थात् यज्ञादिकसाधन सम्पादन काल में, ते नाम यज्ञकर्ता ॥ ११० ॥

अर्जन—एकत्र करने में ॥ १११ ॥

रक्षा में दुख कहे "मे नारी" इति ॥ ११२ ॥

कुदाल—कसी ॥ ११३-११४-११५ ॥

प्राण अन्त—मरण पर्यन्त ॥ ११६-११७-११८ ॥

ज्यों त्यों कर" इति, धूमादिक मार्गों द्वारा चन्द्रमण्डल में प्राप्त होकर

ताहि विषे दुख अहे अपार। तिरस्कार ते बारम्बार।
निज ते बड़ो जबै को देखै। तब आपनमों बहु दुख पेखै ॥१२०॥
राग रु द्वेष असूया जने। मानस दुख कछु जाहि न गने।
असुर करे देवन को पीड़ा। भंग होय देवन की क्रीड़ा ॥१२१॥
यज्ञ भाग ते करे उच्छेद। ताते लहे देव बहु खेद।
कदाचित शत्रु संग निवास। शत्रु हरे सो ताहि अवास ॥१२२॥
तिनकी इष्ट नारि हरि लेवै। पाद प्रहार सु बहु दुख देवैं।
विमान हरे तिन देय निकार। सोच करे उर बारम्बार ॥१२३॥

देवभाव को प्राप्त होवे है सोई दिखावे—वापी कूप तडागादि रूप इष्टि कर्म करने वाले पुरुष धूम को प्राप्त होवे हैं, धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्ण पक्ष को, तिस से शुक्ल पक्ष को, तिससे दक्षिणायन को, तिससे सम्वत्सर को, तिससे पितृलोक को तिससे आकाश को, तिससे चन्द्रमा को, तहां जाकर देवभाव को प्राप्त होवे है धूमादिपदों से तिनके अभिमानी देवता की प्राप्ति जाननी ॥ ११९ ॥

ननु होवे सामग्री सम्पादन में दुख, स्वर्ग में महाभोग श्रवण ते दुख नहीं, याते अधिक लाभवाली वस्तु ते वैश्योंवत् उपराम होना योग्य नहीं ? यह श्रवण कर विषयुक्त मोदकोवत्, दुख मिश्रित स्वर्गादि सुख हेय ही है या अभिप्राय से स्वर्ग में अनेक दुख कहे "ताहि" इति, ताहि विषे—सुरलोक विषे, तामें दुख काहे ते है ? तहां कहे "तिरस्कार" इति, "बारम्बार तिरस्कार ते" यह अन्वय कर पुनः पुनः आपते बड़ो कर किये अपने अनादर ते, सोई स्पष्ट करे "निजते इति ॥ १२० ॥

"मानस" पूर्व साथ मिलाकर रागादिकों कर उपजे मन के दुख ही स्वर्ग में गिने नहीं जावें औरों की तो क्या कहें, असूया नाम पर गुणों में दोषों के आरोप का है, मानस दुख कह कर शारीरिक दुख कहे "असुर" इति ॥ १२१ ॥

ते नाम असुर, देवताओं के यज्ञ भागों का उच्छेद कहिये नाश करे हैं ताते—यज्ञभागों के नाश ते, दुखान्तर कहे "कदाचित्" इति, कदाचित् नाम कभी, ताहि अवास-तिनके गृह ॥ १२२ ॥

इष्ट नारि—प्रिय स्त्री ॥ १२३ ॥

कीन अपराध ऋषिन हूँ केरो । गौतमादि कोप करि हेरो ।
होय विरूप गयो क्षण माहीं । सुरपति सोच करे मनमाहीं ॥१२४॥
धिक मोंको अपराधी भयो । ऋषिके श्राप रूप मुहि गयो ।
इन्द्रादिक की जो गति ऐसी । औरन की अब भाखौं कैसी ॥१२५॥
ईश्वरते ताको भय भारी । कोय न सके सु ताहि निवारी ।
ज्यों ज्यों पुण्य होय तिहिं छीन । त्यों त्यों सोचकरे मन दीन ॥१२६॥
सुत अरु नारि प्रथम मरि गयें । पाप अनुसार नरक तिन भये ।
ताको हेर बहुत दुख पावै । देवन के दुख गने न जावै ॥१२७॥
तनको धार जहाँ जहँ जावै । तहाँ तहाँ पुन पुन दुख पावै ।
यही कह्यो मुख वेदव्यास । ग्रंथ बढ़न ते कियो समास ॥१२८॥

तथाच तद्वचनं

श्लोक

"इन्द्रलोके महद्दुःखं, प्राजापत्ये तथैव च ।
विष्णुलोके च रौद्रे च, दुःखमेव विचारतः" ॥

चौपाई

ताते गिरनेमों दुख पावे । जल में देह सकल गल जावे ।
पुण्य भोग जिन पाप निखारे । तेतो तिहँते नरक पधारे । १२९॥

कैमुतिक न्याय से औरों को दुख सूचन हेतु इन्द्र को कहे "कीन" इति, विरूप—रूपहीन अर्थात् सहस्रभगी ॥ १२४-१२५ ॥

ताको—इन्द्र को ॥ १२६-१२७ ॥

समास—संक्षेप ॥ १२८ ॥

इन्द्रलोके—स्वर्ग में, महद् दुखं—अति दुख है, प्राजापत्ये—ब्रह्मलोक में, तथैव च—तैसे ही पुनः दुख है, विष्णु लोके च—वैकुण्ठमें, पुनः रौद्रे च—महादेव लोक में, पुनः दुखमेव विचारतः—दुख ही है विचारे ते अर्थात् विचार करने से सर्वत्र दुख ही है, ताते—स्वर्ग ते ॥ १२९ ॥

पुण्यशेष जाके कछु हइये । ताकी गति पुन याविधि पइये ।
वायु धूम बादल ते होई । वर्षाजल जन्मनको जोई ॥१३०॥
यव अरु धान्य जन्म को पावै । भोगे रक्त रेत हो जावै ।
बहुरो योषित् गर्भमें जाय । नाना विधि के दुख तिहँ पाय। १३१॥
बहुरो जन्म काल जब आवै । प्रसूति वायु ते पीड़ा पावै ।
मरण समान दुःख को पायो । योनि विवरते बाहर आयो ॥१३२॥
जन्मोन्तर हैं बहु दुख भारे । सब जन हेरे जाहि न टारे ।
शक्ति हीन अति बालक होवे । बहु प्रकार दुःख तिहिं जोवे ॥१३३॥
खाट विषे माता तिहिं डारे । गृहकृत करे न ताहि चितारे ।
रुदन करे बहु लरका जबहीं । आवे जननी ताकी तबहीं ॥१३४॥
वाके मत्कुण काटे अङ्गा । मात कहे स्तन पीयुसु अङ्गा ।
किहिविधि करे सो स्तनको पान । मत्कुण डसे भुजङ्ग समान ॥१३५॥
जब लरका वह भूखो रोवे । तब माता तिहिं आनन जोवे ।
देय प्यार न स्तनहि पियावे । ताते लरका बहु दुख पावे ॥१३६॥
या विधि के दुख अहे अनंता । गनों कहाँलों आहि न अंता ।
तरुण अवस्था मों सुख नाहीं । बहु विधि दुख हैं ताके माहीं ॥१३७॥

किहि विधि की पइये है ? तहां कहे—"वायु" इति, इहां आकाश भी जान लेना अर्थात् देव भाव से गिरकर आकाश कूं, आकाश से वायु कूं, वायु से धूम कूं, धूम से बादल कूं, बादल से, वर्षा जल, जन्मन को जोई नाम वर्षा के जल भाव को प्राप्त होवे है ॥ १३० ॥

वर्षा जल से यव और धान जन्म को पावे है सोई कहे "यव" इति ॥ १३१ ॥

प्रसूति वायु ते—गर्भ से बाहर निकासन वाले पवन ते, योनि विवरते—भग रूप छिद्र ते ॥ १३२ ॥

जन्मोत्तर—जन्म पीछे ॥ १३३-१३४ ॥

मत्कुण—कटुवे । अङ्गा—हे पुत्र ॥ १३५ ॥

आनन जोवे नाम मुख मात्र देखे है ॥ १३६-१३७ ॥

तरुण अवस्था में बहु क्रोध । जाते होय धर्म को रोध ।
आप जले औरन को मारे । ब्राह्मण हूँ के प्राण निकारे ॥१३८॥
क्रोध भर्‍यो बहु पाप कमावे । ईहाँ दुख आगे पुन पावे ।
तरुण अवस्था में बहु लोभ । धनको होय, करे चित क्षोभ ॥१३९॥
जाकर मन ते बहु दुख पावे । धन हित तेऊ कर्म कमावे ।
रक्षा खर्चन में दुख जेते । पूर्व कहे सकल मैं तेते ॥१४०॥
अबला द्यूतनमों मन लागे । कुलकी लज्जा सकल त्यागे ।
वित्त नाश याको हो जावे । जहँ तहँते सु अनादर पावे ॥१४१॥
शत्रु याको करे अपकार । ताते है दुख वारंवार ।
जे धनवंत जगत में अहे । ताके दुख या विधि के कहे ॥१३२॥
जे धनहीन जगत के माहीं । ताके दुख गनन मों नाहीं ।
घरमों नहिं कछु लरका खावे । बाहरते नहिं कछु धन पावे ॥१४३॥
मरणहु ते ताको दुख भारे । एक दरिद्र माहिं विचारे ।
वृद्ध अवस्था या सब जोई । बहु दुख का आलय है सोई ॥१४४॥
सुत अरु नारि तहाँ मरिजावे । ताते वृद्ध दुःख को पावे ।
औरन के घर भीतर रहे । मृतक संबंधी को दुख दहे ॥१४५॥
वह याको कछु कृत्य बतावे । वृद्ध अवस्था मों भुल जावे ।
ते मुखते यों बोले बैना । मानो बाण धरे उर पैना ॥१४६॥

रोध—रुकना अर्थात् धर्म का दूर होना ॥ १३८ ॥

"धन को होय" पूर्व के संग (अन्वय कर लेना), करे चित क्षोभ—करता है चित्त में विक्षेप ॥ १३९-१४०-१४१ ॥

अपकार—अनादर, ताते—अपकार ते ॥ १४२-१४३ ॥

विचारे कहिये विचार किये एक कंगालता में कंगाल को मरने से भी बहुत दुख होवे है ॥ १४४ ॥

मृतक सम्बन्धी को—मरे हुए सम्बन्धियों का ॥ १४५ ॥

पैना—तीक्ष्ण ॥ १४६ ॥

अपने सकल कुटुम्बी खाय । हमरे घर में बैठा आय ।
और कृत्य मों नहिं अधिकार । रक्षा करो हमारे द्वार ॥१४७॥
दृग की ज्योति लीन हो जावे । सम्यक् कोई दृष्टि न आवे ।
सरमा पैठ करे दधि पान । ताते करे सो बहु अपमान ॥१४८॥
खाने को बैठे जड़ जबही । अलं न मुखते भाखे कबही ।
द्वारे पर जड़ पाद पसारे । शयन करै सब काज बिगारे ॥१४९॥
मुखते दंत निकर झरि जावे । अन्न अदन ते बहु दुख पावे ।
या विधि नाना दुख को पावै । बहुरो यमकिंकर चढ़ि आवै ॥१५०॥
मरण विषे दुख होवे भारी । कोय न सके सु ताहि निवारी ।
सर्व अङ्गसों प्राण निकारे । आन सकल हृदयमहिं डारे ॥१५१॥
ताते तिन दुख होवे ऐसो । सहस्र अठूहें काटैं जैसो ।
धनी अधनी होवे कोई । सकल समान सु यह दुख होई ॥१५२॥
निर्धन नर तन डार्‍यो जहाँ । श्वान शृगाल खाय पुन तहाँ ।
धनी पुरुषको मरणा जैसो । भाखौं प्रकट सुनो अब तैसो ॥१५३॥
जिनसों करे सो बहुत स्नेह । तिनकी गति सुनियो अब एह ।
जा बिन दारा अन्न न खावे । बहुत भाँति दर्शन अकुलावे ॥१५४॥
ता बिन बैठ सौंधके माहीं । मीठो ग्रास गहे मुखमाहीं ।
जाको प्रथम सेजके माहीं । शुभ्र फूल परे जामाहीं ॥१५५॥

तिनके वैन कहे "अपने" इति, अधिकार—लाइकी, रक्षा करो—राखी करो ॥ १४७ ॥

सरमा—कुत्ती, पैठ-भीतर जाकर, ताते-सरमा के दधिपान से ॥१४८॥

अपमान ही दिखावे "खाने को" इति अलम्—तृप्त हुआ ॥ १४९ ॥

निकर—सम्पूर्ण, अदन ते—खाने ते ॥ १५०-१५१ ॥

यह दुख—मरण का दुख ॥ १५२ ॥

शृगाल—गीदड़ ॥ १५३ ॥

दारा—स्त्री ॥ १५४ ॥

अति शीतल में शयन करावे। वाको तप्त अग्नि में पावे।
अति कोमल जाके कर हइये। बहुत सुगंध जाहिमें पइये ॥१५६॥
ऐसी नारी या घरमाहीं। करे स्पर्श डरे उरमाहीं।
तीक्ष्ण काष्ट को ले करमाहीं। ताको ठोरे मरहट माहीं ॥१५७॥
हय, रथ, गज, ऊपर बैठावे। शिविका में जाको लै जावे।
बंदीजन बहुत स्तुति करैं। उपवन को संमुख अनुसरैं ॥१५८।
ताको डार काष्ठ के माहीं। लेजावे मरहठ के माहीं।
बांधव सकल धाँह ही मारे। निज नयनहुते जलको डारें ॥१५९॥
मंगल बाजे जाके संगा। गीत नृत्य होवे बहु रंगा।
या विधि जोई करे पयान। सो अब जावे बैठ विमान ॥१६०॥
नारी रुदन करे ता संगा। धूर लपेटे जाके अंगा।
जाके आगे दधि लेजावे। लाजा की वर्षा वर्षावे ॥१६१॥
ताके आगे ते अब जाहीं। धूम सहित पावक कर माहीं।
निज सुत निज नारीको जोई। पूर्व क्षण नहिं त्यागे सोई ॥१६२॥

सौंध—महल, शुभ्र-शुक्ल ॥ १५५-१५६ ॥

ऐसी नारी—कोमल कर गन्धादिकों लेप वाली, करे स्पर्श नाम वह नारी स्पर्श करती हुई वा ऐसे समाज वाले को स्पर्श करते हुए और लोक, मरहट—शमशान में ॥ १५७ ॥

शिविका—पालकी, बन्दीजन—भाट, उपवन को—बगीचे को, संमुख अनुसरैं-सामने जाते अर्थात् बगीचे आदिकों के सैर वास्ते गजादिकों पर जिसको बैठावते थे ॥ १५८ ॥

ताको आगे कहने वाला हाल करे हैं, हाल कहे "ताको" इति ॥१५९॥

मंगल बाजे—नगारे आदिक वाजे, पयान—बाहर जाना ॥ १६० ॥

लाजा—चावल की खील ॥ १६१ ॥

"पूर्व क्षण नहि त्यागे" पूर्व के संग (अन्वय कर लेना) पूर्व कहिये जीवन समय में जो अपने स्त्री पुत्रों को क्षण मात्र नहीं त्यागता था ॥ १६२ ॥

सकले त्याग चले यों जावें । फिर कै बात न एक बतावें ।
जाके पाद कमल ते गिरे । लै जलबिंदु शीश पै धरे ॥१६३॥
ता स्पर्श ते करे स्नान । बोले प्रेत होय भय मान ।
या विधि सकल संबंधीत्याग्यो । यमदूतन के आगे लाग्यो ॥१६४॥
ते गहि नरक विषे लै जावै । जामों जीव बहुत दुख पावे ।
जो ईहाँ पर धनको हरै । परनारी गहि अपनी करै ॥१६५॥
कालकुपाश नरकमों जाय । यमदूतन ते पीड़ा पाय ।
खान पान को है कछु नाहीं । ताड़े दूत सु क्षण क्षण माहीं ॥१६६॥
मूर्छा होय परे धरमाहीं । हाय हाय बोले मुखमाहीं ।
जो ईहाँ जीवन को मारे । ते 'रुरू' हो ताहि प्रहारे ॥१६७॥
रौरव नरक विषे जन जावे । 'रुरू' जीव तिहि कटकट खावे ।
सर्पहुँते सो भयानक अहे । नयननसों पावक सम दहे ॥१६८॥
दंड करे अदंडन माहीं । नरक परे शूकरमुख माहीं ।
राजा राजपुरुष हो कोई । तहिं डार्‍यो जमदूतन सोई ॥१६९॥
मर्दन सकल अंग हो जावे । इक्षुयष्टी की गति पावे ।
आर्तस्वर कर करे पुकार । अतिबल पीड़े बारंबार ॥१७०॥
अगम्य नारिको सेवे जोई । चहूँ वर्ण में होवे कोई ।
अथवा नारि रमे नरमाहीं । नरक परे ते संशय नाहीं ॥१७१॥
लोहेकी वह नारि बनावे पावकसों यमकिंकर तावे ।
नर के गलमें आन मिलावे । जल जल अंग धरति में जावे ॥१७२॥

ता ऐसे प्रेम वाले को वह सभी त्यागकर जावे है, जो बदल कर एक बात भी नहीं कहते सोई कहे "सकले" इति ॥ १६३ ॥

बोले प्रेत होय भय मान—कहते हैं प्रेत है औ होते हैं भय-युक्त ॥ १६४-१६५-१६६ ॥

ते—मारे हुये ॥ १६७-१६८-१६९ ॥

इक्षुयंष्टी—ईख की छड़ी, अतिवल-बहुतवल से यमदूत ॥ १७० ॥

योंही लोहसों पुरुष बनावे। दुष्टनारि गलभीतर लावे।
हाहा मुखते करे पुकार। चाबुक मारे वारंवार ॥१७३॥
जो नर सब अभिगामी होई। योग्य अयोग्य न हेरे कोई।
ताको यमकिंकर गहि लेवे। नरक विषे नाना दुख देवे ॥१७४॥
'शालमली' इक नरकहि अहे। वज्र समान तिहँ कंकट कहे।
ताके विषे सु वाको डारे। कर्षण करे करण सों मारे ॥१७५॥
पूजक है पित या भवमाहीं। विप्र वेदमें संशय नाहीं।
इनसों द्रोह करे नर जोई। "कालसूत्र"में जावे सोई ॥१७६॥
दश हजार योजन विस्तार। चहूँ ओर ते मंडलाकार।
ताम्रमयी अति तातो अहे। नीचे ते पावक तिहँ दहे ॥१७७॥
ऊपर ते रवि करे प्रताप। तामें नर बहु लहे संताप।
क्षुधा पिपासा भीतर दहे। हाय हाय मुख ते तहँ कहे ॥१७८॥
कबहूँ दौर चले ता माहीं। कबहूँ गिर पावे धरमाहीं।
कबहूँ मुष्टि मीट कर बहे। इत उत तिहिं ते पावक दहे ॥१७९॥
मैं ही नाहिं कही यह बाता। 'वेदव्यास' भाखी विख्याता।
पंचमस्कंध भागवत माहीं। भाखी प्रकट शंक कछु नाहीं ॥१८०॥
इत्यादिक दुख अहे अपार। को कवि गने लहे तिहँ पार।
घटीयंत्र जो वारंवार। भ्रमे जीव दुख लहे अपार ॥१८१॥

अगम्य नारी—गमनायोग्य गुरुपत्नीआदिक ॥ १७१-१७२-१७३ ॥
अभिगामी का अर्थ कहे—"योग्य" इति ॥ १७४ ॥
कर्षण करे—खैंचते हैं, करण सों मारे—चाबुक सो मारते हैं ॥१७५॥
पित—पितर ॥ १७६ ॥
मंडलाकार—गोलाकार, ताम्रमयी—तांबा रूप ॥ १७७ ॥
प्रताप—तेज-धूप ॥ १७८-१७९ ॥
उक्त बातों में स्वकपोलकल्पना वारण हेतु कहे "वेदव्यास" इति, विख्याता—प्रकट ॥ १८० ॥
घटीयंत्र—रहट ॥ १८१ ॥

कोइक होवे पूर्ण भाग । या भव ते गहि दृढ़ वैराग ।
पूर्वले उर दोष विचारे । सर्व विषय ते मन को टारे ॥१८२॥
यह सब विश्व मोह दुखदाई । कबहुँ न पइये सुखकी राई ।
'भारतखण्ड' जन्मको पायो । धिक् मोको विषयन मन लायो ॥१८३॥
'भारतखण्ड' जन्म जो पावे । कर उपाय भवको तरि जावे ।
'भारतखण्ड' जन्म है जोई । सुरसमूह वांछे ते सोई ॥१८४॥
ताते मैं सो करौं उपाय । जाते दुःख सकल मिट जाय ।
यह सब जगत कछू थिरनाहीं । नाश होय क्षण क्षणके माहीं ॥१८५॥
नित्यवस्तु को औरे अहे । जाको वेद निकर सब कहे ।
याविधि करे विवेकहि जोई । ताको 'षट्संपद' पुन होई ॥१८६॥
शम दम श्रद्धा पुनि समाधान । उपरति छठी तितिक्षा जान ।
यह 'षट्संपद' कही उदार । याहि प्रसंग हरे भवभार ॥१८७॥

अध्यास से प्राप्त भये अनर्थ कहकर तिनके दिखावने का फल कहे "कोइक" इति, संसार ते दृढ वैराग को कैसे गहे ? तहां कहे "पूर्वले" इति, पूर्वले नाम "यज्ञादिक जे करे" इहां से लेकर कहे ॥ १८२ ॥

पूर्व विस्तार से कही कथा का फलित रूप विषयों ते मन के टारन का दोष दर्शन रूप प्रकार कहे "यह सब" इति, राई—लेश ॥ १८३ ॥

उपाय—सत्संगादि रूप सोई नाम भारतखंडजन्म, "इस देही को सिमरें देव" इत्यादि वाक्यन से ॥ १८४ ॥

पदार्थों में अतिशयता, क्षीणता, अनित्यता रूप दोष देखकर वैराग्य प्राप्ति वाला पुरुष ऐसे विवेक रूप उपाय करे सोई कहे "यह" इति, यह नाम प्रत्यक्ष सिद्ध घटादि जगत् ॥ १८५ ॥

वेद निकर सब कहे नाम जिसको वेद प्रमाण ते सभो आचार्य प्रतिपादन करे हैं। या विधि करे विवेकहिं जोई कहिये "यह सब जगत्" इत्यादि कही रीति से जो पुरुष नित्यानित्यआत्मानात्मा का क्षीरनीर विभाजक हंसवत् पृथक् भाव करे तिसको तीसरे साधन की प्राप्ति होवे है सोई कहे "ताको" इति ॥ १८६ ॥

षटों के नाम कहे "शम" इति, शम नाम आन्तर विषयों ते मन

बहुर मुमुक्षा याको होवे । ता बिन और वासना खोवे ।
इन चारों साधनको पावे । तब सतगुरु की शरणहि जावे ।।१८८।।
समिधाकर पद करे प्रणाम । निज कल्याण लखे तिहँ धाम ।
मानव-बुद्धि न गुरुमें धरे । मन अरु तनकर ता अनुसरे ।।१८९।।

के रोकने का है। दम नाम वाह्य विषयों ते इन्द्रियों के रोकने का है। उपरति नाम दोष दर्शन पूर्वक सम्पूर्ण कर्म तत्साधनों के त्याग का है अर्थात् संन्यास का है। क्षुधा तृषा शीतातपादिकों की सहन शीलता को तितिक्षा कहे हैं, श्रद्धा-वेद गुरु के वाक्य सच्चे हैं ऐसे निश्चय का नाम है। समाधान—चित्त में विक्षेप रूप दूर करने का नाम है। विक्षेप नाम चित्त चञ्चलता का है सो भी मल दोषवत् जिज्ञासु को निराकरणीय है, "मल" पाप है प्रसंग सम्बन्ध से ।। १८७ ।।

बहुर—तिन साधनों पीछे, मुमुक्षा नाम अज्ञान तत्कार्यनिवृत्ति सहित परमानन्द प्राप्ति (रूप मोक्ष) की इच्छा, तिन साधन वाले को होवे है तब ताबिन-नाम तिस मोक्ष को इच्छा विना और अर्थादिकों की इच्छा सम्पूर्ण हृदय से दूर करे, यद्यपि नित्यानित्य विवेकानन्तर 'अनित्य वस्तु' में अतिशयिताआदिदोषदर्शन से ताके त्यागरूप वैराग्य का सम्भव है याते या ग्रन्थ में प्रथम वैराग्य का कथन कैसे ? तथापि काहू विलक्षण अदृष्टवशते आपात विवेक से विषयों में अतिशयता-आदिदोषदर्शनजन्य वैराग्य पीछे दृढ़ नित्यानित्य विवेक का सम्यक् सम्भव है याते वैराग्य से पूर्व आपात विवेक उत्तर दृढ़ विवेक सद्भाव से पीछे—विवेक कहने में विरोध नहीं, इस रीति से सम्पूर्ण-निष्काम धर्मों के फलभूत इनसाधनचतुष्टयों को प्राप्त होकर ज्ञान के प्रतिबन्धकरूप संशयविपर्यय के निवर्तकश्रवणादिकों के हेतुभूत उपदेश ग्रहणहेतु सद्गुरु की शरण जावे सोई कहे "इन" इति ।। १८८ ।।

स्मृति में "राजा गुरु देवता पै रिक्तहस्तगमन का निषेध सुनने से" "समित्पाणिः" इत्यादि श्रुतिसिद्ध भेंटा कहे "समिधा" इति, समिधाकर—दन्तधावन रखकर "जिसकी ईश्वर में परमभक्ति है पुनः ईश्वर समान गुरु में है तिसको वेदान्त प्रतिपाद्य वस्तु का ज्ञान होवे है" इत्यादि श्रुति से गुरु में ईश्वर वुद्धि करे यह कहे "मानव" इति, मन अरु तन कर ता अनुसरे—मन तन औ इनके सहचार ते गृहक्षेत्रादिरूपधन भी अर्पण करे ।। १८९ ।।

निशिदिन करे गुरुनकी सेवा। मैं शरणागत तुमरी देवा।
तीनों ताप अर्क सम अहे। मे उर अंतरको अति दहे ॥१९०॥
देव दयानिधि परम विशाल। मेरे कठिन हरो उरशाल।
मैं हौं कौन जिने दुख पायों। या भव भीतर क्यों कर आयों ॥१९१॥
तब गुरु यों तिहि कर उपदेश। नष्ट होय सब ताहि कलेश।
अपरिच्छिन्न परिपूर्ण जोई। घनानन्द ता सम नहिं कोई ॥१९२॥
'तत्त्वमसि' संशय कछु नाहीं। आप भुलाय पर्‍यो भवमाहीं।
याही ते तुहिं तीनहुँ ताप। जाने आप मिटे संताप ॥१९३॥

तन अर्पण कहे "निशि" इति, एवं करता हुआ प्रसन्न हुए गुरों पास प्रार्थना करे "मैं" इति, तीनों ताप—आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक, उर शाल—अध्यात्मादि ताप ॥ १९० ॥

इस रीति से प्रार्थना पूर्वक दुख निवेदन कर जिसको दुख है वह भी मैं कौन हूँ ? और किस निमित्त से संसार में आया हूँ ? यह प्रश्न करे "मैं हौं" इति ॥ १९१ ॥

तटस्थ प्रति कहे सिद्धन्ती "तब" इति, तब नाम एवं साधन सम्पत्ति पूर्वक प्रार्थना काल में, गुरु तिसको वक्ष्यमाण रीति से उपदेश करे है जिससे शिष्य के सम्पूर्ण क्लेश नाश होवे हैं "सो ब्रह्म तूं है" ऐसे महा वाक्यन के उपदेशार्थ प्रथम अर्थ ते अवान्तर वाक्य प्रतिपाद्य स्वरूप कहे "अपरिच्छिन्न" इति, विभु होने ते काहू देश में न होने रूप अत्यन्ता भाव प्रतियोगिता रूप देश भेद ते, पुनः नित्य होने ते जन्म से पूर्व नाश से उत्तर होने वाले प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव के प्रतियोगीपने रूप काल भेद से, पुनः सब का अपना आप होने ते भेद प्रतियोगिता रूप वस्तु भेद से रहित, पुनः परिपूर्ण—सर्व ओर ते व्यापक जो घनानन्द नाम एक रस आनन्द रूप परिच्छिन्नता आदि धर्मों से विलक्षण, अन्य अनात्म वस्तु तिसके तुल्य कोई नहीं ॥ १९२ ॥

तत्—सो, त्वं—तूं, असि—है, सन्देह काहू रीति का किञ्चित् नहीं, ऐसे "मैं हौं कौन का" उपदेश से उत्तर देकर "क्यों कर आयो" का उत्तर देवे "आप" इति, आप भुलाय नाम अपरिच्छिन्नआदि रूप के अज्ञान कर संसार में पर्‍यो नाम आया, याही ते नाम अपने अज्ञान

सीतापति अरिगण सब हारी। यही बखान्यो जन सुखकारी।
'रामगीता'में प्रकट बतायो। अज्ञान एक भवमूलदिखायो ॥१९४॥
ताको नाश ज्ञानते होई नवमें श्लोक भाख्यो सोई।
ताते ब्रह्म आपको जान। सकल करो तुम बंधन हान ॥१९५॥

रूप निमित्त से संसार में परने ते अज्ञान कल्पित रज्जु सर्प की ज्ञान से निवृत्ति देखने ते, ज्ञान से दुख दूर होवेंगे यह कहे "जाने" इति, सन्ताप-दुख ॥ १९३ ॥

न जानने से संसार औ जानने से ताकी निवृत्ति में सम्मति कहे "सीतापति" इति ॥ १९४ ॥

ताते—ज्ञान से नाश कहने ते, इहां यह पूर्वोक्त प्रकरण का भाव है=वेद में अपने-अपने वर्णाश्रमों के सम्पूर्ण निष्काम धर्मों को आत्म ज्ञान की वा ज्ञानेच्छा की हेतुता कही है और सम्पूर्ण धर्मों में परम धर्म भक्ति है, याते परमेश्वर भक्ति रूप निष्काम धर्म सहित यज्ञादिक निष्काम धर्मों से चित्त शुद्धि होवे है, शुद्ध चित्त में कही रीति से वैराग्य होवे है, तासे विवेक, ताते षट्सम्पदा औ मुमुक्षा होवे है, मुमुक्षा से मोक्ष कामी का श्रोत्रिय, ब्रह्म निष्ठ गुरु के समीप गमन होवे है, जाकर सामित्पाणि हुआ तनादि अर्पण करे है ऐसे करने से प्रसन्न हुए गुरु से महावाक्य रूप उपदेश का ग्रहण होवे है, ग्रहण किये उपदेश पीछे "खानपान" इत्यादि वक्ष्यमाण रीति से ब्रह्म क्षुधादि रहित में सहित ऐसे परस्पर विरुद्ध धर्मों से प्रत्यक्ष प्रमाण ते भेद के उपस्थित हुए और वाक्य से अभेद के हुए वेद अभेद प्रतिपादक है वा नहीं ? इत्यादि प्रमाण गत संशय, पुनः वाक्य प्रतिपाद्य अभेद सत्य है वा नहीं ? इत्यादि प्रमेय गत संशय, पुनः "अहं" प्रतीतिवाले में आत्मता निर्विवाद ते "देहोऽहं" इत्यादि विपर्यय होवे है, वह ज्ञान के प्रतिबन्धक है याते तिनकी निवृत्ति हेतु श्रवणादिक होवे हैं, श्रवण से प्रमाण गत संशय दूर होवे है, मनन से प्रमेय गत संशय दूर होवे है, निदिध्यासन से विपर्यय दूर होवे है। श्रवण नाम सुनने मात्र का नहीं, किन्तु "साक्षात् परम्परा कर सम्पूर्ण वेदान्त वाक्य अद्वैत में तात्पर्य वाले हैं" ऐसे निश्चय का नाम है, सम्पूर्ण उत्तर मीमांसा का यामें उपयोग है, मनन नाम ब्रह्म के चिन्तन का है, गौतमादिप्रणीतशास्त्र का सारग्राह्यता न्याय से

पूर्वपक्षी—

खानपान तामों कछु नाहीं । जातिवर्ण नहिं ताके माहीं ।
अपरिच्छिन्न है स्वयं प्रकाश । नित्य मुक्त सब बंधन नाश ।।१९६।।
सच्चिदानन्द अहै घनरूप । ब्रह्म अद्वितीय अनंत स्वरूप ।
क्षुधा पिपासा मोको भारी । अति उत्तम है जाति हमारी ।।१९७।।

यामें उपयोग है, निदिध्यासन नाम "अनात्माकार वृत्ति के व्यवधान रहित आत्माकार वृत्ति की स्थिति" का है, यामें सम्पूर्ण योग शास्त्र का उपयोग है, एवं रूप श्रवणादिकों से संशयादि दोष दूर हुआ प्रथम अध्याय में कही रीति से सांख्यादिमत निराकरण पूर्वक तटस्थ, स्वरूप लक्षण से तत् पद के पुनः वक्ष्यमाण चार्वाकादिमत निराकरण रीति से अवान्तर वाक्यन ते "त्वं" पद के शोधन युक्त हुए महावाक्य ते "संसर्गता विशेषणता शून्य अखण्ड ब्रह्म का" निर्विकल्पक साक्षात्कार होवे है। "संसर्गता विशेषणता हीन वस्तु के प्रत्यक्ष का" नाम निर्विकल्पक साक्षात्कार हैं, ता साक्षात्कार से अज्ञान का नाश होवे है अज्ञान का नाश हुए आवरण दूर होने ते तत्कार्य निखिलसंशय विपर्यय दूर होवे हैं तैसे संचित कर्म दूर होवे हैं, क्रियमाण होवे नहीं, परन्तु प्रारब्ध से वासना रहे है, ताकी निवृत्ति उपाय से होवे है तथा उपाय से मनोनाश होवे है याते तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय, वाला जीवन्मुक्त होवे है। शरीर पात हुए विदेह होवे है यह समग्र ग्रन्थ का रहस्य है इत्यलम् ।। १९५ ।।

"तत्वमसि संशय कछु नाहीं" यह गुरु मुख से निखिल संशयादिकों का अभाव श्रवण कर वाक्य अभेद कहे है औ इन विरुद्ध धर्मों से जल अग्निवत् मेरा ब्रह्म का अभेद सम्भवे नहीं, याते वाक्य अभेद प्रतिपादक है वा नहीं इत्यादि प्रमाणादिकों में संशयादि निवेदन हेतु विरुद्ध धर्म दिखावे—"खान" इति, स्वयं प्रकाश-स्वतन्त्र ज्ञान स्वरूप अर्थात् प्रकाशान्तर निरपेक्ष प्रकाश स्वरूप, नित्य मुक्त का अर्थ कहे "सब बन्धन नाश" इति, सर्वदा सम्पूर्ण रागादिजन्यकर्माधीन कर्तृत्वादिबन्ध के अभाव वाला है ।। १९६ ।।

ब्रह्म से विरुद्ध अपने कहे "क्षुधा" इति ।। १९७ ।।

ब्रह्मण वर्ण परिछिन्न स्वरूप । करण अधीन सो ज्ञान अनूप ।
राग रु द्वेष दोष मुहि अहे । में उर अंतरको अति दहे ॥१९८॥
कर्म अधीन बंध मुहि हइये । रूप विनाशी मेरो पइये ।
सुखी दुखी परिछिन्न स्वरूप । मेरो है सद्वितीय स्वरूप ॥१९९॥
ऐसो में निज रूप बतायो । 'तत्त्वमसि' प्रभु क्योंकर गायो ।
यह संशय मोको अति भारी । हे प्रभु ताको करो प्रहारी ॥२००॥

सिद्धान्ती—

क्षुधा पिपासा प्राणन माहीं । जाति वर्ण सब तनुके माहीं ।
असंग अद्वितीय स्वरूप तुम्हारो । नहिं परिछिन्न कदाचित् धारो।२०१।
वास्तव रूप तुम्हारो जोई । स्वयं प्रकाश पछानो सोई ।
करण अधीन ज्ञान मनमाहीं । सुख दुखसकल लख्योतिहँमाहीं॥२०२॥

स्वयं प्रकाशता का विरुद्ध कहे "करण" इति, करण अधीन सो ज्ञान अनूप कहिये चक्षुरादिक इन्द्रियों के परतन्त्र "अनुपम मेरे को ज्ञान होवे है" अर्थात् मेरा ज्ञान इन्द्रिय आदि प्रकाशान्तर सापेक्ष है औ घटादिकों के रूप रसादि गुणोवत् मेरे में वह जन्यगुण है औ ब्रह्म प्रकाशान्तर निरपेक्ष प्रकाश स्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप है, नित्यमुक्त का विरुद्ध धर्म कहे "राग" इति, निखिल कर्मों के मूलभूत रागादिक दोष मेरे में है वह सर्वदा मेरे हृदय के बीच को दाह करे है ॥ १९८ ॥

याते कर्म अधीन कहिये निखिल दुखों के कारण, देह के हेतु, जो रागादि दोष जन्य कर्म, तिनके अधीन मेरे को, ब्रह्म के अकर्तृत्वादि धर्म-विरुद्ध कर्तृत्वादि बन्ध है, सद् का विरुद्ध कहे "रूप" इति, सुखो दुखो यह आनन्द का औ परिच्छिन्न घनरूपता का विरोधी जान लेना, सद्वितोय स्वरूप कहिये—देशादि परिच्छेद रूप द्वैत वाला स्वरूप ॥ १९९ ॥

क्यों कर गायो नाम "तूं ब्रह्म है" ऐसे आपने कैसे कह्या अर्थात् उक्त रीति से धर्म विरोध से प्रमेय में संशय आदि सम्भव हुए निश्चय कर "तू ब्रह्म है" ऐसे कथन करना नहीं बने, निवृत्ति की प्रार्थना पूर्वक सन्देह समाप्ति करे "यह" इति ॥ २०० ॥

राग द्वेष मनके सब हइये । तोको दाह कहो क्यों पइये ।
देशकाल भेद यह नाहीं । वस्तु परिछेद न जाके माहीं ।।२०३।।
ऐसो रूप वेद जो कहे । 'तत्त्वमसि' क्यों संशय गहे ।

अब महावाक्यार्थमें शिष्यकी शंका :

पूर्वपक्षी—
वह सर्वज्ञ सकल का कर्ता । सब प्रतिपालक सबको हर्ता ।।२०४।।
मैं अल्पज्ञ न सबको कर्ता । नहिं प्रतिपालौं नहिं सब हर्ता ।
'तत्त्वमसि' प्रभु तोहि बतायो । सो मेरे मनमें नहिं आयो ।।२०५।।

गुरु उत्तर

सिद्धान्ती—
या शंकाको हरणी जोई । कहे लक्षणा पंडित सोई ।
तटस्थ—
यों प्रवृत्त भयो संवाद । तब आये परपंथी वाद ।।२०६।।
प्रथमे चार्वाक चलि आयो । तिन या विधिको वैन सुनायो ।

अब उक्त अर्थमें 'चार्वाक'की शंका पूर्वक "सिद्धान्ती" का उत्तर ।

पूर्वपक्षी—
गुरुको सेवन भाख्यो जोई । ज्ञान अर्थ निरर्थक सोई ।।२०७।।

जैसा रूप पूर्व कह्या वह तेरा नहीं किन्तु स्फटिक में रक्तावत् तेरे में औपाधिक भासे है याते असंग अद्वितीय का तेरा ब्रह्म से अभेद कथन निर्विवाद है यह कहे गुरु "क्षुधा" इति ।। २०१-२०२-२०३ ।।

और रीति से धर्मों का विरोध प्रकट करे "वह" इति ।।२०४-२०५।।

विरोध का परिहार लक्षणा वृत्तिसे होवे है, यह कहे सिद्धान्ती "या" इति, या शंका को कहिये धर्म विरोध से जल अग्निवत्, मेरा ब्रह्म से अभेद नहीं या आशंका को, तटस्थ कहे "यों" इति परपंथीं—विरोधी-वादी ।। २०६ ।।

तिनमें प्रथम कौन आया तहां कहे "प्रथमे" इति, चार्वाक के बैन का अनुवाद करे "गुरु को" इति "ज्ञान अर्थ" पूर्व के साथ मिलाकर, पूर्व जो चार साधनों को पाय कर आत्म ज्ञानार्थ गुरु का सेवन करे यह बात कही सो निरर्थक कहिये निष्प्रयोजन है ।। २०७ ।।

आत्म देह प्रकट यह हइये । नहिं संदेह किसीको पइये ।
प्रमाण प्रत्यक्ष एक ही हइये । भूत चतुष्टय तत्त्व सो पइये॥२०८॥
आकाश न होय कदे प्रत्यक्ष । याते ताहि न माने दक्ष ।
काम अर्थ पुरुषार्थ हइये मोक्ष मरण बिन और न पइये ॥२०९॥

निरर्थकता में आत्मज्ञान की सुलभता रूप हेतु कहे "आत्म" इति, आत्मा के असाधारण धर्म ज्ञानादिकों की "मैं ज्ञानवान्" "मैं सुखी हूँ" "देहोऽहम्" ऐसे देहमें उपलब्धि होने ते प्रत्यक्ष प्रमाण प्रसिद्ध देह ही आत्मा है, या में पण्डित से लेकर पामर पर्यन्तों को "मैं देह हूँ" वा नहीं ऐसा संशय नहीं होवे याते आत्मज्ञानको सेवा बिना ही सुलभ होने ते आत्मज्ञानार्थ गुरु का सेवन निष्फल है, यद्यपि पुष्प की लोहितता को लेकर स्फटिक में "लोहित स्फटिक" कथनवत् आत्मा के ज्ञान सुखादिक "अहन्ताको लेकर देह में "मैं ज्ञानवान्" मैं सुखी "दहोऽहम्" ऐसा कथन होवे है याते देह को आत्मता नहीं बने यह आशंका होवे है तथापि कुण्डगत दधि की मधुरता को लेकर "कुण्ड मधुर है" ऐसे कथन न देखने से पुन: पुष्प के वियोग काल में "स्फटिक लोहित नहीं" ऐसे बाध ज्ञानवत् इहाँ विद्वानों को भी "मैं देह नहीं" तथा "ज्ञानवान् सुखी नहीं" ऐसा बाध ज्ञान न देखने से देह भिन्न आत्मा की सिद्धि नहीं होगी, याते देह को आत्मा होने ते औ ताके ज्ञान को सुलभ होने ते गुरु सेवन निष्फल है, आत्मा, देह, भिन्न:; चिद्रुपत्वात्, इत्यादिक अनुमानों से देह भिन्न आत्मा सिद्ध भये ज्ञानार्थ गुरु सेवन सफल है ? यह आशंका कर अनुमानादिकों को अप्रमाणता सूचन करे "प्रमाण" इति, प्रमाण प्रत्यक्ष एक ही हइये नाम प्रमा का करण एक प्रत्यक्ष ही है, अनुमानादिक नहीं, याही ते, प्रमेय सिद्धि को प्रमाणाधीन होने से सांख्य के चौबीस २४, न्याय के सात ७, वेदान्त के दृग्दृश्य दो वत्, भवकर्ता तत्त्व हमारे मत में वायु से लेकर पृथिवी पर्यन्त चार ही हैं, काहू को प्रत्यक्ष न होने ते आकाश तत्त्व नहीं, किन्तु आवरणाभावरूप है सोई कहे "भूत" इति ॥ २०८ ॥

दक्ष नाम चतुर, पुरुषार्थ नाम पुरुषों की अभिलाषा के विषय का होवे है, ऐसे भोग धन दोऊ है, स्वरूप ते न होने से धर्म, औ मरणमात्र होने से मुक्ति नहीं, यह कहे "काम" इति. काम अर्थ नाम भोग, धन॥२०९॥

सिद्धान्ती--

ननु भव कर्ता ईश्वर अहे। चार पदार्थ कैसे कहे।

पूर्वपक्षी—

नहिंको कर्ता ईश्वर हइये। स्वतः परिणाम भूत जग पइये ॥२१०॥

भूमि विषे जो डारे बीजा। तामें कर्ता और न दूजा।

सिद्धान्ती—

स्वतः परिणाम भूत जे हइये। और न कर्ता ईश्वर पइये ॥२११॥

परलोक विषे फल देवे कोई। जो नहिं ईश्वर भव में होई।

पूर्वपक्षी—

परलोक कथा सब व्यर्थ पछानो। ताहि निमित्त न ईश्वर मानो॥२१२॥

क्रियाकर्ता सु द्रव्य विनाश। ताते जे है फलहि प्रकाश।

दावा अग्नि दहे द्रुम जेई। फल उत्तम पावै अब तेई ॥२१३॥

जड तृणादिकों का स्वतः संघात न देखने से जडों का मिलापकर्ता चेतन अवश्य मान यह सिद्धान्ती पञ्चम तत्त्व मनावे "ननु" इति, भूमि में गेरे बीज का स्वतः अंकुररूप संघात देखने से, प्रमाणहीन पञ्चम का अंगीकार नहीं, यह परिहार करे "नहि" इति ॥ २१० ॥

सेवा अनुसार नौकरीदाता राजावत्, यज्ञादि क्रिया का फल-दाता ईश्वर अवश्य मानना यह पुनः आशंका करे "स्वतः" इति ॥ २११ ॥

ईश्वर साधक परलोक ही नहीं माने यह परिहार करे "परलोक" इति ॥ २१२ ॥

व्यर्थता स्पष्ट करे "क्रिया" इति, क्रियाकर्ता नाम कर्मकर्ता पुरुष, जो द्रव्य विनाश नाम धन का नाश करे है, ताते नाम तिस नाश किये धन से भी जेकर फल की प्रकटता होवे, तब दावा अग्नि दहे द्रुम जेई कहिये जो दावाग्नि से वृक्ष दग्ध हुए हैं वह भी अब उत्तम फल को पावे है औ पावे नहीं, याते फल प्रदाता ईश्वर पञ्चम पदार्थ कोई नहीं, किन्तु भली प्रकार चार प्राप्त होवे हैं ॥ २१३ ॥

ताते ईश्वर कोई न हइये । चार पदार्थ नीके पइये ।

सिद्धान्ती—

ऐसे मंद सिद्धांत उचारे । कोविद ताको दूर निवारे ॥२१४॥

देह अनात्म आतम नाहीं । 'दृश्यत्व' जड़त्व' हेतु तामाहीं ।

'रूपत्व' 'नाश्यत्व' हेतु पछान । 'भौतिकत्व' ते घट समजान ॥२१५॥

पूर्वपक्षी—

चूना कत्थ मिले तांबूल । ते ज्यों है लालीका मूल ।

देहाकार मिले ते जबही । चेतनता भूतनमें तबही ॥२१६॥

चेतन आत्म यों तन होई । जड़त्व हेतु मानो नहिं कोई ।

सिद्धान्ती—

देह विषे जड़त्व दिखावों । तेरे सकल कुतर्क मिटावों ॥२१७॥

मूर्च्छा पुनि मरणे के माहीं । देह परी देखे घर माहीं ।

सोई कहे "ताते" इति, ताते—दग्ध किये द्रव्य को फल का हेतु न होने ते, वक्ष्यमाण "शीशपाद" इत्यादिक चित्त में धार कर अनुमान से देह को आत्मा के परिहार हेतु सिद्धान्ती कहे "ऐसे" इति ॥ २१४ ॥

हेतु कहे—"दृश्यत्व" इति, दृश्यत्व—दृश्यपना, सो पुनः फल व्याप्यता वृत्तिव्याप्यता भेद से दो प्रकार का होवे है तिनमें वृत्तिव्याप्यतारूप दृश्यत्व ग्रहण करे अखण्डाकारवृत्ति का विषय होने ते आत्मा को भी अनात्मा का प्रसंग होवेगा, याते द्वितीय लेना (फल व्याप्यतारूप लेना), रूपत्व—रूप, नाश्यत्व—नाश, भौतिकत्व—भूत कार्यत्व, "देहः अनात्मा भवितुं योग्यः, दृश्यत्वात्, घटवत्" ऐसे पांचों अनुमान कर लेनें ॥ २१५ ॥

जडत्व से भिन्न, चारों हेतु वाली वस्तु को अनात्मा ते हमारा विवाद है, औ जड घटादिकों को अनात्मता हम भी माने हैं याते अन्याकार हुए भूतों में जडता की उपलब्धि भये भी देहाकार भयो में न उपलब्धि होने ते तुम्हारा जडत्व हेतु स्वरूपासिद्ध है, याते ताते देह को अनात्मता नहीं सिद्ध होवेगी या अभिप्राय वाला चार्वाक कहे "चूना" इति ॥ २१६ ॥

जड़त्व हेतु मानो नहिं कोई कहिये कोई वादी भी जडत्व हेतु मत मानो, मूर्छा मरण में जडता को देह में अनुभव सिद्ध होने ते जडत्व हेतु

नहिं चेतनता तामें पइये । सो आत्म कहु कैसे हइये ॥२१८॥
चूना कत्थ पान ते जेई । चेतन विन मिलते नहिं तेई ।
भूत कहो चेतन विन कैसे । मिले दृष्टांत नहीं को तैसे ॥२१९॥
मेलन करता चेतन जोई । पंचम एक पदार्थ सोई ।
ताते देह न आत्म हइये । आत्म चेतन औरे पइये ॥२२०॥

पूर्वपक्षी—

देह विना जे आत्म होई । घटवत् देखे ताको कोई ।
नहिं देखे ताते वह नाहीं । ताको जन माने अब काहीं ॥२२१॥
मैं छोटा मैं दीर्घ बाल । मैं बूढ़ा सित मेरे बाल ।
वर्णाश्रम सब तन में धरे जात कर्म सब तामें करे ॥२२२॥

स्वरूपासिद्ध नहीं याते तासे अनात्मा सिद्ध होवे है यह कहे "देह" इति ॥ २१७ ॥

कहु कैसे हइये नाम कहो किस प्रकार है स्वरूपभूत चेतनता के अभाव ते काहू रीति से नहीं यह भाव है ॥ २१८ ॥

दृष्टान्त की असिद्धि कहे "चूना" इति, "मिले" पूर्व के साथ (सम्बन्ध कर लेना) दृष्टान्त नहीं को तैसे नाम तैसा दृष्टान्त कोई नहीं यासे चेतन से बिना भूतों का मिलाप सिद्ध होवे अर्थात् वैसे दृष्टान्त की असिद्धि है ॥ २१९ ॥

ताते यह अवश्य मान सोई कहे "मेलन" इति, ताते नाम कहे दोषों ते मेलनकर्ता पंचम सिद्ध होने ते ॥ २२० ॥

"या ग्राम में जाना नहीं, ताका मार्ग क्या पूछना", या न्याय ते अनुमानादिक न मानने से हमको तिनके हेतुओं के विचार से प्रयोजन क्या ? या अभिप्राय से पुनः प्रत्यक्ष को लेकर आशंका करे "देह" इति, देह विना—देह भिन्न, ताको जन माने अब काही कहिये न होने ते पुरुष ताको किस वास्ते माने ॥ २२१ ॥

किञ्च "अहम्" ज्ञान के विषय में, आत्मता का काहू मत में विवाद नहीं, औ अहम् प्रतीति "मैं छोटा" इत्यादि रीति से देह में होवे है, याते देह में देहातिरिक्त और आत्मा कोई नहीं, किन्तु देह ही आत्मा है यह कहे "मैं" इति, सित—धवले, वर्णाश्रम सब तन में धरे कहिये

चिरंजीव यह देह अशीस । देह विषे नहिं और प्रथीस ।
अहं प्रतीति विषय निज आत्म । नहिं ताको जन कहे अनात्म॥२२३॥
अहं प्रतीति देह में होई । नहिं जन भीतर संशय कोई।
याते देह आत्म इक अहे ।
तटस्थ—**ऐसे चार्वाक पुन कहे ॥२२४॥**

सिद्धान्ती—
आत्म रूप हीन वह हइये । घटसम दृश्य न ताते पइये ।
मेरो तन छोटो अति हइये । तेरो तन दीर्घ अति पइये ॥२२५॥

ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रम औ तिनके सम्बन्ध से होने वाले वेद व्रत आदि रूप अनेक संस्कार सब शरीर में ही धारन करे हैं तथा जातकर्म सब तामें करे कहिये गर्भाधान से लेकर चौंतालिस संस्कारों में "जातकर्मरूप" संस्कार सम्पूर्ण लोक देह में करे हैं, शरीर के जन्म के काल के उत्सव को जातकर्म कहे हैं ॥ २२२ ॥

याते कहो बातों से देह विषे नहिं और प्रथीस कहिये देह में देह भिन्न स्वामी कोई नहीं, किन्तु देह ही आत्मा है, चौपाई का पाठ विगड़ने के भय से "पृथक् ईश" के स्थान "प्रथीस" कथन है। अहं ज्ञान के विषय में आत्मता का अविवाद कहे "अहम्" इति, अहम् प्रतीति विषय नाम "अहं" ज्ञान का विषय, निजात्म कहिये अपना आप होवे है ताको कोई पुरुष अनात्मा नहीं कहता ॥ २२३ ॥

औ अहम् प्रतीति देह में होवे है याका, नहिं जन भीतर संशय कोई कहिये पुरुषों में सन्देह कोई नहीं याते संशय रहित अहं प्रतीति का विषय होने ते देह ही एक आत्मा है ॥ २२४ ॥

देह भिन्न जेकर आत्मा होवे तब घटवत् प्रत्यक्ष हुआ चाहिये या आशंका का परिहार करे सिद्धान्ती "आत्म" इति, आत्मरूप हीन वह हइये कहिये वह देशादि परिच्छेदों के अभाव वाला आत्मा है याते चाक्षुष ज्ञान के हेतुभूतनीलपीतादिरूपों से वायुवत् रहित है, घट सम दृश्य न ताते पइये कहिये पुरुषों को चाक्षुष ज्ञान का विषय नहीं होवे। किञ्च मम प्रतीति का विषय होने ते भी गृहक्षेत्रादिकोंवत् देह आत्मा नहीं बने यह कहे "मेरो" इति ॥ २२५ ॥

या विधि ममता भी तन माहीं। ताते आत्म सो तन नाहीं।
देह विषे हंता अभिमान। चिद् अध्यास बिना नहिं मान ॥२२६॥
जात कर्म लौं भाषे जे ते। आत्म माहिं प्रमाण न तेते।
जाते आत्म तन ते न्यारो। अनुमानन कर नीके धारो ॥२२७॥

पूर्वपक्षी—

ममता बुद्धि जाहि में होई। कहां अनात्म हेर्‍यो सोई।

सिद्धान्ती—

घट अरु पट मंदिरके माहीं। ममताबुद्धि होय जिहँ जाहीं ॥२२८॥
तहि तहि सकल अनात्म हेरे। नाहिं कदाचित् आत्म टेरे।

पूर्वपक्षी—

अनुमानों कर तनते न्यारो। यद्यपि तत्र आत्म निर्धारो ॥२२९॥
तदपि ना हम उरमें मानैं। मान प्रत्यक्ष सुएक बखानैं।
प्रत्यक्ष बिना नहिं और प्रमाण। ऐसे मोहि सिद्धांत पछान ॥२३०॥

ननु यदि मम प्रतीति का विषय होने ते देह अनात्मा है तब यामे "देहोऽहम्" ऐसे अहंन्ता अभिमान कैसे होवे है ? तहां कहे "देह" इति, देह के विषे जो "मैं देह हूँ" ऐसा अहन्ता अभिमान नाम ज्ञान है वह चिद् अध्यास बिना नहिं जान नाम चेतन आत्मा के अध्यास बिना नहीं, किन्तु अध्यास से है, याते अध्यस्त ताप ते लोह को अग्निभाव के भाववत् अध्यस्त अहन्ता ते देह को आतमता सिद्ध नहीं होवे ॥ २२६ ॥

ऐसे भये जातकर्मादिक संस्कार भी देह को आत्मता सिद्धि में प्रमाण नहीं सोई कहे "जात" इति, अनुमाननकर नाम "देह अनात्मा होने को योग्य है, दृश्यत्ववाली होने ते, घटवत्" इत्यादिक अनुमानों कर ॥२२७॥

ननु मम ज्ञान का विषय होने ते देह आत्मा नहीं ऐसे कहते हो ? यह आशंका करे "ममता" इति, अनात्मा देखन के स्थान बतावे सिद्धान्ती "घट" इति ॥ २२८ ॥

ननु होवे अनुमानों से देह भिन्न आत्मा की सिद्धि, परन्तु हम तो तिनको प्रमाण न मानने से ही तिनों से सिद्ध वस्तु का अंगीकार नहीं करे ? यह सिद्धान्त ओर दृष्टिकर आशंका करे "अनुमानों" इति ॥२२९॥

तदपि नाहम् उर में मानें कहिये तौ भी हम ताको हृदय में अंगीकार

नहीं करें, न अंगीकार करने में हेतु कहे "मान" इति, मान प्रत्यक्ष सु एक बखानैं कहिये जिस हेतु ते प्रमाण एक प्रत्यक्ष ही कहे है याते अनुमान सिद्ध आत्मा का हम अंगीकार नहीं करें, प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है यह काहे कहते हो ? तहाँ कहे "प्रत्यक्ष" इति, प्रत्यक्ष बिना नहिं और प्रमाण कहिये प्रत्यक्ष बिना और प्रमिति का करण कोई नहीं ऐसा हमारा सिद्धान्त है याते अपने सिद्धान्त की रक्षा हेतु कहे है, इहां यह भाव है = "या ज्ञान का विषय अबाधित होवे वह ज्ञान प्रमा कहिये है" "प्रमा के करण को प्रमाण कहे हैं" याते प्रमा का जनक होने ते प्रमाण एक प्रत्यक्ष ही है, अनुमान आदिकों से प्रमा की उत्पत्ति नहीं होवे, किन्तु अर्थों का संशय मात्र होवे है, याते अर्थों का संशय जनक होने ते अनुमान आदिक प्रमाण नहीं, किन्तु प्रमाणाभास हैं तथाहि—ऐसा कोई पुरुष नहीं जिसने सर्व देशों कालों में "जहां धूम है तहां अग्नि है" ऐसे अग्नि धूम का नियम कर संग रहना देख लिया होवे, याते पर्वत में धूम रहो, अग्निमत रहो ऐसे विचार की आशंका से व्याप्ति सहित पक्ष में हेतु के रहने का ज्ञान रूप अनुमान प्रमाण दूर भया, तासे आग्नि की अनुमिति नहीं होवे, किन्तु अधिक विचार से ताका स्वरूप न खोजने कर अर्थ का संशय मात्र होवे है, तैसे "उपमिति के करण साहश्य ज्ञान रूप" उपमान से भी, सर्वथा साहश्य के ज्ञान का नाम उपमान है वा यत् किञ्चित् साहश्य के ज्ञान का नाम उपमान है ? यह उपमान वादी पै प्रश्न किये, सर्वथा साहश्य ज्ञान का नाम उपमान है ऐसे कहे, तब "गोत्व गवयत्व" आदि रूप असाधारण धर्मों से "गो गवय को विसहश होने ते अति प्रसिद्ध उदाहरण में ही सर्वथा साहश्य ज्ञान रूप उपमान नहीं बने, याते यत् किञ्चित् साहश्य का ज्ञान उपमान है यह दूसरा कहे, तब नगरवासी ने आरण्यक से "गवय कैसा होवे है ? यह पूछा पशुत्व रूप यत् किञ्चित् साहश्य के गर्दभ में सम्भव ते "गर्दभ सहशो गवयः" यही उत्तर कहा चाहिये याते साहश्य ज्ञान रूप करण का निरूपण न बनने कर तासे उपमिति रूप प्रमा नहीं होवे, किन्तु संशय हो होवे है, और अनुमान उपमान के दूर होने से हो मध्यस वृद्ध कृत आनयन को देखकर, इदं घटानयनम्, ज्ञानसाध्यम्, विलक्षण क्रियात्वात्, मदीयविलक्षण क्रियावत्, ताहग ज्ञानम्, शब्दजन्यं, शब्दातिरिक्त कारणादर्शनात् मदीय शब्दजन्य ज्ञानवत्" ऐसे अनुमानों से "आनयन क्रिया विशिष्ट व्यक्ति घट पद का वाच्य है" ऐसा शक्ति

सिद्धान्ती—

अनुमानादिक सब मान दिखावौं। शीश पाद दे तोहि मनावौं।
जे अनुमान न तूँ जड़ माने। कैसे वाद विवादहि ठाने ॥२३१॥

ज्ञान न होने से, पुनः कही रीति से सादृश्यज्ञान रूप उपमान को विचार किये दूर होने कर, तासे "यह पशु गवय पद वाच्य है" ऐसा शक्तिज्ञान न होने से वाक्यार्थ ज्ञान का हेतु पदार्थ ज्ञान न भये शब्द से भी अर्थ की प्रमा नहीं होवे, और अर्थापत्ति का, अयं, रात्रिभोजी, दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा महाव्रतीजनः, ऐसे केवल व्यतिरेकी अनुमान से। पुनः अनुपलब्धि का प्रत्यक्ष में अन्तर्भाव होने ते तिनको तो पृथक् प्रमाणता ही नहीं, याते सिद्ध भया प्रत्यक्ष बिना ओर प्रमाण नहां, पुनः प्रमेय की सिद्धि को प्रमाणाधीन होने ते, प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध वस्तु बिना देह भिन्न और आत्मा नहीं ॥ २३० ॥

जेकर धूम, अग्नि के अभाव वाले में भी रहे, तब तासे उत्पन्न न हुआ चाहिये औ उत्पन्न होवे है याते अग्नि का व्यभिचारी नहीं, ऐसे तर्कों से व्यभिचार शंका के निवृत्त भये अनुमान को प्रमाणता में आशंका नहीं, पुनः "अयं पशुः गवय पद वाच्यः" ऐसी उपमिति को देखकर जेते सादृश्य ज्ञान से वह बने तेते ज्ञान की कल्पना कर उपमान को प्रमाणता में आशंका नहीं, और अनुमान, उपमान, को प्रमाणता भये तिनों द्वारा शक्ति ज्ञान होने से शब्द को प्रमाणता में आशंका नहीं, एवं भिन्न प्रमाणों का अंगीकार, "इन्द्रियेण घटं साक्षात्करोमि" "धूम लिङ्गेन अग्नि अनुमिनोमि" इन अनुव्यवसायो के भेद ते प्रत्यक्ष अनुमानवत् भिन्न-भिन्न अनुव्यवसायों के अनुसार होवे है औ "अर्थापत्या रात्रिभोजनं कल्पयामि" "अनुपलब्ध्या अभावं जानामि" ऐसे अनुव्यवसाय इनको भिन्न प्रमाणता साधक भी होवे है याते अर्थापत्ति अनुपलब्धि को पृथक् प्रमाणता में आशंका नहीं इस प्रकार प्रत्यक्ष भिन्न सम्पूर्ण अनुमानादिकों प्रमाणता सिद्ध भये, "प्रत्यक्ष बिना और कोई प्रमाण नहीं" इस अभिमान से "तदपिना हम" से लेकर "सिद्धान्त पछान" पर्यन्त चार्वाक का कथन अपनी बुद्धि गत जड़ता का प्रकाशक है या अभिप्राय से सिद्धान्तो देह भिन्न आत्मा की सिद्धि हेतु जोरावरी अनुमानादिक मनाने "अनु-मानादिक" इति, न मानते को कैसे दिखावेंगे तहां "शीश" इति, शीश विषे पैर देकर तेरे को मनाऊँगा, जेकर प्रत्यक्ष बिना और प्रमाण नहीं

परको आशय जेतो हइये। वाक् श्रवणकर तेतो पइये।
जाते यहि बोल्यो इह रीत। ताते इनके ऐसे चीत ॥२३२॥
यों अनुमिति कर सकलो जानै। ता पाछे विवाद सो ठानै।
वाद विवाद हेतु उरधार। अवश्य करोअव अङ्गोकार॥२३३॥
प्रत्यक्ष विना नहिं और प्रमाण। यह ते मान कि आहि अमान।
प्रथमे शब्द प्रमाणहि मानै। द्वितीय स्व उक्ति कर हानै॥२३४॥

ऐसे कहता हुआ तूँ अनुमानादिकों में, प्रथम अनुमान को प्रमाण न माने तब तदधीन होनेवालीशक्तिग्रह विना पर का शब्द श्रवण कर "यह ऐसे अभिप्राय वाला है" ऐसे वाक्य उच्चारण करनेते, शत्रुगृहमें भोजन निवर्तक "विष भक्षण कर" वाक्यवक्तृवत्, ऐसे परकीय अभिप्राय के निश्चय से अनन्तर तिसके साथ तेरा विवाद करना नहीं बनेगा यह कहे "जे" इति, जेकर तूं अनुमान को प्रमाणता न अंगीकार करें तब वाद और विवाद नाम जल्प वितण्डा कैसे करेगा अर्थात् काहू रीति से नहीं कर सकेगा, याते वाद आदिकों का हेतु जानकर अनुमान को प्रमाणता अवश्य अंगीकार कर, "प्रमाणसे अपनापक्ष स्थापन करना औ तर्क से अन्य का खण्डन करना वाद" कहिये है" यह तत्त्व बोध की इच्छा वाले की चर्चा होवे है, जैसे कैसे जय की इच्छा वाले की चर्चा "जल्प" कहिये है, "अपनापक्ष स्थापनहीन चर्चा वितण्डा कहिये है" ॥ २३१ ॥

कही बात स्पष्ट करे "पर को" इति, पर पुरुष का जेता आशय कहिये अभिप्राय होवे है वह धूम हेतु से अग्निवत्, ताका वाक्य श्रवण कर सम्पूर्ण प्राप्त होवे है, जिस कारण ते यह पुरुष इस प्रकार बोले हैं, ताते इसके चित्त में यह वार्ता है ॥ २३२ ॥

यों अनुमित्ति कर नाम "यह पुरुष ऐसे अभिप्राय वाला है" ऐसे अनुमानप्रमाणजन्यज्ञानसे पुरुष का सम्पूर्ण अभिप्राय जब जान लेवे है तब ता जानने से पीछे विवाद करे है, याते वाद का हेतु जानकर अनुमान प्रमाण अवश्य अंगीकार करो ॥ २३३ ॥

अनुमान को प्रमाणता मनवा कर शब्द को प्रमाणता मनावने हेतु विकल्प करे "प्रत्यक्ष" इति, प्रत्यक्ष बिना और प्रमाण नही यह तेरा वाक्य तेरे को प्रमाण है वा नहीं ? प्रथम पक्ष में कहे "प्रथमे" इति,

उक्तिहानि मान ते पइये । ताहि अभाव कहो क्यों हइये ।
अनुपलब्धि कर सो जग जानै । अनुपलब्धिमान उर ठानै ।।२३५।।
मेरो पुर तव पुरहि समान । उपमान बिना क्यों करे बखान ।
उपमिति सादृश्य ज्ञान बखाने । निज मुखते ताको तूँ भाने ।।२३६।।

प्रथमे शब्द प्रमाणहि माने कहिये प्रत्यक्ष बिना और प्रमाण नहीं, "यह मेरा वाक्य मेरो को प्रमाण है" ऐसे कहता हुआ शब्द को आप ही प्रमाण माने हैं, शब्द को प्रमाणता अंगीकार किये सिद्धान्त हानि होवेगी यह समझ कर, द्वितीय कहिये "प्रत्यक्ष बिना और प्रमाण नहीं यह मेरा वाक्य मेरो को प्रमाण नहीं" ऐसे अपने वाक्य को प्रमाणता अपने वचन से दूर करे ।। २३४ ।।

तब, उक्तिहानि कहिये "प्रत्यक्ष बिना और प्रमाण नहीं यह मेरा वाक्य मेरो को प्रमाण नहीं" ऐसे पूर्व वाक्य में प्रमाणता हानि करने वाला द्वितीय वाक्य ही पूर्व वाक्य में अबाधित रूप प्रमाणता की प्रमिति का जनक होने ते तेरे को बल से प्रमाण सिद्ध हुआ, अब ताहि कहिये बल से प्रमाण हुए वाक्यरूपशब्द प्रमाण का अभाव कहो कैसे होवे ? काहूँ रीति से न होवे यह भाव है। ननु प्रत्यक्षातिरिक्त अनुमानादिक भी जेकर प्रमाण होवे तब प्रमितिकरणता कर उपलब्ध होवे, औ पूर्व कही व्यभिचारआदिकआशंका से प्रमितिजनकता कर उपलब्ध होवे नहीं याते प्रमाण नहीं, हम यों अनुपलब्धि कर अप्रमाणता जाने हैं ? ऐसे कहते प्रति अनुपलब्धि को प्रमाणता मनावे "अनुपलब्धि" इति, सो नाम शब्द को प्रमाणता का अभाव ।। २३५ ।।

"मेरे पुर जैसा तुमारा पुर सुन्दर है" ऐसा सादृश्यज्ञानरूप उपमान से विना "मेरा पुर तुमारे पुर जैसा है" यह सादृश्यज्ञानजन्यज्ञान रूप उपमिति भी काहू रीति से नही कह सकेगा याते उपमान भी मान यह कहे "मेरो" इति, "मेरा पुर तेरे पुर जैसा है" यह उपमिति, "मेरे पुर जैसा तुमारा पुर है" ऐसे सादृश्यज्ञानरूपउपमान बिना, क्यों करे बखान नाम किस रीति से कहेगा अर्थात् कारण बिना कार्य की असिद्धि से काहू रीति से नहीं कह सकेगा "ननु मेरा पुर तेरे पुर जैसा" या सादृश्यज्ञान को उपमितिरूपता कोई नहीं कहे ? तहाँ कहे "उपमिति" इति, उपमिति सादृश्य ज्ञान बखाने कहिये मीमांसक और वेदान्ती सादृश्य

मनमें सकल मानकर माने । मुखते अब क्यों झूठ बखाने ।
अनुमान विषे नभ नीको हइये । सो असत्य कहु कैसे पइये ॥२३७॥

अब देह आत्मवादीके पूर्वोक्त सिद्धान्तका सिद्धान्ती कर प्रकारान्तरसे विकल्पों कर खण्डनका प्रतिपादन करते हैं ।

चौपाई

अरु केचित् या विधि नर हइये । जन्म अनन्तर जा बध पइये ।
केचित् पाँच वर्ष लौं होवै । केचित् बीस वर्ष सुख जोवै ॥२३८॥

ज्ञानको उपमिति कहे है, औ ताको नाम तिस साहश्य ज्ञान रूप उपमिति को तूं भी "मेरा पुर तेरे पुर जैसा है" ऐसे अपने मुख से कहे है याते ताका करण उपमान भी अवश्य मान, इहाँ यह भाव है = वेदान्ती मीमांसक "साहश्यज्ञानजन्य साहश्यज्ञान को उपमिति कहे हैं" औ ताके करण साहश्य ज्ञान को उपमान प्रमाण कहे हैं, जैसे नगर में दृष्टगोपिण्ड पुरुष के, बन में प्राप्त हुये, गवय साथ चक्षु संयोग होते ही "यह पिण्ड गो सहश है" इस रीतिसे गवय में गो का साहश्यज्ञान उपजे हैं, वह उपमान प्रमाग है औ तदनन्तर "इस जैसी मेरी गो है" ऐसे गो में गवय का साहश्यज्ञान उपजे है, वह साहश्यज्ञानजन्यज्ञान होने ते उपमिति प्रमा हैं, इस प्रकार वेदान्ती मीमांसक साहश्य ज्ञानको उपमिति कहे हैं सो तूं भी कहता है याते ताका करण उपमान भी अनुमानआदिकोंवत् अवश्य मान ॥ २३६ ॥

ऐसे भये सम्पूर्ण अनुमानआदिकों को, मानकरमाने नाम प्रमाण रूप कर मानता हुआ मुख से अब "प्रत्यक्ष विना नहिं और प्रमाण" ऐसा झूठ काहे बोलता है, अर्थात् मुख से भी "अनुमानआदिक प्रमाण हैं" ऐसे कहो, प्रमाण हैं ऐसे कहे तब तिनमें अनुमान का विषय आकाश भी आवरणाभाव रूप नहीं, यह कहे "अनुमान" इति, अनुमान विषे नभ नीके हइये नाम "शब्दः, पृथिव्यादिअष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितः, अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति समवायिकारणत्वात्" "यन्नैवं तन्नैवं यथा रूपम्" या अनुमानजन्य अनुमितिज्ञान का विषय जाके आश्रित शब्द है वह आकाश भी सत् रूप भली प्रकार है याते सो नाम वह आकाश, असत्य कहिये आवरणाभाव रूप काहू रीति से नहीं बने ॥२३७॥

किञ्च शरीरों की विषमता का और हेतु से सम्भव न होने ते कर्मों

केचित् रहे सो वर्ष पचास । बहु विधि यशको करे प्रकाश ।
केचित शतं वर्ष लौं रहै । बहु विधिके उरमें दुख सहै ॥२३९॥
केचित् निखिल आयु सुख पावे । केचित् दुखसों आयु बितावे ।
देह समान विषम क्यों होई । तामें हेतु न भाख्यो कोई ॥२४०॥

सवैया

जो निज कर्म सो हेतु कहे जड़, तौ तन ते पहिले उर मानो ।
जो निज आतम रूप सनातन, ताहि अभाव कथं खल ठानो ॥
दृष्ट सो हेतु बने कबहूँ नहिं, एक अदृष्ट सदा चित आनो ।
ताहि अधार उदार सदा निज, या तन ते अति भिन्न पछानो ॥२४१॥

से कहनी, तहां भी दृष्ट कर्मों को हेतुता की असिद्धि से, अदृष्ट कहने होंगे, ऐसे भये तिनकाआश्रय देह भिन्न आत्मा अवश्य मान यह कहे "अरु" इति, जन्म अनन्तर जा बध पइये नाम जन्म से पीछे शीघ्र ही जिनका नाश होवे है ॥ २३८-२३९ ॥

"अरु केचित्" से लेकर कण्ठ शोषण करे का भाव निकासने हेतु आक्षेप करे "देह" इति, चार भूतों कर रचित देह, समान कहिये सबकी एक सी है, तहां काहू का जन्मानन्तर वध काहू का पांच वर्ष तक जीवना, यह विषमता कैसे होवे है यामें हेतु कोई नहीं कह्या, याते विषमता का हेतु न कहने से सर्व की एक सी गति हुई चाहिये यह भाव है ॥ २४० ॥

ननु हम विषमता में कर्मों को हेतु कहे हैं याते एक सी गति नहीं होवे ?यह आशंका करते प्रति कहे "जो" इति, पीछे के दण्ड को अपने से पहले घट की कारणता न देखने से तन ते पहले ही माने हैं ऐसे कहे ? तब तिनों के आश्रयरूप आत्मा का अभाव भी मत कहो यह कहे "जो निज" इति, सनातन रूप आत्मा का अभाव कैसे हे खल कहता है !अर्थात् काहू रीति से न कहो । काहू रीति से न कहना स्पष्ट करे "दृष्ट" इति, दृष्ट कहिये वर्तमान शरीरों से उपजे कर्म तो अपने कारणस्वरूप शरीरों की विषमता का कारण कभी बनते नहीं, याते पूर्व जन्मों के अदृष्ट ही एक चित्त विषे ल्यावो, वही ल्यावे हैं ? ऐसे कहो तब तिनका आश्रयरूप

इन शरीरों से भिन्न आत्मा भी जानो सोई कहे "ताहि" इति, ताहि अधार नाम अदृष्टो का आश्रय रूप सर्वदा काल श्रष्ठ अनादि सच्चिदानन्द आत्मा को इन स्वतः असत्य जड़ दुखरूप औ आत्मा के अध्यास से ज्ञानादिकों की उपलब्धि वाले शरीरों से अतिशय पृथक् जानो, कही रीति से वल से पृथक् आत्मा सिद्ध भगे पूर्व जो "तथाऽपि कुण्डगत दधि की मधुरता को लेकर कुण्डमधुर है ऐसा कथन न देखने से" पुनः पुष्प के उठाये "स्फटिक लोहित नहीं" ऐसे वाधज्ञानवत् विद्वानों को भी "मैं देह नहीं" "तथा ज्ञानवान् सुखी नहीं" ऐसा बाधज्ञान न देखने से देह भिन्न आत्मा की सिद्धि नहीं होवे" यह आशंका करी ताकी भी अव निवृत्ति भई, काहे ते ? कही रीति से देह भिन्न आत्मा तो तेरे मुख से ही सिद्ध कराया है याते देह भिन्न आत्मगत ज्ञान सुखादिकों को लेकर ही "रक्त स्फटिक है" "अयो दाह करे है" इन कथनोंवत् "मैं जानता हूँ" इत्यादि कथन अध्यास से होवे है औ वाध का अभाव भी नहीं, किन्तु जेकर ज्ञान देह का धर्म होवे तव देह अरु ज्ञान का आपस में प्रकाश्य-प्रकाशक भाव भी न बने ऐसा यौक्तिक बाध बने है, याते अदृष्टों का आश्रय देह भिन्न आत्मा बल से सिद्ध हुआ, इहाँ यद्यपि समान सामग्री से एक कुलाल रचित घटों में कहीं दुग्ध आदिकों का सम्बन्ध औ कहीं मूत्रादिकों का सम्बन्ध देखने से विषमता में अदृष्ट हेतु नहीं, किन्तु विषमता स्वभाव से है याते अदृष्टों का आश्रय देह भिन्न आत्मा नहीं सिद्ध होवे, यह आशंका होवे है, तथापि दीप ते दीपान्तर ऐसे वीज ते अङ्कुरादि द्वारा उपजे बीजान्तर में दहन प्रकाशनादिकों की तुल्य सामर्थ्यता प्रमाणों से तैलबत्ती आदिक हेतुओं की तुल्यता से देखी है, औ विषमता विषमता से देखी है, अव अदृष्टों बिना स्वभाव से विषमता कल्पना किये सम्पूर्ण वस्तुओं में अत्यन्त विषमता वा अत्यन्त समानता ही होवेगी ऐसे भये काहू वस्तु की व्यवस्था न लगने ते सम्पूर्ण व्यवहारों के लोपप्रसंग का भय कर अवश्य अदृष्टों की विचित्रता विषमता में वीज है यह मानो। याते समान सामग्री से एक कुलाल रचित घटों विषे दुग्ध आदिकों के सम्बन्ध की विषमता में भी भोक्ता, पुरुषों के अदृष्टों की विषमता को हेतु होने से स्वभाव से विषमता नहीं बने, याते और गति के अभाव ते अदृष्ट ही विषमता में बीज है यह न कहने की इच्छा करता हुआ भी तूं हमारा कहाया कहो, ऐसे भये सिद्ध हुआ कर्मों का आश्रय देह से न्यारा आत्मा है ॥२४१॥

चौपाई

कर्म अधार देहते न्यारो । जो आत्म उर अंतर धारो ।
तौ परलोक कथा सब व्यर्थ। यह है तेरो वचन सु व्यर्थ ॥२४२॥
परलोक अभाव कथं जड़ हेरे । मान एक प्रत्यक्ष सो टेरे ।
भावी विषे नहिं सो प्रमाण । अनुमान प्रभृति न माने मान ॥२४३॥
अनुमानादिक जो मान बखानो । तौ परलोक सदा उर मानो ।
ते सकले तहि माने भाव । नाहिं कदाचित् कहे अभाव ॥२४४॥
क्रिया अरुपुनि द्रव्य विनाश । इत्यादिक जो कियो प्रकाश ।
ताहि उद्धार सुनो चित लाई । निखिल संदेह तोहि मिटजाई ॥२४५॥
'कारीरी' 'श्येन' याग जन करे सामग्री तहाँ अग्निमें जरे ।
विघ्न न जे होवे तिहँ कोई । तौ फल ताहि लखे सब कोई ॥२४६॥

जेकर बल से सिद्ध हुआ कर्मों का आश्रय रूप देह भिन्न आत्मा, हम भी अंगीकार करे हैं ऐसे कहो तब जिन अनुमान आदिकों के बल से देहातिरिक्त आत्मा अंगीकार किया तिनके बल से परलोक भी मान्या भाव से कहे "कर्म" इति ॥२४२॥

वचन को व्यर्थता स्पष्ट करे "परलोक" इति, परलोक का अभाव कथं नाम कैसे ? हे जड ! देखता है ? अर्थात् काहू रीति से नहीं देख सके, काहू रीति से न देख सकने में हेतु कहे "मान" इति, मान एक प्रत्यक्ष सो टेरे कहिये याते अपने साथ सम्बन्ध ओ वर्तमान वास्तविक की ग्राहकता स्वभाववाला प्रमाण एक प्रत्यक्ष ही कहता है औ वह भावी कहिये आगे होनेवाले स्वर्गादिकों विषे प्रमाण नहीं, पुनः अनुमान से, प्रभृति कहिये आदि लेकर तूं प्रमाण नहीं मानता ताते प्रमाणों बिना परलोक का अभाव काहू रीति से सिद्ध न होने ते परलोक अवश्य मान ॥२४३॥

वाद सिद्धि हेतु अनुमानादिक प्रमाण कहो तब तिनसे परलोक मानो यह कहे "अनुमानादिक" इति, मानने में हेतु कहे "ते" इति ॥२४४

परलोक सिद्ध भये यज्ञों का भी, दृष्ट फल वर्षादिवत्, अदृष्ट फल तहाँ बने है यह "क्रिया कर्ता" इत्यादिक कथन का परिहार करे "क्रिया" इति, उद्धार-परिहार ॥२४५-२४६॥

'कारीरी' वहु वर्षा विस्तारे । 'श्येन'याग कर शत्रु निवारे ।
ज्यों ईहाँ फल होवे भारो । माहिं परलोक तथा विचारो ॥२४७॥
दावादग्ध द्रुमहिं दृष्टांत । होत निराश सुनो एकांत ।
वेतस बीज दव अग्नि जलायो । जले बीज केला उपजायो ॥२४८॥
ताहि विपे फल झुण्ड सुहाये । बीज विजाती बहु फल जाये ।
विधि विहीन जे द्रव्य जलाये इतर वृक्षसम फल नहिं जाये ॥२४९॥
विधिवत द्रव्य जलाये जेते । वेतस बीज सम फल कर तेते ।
फल प्रदाता ईश्वर जोई । अब आवश्यक आयो सोई ॥२५०॥
सो वह ठौर एक नहिं हइये । फल जाते सब ठौरे पइये ।
ताते सो सब ठौरन माहीं । स्थावर जङ्गम जे जग माहीं ॥२५१॥
भू में अंकुर सो उपजावै । सूक्ष्म ताते दृष्टि न आवै ।
स्वतः परिणाम वखान्यो जोई । गयो जलांजलि गह अब सोई ॥२५२॥

फल कहे "कारीरी" इति ॥२४७॥

"इत्यादिक" पाठ गत "आदि" शब्द से कह्यों के परिहार हेतु कहे "दावा" इति ॥२४८॥

वीजविजाती–विलक्षण बीज, दार्ष्टान्तिक में कहे "विधिविहीन" इति, विधिविहीन-वेदविधि बिना ॥२४९॥

विधिवत्–वेदविधि अनुसार, परलोक सिद्ध भया ईश्वर न होवे तब अदृष्टानुरूप फल कौन देवे ऐसे ईश्वर भी अर्थ ते सिद्ध होवे है यह कहे "फल" इति, अब नाम परलोक आदिक सिद्ध भये ॥२५०॥

अवश्य सिद्ध भये ईश्वर को व्यापकता कहे "सो वह" इति ॥२५१॥

अर्थापत्ति प्रमाण सिद्ध ईश्वर की अनुमान से भी सिद्धि सूचन करे "भू में" इति, भू में अङ्कुर सो उपजावै नाम पृथिवी में अङ्कुर सो ईश्वर उत्पन्न करे है अर्थात् क्षिति में होने वाले अङ्कुरादिक, कर्तापूर्वक हैं, कार्य होने ते, "घटवत्" या अनुमान से भी ईश्वर सिद्ध होवे है। अङ्कुरादिकों का कारण ईश्वर दृष्टिगोचर क्यों नहीं होवे ? तहाँ कहे "सूक्ष्म" इति, कही रीति से सिद्ध भये ईश्वर को भूतों के परिणाम का हेतु होने ते स्वतः परिणाम कथन दूर हुआ, सोई कहे "स्वतः" इति ॥२५२॥

काम अर्थ पुरुषार्थ जेई। विना विचार बखाने तेई।
विषय काम भव भीतर जेते। बहु प्रकार दुःखकर तेते ॥२५३॥
अर्थमाहिं नर जो दुख पायो। पूर्व ते सब भाखि सुनायो।
मरण विमोक्ष सिद्धांत तुम्हारो। उन्मत प्रलाप समान विचारो ॥२५४
या तनुको नर डारे जबही। और गहे कर्मन वश तबही।
चार्वाक मत इइये जेतो। दुष्ट पछानो सकलो तेतो ॥२५५॥
ताते सुख अर्थी नर जोई। चार्वाक मत त्यागे सोई।
या विधि वादी एक निवारे। अब दूसर पुनि बैन उचारे ॥२५६॥

अब 'चार्वाक' का एक देशी इन्द्रियआत्मवादी का आक्षेप

काम अर्थ को पुरुषार्थता कथन की असिद्धि कहे "काम" इति, "काम" पद का अर्थ कहे "विषय" इति, अर्थात् पुरुषों की कामना के यावत् शब्दस्पर्शादिरूप विषय हैं, वह प्राप्ति के यत्नों से पुनः विनाश ते अनेक प्रकार के दुख कर्ता हैं ॥ २५३ ॥

और अर्थ माहिं कहिये धन प्राप्ति में जो पुरुष दुख पावे है वह "खङ्गधार सों अग चिरावे" इत्यादि पाठ से पूर्व ही कहे है याते इन दोनों को पुरुषार्थता नहीं बने, एवं कही रीति से देहातिरिक्त आत्मा सिद्ध होने ते, मरण को मोक्षता सिद्धान्त भी उन्मत्त प्रलाप समान है यह कहे "मरण" इति, देह का नाश ही मुक्ति है यह तुम्हारा सिद्धान्त बावरे पुरुष की वाणीवत् प्रमाद मूलक है ऐसे जानो ॥ २५४ ॥

उन्मत्त प्रलाप समानता स्पष्ट करे "या" इति, या नाम इस शरीर को जब पुरुष त्यागे है तब शुभाशुभ कर्मों के अनुसार और देह को ग्रहण करे हैं, याते आत्मा का नाश न होने ते ताको मरण मुक्ति कहना उन्मत्त प्रलापवत् है, कहे दोषों ते सर्वथा जिज्ञासुओं को अनुपादेयता कहे—"चार्वाक" इति, दुष्ट पछानो तेतो कहिये पूर्व कहे दोषों सहित जानो वह सभी ॥ २५५ ॥

तटस्थ अनुवाद करे "या विधि" इति, अब—देह आत्मवाद खण्डित कालमें ॥ २५६ ॥

चौपाई

पूर्वपक्षी—

देह न आत्म सत्य वखानी। इन्द्रिय आत्म माने ज्ञानी।
मैं सुनहूँ मैं देखूँ रूप। मैं सूखूँ रस लेहुँ अनूप ॥२५७॥
अहं प्रतीति विषे ते हइये। ता बिन और न आत्म पइये।

सिद्धान्ती—

या विधि जे सिद्धांत वखाने। ज्ञानी ताहि न ज्ञानी माने ॥२५८॥
इन्द्रिय नाहिं आत्म प्रधान। करण हेतु तामें पहिचान।
कुठारादिक दृष्टांतहि मान। ताते आत्मता तिहँ हान ॥२५९॥
कानों करके शब्द सुनीजे। नयनन सों घटरूप गहीजे।
या विधि सकल करण निर्धारे। आत्म काहे ताहि उचारे ॥२६०॥

दूसरा बैन कहे "देह" इति, आत्मता साधक अनुभव कहे "मैं सुनहूँ" इति ॥ २५७ ॥

ते नाम इन्द्रिय, अनुवाद समाप्ति करे "या विधि" इति ॥ २५८ ॥

सिद्धान्ती खण्डन करे "इन्द्रिय" इति, इन्द्रिय नाहिं आत्म प्रधान कहिये इन्द्रिय मुख्यआत्मा नहीं, किन्तु अध्यास ते गौण आत्मता रहे भी वास्तविक ते अनात्मा हैं, अनात्मता साधक हेतु कहे "करण" इति, तामें नाम इन्द्रियों को आत्मता न होने में अर्थात् अनात्मता सिद्धि में, हेतु करणता मानो, "जहां जहां करणता है तहां तहां अनात्मता है" ऐसे साध्य साधन के सहचार दर्शन का स्थल दृष्टान्त कौन मानते हो ? तहां कहे "कुठारादिक" इति, कुठारादिक कहिये परशुआदिक दृष्टान्त माने हैं, ताते नाम इन्द्रियों को अनात्मता साधक दृष्टान्त के सद्भाव ते, तिहँ नाम इन्द्रियों को आत्मता की हानि होवे है, तथा च यह इहां अनुमान फलित हुआ—इन्द्रियाणि, अनात्मा भवितुमर्हति, करणत्वात्, कुठारवत् ॥ २५९ ॥

ननु इन्द्रियों में करणता नहीं सम्भवे ? यह आशंका कर करणता साधक अनुभव कहे "कानों" इति, "कानों करके शब्द सुनीजे" कथन से "कुठार करके छेदन करे है" (इस) प्रतीति से छेदन में कुठार को करणतावत् दर्शनादिक क्रिया में चक्षु आदिकों को भी करणता सिद्ध होवे है, करणता

एक एक जे आत्म भयो । स्वामि नानात्व दोष तब अयो ।
तिनको एक मतो नहिं होई । भिन्न प्रयोजन जाने सोई ॥२६१॥
मत्तगजेन्द्र समबल जाको । कदली खंड बँधे नर वाको ।
ते सब दिश-दिश ओर पधारे । कदली खंड-खंड कर डारे ॥२६२॥
त्यों युगपद् आत्म यह सबही । दश दिशि ओर सिधावे जबहीं ।
देह विदीर्ण ता क्षण होवे । तुल्य स्वामी घर इक खोवे ॥२६३॥
ता समूह जे आतम कहे । अंध मूक नहिं जीवित रहे ।
नयनघटित समुदाय न हइये । अंध मूक क्यों जीवित पइये ॥२६४॥
जीवित देखे सकल ताहीं । तिहँकर ते आत्म भव नाहीं ।
मूर्छा मरण सुषुप्ति जबही । लीन करणगण होवे तबही ॥२६५॥

साधक अनुमान—"इन्द्रियं, करणं, दर्शनादिकक्रिया—साधनत्वात्, कुठारवत्" यह जान लेना ॥ २६० ॥

रहो "दुर्जन तोष न्याय" से बिना विचारे इन्द्रियों को आत्मता तथापि वह समूह को है वा प्रत्येक को है ? यह विकल्प कर प्रथम में स्वामी नानात्व दोष कहे "एक एक" इति, स्वामि नानात्व—स्वामियों का नानापना, स्वामी-नानात्व को दोषता स्पष्ट करे "तिनको" इति, न होने में हेतु कहे "भिन्न" इति, भिन्न प्रयोजन जाने सोई नाम भिन्न-भिन्न है शब्दादिकों का ग्रहण करना रूप स्वार्थ जिनों का, याते वह ऐसे है ताते तिनका एक मत नहीं बने ॥ २६१ ॥

दृष्टान्त में दोषता स्पष्ट करे "मत्त" इति, मत्तगजेन्द्र समबल जाको नाम तुल्य है बल जिनका ऐसे जो मदमत्तहस्ती, वाको-तिनको ॥ २६२-२६३ ॥

प्रथमे परिहार हित कहे "ता" इति, न जीवन में हेतु कहे "नयन" इति, नयनघटित-नयनादि सहित ॥ २६४ ॥

तिह कर नाम अन्धमूकों का जीवन देखने कर, मरण मूर्छा काल में इन्द्रियों को मन में लीन होनेवत् सुषुप्ति में भी मन विषे लीन होने ते मरण मूर्छावत् सुषुप्ति से भी भय हुआ चाहिये यह दोनों पक्ष में समान दोष कहे "मूर्छा" इति, "लीन करण गण होवे" के आगे मन में शेष (कर लेना) ॥ २६५ ॥

मुर्छा मरण विषे डर जैसो। माहिं सुषुप्ति होवे तैसो।
वहु डर मान सवै नहिं कोई। जाग्रत माहिं दुःख वहु होई ॥२६६॥
अरुपुनि अहंप्रतीतिहि तोहि। आतम साधक भाषी मोहि।
ताको हेतु सुनो चित लाई। ताते सब संशय मिट जाई ॥२६७॥
अहंप्रतीति इन्द्रिय महिं जोई। चिद् अध्यासजन्य है सोई।
अरु पुनि ममता तामें होई। नहिं संदेह याहि में कोई ॥२६८॥
मेरे श्रोत्र मेरे नयना। ऐसे सब जन बोले वयना।
यह अनुभव पुनि कैसे होई। जो नहिं आत्म ता विन कोई ॥२६९॥
मम प्रतीति विषे कर देखे। कुठार बरोवर ता जन पेखे।
ज्यों कुठार इंद्रिय त्यों हइये। आत्मता नहिं तामें पइये ॥२७०॥

याते मूर्छा मरण विषे डर जैसो कहिये करण गणों का मन में लय होने ते, जैसे मरण मूर्छा से सबको डर होवे है इन्द्रिय आत्म वाद में मरण सुषुप्ति में विशेष न होने ते, तैसो नाम वैसा ही मन में इन्द्रियों का लय होने कर सुषुप्ति विषे भी आत्म नाश की भावना से (डर) हुआ चाहिये ऐसे भये वहुडर कहिये उस डर को हृदय में मानकर कोई पुरुष नहीं सोवेगा औ सोये विना जाग्रत में पुरुषों को अनन्त दुख होवेगा याते एक एक इन्द्रिय को वा तिनके समुदाय को आत्मता नहीं बने, यद्यपि मरण काल में आत्मनाश की सम्भावना से भय नहीं होवे, किन्तु प्राणों के निकसने काल में होने वाले दुख के ज्ञान से भय होवे हैं औ सुषुप्ति में वैसे दुख का अनुसन्धान होवे नहीं याते तासे भय नहीं वने, यह आशंका होवे है, तथापि "प्राण निकसने काल में दुख होवे है" इसज्ञानरहित पशु पक्षियों को भी मरण से भय देखिये है याते मरण में आत्म नाश की सम्भावना से ही भय होवे है ऐसे भये आत्मनाश सम्भावना से सुषुप्ति से भी भय हुआ चाहिये ॥ २६६ ॥

आत्मता साधक अहं प्रतीति होने में क्या हेतु? यह आशंका निवारक हेतु सुनावन हेतु कहे "अरु पुनि" इति, ताको नाम इन्द्रियों में आत्मता साधक अहं प्रतीति का ॥ २६७ ॥

हेतु बतावे "अहम्" इति, किञ्च ममप्रतीतिका विषय होने ते कुठारवत् अनात्मा है यह कहे "अरु पुनि" इति ॥ २६८ ॥

सन्देह रहित प्रतीति दिखावे "मेरे" इति ॥ २६९-२७० ॥

या विधि वादी द्वितीय निवारे। अब तीसर यों वयन उचारे।

पूर्वपक्षी—

सत्य कह्यो इन्द्रिय यों नाहीं। प्राण आत्मा है भव माहीं ॥२७१॥
प्राण गए ते मृतक बतावें रहे ताहि जीवित ठहरावें।
जीवन मरण प्राण आधीन। ताते प्राण जीव कर चीन ॥२७२॥
क्रमकर इन्द्रिय गण सब गयो। तौ नहिं देह मृतक यह भयो।
त्यागन लगो देह को प्राण। इन्द्रिय गण होयो भय मान ॥२७३॥
देह विवर्ण होय तब गई। मरण रूप को उन्मुख भई।
प्राण कह्यो तुम मत भय पावो। मेरी शरण सकल मिल आवो ॥२७४॥
पंच रूप धार मैं लेवों। तन राखौं सुख तुमको देवों।
प्राण वचन यह वेद बखान्यो। चेतन प्राण ताहि ते जान्यो ॥२७५॥
प्राण प्यारे सब ते हइये। अधिक प्रेम आत्म में पइये।
धन अरु सुत ते अतिशय प्यारे। आत्म वेद सु निकर उचारे ॥२७६॥

तटस्थ कहे "या विधि" इति, तीसर का वयन कहे "सत्य" इति ॥ २७१ ॥

प्राणों को आत्मा में हेतु कहे "प्राण" इति ॥ २७२ ॥

इन्द्रिय प्राणों में परस्पर श्रेष्ठता विवाद भये ताकी परीक्षा हेतु ब्रह्मा के समीप जाकर हमारे में कौन श्रेष्ठ है ? प्रश्न किये, "जिसके जाने से शरीर मृतक होवे" यह उत्तर श्रवण कर क्रम से इन्द्रिय निकसे अन्ध मूकों का जीवन, औ प्राण निकसन लगे मरण दर्शन कर कहे "पुत्रों को मातावत् रक्षा करनो" या प्रजापति के वाक्य ते और ताही काल में "डरो मत" "पञ्चरूप धार कर मैं तुमारी रक्षा करूँगा" या प्राण के वाक्य ते ताको आत्मता सिद्ध होवे है यह कहे "क्रम कर" इति ॥ २७३ ॥

विवर्णता कहे "मरण" इति, उन्मुख-सन्मुख ॥ २७४ ॥

ताहिते—वेद वचन ते ॥ २७५ ॥

किञ्च परं प्रेमास्पदता रूप आत्मचिन्ह से भी प्राण आत्मा है यह कहे "प्राण" इति ॥ २७६ ॥

मैं खावों जल करहूँ पान । यह प्रतीति बड़ी बलवान ।
या विधि प्राण धर्म हैं जेते । आपन माहिं लखे जन तेते ।।२७७।।
ताते आत्म प्राण पछानो । सत्य कही संशय नहिं आनो ।

अव सिद्धान्ती प्राणात्मवादी के मत को खण्डन करे हैं ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

यों केचित बोले धरि आस । ताको मत अब होत निराश ।।२७८।।
प्राण अनातम हैं जड़ रूप । भौतिकत्व यह हेतु अनूप ।
अरु पुनि करण स्वामी जोई । वेद वखाने आतम सोई ।।२७९।।
जाग्रत स्पप्न भोग श्रम पाय । जीव जबे सुषुप्ति में जाय ।
घनानंद परमातम लीन । विशेष वृत्ति ते होवे हीन ।।२८०।।
प्राण विशेष वृत्ति को पावे । मुख नासिक मों आवे जावे ।
करण विराम कहो क्यों होई । ताको देव जबै नहिं होई ।।२८१।।
भूपति कर में खड्ग उठाई । युद्ध करे वैरिन सो जाई ।
सैनिक नहिं तब करे विराम । स्वामी सहित करे संग्राम ।।२८२।।

किञ्च अहन्ता भान से भी प्राण आत्मा है यह कहे "मैं" इति ।।२७७।।

ताते—क्षुधा पिपासा आदि रूप प्राण धर्मों को अपने में लखने ते, तटस्थ प्रति खण्डन की प्रतिज्ञा सुनावे "यों" इति ।। २७८ ।।

निराशता का बीज अनुमान कहे "प्राण" इति, यह हेतु नाम जड रूपता और भूत कार्यता यह अनात्मता साधक अनुपम हेतु है याते "प्राण अनात्मा होंने को योग्य है" जड होने ते, घटवत्" यह अनुमान सिद्ध होवे है, किञ्च इन्द्रियों के स्वामी को वेद आत्मा कहे हैं औ प्राणों को स्वामिता बने नहीं, याते अनात्मा है यह कहे "अरु पुनि" इति।।२७९।।

प्राणों को अस्वामिता स्पष्ट करे "जाग्रत्" इति, विशेष वृत्ति ते-चक्षु आदि द्वारा रूप आदिकों की उपलब्धि ते ।।२८०।।

विशेष वृत्ति का अर्थ कहे "मुख" इति करण विराम-इन्द्रियों की उपरति ।।२८१।।

अस्वामिता स्पष्टकर्ता दृष्टान्त कहे "भूपति" इति, सैनिक-सेना ।२८२।

करण लीन देखे सब कोई। ताते प्राणपति नहिं होई।
जीव संग होवे ते लीन। प्राण भिन्न स्वामी वह चीन ॥२८३॥

अब प्राणात्मवादी आक्षेप करता हैं।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

प्राण भिन्न जो स्वामी हइये। और सो सब सेना सम पइये।
जिहँ ठौर वह स्वामी जावे। प्राण सो काहि न ताहि सिधावे ॥२८४॥

अब सिद्धान्ती उक्त आक्षेप का वेदोक्त रीति अनुसार उत्तर देता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

यह शंका तुमरी है जोई। वेद निराश करे सुन सोई।
प्राणहि राखे अवर कुलाई। खेले आप स्वप्न में जाई ॥२८५॥
राजभार मंत्री शिर देवे। राजा भवनान्तर सुख लेवे।
त्योंहि देह धरे यह प्राण। स्वप्न रमे प्रत्यक् भगवान ॥२८६॥
ऐसे वेद बखाने वानी। प्राणभिन्न माने तिहँ ज्ञानी।
प्राण सदा चलते ही रहे। अचल आपको सब जन कहे ॥२८७॥

ताते-प्राणों की विशेष वृत्तिकाल में इन्द्रियों का लय देखने ते प्राण तिनका पति नहीं हो सके, किन्तु जीव संग लय होने ते प्राण भिन्न जीव स्वामी है यह कहे "जीव" इति ॥२८३॥

संग न जाने से प्राण भिन्न स्वामी नहीं यह आशंका करे "प्राण" इति ॥२८४॥

आशंका दूर करे "यह" इति, अर्थ ते वेद पढ़े "प्राणहिं" इति प्राणहिं कहिये प्राणों करके राखे अवर कुलाई नाम रक्षा करता हुआ अश्रेष्ठ आलने (घोसला) की जीव रूप पक्षी आप स्वप्न मों रमे है ॥२८५॥

दृष्टान्त से प्राणों का संग न जाना स्पष्ट करे "राजभार" इति, भवनान्तर-अन्तःपुर में ॥२८६॥

किञ्च प्राणों के चलते ही "मैं चलता नहीं" यह लोकों के अनुभव से भी प्राणों को आत्मता नहीं बने, यह कहे "प्राण" इति ॥२८७॥

'निष्कल निष्क्रिय' श्रुति बखाने। प्राण भिन्न ताते जन माने।
जो तैं कह्यो प्राण के गये। देहादिकसम मृतक भये ॥२८८॥
जीव गये ते मृतक होई। ताते जीव सु जान्यो सोई।
ताका उत्तर करौ बखान। सावधान मन भीतर आन ॥२८९॥
परलोक गमन हेतु उर मान। प्राण रचे प्रत्यक् भगवान।
तासो मिल जावे परलोक। बंधू जन सब करहैं शोक ॥२९०॥
जीव रहे तन जीवन होई। गए मृतक भाषे सब कोई।
ताते प्राण तुरग सम हइये। याते भिन्न आत्मा पइये ॥२९१॥
वेद कहीं प्राणन की बानी। सो नहिं प्राण देवता भानी।
प्राणन का अभिमानी जोई भाषे सकल देवता सोई ॥२९२॥
प्रेरक प्रेर्य कर अभेद। प्राण-शब्द कर भाषे वेद।
जो नहि माने ऐसे कोई। वचनांतर बाधक तिहँ होई ॥२९३॥

अनुभव से सक्रिय प्राणों ते निष्क्रियजीव को पृथक् सिद्ध करे "निष्कल" इति निष्कल-क्लेशहीन, निष्क्रिय-क्रियाहीन, परिहार हेतु पूर्व का अनुवाद करे "जो तैं" इति ॥२८८-२८९॥

उत्तर कहे "परलोक" इति ॥२९०॥

ताते-प्राणों के परलोक गमन का साधन होने ते, याते-प्राणों ते ॥२९१॥

पूर्व जो "पंच रूपधार मैं लेवों" या प्राण की वाणी ते तिनको आत्मता कही ताकी व्यवस्था कहे "वेद" इति, सो नाम वह वाणी, नहिं प्राण नाम प्राणों ने नहीं कही, किन्तु देवता भानी कहिये प्राणों के देवता ने कही है, संक्षेप ते कहो बात स्पष्ट करे "प्राणन का" इति ॥२९२॥

देवता की कही में प्राणों को वक्तापना क्यों कहा ? यह आशंका कर कहे "प्रेरक" इति, प्रेरक प्रेर्यकर अभेद नाम देव, प्राणों का तादात्म्य मानकर देवता को भी प्राण शब्द कर कहिये प्राण नामकर वेद ने कहा है, जैसे घृत खाने से आयु बढ़े है याते वेद में आयुवर्द्धक घृत को वर्द्धनीय आयु से अभिन्न कर "घृतआयु है" ऐसे कह्या है याहो ते प्रजापति का रक्षा उपदेश भी प्राणों को इन्द्रियों की अपेक्षा कर श्रेष्ठता साधक है,

अप्राण मन हीन स्वामी । निर्मल परम ज्योति अभिरामी ।
ऐसे क्यों पुनि वेद वखाने । प्राणभिन्न क्यों आतम ठाने ॥२९४॥
देह प्यारी इंद्रिय जैसे । प्राण प्रेम जानो सब तैसे ।
चिदानन्द को यहअध्यास । तहाँ होय यह प्रेम प्रकाश ॥२९५॥
प्राण माहिं हन्ता अभिमान । भाख्यो सो व्यभिचारी मान ।
कदाचित् सब जन ऐसे कहे । मेरे प्राण दुखी बहु रहे ॥२९६॥
मम प्रतीतिकर गोचर जोई । सद्म समान अनातम सोई ।
दीप्तिमान हंस इक न्यारो । सो आत्म उर अंतर धारो ॥२९७॥

कुछ आत्मता साधक नहीं, हठ ते न मानते को कहे "जो नहिं" इति, ऐसे-प्राण देवता ने कही है ऐसे, वचनान्तर-और श्रुतियाँ, तिंह कहिये न मानने का ॥२९३॥

अर्थ ते बाधक वचन पढ़े "अप्राण" इति अप्राण नाम प्राण-भिन्न ॥२९४॥

प्राणों को आत्मता साधक "प्राण प्यारे सब ते हइये" आदि कथन के परिहार हेतु कहे "देह" इति ॥२९५॥

"मैं खावों" इत्यादि आत्मता साधक कथन का परिहार करे "प्राण" इति, व्यभिचारीपना स्पष्ट करे "कदाचित्" इति ॥२९६॥

प्राणों को अनात्मता साधक अनुमान कहे "मम" इति, मम प्रतीति का गोचर कहिये विषय जो वस्तु है सो मन्दिरवत् अनात्मा है याते "प्राण, अनात्मा है, मम ज्ञान का विषय होने ते, सदनवत्" इस अनुमान से प्राणों को अनात्मता सिद्धि ते, आत्मा प्राणों से भिन्न है यह अवश्य मानो। भिन्न भये का स्वरूप क्या हृदय में धारण करे ? तहां कहे "दीप्ति" इति, दीप्तिमान कहिये अपनी ज्योति से प्रकाश वाला अर्थात् स्वयं प्रकाश रूप पुनः इक नाम एक ही, हंस कहिये अवस्था तीन में सञ्चारकर्ता जो पृथक् है यद्वा एक नाम अद्वितीय रूप से साक्षात् किया जो हंस नाम समूल बन्ध का नाशक है, यद्वा एक ही में औपाधिक मोद प्रमोद आदि सुख लेशों को पक्ष पुच्छादिरूपता निरूपण करने से हंस पक्षी रूप से कथन योग्य होने से एक हंस पक्षी रूप जो पृथक् है सो आत्म नाम वह अपना स्वरूप हृदय में धारण करो ॥ २९७ ॥

(भुजंगप्रयातछंद)

तटस्थ—

जबै प्राणवादी मतं मार डारे।
तबै आनवादी सु बैनं उचारे ॥
इसी भाँति बोले मनो मीत आये।
विरोधं विना जान संधं दिखाये ॥२९८॥

अब मन आतमवादी स्वमत का स्थापन करता है।

(चौपाई)

पूर्वपक्षी—

प्राण अनातम तैं जो भाख्यो। सत्य कह्यो उरमें हम राख्यो।
जो नहिं आत्म यह मन होई। तौ प्राणन को माने कोई ॥२९९॥
संघात विषे मन अहे स्वतंत्र। और सकल हैं ता परतन्त्र।
सावधान मन होवे जबही। ज्ञानादिक उपजावे तबही ॥३००॥
जो यह सावधान नहिं होई। ज्ञान उपावे कदे न कोई।
यहि युक्ति से आतम सोई। और न माने कोविद कोई ॥३०१॥
प्राणभिन्न अन्तर तिहँ रूप। मनोमय आत्म अहे अनूप।
ऐसे वेद सु मुखते गावे। प्राणभिन्न आत्म दिखलावे ॥३०२॥

तटस्थ अनुवाद करे "जबै" इति, संधं नाम अभिप्राय ॥ २९८ ॥

सन्धि-प्रकट करे "प्राण" इति, उर में रखने में हेतु कहे "जो" इति, माने कोई—जाने कौन ॥ २९९ ॥

मन को आत्मता सिद्धि में संघात में स्वतन्त्रता, तथा सावधानता असावधानता में ज्ञानादि उत्पत्ति, अनुत्पत्ति, की व्यवस्था हेतु कहे "संघात" इति ॥ ३०० ॥

यहि युक्ति से नाम मन के सावधान असावधान काल में ज्ञान की उत्पत्ति अनुत्पत्ति की व्यवस्था देखने ते ॥ ३०१ ॥

मन को आत्मता सिद्धि में "अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः" यह वेद वाक्य प्रमाण कहे "प्राण" इति ॥ ३०२ ॥

मैं संकल्प कियो अति भारा । मज्जन करूँ सुरसरी धारा ।
मनको धर्म संकल्प जो अहे । सो आपनमें सब जन लहे ॥३०३॥
या अनुभव ते आत्म हइये । मनसंदेह न यामें पइये ।

तटस्थ—

ऐसे केचित् करे बखान । दूषण गण मत दुष्ट पछान ॥३०४॥

सिद्धान्ती—

मन अनातम आतम नाहीं । विकारित्व हेतु ता माहीं ।
होय विकारी भव में जोई । खीर समान अनातम सोई ॥३०५॥
सो आत्म मनको उपजावे । ऐसे वेद प्रकट पुन गावे ।
उत्पत्तिमान जगत में जोई । घट ज्यों अहे अनातम सोई ॥३०६॥
ज्यों इंद्रिय है करण स्वरूप । त्यों मन करण न आतम रूप ।
स्वतंत्रता जो करी बखान । करण साधारण ते वह मान ॥३०७॥

अपने मे मनोधर्म संकल्प अनुभव ते भी मन आत्मा है यह कहे "मैं" इति, सुरसरो नाम गङ्गा ॥ ३०३ ॥

"मन" पूर्व के साथ (अन्वयकर लेना), तटस्थ समाप्ति करे "ऐसे केचित्" इति ॥ ३०४ ॥

सिद्धान्ती परिहार सुनावे "मन" इति, आत्मा न होने में हेतु कहे "विकारित्व" इति, विकारित्व कहिये विकार, ता माहीं नाम मन को आत्मा न होने में हेतु है याते "मन, अनात्मा है, विकारी होने ते, क्षीरवत्" या अनुमान से मन को अनात्मता है सोई स्फुट करे "होय" इति ॥ ३०५ ॥

मन को विकारीपने में अर्थ ते "तन्मनोऽकुरुत" यह श्रुति प्रमाण कहे "सो" इति ॥ ३०६ ॥

किञ्च करण आत्मा नहीं यह कहे "ज्यों" इति, करणता मन को, "सुखादिज्ञान, सकरणक है, क्रिया होने ते (कार्य होने से) छेदनवत्, या अनुमान से जान लेनी, मन को आत्मता साधक स्वतन्त्रता हेतु की व्यवस्था हेतु पूर्व का अनुवाद करे "स्वतन्त्रता" इति, करण साधारण ते— सर्व इन्द्रियों के सहकारी कारण होने ते ॥ ३०७ ॥

मन आधीन जो भाख्योज्ञान । ताही ते वह नयन समान ।
नयनकरण जैसे भव हेरे । त्यों मन करण वेदही टेरे ॥३०८॥
चाक्षुष ज्ञान नयन विन नाहीं । वृत्ति रूप त्यों मन विन नाहीं ।
करण विशेष नयन ज्यों गायो । मन साधारण त्यों दिखलायो ॥३०९॥
स्वरूप ज्ञान अखंडहि जोई । मन आधीन न होवे सोई ।
मनकीगतागती को जाने । स्वप्रकाश तिहँ श्रुति वखाने ॥३१०॥
अरुपुनि शुद्ध अशुद्धहि जोई । नीर समान अनातम सोई ।
मन यह शुद्ध अशुद्ध स्वरूप । कैसे होय सो आतम रूप ॥३११॥

रूप ज्ञान में अन्वय व्यतिरेक से चक्षु को करणतावत् "मन से ही देखता हूँ" "मन से ही सुनता हूँ" "अन्यत्र मन जाने से देखा सुना नहीं" ऐसे अन्वय व्यतिरेक से मन को करणता सिद्ध होवे है याते इन्द्रियोंवत् मन आत्मा नहीं, यह "सावधान होवे" इत्यादि कर कथित आत्मता के परिहार हेतु कहे "मन" इति, वेद ही टेरे नाम "मनसा ह्येय पश्यति" इत्यादि वेद कहे है ॥ ३०८ ॥

इस रीति से चाक्षुषज्ञान कहिये चक्षुजन्यरूपादिकों का वाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान जैसे नेत्र बिना नहीं होवे तैसे वृत्तिरूप कहिये सुखादिकों का आन्तरीय मानस ज्ञान, मनरूप करण विना नहीं होवे, याते चाक्षुष ज्ञान में नयन कहिये नेत्र जैसे प्रमाण विचार के ग्रन्थों में असाधारण कारण कथन किया, वृत्ति रूप ज्ञान में तैसे तहां मन दिखाया है ॥३०९॥

इस रीति से अन्तःकरण वृत्तिरूप ज्ञान को मनो अधीनता कहकर जीवभूत स्वरूप ज्ञान को मन की प्रकाशता कहे "स्वरूप" इति, मन अधीन न होवे सोई कहिये वह ज्ञान मनो जन्य नहीं, किन्तु स्वतः प्रकाश रूप होने ते मन की गतागती कहिये स्थिरता अस्थिरता को जाने है औ वेद भी ताको स्वप्रकाश कहे है ॥ ३१० ॥

किञ्च "जो जो शुद्ध अशुद्ध है सो सो अनात्मा है" यह नियम है याते "मन, अनात्मा होने को योग्य है, शुद्ध अशुद्ध होने ते, जलवत्" या अनुमान से भी मन अनात्मा है यह कहे "अरु पुनि" इति, "जो जो शुद्ध अशुद्ध है सो सो अनात्मा है" ऐसे दृष्टान्त में ग्रहणकरी व्याप्ति वाले हेतु के जोर से मन रूप पक्ष में अनात्मता साध्य का भाव कहे "मन"

अहार शुद्ध ते मनो सु शुद्ध । अहार अशुद्ध ते होय अशुद्ध ।
आतम सुनियो शुद्ध स्वरूप । सो नहिं होवे याहि स्वरूप ॥३१२॥
शुद्ध अपापविद्ध उदारे । ऐसे आतम श्रुति उचारे ।
प्राण भिन्न अंतर कर गायो । सो मन आतम श्रुति दिखलायो॥३१३॥
'अरुन्धती' दर्शन न्याय उदार। ताहि श्रुति उर अंतर धार ।
अंतर आतम करे वखान । ऐसे निज उर अंतर मान ॥३१४॥
याही ते मन अंतर ज्ञान । माता श्रुति सो करे वखान ।
मन अनुभव दिखलायो जोई । देहादिक सम जानो सोई ॥३१५॥

दोहा

आतम को अध्यास सुन, जा भीतर पुन होय ।
मूर्ख लोक अज्ञान सब, आतम माने सोय ॥३१६॥

इति, कैसे हीय सो आतम रूप कहिये किस प्रकार होवे वह मन अपना स्वरूप भाव यह—अनात्मता साथ नियम वाले शुद्धाशुद्ध रूप हेतु के बल से काहू रीति से नहीं हो सके ॥३११॥

मन में हेतु दिखावे "अहार" इति, वास्तविक आत्मा में कहे हेतु का अभाव कहे "आतम" इति, सो नहिं होवे याहि स्वरूप कहिये वह आत्मा नहीं होवे मन रूप अर्थात् आत्मा मन से भिन्न है ॥३१२॥

जिस वाक्यते शुद्ध स्वरूप सुना अर्थ ते वह वाक्य पढ़े "शुद्ध" इति, शुद्ध नाम रागादिमल रहित औ अपापविद्ध कहिये पुण्य पाप के स्पर्श रहित, उदारे–श्रेष्ठ है, ऐसे आत्मा को श्रुति कहे है। ननु जेकर मन आत्मा नहीं, तव श्रुति ने ताको आत्मता काहे दिखाई ? यह आशंका कर "अरुन्धती दर्शन न्याय" से वास्तविक आत्मा बोधनार्थ प्राणों से भिन्न कर कह्या यह कहे "प्राण" इति ॥३१३॥

प्राणों ते भिन्न अन्तर मन को जो आत्मता कथन है वह ऐसे तात्पर्य से है सोई कहे "अरुन्धती" इति, अरुन्धती का दिखावना रूप जो श्रेष्ठ युक्ति है ताहि नाम तिस न्याय से, श्रुति उर अन्तर धार कहिये वेद हृदय में रखकर "आत्मा अन्तर है" ऐसे कथन करे है ऐसे अपने हृदय में धारण करो ॥३१४॥

चौपाई

अरुपुनि ममता मन में होई । ताते जान अनातम सोई ।
मेरो मन गङ्गा में गयो । शब्द तुम्हारो सुनत न भयो ॥६१७॥

अव कर कृपा उचारो वयना । हे सुखदाते करुणा अयना ।
ऐसे सब जन बयन उचारे । ममधी गोचर मनो निहारे ॥३१८॥

उक्त न्याय में उरते ही "अन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः" ऐसे मन के भीतर विज्ञानमय आत्मा श्रुति कथन करे है, सोई कहे "याही ते" इति याही ते नाम अरुन्धती दर्शन न्याय में उरते ही, मन के अन्तर विज्ञान है ऐसे जिज्ञासु को मातावत् हित कारकता से श्रुति रूप माता कहे है, पूर्वोक्त न्याय का रूप दिखावे है=जहां अति सूक्ष्म दूर्विज्ञेय वस्तु जनावन की इच्छा कर क्रम ते, तिस तिस के समीपी वस्तु शास्त्र ने तद्रूप कही है तहां "अरुन्धती दर्शन न्याय" होवे है जैसे "ध्रुवम् अरुन्धती च दर्शयति" या वेद विधि के बल से वर और वधू को अरुन्धती दर्शन के अवश्य भये अतिशय सूक्ष्म को शीघ्र दिखावने में असमर्थता कर "अरुन्धती देखो" ऐसे कहे अरुन्धती से अति दूर काहू और को ही अरुन्धती रूप कर न जान लेवे, या भय ते अङ्गुली सामने कर प्रथम चन्द्रमा को ही अरुन्धती रूप कर कहे है, तदनन्तर चक्र के समीपवर्ती और तारों को कहे है, तदनन्तर इनके समीपवर्ती सात ऋषियो को कहे, तदनन्तर तिनके मध्यवर्ती वशिष्ठऋषि को कहे है, तदनन्तर तिसके समीपवर्ती सूक्ष्म रूप वास्तविक अरुन्धती को दिखावे है। ऐसे ही स्थूल दृष्टि जिज्ञासुओं को आत्मोपदेश में प्रवृत्त भई श्रुति "एष पुरुषोऽन्न रसमयः" इस प्रकार अन्नमय आदि कोशों को आत्मता कहने से सर्व की अपेक्षा कर परबोधन में तात्पर्य वाली है, याते मन को आत्मता नहीं यह श्रुति का मर्म है, पूर्व कहे "मैं संकल्प कियो अति भारा" इत्यादि आत्मता साधक अनुभव की क्या व्यवस्था जाने ? तहां कहे "मन" इति, मन अनुभव नाम "मैं संकल्प कियो" यह ॥ ३१५-३१६ ॥

किञ्च मम बुद्धि का विषय होने ते भी मन आत्मा नहीं बने यह कहे "अरु पुनि" ॥ ३१७-३१८ ॥

अब तटस्थ विज्ञान वाद मत का अनुवाद करता है।

तटस्थ—

सवैया

यों मनवाद हने जबही तबही इक और सु बैन उचारे।
हेर हते मन वाद सदा उर अंतर में अनुमोदन धारे॥
ज्ञान सु एक अहे निज रूप यही उर नीठ विचार निहारे।
जो अपनी मति आहि तिसे अनुसार तिसे श्रुति मान दिखारे॥३१९॥

चौपाई

मन अनात्मा तोहि बखान्यो। अहे साच नीके हम मान्यो।
मन भीतर जो भाख्यो ज्ञान। सो आतम माने विज्ञान॥३२०॥
अहंवृत्ति हइये विज्ञान। इदंवृत्ति मन नीके मान।
अहंवृत्ति जबे नहिं होई। इदंवृत्ति नहिं भाषे कोई॥३२१॥

तटस्थ अनुवाद करे "यों" इति, और का बैन कहे "ज्ञान" इति, ज्ञान सु एक अहे निज रूप कहिये ज्ञान ही एक अपना आप है यह हृदय में दृढ़ विचार देखे है औ विचार को प्रमाणिकता सिद्धि हेतुता में बुद्धि बल से विचारित श्रुति भी दिखावे है सोई कहे "जो" इति, जो अपनी मति आहि तिसे कहिये जो तिस विज्ञान वादी की निज बुद्धि है ताके अनुसार विज्ञान को आत्मता में "विज्ञानं यज्ञं तनुते" इत्यादि श्रुति प्रमाण कहे है, बुद्धि संकल्प का विस्तार करे है, यह श्रुत्यर्थ है, याते संकल्पात्मक मन का विस्तार करने से "अन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः" श्रुति सिद्ध बुद्धि ही अवधिभूत आत्मा है यह ताका तात्पर्य है॥ ३१९॥

अनुमोदन प्रकट करे "मन" इति, मन को अनात्मता नीके मानी तब आत्मा किसको मानते हो तहां कहे "मन" इति, मन भीतर जो भाख्यो ज्ञान कहिये "अन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः" ऐसे श्रुति ने मन के भीतर जो मन का कारण रूप विज्ञान कह्या, सो नाम वह हम आत्मा माने हैं॥ ३२०॥

मन विज्ञान शब्द वाच्य अन्तःकरण को एक होने ते, मन विज्ञान का कार्य कारण भाव कैसे ? यह आशंका कर कार्यकरण भाव कहने वास्ते प्रथम तिनका भेद दिखावे "अहम्" इति, मन विज्ञान का कार्य

"अहमस्मि"पहिले जब जाने। ता पाछे इदंत्व बखाने।
ताते प्रथम सिद्ध है जोई। विज्ञानात्मा जानो सोई ॥३२२॥
विज्ञान वाद मत हइये जोई। मन मे दुष्ट पछानो सोई।

अब सिद्धान्ती कोपत्रुक्त होकर विज्ञानवाद का खण्डन करता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

क्षणिक विज्ञान आत्मा हइये। उत अक्षणिक आत्मा पइये ॥३२३॥
प्रथमे क्षण विज्ञानहि जोई। आत्मरूप न होवे सोई।
ताहि निषेधक दूषण जेते। प्रथमनिवास बखाने तेते ॥३२४॥
बौद्ध मतो यह कियो निराश। तहँ कीने ते सकल प्रकाश।
अरुक्षण ज्ञान आत्मा होई। निमेष अभ्रविद्युत सम सोई ॥३२५॥

कारण भाव साधक अन्वय व्यतिरेक को दिखावे "अहम्" इति, अहं वृत्ति जिस काल में नहीं होवे तिस काल में इदं वृत्ति कोई नहीं कहे ॥ २२१ ॥

औ "अहमस्मि" नाम "यह मैं हूँ" ऐसे जब अपने आपको प्रथम जान लेवे तब तिससे पीछे "मेरा मन है" ऐसे इदं को कहे हैं—ताते नाम इदं को अहं का कार्य होने ते, प्रथम सिद्ध जो विज्ञान है सोई आत्मा मानो ॥ ३२२ ॥

तटस्थ समाप्ति करे "विज्ञान" इति, विज्ञान को आत्मता खण्डन हेतु सिद्धान्ती विकल्प करे "क्षणिक" इति, अक्षणिक नाम स्थिर ॥३२३॥

प्रथम का परिहार करे "प्रथमे" इति, आत्मरूप न होने में बीज कहे "ताहि" इति ॥ ३२४ ॥

प्रथम निवास में स्थान का निर्णय कहो ? "बौद्ध" इति, पूर्व कहे दोषों में प्रत्यभिज्ञा की अनुपपत्ति रूप एक दोष सूचन करे "अरु" इति, अरु क्षणज्ञान आत्मा जोई कहिये पुनः क्षणभंगुर बुद्धि रूप जो आत्मा है, वह अभ्र विद्युतवत् निमिष मात्र होवेगा एवं सति पूर्व कालवर्ती आत्मा को उत्तर काल में न होने ते "सोई मैं हूँ" यह प्रत्यभिज्ञा दूर होवेगी औ कथञ्चित् भ्रम रूप प्रत्यभिज्ञा अंगींकार किये भोजनादिको की हानि होवेगी याते क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा नहीं ॥ ३२५ ॥

द्वितीय सो आत्म नहिं होई । मनो समान जानिये सोई ।
अंतःकरण की दोनों वृत्ति । काल पाय के होय निवृत्ति ॥३२६॥
अरुपुनि अंतःकरण है जोई । मन विज्ञान पछानो सोई ।
निश्चय ते वह बुद्धि कहावे । करे संकल्प मनो हो जावे ॥३२७॥
विज्ञान अनात्म नीके जाने । जाते 'काठक' श्रुति वखाने ।

पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का उक्तार्थ में शंका समाधान ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—
ताहि अनातम भाख्यो कहाँ ।
सिद्धान्ती—**रथ रूपक दिखलायो जहाँ ॥३२८॥**

पूर्वपक्षी—
रथ रूपक वह भाखे कैसे ।
सिद्धान्ती—**प्रकट कहौं सुनिये अब तैसे ।**
आत्म को तुम रथी पछानो । शरीर एक रथ ताको जानो । ३२९॥

ननु कहे दोषों से मत होवे क्षणिक विज्ञान को आत्मता-स्थिर को ही रहो ? तहाँ कहे "द्वितीय" इति, द्वितीय कहिये अक्षणिक पक्ष में, सो नाम वह बुद्धि आत्मा नहीं होवे, न होने में हेतु कहे "मनो" इति, मनो समानता स्पष्ट करे—"अन्तःकरण" इति, अन्तःकरण की वृत्तिता अरु काल पाय कर निवृत्तिता तथा उत्पत्ति यह बुद्धि में मन समान है याते मनवत् बुद्धिको आत्मता नहीं बने ॥ ३२६ ॥

किञ्च अन्तःकरण को मन विज्ञान में एक कोई होने ते भी बुद्धि आत्मा नहीं बने यह कहे "अरु पुनि" इति, एक ह्म अन्तःकरण को मन बुद्धि शब्द वाच्यता में बीज कहे "निश्चय" इति ॥ ३२७ ॥

किञ्च आत्मा ते बुद्धि का भेद साध कर रथी रथवाही भाव कल्पना से भी बुद्धि को अनात्मता में रञ्चक सन्देह नही, यह कहे "विज्ञान" इति, काठक श्रुति—कठवल्लीउपनिषद्, कठवल्ली में निर्णय पूछे "ताहि" इति, स्थान कहे "रथ" इति ॥ ३२८ ॥

रथ रूपकता कैसे कही है सो कहो ? यह पूछे "रथ" इति, भाखे नाम कहे, उत्तर कहे "प्रकट" इति, आत्मको तुम रथी पछानो कहिये आत्मा

बुद्धि सारथी ता रथ माहीं । मन ही डोरी धर उरमाहीं ।
इंद्रियगण सब तुरग कहावे विषय पंथ जिहँ माहिं सिधावें ॥३३०॥
आतम इंद्रिय मन संयुक्त । भोग विषे होवे अनुरक्त ।
या विधि एक श्रुति है जोई । आत्म बद्ध बखाने सोई ॥३३१॥
दुष्ट इंद्रिय दुष्ट विज्ञान । आतम बंधन हेतु पछान ।
अरु पुनि द्वितीय श्रुति है जोई । आतम मुक्त बखाने सोई ॥३३२॥

भोक्ता होने ते प्रधान हैं याते जिसको तुमरथी-रथ का स्वामी जानो, औ स्थूल शरीर भोगन का स्थान है याते गौणता से शरीर एक रथ कहिये स्थूल शरीर ही एक तिसका रथ जानो ॥ ३२९ ॥

विवेक औ अविवेक रूप वृत्तियों से बुद्धि स्थूल शरीर द्वारा भोक्ता आत्मा को सुख-दुख विषे प्राप्त करे है, याते ता रथ माहीं कहिये तिस आत्मा के रथ विषे बुद्धि सारथि-रथ वाही हैं, विवेकी (पुरुष) शुद्ध मन से विषयों ते इन्द्रियो को रोक लेवे है, और अविवेकी ता अशुद्ध मन द्वारा इन्द्रियों को विषयों विषे प्रवृत्त करे है या कारण से मन ही डोरी कहिये रथ वाही के हाथ में वागडोर हृदय में धारण करो, संयम से रोके इन्द्रिय मुक्त दरवाजे में प्राप्त करे है, संयम रहित हुये इन्द्रिय अनर्थ रूप संसार में प्राप्त करे है याते इन्द्रिय गण नाम इन्द्रियों को समुदाय सम्पूर्ण तुरग नाम अश्व कहावे है, जैसे अश्व मार्ग को देखकर चले है, तिस प्रकार श्रोत्रादिक इन्द्रियरूप तुरग अपने अपने शब्दादिक विषयो को देखकर तिन में चले है याते शब्दादिक विषयों को मार्गता कथन है, इस रीति से रथादिकों की अपेक्षा कर रथी आत्मा विषय मार्ग में भोंगों विषे अनुरक्त होवे है॥३३०॥

ननु कही रीति से विषय मार्ग में भोगों विषे रथी को रथादिकों की अपेक्षा नहीं सम्भवें, काहे ते ? आत्मा चिद्रूप है याते ताको चिद् रूपता स्वभाव से ही सुख दुख साक्षात्काररूपभोग सम्भवे है तहाँ कहे "आतम" इति, आत्मा असंग है, याते इन्द्रियों के सम्बन्ध बिना भोग की योग्यता न होने से इन्द्रिय मन संयुक्त हुआ ही आत्मा भोग विषे कहिये सुख दुख के साक्षात्कार विषे, अनुराग को प्राप्त होवे है । या विधि कहिये इस रीति से, एक श्रुति से संयम रहित इन्द्रिय विज्ञान के योग से आत्म नाम पुरुष को बन्ध कहे है ॥ ३३१ ॥

सोई कहे "दुष्ट" इति, दुष्ट नाम संयम रहित, पुनः दूसरी श्रुति

विज्ञान सारथी जाको हइये। मन डोरी कर जाके पइये।
सो नर मार्ग पारहि जावे। विष्णु परम पद्वी को पावे ॥३३३॥
शुद्ध सारथी हइये जोई। मुक्ति हेतु पहिचानो सोई।
या विधि आतम रथी बताये। विज्ञान सारथी ताके गाये ॥३३४॥
आत्म ते न्यारो है जोई। नीके होय अनातम सोई।
अपंचीकृत पंच भव भूत। अंतःकरण ताहि को पूत ॥३३५॥
ताकी अंश एक है जोई। विज्ञान कहावे भव में सोई।
पूर्वसिद्ध भूत पहिचानो। ताको आत्म काहि न मानो ॥३३६॥

शुद्ध मन रूप जिसके हाथ में डोरी है ऐसे शुद्ध सारथि को मुक्ति हेतु कहे है सोई कहे "अरु पुनि" इति ॥ ३३२ ॥

अर्थ ते श्रुति कहे "सो" इति, सो नर—इन्द्रिय विज्ञान के संयम वाले पुरुष, मार्ग पारहि—विषय रूप मार्ग से शून्य निर्विषय स्थान में प्राप्त होवे है, सोई स्थान कहे "विष्णु" इति, विष्णु परम पद्वी को पावे कहिये इन्द्रियों से अर्थ परे हैं, अर्थन से मन परे हैं, मन से बुद्धि परे है, बुद्धिसे महतत्त्व परे है, महतत्त्व से अव्यक्त परे है, अव्यक्त से पुरुष परे है, पुरुष अवधि रूप पर है, तासे परे और कोई नहीं, ऐसे कठवल्ली में कहीं रीति से व्यापक आत्मा के परम स्थान को प्राप्त होवे है यासे आगे और प्राप्य स्थान नहीं ॥ ३३३ ॥

इस रीति से जो शुद्ध कहिये संयम सहित बुद्धि रथवाही है वह पुरुष की विष्णु पद प्राप्ति रूप मुक्तिका हेतु जानो, या विधि—इस रीति से रथी नाम आत्मा रथ स्वामी कह्या हैं कठमें और विज्ञान नाम बुद्धि तिसका रथवाही कह्या है ॥ ३३४ ॥

ननु रहो विज्ञान सारथि, आत्मा रथी, प्रकरण में क्या निकसा ? यह आशंका कर कहे "आत्म" इति, आत्म—अपने आप से जो रथादि रूप भिन्न वस्तु है, वह भली प्रकार अनात्मा है इस रीति से बुद्धि को अनात्मता निकसी है, अनात्मा रूप बुद्धि को आत्मता अंगीकार में हठ है तो लाधव ते अन्तःकरण के कारणरूप भूतों को ही आत्मा मान यह कहे "अपंची कृत" इति, पूत नाम कार्य ॥ ३३५ ॥

ताकी नाम भूत कार्य अन्तःकरण की जो एक निश्चय रूप अंश है,

ताते तेरो यों विज्ञान । ताहि अनातम नीके मान ।
मन अंतर जो ताको गायो । मन अपेक्ष न अवधि दिखायो ॥३३७॥
ता भीतर आनंद बखान्यो । मन अपेक्ष्य तही हम जान्यो ।
सो आनंदमय आत्म नाहीं । ताकी गणना कोशन माहीं ॥३३८॥
पूर्व चार कोश ज्यों हइये । पंचम कोश तथा वह पइवे ।
इन सबही ते न्यारो आहि । मनीषी आतम भाषे ताहि ॥३३९॥

वह संसार में विज्ञान कहिये बुद्धि कहावे है अब जेकर ताको आत्म मानो तब भूतों को ही मानो यह कहे "पूर्व" इति, ताको आत्म काहि न मानो कहिये विज्ञानअंशीअन्तःकरण के कारण रूप भूत को ही आत्मता किस वास्ते नहीं मानते "अक्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्" अर्थात् गृहकोण में मधु मिले पर्वत में तदर्थ जाना निष्फल या न्याय से तिनको ही माने है ऐसे कहो तब चार्वाक मत खण्डन में कहे दोषों से सो भी नहीं सम्भवे याते सिद्ध हुआ बुद्धि भली प्रकार अनात्मा है ॥ ३३६ ॥

सोई कहे "ताते" इति "मन भीतर जो भाख्यो" इत्यादि बुद्धि को आत्मता साधक कथन की व्यवस्था लावे "मन" इति ॥ ३३७ ॥

मन आपेक्ष्य कैसे जाने तहाँ कहे "ता" इति, तही नाम ताते, होवे तब आनन्दमय को ही आत्मता ? तहां कहे "सो" इति, नहीं में हेतु कहे "ताकी" इति, अर्थात् आनन्दमय की गिनती कोशों में है याते "आनन्दमय, अनात्मा है, कोश होने ते, अन्नमयआदिवत्" या अनुमान से ताको आत्मता नहीं बने ॥ ३३८ ॥

कोशता स्पष्ट करे "पूर्व" इति, पूर्व चार कोश ज्यों हइये कहिये पहले अन्नमय आदिक जैसे चार कोश हैं, तेसे "ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा" (इस) श्रुति में आनन्दमय का अधिष्ठान भूत साक्षी अतिरिक्त प्रतिपादन करने से अध्यास का मूलभूत अविद्यात्मक आनन्दमय भी पञ्चम कोश है याते अनात्मा है, ऐसे भये आत्मा बुद्धिमान् किसको कहे हैं ? तहां कहे "इन" इति ॥ ३३९ ॥

अब जैनमतावलम्बी स्वमत का स्थापन करे हैं।

(भुजङ्गप्रयात छन्द)

तटस्थ—

जबै ज्ञानवादी मतं दूर कीने।
तबै जैन बोले मतं आप लीने॥
वही आहि रूपं न औरं दिखारैं।
सुमानं तिसे आज नीके उचारैं॥३४०॥

चौपाई

मध्यम मान ताहिको जानो। तन समान नहिं औरे मानो।
या विधि जैनी अवसर पाय। निजमत को दीनो दिखलाय॥३४१॥

अब सिद्धान्ती तटस्थ को अभिमुखकर पूर्व पक्षी के मत
का विकल्पों कर खण्डन और प्रश्नोत्तररूप सम्वाद।

चौपाई

सिद्धान्ती—

ताहि सिद्धांत होय ज्यों हाने। सो विधि कोविद प्रकट वखाने।
जे वह हइये मध्यम मान। कर्माधीन देह तिहँ आन॥३४२॥
होवे प्रथम विजाती और। तामें किह विधि पावे ठौर।
प्रथम देह चींटीकी अहे। द्वितीय गजेन्द्र की वह गहे॥३४३॥

तटस्थ अनुवाद करे "जबै" इति, जैन का वाक्य कहे "वही" इति, वही आहि रूपं कहिये जाको मनीषी पञ्चकोशों से न्यारा कहे हैं सोई स्वरूप है पांचो में और कोई नहीं, परिमाण तिसका अब हम सुनावे हैं॥ ३४०॥

मान कहे "मध्यम" इति, मध्यम मान का अर्थ कहे "तन" इति, तटस्थ समाप्ति करे "या विधि" इति, निज मत को नाम मध्यम मान रूप अपने मत को॥ ३४१॥

सिद्धान्ती कहे "ताहि" इति, कोविद-पण्डित, प्रश्न व्याज से पण्डितों का कह्या प्रकार स्फुट करे "जे" इति॥ ३४२॥

आन का अर्थ कहे "होवे" इति "कर्माधीन" अक्षरों से लेकर कहो बात को दृष्टान्त से स्पष्ट करे॥ ३४३॥

पूर्णहि ताको किह विधि करे । खाली रहे भाग ता परे ।
अथवा गज आत्म है जोई । चींटी तनको धारे सोई ॥३४४॥
तामें कैसे जाय समाय । अर्धभाग बाहर रहि जाय ।
पूर्वपक्षी—
ननु अवयव ताहिके जेई । बाध घाट होवे सब तेई ॥३४५॥
गजकी देह धरे बढ़ जावे । चींटी देह धरे घट जावे ।
सिद्धान्ती—
अवयववंत जे आत्म होई । घटज्यों नाश होयगो सोई ॥३४६॥
नाश परे नहिं दूषण और । याते आप न पावे ठौर ।
ताते मध्यम मान न सोई । और मान को तामें होई ॥३४७॥

अब जैनमत निराश के अनन्तर अणु आत्मवादी के
मत का खण्डनरूप प्रश्नोत्तर कहते हैं :

चौपाई

तटस्थ—
जैन मतो जब यों परिहार्‍यो । अणुवादी तब बैन उचार्‍यो ।
पूर्वपक्षी—
अणु आतम हइये चिद् रूप । ईश अंश गुण ज्ञान अनूप ॥३४८॥

ताको— गजेन्द्र की देह को ॥ ३४४ ॥

पात्र ते गृह और गृह ते पात्र गत दीपक के संकोच विकासवत् इहां भी अवयवों के संकोच विकास से व्यवस्था बने है, यह उत्तर कहे "ननु" इति ॥ ३४५ ॥

परिहार करे सिद्धान्ती "अवयववन्त" इति ॥ ३४६ ॥

नाश परे और दोष न होने में बीज कहे—"याते" इति, ताते–नाश रूप दोष ते, मध्यम मान न सोई नाम मध्यम परिमाणवाला नहीं वह, किन्तु और कोई परिमाण वामें मानो ॥ ३४७ ॥

तटस्थ कहे "जैन" इति, अणुवादी का बैन कहे "अणु" इति, गुण ज्ञान कहिये ज्ञान गुणवाला ॥ ३४८ ॥

बालाग्र के कर शत भाग । बहुर करे गहि शतं विभाग ।
तामों एक भाग जो होई । ताहि समान जानियो सोई ॥३४९॥
अणुते अणु जो वेद बखाने । याते अणु पण्डित जन माने ।
सो तन एक देश में रहे । शीत उष्ण सकले की गहे ॥४५०॥
तन व्यापक है ता गुणज्ञान । ता कर गहे न है अज्ञान ।
जातीचंदन इक देश लगावे । तनु सकले में शीत उपावे ।४५१॥
वस्तुशक्ति आचिंती होई । यामें शंका बने न कोई ।
मंद समीर आपमें पाय । पद्मवास दशदिश को जाय ॥३५२॥

ननु त्रसरेणु के छठे भाग सम अणु है वा काहू और सम अणु है यह आशंका कर अणुप्रतिपादक श्रुति कहे "बालाग्र" इति, बाल के अग्र भाग के शत भाग नाम सौ टुकड़ा करके पुनः तिसमें एक भाग का आगे शतं विभाग नाम सौ टुकड़ा कर, तामों नाम तिन शत में जो एक भाग हे तिसके तुल्य अणु आत्मा जानो ॥ ३४९ ॥

अणु ते—बालाग्र के शत में भाग रूप अणु ते अणु नाम ताका शतमां भाग रूप जो अणु, तत् सदृश जीव है ऐसे वेद कहे हैं, याते—याही ते, "अणोरणीयान्" इत्यादिक श्रुतियों से भी जीव को अणुता पण्डित अंगीकार करे हैं, अणु से एक काल में ही सर्वशरीर के शीतादिकों का ग्रहण नहीं बनेगा याते विभु मानो ? या आशंका के परिहार हेतु कहे "सो" इति, सो नाम वह अणु आत्मा ॥ ३५० ॥

कैसे ग्रहण करे है तहां कहे "तन व्यापक" इति, ताकर नाम ज्ञान कर, एक देश में स्थित को सर्व की ग्राहकता में दृष्टान्त कहे "जाती-चन्दन" इति ॥ २५१ ॥

एक देश स्थित चन्दन को सर्वत्र शीत जनकता में क्या कारण ? वा एक देश स्थित चन्दन को शीत जनकता कैसे ? तहां कहे "वस्तु" इति, वस्तु का बल आचिंती कहिये यामें क्या कारण ऐसे कारणता चिन्तन से, वा यह कैसे ऐसे आक्षेप चिन्तन से रहित होवे है, अन्यथा सर्वत्र इन दो का चिन्तन प्राप्त हुआ अग्नि आदिकों को उष्ण स्वभावता की हानि होवेगी, याते यामें कहिये जाती चन्दन को एक देश में होकर सारे मों शीत उपावन में आशंका कोई नहीं बने, एक दृष्टान्त से एक

त्यों गुण ज्ञान गुणी विदेश । जावे नहिं संशय की लेश ।
या विधि सात्वतमन्य वखाने । विन परखे नहिं कोविद माने ॥३५३॥

सिद्धान्ती—

हे सात्वत अणु आत्म गावें । तामें मान श्रुति दिखलावें ।
सो तैं एक श्रुति दिखलाई । यही वेदमें और न काई ॥३५४॥
सो अनंत महतो महियान । विभु अखंड सु गगन समान ।
यों भी वेद वखाने वानी । ताते विभु माने तिहँ ज्ञानी । ३५५ ।
उपाधि संग अणु भी हो जाय । बिना उपाधि अनंत कहाय ।
नातर कहूंक अणु परिमाण । कहूं कह्यो अंगुष्ठ समान ॥३५६॥
कहूँ नखाग्र लौं दिखलायो । कहूं अनंत रूप कर गायो ।
कहूं सु कहे 'प्लुषि' के समान । कहूं दिखावे गज को मान ॥३५७॥

देश स्थित गुणी को सर्व शीत ग्राहकता सिद्धकर और दृष्टान्त से ताके गुण को व्यापकता सिद्ध करे "मन्द" इति ॥ ३५२ ॥

त्यों नाम पद्म की गन्ध रूप गुणवत् आत्मा का ज्ञान गुण, विदेश कहिये आत्म के अधिकरण देश से भिन्न देश में जावे है यामें सन्देह की लेश नहीं ॥ ३५३ ॥

सिद्धान्ती कहे "हे" इति, तामें नाम आत्मा की अणुता में प्रमाण श्रुति दिखावता है सो तुमने जो अर्थ ते "अणोरणीयान्" यह श्रुति दिखाई है क्या वेद में वही श्रुति है और कोई नहीं, अपि तु आत्मा को विभुता प्रतिपादक और भी वाक्य हैं याते अणुता नहीं बने ॥ ३५४ ॥

अर्थ ते विभुता प्रतिपादक श्रुतियां पढ़े "सो" इति, महतो महियान बड़े ते बड़ा, अर्थ ते श्रुत्यन्तर पढ़े "विभु" इति, ताते—वेद ने विभु कहने ते ॥ ३५५ ॥

ननु वास्तविक ते विभु है तब अणुता कैसे ? तहां कहे "उपाधि" इति, अणुता को औपाधिक और विभुता को वास्तविक होने ते श्रुतियों का परस्पर विरोध भी नहीं यह भाव है औपाधिक अणुता न मानते को विनिगमनाविरह ते अनेक प्रमाणापत्ति रूप दोष कहे "नातर" इति ॥ ३५६ ॥

प्लुषि नाम मच्छर ॥ ३५७ ॥

या विधि भाषे मान अनंत । कहो कौन माने अब संत ।
युक्ति दृष्टि कर देखे कोई । तौ अणु रूप न आत्म होई ॥३५८॥
अणुतनु एक देश में होवे । शीत उष्ण सकलै नहिं जोवे ।
सकल अंग संबंध न ताको । कैसे गहे सकल में वाको ॥३५९॥
क्रम कर एक एक में जावे । तौ युगपद् नहिं ज्ञान उपावे ।
सर में मग्न होय नर जोई । युगपद् शीत लखे सब कोई ॥३६०॥

"भाषे" आगे वेद शेष (कर लेना) अब—विचार काल में, सन्त नाम श्रेष्ठ पुरुष कौन प्रमाण माने अर्थात् विनिगमनाविरह ते कोई नहीं मानेंगे, याते बुद्धिरूप उपाधि सम्बन्ध से न्यून परिमाणता रूप अणुता औपाधिक है औ विभुता सर्वदा स्वाभाविक है यह अवश्य मानना सो यह वार्ता केवल श्रुति सिद्ध ही नहीं, किन्तु युक्ति रूप निगाह कर देखे तौ भी यही सम्भवे है सोई कहे "युक्ति" इति ॥ ३५८ ॥

अणु आत्मा सर्वाङ्गो में युगपत् शीत आदि ग्रहण करे है वा क्रमसे ग्रहण करे है? इन विकल्पों में प्रथम के अंगीकार में दोष कहे "अणु" इति, अणु तन एक देश में कहिये अणु रूप आत्मा शरीर के एक अंग में ही होवेगा याते सकले कहिये शरीर के सर्व अंगों में शीत उष्ण के प्रत्यक्ष को नहीं प्राप्त होवेगा, काहे ते? सकल कहिये सम्पूर्ण करचरणादि रूप अंगों में ताका सम्बन्ध नाम युगपत् संयोग नहीं बने याते युगपत् सम्बन्ध बिना कैसे कहिये किस रीति से ग्रहण करेगा युगपत् सर्व अंगों में वाको नाम शीत उष्ण को अर्थात् सम्बन्ध बिना ग्रहण माने एक शरीरवर्ती आत्मा को अन्य शरीरों में भी शीत उष्ण के ग्रहण प्रसंग से काहूरीति से नहीं करेगा ॥ ३५९ ॥

कहे दोष से दूसरा कहो तब युगपत् ज्ञान नहीं उपावेगा यह कहे "क्रम कर" इति, क्रमकर एक एक में जावे कहिये प्रथम चरण तदनन्तर ऊपर तदनन्तर जानु आदि रूप एक-एक अंग में जावे है ऐसे कहो तब युगपत् नाम एक काल में शीत उष्ण का ज्ञान नहीं आत्मा उत्पन्न करेगा अर्थात् युगपत् शीत उष्ण का अनुभव आत्मा को नहीं होवेगा औ अनुभव होवे है सोई कहे "सर में" इति, सर में मग्न कहिये जो पुरुष सरोवर में स्नान करे है वह सब शीत उष्ण को एक काल में लखे है याते क्रम से ज्ञान उत्पत्ति को अनुभव विरुद्ध होने ते आत्मा को अणुता नहीं बने यह एक प्रकार युक्ति निगाह से अणुता की असिद्धि कही ॥ ३६० ॥

अणु आतम तनु अणुमें संगा । अणुते भिन्न न भेटे अंगा ।
आतमआश्रय जो अणु अहे । तामें जल कहु कैसे रहे ॥३६१॥
मूर्तद्रव्य अहे द्वय जोई । एक देशमें रहे न दोई ।
जल अब भिन्नदेशमें जोई । ताको अनुभव कैसे होई ॥३६२॥
यद्यपि ता अणुमों जल माने । तदपि ताहि न कोई जाने ।
अणु अतिरिक्त नते जल होवे । अणु अतींद्रय ताहि न जोवे ॥३६३॥

अब द्वितीय रीति से अणुता की असिद्धि कहे "अणु" इति, अणु रूप आत्मा का तन के अणु मात्र स्थान साथ सम्बन्ध होवेगा, तन के अणु मात्र स्थान ते भिन्न नाम अधिक, नहीं भेटे कहिये छूहेगा अवयव, किन्तु सूक्ष्म पक्षी का पिंजरे के किंचिद् देश साथ ही सम्बन्ध देखने ते अणु स्थान साथ ही छूहेगा, ऐसे भये अणु आत्मा का आश्रय नाम अधिकरणरूप जो तन का अणु देश है तिस विषे आत्म रूप मूर्तद्रव्य के साथ मिल के जाके शीत का अनुभव करना है वह जल कैसे रहेगा अर्थात् एक घटभूत मूर्तद्रव्य मात्र के टिकने की जगह में दूसरे घट रूप मूर्तद्रव्य का टिकना न देखने ते काहू रीति से नहीं रहेगा ॥ ३६१॥

सोई कहे "मूर्त" इति, यद्यपि महत्व परिमाण वाले काल आकाश दिशा ईश्वर, यह एक काल में एक देश में रहे है, तथापि मूर्तद्रव्य कहिये परिच्छिन्न परिमाण वाले जो दो द्रव्य वह एक देश नाम एकाधिकरण में एक काल में रहे नहीं, याते आत्म रूप मूर्तद्रव्य के अधिकरण देश से भिन्न देश में वह जल कहना होवेगा ऐसे भये अपने साथ सम्बन्ध हीन शीत जल का ग्रहण माने अतिव्याप्ति दोष के प्रसंग ते शीत जल का अनुभव काहू रीति से नहीं होवेगा ॥ ३६२ ॥

"दुर्जन तोष न्याय" से आत्मा के अधिकरण रूप अणु देश में ही जल अङ्गीकार करो, तो भी ताका ज्ञान किसी को नहीं होवेगा यह कहे "यद्यपि" इति, न जानने में हेतु कहे "अणु" इति, "ते जल अणु अतिरिक्त न होवे" यह अन्वय कर चीटी के विल्ल में हस्ती का प्रवेश न देखने से वह जल अणु से अतिरिक्त कहिये अधिक नहीं होवेगा अपितु अणु परिमित ही होवेगा, ऐसे भये अणु को इन्द्रियों का अविषय होने ते, ताहि कहिये तिस अणु मात्र जल को आत्मा प्रत्यक्ष नहीं कर सकेगा

जो तैं भाख्यो ता गुण ज्ञान । देह व्यापक देह समान ।
सो तो आतम जो जड़ होई । तो गुण ज्ञान कहे तिहँ कोई ॥३६४॥
आतम चिद अरु सो चिदरूप । सो नहिं गुणी न सो गुणरूप ।
तुल्य धर्म जाको पुनि होय । गुण अरु गुणी न भाखे कोय ॥३६५॥
रूप न गुणी रुपांतर केरे । रस रसांतर के नहिं हेरे ।
अतुल्य धर्म तामें जड़ मानो । तो गुण ताको ज्ञान वखानो ॥३६६॥

याते कहे दोषो से आत्मा को अणुता नही बने यह दूसरी युक्ति रूप निगाह है ॥ ३६३ ॥

पूर्व जो सकल शरीर व्यापी ज्ञान गुण से शीतादिक का ग्रह होवे है यह कही ताके परिहार हेतु कहे "जो" इति, जो तैं भाख्यो नाम "तन व्यापक है ता गुण ज्ञान" या पाठ से तिस आत्मा का देह समान ज्ञान गुण व्यापक कह्या, सो तो नाम वह पुनः तुमारा कहना जेकर आत्मा, जड़ होई कहिये ज्ञान हीन होवे तब ज्ञान आत्मा में गुण है ऐसे कोई कहे ॥ ३६४ ॥

तुमने पुनः "अणु आतम हइये चिद् रूप" ऐसे आत्मा चिद् रूप कह्या तथा ज्ञान चित् शब्दों को पर्यायिता से, सो नाम वह ज्ञान भी चिद् रूप कह्या याते चिद्रूपपने तुल्य धर्म ते सो नहिं गुणी नाम वह चेतन आत्मा गुणी नहीं औ न सो गुण रूप कहिये वह ज्ञान गुण रूप नहीं बने सोई कहे "तुल्य" इति ॥ ३६५ ॥

तुल्य धर्म वाले पदार्थों को गुणगुणी भाव की असिद्धि दृष्टान्त से स्पष्ट करे "रूप" इति रूप न गुणी रूपान्तर केरे कहिये रूपत्व रूप तुल्य धर्म वाला होने ते नीलरूप पीतरूप का गुणी नहीं तथा रसत्व रूप समान धर्म वाला होने ते मधुररस अमलरस का गुणी नही देखा, किन्तु द्रव्यत्व रूप अतुल्य धर्म वाले द्रव्य को ही रूप रसादिको का गुणी भाव देखने से चेतनत्व रूप तुल्य धर्म वाला आत्मा चेतन रूप तुल्य धर्म वाले ज्ञान का गुणी नहीं बने, बनावने में हठ है तो ता में नाम आत्मा में चिद्पनेरूप तुल्य धर्म वाले ज्ञान गुण से जड़ कहिये जड़तारूप अतुल्य धर्म अर्थ ते प्रथम मानो, तो—तब ज्ञान आत्मा का गुण है ऐसे कहो ॥ ३६६ ॥

आत्मको जड़ जबै बखानै । होय सिद्धांत तोहि तब हानै ।
तौभी अणु गुण अणुमें होई । भिन्न देश नहिं जावे सोई ।३६७॥
गुणी त्याग जाय गुण जोई । गुणत्व हानि ता गुणको होई ।
पद्मवास दृष्टांत असंगत । सो कैसे तिहँ पाये संगत ।३६८॥
पुहुपरेणु प्रभंजन प्रेरे । पसरे जहिं तहिं गंध बिखेरे ।
याही ते चिर स्थिति जोई । पद्म गंध तनु तामें होंई ।३६९॥
कर्पूर परिमाण अल्प ह्वै जाई । देखे सब जन सहज सुभाई ।
पूर्वपक्षी—
ननु त्यों ही कस्तूरी माहीं । अल्प परिमाण झुरे जन ताहीं॥३७०॥

वैसे ही कहे है ? ऐसे कहते प्रति "हइये चिद् रूप" ऐसे पूर्व कहिये सिद्धान्त की हानि दोष कहे "आत्म" इति, सिद्धान्त हानि रूप दोष सिर पर रख कर आत्मा में ज्ञान गुण मानो तौ भी अणु के गुण को अणु मात्र स्थान में होने ते सर्व अंगो में शीतादिक का ग्रहण नहीं होवेगा यह सूचन करे "तौ भी" इति, तौ भी—सिद्धान्त हानि मान कर गुण माने भी अणु आत्मा का गुण अणु मात्र स्थान में ही होवेगा, अणु से भिन्न देश नाम अधिक में वह नहीं जावेगा ॥ ३६७ ॥

भिन्न देश विषे न जाने में गुणत्व हानि रूप हेतु कहे "गुणी" इति, गुणी आत्मा को छोड़कर गुण का जाना पद्म वासवत् बने है ? यह आशंका श्रवण कर दृष्टान्त की असंगति कहे "पद्म" इति, सो कैसे तिहँ पाये संगत नाम वह ज्ञान गुण के जाने में कैसे संगत होवे है अर्थात् काहू रीति से नहीं होवे ॥ ३६८ ॥

काहू रीति से संगत न होना प्रकट करे "पुहुप" इति पुहुपरेणु कहिये फूल के त्रसरेणु रूप अवयव, वायु के प्रेरे नाम चलाये हुए जहाँ-जहाँ पसर कर बिखेरे कहिये अपनी गन्ध का प्रकाश करे है याही ते जो चिर काल के स्थित पद्म होवे है तामें तनु कहिये गन्ध थोड़ी हो जावे है ॥ ३६९ ॥

तैसे कर्पूर नाम मुशककर्पूर का परिमाण स्वल्प हो जावे है यह सर्व देखे हैं । गन्ध का गमन छोड़कर गन्धवाले अवयवों का गमन माने कर्पूरवत् कस्तूरी के अवयवों का गमन भये वजन घटने से पुरुषों को

सिद्धान्ती—

ऐसी शंका मत उर धारो। उत्तर यामें प्रकट विचारो।
भोग हेतु कर्म जन जेई। पुनि उपजावै तैसे तेई ॥३७१॥
जैसे अंश निकस तहिं जावै। तैसे कर्म और उपजावै।
ताते नाहिं झुरे जन ताहीं। हर्ष होय सकल मनमाहीं ॥३७२॥
जातीचंदन जो दिखलायो। सर्व शीत नहिं ताहि उपायो।
देह विषे है नीरविभाग। घनीभूत है नाहिं सु जाग ॥३७३॥

झूरना पड़ेगा, याते गन्ध का गमन मानना ही उचित है? यह आशंका करे "ननु" इति, त्यों ही कस्तूरी माही कहिये कर्पूरवत् ही कस्तूरी विषे भी त्रसरेणुओं के गमन से कस्तूरी का परिमाण अल्प होने पर पुरुष कस्तूरी को झूरेंगे याते गन्ध का जाना मानो ॥ ३७० ॥

पीनता से रात्रि भोजन की कल्पनावत् भोक्ता पुरुषों के भोग जनक अदृष्टों के प्रभाव से वैसे ही और अवयव उत्पन्न होवे हैं यह कार्य देखकर ताके बल से कल्पना होवे है याते पुरुष झूरे नहीं या अभिप्राय ते सिद्धान्ती कहे "ऐसो" इति, उत्तर कहे "भोग" इति ॥ ३७१ ॥

ताते नाम अवयवान्तरों की उत्पत्ति से, पूर्ववत् परिमाण की तदवस्थ रहने ते पुरुष कस्तूरी को झूरे नहीं, किन्तु मन में सभी प्रसन्न होवे हैं। याते गन्ध गमन मानने वाले वादी को भी द्रव्य को निर्गन्धता का प्रसंग वारण हेतु क्षण-क्षण में और गन्ध की उत्पत्ति के अंगोकार की आवश्यकता कर गौरव में भेद न होने से अनन्त अवयवों की उत्पत्ति कल्पना में गौरव ते गन्ध गुण का गमन मानना ही वर है, यह आशंका भी दूर होवे है ॥ ३७२ ॥

गुण को व्यापकता में कहे दृष्टान्त की असिद्धि कहकर अब एक देश स्थित गुणी को सर्व शीत ग्राहकता में कहे दृष्टान्त को दूर करे "जाती" इति, चन्दन एक असल होवे है एक ताके सम्बन्ध से होवे है तिनमें असल ही कहने योग्य रीति से शीत करे है और ताही में चन्दनत्व जाति रहे है, सम्बन्ध से होने वाले वृक्षों में अपनी-अपनी निजजाति रहे है याते चन्दनत्व जाति वाले चन्दन का जो तुमने "जाती चन्दन इक देश लगावे" ऐसे दृष्टान्त दिखाया और सर्व शरीर के अन्तर शीत ताने नहीं उपाया, तामें सर्व शीत नहीं उपाया तब कौन ने उपाया?

चंदन विंदु संग को पावै । ते प्रवुद्ध सकल ह्वै आवै ।
तिनहीं शीत सकल उपजाई । जातीचंदन भयो सहाई ॥३७४॥

पूर्वपक्षी—

द्रोणअंश बृहस्पति को गायो । सुरपतिको अर्जुन दिखलायो ।
विदुर युधिष्ठिर हैं यम केरे । यों भारत में अंश सु टेरे ॥३७५॥
ताते जीव सु अंशी धार । दूषण भयो सु निखिल उधार ।
अंश कर भोगे सुख भारे । सर्व अङ्ग युगपद् क्रम डारे ॥३७६॥

तहां कहे "देह" इति, देह विषे जो नीर का विभाग नाम अंश है वह घनीभूत कहिये अंगो में स्थिर है नाहिं सुजाग नाम द्रवे नहीं ॥ ३७३ ॥

चन्दन की विन्दु के, संग नाम सम्वन्ध को वह जव पावे है, तव, ते नाम वह घनीभूत जल प्रवुद्ध नाम जग जावे है, याते तिनहीं कहिये द्रवते हुए तिस जल ने ही सम्पूर्ण शीत उत्पन्न करी है, जातीचन्दन शीत उत्पन्न करण में द्रव उत्पत्ति द्वारा सहकारी हुआ है अर्थात् जाती चन्दन की सहायता से द्रवे हुए जल से ही शीत उत्पत्ति होवे है याते सहकारी मात्र चन्दन को एक देश में रहकर शीत उत्पत्ति करने में दृष्टान्तता नहीं बने। इहां "हे सात्वत" से लेकर कहे पूर्व प्रकरण से यह लव्ध हुआ—जो आत्मा में अणुता औपाधिक है और विभुता वास्तविक है पुनः ज्ञान आत्मा का गुण गुणी भाव नहीं, किन्तु दोषों ते गुण गुणी भाव की असिद्धि से आत्मा ज्ञानरूप है, तथा निरंशता प्रतिपादक श्रुतियों को व्यर्थता प्रसंग ते औ सांश को घटवत् अनित्यता प्रसंग ते ज्ञान, आत्मा, का अंश अंशीभाव भी नहीं, किन्तु ज्ञानरूपहोने ते आत्मा ज्ञानांश शून्य है याते अणु आत्मवादी मत विषे सर्व अंगों में शीतादिकों के ग्रह णाभाव आदिक दोष का काहू रीति से उद्धार नहीं ॥ ३७४ ॥

ननु भारत में द्रोण आदिकों को वृहस्पति आदिको की अंशता श्रवण ते तद्वत् ज्ञानों को अंशता और जीवो को अंशिता सम्भव ते तिन अंशों द्वारा जीवों को सर्व शरीरवर्ति शीतादिकों का ग्रहण बने हैं, इस रीति से सम्पूर्ण दोषो का उद्धार होवे है? यह आशंका करे "द्रोण" इति ॥३७५॥

ताते—भारत में द्रोण वृहस्पति आदिकों का अंश अंशिभाव श्रवण ते, जीव सु अंशी धार कहिये ज्ञानप्रति जीव को अंशी धारण कर, निखिल नाम सम्पूर्ण दूषण दूर हुए औं दोष दूर होने से सर्वाङ्गों में क्रम

सिद्धान्ती—

ऐसे जो तव वैन वखाने । सो असत्य हम नीके जाने ।
अंशू कर सुख भोगे भारे । औ दुख घने न जाहिं विचारे । ३७७॥
जैसे जीव तथा जगदीश । जीव अंश अंशी तव ईश ।
जीव अंश सो सुख तैं गायो । अंशी ईश आप दिखलायो ॥३७८॥
यों ही बंध मोक्ष अज्ञान । जीव समान ईश में मान ।
अरु पुनि सांश पदार्थ जेते । अंशू कार्य सकले तेते ॥३७९॥

बिना युगपद ही सुखजनकशीतादिकों का ग्रहण सिद्ध हुआ सोई कहे "अंशू" इति, अंशूकर भोगे सुख भारे कहिये जीव भूत अंशी अपनी ज्ञान रूप अंशों कर सर्वाङ्गों में युगपद नाम एक काल में ही क्रम डारे कहिये क्रम पक्ष को त्याग कर अनुकूलशीतादिस्पर्शजन्य भारी सुखों को भोगे है ॥ ३७६ ॥

ज्ञान रूप अंशो कर जीव को सुख दुख के ग्रहणवत् जीव रूप अंशो कर ईश्वर को भी सुख दुख का ग्रहण हुआ चाहिये या अभिप्राय से परिहार कर "ऐसे" इति, असत्य जानना स्पष्ट करने हेतु कहे "अंशू" इति, अंशूकर नाम जीवरूप अंशों कर अनुकूलशीतादिस्पर्शजन्य बड़े सुखों को भोगे है, और प्रतिकूलशीतादिस्पर्शजन्य जो विचारे न जावे ऐसे अनेक दुखो को भोगे है, यह जो तुमने बात कही सो असत्य है काहे ते ? जेकर जाव अपनी अंश ज्ञान कर सुख दुख को भोगे हैं यह कहो तब जीववत् जगदीशको अंशी होने ते ताको भी अंशों से सुख दुख का भोग हुआ चाहिये ॥ ३७७ ॥

सोई कहे "जैसे" इति, जैसे जीव तथा जगदीश कहिये जिस प्रकार अपनी अंशों से सुख दुख का भोक्ता जीव है तैसे ईश भी हुआ चाहिये, काहे ते ? ज्ञान स्थानापन्न अंश जीव है जीव स्थानापन्न अंशी ईश है, यह तव नाम तेरा कथन है, हमने कहां कह्या है ? यह आशंका करते प्रति "ईश अंश गुण ज्ञान अनूप" कह्या है यह स्मरण करावे "जीव" इति ॥ ३७८ ॥

योंही नाम सुख दुख वन्ध मुक्ति अज्ञान भी जीवके समान ही ईश्वर में अंगीकार करो, किंच अंशी पटादिकों को जन्यता विनाशता देखने ते सुख दुख आदिकों के भोग प्रसंगवत् ईशमें जन्यता विनाशता का भी

त्यों परमेश्वर थारो जोई। जीव जन्य होयगो सोई।
यों पुनि सांश पदार्थ जोई। चीर समान विनाशी सोई ॥३८०॥

(भुजंगप्रयात छंद)

अहो अंशवादी नहीं ते विचारं।
यतो जीव अंशं करे तूँ उचारं॥
जगन्नाथ दाता सु अंशी उचारे।
घने दोष आवै न ताको निहारे ॥३८१॥

पूर्वपक्षी—

सु'गीता'विषे अंश जीवं बखाने। जगन्नाथ आपे न मोही प्रमाने।

सिद्धान्ती—

नहीं गूढ संधं लखी ईश केरी। इते दोष होते यतो अंश टेरी॥३८२॥

प्रसंग होवेगा सोई कहे "अरु पुनि" इति, सांश नाम अंशों वाले जेते पटादिक पदार्थ हैं वह सब अंशों के कार्य हैं॥ ३७९ ॥

त्यों नाम सांश अंगीकार किये पटादिकोंवत् तुमारा जो ईश्वर है वह भी जीव रूप अंशों का कार्य होवेगा पुनः जो सांश वस्तु होवे है वाको चीर नाम वस्त्रवत् नाशी होने ते नाशी होवेगा याते जीव ईश का अंश अंशी भाव मत कहो औ तूं कहे है याते तेरे को कुछ विचार नहीं॥ ३८० ॥

सोई कहे "अहो" इति, नहीं ते विचारं कहिये तेरे को ज्ञान नहीं अर्थात् अज्ञानी है, अज्ञान में हेतु कहे "यतो" इति॥ ३८१ ॥

श्रुति स्मृति सिद्ध अर्थ में युक्ति दोष तुच्छ होवे है औ अंश अंशिभाव गीता स्मृति में भगवान् ने आप कहा है याते मैं अज्ञानी नहीं ? या भाव से आशंका करे "सुगीता" इति, तहां तूं भगवान् का अभिप्राय ही नहीं लख्या याते तेरे को अज्ञता की हानि नहीं, यह कहे "नहीं" इति, यतो अंश टेरी कहिये जिसते अंश कह्या पूर्वोक्त सभी दोष होते, ताते भगवान् का अंश कहने में अभिप्राय ही और है॥ ३८२ ॥

दोहा

पंचदशम अध्याय में, भाख्यो श्रीभगवान ।
जीव अंश मुखते कह्यो, गूढ संध उरमान ॥३८३॥

चौपाई

ममहि धाम को प्राप्त होवै । बहुर गिरे नहिं सुख समोवै ।
पष्ठश्लोक विषे यों गाई । सप्तम में पुनि अंश बताई ॥३८४॥
नहिं गिरने में हेतु दिखावे । जीव अंश प्रभु मुखते गावे ।
प्रतिबिंब अंश ज्यों बिंबहि केरे । नष्ट उपाधि बिंब वह हेरे ॥३८५॥
अरु पुनि महाकाश जग माहीं । घटाकाश तिहँ अंश कहाहीं ।
घट फूटे भव भीतर जबही । महाकाश वह होवे तबही ॥३८६॥

सोई कहे "पंच" इति, "जीव अंश मुख ते" यह पूर्व साथ मेलकर पन्द्रहवें अध्याय में जो परमेश्वर मुख ते जीव को अंश कहे हैं सो कहे गूढ़ संध उरमान कहिये दर्पण घट उपाधियों के नाश भये प्रतिविम्व घटाकाश को मुख महाकाश रूपतावत् जीवकी उपाधि नष्ट भये जीव परमात्मा रूप है इस गूढ अभिप्राय को हृदय में रखकर कहे है याते अभिप्राय न जानने से तूं अज्ञानी है ॥ ३८३ ॥

वक्ष्यमाण "उरमानी" पर्यन्त पाठ से गूढ अभिसन्धि सुनावन का आरम्भ करे—"मम" इति ॥ ३८४ ॥

"नहिं गिरने में हेतु दिखावे" वह छठे में कहे "बहुर गिरे नहीं" इस न गिरना कहने में हेतु कहे हैं जो भगवान् जीव को मुख ते औपाधिक अंश कहे हैं, दृष्टान्त दो से अंश कथन को अगिरने में हेतुता स्पष्ट करे "प्रतिबिम्ब" इति, प्रतिबिम्ब अंश जो बिम्बहिं केरे नाम जैसे दर्पणस्थ मुखाभास दर्पण भूत उपाधि वश ते ग्रीवास्थ बिम्बभूत मुख की अंश है, याते नष्ट उपाधि नाम उपाधि के नाशभये वह बिम्ब रूप ही देखिये है ॥ ३८५ ॥

पुनः जगत् में जो महाकाश वस्तु है तिहँ—तिसकी, घटाकाश जैसे अंश कहावे हैं याते जब घट फूटे है तब ही वह महाकाश रूप होवे है ॥ ३८६ ॥

यों उपाधि जीवकी जोई । नष्ट भई परमात्म सोई ।
यों भगवान संधि उर मानी । 'भाष्यकार' वह प्रकट वखानी ।। ३८७।।
उपचारक अंश जीव उर मान । जाते दूषण होवे हान ।
वास्तव अंश बखाने जोई । दूषण ताहि प्रकट पुन होई ।। ३८८।।

अव अणुवादीमत के निराश के अन्तर भट्ट का शिष्य प्रभाकर वक्ष्यमाण रीति से स्वमत का स्थापन करता हैं ।

चौपाई

तटस्थ—
यों मत अणुवादी को गयो । भट्टतनय तव वोलत भयो ।
पूर्वपक्षी—
आतम के हइये दुइ रूप । इक चेतन द्वितीय जड़ रूप ।। ३८९।।
अहं प्रतीति विषय अभिराम । आत्म इति भाखे तिहँ नाम ।
विषय न काहूका चिद् अंश । विषय होय होवे जड़ अंश ।। ३९०।।

यों नाम तैसे ही जीव की उपाधि जो अन्तःकरण अविद्या जव वह नष्ट भयी तभी वह परमात्म रूप होवे है, यों नाम ऐसे, भगवान् ने सन्धि नाम अभिप्राय हृदय में रखकर मुख से जीव को अंशता कही, याते अंश कथन ते वास्तविक अंश अंशिभाव की सिद्धि नहीं होवे, तुमने यह भगवान् की गूढाभिसन्धि कैसे जानी ? तहां कहे "भाष्यकार" इति ।। ३८७ ।।

दोष श्रवण कर मौन हुए को अकल बतावे "उपचारक" इति, वास्तविक कहते को क्या होवे है ? तहां कहे "वास्तव" इति ।।३८८।।

मीमांसक की आशंका श्रवण कर तटस्थ अनुवाद करे "यों" इति, भट्टतनय नाम पूर्व मीमांसा के आचार्य भट्ट का बेटा अर्थात् भट्ट का शिष्य प्रभाकर, प्रभाकर का वाक्य कहे "आतम" इति ।। ३८९ ।।

जड़ चेतन दो रूपों की प्रतिज्ञा कर दोनों में जड़ सिद्धि हेतु प्रकार रचे "अहम्" इति, अहं प्रतीति विषय अभिराम कहिये अहं ज्ञान का विषय जो सुन्दर आत्मा, इति भाखे तिह नाम कहिये आत्मा यह तिसका नाम कहे है अर्थात् अहं प्रतीति के विषय को आत्मा कहे है औ चिद्अंश कहिये चेतन भाग काहू का नाम और चेतन का वा अपना विषय जड़तापत्ति के प्रसंग ते होवे नहीं, सोई स्फुट करे "विषय" इति, विषय

आपन आप विषय जे सोई। आत्माश्रय प्रकट सो होई।
और चिदन्तर माने कोई। अन्योन्याश्रयता होई ॥३९१॥
तृतीय किये पुन अङ्गीकार। चक्रिका मन माहिं विचार।
चतुर्थ चेतन माने कोई। अनवस्था उर धारे सोई ॥३९२॥
निरोधक परम्परा को जावै। अनवस्था बुध सोई गावै।
जहाँ जाय उलटा पुनि फिरे। चक्रिका बहुरो उर धरे ॥३९३॥

होय होवे जड़ अंश कहिये जेकर वह चेतन अंश काहू ओर चेतन का वा अपना आप विषय होवे तब वह विषय घटादिकों को जड़ता देखने ते जड़ होवेगा ॥ ३९० ॥

पुनः जड़तापत्ति के प्रसंगवत् अपना विषय माने आत्माश्रय और का माने अन्योन्याश्रयआदिक दोष भी होवेंगे सोई कहे "आपन" इति, आपन आप विषय जे सोई कहिये जेकर चेतन अंश अपनेआप का आप ही विषय होवे तब आत्माश्रय प्रकट सो होई नाम प्रसिद्ध आत्माश्रय होवेगा, ताके भयकर ताको विषय करने वाला और चिदन्तर नाम कोई और चेतन माने तब ताको विषय करने वाला कौन ? यह पूछे प्रथम कहे तब प्रथम को सिद्ध करने वाला दूसरा और दूसरे को सिद्ध करने वाला प्रथम ऐसे अन्योन्याश्रय होवेगा ॥ ३९१ ॥

ताके भय कर दूसरे को विषय करने वाला, तृतीय किये पुनः अंगीकार कहिये तीसरे के अंगीकार किये ताकी सिद्धि किससे ? यह पूछे प्रथम ते कहो तव दूसरे की सिद्धि तीसरे से, औ तीसरे की सिद्धि प्रथम से, औ प्रथम की सिद्धि दूसरे से, ऐसे चक्रवत् भ्रमण ते चक्रिका दोष मन में विचारो होवेगा, चक्रिका भय से तीसरे (की) सिद्धि हेतु चतुर्थ चेतन मानो कोई कहिये जेकर चौथा चेतन माने तब ताकी सिद्धि किससे ? यह पूछे प्रथम की दूसरे ते, ताकी तीसरे ते, ताकी चौथे ते, ताकी प्रथम से, ऐसे अनेकों के भ्रमण से पुनः चक्रिका होवेगी याते पंचम से (सिद्धि) माने, तब ताकी छठें से, ताकी सातवें से, चतुर्थ मानने वाला अनवस्था दोष हृदय में धारण करो ॥ ३९२ ॥

"अपनी सिद्धि में अपनी अपेक्षा रूप आत्माश्रय के", पुनः "परस्पर अपेक्षा रूप अन्योन्याश्रय" के अर्थों को स्पष्ट जानकर चक्रिका औ अनवस्था शब्दों के अर्थ कहे "निरोधक" इति, निरोधक परम्परा को जावै

ताते चिद्को गोचर जोई। एक जड़ांश मानिये सोई।
याही ते वह उभय स्वरूप। जड़ चेतन आत्म द्वय रूप ॥३९४॥

अब सिद्धान्ती उक्त मत का निराश करता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

यह तैं वैन असार उचारे। भट्टतनय देवन के प्यारे।
चिज्चड़ उभय स्वरूप विरुद्ध। एक विषे नहिं कदे प्रसिद्ध ॥३९५॥
तेज तिमिर ज्यों कैसे होवे। विरुद्ध स्वरूप कथं जन जोवे।
अरु पुनि ते चिज्जड़ जे दोई। नर घट ज्यों नहिं एको होई ॥३९६॥

कहिये जो निरोध करती आगे आगेको जावे फलित मूल का नाश कर देवे ताको बुद्धिमान् अनवस्था दोष कहे हैं'—उक्तं च "मूलक्षयकरीं प्राहुः अनवस्था हि दूषणम्" और जहाँ जाय उलटा पुनि फिरे कहिये जहां जाकर कार्यकारण भाव का भ्रमण होने लगे चक्रिका पुनः बुद्धिमान् ताको हृदय में धारण करे हैं ॥ ३९३ ॥

प्रसंग प्राप्त चक्रिका अनवस्था शब्दों के अर्थ कह कर प्रकरण में फलित कहे "ताते" इति, ताते नाम जड़तापत्ति औ आत्माश्रय आदिक दोषों के भय से चिदंश को अहंज्ञान की विषयता दूर होने ते, अहं ज्ञान रूप चिद् को गोचर नाम चिदंश का विषय वह और गति अभाव ते अवश्य आत्मा का एक जड़ अंश अंगीकार करो, याही ते कहिये और गति के अभाव से जड़ अंश के अंगीकार ते ही वह आत्मा जड़ चेतन उभय रूप है ॥ ३९४ ॥

तटस्थ का कथन श्रवण कर पूर्वपक्षी प्रति सिद्धान्ती कहे "यह" इति, असारता प्रकट करे "चिज्जड़" इति, चेतन जड़ दोऊ जो विरुद्ध स्वरूप वह एक विषे कभी प्रसिद्ध नहीं हो सके ॥ ३९५ ॥

विरुद्ध उभय स्वरूपों का एक में प्रसिद्ध न होना दृष्टान्त से कहे "तेज" इति, तेज तिमिरवत् परस्पर विरुद्ध धर्म एक में कैसे प्रसिद्ध होवे? भाव नहीं होवे, न होने में हेतु कहे "विरुद्ध" इति, एक में प्रसिद्ध होवे तो तिनको विरुद्ध स्वरूप जन कैसे देखे? भाव-काहू रीति से न देख सके औ देखे है याते वह एक विषे नहीं सम्भवे। किञ्च नरत्व घटत्व

ताते पुद्गल एके माहीं । दो आत्म है सो इक नाहीं ।
यामें मान न हइये कोई । अरुपुनि देह मथन जन होई ॥३९७॥
यद्यपि जड़ तव अंगीकार । तदपि आतम विषय न धार ।
जड़ इक अंश होयगो गोचर । चेतन अंश सो सदा अगोचर ॥३९८॥
उभय अंश नहिं देखे कोई । आत्म विषय कहो क्यों होई ।
दंड एकही देखे जोई । तो दंडी नहिं भाखे सोई ॥३९९॥
दंड पुरुष दोनों को जानै । तो दंडी जन ताहि बखानै ।
जो चिदअंश भी गोचर मानो । तौ जड़ कल्पन व्यर्थ पछानो ।४००॥

रूप विरुद्ध धर्मों वाले नर घट का अभेद न देखने से चिज्जड़ भी एक नहीं होवेंगे ऐसे भये एक शरीर में दो आत्मा माने जावेंगे यह कहे "अरु पुनि" इति ॥ ३९६ ॥

ताते नाम चेतनत्व जड़त्व रूप विरुद्ध धर्मों के प्रभाव से चिज्जड़ को नर घटवत् एक न होने ते एक शरीर में दो आत्मा मानने होवेंगे वह एक नहीं मानना होवेगा, सो यह बात प्रमाणहान हे सोई कहे "या में" इति, या में, नाम एक देह में दो आत्मा कहने में ।, किञ्च एक में दो कह्या तुल्य स्वामियों की एक सम्मति न देखने ते पुरुषों की देह का भी नाश होवेगा यह दोषान्तर कहे "अरु पुनि" इति ॥ ३९७ ॥

ननु "अहं प्रतीति विषय अभिराम" से लेकर "याही ते वह उभय स्वरूप" पर्यन्त पाठ में कही रीति से जड़ अंश अवश्य माननी पड़े है ? यह आशंका कर कहे "यद्यपि" इति, तदपि आतम विषय न धार कहिये तौ भी अहं ज्ञान का विषय न धारण कर काहे ते ? ऐसे माने भी आत्मा को अहं ज्ञान की विषयता नहीं बनेगी सोई प्रकट करे "जड़" इति ॥ ३९८ ॥

कहो क्यों होई नाम कहो कैसे होवे अर्थात् काहू रीति से नहीं होवेगा, काहू रीति से न होना दृष्टान्त से स्फुट करे "दण्ड" इति ॥३९९॥

ताहि नाम दण्डवाले को । अहं ज्ञान की विषयता सिद्धि हेतु चिदंश को भी विषय मानो तव जड़ कल्पना को निष्फलता औ आत्माश्रय पुनः अपसिद्धान्त यह तीन दोष होवेंगे सोई कहे "जो" इति ॥ ४०० ॥

आत्माश्रय दूषण आयो। 'अपसिद्धांत' अधिक ते पायो।
अरु जड़ चेतन अंशहि दोई। ताहि संबंध कहो को होई ॥४०१॥
संयोग तादात्म विषय विषयी। प्रथम अनित्य रूपता भई।
द्वितीय चिज्जड़ एक स्वरूप। सो विरुद्ध नहिं भाखो रूप ॥४०२॥
अरुपुनि जड़हि अंश है जोई। याहि पक्ष में चेतन सोई।
चेतन अंश होय जड़ रूप। जड़ तादात्म हेतु अनूप ॥४०३॥
तृतीय घटसम होय अनातम। जो जड़ाश न सो है आतम।
अरुपुनि आतम अंशी कौन। प्रकट कहो वह हइये जौन ॥४०४॥

अपसिद्धान्त—चेतन अंश विषय नहीं इस सिद्धान्त की हानि, किञ्च आत्मा के जड़ चेतन अंश का सम्बन्ध कौन है? यह पूछे "अरु" इति, कहो को होई नाम कहो कौन है अर्थात् संयोग है वा तादात्म्य है वा विषय विषयी भाव है ॥ ४०१ ॥

सोई कहे "संयोग" इति, संयोग कहे है तहां कहे "प्रथम" इति, प्रथम अनित्य रूपता भई कहिये संयोग अंगीकार किये संयोग को अवयव क्रिया रूप सामग्री की अपेक्षा कर अंशो में अवयव क्रिया आवने से, सावयव सक्रिय को विनाशता नेम ते आत्मा को अनित्यता होवेगी। मत बनो संयोंग, तादात्म्य माने हैं? तहां कहे "द्वितीय" इति, द्वितीय चिज्जड़ एक स्वरूप कहिये तादात्म्य अंगीकार किये हमारे मत में परस्पर जीव ईशवत् चिज्जड़ एक रूप होवे है औ सो नाम चिज्जड़ परस्पर विरुद्ध है याते नहिं भाखो रूप कहिगे तिनको एक रूप मत कहो ॥४०२॥

तादात्म्य पक्ष में दोषान्तर कहे "अरु पुनि" इति, याहि पक्ष में चेतन सोई नाम तादात्म्य पक्ष में, जड़ अंश, चेतन होनेको योग्य है, चेतन साथ तादात्म्य से, चेतनवत्, इस अनुमान ते वह चेतन होवेगी, पुनः चेतन अंश होय जड़ रूप कहिये चेतन अंश ज़ड़रूप होवेगी होने में हेतु कहे "जड़" इति, जड़ तादात्म्य हेतु अनूप कहिये जड़ साथ अभेद मानना ही जड़ रूपता सिद्ध करने में उपमारहित हेतु है, याते 'चेतन अंश जड़ होने को योग्य है, जड़ साथ तादात्म्य ते, जड़वत्, इस अनुमान ते ताको जड़ रूपता सिद्ध होवेगी ॥ ४०३ ॥

तीसरे का खण्डन करे "तृतीय" इति, "जो जडांश" पाठ पूर्व साथ

अंशू ते वह भिन्न स्वरूप । उत ते है वह आतम रूप ।
नैयायिक मत दूषण जेई । उभय पक्ष में आवे तेई ॥४०५॥
आधो जड़ यामें नहिं मान । श्रुति बखाने घन विज्ञान ।

पूर्वपक्षी—

जड़ चेतन में मान दिखावों । अर्थापत्ति नाम तिहँ गावों ॥४०६॥

मिलाकर, तृतीय कहिये विषय विषयिभाव सम्बन्ध के अंगीकार में जो जडांश है वह विषय घटादिकों को अनात्मता देखने से अनात्मा होगी, न सो है आतम नाम वह आत्मा नहीं होवेगी, अंश के सम्बन्ध की असिद्धिवत् अंशी की असिद्धि कहने हेतु पूछे "अरु पुनि" इति, अरु पुनि आतम अंशी कौन कहिये पुनः अंशी आत्मा भी क्या है ? जौन नाम वह जो कुछ है, सो प्रकट कहो ॥ ४०४ ॥

प्रश्न का भाव प्रकट करे "अंशू" इति, अंशू ते वह भिन्न स्वरूप कहिये सो अंशी आत्मा अपनी अंशों ते भिन्न स्वरूप है, उत नाम अथवा ते है वह आतम रूप कहिये वह अंश ही आतम रूप हैं, अर्थात् अंशों से अभिन्न स्वरूप है, नैयायिक मत में कहे दोषों से दोऊ नहीं बने यह स्मरण करावे "नैयायिक" इति, नैयायिक मत दूषण जेई कहिये समवाय सम्बन्धी साथ भिन्न है वा अभिन्न है इन विकल्पों से जो भिन्न पक्ष में घट सम अवयव अवयवी की सम्बन्धिता हानि, औ अभिन्न पक्ष में परमाणु शेष तामे कार्य हानि, द्व्यणुक शेष तामे सिद्धान्त हानि रूप दोष कहे उभय पक्ष में आवे तेई कहिये दोनों पक्ष में वही आवे है, तथाहि—अंशी को अंशों से भिन्न कहो तब जैसे चिज्जड़ अशों से भिन्न घट तिनका अंशी नहीं ऐसे आत्मा भी नहीं होवेगा, या दोष ते अभिन्न कहो तब तिनके साथ अभिन्न अंशी के साथ अभिन्न जड़ को चित् के साथ अभेद के नियम ते पुनः उलटा कर चिद् के साथ अभेद के नियम ते चित् को जड़ता औ जड़ को चिद् रूपता का प्रसंग होवेगा, ऐसे अंशों में अंशी के एक देश में रहे है वा सर्व देशों में रहे है यह विकल्प कर भी "अवयवों माहि अवयवी" इत्यादि पाठ में कही रीति से अवयवी का खण्डन जान लेना ॥ ४०५ ॥

किञ्च जड़ मानने में प्रमाणाभाव रूप दोषान्तर भी है, सोई कहे "आधो" इति, आधो जड़ यामें नहिं मान कहिये आत्मा का एक अंश

इच्छा अरुपुनि द्वेष न होई। तो नहिं कर्ता होवे कोई।
इष्ट अनिष्ट प्राप्ति परिहार करे न को ताहित व्यवहार ॥४०७॥

जड़ है यह मानने में कोई प्रमाण नहीं, काहे ते ? सर्व प्रमाणों में शिरोमणि श्रुति नाम वेद ही आत्मा को एक रस चेतन सिद्ध करे है याते और कौन प्रमाण है जो आत्मा में अर्ध जड़ता सिद्ध करे इस रीति से जड़ता प्रमाण हीन है। "आधो जड़ यामें नहिं मान" श्रवण कर आशंका करे "जड़" इति, जड़ चेतन में मान दिखावों कहिये आत्मा आधा चेतन है आधा जड़ है यामें प्रमाण कहता हूँ औ अर्थापत्ति तिस प्रमाण का नाम कहूँगा, "उपपाद्य के अनुपपत्ति ज्ञान से उपपादक की कल्पना को अर्थापत्ति प्रमाण कहे हैं" सो दो प्रकार का है एक दृष्टार्थापत्ति है, एक श्रुतार्थापत्ति है "देखे अर्थ की अनुपपत्ति का नाम दृष्टार्थापत्ति है" सुने अर्थ की अनुपपत्ति का नाम श्रुतार्थापत्ति है" "जिस बिना जो न बने वह ताका उपपाद्य कहिये है" "जाके अभाव से जाका अभाव होवे सो ताका उपपादक" कहिये है, जैसे रात्रि भोजन बिना दिवाअभोजी में स्थूलता बने नहीं, याते स्थूलता रात्रि भोजन का उपपाद्य है ओ रात्रि भोजन के अभाव ते दिवा अभोजी में स्थूलता का अभाव होवे है, याते रात्रि भोजन स्थूलता का उपपादक है, इस प्रकार उपपाद्य स्थूलता की अनुपपत्ति ज्ञान से, उपपादक रात्रि भोजन का ज्ञान होवे है जो यह पुरुष रात्रि भोजी है, सो यह दृष्टार्थापत्ति का उदाहरण है, ऐसे इहां भी इच्छा द्वेष से ही इष्ट प्राप्ति अनिष्ट निवृत्ति हेतु आत्मा को लौकिक वैदिक कर्मन का कर्तापना सुना है सो कर्तापना असंग चेतन में इच्छादिकों की आधार जडांश बिना बने नहीं, याते उपपाद्य कर्तापने का अनुपपत्ति ज्ञान से उपपादक जड़ अंश की कल्पना होवे है याते आत्मा अर्ध जड़ है यह सिद्ध होवे है ॥ ४०६ ॥

सोई अर्थापत्ति प्रमाण स्पष्ट करे "इच्छा" इति, इच्छा कहिये सुख साधन पदार्थों में राग, पुनः द्वेष नाम दुख साधन पदार्थों में विरोध, जेकर न होवे तब तिनों वास्ते लौकिक वैदिक कर्मन का कर्ता ही कोई न बने सोई कहे "इष्ट" इति, इष्ट नाम सुख साधन सुक्चन्दनादिक की प्राप्ति औ अनिष्ट नाम दुख साधन सर्पादिकों का जो परिहार, ताहित नाम तिस वास्ते कोई पुरुष भी लौकिक वैदिक कर्म में प्रवृत्त होना रूप व्यवहार नहीं करेगा ॥ ४०७ ॥

लौकिक वैदिक करमन माहीं। को प्रवृत्ते या भव माहीं।
इच्छादिक चेतन मों नाहीं। असंग कह्यो याते श्रुति माहीं ॥४०८॥
ताते इच्छादिक आधार। एक जडांशात्मा की धार।
नातर या व्यवहार न होई। कर्ता आत्म कहे न कोई ॥४०९॥
स्वर्गकाम यागन को करे। और बहुत धर्मन विस्तरे।
इत्यादिक श्रुति होई व्यर्थ। कर्ता बिना न पावे अर्थ ॥४१०॥

सिद्धान्ती—

ऊँचे काहे करे पुकार। यामें प्रकट परिहार विचार।
इच्छादिक तात्त्विक तिहँ कहो। उत अध्यासिक उरमें गहो ॥४११॥

सोई कहे "लौकिक" इति, को प्रवृत्ते या भव माहीं कहिये कौन प्रवृत्त होवे इस संसार में अर्थात् कोई नहीं प्रवृत्त होवेगा याते अवश्य आत्मा में कर्तृत्व की सिद्धि हेतु राग द्वेष मानने, औ चेनन अंश में पुनः वह असंगता श्रवण से बने नहीं सोई कहे "इच्छादिक" इति, आदि शब्द से द्वेष कर्तृत्व लेने यह चेतन में इच्छा द्वेष कर्तृत्वादिक कोई नहीं बने, याते नाम जिस हेतु ते "असङ्गो ह्ययं पुरुषः" इस रीति से आत्मा को असंग कहिये वास्तविक ते इच्छादिक से रहित कह्या है ॥ ४०८ ॥

फलित कहे "ताते" इति, ताते नाम असंग चेतन में इच्छा आदिकों की अनुपपत्ति से, तिनका आश्रय आत्मा का एक जड़ अंश अवश्य धारण करो, नातर कहिये ऐसे न माने, या व्यवहार नाम "आत्मा कर्ता है" यह कथन नहीं होवेगा सोई कहे "कर्ता" इति ॥ ४०९ ॥

आत्मा का कर्ता कहे बिना हानि क्या? तहां कहे "स्वर्ग" इति ॥ ४१० ॥

अर्थापत्ति का अवकाश जहाँ और रीति से उपपाद्य की उपपत्ति न हो सके तहां होवे है औ इहां वास्ताविक इच्छा शून्य असंग चेतन में भी कल्पित इच्छा आदिकों के सम्भव ते कर्तापने की उपपत्ति बने है यह स्वल्प सपरिहार देखता हुआ सिद्धान्ती कहे "ऊँचे" इति, यामे नाम कर्तापने की अनुपपत्ति में, परिहार हेतु विकल्प करे "इच्छादिक" इति ॥ ४११ ॥

प्रथमे श्रुति हजार बखाने। तात्त्विक ते तामहिं नहिं माने।
नित्य निरीह निरंजन अहे। ऐसे श्रुति प्रकट तहिं कहे ॥४१२॥
इच्छादिक क्षेत्र के गाये। ताते आत्म भिन्न दिखाये।
अर्जुन प्रति पद्मापति दयाल। यादव कुल सर कमल विशाल॥४१३॥
अध्यस्त कह्यो जे ते तामाहीं। तव चिदमें असंभव नाहीं।
जड़ता अंश काहि अब मानो। अध्यस्त सकल चिद् भीतर जानो॥४१४
व्यवहारिक इच्छा चिद्में मान। स्वर्गकाम यहि निगम प्रमाण।
स्फटिक अरुण सम ते चिद् माहीं इच्छादिक संशय कछु नाहीं॥४१५
अरुपुनि जो जड़ अंश बताई। इच्छादिक आधार ठहराई।
सोतो जो जड़ है भवमाही। घट सम इच्छा तामों नाहीं ॥४१६॥

तात्त्विक = वास्तविक, अध्यासिक = कल्पित, प्रथम में अनेक श्रुति से प्रथम कहे हैं? तहां कहे "प्रथमे" इति, प्रथमे कहिये तात्त्विक रूप प्रथम पक्ष में जेकर तूं अनेक श्रुतियां कहो तौ भी ते नाम वह श्रुति, ता महिं नाम असंग चेतन में वास्तविक नहीं मानती, उलटा वास्तविक का निषेध करे है, सोई कहे "नित्य" इति, नित्य निरीह — सर्वदा वास्तविक इच्छा शून्य, निरंजन—निर्दुख ॥ ४१२ ॥

श्रुतिसिद्ध अर्थ में स्मृति दिखावे "इच्छादिक" इति, ताते नाम क्षेत्र ते, किसने किस प्रति गाये, दिखाये ?—तहां कहे "अर्जुन" इति ॥ ४१३ ॥

श्रुतिस्मृति में तात्विक के परिहार ते अध्यस्त कहे हैं? तहां कहे "अध्यस्त" इति, जेकर ते नाम इच्छादिक आत्मा में कल्पित कहो तव तो चेतन में ही तिनका असम्भव नहीं, किन्तु निखिल प्रपञ्चवत् वह भी बने है याते काहि नाम जडता अंश अब किस वास्ते अंगीकार करते हो, अध्यस्त इच्छादिक सभी चेतन में बन सके है ॥ ४१४ ॥

ऐसे भये श्रुति वाक्य भी व्यर्थ नहीं यह कहे "व्यवहारिक" इति, दृष्टान्त व्यावहारिक इच्छादिक सिद्ध करे "स्फटिक" इति ॥ ४१५ ॥

किञ्च "भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः" या न्याय से आत्मा में जड़ता अंगीकार किये भी घटवत् जड़ में इच्छा नहीं बने यह अंगीकार को व्यर्थता कहे "अरुपुनि" इति, घट सम इच्छा तामें नाहीं नाम

२३

अन्तःकरणमों नहिं व्यभिचार। चिति छाया गहि सो आधार।
अहं प्रतीति विषय उर मान। चिद्में दूषण करे बखान ॥४१७॥
सोतो दूषण एक न हइये व्यर्थ प्रलाप तुम्हारो पइये।
अहं प्रतीति विषय अहंकार। चितहि तादात्म्य ताको धार॥४१८॥
अनावरण चिति स्वतः प्रकाशे। प्रतीति गम्य आध्यासिक भासे।
ताते जड़ चित आत्म नाहीं। बिना प्रयोजन कलपे काहीं ॥४१९॥

घटवत् तिसमें इच्छा नहीं अर्थात् जडांशम्, इच्छा शून्यं, जडत्वात्, घटवत् या अनुमान से तामें इच्छा नहीं बने ॥ ४१६ ॥

ननु " जो जो जड़ है सो सो इच्छा शून्य है" इस नेम का तुमारे मत में जड़ अन्तःकरण में इच्छाङ्गीकार ते व्यभिचार है याते जड़ में इच्छा का असम्भव नहीं ? यह आशंका कर कहे "अन्तःकरण" इति, अन्तःकरण मों नहिं व्यभिचार कहिये हमारे मत में अन्तःकरण विषे कहे नेम की हानि नहीं, काहे ते ? चिति छाया गहि कहिये चेतन की छाया—चिदाभास को ग्रहण कर अन्तःकरण इच्छादिकों का आश्रय है, केवल नहीं यह अङ्गीकार है, याते जड़ अंश में इच्छा की आधारता दूर होने कर ताकी सर्वथा असिद्धि से आत्मा चेतनरूप ही मानना और पूर्व जो चिद् को अहं ज्ञान की विषयता मानने में जडतापत्ति तथा आत्माश्रय आदिक अनेक (दोष) कहे सो एक नहीं यह कहे "अहम्" इति, चिद् में दूषण करे बखान कहिये चेतन अंश में जड़तापत्ति आदिक अनेक दोष कहे ॥ ४१७ ॥

सो तो दूषण एक न हइये नाम वह दोष एक भी नहीं याते तेरा कहना निष्फल है। दूषण काहे नहीं ? यह आशंका कर कहे "अहम्" इति, अहम् प्रतीति कहिये "अहम्" इस ज्ञान का विषय चेतन की तादात्म्यता को धारण कर अहङ्कार है आवरण रहित स्वतः प्रकाश साक्षी चेतन नहीं ॥ ४१८ ॥

स्वतः प्रकाश चेतन नहीं, तब वह "अहम्" ज्ञान का विषय कैसे भासे है ? तहाँ कहे "अनावरण" इति, अनावरण कहिये आवरण रहित, पुनः चिति स्वतः प्रकाशे नाम अपने प्रकाश में प्रकाशक की अपेक्षा रहित जो स्वतः प्रकाश चेतन, वह प्रतीति गम्य नाम अहं ज्ञान का विषय अहंकार के अध्यास से भान होवे है, ताते—अहंज्ञान के विषयपने

मीमांसक मत जब परिहरियो। नैयायिक तब बैन उचरियो।

उक्त भट्ट मतके निराश के अनन्तर नैयायिक स्वमत का स्थापन करता है।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

जड़ आतम आकाश समान। विभू न चिज्जड़ सो पहिचान ॥४२०॥
सुख दुःखकी व्यवस्था जाते। नाना आत्म या भव ताते।
चैत्रसुख मैत्रसुख नाहीं। यही व्यवस्था है दुख माही ॥४२१॥
अणूरूप मन इइये जोई। ताहि संबंध यदा तिहँ होई।
बुद्ध्यादिक गुण तौ उपजावै। गुण आश्रय ते द्रव्य कहावै ॥४२२॥

को आत्मा में अध्यास ते भान होने ते, आत्मा चिज्जड़ उभय रूप नहीं, किन्तु केवल चेतन रूप है याते अहम् ज्ञान की विषयता तथा इच्छादिकों की आधारता को आत्म तादात्म्यतापन्न अहंकार में होने ते प्रयोजन बिना जड अंश की कल्पना किस वास्ते करे है अर्थात् मत कल्पना करो ॥ ४१९ ॥

नैयायिक की आशंका श्रवण कर तटस्थ कहे "नैयायिक" इति, नैयायिक का बैन कहे "जड़" इति, "विभु" का पूर्व सम्बन्ध कर, आत्मा केवल जड़ रूप है औ आकाशवत् विभु है, न चिज्जड़ सो पहचान कहिये उक्त दोषों ते वह आत्मा चिज्जड़ उभय रूप नहीं जानना ॥४२०॥

पुनः अनेक है "सुख" इति, सुख दुख को व्यवस्था जाते नाम "यह इसी के सुख दुख है और के नहीं" ऐसा सुख दुःख का नेम है जिसते, ताते नाम तिस हेतु ते आत्मा संसार में नाना कहिये अनेक है, कही व्यवस्था का रूप बतावे "चैत्र" इति, यही व्यवस्था है दुख माहीं कहिये चैत्र का दुख मैत्र का नहीं, ऐसे ही व्यवस्था दुख में है याते आत्मा नाना है, ऐसे न माने चैत्र मैत्र आत्मा को एक होने ते चैत्र के दुख सुख का मैत्र को प्रसंग होवेगा ॥ ४२१ ॥

"गुण वाले को द्रव्य कहे हैं" गुण बुद्ध्यादिक आत्मा में भी रहे हैं याते वह भी द्रव्य है, उत्पत्ति तिन गुणों की आत्मा में अणु रूप मन के योग से होवे है सोई कहे "अणु" इति, अणुता मन को इस रीति से है— सम्पूर्ण इन्द्रियों का अपने-अपने विषय के साथ सम्बन्ध हुए भी एक काल में चाक्षुष आदि अनेक ज्ञान नहीं होवे, याते यह जान पड़े है मन संयुक्त

लोक परलोक विषे मन जावे । आत्म कहूं न आवे जावे ।
अद्दष्ट अधीन लोकांतर देहा । उपजे सो मन होवे गेहा ।४२३॥
तासो आतम मन संयोग । पावे जब होवे तब भोग ।

तटस्थ—

यों नैयायिक करे बखान । वैशेषिक मत ऐसे जान ॥४२४॥

अब सिद्धान्ती नैयायिक और वैशेषिक मत में सांकर्य दोष देकर खण्डन करता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

दोनों कहे सिद्धांत असार । दूषण गणते दुष्ट निहार ।
जो निज आत्म ही जड़ होई । सोयो उठे न सिमरे कोई ॥४२५॥

या इन्द्रिय का जिस अर्थ के साथ सम्बन्ध होवे ताका ज्ञान होवे है और का नहीं होवे, मन संयुक्त इन्द्रिय का सम्बन्ध भी एक विषय साथ तब कहें जब मन अणु होवे, अन्यथा मन को विभु वा मध्यम परिमाण हुए सब साथ सम्बन्ध होने से, एक काल में सभी ज्ञान होवेंगे याते मन अणु है, ताका इन्द्रियों साथ क्रम से संयोग होकर क्रमिक ज्ञान होवे है इस रीति से अणुरूप जो मन है, ताहि नाम तिस अणुरूप मन का सम्बन्ध जब आत्मा में होवे है, तौ नाम तब बुद्ध्यादि गुणों की उत्पत्ति वह मन का संयोग तिस आत्मा में करे है, याते बुद्ध्यादिक गुणों का आश्रय होने ते आत्मा द्रव्य कहावे है, "बुद्धि आदिक" इहां आदि शब्द से इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्माधर्म संस्कार (भावनाख्य) लेने ॥ ४२२ ॥

पुनः लोक परलोक में जाना मन का होवे है, आत्मा का नहीं होवे, मन के जाने से ही आत्मा को तहां भोग होवे है सोई कहे "लोक" इति, लोक—इस लोक में, औ परलोक नाम नरक स्वर्ग में मन ही जावे है, आत्मा विभु होने ते कहीं आवे जावे नहीं, परलोक में भोग का प्रकार बतावे "अद्दष्ट" इति ॥ ४२३ ॥

तामों नाम अद्दष्टों के अधीन उपजे लोकान्तर देह में आत्मा, मनके साथ जब संयोग पावे, तब भोग होवे है, तटस्थ समाप्ति करे "यों" इति ॥ ४२४ ॥

वक्ष्यमाण दोषों ओर दृष्टिकर सिद्धान्तः कहे "दोनों" इति, प्रथम आत्मा में अंगीकार करी जड़ता दूर करने हेतु स्मरण की अनुपपत्ति रूप

परम सुखी मैं नीके सोयो । अंग दुःख सकलो मैं खोयो ।
जन्य ज्ञान सुषुप्ति माहीं । नित्य ज्ञान आत्म मों नाहीं ॥४२६॥
ऐसे तव उर अंगीकार । तूँ स्मृतिका क्यों करे उचार ।
अनुभव विना न स्मृति होई । अनुभव तहाँ न भाख्यो कोई ॥४२७॥
ईश्वरका अनुभव है जोई । व्यधिकरण क्यों कारण होई ।
ताते स्मृति सु जाते होई । ज्ञान रूप आत्म है सोई ॥४२८॥

दोष कहे "जो" इति, जो निज आत्म ही जड़ होई कहिये जेकर अपना आप ही जड़ होवे तब सुषुप्ति से उठकर कोई पुरुष "मैं परम सुखी सोया मेरे अंगों में कोई दुख न रह्या" ऐसा स्मरण न करे ॥ ४२५ ॥

सोई कहे "परम" इति, न स्मरण में पूर्व ताके जनक अनुभव की न्यूनता बतावे—"जन्य" इति, जन्य ज्ञान सुपुप्ति माहीं कहिये इन्द्रिय अर्थ संयोगादि रूप सामग्रियों के अभाव से प्रत्यक्षादि रूप अनित्य ज्ञान सुषुप्ति अवस्था में कोई नहीं, औ ईश्वर में ही अंगोकार ते नित्य ज्ञान सुपुप्ति काल में जीव में नहीं ॥ ४२६ ॥

ऐसे तव कहिये तेरे हृदय में अंगीकार है, याते "जो जो स्मृति है, सो सो अनुभवजन्य है" ऐसे नियम ते अनुभव बिना स्मृति न होने ते परम सुख औ अंग दुख निवृत्ति की स्मृति का क्यों करे उचार नाम कैसे कथन करेंगा अर्थात् अज्ञात में उच्चारण के अयोग्य ते काहू रीति से नहीं कर सकेगा, न उच्चारण करने में हेतु कहे "अनुभव" इति, तहाँ नाम सुपुप्ति में ॥ ४२७ ॥

ननु सुषुप्ति में जीव का नित्य अनित्य उभय विध अनुभव न रह्या भी, सर्व विषयक होने ते अर्थ ते परम सुख अंग दुख निवृत्ति विषयक जो ईश्वर का अनुभव तासे जीवों को स्मरण बने है ? यह आशंका कर कहे "ईश्वर" इति, ईश्वर का अनुभव है जोई कहिये ईश्वर का जो परम सुख औ अंग दुख निवृत्ति विषयक ज्ञान है, वह व्यधिकरण कहिये स्मृति ज्ञान के अधिकरण जीव से और अधिकरण में रहने वाला है, याते चैत्र के अनुभव से मैत्र को स्मृति न देखने ते, क्यों कारण होई कहिये कैसे कारण होवे अर्थात् काहू रीति से कारण नहीं हो सके, ऐसे

विभु जो तुम आत्म दिखलाये। नाना तुमभव भीतर गाये।
तामों कही व्यवस्था मान। सोई करे सो तुम मत हान ॥४२९॥
मूर्तद्रव्य सकल है जेते। ताहि संयोग लहै सब तेते।
एके देह विषे सब होवे। तामें सुख दुख सकले जोवे ॥४३०॥
देह प्रयत्न करण हैं जेते। धर्माधर्मादिक सब तेते।
यह साधारण सब को होई। याही के यह कहे न कोई ॥४३१॥

न माने चैत्र के अनुभव से मैत्र को स्मृति का प्रसंग होवेगा, इस ते यह मानना सोई कहे "ताते" इति, ताते नाम व्यधिकरण को कारण न होने ते और अज्ञात में स्मृति न देखने से, जिस ज्ञान ते सुखादिकों की स्मृति होवे हैं ऐसा ज्ञान रूप आत्मा है, जड़ रूप नहीं ॥ ४२८ ॥

जड़ता खण्डन कर आत्मा को नानात्व खण्डन करने हेतु नानात्व सिद्धि में कही व्यवस्था खण्डन करने का आरम्भ करे "विभु" इति, तामों नाम तिन विभुओं के नानात्व में कही जो "यह इसी के सुख दुख है, और को नहीं" ऐसी व्यवस्था, मान नाम प्रमाण, सोई नाम वह विभु माने आत्मा ही ताको तेरे मत में हान करे है ॥ ४२९ ॥

विभुओं को हानि करना स्फुट करे "मूर्त" इति, मूर्त द्रव्य सकल हैं जेते नाम जितने कोई संसार में मूर्तरूप द्रव्य हैं, ताहि नाम तिन मूर्तद्रव्यन का संयोग वह सभी लहेंगे, काहे ते ? "सर्व मूर्तद्रव्य के संयोग वाले का नाम तुमारे मत में विभु है" याते एके देह विषे कहिये एक देह में भी अपनी विभुता की रक्षा हेतु वह सभी होवेंगे औ होकर तामें नाम तिस एक देह में मन के संयोग ते सुख दुख को सभी देखेंगे, ऐसे सुख दुख के सांकर्य का प्रसंग होवेगा ॥ ४३० ॥

कहे प्रसंग को हेतु से स्फुट करे—"देह" इति, देह-शरीर, प्रयत्न-उद्यम, करण–इन्द्रिय, जेते-कोई है औ धर्माधर्मादिक जो है, यह साधारण कहिये यह देह आदिक सर्व आत्मा के समान होवेंगे ऐसे भये याही के यह नाम इसी आत्मा के यह देह आदिक हैं, और के नहीं, ऐसे कोई नहीं व्यवस्था कह सकेगा ॥ ४३१ ॥

अब नैयायिक स्वमत में युक्ति कहता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

जो मन जासों संगति पाये । सो आत्म गुण ता उपजाये ।
धर्मादिक सब ताही केरे । ता फल और न कोई हेरे ।।४३२।।

अब सिद्धान्तीकृत उक्त युक्ति का खण्डन और पुनः प्रश्नोत्तर रूप सम्वाद प्रतिपादन करते हैं ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

याहि व्यवस्था ते कछु नाहीं । मन पावे संगति सब माहीं ।
आत्म या भव भीतर जेते । मूर्तद्रव्य संयोगी तेते ।।४३३।।
मन मूर्त ते विभू स्वरूप । सकल संयोग सु होय अनूप ।

तार्किककृत शंकापूर्वक सिद्धान्ती का उत्तर ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु जन्मांतर केरे कर्म । जा आतम को होवे धर्म ।।४३४।

मन सम्वन्ध से उक्त व्यवस्था कथन हेतु आशंका करे "जो" इति, "सो ता आत्म गुण उपजाये, यह अन्वय है, सो नाम वह मन, ता नाम ताही आत्मा में धर्माधर्मादिक गुणों की उत्पत्ति करे है, और में नहीं, याते वह धर्माधर्मादिक, सब ताहो नाम उसी आत्मा के होवे हैं, और के नहीं, याते ता फल नाम तिन धर्माधर्म के फल सुख दुख को भी और कोई नहीं देखे हैं, इस रीति से व्यवस्था कह सके हैं ।। ४३२ ।।

वक्ष्यमाण दोषों को चित्त में स्थापन कर कहे "याहि" इति, याहि व्यवस्था ते कछु नाहीं नाम "जो मन" इत्यादि पाठ से कही व्यवस्था ते सुख दुख के असांकर्य की व्यवस्था नहीं सिद्ध होवे, काहे ते ? मन सम्पूर्ण आत्मा साथ सम्बन्ध को पावे हैं, सर्व साथ सम्बन्ध को पावना स्फुट करे "आत्म" इति, आत्मा इस संसार में जितने हैं, ते ते नाम वह सभी मूर्त द्रव्य के संयोग वाले हैं ।। ४३३ ।।

औ मन मूर्त नाम मूर्त द्रव्य है, पुनः ते नाम वह आत्मा विभु स्वरूप है, याते सम्पूर्ण आत्मा का सम्पूर्ण मनों साथ संयोग अवश्य होवेगा, ऐसे

ता गृहीत मन होवे जोई । ता आत्मका कहिये सोई ।

सिद्धान्ती—

याहि व्यवस्था ते गति नाही । दोष वही जन्मांतर माहीं ॥४३५॥

मन सापेक्ष्य तहाँ भी कर्म । सो कैसे इक आतम धर्म ।

मन संबंध सकलमों अहे । कर्म एकके किह विधि कहे ॥४३६॥

जन्मांतर कर्म गह्यो मन जोई । सब आत्मका होवे सोई ।

पूर्वपक्षी—

यह मैं कर्म करौं फल पावों । या फलहित मैं कर्म कमावों ॥४३७॥

यह संकल्प करे भव जोई । सो वह कर्म तिसीका होई ।

सिद्धान्ती—

यह है कुशावलम्बन तेरो । मन संबंध बिना नहिं हेरो ॥४३८॥

भये सुख दुख के सांकर्य का प्रसंग वैसे ही । मन सम्वन्ध आदिकों की विलक्षणता की आशंका करे "ननु" इति ॥ ४३४ ॥

ता गृहीत कहिये तिस कर्म से ग्रहण किया हुआ जो मन है, वह तिस आत्मा का कहिये है, याते विलक्षण मन के विलक्षण संयोगादिकों से उपजे धर्माधर्म के फलों का सांकर्य नहीं । समीप ही कहे दोष से तुच्छ जानकर कहे "याहि" इति, वही नाम "आत्म जा भव भीतर" इत्यादि पाठ से कहे दोष जन्मान्तर में हैं ॥ ४३५ ॥

सोई स्पष्ट करे "मन" इति, सो कैसे इक आतम धर्म कहिये वह कर्म एक आत्मा का धर्म कैसे होवेंगे अर्थात् काहू रीति से नहीं होवेंगे, न होने में हेतु कहे "मन" इति ॥ ४३६ ॥

जन्मान्तरीय कर्मों को सर्वात्म धर्मता स्थापन करता गृहीत मन को तैसा कहे "जन्मान्तर" इति । संकल्प से व्यवस्था की आशंका करे "यह" इति ॥ ४३७ ॥

कही आशंका को तुच्छता बोधन करे सिद्धान्ती "यह" इति, कुशावलम्वनता कथन में हेतु कहे "मन" इति, हेरो के आगे "संकल्प" शेष कर, "यह कर्म" "इसके फल को पावों" ऐसा संकल्प मन के सम्बन्ध बिना नहीं होवे औ मन का सम्वन्ध सब साथ होवे है याते उस संकल्प से हुआ कर्म भी सब का होवेगा ॥ ४३८ ॥

मनतो सबसों संगति पावै । ता अधीन संकल्प उपावै ।
ता संकल्प ते होय जो कर्म । सो सब आतम केरो धर्म ॥४३९॥
मूल कुठार तुम्हारो अहे । शाखा पल्लव कैसे गहे ।
नहिं केवल तुमरे मत माहीं । यह दूषण समझो मन माहीं ॥४४०॥
सांखी, भट्ट, प्रभाकर, जेई । नाना आत्म भाखे तेई ।
अरुपुनि सुखते विभू बखाने । तिन मतमें दूषण यों जाने ॥४४१॥
जे दूषण ईहाँ दिखलाये । 'श्रीमत्वेदव्यास' सो गाये ।
द्वितीयाध्याय 'शारीरक'माहीं । तृतीय पाद में संशय नाहीं ॥४४२॥
तथाच सूत्रं-"अदृष्टानियमात्" "अभिसंध्यादिष्वपिचैवम्" ।

अब नैयायिक शरीर भेद से व्यवस्था करता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननुयद्यपि एके तन माहीं । सब आतम इक आतम नाहीं ।
तदपि सु चैत्रका सुख जोई । ता प्रति कारण सो तनु होई ॥४४३॥
मैत्र सुखको कारण नाहीं । मैत्रतनु कारण है ताहीं ।
योंही सर्व व्यवस्था होवे । सुख दुखको 'संकर' नहिं जोवे ॥४४४॥

साई कहे "मन तो" इति ॥ ४३९ ॥

कहे दोष प्रकरण ते और स्थान में भी बतावे "नहिं" इति, "यह दूषण" पूर्व साथ (अन्वयकर लेना) ॥ ४४०-४४१ ॥

दूषणों में स्वकपोल कल्पितता वारण हेतु कहे "जे" इति, कहां गाये है ? यह आशंका कर निर्णय बतावे "द्वितीय" इति ॥ ४४२ ॥

द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में कहे सूत्र लिखे "तथा च" इति, तथा च सूत्र कहिये तैसे ही पुनः दो सूत्र हैं, अदृष्टानियमात् कहिये कहे दोषों ते अदृष्टों द्वारा व्यवस्था न होने ते अव्यवस्था है, और अभि सन्ध्यादिष्वेवं नाम अदृष्टों के हेतु भूत संकल्पादिकों विषे भी कहे दोषों ते अनियम ही है, याते काहू रीति से व्यवस्था नहीं बने, शरीर भेद से व्यवस्था की आशंका करे "ननु" इति ॥ ४४३-४४४ ॥

सिद्धान्ती—

पूर्व दूषणको न उद्धार। दोषांतर अब और निहार।
देह अधीन व्यवस्था होई। नानात्मा में मान न कोई ॥४४५॥
सुख दुःख की व्यवस्था जोई। नानात्म में भाखी सोई।
सोतो तनु नानाको मान। भई व्यवस्था नहिं तिहँ हान ॥४४६॥
या विन और उपाय न कोई। जाते आत्म नाना होई।
ताते आत्म एक पछानो नाना काहि तुण्ड ते भानो ॥४४७॥

पूर्वपक्षी—

ननु जे आतम एको अहे। उपास्य उपासक कैसे कहे।

सिद्धान्ती—

देह भेद कर सकलो होई। या भीतर संशय नहिं कोई। ४४८॥
उत्तम देह उपाधिक जोई। उपास्य कहीजै भवमें सोई।
अधम देह उपाधिक जो है। उपासक भव भीतर सुन सो है ॥४४९॥

परिहार करे "पूर्व" इति, दोषान्तर कहे "देह" इति ॥ ४४५ ॥

कही बात स्पष्ट करे "सुख दुख" इति ॥ ४४६ ॥

ताते नाम कही व्यवस्था के शरीरों कर ही बन जाने ते, आत्मा एक जानो, तुण्ड नाम मुख ते, नाना किस वास्ते कहते हो ॥ ४४७ ॥

कहे दोषों से हमारे मत में नानावत् एक माने उपास्य उपासक-भावादिकों की असिद्धि से तुमारे मत में एक भी नहीं बने ? यह आशका करे "ननु" इति, तुमारे मत में देह भेद से सुख दुख की व्यवस्थावत् हमारे मत में यह बने है यह सिद्धान्ती उत्तर कहे "देह" इति ॥ ४४८ ॥

देह भेद कर होना बतावे "उत्तम" इति, उत्तम देह औपाधिक जोई कहिये उत्तम देह उपाधि वाला जो वही आत्मा सो उपास्य कहिये है, औ अधम देह उपाधि वाला जो वही आत्मा वह इस संसार में उपासक कहिये है ॥ ४४९ ॥

पूर्वपक्षी—

ननु इक आत्म पक्ष तुमारो। तामों दूषण दृढ निर्धारो।
परकी देह यथा है न्यारी। त्यों परलौकिक देह विचारी।४५०॥
कर्म करे या तनके माहीं। भोगे फल परलोक के माहीं।
ज्यों परलौकिक त्यों परदेह। सो अब होवे फलको गेह॥४५१॥

सिद्धान्ती—

यामें उत्तर श्रुति बखाने। करहै शंक सकल ते हाने।
जाको सक्त होय मन जहाँ कर्म समेत लिंग गति तहाँ॥४५२॥
लिंग अवछिन्न जीव है जोई। इहाँ उहाँ फल भोगे सोई।
ऐसे वेद व्यवस्था गावे। तेरे निखिल संदेह मिटावे।४५३॥
लिंग देह अनुगत है जोई। कर्म करे फल भोगे सोई।
ताको प्रकट भेद भव माहीं। याही ते फल 'संकर' नाहीं॥४५४॥

शिथिल दोष की स्वल्प सी आशंका का परिहार श्रवण कर, नानात्म पक्ष में परलोक देह से पर देह में दूसरे आत्मा का स्वत्व रूप विशेष होने से, पर की देह में भोग नहीं बने, और एक पक्ष में विशेष न होने से हुआ चाहिये, इस दृढ़ दोष की आशंका करे "ननु" इति॥ ४५०॥

भोगे फल परलोक के माहीं कहिये इस रीति से कर्म करके फल को परलोक में जाकर भोगे है ऐसे मानो तब विशेष के अभाव ते जैसे पारलौकिक देह है तैसे पर देह है याते तामें भी भोग हुआ चाहिये, सोई कहे "ज्यों" इति॥ ४५१॥

जिसका जहां मन आसक्त है वह तहां भोगे है या मन आसक्तता रूप विशेष के सद्भाव ते पर देह में भोग नहीं बने यह श्रुति सिद्ध परिहार करे "यामें" इति, अर्थ ते श्रुति पढ़े "जाको" इति, जिस पुरुष का जहां मन आसक्त होवे कर्मों के सहित लिङ्ग शरीर का तहां ही गमन होवे है॥ ४५२॥

औ लिङ्ग अवच्छिन्न जीव है जोई कहिये लिङ्ग शरीर रूप उपाध्यवच्छिन्न जो चिदाभास है, वह इहाँ उहाँ नाम लोक परलोक में फल भोगे है, ऐसे कहता वेद तेरे सब संशय दूर करे है॥ ४५३॥

भोक्तृत्व कर्तृत्व भी ताको है यह बोधन करे "लिंग" इति, लिंग

परमार्थ एक आत्म है जोई । कहूँ न फलको भोगे सोई ।
में मत में दूषण को नाहीं । उलटे दूषण ते मत माहीं ।४५५॥
आतम सर्व सु व्यापक अहै । अदृष्ट तथा आत्म में कहै ।
तौ यह सकल देह है जेते । सकल अदृष्ट संबंधी तेते ॥४५६॥
अदृष्ट सकलके सबको भोग । संकर होय न कदे वियोग ।
रंक दुःखते भूपति दुःखी । भूपहि सुखते रंक सो सुखी ॥४५७॥

देह अनुगत है जोई कहिये लिङ्ग शरीर में व्याप्त जो चिदाभास है, वही कर्मों को करके तिनके फलों को भोगे है अर्थात् कर्तृत्व भोक्तृत्व का ताही में अंगीकार है, पुनः ताको नाम तिस कर्ता भोक्ता रूप लिङ्ग शरीरावच्छिन्न-चिदाभास को संसार में, भेद नाम अनेकता प्रकट है याते पारलौकिक देह में मन आसक्तता रूप विशेष के सद्भाव ते परदेह में भोग नहीं बने, पुनः याही ते नाम चिदाभास के भेद ते ही सुख दुख फल का सांकर्य भी नहीं ॥ ४५४ ॥

कहे दोषों का चिदाभास भेद ते वारण कर वास्तविक रूप साक्षी आत्मा में भोग के अनङ्गीकार ते दोष नहीं यह कहे "परमार्थ" इति, परमार्थ एक आत्म है जोई कहिये वास्तविक एक आत्मा जोई-साक्षी वह कहीं भी सुख दुख को भोगे नहीं याते में मत में कहिये मेरे एक आत्मवादी के पक्ष में, उक्त रीति से वारण होने ते, दोष कोई नहीं, उलटे तेरे मत में ही दोष है ॥ ४५५ ॥

या प्रतिज्ञा की सिद्धि हेतु सर्व व्यापी आत्मा में अदृष्टों को व्यापक कहे हैं वा एक देश में कहे हैं ? इन विकल्पों में प्रथम मानते प्रति कहे "आतम" इति, तथा नाम तैसे, आत्मा की व्यापकतावत् जेकर आत्मा में अदृष्टों को भी व्यापक कहे, तौ नाम तब, अदृष्टों को व्यापकता अंगीकार काल में जेते कोई यह देह हैं, सो सब अदृष्टों को व्यापक होने कर, तिनके सम्बन्ध वाले होवेंगे ॥ ४५६ ॥

ऐसे भये अदृष्ट सकल के कहिये एक-एक धर्माधर्म सबके होवेंगे याते "संकर होय" का पूर्व सम्बन्ध कर, सबको भोग का सांकर्य होवेगा, न कदे वियोग नाम सांकर्य का अभाव कभी नहीं होवेगा, सांकर्य स्पष्ट करे "रंक" इति ॥ ४५७ ॥

पुण्य पाप सबको सम होई। ता फलमें नहिं अन्तर कोई।
जो अदृष्ट इक ठौरे रहे। सर्वव्यापक नहिं जड़ कहे ॥४५८॥
लिंग देह नहिं मानी तोहि। ता अवछेदक भाखो मोहि।
स्थूल देह अवछेदक अहे। परलोक विषे फल कैसे गहे ॥४५९॥
स्थूल देह नष्ट होय गयो। अवछेदक और न कोई रह्यो।
बिन अवछेदक ते मर गये। परलोक विषे फल कैसे भये। ४६०॥

सांकर्य प्रसंग रूप दोष के भय ते प्रथम छोड़ दूसर कहे है? तहां कहे "जो" इति, जो कहिये जेकर घटाकाश संयोगवत् अदृष्ट नाम धर्माधर्म गुण भी सर्वव्यापी आत्मा में एक स्थान में ही रहे है वह सर्व व्यापक नहीं, हे जड़! ऐसे कहे? तब व्यापक आकाश के घटावच्छिन्न संयोग में, घट को अवच्छेदकतावत् इहां भी अदृष्टों के एक स्थान रहने का अवच्छेदक कोई अवश्य कहना, वह पुनः लिंग देह है वा स्थूल देह है? इनमें प्रथम तो न्याय सिद्धान्त में अंगीकार न करने ते नहीं बने ॥ ४५८ ॥

प्रथम का न बनना ही कहे "लिंग" इति, लिंग देह नहिं मानी तोहि कहिये अज्ञान शब्द का ज्ञानाभाव अर्थ कर कारण देह अनंगीकारवत् स्थूल देह के नाश काल में इन्द्रिय प्राणों का नाश अंगीकार करने ते सप्तदश तत्त्वों का समुदाय रूप लिंग देह भी, मन मात्र का लोक परलोक में गमन मानने ते तुमने मानो नहीं, याते ताको अवच्छेदकता न सिद्ध होने ते, ता नाम अदृष्टों का अवच्छेदक और कोई मेरे ताईं अवश्य बताओ स्थूल देह अवच्छेदक कहे हैं? तहां कहे "स्थूल" इति, स्थूल देह जेकर अदृष्टों का अवच्छेदक है ऐसे कहे तब परलोक विषे फल नाम सुख दुख को जीव कैसे ग्रहण करेंगे? अर्थात् काहू रीति से नहीं करेंगे ॥ ४५९ ॥

न करना ही स्पष्ट करे "स्थूल" इति, स्थूल देह नष्ट होय गयो कहिये अवच्छेदक रूप कर अंगीकार किया स्थूल देह तो नष्ट हो गया पुनः और कोई अवच्छेदक रह्या नहीं, याते घट भूत अवच्छेदक के दूर भये घटाकाश संयोग के नाशवत् अवच्छेदक के दूर होने से वह भी नष्ट हो गये इस ते परलोक विषे फल नाम सुख दुख कैसे होवेंगे अर्थात् अवच्छेदक के मरे

सुख-दुख को तनु बिन नहिं भोग। तनु वियोग ते ताहि वियोग।

पूर्वपक्षी—

तनु अवछिन्न देश थो जोई। तामों पुण्य-पाप ते दोई ॥४६१॥

रहे न ते फल बिन हत मानो। काहे ताको नाश बखानो।

सिद्धान्ती—

तौ वह देश यहाँ ही रहे। परलोक विषे फल कैसे गहे ॥४६२॥

देशवान आतम सावयव। होवेगा नहिं ते निरवयव।

'अपसिद्धांत' अब तोको आयो। जो सावयव आत्म ठहरायो ॥४६३॥

अरु जो तुम मुखते यों गायो। अणुरूप मनयोग बतायो।

बुद्ध्यादिक गुण तो उपजावे। गुण आश्रय ते द्रव्य कहावे ॥४६४॥

अदृष्टों के मरने से पारलौकिक देह की असिद्धि ते तहां सुख दुख के भोग की काहू रीति से सिद्धि नहीं होवेगी ॥ ४६० ॥

काहू रीति से सिद्धि न होनी बतावे "सुख" इति, सुख दुख को तनु बिन नहिं भोग कहिये सुख दुख का पारलौकिक देह बिना नहीं बने साक्षात्कार, और तनु वियोग ते कहिये अवच्छेदक बिना अदृष्टों का नाश होने कर पारलौकिक देह के अभाव ते, ता वियोग कहिये पारलौकिक देह में सुख दुख के भोग की असिद्धि होवेगी। ननु आत्मा के स्थूल शरीरावच्छिन्न देश में अदृष्टों की फल पर्यन्त स्थिति माने हैं याते भोग की असिद्धि नहीं? यह आशंका करे "तनु" इति, तनु अवच्छिन्न जो आत्मा का देश तामों नाम तिस देश में वह पुण्य पापरूप अदृष्ट बने रहे हैं ॥ ४६१ ॥

सोई कहे "रहे" इति, "भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः" या न्याय का प्रसंग कहे सिद्धान्ती "तौ" इति, तौ वह देश यहां ही रहे कहिये ऐसे अंगीकार किये भी वह तनावच्छिन्न देश तो इहां ही रहे है याते परलोक में फल कैसे होवेंगे अर्थात् काहू रीति से नहीं होवेंगे ॥४६२॥

किञ्च निरवयव मानते को आत्मा में देश कहने ते अपसिद्धान्त भी होवेगा सोई कहे "देश" इति, होवेगा पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ॥४६३॥

आत्मा को द्रव्यता खण्डन हेतु पूर्व "अणु रूप मन हइये जोई" इत्यादि पाठ से कही वार्ता का अनुवाद करे "अरु" इति ॥ ४६४ ॥

सो निर्युक्ति प्रकट तुम जानो । घन प्रतिकूल तर्क पहिचानो ।
निरावयव आत्मके माहीं । निरावयव मन संगति नाही ॥४६५॥
संयोग सो एक देशकर होई । निरावयव मों देश न कोई ।
बिन संयोग न ते गुण होवे । आत्म द्रव्य कहो क्यों जोवे ॥४६६॥
आत्मको जे द्रव्य बखानो । तौ घट सम सावयव पछानो ।
अवयव योगते होय अनित्य । नहिं सावयव देखियो नित्य ॥४६७॥

सो नाम वह आत्मा साथ अणु रूप मन का संयोग एक देश में है वा सर्व देशों से है ? ऐसे विचार किये युक्ति रहित है ऐसे प्रसिद्ध जानो, प्रसिद्ध युक्ति रहितता में बीज क्या पहिचाने ? तहां कहे "घन" इति, घन प्रतिकूल तर्क नाम सघन संयोग का बाधक युक्तियें जानो, दोनों को निरवयव होने ते एक अवयव से होने वाला संयोग नहीं बने यह एक प्रबल प्रतिकूल तर्क कहे "निरावयव" इति, निरावयव कहिये अवयव रहित आत्मा के विषे अवयव रहित मन की, संगति नाम संयोग नहीं बने ॥ ४६५ ॥

संयोग का न बनना कहे "संयोग" इति, संयोग सो एक देश कर होई कहिये संयोग दो द्रव्यन का एक अवयव से होवे है अन्य अवयव से ताका अभाव रहे है यह तुमारा सिद्धान्त है, और निरवयव आत्मा मनमें देश न कोई कहिये अवयव कोई भी सम्भवे नहीं याते तिनका एक देश में संयोग नहीं बने, एक देश से असम्भव देखकर निरवयवो का सर्व संयोग मानो तब एक देश मत की हानि होवेगी, पुनः सर्व संयोग अनभवारूढ़ भी नहीं होवे इस रीति से सर्वथा ही संयोग की असिद्धि है, रहो संयोग की असिद्धि, बिना संयोग ही आत्मा में गुण मानकर ताको द्रव्य देखे है ? यह आशंका कर कहे "बिन" इति, ते गुण नाम बुद्धयादिक गुण, कहो क्यों जोवे—आत्मा को द्रव्य कैसे देखेंगा अर्थात् काहू रीति से नहीं देख सकेंगा ॥ ४६६ ॥

हठ से आत्मा को द्रव्य कहो तब घटवत् सावयव होवेगा ? सावयवता से अनित्य होवेगा यह कहे "आत्म" इति, आत्म को जे द्रव्य बखानो कहिये कही रीति से गुणों से बिना भी जेकर हठ से आत्मा को द्रव्य कहो, तौ नाम तब, "आत्मा, सावयवः, द्रव्यत्वात्, घटवत्" या अनुमान

नहिं को द्रव्य अहे निरवयव । आत्म सु द्रव्य होय सावयव ।
निराश कियो परमाणू केरो । नभ सावयव प्रकट ही हेरो ॥४६८॥
ऊर्ध्व अधः देश नभ केरे । जन समूह अनुभव कर हेरे ।
याही ते नभ भयो सावयव । काहि बखाने तिहँ निरवयव ॥४६९॥
जो नहिं यों उरमें तुम मानो । तौ इक बाधक प्रकट पछानो ।
विहंग एक नभ भीतर गयो । ताही कर वह पूर्ण भयो ॥४७०॥

घटवत् सावयव जानो, रहो सावयव दोष क्या ? यह आशंका कर सावयव को अनित्यता कहे "अवयव" इति, अवयव योग ते होय अनित्य कहिये अवयवों के सम्बन्ध वाला होने ते आत्मा अनित्य होवेगा, काहेते "नहिं सावयव देखियो नित्य कहिये सावयव वस्तु कोई नित्य नहीं देखी, याते "आत्मा, अनित्यः, सावयवत्वात्, घटवत्" या अनुमान से आत्मा को अनित्यता होवेगी ॥ ४६७ ॥

ननु आकाशादिकों में द्रव्यत्व रहे भी सावयवता न रहने ते आत्मा में सावयवता तथा तासे अनित्यता नहीं बने ? यह आशंका कर कहे "नहिं" इति, नहिं को द्रव्य अहे निरवयव कहिये द्रव्य कोई निरवयव नहीं, याते जेकर आत्मा को द्रव्य मानो तब वह भी सावयव होवेगा, कही प्रतिज्ञा की सिद्धि हेतु द्रव्य मात्र को सावयवता बतावे "निराश" इति, निराश कियो परमाणु केरो कहिये निरवयव रूप कर अभिमत चार भूतों के परमाणुओं का तो पूर्व ही "अरु पुनि त्र्यणुक बखान्यो जोई" इत्यादि पाठ से खण्डन किया याते तिनको निरवयवता नहीं सम्भवे यह कहे "नभ" इति, नभ सावयव प्रकट ही हेरो कहिये आकाश को सावयव प्रकट ही देखो ॥ ४६८ ॥

काहूँ के अनुभव सिद्ध न होने ते कैसे देखे ? तहां कहे "ऊर्ध्व" इति, याही ते नाम ऊर्ध्व अधोदेश वाला होने ते ही, आकाश सावयव हुआ, याते ताको निरवयव किस वास्ते कहता है अर्थात् मत कहो ॥ ४६९ ॥

होवे तुमको अनुभव, हम तो इतने कहने से कोई नही सावयवतामाने ? यह आशंका कर कहे "जो" इति, बाधक कहे "विहंग" इति ॥ ४७० ॥

द्वितीय जाने को चाहे और । सो नभ महिं कहि पावे ठौर ।
एक देश पूर्ण तिहँ भयो । द्वितीय देश खाली रहिगयो ।।४७१।।
तामों द्वितीय विहंगम जावे । ऐसे जे जड़ मोहि बतावे ।
तो तव तुंड अवयव बखाने । सावयव कहनमों लज्जा माने ।।४७२।।

अब तार्किक प्रकारान्तर से स्वमत का स्थापन करता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु नभको स्वभाव विचित्रं । याहि विषे नहिं को भव चित्रं ।
यद्यपि एक विहंगम पूर्ण । होवे नभ, नाहीं कहुँ ऊर्ण ।।४७३।।
तदपि सु द्वितीय करे प्रवेश । वस्तु स्वभाव यही निर्देश ।

अब सिद्धान्ती कर पूर्वोक्त मत का खण्डन ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

तौ इक प्रस्थ उदर के माहीं । खारी सौ मेवे भव माहीं ।।४७४।।

सो नभ महिं कहि पावे ठौर कहिये वह आकाश में कहां ठिकाना पावे, पूर्ण देश को छोड़कर खाली में पावे ऐसे कहो ? तब तो मुख तेही सावयव कह्या यह कहे "एक" इति ।। ४७१ ।।

तामों नाम खाली में ।। ४७२ ।।

ननु सावयवता सिद्धि प्रसंग ते हम नहीं कहते, खाली देश में जावे है, किन्तु अग्नि के उष्ण औ जल के शीतल स्वभाववत्, एक के रुकने से भी दूसरे को अवकाश देना यह आकाश का स्वभाव है, याते सावयवता नहीं ? या भाव से आशंका करे "ननु" इति, ननु नभ को स्वभाव विचित्रं नाम आकाश का आश्चर्य स्वभाव है यामें कोई चित्रं नाम आश्चर्य नहीं, विचित्रता कहे "यद्यपि" इति, "होवे नभ" पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ।। ४७३ ।।

तदपि सुद्वितीय करे प्रवेश कहिये तौ भी दूसरा प्रवेश करे है, यह वस्तु की स्वभाव विचित्रता से निर्देश नाम कथन है । स्वभाव विचित्र माने यह भी हुआ चाहिये सोई कहे "तौ" इति, तौ नाम तब, एक थोड़े से परिमाण वाले प्रस्थ पात्र के पेट में १०० खारी पात्र, मेवे नाम स्थित

जैसे यह तैसे वह रीत। सो कैसे निर्धारो चोत।
उदय आदि प्रदेश अवछिन्न। नभ परदेशन ते नहिं भिन्न ॥४७५॥
महत् देश का अङ्गीकार। ताही कर साधे व्यवहार।
अविद्या चिद् संबंधहि जोई। महा काल कहलावे सोई ॥४७६॥
जो अणुभाग अन्नको अहे। सो मन प्रकट वेद ही कहे।
मन अन्नमय सोम्य! पछानो। शुद्ध अशुद्ध प्रकट तिहँ जानो ॥४७७॥

दोहा

याविधि भये सावयव सब, द्रव्य जगत के माहिं।
निरावयव जिहँ मानिये, इसो न को भव माहिं ॥४७८॥

होवे, प्रस्थ और खारी यह माप के भेद हैं :—एक हाथ ऊँची, एक हाथ चौड़ी एक हाथ लम्बी वस्तु को मद्र देश में तथा मगध देश में "खारी" कहे हैं, खारी के सोलहवें भाग को द्रोण कहें है, द्रोण के चौथे भाग को "आढक" कहे हैं, आढक के चौथे भाग को "प्रस्थ" कहे हैं ॥ ४७४ ॥

दिशा को आकाशान्तर्गत होने से (वह भी निरवयव नहीं) औ महाकाल को अविद्या चित् सम्बन्धरूपता कर द्रव्यत्वाभाव ते वह सावयव नहीं, यह कहे "उदय आदि" इति, उदय अस्त आदि देशावच्छिन्न जो नभ नाम आकाश के अवयव तिन प्रदेशों ते, नहिं भिन्न नाम न जुदी, अर्थात् तत्स्वरूप महा दिशा का अंगीकार है ॥ ४७५ ॥

सोई कहे "महत्" इति, महत् देश का कहिये उदय आदि प्रदेशावच्छिन्न जो आकाश के प्रदेश तिनको महादिशा रूपता का अंगीकार है याही ते ताही कर नाम आकाश के प्रदेश रूप महादिशा कर ही सब लोक पूर्वादिक व्यवहारों की सिद्धि करे हैं, इस प्रकार दिशा को आकाश रूपता औ आकाश को कही रीति से सावयव होने ते, निरवयवता नहीं बने। पुनः अविद्या चिद् सम्बन्ध (हि) जोई कहिये, अज्ञान और चेतन का जो सम्बन्ध (वह) महाकाल कहावे है, याते घड़ी मुहूर्त प्रहर आदि व्यवहारों के साधक महाकाल को द्रव्यता न होने ते ताको सावयवता नहीं ॥४७६॥

और मन को तो अन्नमय कहती श्रुति ही सावयव बतावे है यह कहे "जो अणु" इति ॥ ४७७ ॥

"नहिं को द्रव्य अहे निरवयव" पाठकर कही प्रतिज्ञा की पूर्णता कहे

चौपाई

अरु जड़ आत्म भाख्यो जोई। ता गुण बुद्धि न चेतन होई।
जड़ गुण होय जगत में जोई। घट गुण सम नहिं चेतन होई ॥४७९॥
दूषण घने कहाँलौं गावों। ग्रंथ बढ़न ते बहु डर पावों।
वेद विरुद्ध बाद जो जोई। यों परिहरै सुधी सो सोई ॥४८०॥

"या विधि" इति, इसो न को भव माहिं कहिये ऐसा द्रव्य संसार में कोई नहीं जिसको निरवयव अंगीकार करे याते आत्मा को द्रव्यता अंगीकार किये ते सावयवता और सावयवता से नाशिता प्रसंग ते द्रव्य नहीं कहना ॥ ४७८ ॥

"आत्मा स्वतः जड़ है ताका गुण बुद्धि चैतन्य है ताके योग से आत्मा चैतन्य कहिये है" इस रीति से बुद्धि में कही चैतन्यता खण्डन का आरम्भ करे "अरु" इति, अरु जड़ आत्म भाख्यो जोई कहिये "जड़ आतम आकाश समान" इस रीति से पूर्व जो आत्मा को स्वतः जड़ता कही औ जाके सम्बन्ध से आत्मा चेतन होवे है ता बुद्धि गुण को अर्थ ते चेतनता कही सो ता नाम तिस आत्मा का बुद्धि गुण घटादिकों के रूप रसादिक गुणोंवत् चेतन नहीं हो सके, चेतन न होना दृष्टान्त से कहे "जड़" इति, जड़ गुण होय जगत में जोई कहिये जो जो जगत् में जड़ का गुण है वह, घट गुण सम कहिये घट के रूप रसादिक गुणोंवत् चेतन नहीं होवे, किन्तु जड़ होवे है याते, बुद्धि, जड़ होने के योग्य है, जड़ का गुण होने ते, रूपवत्, या अनुमान से बुद्धि को जड़ता सिद्ध होवे है याते आत्मा को जड़ मानकर ताका गुण बुद्धि चैतन्य मत कहो, "इन्द्रिय अनुमानादिजन्य ज्ञानमात्र का नाम नैयायिक बुद्धि कहे है" वेदान्ती वृत्ति कहे हैं इस रीति से निर्गुणता प्रतिपादक श्रुति का विरोध औ सगुण को विनाशिता प्रसंग आदिक और भी न्याय मत में अनन्त दोष हैं ग्रन्थ वृद्धि के भय से कहाँ पर्यन्त कहें ॥ ४७९ ॥

सोई कहे "दूषण" इति, "तब आये परिपन्थीवाद" से लेकर प्राप्त भये परमत के खण्डन की शैली शिष्य प्रति बतावे "वेद" इति, वेद विरुद्ध वाद जो जोई कहिये जो जो चार्वाक मत से लेकर जीवों को अद्वितीय सच्चिदानन्द रूपता प्रतिपादक वेद से विरुद्ध वाद हैं, बुद्धिमान् तिन सबको कही रीति से दूर करे ॥ ४८० ॥

अब सिद्धान्ती और तटस्थ के परस्पर शंकापूर्वक समाधान का प्रतिनादन करे है।

चौपाई

तटस्थ—

ननु सकले मत तोहि निवारे। नर काको उर अंतर धारे।

सिद्धान्ती—

जा मतसों होवे कल्याण। ता मतको उर अंतर आन ॥४८१॥

सो मत अहे न मोहि निवारे। ताहीको उर अंतर धारे।

तटस्थ—

ऐसो गोपमतो है कौन। मोहि बतावो सो है जौन ॥४८२॥

अब सिद्धान्ती वैदिक मत का प्रतिपादन करता है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

दोष बिना अति उत्तम अहै। सो मत प्रकट वेद ही कहै।

तनु, इंद्रियगण प्राण, न्यारो। मन, मेधा, साक्षी निर्धारो ॥४८३॥

इस प्रकार श्रुति युक्तियों के समूहों कर सम्पूर्ण द्वैतवादियों को अपने मत से गिराकर अपने अभिमत प्रत्यगात्म तत्त्व बोधन की इच्छा करता हुआ देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि के दूर किये शेष रही वस्तु में, है कि नहीं ? ऐसे संशय से मन्दमत वाले कायर पुरुषों को पूर्व अनेक बार सूचन किये सुषुप्ति के साक्षी औ मन बुद्धि आदिकों के साक्षीभूत अपने आपको शेष दिखलावने कर तिनका चित्त धावता हुआ ताको नित्य सिद्ध सच्चिदानन्द रूपता प्रकट करने हेतु तटस्थ मुख से आशंका करे "ननु" इति, सिद्धान्ती उत्तर कहे "जा" इति ॥ ४८१ ॥

वह तो कोई रह्या नहीं ? तहां कहे "सो" इति। पुनः पूछे "ऐसो" इति ॥ ४८२ ॥

बतावे "दोष" इति, वेदोक्त मत कहे "तनु" इति, "मन मेधा" कथन अन्तःकरण धर्मों का भी उपलक्षण है याते "मन मेधा साक्षी निर्धारो" कहिये मन बुद्धि रूप अन्तःकरण औ ता धर्म इच्छादिकों का साक्षाद् द्रष्टा है ॥ ४९३ ॥

भावाभाव सकल को जानै। स्वयं ज्योति तिहँ वेद बखानै।
सो अनंदघन ज्ञान स्वरूप। बाधहीन जानो तिहँ रूप ॥४८४॥
अरु पुनि मान विभू तहि जानो। अणु मध्यम में दोष पछानो।
मध्यम में दूषण है जेते। जैन निषेध ठौर में तेते ॥४८५।
अणुवादी मत जहाँ विडारे। अणुदोष सो तहाँ उचारे।
ताते और सु मतो असार। वैदिक मतो सो सबते सार ॥ ४८६॥

साक्षाद् द्रष्टापना स्पष्ट करे "भावाभाव" इति, भावाभाव सकल को जानै कहिये सम्पूर्ण इच्छादि वृत्तियों के उत्पत्ति विनाश को, स्वरूप चेतनता से जाने है, याते वेद तिसको स्वयंज्योति नाम स्वप्रकाश अर्थात् नित्य अपरोक्ष ज्ञान रूप कहे है। ननु कहे वेद अपरोक्ष ज्ञान रूप परन्तु चाक्षुष आदि अपरोक्ष ज्ञान का, विषयों के नाश से नाश देखने से, या अपरोक्ष ज्ञान का भी इच्छादि विषयों के नाश से नाश अवश्य होवेगा ऐसा न माने अनुभव नाश बिना संस्कारों की असिद्धि प्रसंग ते कालान्तर विषे "मैं इच्छादिकों वाला होता भया" यह स्मृति नहीं होवेगी या ते अवश्य नाश कहना ? यह आशंका कर ताको नित्यता कहे "सो" इति, सो नाम वह इच्छादिकों का साक्षी ज्ञान रूप एक रस आनन्द स्वरूप है औ तिह कहिये ताका, रूप नाम स्वरूप बाधहीन है अर्थात् नाश रहित त्रिकालाबाध्य सद् रूप है, इहां यह भाव है = कूल द्वारा केदार प्रविष्ट जल को केदार सम्बन्ध ते केदाराकारतावत् चक्षुः द्वारा बाहर निकसे अन्तःकरण का घटादि सम्बन्ध ते घटाद्याकार परिणाम होवे है, साक्षी का नहीं, याते केदार भङ्ग हुये केदार जल को तदाकारता नाशवत् घटादि विषयों के नाश हुये घटाद्याकार चाक्षुष वृत्ति का नाश समीचीन है औ साक्षो ज्ञान को निराकार निर्विकार होने ते, इच्छादि वृत्ति रूप विषयों के नाश होने से नाश समीचीन नहीं, पूर्व कहे संस्कार स्मृति की सिद्धि तो इच्छादिकों के नाश हुये तदुपहित रूप ते साक्षी का नाश मान कर भी सम्भवे है याते साक्षी नित्य है ॥ ४८४ ॥

सच्चिदानन्द स्वरूपतावत् परिमाण वाका विभु है सोई कहे "अरु पुनि" इति, अणु मध्यम ही काहे नहीं ? तहां कहे "अणु" इति, कहे बिना कैसे पछाने तहाँ कहे "मध्यम" इति ॥ ४८५ ॥

ताते नाम कहे दोषों ते ॥ ४८६ ॥

वेद वखान्यो आत्म जोई। जीव रूप पहिचानो सोई।
पुर तीनों में क्रीड़ा करे। आतम राम असंगहि चरे ॥४८७॥
रवि, शशि, अग्नि, शांत हैं जहाँ। इन्द्रियगण नहिं भासे तहाँ।
तहाँ सु आतम स्वयं प्रकाश। स्वप्न विषे अर्थन को भास ॥४८८॥

वैदिक मतको सर्वते सार होने तेही वेदबखान्यो नाम वेद ने प्रतिपादन किया जो सच्चिदानन्द रूप विभु परिमाण वाला आत्मा वही जीव रूप जानो और जीव रूप हुआ अवस्था त्रय में भ्रमण करे है सोई कहे "पुर" इति पुर तीनों में कहिये क्रीडा हेतु रचे तीन पुरवत् अवस्था तीनं में राजा के समान सैर करे है और क्रीडा करता हुआ भी अध्यस्त साथ अधिष्ठान का वास्तविक ते स्पर्श न होने से असंग हुआ विचरे है, इहां यह भाव है=जेकर अग्नि में दहन, पचन, प्रकाशन शक्तियोंवत् आत्मा में अवस्था तीनों एक काल में रहे अथवा बाल अवस्था में अनुभूत गोत्र जाति आदि जैसे शरीर में युवावस्था में अनुभव करिये हैं, ऐसे एक अवस्था में अनुभव किये धर्म अवस्थान्तर में भान होवे, तब होवे आत्म तिनका संगी, वह पुनः ऐसे नहीं, काहे ते ? स्वप्नदृश्य का जाग्रत में बाध होवे है औ जाग्रत दृश्य का स्वप्न में बाध होवे है औ जाग्रत स्वप्न दोनों के दृश्य का सुषुप्ति में लय होवे है, औ सुषुप्ति में दोनो की प्रतीति नहीं होवे, याते प्रत्यभिज्ञा से द्रष्टा हो तीनों में अनुवृत्त हुआ एक प्रतीति होवे है सो यह एक अनुस्यूत में अनेकों की प्रतीति रज्जु में भूदरार सर्पादिकोवत् आत्मा में अवस्था तीनको मिथ्यात्व बोधन करे है, याते अध्यस्त पदार्थों का अधिष्ठान साथ स्पर्श न होने ते आत्मा को असंगता समीचीन है इस रीति से अवस्थात्रय का अधिष्ठान होने ते औ बाधकान्तर के अभाव ते आत्मा को सत्यत्व सिद्ध होवे है ॥ ४८७ ॥

कही रीति से आत्मा को सद्रूपता सिद्धकर ज्ञान रूपता सिद्ध करे "रवि" इति, रवि शशि अग्नि शान्त है जहां नाम सूर्य चन्द्र अग्नि जहां लीन हो जावे है औ जहां वागादि रूप इन्द्रिय समूह में भी कोई नहीं प्रकाशे तहां स्वप्न अवस्था विषे स्वयं प्रकाशात्मा सम्पूर्ण अर्थों को प्रकाशे है सोई कहे "तहां" इति, इहां यह भाव है=जाग्रत काल में सूर्य चन्द्र अग्नि पूर्व-पूर्व के अस्त हुए उत्तर-उत्तर व्यवहार हेतु प्रसिद्ध है तैसे अन्धकार में दीप प्रकाश के अभाव काल में सम्भाषण आदिकों

बाहर अर्थ करण कर देखै । करण समूह बुद्धि सो पेखै ।
ताहि विषे जोई निज भास । सो आतम है स्वतः प्रकाश ।।४८९।।
घर, धन, सुत, नारी, प्रिय कहे । आत्म अधिक सकल ते अहे ।
जाते इन चारों को त्याग । जावै जब गृह लागे आग ।।४९०।।

से व्यवहार सिद्धि देखिये है याते जाग्रत काल में अन्य ज्योति-पदार्थों के साथ मिश्रित होने ते स्वयं ज्योति रूपता विद्यमान हुई भी भिन्नकर जानने को शक्य नहीं; याते वाह्य सम्पूर्ण ज्यों त्यों के उपराम काल में स्वप्न में स्वयंज्योति रूपता दिखावनी सुगम है, काहे ते ? जाग्रत व्यवहारोंवत् स्वप्न व्यवहार भी अर्थ ज्ञानाधीन है औ और काहू रीति का अर्थों का ज्ञान बने नहीं याते स्वप्न में अर्थप्रकाशानुपपत्ति से अवश्य आत्मा को सद्‌रूपतावत् ज्ञानरूपता सिद्ध होवे है ।। ४८८ ।।

स्वप्नवत् जाग्रत विषे वाह्य अर्थ प्रकाशकों की परम्परा में अवधि-रूपता कर स्वप्रकाश नित्य चेतन रूप आत्मा विवेक से दिखावने को शक्य है यह कहे "बाहर" इति, बाहर अर्थ करण कर देखे कहिये रूप आदिक विषयों को आत्मा चक्षुरादि इन्द्रियों से प्रकाशे है औ करण समूह कहिये इन्द्रियों के पुञ्ज को आत्मा अन्तःकरण से प्रकाशे है, औ अन्तःकरण को आत्मा तामें स्थित होकर स्वरूप से प्रकाशे है सोई कहे "ताहि" इति, ताहि विषे कहिये तिस अन्तःकरण की वृत्ति रूप बुद्धि में जो निज भास कहिये बुद्धि का प्रकाश प्रतीत होवे है, सो नाम वह प्रकाश ही स्वयंप्रकाश रूप अपना आप है, याते ताका आगे और प्रकाशक कोई नहीं, इहां भी यह भाव है = जैसे नील पीतादि अनेक प्रकार से भिन्न रूपका एकरूपही चक्षु प्रकाशक है एवं अन्ध मन्द पटुतादि भेद से भिन्न अनेक रूप चक्षु का एक रूप ही अन्तःकरण प्रकाशक है तैसे काम, संकल्प, लज्जा, धैर्य, अधैर्य, निश्चय, भेदों से भिन्न अनेक रूप अन्तःकरण का एक रूप ही लोहे में स्थित अग्निवत् साक्षी प्रकाशक है औ साक्षी अपने प्रकाश में अनवस्था भय ते प्रकाशान्तर रहित है, याते वह अबाध भूत प्रकाशक होने ते स्वयं प्रकाश है, "सर्वका प्रकाशक होकर अपने प्रकाश में और की अपेक्षा न करे सो स्वयं प्रकाश कहिये है" ।। ४८९ ।।

इस प्रकार सद् रूप प्रत्यक् में ज्ञानरूपता सिद्ध कर आनन्द रूपता

राजदंड ते सकले त्याग । जावै आप अकेलो भाग ।
जा हित और सकल हैं प्यारे । सो नहिं काहूँ हित उर धारे ॥४९१॥
ऐसे वेद बखान्यो जोई । अज्ञान अधीन जीव है सोई ।
तत्त्वज्ञान सो ताहि निवारे । आत्म ब्रह्म सदा निर्धारे ॥४९२॥

सिद्ध करने हेतु कहे "घर" इति, घर धन सुत नारी प्रिय कहे कहिये गृह, द्रव्य, पुत्र, स्त्री में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर को प्रिय कहे हैं औ आत्मा इन सबों से अधिक है, आत्मा अधिक प्रिय कैसे जान्या ? तहाँ कहे "जाते" इति, जावै जब गृह लोग आग कहिये जब घर को आग लागे है तब इन चारों को त्याग के भाग जावे है तथा राजदण्ड से भी त्याग जावे है ॥ ४९० ॥

सोई कहे "राज" इति, राजदण्ड कहिये राजा के दण्ड से भी इन सबको त्याग कर आप अकेला भाग जावे है, याते गृह आदिकों में सौपाधिक प्रीति है, औ आत्मा में निरुपाधिक है सोई कहे "जाहित" इति, जाहित और सकल है प्यारे कहिये जिस आत्मा के हेतु और सभी प्यारे हैं अर्थात् जिस आत्मा के सम्बन्ध से गृह आदिक सब प्यारे हैं, वह आत्मा काहू के हेतु प्यारा नहीं, किन्तु वह निरुपाधिक प्रीति का विषय है, यहाँ यह भाव है:—बैरी के गृह आदिकों में प्रीति न देखने ते गृह आदिक स्वतः प्रिय नहीं, किन्तु स्वकीयता कर ही प्रिय हैं, याते तिनमें आत्मोपाधिक प्रीति है सो विचार से आत्मा में ही अवसान पावे है, जैसे जल में प्रतीत होता गन्ध पृथिवी में अवसान पावे है, याते "आत्मा" परम प्रेम का आस्पद होने को योग्य है, निरुपाधिक प्रीति का विषय होने ते, या अनुमान से आत्मा को आनन्द रूपता सिद्ध होवे है ॥ ४९१ ॥

इस रीति से सच्चिदानन्द रूप कर वेद ने प्रतिपादन किया जो आत्मा, वही अज्ञानाधीन "जीव है" सोई कहे "ऐसे" इति, ऐसे कहिये वेद ने जो सच्चिदानन्द रूप कर प्रतिपादन किया वही अज्ञानाधीन "जीव है" याते ताहि कहिये जीवत्वापादक अज्ञान को तत्त्वज्ञान से दूर करे औ दूर कर आत्मा को सदा ब्रह्मरूपता निश्चय करे ॥ ४९२ ॥

उक्तार्थ में शंकापूर्वक समाधान दर्शाते हुए द्वितीय निवास को समाप्त करे हैं।

चौपाई

पूर्वपक्षो—

धर्म विरुद्ध दोनहूँ केरे। अभेद विरोधी पूर्व टेरे।
निखिलदोष हारिणी जोई। पूर्व कही लक्षणा सोई ॥४९३॥
रूप न कीनो कछू उचार। किह विधि भयो विरोध प्रहार।

सिद्धान्ती—

ताको रूप यथा पुनि होई। तृतीय निवास कहेंगे सोई ॥४९४॥

दोहा

अनिर्वाच्य अज्ञान ये, रचे सकल संसार।
चित् यह अंतःकरण मिल, भोगे दुख तिहँ भार। ४९५॥

चौपाई

नाना योनि जन्म को पाये। घटीयन्त्रवत् आवे जाये।
अंतःकरण मिथुनता पाई। निज आतमता जीव भुलाई। ४९६॥
सुख दुख पाय सदा उरमाहीं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति माहीं।
अवस्था तीन सु संगी जोई। 'त्वं'पदवाच्य पछानो सोई ॥४९७॥

आत्मा को ब्रह्म रूपता निश्चय करे यह श्रवण कर शिष्य आशंका करे "धर्म" इति, दोनहूँ कहिये ईश जीवके विरुद्ध धर्म अभेद के विरोधी हमने पूर्व कहे तिस पै तुमने निखिल दोष हारिणी लक्षणा का नाम लिया ॥ ४९३ ॥

रूप न कीनो कछू उचार कहिये रूप वाका कछू न कह्या याते विरोध परिहार कैसे हुआ अर्थात् काहू रीति से नहीं होवे, याते लक्षणा का रूप अवश्य कहो, गुरु परिहार करे "ताको" इति ॥ ४९४ ॥

अध्याय भर से प्रतिपादन किये अर्थ को संक्षेप ते अनुवाद करे "अनिर्वाच्य" इति ॥ ४९५ ॥

दोहा के दूसरे प्राद का विवरण करे "नाना" इति, मिथुनता-लोह अग्निवत् परस्पर तादात्म्याध्यास ॥४९६-४९७ ॥

अब कहे अर्थ का उपसंहार करते हैं ।

दोहा

निखिल कुपंथी दूर कर, स्वयं ज्योति निर्धार ।
तीन अवस्था संग सो, कीनों जीव उचार ॥४९८॥
सीतावर सतसंग भज, पायों अर्थ उदार ।
गुलाबसिंह निर्धार उर, कीनों यहाँ उचार ॥४९९॥

इति श्रीमन् मानसिंह चरणशिष्य गुलाबसिंहेन
गौरीराये आत्मजेन विरचिते मोक्षपंथ
प्रकाशे त्वम्पदवाच्यार्थ निर्णयो नाम
द्वितीयो निवासः ॥ २ ॥

संक्षेप ते कहे अर्थ के अनुवादपूर्वक समाप्ति करे "निखिल" इति ॥ ४९८-४९९ ॥

इति श्रीमत् गुलाबसिंह चरणशिष्य ताराहरिकृते मोक्ष-पन्थप्रकाश-प्रकाशे
स्वयंप्रभा विवरणे द्वितीयो निवासः ॥ २ ॥

❀ समाप्तः ❀



तृतीय निवास

प्रथम निवास में तत्पदार्थ का और द्वितीय निवास में त्वम् पदार्थ का निरूपण किया। अब तृतीय निवास में अखण्डार्थ के निरूपण की प्रतिज्ञा करते हुये प्रथम गणेश जी का नमस्कारात्मक मंगल करे हैं।

(भुजंगप्रयात छंद)

गणंनाथ दाते नमो पादकंजम् ।
सदा सौख्यकारं अलं द्वैतभञ्जम् ॥
सदा देव सेवें उरं ओट जाने ।
धरे भेट आगे नमो पाद ठाने ॥ १ ॥

अब श्री रघुनाथ जी का मङ्गल करते हैं।

जिने नाहिं जाने भई द्वैत भारी ।
जिने भान होये मिटे द्वैत सारी ॥
परं देव रूपं नमो नाथ रामम् ।
तिसे नित्य सेवे सरे सर्व कामम् ॥ २ ॥

---

१ ॐ सद्गुरु प्रसाद

जयदेव महेश्वर गौरिपते । अगतान् बनारस दैनगते ।
गुरुदेव दशो पद बन्द वर । कहुँ वाक्य विशोध सुभद्र करं ॥ १ ॥

गणं नाथ दाते—हे गणों के स्वामी वाञ्छित फलों के देने वाले गणेश जी, चरण कमलों को नमस्कार है। कैसे तुमारे चरण कमल हैं ? सदा सौख्यकारं—सर्वदा काल सुखों के करने वाले हैं, पुनः अलं द्वैत भञ्जम् नाम सम्पूर्ण द्वैत के नाश करने वाले हैं, पुनः कैसे हैं—"सदा देव सेवें उरं आटे जाने" सर्वदा काल देवता जिनको आश्रय जानकर सेवन करे हैं और आगे भेंट धर कर जिन चरणों में नमस्कार करें हैं ॥ १ ॥

राम मंगल करे—जिने नाहिं जाने नाम जिस राम के अज्ञान से भई द्वैत भारी कहिये ज्ञान से बिना काहूँ उपाय कर दूर न होने वाली"

अब स्वगुरू जी का मङ्गल करते है ।

मदरा छंद

जा गुरु में सब द्वंद्व हरे, अरु पार परे पदके परसे ।
सो भवमोहि मतंग निवारण, एक सदा पइये हर से ॥
नाहिं चले कबहूं भव में, अरु शांत सदा लखिये धर से ।
दो कर जोर नमो पद पंकज, ता गुरुके उर मैं सरसे ॥ ३ ॥

अब निरूपणीयार्थ की प्रतिज्ञा करते है ।

दोहा

दोनों पदार्थ सोधकै, अखंडार्थ यामाहिं ।
प्रकट होय नीके सुनो, निखिल द्वैत मिट जाय ॥ ४ ॥

द्वैत होवे है, और जिनें भान होये—जिस रूप के सम्यक् निश्चय भये, मिटे द्वैत सारी कहिये मूल सहित द्वैत की निवृत्ति होवे है ऐसे, परं माया तत् कार्यातीत औ देव-प्रकाश रूप, पुनः नाथ नाम नित्य ज्ञानादिक षड्विध ऐश्वर्य वाले रामचन्द्र को नमस्कार है अथवा "जिने नाहिं जाने" औ "जिनेभान होये" यह अज्ञानी, ज्ञानी पुरुषों की ओर लगा लेना अधिष्ठान के अज्ञान, ज्ञान का फल द्वैत का होना मिटना । सो जिस रूप के अज्ञान ज्ञान के यह फल है ऐसे परम देव रूप तिस राम को नमस्कार है ॥ २ ॥

गुरु मङ्गल करे "जा" इति, जिस गुरु ने मेरे सम्पूर्ण रागद्वेष हर्ष शोकादिक द्वन्द्व दूर किये, पुनः पार हुआ मैं जिनके चरणों के स्पर्श से, पुनः वह कैसे है ? जो गुरु संसार में मोहरूप हस्ती के दूर करने में सर्वदा काल एक हरि से नाम से रसे हैं, पुनः जो गुरु कभी भी नहीं चलायमान होते जगत् में प्रतिज्ञा से वा स्वरूप दृष्टि से, पुनः शान्त नाम मान अमान से हर्ष क्षोभ रहित देखिये है, सदा धर से नाम लेपन खोदन आदिक कर हर्ष कोप रहित पृथिवी सम, दो कर नाम दो हाथ जोड़कर मेरी नमस्कार है तिस गुरु के चरण कमलों में, उर मैं सरसे नाम हृदय में प्रसन्न होकर ॥ ३ ॥

"घटम्" औ "आनय" इत्यादिक पदों से ज्ञातअर्थों का ही जेकर "घटमानय त्वम्" इस वाक्य से ज्ञान होवे तब वाक्य को ज्ञात ज्ञापकता

से अज्ञात ज्ञापकता रूप प्रमाणता न बने औ अज्ञात ज्ञापकता रूप प्रमाणता सर्व शास्त्रकार माने हैं याते "घटमानय" "पदों के घट औ आनय रूप अर्थों की अपेक्षाकर घट ओ आनयन रूप अर्थों का क्रिया कर्म भाव संसर्ग ही पदों से न जान्या हुआ वाक्य का अर्थ है" वा "क्रिया कर्म भाव सम्बन्ध से आनयन क्रिया विशिष्ट घट वाक्य का अर्थ है" ऐसे "तत्त्वमसि, आदिक वाक्य भी संसर्ग वा विशिष्ट के प्रतिपादक होने को योग्य है, वाक्य होने से, घटमानय वाक्यवत्" या अनुमान से अंश अंशीभावादिक सम्बन्धों को, वा अंश अंशीभावादिक सम्बन्धों से जीव विशिष्ट ब्रह्मको वाक्यार्थ मानने वाले द्वैतवादियों के मतों के निराश हेतु जेकर वाक्य का संसर्ग वा विशिष्ट ही अर्थ होवे है तब साक्षाद् परम्परा कर सम्पूर्ण वाक्यन का अद्वैत में तात्पर्य निश्चय करावने वाले उपक्रम उपसंहार को पुनः नव अभ्यासों को, पुनः वह वेद बिना अन्य काहू प्रमाण का विषय नहीं, ऐसी अपूर्वता को, औ जिसके श्रवण से न सुना भी वस्तु सुनी जावे ऐसे अर्थवाद को, पुनः अनेक दृष्टान्तों से अद्वितीय रूपता कर उपपादन रूप उपपत्ति को, पुनः "आचार्य वाला पुरुष ही जानता है" "ताको तावत्काल ही देर है यावत् देह पात नहीं होता" इस प्रकार गुरु के उपदेशजन्ययथार्थ ज्ञान ते कैवल्य मुक्तिरूप फल को व्यर्थता होवेगी याते भेद में वाक्य के तात्पर्य निश्चय करावने वाले लिंगों के न होने से औ अभेद में होने से "तत्त्वमसि आदिक महा वाक्यन को अंश अंशीभावादिक सम्बन्ध" हीन, पुनः विशिष्ट हीन निरतिशय परिपूर्ण आनन्द रूप जीव ईश के अभेदभूत अखण्डअर्थ परतः है, जैसे चन्द्रमाके असाधारण धर्म प्रकाश विशेष को चन्द्रमा में प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय कर पुनः चन्द्रमा इतरों से न्यारा है, ऐसे चन्द्र भिन्नों से चन्द्रमा के भेद को भी निश्चय कर चन्द्रमा के स्वरूप मात्र के जानने वास्ते किये प्रश्न की अनुसारता से "प्रकृष्टः प्रकाशः उत्तर वाक्य को स्वरूप मात्र परतः है यह वार्ता प्रतिपादन का आरम्भ करे "दोनों" इति, दोनों पदार्थ सोध कै नाम प्रथम द्वितीय अध्याय में अनेक वादियों के मतों के निराकरण पूर्वक वाक्यार्थ ज्ञानोपयोगी "तत्, त्वम्" पदार्थों का शोधन करके जीव ईशका अभेद भूत वाक्य का अखण्ड अर्थ, या माहिं नाम इस तीसरे में प्रकट होवे है सो श्रवण करो। श्रवण का फल कहे "निखिल" इति, निखिल द्वैत सम्पूर्ण भेद ॥ ४ ॥

चौपाई

जब उपजे निज आतम ज्ञान । तभी होय सब बंधन हान ।
जीव ब्रह्मको हेर अभेद । त्यागे सकल जगतके खेद ॥ ५ ॥

अब जीव ब्रह्म के अभेद में शंकापूर्वक समाधान का निरूपण करते हैं ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—
जीव ब्रह्म अभेद निहारे । जगत खेद को किह विधि डारे ।
सिद्धान्ती—
निखिल जगतही मिथ्या हइये । हेरे ब्रह्म, न साचो पइये ॥ ६ ॥

"निखिल द्वैत मिट जाहि" पाठ से कही वार्ता स्पष्ट करे "जब" इति, जब कहिये जिस देश काल अवस्था में "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा जीव ईश के अभेद विषयक स्व स्वरूप का ज्ञान उपजे, तभी नाम तिस देश काल अवस्था में ही सम्पूर्ण कर्तृत्वादिक बन्ध दूर होवे है कही वार्ता का अनुवाद करे "जीव" इति ॥ ५ ॥

अभेद दर्शन कर जगत् खेद को त्यागे है यह श्रवण कर त्याग कैसे करे ? यह शिष्य आशंका करे "जीव" इति, ब्रह्म ज्ञान अतिरिक्त ज्ञानों से न बाध होने योग्य सर्व प्रपञ्च मिथ्या है, जड़ होने ते, दृश्य होने ते, परिच्छिन्न होने ते, शुक्ति रजतवत्" "स्व काल में स्वाधिकरण में स्वात्यन्ताभाव के प्रतियोगी को मिथ्या कहे हैं" जैसे रजत जड़ है पुनः उत्तर काल में "न हुआ ही रजत मेरो को भान हुआ" या प्रतीति से अपने काल में अपने अधिकरण में रहे अपने अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी है याते मिथ्या है, तैसे ब्रह्म प्रमातिरिक्त ज्ञानों से न बाध होने योग्य घटादिक प्रपञ्च भी मिथ्या है इस प्रकार प्रथम "नेदं रजतम्" अनुभव से शुक्ति में रजत का भेद प्रतीत होकर पश्चात् "शुक्ति में रजत नहीं" ऐसे रजत में अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता के निश्चयवत् जो कहे अनुमान से घटादि प्रपञ्च काल में ही घटादि प्रपञ्च के अधिकरण ब्रह्म विषे "ब्रह्म में घटादि प्रपञ्च नहीं" ऐसे घटादि प्रपञ्च में अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता का निश्चय वही द्वैत का त्याग है, सोई कहे "निखिल" इति, "हेरे ब्रह्म" पूर्व के साथ मेलकर, सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है, जीव साथ अभिन्न

ताते ब्रह्म निहारे जोई। निखिल द्वैतको त्यागे सोई।

पूर्वपक्षी—

करते दंड डारहै जैसे। याहि द्वैतको त्यागे तैसे॥ ७॥

सिद्धान्ती—

याको त्यागन तथा न होई। त्यागनको यह ठौर न कोई।

ब्रह्म विषे नर द्वैत निहारे। ताते त्याग काहि में डारे॥ ८॥

ब्रह्म बिना आधार न कोई। जामें द्वैत दंड सम होई।

ताते याको त्याग सो ऐसे। सीपि विषे रूपेको जैसे॥ ९॥

रूप कर अपरोक्ष किये ब्रह्म के, न साचो पइये नाम नहीं अमिथ्या, किन्तु मिथ्या ही प्राप्त होवे है॥ ६॥

इहाँ शुक्ति रजतादिक प्रातीतिक प्रपञ्च का "शुक्ति में रजत नहीं" इत्यादिक प्रमा से बाध होवे है, शुक्ति आदिक व्यावहारिक पदार्थन का जीव ब्रह्म की अभेद प्रमा से बाध होवे है, अभेद प्रमा बिना बाध होवे नहीं, याते "ब्रह्म ज्ञानातिरिक्तज्ञानों से अबाध्यरूप" व्यावहारिक पदार्थ पक्ष है, रजतादिक प्रातीतिक दृष्टान्त है, मिथ्या, कल्पित, अध्यास. अनिर्वचनीय, अध्यास यह पर्याय शब्द है, याते "स्वकाल में" इत्यादिक मिथ्या के लक्षण का "अन्यत् अन्यत्रहोयभान" से विशेष नहीं, फलित कहे "ताते" इति, ताते नाम मिथ्या होने ते,—ब्रह्म निहारे–जो पुरुष ब्रह्म के अपरोक्ष को प्राप्त होवे है सो, निखिल द्वैत को त्यागेशुक्ति रजतवत् सम्पूर्णद्वैत में मिथ्यात्व निश्चय करे है, प्रकरण में "त्याग" शब्द का मिथ्यात्व निश्चय रूप अर्थ भली प्रकार न समझ कर शिष्य आशंका करे "करते" इति॥ ७॥

ब्रह्म भिन्न अधिकरण के अभाव ते द्वैत का दण्डवत् त्याग नहीं बने किन्तु शुक्ति ज्ञान से रजत के शुक्ति में अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता निश्चयवत् ब्रह्मरूप अधिकरण में मिथ्यात्व निश्चय रूप ही "त्याग" शब्द का अर्थ जानना, सोई कहे "याको" इति, यह द्वैत ठौर का न होना स्पष्ट करे "ब्रह्म" इति, ताते-ब्रह्म में निहारने ते॥ ८॥

ताते-ब्रह्म भिन्न आधार के अभाव ते॥ ९॥

पूर्वपक्षी—

रजत सुमिथ्या तामें हइये । द्वैत सत्य ब्रह्म में पइये ।
सो कैसे पुनि रजत समान । सत्य होय जो सबको भान ।।१०।।

सिद्धान्ती—

सत्य भान भाख्यो तुम जोई । सबको नाहिं कदाचित् होई ।
अति कोविद भव मंडल जेते । मिथ्या लखे द्वैत सब तेते ।।११।।
'नेति नेति' पुनि वेद बतावै । निखिल द्वैत अभाव दिखावै ।
ताते द्वैत सु देख्यो जोई । ब्रह्म माहिं साचों नहिं सोई ।।१२।।

ननु "नेदं रजतम्" बाध ज्ञान से रजताधिकरण शुक्ति में रजत का अभाव प्रतीत होने कर मिथ्यापना सिद्धभया, रहो रजत का शुक्ति में मिथ्यात्व निश्चय रूप त्याग, द्वैत का तो पुनः "ब्रह्म में द्वैत नहीं" ऐसा कभी भी बाध ज्ञान न होने से मिथ्यात्व के असिद्ध भये, ताका निश्चय रूप त्याग नहीं बने, यह पुनः शिष्य आशंका करे "रजत" इति ।। १० ।।

पामर विषयियों को न भान भये भी पूर्व कहे अनुमान से सम्पूर्ण जगत् को दृष्टान्त भूत रजतवत् मिथ्यापना अत्यन्त विद्वानों को भासे है, याते सबको सत्यभान कहना नहीं बने यह कहे "सत्य" इति, मिथ्या लखे द्वैत सब तेते कहिये वह सभी ब्रह्म में द्वैत के अभाव को वास्तविक औ द्वैत को कल्पित रूप जाने है ।। ११ ।।

पुनः "न इति" "न इति", ब्रह्म में कारण नहीं, कार्य नहीं, ऐसे "नेति नेति" वेद भी कहे है, याते कल्पित के अभाव को अधिष्ठान रूपता सिद्धान्त ते, सम्पूर्ण द्वैत का ब्रह्म में ब्रह्म रूप अत्यन्ताभाव दिखावे है ऐसे भये वेद से भी पूर्वोक्तानुमानवत् द्वैत को मिथ्यात्व लाभ होवे है सोई कहे "ताते" इति, ताते नाम "नेति नेति" इत्यादिक वेद से द्वैत का अभाव श्रवण ते, जो ब्रह्म विषे प्रत्यक्षादि प्रमाणों से द्वैत देखिये है वह ब्रह्म विषे, साचो नहिं नाम सत्य नहीं, किन्तु मिथ्या है, इहां यह भाव है=उत्पत्ति ते पूर्व जिस सद् ब्रह्म विषे "सदेव सोम्येदमग्र आसीद्" इत्यादिक श्रुतियों ने द्वैत प्रपञ्च का तादात्म्य कह्या "नेह नानास्ति किञ्चन्" श्रुति में "इह" पद से ताका ग्रहण कर, इह नाम द्वैतवाले ब्रह्म में, नाना नाम द्वैत, किञ्चन नास्ति नाम किञ्चित् नहीं, इस रीति से तिसी में द्वैत का अभाव कह्या आगे द्वैत वाले ब्रह्म में द्वैतकाल विषे बोधन

सीपि विषे रूपो है जैसो। मिथ्या सकल ब्रह्म में तैसो।

अब तटस्थ भ्रमस्थल में अख्यातिवादी जो प्रभाकर ताके मतका प्रतिपादन करे हैं। तटस्थ—

अख्यातिवादी प्रभाकर जोई। यह दृष्टांत सहे नहिं सोई॥१३॥

किये द्वैत के अभाव साथ द्वैत की तुल्य सत्ता मानेतुल्य सत्ता वाले घट, घटाभाव, का एक काल में एक स्थान में रहना न देखने ते द्वैत, द्वैताभाव, का भी एक काल में ब्रह्म विषे नहीं रहना बनेगा याते भिन्न सत्ता कहनी, भिन्न सत्ता अङ्गीकार में भी द्वैत के अभाव की व्यावहारिक वा प्रातिभासिक सत्ता कहे तिनको बाधित होने ते श्रुति को अबाधित अर्थ की बोधकता न भये प्रमाणता नही होवेगी याते द्वैत के अभाव को वास्तविक ब्रह्म रूपता औ द्वैत को अत्यन्त सद्‌पने का तथा अत्यन्त असत् पने का विरोधी, पुनः अर्थ क्रिया कारित्व रूप घटादि गत सत्ता का अविरोधी रूप मिथ्यापना सिद्ध करे है वेद, याते सम्पूर्ण द्वैत सोपी में रजतवत् ब्रह्म में मिथ्या है, सत् नहीं॥ १२॥

सोई दृष्टान्त से कहता हुआ प्रकरण को समाप्त करे "सीपी" इति, सीपी रूप अधिष्ठान विषे "इदंरजतम्" भ्रमज्ञान से प्रतीत हुआ रजत "नेदंरजतम्" बाध ज्ञान से दूर होने से जिस प्रकार मिथ्या है, तैंसे नाम शुक्ति रजतवत् ही "अज्ञोऽहम्" "सन्‌घटः, सन्‌पटः" इत्यादिक भ्रम ज्ञान से ब्रह्मरूप अधिष्ठान में प्रतीत हुअ अज्ञान तत्कार्यरूप निखिल प्रपञ्च भी "नेह नानास्ति" इत्यादिक वाक्यजन्यज्ञान से बाधित होने से मिथ्या है, याते मिथ्यापना, प्रातिभासिक व्यावहारिक रूप विषयों का तथा विषयोंवत् तिनके ज्ञानों को भी बाधक ज्ञान से दूर होने ते, तिनके ज्ञानों का समान धर्म है इस वार्ता का विशेष विचार सामान्य अंश का ज्ञान तथा विशेष का अज्ञान तथा संस्कार आदि सामग्री स्थापन कर "ननु आत्मा असंग बताये" से लेकर "या विधि सिद्ध भयो अध्यास" पर्यन्त पाठ से दूसरे अध्याय में कह चुके, याते इस अध्याय में अनिर्वचनीय-ख्याति का विशेष विस्तार नहीं कहेंगे, अन्यवादियों का पूर्व मिथ्यात्व सिद्धि में कहे शुक्ति रजत दृष्टान्त में इस रीति से विवाद है = कोई ज्ञान विषय दोनों को सच्चे कहें हैं, कोई विषयों को सच्चे कहे हैं, ज्ञान को भ्रम रूप कहे हैं, कोई विषयों को ज्ञान रूप कहे हैं। कोई विषय ज्ञान दोनों को अत्यन्त असद् रूप कहे हैं, यह सम्पूर्ण पक्ष खण्डनीय है, याते

पूर्वपक्षी—

सीपीमें जो रजत है ज्ञान। भ्रम स्वरूप नहिं सो पहिचान।
नहिं वह रजत प्रत्यक्षहि हइये। सीपि विषे, जाते भ्रम कहिये ॥१४॥

कुछ पूर्व अध्यायों में खण्डन किये, शेष रहे नाम लेकर इसमें खण्डन किये जावेंगे, इस वास्ते "सति कुड्ये चित्रम्" न्याय से तिनकी किञ्चित् प्रक्रिया दिखाय कर खण्डन हेतु सबसे प्रथम मिथ्यापने में दिये दृष्टान्त में मीमांसक का द्वेष दिखावे तटस्थ "अख्याति" इति. सफल, निष्फल, प्रवृत्ति के अनुसार अन्यवादी "ज्ञान" सच्चा, झूठा दो प्रकार का माने हैं, मीमांसक निष्फल प्रवृत्ति का निर्वाह भेदाग्रह से मानकर ज्ञान सर्वत्र सच्चा मात्र एक प्रकार माने है औ दो मानने वालों को यह कहे हैं, सफल प्रवृत्ति जनक ज्ञान के सच्चेपने में तो तुमारा भी विवाद नहीं, निष्फल प्रवृत्ति जनक में है, परन्तु तहां भी तुमको आधा ज्ञान सच्चा मानना पड़े है, काहे ते ? "इदं रजतम्" भ्रम से उत्तर काल में उपजे "नेदं रजतम्" प्रमा ज्ञान से पूर्वले ज्ञान के विशेषण रजत मात्र का बाध होवे है विशेष्य "इदम्" का नहीं होवे, याते यह तुमको भी कहना पड़े है, भ्रम रूप सम्पूर्ण ज्ञान विशेष्य अंश में यथार्थ होवे है, विशेषण में विपर्यय होवे है ऐसे भये डेढ़ ज्ञान सच्चा, आधा झूठा, ऐसे मानते हुए यही मानो वह आधा भी सच्चा, परन्तु एता विशेष है वास्तविक रजत में "इदं रजतम्" यह विशिष्ट ज्ञान एक है, शुक्ति रजत स्थल में ज्ञान दो है याते सच्चे स्थल में विशिष्ट ज्ञान से प्रवृत्ति होवे है, झूठे स्थल में ज्ञान दो के भेदाग्रह ते होवे है इस रीति से सम्पूर्ण ज्ञानों को यथार्थ औ तिनके विषयों को वास्तविक होने ते मिथ्यापने में दिया शुक्ति रजत दृष्टान्त असंगत, मूल पाठ का यह अर्थ है = अख्याति नाम इस मत में भेदाग्रह का है याते अख्याति वादी कहिये भेदाग्रह से प्रवृत्ति आदिक मानने वाला जो प्रभाकर है वह यह दृष्टान्त सहे नहिं कहिये जगत् मिथ्यात्व में दिये शुक्ति रजत दृष्टन्त को नहीं सहारे अर्थात् रजत ज्ञान को भ्रम रूपता औ रजत विषय को मिथ्यापना नहीं माने, किन्तु ज्ञान को प्रमा रूपता औ विषय को वास्तविकता कहे है ॥ १३ ॥

दृष्टान्त का न सहारना स्पष्ट करे पूर्व पक्षी "सीपी" इति, सीपी में जो रजत है ज्ञान कहिये परवादियों ने "इदं" रूप सीपी में भ्रम रूप कर अंगीकार किया जो रजत ज्ञान है, निष्फल प्रवृत्ति की हमारी रीति

किंतु तहाँ है दोऊ ज्ञान । प्रत्यक्ष स्मरण रूप पहिचान ।
प्रत्यक्ष तहाँ है 'इदमाकार' । 'रजतज्ञान' स्मृति निर्धार ॥१५॥
प्रत्यक्ष विषे साचो तिहँ अहे । इदं असत्य न कोई कहे ।
स्मृति विषय रजत है जोई । कांताकर में साचो सोई ॥१६॥
सीपि शुक्लता देखे जबही । संस्कार पुनि प्रगटे तबही ।
दीर्घ दोष तत्ता को हरै । प्रमुष्टतत्ता स्मृति सु उचरै ॥१७॥

से सिद्धि होने ते, वह भ्रम रूप नहीं ऐसे जानो । भ्रम रूप न होने में हेतु कहे "नहिं" इति. "सीपी विषे" पूर्व के साथ मिलाकर, वह रजत इत्याकारक ज्ञान इदं रूप सीपी विषे प्रत्यक्ष रूप नहीं, याते उसको भ्रम कहे अर्थात् जेकर रजत ज्ञान "इदम्" अंश सीपी में इदं ज्ञान से अभिन्न हुआ प्रत्यक्षरूप एक होवे तब रजत से भिन्न "इदम्" में रजत का भान होने कर "अन्यत् अन्यत्र होय भान" रूप भ्रम के लक्षण से वांको भ्रम रूपता कहे, तहां तो पुनः प्रत्यक्ष स्मरण रूप दो ज्ञान हैं ॥१४॥

सोई कहे "किन्तु" इति, तहाँ नाम "इदं रजतम्" भ्रम स्थल में दोनो में कौन प्रत्यक्ष कौन स्मृति निर्णय करे ? तहां कहे "प्रत्यक्ष" इति, इदमाकार कहिये "इदम्" ऐसा आकार इदं साथ इन्द्रियसम्बन्धजन्य होने से प्रत्यक्ष ज्ञान है, औ रजतज्ञान कहिये रजत एताकार चाकचिक्य देखकर जगे संस्कार जन्य होने से स्मृति ज्ञान निर्णय कहो ॥ १५ ॥

कही रीति से ज्ञान दो कहकर इनकी यथार्थता सिद्धि हेतु विषयों को वास्तविकता कहे "प्रत्यक्ष" इति, तिहँ नाम भ्रमस्थल में प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय सच्चा है समीप देश में, याते इदं वस्तु को असत्य कहिये इदं नहीं समीप देश में ऐसे कोई नहीं कहे, तथा स्मृति ज्ञान का विषय जो रजत है वह कान्ताकर में नाम स्त्री के हाथमें औ हट्टादिको में सच्चा है ॥ १६ ॥

ननु "घट तहां होता हुआ" नेम कर ऐसे परोक्ष देशकाल के सम्बन्ध रूप तत्तांश के भान वाले स्मरणों का उच्चारण न देखने से तत्ता के भान रहित रजत ज्ञान में स्मरणता नहीं बने ? यह आशंका कर कहे "सीपि" इति, शुक्लता नाम शुक्ति की सफेदी को जब पुरुष देखे है, तब सादृश्य दर्शन से रजत के संस्कार प्रकटे हैं, सादृश्य के अभाव ते परोक्ष देशकाल के सम्बन्ध रूप तत्ता के संस्कार नहीं प्रकटे, याते संस्कार जगावने वाला शुक्तिशुक्लता रूप प्रमेयगत दीर्घ दोष तत्ता को नाम तत्ता

जे को भ्रांति ज्ञान तिहँ गावै। विपक्ष माहिं दंड सो पावै।
इंद्रिय निखिल जगत मों जोई। यथार्थ ज्ञान उपावे सोई ।१८॥
यह निर्णीत नियम जग अहे। ता व्यभिचार न कोई लहे।
जो ते जने सु मिथ्या ज्ञान। तो यह नियम सकल तिहँ हान ॥१९॥

अंश रूप विषय को, ताके संस्कार न जगावने मात्र से हरे नाम लोप करे है याते प्रमुष्ट तत्ता कहिये लुप्त हुई तत्ता अंश वाली रजत मात्र स्मृति को भ्रमी पुरुष कहे है, इहां यह भाव है=अनुभव की सामग्री बिना होने वाले "रजतम्" ज्ञान को अनुभवरूपता के असिद्ध भये स्मरणता बने है, और तत्ता के भान न होने में पुनः यह रीति है—उद्बोधक वशते जगे हुए संस्कारों ते स्मृति होवे है, न जगे संस्कारों से नहीं होवे, अन्यथा सर्व पदार्थों के स्मरण का प्रसंग होवेगा, औ रजतवत् तत्ता के संस्कार जगावने वाले शुक्तिगत शुक्लपने का देशकाल में सम्भव न होने ते तिनके संस्कार जगे नहीं याते शुक्लतारूप प्रमेयगत दोष ने संस्कार को न जगावने मात्र से तत्ता का भान हरने कर तत्तांश के भान रहित स्मरण का कथन पुरुष करे है, इस रीति प्रत्यक्ष स्मरणरूप ज्ञान दो, औ दोनों को यथार्थता सिद्ध होने ते भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है तथा विवाद का स्थलरूप "इदं रजतम्" यह ज्ञान, यथार्थ होने को योग्य है, इन्द्रियजन्य होने ते, इन्द्रियजन्य सम्मत घटज्ञानवत्, या अनुमान से भी उक्त ज्ञान को यथार्थता सिद्ध होने ते भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध ॥ १७ ॥

ननु भ्रमज्ञान को अप्रसिद्ध माने निष्फलप्रवृत्ति दूर होवेगी याते "इदम् रजतम्" ज्ञान भ्रमरूप है ? यह आशंका कर कहे "जे को" इति, तिंह नाम विवादस्थल में "इदंरजतम्" इस ज्ञान को जेकर कोई वादी भ्रमरूप कहे अर्थात् इदं रजतम् ज्ञान को यथार्थता साधक अनुमान में जे कोई पुरुप "इदं रजतम्" ज्ञान में इन्द्रियजन्यता रूप हेतु रहो, यथार्थतारूप साध्य मत रहो, ऐसा विपक्ष कर "इदं रजतम्" ज्ञान को भ्रम रूपता कहे तब विपक्ष कर्ता विपक्ष माहिं नाम हेतु रहो, साध्य मत रहो ऐसे कहने में निर्णीत नेम की हानि रूप दण्ड पावेगा, "पक्ष में हेतु मानकर साध्य का अभाव कहने को विपक्ष कहे हैं" जाकी हानि दण्ड है वह नेम कहे "इन्द्रिय" इति ॥ १८ ॥

निर्णीत नाम निर्णय किया हुआ, ता व्यभिचार न कोई लहे नाम

सिद्धान्ती—

ननु सदोष इंद्रिय है जोई। मिथ्या ज्ञान उपावे सोई।

पूर्वपक्षी—

यह सुन मिथ्या वचन तुम्हार। काहे को तिहँ करे उचार ॥२०॥

दोष अहै या जग में जोई। कार्य का प्रतिबंधक सोई।

नहिं कार्य औरे उपजावै। देख्यो नाहिं न कोऊ बतावै ॥२१॥

ऐसे जो नहिं निज उर मानो। तौ उर बाधक प्रकट पछानो।

दुष्ट अहै यवधाना जोई। गोधूमं उपजावे सोई ॥२२॥

तिस निर्णीत नेम की हानि कोई नहीं देखे अर्थात् इन्द्रियजन्यता होवे औ यथार्थता न रहे ऐसा कोई नहीं देखे, दण्ड कहे "जो" इति ॥ १९ ॥

यज्ञ अयज्ञ दोनों स्थलों में सर्व प्राणि हिंसानिषेधक "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" या सामान्य विधि का "पशुना यजेत्" इस विशेष को देखकर यज्ञ में संकोचवत् दुष्ट अदुष्ट दोनों में प्राप्त भये यथार्थ ज्ञान जनकता के नेम का भी दुष्टों से भ्रम ज्ञान देखने ते संकोच है या अभिप्राय ते आशंका करे "ननु" इति, सदोष इन्द्रियों को भ्रम की हेतुता मानते की युक्ति से अन्वयव्यतिरेक कर दोषों को भ्रम की हेतुता जान पड़े औ दोष के लक्षण और दृष्टि किये वह हेतुता बने नहीं, अन्यथा दुष्ट यव बीज से गेहूँ का अंकुर भी हुआ चाहिये औ होवे नहीं याते दुष्ट इन्द्रियो से भ्रम ज्ञान न होने कर इन्द्रियों को यथार्थ ज्ञान जनकता का नेम रहे प्रत्यक्ष स्मृति रूप ज्ञान दो ही अवश्य मानने या भाव से कहे पूर्वपक्षी "यह" इति, तिहँ नाम वचन का उच्चारण काहे करता है अर्थात् मत करो ॥ २० ॥

दोष प्रकृत कार्य का प्रतिबन्धक होवे है, न देखने सुनने से कार्यान्तर का हेतु नहीं होवे यह बीज कहे "दोष" इति ॥ २१ ॥

न देखी सुनी मानते को बाधक हेतु कहे "ऐसे" इति, बाधक कहे "दुष्ट" इति, दुष्ट नाम दोष वाला अर्थात् भूजा वा गला हुआ गोधूमं नाम गेहूँ ॥ २२ ॥

ताते दोष होय है जहाँ । कार्य को प्रतिबंधे तहाँ ।
ताते और प्रकार न कोई । ज्ञान तहाँ मानो अब दोई । २३॥

सिद्धान्ती—

जे तिन तहाँ रजत नहिं हेर्‍यो । 'इदंरजत' काहे तिन टेर्‍यो ।
अरु रूपे को चाहे जोई । क्यों प्रवृत्ते तासों सोई ॥२४॥
'नेदंरजत' बाध क्यों होई । जो तासों नहिं भास्यो सोई ।
ताते तामें रजत सु हेर्‍यो । जाते 'इदंरजत' नर टेर्‍यो । २५॥

पूर्वपक्षी—

तोहि प्रकार बखाने जेते । मिथ्या रजत न साधे तेते ।
रजत इदं का भेद न हेरे । ताते 'इदंरजत' नर टेरे ॥२६॥

ताते—कहे बाधक ते, ताते—सदोष ते भ्रमज्ञान न होने ते, तहां—"इदं रजतम्" स्थल में ॥ २३ ॥

शुक्ति में रजत न देखे, पुरोवर्ती में विशिष्ट ज्ञान का प्रकाशक "इदं रजतम्" यह कथन औ रजतार्थी की तिसमें प्रवृत्ति, पुनः "नेदं रजतम्" यह बाध तीनों न हुए चाहिये औ होवे है याते अवश्य तहां मिथ्यारूप रजत मानना यह आशंका करे "जे" इति, तहाँ शुक्ति में, तिन—देखने वाले ने ॥ २४ ॥

ताते नाम "इदं रजतम्" कथनादिकों के न बनने ते, जाते नाम हेरन ते ॥ २५ ॥

"इदं ज्ञान" "रजत ज्ञान" से भिन्न है, औ "रजत ज्ञान" "इदं ज्ञान" से भिन्न है ऐसा ज्ञानों का स्वरूप ते, पुनः "इदं ज्ञान" का विषय इदं वस्तु, "रजत ज्ञान" के विषय रजत से भिन्न है, औ "रजत ज्ञान" का विषय रजत वस्तु इदं ज्ञान के विषय "इदं" से भिन्न है, ऐते विषयों से प्रत्यक्ष स्मृति रूप ज्ञानों के भेद ज्ञान के अभाव से कथन औ प्रवृत्ति बने है, पुनः कथन प्रवृत्ति रूप व्यवहार का बाध मान कर बाध बने है या भाव से कहे वादी "तोहि" इति, प्रकार नाम कथन आदिकों की अनुपपत्ति आदिक रीति, न साधने में कथनादिकों का और रीति से बनना रूप बीज कहे "रजत" इति, रजत इदं का भेद न हेरे नाम रजत

भेदाग्रह ते होय प्रवृत्ति। सीपि में नहिं ताहि निवृत्ति।
बाध तहाँ भाख्यो तैं जोई। रजत बाध नहिं मान्यो सोई।।२७।।
रूपे का जोई व्यवहार। बाध तहाँ ताको निर्धार।
ताते भ्रांति ज्ञान नहिं कोई। सकल यथार्थ ज्ञान सु जोई ।।२८।।
ज्ञानत्व रूपही हेतु पछानो। संमतवत् दृष्टांत सो जानो।
सिद्धान्ती—
यों मीमांसक करे उचार। कोविद माने सकल असार ।।२९।।

ज्ञान का औ इदं ज्ञान का स्वरूप ते औ विषयों ते भेद नहीं देखे, ताते— भेद न देखने ते, पुरुष "इदं रजतम्" यह कथन करे है।। २६।।

ताते कथन बना कर ताही से प्रवृत्ति कहे "भेद" इति, भेदाग्रह ते नाम भेद ज्ञान के अभाव ते, "सीपि में" पूर्व के संग (अन्वय कर लेना), नहि ताहि निवृत्ति नाम नहीं होतो रजतार्थी की निवृत्ति, दो की व्यवस्था कह कर बाध की कहे "बाध" इति, तहां नाम शुक्ति में।। २७।।

रजत बाध नहीं मान्या, तब किसका है? तहां कहे "रूपे का" इति, रूपे का जोई व्यवहार नाम रजत सम्बन्धी जो "इदं रजतम्" यह कथन पुनः प्रवृत्ति अर्थात् रजत से इदं का भेदावगाही "नेदं रजतम्" ज्ञान होते ही "इदं रजतम्" यह कथन औ प्रवृत्ति दोनों दूर होवे है। भ्रम रूप विशिष्ट ज्ञान से बिना भो कथन आदिक तीनों को उक्त रीति से बन जाने ते "सर्वं ज्ञानम्" यथार्थं भवितुमर्हति, ज्ञानत्वात्, या अनुमान से सम्पूर्ण ज्ञानों को यथार्थता सिद्ध होने ते भ्रम ज्ञान कोई नहीं यह फलित कहे "ताते" इति, ताते नाम कथन औ प्रवृत्ति को भेद ज्ञान के अभाव से पुनः बाध को व्यवहारों के बाध से बन जाने ते, भ्रान्ति ज्ञान नहि कोई नाम ज्ञान भ्रम रूप कोई नहीं, किन्तु सकल यथार्थ ज्ञान सुजोई नाम पर मत में संशय विपर्यय रूप कर माने सम्पूर्ण यथार्थ हैं।। २८।।

सम्पूर्ण ज्ञान रूप पक्ष में यथार्थता रूप साध्य का साधक हेतु पुनः दृष्टान्त कौन जानिये? तहां कहे "ज्ञानत्व" इति, ज्ञानत्व रूप ही नाम ज्ञानपना रूप ही हेतु पछानो औ सम्मतवत् नाम वादी प्रतिवादी दोनों को अभिमत सच्चे रजत ज्ञानवत् यह दृष्टान्त जानों, इहां यह फलित हुआ—परमत में संशय विपर्यय रूप कर माने ज्ञान यथार्थ होने को

'इदंरजत' जो हइये ज्ञान । एक विशिष्ट रूप पहिचान ।
साचो ताहि विषे नहिं हइये। ताते भ्रमस्वरूप वह पइये ॥३०॥

योग्य है, ज्ञान पने से, वादी प्रतिवादी दोनों को आगे पड़े रजत में यथार्थता कर अभिमत रजत ज्ञानवत्, जैसे सम्मत—ज्ञान में ज्ञानत्व रहे है औ यथार्थता रहे है तैसे भ्रम रूप कर माने संशय विपर्यय ज्ञान में भी ज्ञानत्व हेतु के रहने से यथार्थता माननी अवश्य है इत्यलम् । भेदाग्रह ते प्रवृत्ति मानते मीमांसक के मत में सुप्त पुरुष तथा विरक्त पुरुष में भेदाग्रह रूप कारण विद्यमान होने से तिनकी प्रवृत्ति का प्रसंग होवेगा याते भेदाग्रह को त्याग के निष्फल प्रवृत्ति का जनक "इदं रजतम्" यह विशिष्ट रूप ज्ञान एक है, दो नहीं, पुनः बाधित विषय वाला होने ते भ्रम रूप है या भाव से सिद्धान्ती सुनावे तटस्थ प्रति "यों" इति, यों नाम पूर्व कही रीति से प्रत्यक्ष स्मरण रूप ज्ञान दो है पुनः वास्तविक विषयों वाला होने ते यथार्थ है ऐसे मीमांसक कथन करे है, परन्तु आगे कहने योग्य दोषों से पण्डित तिनका कह्या सब असत्य माने हैं ॥ २९ ॥

मीमांसक के कहे में असारता प्रकट करने हेतु प्रथम "इदं रजतम्" विशिष्ट ज्ञान में दो रूपता से विरुद्ध, एक रूपता, औ यथार्थता से विरुद्ध, भ्रम रूपता कहे, "इदम्" इति, जिसको मीमांसक दो रूप कहे हैं ऐसा "इदं रजतम्" यह जो ज्ञान है सो एक विशिष्ट रूप कहिये विशिष्ट रूप एक ही पछानो, प्रत्यक्ष स्मरण रूप दो नहीं, विशेषण वाली वस्तु को विशिष्ट कहे हैं, विशेषण कहीं वस्तु विषे अपना आप होवे है, कहीं अन्य होवे है, अपना आप वस्तु में तादात्म्य सम्बन्ध से विशेषण होवे है, अन्य संयोगादि सम्बन्ध से विशेषण होवे है, जैसे सच्चे रजत में "इदं रजतम्" ज्ञान होवे तहां "इदं" रूप विशेष्य वस्तु में तादात्म्य सम्बन्ध से रजत विशेषण है, तैसे भ्रम स्थल में भी अधिष्ठान साथ कल्पित का तादात्म्य होने से तादात्म्य सम्बन्ध से शुक्ति रूप "इदं" विशेष्य में कल्पित रजत विशेषण है सो यह अपने आपका उदाहरण है, अन्य का यह है—जहां दण्ड वाले पुरुष में पुरुष को "दण्डी" ज्ञान होवे तहां पुरुष रूप वस्तु में दण्ड संयोग सम्बन्ध से विशेषण है, आगे जिन विषयों का विशेष्य-विशेषण भाव होवे तिनके ज्ञानों का भी होवे है याते "इदं

जे ऐसे नहिं माने कोई। कैसे तहाँ प्रवृत्ते सोई।
भेदाग्रहते जे तहि धावै। अभेदाग्रह ते उलटो आवै ॥३१॥

रजतम्" ज्ञान में "इदं ज्ञान" विशेष्य है तादात्म्य सम्बन्ध से "रजत ज्ञान" विशेषण है इस रीति से यह विशिष्ट रूप एक है, पुनः विशेषण अंश में बाधित विषयवाला होने ते भ्रम रूप है सोई कहे "साचो" इति, ताहि नाम तिस "इदं रजतम्" विशिष्ट ज्ञान का विषय विशेषण रजत अबाधित नहीं, किन्तु बाधित है, ताते नाम बाधित विषय वाला होने ते, वह ज्ञान भ्रम रूप कहिये है इस रीति से ताको भ्रम रूपता सिद्ध हुए पूर्व जो "डेढ़ ज्ञान सच्चा, आधा झूठ कहते ने भेदाग्रह ते प्रवृत्ति सिद्ध होने से आधा भी सच्चा कहो" यह कह्या सो दूर हुआ, काहे ते ? प्रमाण सिद्ध परमाणु मात्र भी मानना, निष्प्रामाणिक सुमेरु समान भी नहीं मानना, पुनः आधे ज्ञान को भ्रम रूपता बाधक प्रमाण सिद्ध है याते अवश्य भ्रम रूप मानना ।। ३० ।।

ननु तुम निःशंक कहो "शुक्ति में रजत का अभेदावगाही ज्ञान एक है, पुनः बाधित विषय वाला होने ते भ्रमरूप है, हम तो कोई नहीं माने ? तहां कहे "जे" इति, जे ऐसे नहि माने कोई नाम जेकर कोई "इदं रजतम्" यह भ्रमरूप एक ज्ञान न माने तब कैसे तहां प्रवृत्ते सोई नाम वह रजतार्थी पुरोवर्ती को रजतरूप जाने बिना तामें किस प्रकार प्रवृत्त होवे भाव यह काहू रीति से प्रवृत्त नहीं होवेगा, याते जैसे सच्चे रजत स्थल में "इदं रजतम्" विशिष्ट ज्ञान से रजतार्थी प्रवृत्त होवे है तैसे इहां भी विशिष्ट ज्ञान से प्रवृत्त होवे है याते सच्ची-झूठी प्रवृत्तिमात्र में सच्चा-झूठा विशिष्ट ज्ञान एक विशिष्टज्ञानत्व रूप से सिद्ध होवे है, इस रीति से हमारे मत में लाघव है और सच्चे स्थल में विशिष्ट ज्ञान से विवाद स्थल में भेदाग्रह ते प्रवृत्ति मानने में तुमार मत में गौरव है, लाघव गुण होवे है, गौरव दोष होवे है, याते तुम भी लाघवार्थ विवाद-स्थल में सत्य स्थलवत् विशिष्ट ज्ञान कारण मानो वा विवाद स्थलवत् सत्य स्थल में भेदाग्रह कारण मानो, दोनों में भी प्रथम माने परमत प्रवेश, स्वसिद्धान्त हानि प्रसंग ते दूसरा मानो सो मान्या नहीं जावे, काहे ते ? अभाव दो प्रकार का होवे है—एक प्रसिद्ध प्रतियोगी वाला, एक अप्रसिद्ध प्रतियोगी वाला, "जाका प्रतियोगी जगत् में प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध होवे वह प्रसिद्ध प्रतियोगी वाला कहिये है", "जाका न होवे

उदासीन जे सुषुप्ति माहीं। भेदाग्रह कहु काको नाहां।
सकल प्रवृत्ते ताके साहीं। कोउ निवृत्त होय है नाहीं ॥३२॥

वह शशश्रृंगादिकों का अप्रसिद्ध प्रतियोगी वाला कहिये" प्रसिद्ध प्रतियोगी वाले अभाव में कारणता व्यवहार होवे है जैसे अग्नि की शक्ति प्रतिबन्धक मन्त्राद्यभाव में दाह कारणता व्यवहार होवे है दूसरे में "शशश्रृंगाभाव" है एते कहने विना और व्यवहार होवे नहीं, औ तुमारे मत में भी सच्चे रजत स्थल में "भेदाग्रह" शब्द के अर्थ भेद ज्ञान के अभाव का प्रतियोगी भेदज्ञान प्रसिद्ध नहीं, काहे ते ? सत्य स्थल में "इदं रजतम्" यह ज्ञान "इदं" "रजत" के तादात्म्य रूप अभेद को विषय करे है, भेद को नहीं, याते सत्य स्थल में भेद ज्ञान रूप प्रतियोगी को अप्रसिद्ध होने ते, ताके अभाव में प्रवृत्ति कारणता दूर भये तहां तुमको विशिष्ट ज्ञान ही मानना पड़ने से, भ्रमस्थल में भी लाघव ते वही मानो अन्यथा कारण के अभाव ते भ्रमी पुरुष की प्रवृत्ति काहू रीति से नहीं होवेगी। ननु भ्रमी भेदाग्रह से प्रवृत्त होवे है याते भ्रमी की प्रवृत्ति का हेतु भ्रमरूप एक ज्ञान नहीं सिद्ध होवे ? यह आशंका कर अकार रहित पाठ में भेदाग्रहरूप कारण के होने से उदासीन सोये की प्रवृत्ति का प्रसंगरूप दोष एक और अकार वाले पाठ पक्ष में दोष दो कहे सिद्धान्ती "भेदाग्रह ते" इति, जेकर ज्ञान दो का भेद न जानने से तहि धावे नाम पुरोवर्ती में रजतार्थी प्रवृत्त होवे है ऐसे कहो तब भेदाग्रह नाम भेद-ज्ञानाभाव को प्रवृत्ति की कारणता माननी, ते नाम तेरेको उलटो आवे कहिये उदासीन औ सोये की प्रवृत्ति के प्रसंग का आपादक होवेगी ।।३१।।

प्रसंग में हेतु कहे "उदासीन" इति, उदासीनता दशा में पुनः सुषुप्ति अवस्था में "इदं" ज्ञान से रजत-ज्ञान का भेद ज्ञानाभाव कहो किस पुरुष को नहीं अर्थात् सबको है ऐसे भये कारण के होने से कार्य हुआ चाहिये सोई कहे "सकल" इति, सो यह अकार-रहित पाठ पक्ष में अर्थ कहया, अकारसहित पाठ पक्ष में अर्थ ऐसे है—ज्ञान दो का भेद न जानने से जेकर पुरोवर्ती में पुरुष प्रवृत्त होवे है ऐसे कहो तब अभेदाग्रह ते नाम पुरोवर्ती साथ रजत के अभेद ज्ञान के अभाव ते उलटो आवे नाम निवृत्त भी हुआ चाहिये भाव यह है = जैसे देश, काल, अदृष्ट, प्राग-भाव आदिक कार्य के कारण हैं तैसे प्रतिबन्धक के होने ते कार्य न देखने ते प्रतिबन्धक का अभाव भी कार्य का कारण होवे है याते जैसे ज्ञान दो

अरु रूपे की स्मृति जोई। भाखी तैं असत्य सु सोई।
कांता कर में देख्यो जोई। जो ता रजत सुमिर है सोई ॥३३॥

के भेदग्रह को प्रवृत्ति की प्रतिबन्धकता औ ताके अभाव को रजतार्थी की प्रवृत्ति में कारणता तुम मानते हो, तैसे असत्य रजत स्थल में "इदं" को रजत रूप जानकर प्रवृत्त हुए रजतार्थी की निवृति न होने से इदं के साथ रजत के अभेदग्रह को निवृत्ति की प्रतिबन्धकता सबके अनुभव-सिद्ध है याते ताके अभाव को निवृत्ति की कारणता भी तुमको अवश्य माननी होवेगी इस रीति से रजत के भेद ज्ञान का अभाव रजतार्थी की प्रवृत्ति का हेतु है, अभेद ज्ञान का अभाव रजतार्थी की निवृत्ति का हेतु है शुक्ति देश-विषे तुमको दोनों विद्यमान है काहे ते ? शुक्ति में रजत का भेद तो है परन्तु दोष के बल से ताका ज्ञान होवे नहीं, याते रजतार्थी की प्रवृत्ति का कारण शुक्ति में रजत के भेद ज्ञान का अभाव है, पुनः शुक्ति में रजत का अभेद न रहने में शुक्ति में रजत के अभेद का ज्ञान होवे नहीं, याते रजतार्थी की निवृत्ति का कारण शुक्ति में रजत के अभेद ज्ञान का अभाव है इस रीति से प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों की सामग्री होने से तुमारे मत में भेदाग्रह ते प्रवृत्तिवत् ताही समय अभेदाग्रह ते निवृत्ति भी हुई चाहिये, औ होना दोनों का परस्पर विराधी होने ते एककाल में सम्भवे नहीं, याते असम्भव जानकर दोनो का त्याग किया चाहो सो भी सम्भवे नहीं, काहे ते ? निवृत्ति वस्तु को प्रवृत्ति का अभाव रूप होने ते प्रवृत्ति त्याग किये निवृत्ति की प्राप्ति होने से दोनों के ग्रहण त्याग में असमर्थ हुए तुझ को व्याकुलता होवेगी, याते प्रवृत्ति का हेतु एक भ्रम-रूप विशिष्ट ज्ञान ही अवश्य मानना, इस रीति से एक दोष कह कर भेदाग्रह ते प्रवृत्ति मान कर दूसरा दोष कहे "उदासीन" इति ॥ ३२ ॥

किंच तत्तांश भान सहित ही "घट तहां होता हुआ" इत्यादि स्मरणों के देखने ते तत्तांश भान रहित रजत ज्ञान को स्मरणता नहीं बने, यदि दोष-वश ते प्रनुष्टतत्ता वाला भी स्मरण होवे है, ऐसे कहो, तब विवादास्पद रूप रजत ज्ञान को छोड़के तत्तांश भान सहित ज्ञानों को स्मृति मानते को हमको तो अंश ते स्मृतिवाला "सोई यह रजत है" ऐसे प्रत्यभिज्ञा स्थल विद्यमान है औ तुमको कोई है नहीं, याते प्रमुष्ट तत्ता वाले स्मरण में प्रमाण नही, यदि पुनः "रजतम्" यह ज्ञान होवे है, औ अनुभव की सामग्रो तहां कोई बने नहीं, याते अनुभव दूर भये अर्थ ते

तो कांताकर देख्यो जोई । ताकी स्मृति सो मोको होई ।
ऐसे क्यों नहिं करे उचार । ताते एक ज्ञान निर्धार ॥३४॥

जो तत्ता प्रमुष्ट बखानो । तो स्मृति कैसे तुम जानो ।
तत्ता अंश न भासे जहाँ । स्मृति निश्चय होय न तहाँ ॥३५॥

ताते 'रजतज्ञान' है जोई स्मृतिभिन्न पछानो सोई ।
नर को जोई रजत है ज्ञान । पुरोवर्त्ति विषयक पहिचान ॥३६॥

स्मरणता साधक अर्थापत्ति प्रमाण रह्या "प्रमाण नहीं" यह कहना नहीं बने ऐसे कहो, तब अल्पज्ञ को तेरो को यही कैसे निश्चय हुआ जो प्रमुष्ट तत्ता वाले रजतादि ज्ञान कीं सामग्री है वह अनुभव की सामग्री नहीं, इस रीति से पूर्व जो तत्ता के भान न होने में रीति कहीं वह भी तुम्हारी अटकल ही है या भाव से कहे "अरु" इति. असत्यता सिद्ध में अनुभव का अभाव रूप बीज कहे "कांता" इति ॥ ३३ ॥

ताते नाम ऐसे न उच्चारण करने से, एक ज्ञाननिर्धार नाम "इदं रजतम्" यह प्रत्यक्ष रूप एक ही ज्ञान निर्णय करो ॥ ३४ ॥

ननु दोष वश ते तत्ता का भान नहीं होवे ? यह आशंका कर तत्तांश के भान रहित रजत ज्ञान को स्मरणता में प्रमाणाभाव कहे "जो" इति, जेकर तत्ता का भान न मानो तब प्रमाणाभाव ते रजत ज्ञान को स्मृतिपने का निश्चय तुमको किस प्रकार हुआ अर्थात् किसी प्रकार निश्चय नहीं होवेगा सोई कहे "तत्ता" इति ॥ ३५ ॥

ताते नाम रजत ज्ञान में स्मृतिपने का निश्चय न होने ते, स्मृति भिन्न नाम स्मृति से और अर्थात् अनुभव रूप जानो ऐसे भये, "विवादास्पद रजत ज्ञान, पुरोवर्त्ती विषय वाला होने को योग्य है, रजतार्थी को पुरोवर्ती में नेमकर प्रवृत्त करने ते, सच्चे-रजत ज्ञानवत्, इस अनुमान ते पुरोवर्ती में तादात्म्य सम्बन्ध से रजत की सिद्धि होवे है, यह कहे "नर को" इति, नर को जोई रजत है ज्ञान नाम पुरुष को जो विवादा-स्पद रूप रजत ज्ञान है वह पुरोवर्ती विषयक पहिचान नाम समीप देश वर्ती वस्तु है विषय जिसका ऐसा है अर्थात् सन्मुखदेशवर्ती विषय वाला जानो ॥ ३६ ॥

तातै तामों जने प्रवृत्ति। सत्य रजतवत् नाहिं निवृत्ति।
अरु रूपे को द्रष्टा जोई। जो ताको नर पूछै कोई ॥३७॥
कहाँ रजत मोको दिखलावो। व्यर्थ कहाँ तुम धाये जावो।
तौ ताको द्रष्टा है जोई। अंगुलि कर दिखलावे सोई ॥३८॥
यह देखोरे ! रजत अनूप। दृष्ट अपूर्व जाको रूप।
अरुपुनि दोप दुष्ट है जोई। कार्य और उपावे सोई ॥३९॥
यामें अहै निदर्शन सार। सो सुनिये नीके उरधार।
अग्नि दाह दोषको पाये। बेंत बीज केला उपजाये।४०॥

पक्ष साध्य कहकर हेतु दृष्टान्त कहे "ताते" इति, "सत्य रजतवत्" पूर्व के साथ मिलाकर, ताते नाम पूरोवर्ती विषयक होने ते, तामों पूरोवर्ती में, जने प्रवृत्ति नाम उत्पन्न करे है रजतार्थी को नेम से प्रवृत्ति, नाहिं निवृत्ति कहिये निवृत्त नहीं करे, याते जैसे सच्चा रजत ज्ञान रजतार्थी को पुरोवर्ती में नेमकर प्रवृत्त करने ते पुरोवर्ती विषय वाला है, तैसे रजतार्थी को पुरोवर्ती में प्रवृत्त करने ते यह भी वैसा अवश्य मानना, रजत ज्ञान को पुरोवर्ती विषयकता अनुमान से कहकर प्रत्यक्ष से भी कहे "अरु" इति ॥ ३७-३८ ॥

दृष्ट अपूर्व जाको रूप नाम पूर्व देखे से आश्चर्य है जिसका आकार, किञ्च दाह रूप दोष सहित वेत बीज से केले तथा भस्मक रोग रूप दोष सहित अग्नि से अधिक अन्न जल के दाहवत् सदोष इन्द्रियों को मिथ्या ज्ञान की हेतुता सिद्ध होने ते यज्ञ में हिंसा बोधक "पशुना यजेत" रूप बाधक को न देखकर यज्ञायज्ञ सर्व में वर्तने वाला "न हिंस्यात् सर्वा भूतानि" यह निषेध जैसे उत्सर्गक है, ऐसे सदोषों को मिथ्या ज्ञान जनकता रूप बाधक को न देखकर सदोष निर्दोष सबमें वर्तने वाला, औ देखकर सदोषों में हट जाने वाला इन्द्रियों का यथार्थ ज्ञान जनकता का नेम भी उत्सर्गक है, याते ता नेम से सम्पूर्ण ज्ञानों को यथार्थता नहीं सिद्ध होवे यह "जेको भ्रान्ति ज्ञान तेहि गावे" से लेकर कही बात के खण्डन का आरम्भ करे "अरु पुनि" इति, दोष दुष्ट है जोई नाम जो वस्तु दोष वाली है वह और कार्य को उत्पन्न करे है ॥ ३९ ॥

यामें नाम दोष दुष्टको और कार्य की हेतुता में, निदर्शन सुनावे "अग्नि" इति ॥ ४० ॥

तो कांताकर देख्यो जोई। ताकी स्मृति सो मोको होई।
ऐसे क्यों नहिं करे उचार। ताते एक ज्ञान निर्धार ॥३४॥

जो तत्ता प्रमुष्ट बखानो। तो स्मृति कैसे तुम जानो।
तत्ता अंश न भासे जहाँ। स्मृति निश्चय होय न तहाँ ॥३५॥

ताते 'रजतज्ञान' है जोई स्मृतिभिन्न पछानो सोई।
नर को जोई रजत है ज्ञान। पुरोवर्त्ति विषयक पहिचान ॥३६॥

स्मरणता साधक अर्थापत्ति प्रमाण रह्या "प्रमाण नहीं" यह कहना नहीं बने ऐसे कहो, तब अल्पज्ञ को तेरो को यही कैसे निश्चय हुआ जो प्रमुष्ट तत्ता वाले रजतादि ज्ञान कीं सामग्री है वह अनुभव की सामग्री नहीं, इस रीति से पूर्व जो तत्ता के भान न होने में रीति कहीं वह भी तुम्हारी अटकल ही है या भाव से कहे "अरु" इति, असत्यता सिद्ध में अनुभव का अभाव रूप बीज कहे "कांता" इति ॥ ३३ ॥

ताते नाम ऐसे न उच्चारण करने से, एक ज्ञाननिर्धार नाम "इदं रजतम्" यह प्रत्यक्ष रूप एक ही ज्ञान निर्णय करो ॥ ३४ ॥

ननु दोष वश ते तत्ता का भान नहीं होवे ? यह आशंका कर तत्तांश के भान रहित रजत ज्ञान को स्मरणता में प्रमाणाभाव कहे "जो" इति, जेकर तत्ता का भान न मानो तब प्रमाणाभाव ते रजत ज्ञान को स्मृतिपने का निश्चय तुमको किस प्रकार हुआ अर्थात् किसी प्रकार निश्चय नहीं होवेगा सोई कहे "तत्ता" इति ॥ ३५ ॥

ताते नाम रजत ज्ञान में स्मृतिपने का निश्चय न होने ते, स्मृति भिन्न नाम स्मृति से और अर्थात् अनुभव रूप जानो ऐसे भये, "विवादास्पद रजत ज्ञान, पुरोवर्ती विषय वाला होने को योग्य है, रजतार्थी को पुरोवर्ती में नेमकर प्रवृत्त करने ते, सच्चे-रजत ज्ञानवत्, इस अनुमान ते पुरोवर्ती में तादात्म्य सम्बन्ध से रजत की सिद्धि होवे है, यह कहे "नर को" इति, नर को जोई रजत है ज्ञान नाम पुरुष को जो विवादास्पद रूप रजत ज्ञान है वह पुरोवर्ती विषयक पहिचान नाम समीप देश वर्ती वस्तु है विषय जिसका ऐसा है अर्थात् सन्मुखदेशवर्ती विषय वाला जानो ॥ ३६ ॥

तातै तामों जनै प्रवृत्ति । सत्य रजतवत् नाहिं निवृत्ति ।
अरु रूपे को द्रष्टा जोई । जो ताको नर पूछै कोई ॥३७॥
कहाँ रजत मोको दिखलावो । व्यर्थ कहाँ तुम धाये जावो ।
तौ ताको द्रष्टा है जोई । अंगुलि कर दिखलावे सोई ॥३८॥
यह देखोरे ! रजत अनूप । दृष्ट अपूर्व जाको रूप ।
अरुपुनि दोष दुष्ट है जोई । कार्य और उपावे सोई ॥३९॥
यामें अहै निदर्शन सार । सो सुनिये नीके उरधार ।
अग्नि दाह दोषको पाये । वेंत बीज केला उपजाये ।४०॥

पक्ष साध्य कहकर हेतु दृष्टान्त कहे "ताते" इति, "सत्य रजतवत्" पूर्व के साथ मिलाकर, ताते नाम पुरोवर्ती विषयक होने ते, तामों पुरोवर्ती में, जने प्रवृत्ति नाम उत्पन्न करे है रजतार्थी की नेम से प्रवृत्ति, नाहिं निवृत्ति कहिये निवृत्त नहीं करे, याते जैसे सच्चा रजत ज्ञान रजतार्थी को पुरोवर्ती में नेमकर प्रवृत्त करने ते पुरोवर्ती विषय वाला है, तैसे रजतार्थी को पुरोवर्ती में प्रवृत्त करने ते यह भी वैसा अवश्य मानना, रजत ज्ञान को पुरोवर्ती विषयकता अनुमान से कहकर प्रत्यक्ष से भी कहे "अरु" इति ॥ ३७-३८ ॥

दृष्ट अपूर्व जाको रूप नाम पूर्व देखे से आश्चर्य है जिसका आकार, किञ्च दाह रूप दोष सहित वेत बीज से केले तथा भस्मक रोग रूप दोष सहित अग्नि से अधिक अन्न जल के दाहवत् सदोष इन्द्रियों को मिथ्या ज्ञान की हेतुता सिद्ध होने ते यज्ञ में हिंसा बोधक "पशुना यजेत" रूप बाधक को न देखकर यज्ञायज्ञ सर्व में वर्तने वाला "न हिंस्यात् सर्वा भूतानि" यह निषेध जैसे उत्सर्गक है, ऐसे सदोषों को मिथ्या ज्ञान जनकता रूप बाधक को न देखकर सदोष निर्दोष सबमें वर्तने वाला, औ देखकर सदोषों में हट जाने वाला इन्द्रियों का यथार्थ ज्ञान जनकता का नेम भी उत्सर्गक है, याते ता नेम से सम्पूर्ण ज्ञानों को यथार्थता नहीं सिद्ध होवे यह "जेको भ्रान्ति ज्ञान तेहि गावे" से लेकर कही बात के खण्डन का आरम्भ करे "अरु पुनि" इति, दोष दुष्ट है जोई नाम जो वस्तु दोष वाली है वह और कार्य को उत्पन्न करे है ॥ ३९ ॥

यामें नाम दोष दुष्टको और कार्य की हेतुता में, निदर्शन सुनावे "अग्नि" इति ॥ ४० ॥

अरुपुनि भस्मक रोग है दुष्ट । जठराग्नि होवे अति रुष्ट ।
बहुत अन्न जल दाल सो करे । यों विपरीत कार्य विस्तरे ॥४१॥
इंद्रिय दोष दुष्ट त्यों होई । मिथ्या ज्ञान उपावै सोई ।
नियम बखान्यो तैने जोई । दोषहीन इंद्रिय मैं सोई ॥४२॥
दोषयुक्त में है व्यभिचार । ताते वह उत्सर्गक धार ।
अरुपुनि बाध बखान्यो जोई । रजत व्यवहार विषय नहिं सोई ।४३॥
त्यक्तवासना जो नर हइये । नहिं व्यवहार ताहिको पइये ।
रजत निहार बाध पुन जोई । सीपि विषे रूपेको सोई ॥४४॥

निर्दशनान्तर कहे "अरुपुन" इति, "जठराग्नि" पूर्व के साथ मिलाकर भस्मक नाम वाला जो रोग करके दुष्ट नाम दूषित करी हुई पेट की अग्नि अतिदुष्ट नाम अधिक दाहकता शक्ति वाली होवे है ॥४१॥

दार्ष्टान्तिक में कहे "इन्द्रिय" इति, त्यों नाम बेंतबीज आदिकोंवत् । ननु हामारे कहे नेम की क्या गति ? यह आशंका कर कहे "नियम" इति ॥ ४२ ॥

व्यभिचार नाम नेम की हानि, ताते नाम दोष युक्तों में व्यभिचार ते वह उत्सर्गक धार नाम सो नेम बाधक को न देखकर प्रवृत्त होने वाला है, बाधक को देखकर नहीं । किञ्च भेदाग्रह ते प्रवृत्ति कथन न बननेवत् व्यवहार हीन को बाध देखन ते बाध ज्ञान भी व्यवहारों के बाध को नहीं विषय करे यह "रूपे का जोई व्यवहार" इत्यादि पाठ कर कही बात का खण्डन करे "अरु पुनि" इति, रजत व्यवहार विषय नहिं सोई नाम वह रजत के व्यवहार हैं विषय जिसके ऐसा नहीं, किन्तु रजत विषयक है ॥ ४३ ॥

रजत विषयकता ही स्पष्ट करे "त्यक्त" इति, त्यक्त वासना कहिये वासना के त्याग वाला जो विरक्त पुरुष है, ताहि को नाम तिसको लोभ से ग्रहणार्थ प्रवृत्ति रूप औ प्रसन्नता से औरों को सुनावन हेतु "इदं रजतम्" कथन रूप व्यवहार कोई नहीं, औ बाध ज्ञान ताको भी होवे है याते "सीपी विषे" पूर्व साथ मेलकर प्रथम रजत को देख के उत्तर काल में शुक्ति विषे बाध ज्ञान जो होवे है वह रजत का ही है, व्यवहारों का नहीं ॥ ४४ ॥

अरुपुनि सकल यथार्थ ज्ञान । यामें जो भाख्यो अनुमान ।
सो उर बाधित प्रकट पछानो । साध्य असत्य ताहिको जानो ॥४५॥
ज्यों को पावक शीत ठहराये । 'द्रव्यत्व' हेतु तामाहिं बताये ।
नीरादिक दृष्टांतहि हइये । जैसे यह तैसे सो पइये ॥४६॥

तटस्थ—

यों मीमांसक समय निवार्‌यो । तब नैयायिक वचन उचार्‌यो ।

अख्यातिवादी मीमांसक मत निराश के अनन्तर
नैयायिक अन्यथाख्याति प्रतिपादन करे है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

'अन्यथाख्याति' अहे भ्रम माहीं । ताते रजत सीपि मों नाहीं ॥४७॥

किंच और प्रमाण से जिसके साध्य के अभाव का निश्चय होवे वह अनुमान बाधित कहिये है, जैसे "अग्नि, शीतल होने को योग्य है, द्रव्य होने ते, जलवत्" या अनुमान के शीतता रूप साध्य के अभाव का त्वचा रूप प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय होवे है याते बाधित है औ बाधित से साध्य सिद्धि होवे नहीं, याते ज्ञान को भ्रमरूपता सिद्ध हुए ताके विषय को मिथ्या होने से, दृष्टान्त की सिद्धि भये अनुमान से जगत् को मिथ्या-पना सिद्ध होवे है यह मीमांसक मत की समाप्ति करे "अरु पुनि" इति, यामें नाम सम्पूर्ण ज्ञानों को यथार्थता सिद्धि में, बाधित नाम "नर को जो है रजत ज्ञान" इत्यादि पाठ में कहे अनुमान से यथार्थता रूप साध्य के अभाव के निश्चय वाला, बाधित होने में हेतु कहे "साध्य" इति ॥४५॥

यथार्थता साधक अनुयान को बाधितपना दृष्टान्त से स्पष्ट करे "ज्यों" इति ॥ ४६ ॥

कही रीति से अख्याति दूर भये निष्फल प्रवृत्ति की हेतु रूपता कर सिद्ध भये भ्रमज्ञान में भी अनिवर्चनीय ख्याति का अंगीकार नहीं, अन्यथा (ख्याति) का अंगीकार है याते पुरोवर्ती में बाधित रजत की भिन्न देश में सत्ता सिद्ध होने ते, स्वसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगितारूप मिथ्यापना न सिद्ध होने कर द्वैत के मिथ्यात्व में दृष्टान्त नहीं बने या नैयायिक की आशंका का अनुवाद करे "यों" इति, समय नाम सिद्धान्त, नैयायिक का वचन कहे "अन्यथा" इति, ताते-भ्रम में अन्यथा ख्याति के होने ते ॥४७॥

कांताकर में रूपा जोई । भ्रमते भासे ईहाँ सोई ।
'इदंरजत' यह अनुभव ज्ञान । स्मृति अंश न कोई मान ॥४८॥
सो पुनि रजत न मिथ्या हइये । कांता करमें साचो पइये ।
ताते रूप निदर्शन जोई । मिथ्या माहिं असंगत सोई ॥४९॥

सिद्धान्ती—

मिथ्या में संगत सो हइये । मिथ्या वचन तुम्हारो पइये ।
कांताकर में रूपो जो है । इंद्रिय सन्निकर्ष नहिं सो है ॥५०॥
चाक्षुषवृत्ति न ताके माहीं । जाते निकट देश वह नाहीं ।
त्वच स्पर्श ता मो है जोई । दूर निरस्त दूर में सोई ॥५१॥

अन्य का अन्य में भान रूप अन्यथाख्याति का रूप कहे "कांता" इति, भ्रम ते भासे इँहा सोई नाम वही "इदं रजतम्" इस भ्रम ज्ञान ते पुरोवर्ती में प्रतीत होवे हैं याही ते "इदं रजतम्" यह ज्ञान अनुभव रूप है, रजतांश में स्मृति नहीं, सोई कहे "इदम् इति ॥ ४८ ॥

वह अनुभव का विषय रजत भी देशान्तर में सच्चा है यह दृष्टान्त की असिद्धि कहे "सो पुनि" इति, सो पुनि—वह अनुभव का विषय रजत, पुनः न झूठा होने में देशान्तर में होना रूप हेतु कहे "कांता" इति, ताते—कान्ताकर में सच्चा होने ते ॥ ४९ ॥

पुरोवर्ती में कान्ताकर के इन्द्रिय सन्निकृष्ट रजत का भान होवे है वा असन्निकृष्ट का ? इनमें दूसरा माने देशान्तर के सर्व पदार्थों के भान का प्रसंग होने ते, प्रथम मानो तब वह भी कान्ताकर के रजत साथ चाक्षुष त्वाच अनुभव का हेतु चक्षु त्वचा का सम्बन्ध न होने से बने नहीं याते और गति के अभाव ते पुरोवर्ती में भान हुये रजत को तहां ही "नेदं रजतम्" जानकर अभाव का प्रतियोगिपना देखने से दृष्टान्त बने है या भाव से कहे "मिथ्या में" इति, प्रथम विकल्प का असम्भव कहे "कान्ता" इति ॥ ५० ॥

मत होवो चाक्षुष वृत्ति, त्वाच है ? यह आशंका कर ताकी आशा दूर करे "त्वच" इति, "दूर निरस्त दूर में सोई" वह दूर में है याते त्वचा का सम्बन्ध दूर ते खण्डित ॥ ५१ ॥

जाते कांता भान न होई। किहि विधि ईहाँ भासे सोई।

पूर्वपक्षी—

ननु दोष ते भासे सोई। कांता कर में रूपा जोई ॥५२॥

सिद्धान्ती—

युग्म विकल्प याहि में जानो। ताही कर यह दुष्ट पछानी।

दोष मात्र भव भीतर जोई। रजत भानको कारण सोई ॥५३॥

अथवा ताहि सहित दृग जोई। हेतु बखानो ताको सोई।

प्रथमें अंधा जे भव माहीं। रजत निहारे सो क्यों नाहीं ॥५४॥

द्वितीय मध्य पदार्थ जेते। ताको होय भान सब तेते।

जाते प्रथम रजत नर भासे। शुक्ति ज्ञान ते बहुरो नासे ॥५५॥

"कैमुतिक न्याय" से कान्ताकर के रजत भान की असिद्धि कहे "जाते" इति। प्रमेय गत चाकचिक्यरूप दोष ते भासे है ? यह आशंका करे "ननु" इति, भस्मक रोग रूप दोष में अधिक अन्न जल की दाहकता देखने से दोष में अधिक सामर्थ्य होवे है याते शुद्ध नेत्र से दूर देशस्थ रजत का न भान हुए भी रजत के संस्कार जगावने वाले दोष से, भासे नाम प्रमेय गत दोष रूप कारण ते वह भान होवे है जो कान्ताकर में रजत है।।५२।।

"दोष ते भासे" कथन से रजत भान में जो दोष को कारणता कही सो पुनः दोष मात्र कारण है वा दोष सहित दृग् कारण है ? यह विकल्प कर देने योग्य दोषों से दुष्ट है याते बने नहीं, यह कहे सिद्धान्ती "युग्म" इति, याहि में कहिये "दोषते भासे" पाठ से कही कारणता में, दोष की भूमि रूप दो-विकल्प जानो औं जान के, ताही कर नाम दोष के बीजरूप विकल्पों कर ही अर्थात् विकल्पों से देने योग्य दोषों कर ही, दुष्ट कहिये दोष विशिष्ट जानो, भाव यह जिस हेतु ते तुमारे दोष कारणता कहने में दोष आवे है याते दोष कारणता कथन को दोपवाला जानो, विकल्प करे "दोष" इति ॥ ५३ ॥

ताहि सहित—दोष सहित, ताको—रजतभान को, प्रथम में आपत्ति कहे "प्रथमे" इति, "निहारे सोक्यों नाहीं" अर्थात् अन्धपने रूप दोष को विद्यमान होने ते देखा चाहिये ॥ ५४ ॥

दूसर पक्ष में पुरोवर्ती में कान्ताकर का रजत भान होने में औ·

ताते अनिर्वाच्य वह हइये । सत्य असत्य उत्तीर्ण पइये ।
कण-भक्ष-अक्ष-चरण अनुयायी । ताने मिथ्या गाथा गाई ।।५६।।

अब अन्यथाख्यातिवादी को निराश देख कर आत्मख्यातिवादी
"योगाचार" स्वमत का स्थापन करता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—
नैयायिक बात बखानी जोई । साच कह्यो मिथ्या है सोई ।
स्वप्रकाश जोई विज्ञान । रजत पदार्थ सोई जान ।।५७।।

पुरोवर्ती पुनः रजत के बीच के पदार्थों का पुरोवर्ती में भान न होने में हेतु के अभाव ते सबका हुआ चाहिये यह विनिगमनाविरह सूचन करे "द्वितीय" इति, द्वितीय कहिये दोषसहित दृग् को भान कारणता पक्ष में, पुरोवर्ती शुक्ति औ देशान्तरीय रजत के बीच के जेते घट पटादि पदार्थ है ताको कहिये दोषसहित नेत्र वाले को, शुक्ति में रजतवत् वह सभी भान हुए चाहिये औ हीवे नहीं, याते कहे दोषों ते, देशान्तरवर्ती रजत भान की असिद्धि भये शुक्ति में ही शुक्ति के अज्ञान-ज्ञान से उत्पत्ति नाश वाला मिथ्या रजत अवश्य मानना ऐसे दृष्टान्त के होने ते जगत् को मिथ्यापन की असिद्धि नहीं, यह उपसंहार करे "जाते" इति, भासे के आगे "शुक्ति में" शेष कर लेना ।। ५५ ।।

ताते—शुक्ति में ही प्रतीत होकर ताही में नाश होने ते, अनिर्वाच्य-मिथ्या, अनिर्वाच्य का अर्थ कहे "सत्य" इति, उत्तीर्ण नाम विलक्षण, अनुयायी नाम अनुसारी है ।। ५६ ।।

नैयायिक मत खण्डन हुआ देखकर जगत् मिथ्यात्व में कहे अनिर्वचनीय रजत को दृष्टान्तता की असिद्धि कहने हेतु आत्मख्याति वादी योगाचार आशंका करे "नैयायिक" इति, नैयायिक ने जो विवाद स्थल में अन्यथा ख्यातिरूप वार्ता कही, कहे दोषों से तुमने सांच कह्या वह अवश्य मिथ्या है, परन्तु रजत वस्तु को अनिर्वाच्यता तुम पुनः भी न जानो, किन्तु स्वप्रकाश विज्ञानरूप जानो. सोई कहे "स्वप्रकाश" इति, स्वप्रकाश कहिये अपने प्रकाश में अपने से और प्रकाश की अपेक्षा रहित प्रकाश रूप जो विज्ञान नाम आलय ज्ञान है, विवाद स्थल में रजत रूप वही जानो ।। ५७ ।।

विज्ञान भिन्न रजत भव माहीं। यामें ज्ञान हेरियो नाहीं।
जैसी जहाँ होय प्रतीत। तैसो अर्थ धरे नर चीत ॥५८॥
प्रतीति रूप ताते वह हइये। विन प्रतीति रजत नहिं पइये।
बाधक तहाँ ज्ञान है जोई। इदंता को बाधे भव सोई ॥५९॥

जिस कारण ते विज्ञान भिन्न नाम विज्ञान से पृथक् रजत वस्तु है, यामें कहिये इस वार्ता में कोई प्रमाण नहीं देख्या, उलटा रजत को ज्ञानाकारता में यह उत्सर्ग रूप नेम प्रमाण देख्या है सोई कहे "जैसो" इति, जहां नाम जिस देशकाल में पुरुष को, जैसी कहिये यदाकार प्रतीति नाम ज्ञान होवे तिस देशकालमें, तैसो कहिये तद्रूप ही, अर्थ धरे—अर्थ की सत्ता को पुरुष चित्त में निश्चय करे है तदाकार ज्ञान से अन्य रूप अर्थ की सत्ता को निश्चय नहीं करे ॥ ५८ ॥

इस रीति से ताते कहिये यदाकार ज्ञान से तद्रूप ही अर्थ की सत्ता के निश्चय से, वह–रजत, प्रतीतिरूप कहिये ज्ञानरूप है, विन प्रतीति कहिये बिना ज्ञान से अर्थात् कहे नेम से ज्ञान से भिन्न वह रजत नहीं, किन्तु ज्ञान रूप ही है, इहां यह भाव है=जब किसी पुरुष को "घट का होना तुमको कैसे प्रतीत हुआ ? पूछे तब प्रत्यक्षआदिप्रमाणजन्य घटाकार ज्ञान से हुआ यह उत्तर कहे है, याते घटाकार ज्ञान से ही घट रूप अर्थ की सत्ता निश्चय होवे है, पटाकार से नहीं होवे, आगे "जिससे जिसकी सत्ता निश्चय होवे, जिस बिना जिसकी सत्ता न प्रतीत होवे तिसकी सत्ता तिसके अधीन होवे है औ तत्स्वरूप होवे है" याते घट की सत्ता घटाकार ज्ञान के अधीन है पुनः घटाकार ज्ञान स्वरूप है, जैसे वेदान्त मत में निखिल प्रपञ्च की सत्ता ब्रह्म के अधीन है याते ब्रह्माधीन सत्तावाला निखिल (प्रपञ्च) ब्रह्म रूप है, तैसे ज्ञान के आकार के अधीन सत्ता वाले घटादि ज्ञानरूप है, याते यह नेम सिद्ध हुआ जहां यदाकार ज्ञान है तहां तैसे ही अर्थ की सत्ता है सो यह नेम उत्सर्ग है, याते बाधक वल से कहीं इसका त्याग होवे है परन्तु (प्रसंग से) बाधक ज्ञान भी पुरोवर्ती में रजत का बाध नहीं करे किन्तु रजत में पुरोवर्तीपने रूप "इदन्ता" का बाध करे है सोई कहे "बाधक" इति, तहां कहिये "इदं रजतम्" स्थल में, जो "नेदं रजतम्" बाधक ज्ञान है वह संसार में इदन्ता का बाध करे है, रजत का नहीं करे, काहे ते ? "नेदं रजतम्"

जाते बाहर बाधित हइये । ताते ज्ञान रूप वह पइये ।
आन्तर जो हइये विज्ञान । बाहरवत सो होवे भान ॥६०॥

बाधक को रजत की बाधकता माने "इदं" में रजत औ रजतत्व रूप धर्मधर्मी दो की बाधकता कहनी होवेगी रजत में इदन्ता का बाध माने एक धर्ममात्र की बाधकता कहनी होवेगी, याते दो के बाध में गौरव ते, औ एक के बाध में लाघव ते एक का ही कहना श्रेष्ठ है ॥ ५९ ॥

ऐसे भये "इदन्ता" का निषेध हुआ बाहर बाधित हुए रजत को अर्थापत्ति प्रमाण से बुद्धिरूपता सिद्ध होवे है, सोई कहे "जाते" इति, जाते कहिये जिस कारण ते "इदन्ता" धर्म दूर होने से, बाहर—देशकाल में, तिस रजतधर्मी का बाध है, ताते कहिये तिस बाहर बाधित होने रूप हेतु से ही वह रजत आन्तर ज्ञान रूप सिद्ध होवे है, इहां यह भाव है="नेदं रजतम्" वाक्य में "इदं" औ "रजत" पद इदं पदार्थ औ रजत पदार्थ के अभेद को कहे है और अभेदबोधक पदों में आकर "न" पद भेद का बोधन करे है यह नेम है याते "नेदं रजतम्" कहिये "इदं" वस्तु रजत से भिन्न है, ऐसे प्रथम "इदं" में रजत के भेद का ज्ञान होकर उत्तरकाल में, याते इदं वस्तु रजत से भिन्न है, ताते "इदं" में तादात्म्य सम्बन्ध से रजत नहीं, पुनः समवाय सम्बन्ध से रजतत्व नहीं, इस रीति से रजत में, रजतत्व में अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता का निश्चय होवे है, ऐसे मानते वेदान्ती को धर्मधर्मी दो का बाध मानने में गौरव है और पूर्व भेद ज्ञान होकर उत्तरकाल में, याते इदं वस्तु रजत से भिन्न है, ताते रजत में इदं का धर्म "इदन्ता" नहीं, ऐसे हमारे मत में धर्ममात्र का बाध मानने में लाघव है, याते रजत में इदन्ता का बाध होने से बाह्यता दूर भये अर्थ ते रजत को आन्तर ज्ञानरूपता सिद्ध होवे है, इस रीति से रजन को आन्तरता सिद्ध भये ताही आन्तर सद्रूप रजत का बाहर अध्यास होवे है यह कहे "आन्तर" इति, अर्थ ते सिद्ध हुआ जो ज्ञानाकार आन्तर रजत है, सो नाम वही बाहरवत् विवादस्थल में प्रतीत होवे है, अर्थात् आन्तर आत्मरूप ज्ञान का ही बाहर भान कथन रूप अध्यास होवे है याते मिथ्यात्व में रजत को दृष्टान्तता की असिद्धि ते जगत् को मिथ्यापना नहीं सिद्ध होवे, उलटा प्रथम अध्यायमे कही रीति से परमाणु औ तत्समुदाय रूपता कर दुर्निरूप्य वाह्य अर्थों को रजतवत् ज्ञानरूपता सिद्ध होवे है ॥ ६० ॥

यामें पूर्व दोष न कोई । नैयायिक मतमें भाख्यो जोई ।
सिद्धान्ती—
यों बुद्धि विन बौद्ध उचारे । ताहि विषे दूषण अति भारे ॥६१॥
प्रातिभासिक अर्थ हैं जेते । ज्ञान स्वरूप आन नहिं तेते ।
यामें को हइये प्रमान । बिना मान मिथ्या पहिचान ॥६२॥
अनुभव उत बाधक प्रतीत । प्रथम असंगत भारो बीत ।
अनुभव अहे जगत में जोई । बाहर रजत जनावे सोई ॥६३॥
जाते 'इदंरजत' नर आखे । अहं रजत यह कोय न भाखे ।
जो रूपो होवै निज ज्ञान । 'अहंरजत' सब करै बखान ॥६४॥

कही रीति से आन्तर सिद्ध भये रजत का बाहर अध्यासमानने में पूर्वमत में कहें दोषों की अप्राप्ति रूप विशेष कहे "यामें" इति, यामें नाम कही रीति से बुद्धि रूप सिद्ध भये आन्तर रजत का बाहर अध्यास मानने में पूर्व कह्या कोई दोष नहीं, जो दोषमात्र कारण है, वा दोष सहितदृग् कारण है, इन विकल्पों से नैयायिक-मत में कहे थे, पूर्व पक्ष श्रवण कर सिद्धान्ती तटस्थ प्रति कहे "यों" इति, ॥ ६१ ॥

प्रातिभासिक रजतादिकों को ज्ञान स्वरूपता में कोई प्रमाण है वा नहीं? यह विकल्प कर दोष देने हेतु कहे "प्रातिभासिक" इति, यामें नाम प्रातिभासिक अर्थों को ज्ञान स्वरूपता में, को हइये प्रमाण नाम कौन—प्रमाण है अर्थात् कोई है वा नहीं? दूसर पक्ष में ज्ञानरूपता को मिथ्यापना कहे "बिना" इति ॥ ६२ ॥

प्रथम पक्ष में भी रजत को ज्ञान रूपता में "इदं रजतम्" यह अनुभव प्रमाण हैं वा "नेदं रजतम्" यह बाधक ज्ञान प्रमाण हैं? यह विकल्प करे "अनुभव" इति, अनुभव नाम "इदं रजतम्" यहज्ञान, बाधक प्रतीत "नेदं रजतम्" यहज्ञान, प्रथम भानते को कहे "प्रथम" इति, असंगतपने में बीज कहे "अनुभव" इति, अर्थात् अनुभव रजत को बाहर सिद्ध करे है औ तुम ज्ञानरूपता में प्रमाण कहते हो याते तुमारा कहना असंगत है ॥६३॥

अनुभव बाहर ही कैसे जनावे तहां कहे "जाते" इति, बाहर न जनावे तब ऐसे कह्या चाहिये सोई कहे "जो" इति, निजज्ञान नाम आप बुद्धि स्वरूप ॥ ६४ ॥

द्वितीय बाधक ज्ञान सो जोई । रजत विज्ञान न भाखे सोई ।
आगे परो द्रव्य है जोई । रजत भिन्न दिखलावे सोई ॥६५॥
'इदं न रूपो' यों नर कहे । विज्ञान स्वरूप न ताको लहे ।
मैंही रूपो यों पुनि भाषे । जौ विज्ञान रूप तिहँ लाखे ॥६६॥
अरु पुनि बुद्धि रूप जो होई । सीपी में रूपो है जोई ।
तौ गुंजामहिं अग्निसु जोई । बुद्धि रूप ते मत महिं सोई ॥६७॥
बाहर तो वह मिथ्या हइये । साची अग्नि मध्य ते पइये ।
साची अग्नि होय पुनि जहाँ । नीके प्रकट जलावे तहाँ ॥६८॥
ताते देह तुम्हारो जोई । भस्मीभाव होयगो सोई ।
याते परे हान को होई । ते सिद्धांत ते तन को खोई ॥६९॥
अरु पुनि जैसी जिहँ प्रतीत । तैसो अर्थ धरे नरचीत ।
याहि बखानी तैंने जोई । ज्ञापक ते पहिचानो सोई ॥७०॥

"रजत के भेद वाला पुरोवर्ती द्रव्य है" ऐसे पुरोवर्ती में रजत के भेद को सिद्ध करने वाले बाधक ज्ञान से भी रजत को ज्ञान स्वरूपता सिद्ध नहीं होवे यह कहे—"द्वितीय" इति, विज्ञान नही भाखे, तो क्या कहे है ? तहां कहे "आगे" इति, सोई नाम बाधक ज्ञान ॥ ६५ ॥

रजतभिन्नता में अनुभव कहे "इदम्" इति, ज्ञानाकारता में अनुभव की आपत्ति कहे "मैं ही" इति ॥ ६६ ॥

किञ्च तन की हानि के प्रसंग से भी प्रातिभासिक पदार्थों को ज्ञान-रूपता नहीं सिद्ध होवे यह कहे "अरुपुनि" इति, सोई नाम गुञ्जापुञ्ज की अग्नि ॥ ६७ ॥

होवे साची दोष क्या ? तहां कहे "साची" इति ॥ ६८ ॥

ताते नाम साची अग्नि को भीतर होने ते, भस्मी भाव नाम भस्मरूप, होवे हानि क्या ? तहां कहे "याते" इति ॥ ६९ ॥

किञ्च प्रकाश्यरूप घटादिको की सत्ता के निश्चय को प्रकाशक दीपादिकों के अधीन देख कर भी दीपक को तिनकी सत्ता स्वरूपता न देखने ते ज्ञापक अर्थात् अर्थों के प्रकाशक रूप ज्ञान को भी तिनकी सत्ता

ज्ञापक ज्ञान अर्थ को हइये । ताही ते तैसी विधि पइये ।
रूपो ज्ञानरूप निज हइये । यामों मान न कोई पइये ॥७१॥
विज्ञान रूप जाते नहिं होवै । ताही ते नर बाहर जोवै ।
अरुपुनि बाध रजत को हइये । इदंता ज्योंकी त्योंही पइये ॥७२॥

पूर्वपक्षी—

ननु सो सीपि इदंता जोई । ताको बाध कहे नहिं कोई ।
ज्ञान माहिं इदंता जो है । बाधित या भवभीतर सो है ॥७३॥

स्वरूपता नहीं बने, किन्तु प्रदीप आदिकों वत् प्रकाशकता बने है ऐसे न माने उक्त दोष होवेंगे यह कहे "अरुपुनि" इति ॥ ७० ॥

ताहीं ते तैसी विधि नाम प्रकाशक होने ते ही प्रकाश्याकाररूप ॥७१॥

ताही ते नाम उक्त दोषों कर विज्ञानरूप न होने ते, किञ्च "इदन्ता" का बाध मानते के मत में बाधक ज्ञान शुक्ति गत "इदन्ता" का बाध करें है वा रजत रूप "ज्ञान" गत का करे है ? प्रथम माने "नेदं रजतम्" इस बाधक ज्ञान से पीछे भी "यह शुक्ति हैं" ऐसे शुक्ति में पुरोवर्तीपना रूप "इदन्ता" भासे है सो न भान हुआ चाहिये, या भय से दूसरा माने, तब तहां भी इदन्ता शुक्ति से आवे है, वा ज्ञान में ही है ? इन विकल्पों के दोषों कर बाधक को "इदन्ता" की बाधकता दूर भये ज्ञान रूपता साधक अर्थापत्ति का अवकाश न लगे, रजत को सत् रूपता निवृत्त होने से मिथ्यापन की सिद्धि कर दृष्टान्त के होने से जगत् को मिथ्यापना बने है या अभिप्राय से कहे "अरू पुनि" इति, बाध रजत को हइये नाम "नेदं रजतम्" रूप बाधक से निषेध "रजत" का है, इदंपने का नहीं, ताका न होने में बाधक के आने से पीछे भी "यह शुक्ति है" ऐसा भान होना रूप हेतु सूचन करे "इदन्ता" इति ॥ ७२ ॥

रहो शुक्ति गत (इदन्ता) का भान से अबाध, हम रजत रूप ज्ञान गत (इदन्ता) का बाध माने है ? यह आशंका करे "ननु" इति, ताको नाम बाधक ज्ञान से पीछे भी भान होने वाली सीपी गत का बाध नही, तब किसमें रहने वाले को बाधित कहते हो ? तहां कहे "ज्ञान" इति, इदन्ता नाम पुरोंवर्तीपना अर्थात् बाह्यपना, बाधित नाम बाध का विषय ॥ ७३ ॥

सिद्धान्ती—

यह प्रलाप निरर्थक हइये । जाते युग्म दोष तिहँ पइये ।
ज्ञान माहिं इदंता जोइ । जो सीपी ते आवे सोई ॥७४॥
'अन्यथाख्याति' तोहि को आई । और ठौर की यामें गाई ।
'आत्मख्याति' तुम्हारी जोई । दत्त तिलांजलि होई सोई ॥७५॥
अरु जे ज्ञान माहिं वह हइये । बाहर ते नहिं यामें पइये ।
तौ तिहँ बाध कदे नहिं होई । यथा ज्ञान तैसे पुनि सोई ॥७६॥
बाध प्रकट ताको पुनि होई । ताते ज्ञान माहिं नहिं सोई ।
बाध तहाँ रूपे को होई । जाते और प्रकार न कोई ॥७७॥
अंतर जो हइये विज्ञान । बाहरवत् सो होवे भान ।
याहि विषे दूषण गण जोई । पूर्व सकल बखान्यो सोई ॥७८॥

वक्ष्यमाण विकल्पों के दोषों से तुच्छ जानकर कहे "यह" इति, प्रलाप नाम कथन, निरर्थकता में हेतु कहे "जाते" इति ॥ ७४ ॥

प्रथम में दोष कहे "अन्यथा" इति, अन्यथाख्याति में बीज कहे "और" इति, यामें नाम बुद्धि में, परमत का प्रवेश कह कर स्वसिद्धान्त की हानि कहे "आत्म" इति, आत्मख्याति नाम अपनाआपरूपबुद्धि का ही रजतादि रूपों से भान, कथन ॥ ७५ ॥

दूसर दोष कहे "अरु जे" इति, कभी भी बाध न होने में बुद्धि की समानता रूप हेतु कहे "यथा" इति ॥ ७६ ॥

ज्ञानगत माने बाध बने नहीं, औ बाध तुमारे मत में प्रकट "इदन्ता" का माना है, याते भिन्न में कहो यह मनावे "बाध" इति, भिन्न में माने भी बाध तो उक्त दोषों ते बने नहीं, औ बाधक ज्ञान काहू का बाध अवश्य किया चाहे, याते और गति के अभाव ते, रजत का ही मानो यह कहे "बाध" इति, रूपे का होने में और प्रकार न बनना रूप हेतु कहे "जाते" इति ॥ ७७ ॥

पूर्व अर्थापत्ति प्रमाण कर सिद्ध भये आन्तर ज्ञान का ही बाहर भान होवे है इस बात के खण्डन में प्रथम अध्याय विषे योगाचार मत में "जो बाहर नहिं अर्थहि कोई" इत्यादि पाठकर कहे दोष बतावे "अन्तर" इति ॥ ७८ ॥

नैयायिक मत दूषण बिन आन। याहि विषे होवे वह भान।
दूषण ते यह दुष्ट पछानो। 'आत्मख्याति' न साची मानो ॥७९॥

अब आत्मख्यातिवादी का निराश देखकर असत्ख्यातिवादी
'शून्यवादी माध्यमिक' स्वमत का स्थापन करता है।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु जे और प्रकार न कोई। 'असत्ख्याति' मानो गति होई।
आन्तर जो हइये इक ज्ञान। तामें एक 'शक्ति' पहिचान ॥८०॥
बाहर शून्य संपूर्ण अर्थ। ता प्रकाशन को सो समर्थ।
'अविद्या' नाम ताहि को जानो। सकल व्यवहार ताहि ते मानो ॥८१॥

सिद्धान्ती—

याहि असंगत तैंने गाई। युक्ति याहिमें अहे न काई।
कौन 'शक्य' या 'शक्तिह' केरो। जो हइये मोको वह टेरो ॥८२॥

"आत्म ख्याति" पूर्व के साथ (अन्वय कर लेना) ॥ ७९ ॥

ननु होवे तब सत् असत् को परस्पर प्रतिषेध रूप होने ते तीनों मतों में सत् के भान की असिद्धि भये असतों के प्रकाशन को समर्थ रूप अविद्या नाम वाली बुद्धि की शक्ति से असत् रूप रजत का भान याही ते लोक में अनुभव है जो "असत्रूप रजत मेरो को भान भया" ऐसे भये दृष्टान्त के अभाव ते द्वैत को मिथ्यापना नहीं बने यह शून्यवादी आशंका करे "ननु" इति, असत् ख्याति मानो नाम असत् का भान मानो, तासे गति होई नाम निर्वाह होवेगा, असत् के भान की रीति कहे "आन्तर" इति ॥ ८० ॥

कैसी पहचाने तहां कहे "बाहर" इति, बाहर असत्रूप जो सम्पूर्ण पदार्थ हैं तिनके प्रकाशन को वह समर्थ है अर्थात् असत् पदार्थों के प्रकाशन की सामर्थ्यरूप ही बुद्धि में एक शक्ति है, ताका नाम कहे "अविद्या" इति, सकल व्यवहार—रजत के भानादिक व्यवहार ॥ ८१ ॥

शक्ति को आश्रयवत् विषय का भी नेम है औ तुमारे कोई शक्य बने नहीं, याते शख्य के अभाव ते शक्ति की ही सिद्धि नहीं होवे या गूढ़ अभिप्राय से कहे सिद्धान्ती "याहि" इति, असंगत गावने में हेतु कहे

पूर्वपक्षी—

असत्य 'शक्य' या केरो हइये । सत्य शक्य नहिं कोई पइये ।

सिद्धान्ती—

असत्य शक्ति का कार्य हइये । अथवा ज्ञाप्य शक्ति को पइये ।।८३।।
कार्य ज्ञाप्य दोनां वह नाहीं । याते दूषण दोनों माहीं ।
असत्य वस्तु उपजे नहिं कोई । शशक श्रृङ्गसम जानो सोई ।।८४।।
है असत्य पुनि उपजे सोई । यह व्याघात प्रकट सुन होई ।
अरु पुनि द्वितीय पक्ष है जोई । प्रकट असंगत जानो सोई ।।८५।।

"युक्ति" इति, युक्ति का न होना स्पष्ट करने हेतु पूछे "कौन" इति, कौन शक्य—क्या पुनः शक्य है अविद्या नाम शक्ति का ? अर्थात् सत्य है वा असत्य है ।। ८२ ।।

मत में वस्तु मात्र को सत्य न मानता असत्य ही शक्य है यह आशंका करे "असत्य" इति, गूढ़ अभिप्राय स्फुट करने हेतु बाह्य विषयों की उत्पत्ति योग्य परमाणु आदिक सामग्री न मानते के मत में वह असत्य शक्य असत्तों के प्रकाशन स्वभाववाली बुद्धि की शक्ति का कार्य है वा विषय है ? यह विकल्प करे "असत्य" इति, ज्ञाप्य विषय ।। ८३ ।।

कार्य ज्ञाप्य दोनों है ? यह आशंका कर कहे "कार्य" इति, न होने में हेतु कहे "याते" इति, सत्ता सम्बन्धहीन असत् में, सत्ता सम्बन्धरूप उपजना माने विरुद्धों का एक जगह होना रूप व्याघात होवेगा याते, "रजतादिक उपजने को अयोग्य हैं, असत्य होने ते, शशश्रृङ्गवत्" यह प्रथम में दोष कहे "असत्य" इति ।। ८४ ।।

दूसरे भी ज्ञान जिन विषयों में विषयता रूप अतिशय करे है तिनमें ही प्रकाश करे है, वा जिनमें नहीं करे तिनमें भी करे है ? इन विकल्पों में दूसरा माने घटत्व रूप असाधारण धर्म हीन को घट रूपता की असिद्धिवत्, विषयत्व रूप असाधारण धर्म हीन असत्य विषय भी नहीं सिद्ध होवेंगे याते प्रथम माने तब "विवाद का विषय रूप रजत सत्य होने को योग्य है. अतिशय का आश्रय होने ते, नीलाधार-नीरजवत्" या अनुमान से विषयों को सत्य सिद्ध भये असत्य सिद्धान्त की हानि होवेगी या भाव से कहे "अरु पुनि" इति, द्वितीय पक्ष-ज्ञाप्य पक्ष ।।८५।।

ज्ञान सु अतिशय यामें धारे । ताही में प्रकाश विस्तारे ।
जो अतिशय को अर्थ अधार । काहे शून्य सो करे उचार ॥८६॥
अरुपुनि सत्य ज्ञान है जोई । शून्य अर्थ सो छुहे न सोई ।
सत्य असत्य संबंध न कोई । कैसे तिहँ प्रकाशे सोई ॥८७॥

पूर्वपक्षी—

ननु संबंधाभाव न हइये । प्रकट संबंध ताहिको पइये ।
असत्य अधीन निरूपण जोई । संबंध ज्ञानमों जानो सोई ।८८॥

ज्ञान सु अतिशय यामें धारे नाम वुद्धि विषयतारूप अधिकता को यामें करे है तिसी में प्रकाश करे है जेकर यह पक्ष मानो तव जो अतिशय को नाम अधिकता का आश्रय अर्थ है, ताको शून्य नाम असत् काहे कहता है अर्थात् मत कहो, भाव यह जेकर ज्ञान, अर्थों में विषयता के नामान्तर वाली प्रकटता रूप अधिकता करे है तब ताके आश्रय रजतादिकों को शून्यता दूर होने से असत् मानकर ज्ञापकता मत कहो ॥ ८६ ॥

विषय प्रकाशन रूप अर्थक्रियाकारित्व सत्ता वाले सद् विज्ञान का असद् विषयों साथ तिनके प्रकाशन योग्य संयोगादि सम्बन्ध न होने ते ज्ञान को असत् प्रकाशन की असिद्धि से असत् को ज्ञाप्यता नहीं बने, यह दोषान्तर कहे "अरु पुनि" इति, शून्य अर्थ सो छुहे न सोई नाम वह असत् अर्थों का सम्बन्धी नहीं होवे, न होने में हेतु कहे "सत्य" इति, कैसे तिहँ प्रकाशे-सम्बन्ध विना किस प्रकार शून्य को प्रकाशे अर्थात् किसी प्रकार नहीं प्रकाशे ॥ ८७ ॥

किसका संयोग ? दण्ड का, ऐसे संयोग की दण्डाधीन निरूपणतावत् "असत् का ज्ञान" बोली से ज्ञान की असत् विषयों के अधीन निरूपणता देखने से ज्ञान विषयों के प्रकाश्य प्रकाशक भाव का निर्वाहक निरूप्य निरूपक भाव सम्बन्ध बने है याते प्रकाश सिद्ध होने से ज्ञापकता असिद्ध नहीं यह आशंका करे "ननु" इति, ताहि को—ज्ञान विषयों का, कौन सम्बन्ध जाने ? तहां कहे "असत्य" इति, "असत्य का ज्ञान" ऐसे असत्य विपयों के अधीन जो ज्ञान का कथन है वही ज्ञान का विषयों में निरूप्य निरूपक भाव सम्बन्ध जानो ॥ ८८ ॥

सिद्धान्ती—

यह असत्य तुम्हारी बानी । युक्ति हीन नहिं माने ज्ञानी ।
जो असत्य अतिशय नहिं जने । ज्ञान विषे तो कैसे भने ॥८९॥
असत्य अधीन निरूपण हइये । याहि असत्य तुंड ते पइये ।
ज्ञान विषे अतिशय जो जाये । तौ असत्य काहे तिहँ गाये ॥९०॥
अर्थ क्रिया को कारी जोई । सत्य तुम्हारे मत में सोई ।
'असत्ख्याति' को कियो परिहार । दूषण-गणते लखो असार ॥९१॥

तटस्थ—

केचित् सत्य असत्य बखाने ।

सिद्धान्ती— **प्रकट विरोध होय मत हाने ।**

सत्य विरोधी अहे असत्य । ताहि विरोधी जानो सत्य ॥९२॥

ज्ञान में अपने आकार का समर्पण करना रूप अतिशय करते विषयों का असत् अधीन निरूपण सम्बन्ध ज्ञान में कहते हो वा न करतों का ? इन विकल्पों के दोषों से ज्ञाप्यता पक्ष को पुष्ट जानकर कहे "यह" इति, असत्पने में युक्तिहीनता रूप हेतु कहे "युक्तिहीन" इति, जो नाम जेकर असत्य वस्तु अपने आकार का समर्पण करना रूप अधिकता नहीं करे ज्ञान में तो कैसें भने नाम तब कैसे कहता है असत्य अधीन निरूपण सम्बन्ध है असत्य विषयों का ज्ञान विषे ॥ ८९ ॥

याहि असत्य तुण्ड ते पइये नाम असत्य अधीन निरूपण सम्बन्ध है विषयों का ज्ञान में यह बात झूठी तेरे मुख से सुनी जावे है, या भय से प्रथम का अंगीकार करे तव अपना आकार समर्पण करना रूप अर्थ-क्रिया कारित्व सत्ता वाले को सद्रूपता सिद्ध भये असत्ख्यातिरूप सिद्धान्त की हानि होवेगी याते और गति के अभाव ते रजत को मिथ्यापना सिद्ध होने से दृष्टान्त के सम्भव ते जगत् को मिथ्यात्व अवश्य मान यह उपसंहार हेतु कहे "ज्ञान" इति, काहे तिहँ गाये—किस वास्ते तिसको कहता है अर्थात् मत कहो ॥ ९० ॥

न कहने में हेतु कहे "अर्थ" इति, अर्थ क्रिया को कारी जोई कहिये कार्य का सिद्धकर्ता जो वस्तु है, सो तुम्हारे मत में सत् है याते ज्ञान में अतिशय धारण करना रूप कार्य करने वाले विषयों को असत् मत कहो ॥९१॥

ननु होवे उक्त दोषों ते तीन मतों के जाने से केवल सत् रूपता का

तम प्रकाश सम दोनो हइये । युगपद् एक ठौर नहिं पइये ।
'अनिर्वाच्यख्याति' इक होई । या बिन और बने नहिं कोई ॥९३॥
रूपो सत्य न सीपीमाहीं । नहिं असत्य पुनि ताके माहीं ।
सत्य असत्य विरोधी हइये । ताते रजत सु मिथ्या पइये ।९४॥
जैसे रजत तथा जग जानो । ताते द्वैत सु मिथ्या मानो ।

अब उक्त अर्थ में भेदवादी का आक्षेप और सिद्धान्ती का प्रतिक्षेप ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—
ननु जड़ द्वैत सु मिथ्या होई । निखिल द्वैत नहिं ताते खोई ॥९५॥

औ चौथे के जाने से असत् रूपता का परिहार, पुनः भूतल में पड़े घट में घटत्वेन है औ पटत्वेन नहीं, कथन देखने ते सम्पूर्ण-पदार्थ निजरूप ते सत्य हैं औ पररूप ते असत् हैं याते शुक्ति में भी ऐसे ही रजत का भान होने ते वाको अनिर्वाच्यता की असिद्धि ते प्रपञ्च को मिथ्यात्व सिद्ध करने में वह दृष्टान्त नहीं बने यह किन्हों का अनुवाद सुनकर पूर्व मतोंवत् अगाह्यता सुनावे सिद्धान्ती "केचित्" इति, मत हानि में प्रकट विरोध रूप हेतु को प्रकट करे "सत्य" इति ॥ ९२ ॥

ताते यही मानो सोई कहे "अनिर्वाच्य" इति, अनिर्वाच्यख्याति-शुक्ति में मिथ्या रजत का ही भान कथन ॥ ९३ ॥

रजत को मिथ्यापना काहे ते पाये है ? यह आशंका कर असत्यादिक तीनों की असिद्धि ते कहे "रूपो" इति, उक्त दोषों कर अख्याति अन्यथा-ख्याति आत्मख्याति रूप तीन मतों के दूर होने से शुक्ति में भान भया रजत सत्य नहीं और माध्यमिक मत दूर होने से ताके माहीं नाम शुक्ति में असत् रूप नहीं, पुनः सत्य असत्य तो तमः प्रकाशवत् विरोधी है याते उभय रूप नहीं, किन्तु यह है सोई कहे "ताते" इति, ताते—सत् आदिक तीनो के दूर होने से ॥ ९४ ॥

होवे रजत मिथ्या प्रकरण में क्या पाया ? तहां कहे "जैसे" इति ताते—रजत तुल्य होने ते, ननु पूर्व कहे अनुमान से पुनः "नेह नानास्ति" श्रुति से होवे जड़ द्वैत को मिथ्यापना सिद्ध, तौ भी भेद साधक अनुमान से औ भेद प्रतिपादक श्रुतियों से जीव ईश रूप द्वैत के सिद्ध होने कर

जीव ब्रह्म चेतन है जेई । मिथ्या नाहिं जगत सम तेई ।
ता कर द्वैत प्रकट पुन होई ।
सिद्धान्ती—
नाहीं द्वैत एक है सोई ॥९६॥

दोहा

पूर्वपक्षी—
जीव ब्रह्म दो एक है, यामों मान न कोय ।
मान विना जो एकता, खर विषाण सम सोय ॥ ९७ ॥

सोरठा

सिद्धान्ती—
तत्त्वमसि यह मान, श्रुति विराजे शिखामणी ।
पेचक को नहिं भान, कोविद प्रकट निहारही ॥ ९८ ॥

पूर्वपक्षी—
जीव ब्रह्मके धर्म विरुद्ध । बहु विधि हैं भवमें प्रसिद्ध ।
वह परमात्म सर्व सु जाने । जीव सो किंचित् अर्थ पछाने ॥९९॥

"निखिल द्वैत मिट जाय" यह प्रतिज्ञा नहीं सिद्ध होवे ? यह आशंका करे "ननु" इति, ताते—जड़ द्वैत मात्र को मिथ्या होने ते ॥ ९५ ॥

चेतन द्वैत कहे "जीव ब्रह्म" इति, ताकर जीव ईश कर, न खोई जावे निखिल द्वैत, जब जीवईश में द्वैत बने यह परिहार करे सिद्धान्ती "नाहीं" इति ॥ ९६ ॥

ननु ईश जीव में द्वैत नहीं यह काहू प्रमाण से कहते हो ? वा बिना प्रमाण ? यह विकल्प कर प्रथम की असिद्धि कहे "जीव" इति, यामों—जीव ईश की एकता मों, दूसरे में प्रमेय को असत्पना कहे "मान" इति ॥ ९७ ॥

"मान न कोय" यह श्रवण कर कोप युक्त भया सिद्धान्ती कहे "तत्त्वमसि" इति ॥ ९८ ॥

"जीव ईश भिन्न होने को योग्य है, विरुद्ध धर्मों वाले होने ते, अग्नि जलवत्" या अनुमान से पुनः भेद प्रतिपादक "एक वृक्ष में दो पक्षी हैं" इत्यादिक श्रुतियों से पुनः "नाहं ब्रह्म" प्रत्यक्ष से, बाधित विषय वाले वाक्य का तात्पर्य ही और है याते तुमारा कोप तुमको पेचकपने का

इत्यादिक बहु विधिको जानो। सब जन जाने कहाँ बखानो।
धर्म विरुद्ध होय जिन केरे। नीर अग्नि ज्यों एक न हेरे ॥१००॥
ताते एक रूप नहिं गावे। महावाक्य कछु और बतावे।
सिद्धान्ती—
विरुद्ध धर्म जेतो इनमाहीं। सकल त्यागो दोनों माहीं। १०१॥
सोऽयं देवदत्त गति जोई। महावाक्य में जानो सोई।
या विधि 'लक्षणा' कर इन माहीं। लखे अभेद जे बुध माहीं ॥१०२॥

सूचक है यह "मान न कोय" कथन का अभिप्राय प्रकट करे "जीव" इति, प्रसिद्धि दिखावे "वह" इति, किञ्चित्अर्थ—थोड़े पदार्थ अर्थात् सर्वज्ञता अल्पज्ञतारूप जीव ईश्वर के विरुद्ध धर्म है ॥ ९९ ॥

इत्यादिक—इहां आदि शब्द से परोक्षता अपरोक्षता पुनः नित्य-मुक्तता बद्धता आदिक जानने, होवे धर्म विरुद्ध दोष क्या ? यह आशंका कर कहे "धर्म" इति ॥ १०० ॥

ताते—नीर अग्निवत् विरुद्ध धर्मों वालों का अभेद न देखने ते, "महावाक्य" पूर्व के साथ (अन्वय कर लेना) एक नहीं गावे तो क्या कहे है ? तहां कहे "कछु" इति, कछु और बतावे कहिये कुछ और ही विकार विकारिभावादिक संसर्ग कहे है, शक्ति वृत्ति से "तत्" "त्वम्" पदों के अर्थो में प्रतीत होता विरोध "सोऽयं देवदत्त" वाक्यवत् लक्षणा से त्यागो, यह सौम्य रीति से कहे सिद्धान्ती "विरुद्ध" इति ॥ १०१ ॥

विरोध त्यागने की कैसी गति जानिये ? यह आशंका कर कहे "सोऽयम्" इति, "सोऽयम् देवदत्तः" इस वाक्य में जो विरोध त्यागने की भागत्याग लक्षणारूप रीति है वही रीति महावाक्य में जानिये अर्थात् काशी देश भूत कालविशिष्ट देवदत्त "सो" शब्द का अर्थ हैं, मथुरा देश वर्तमानकाल विशिष्ट देवदत्त "अयम्" शब्द का अर्थ है, "काशीदेश भूत काल विशिष्ट देवदत्त से अभिन्न मथुरा देश वर्तमान काल विशिष्ट देवदत्त है" यह वाक्य का अर्थ है, सो विशिष्ट वृत्ति धर्मो कों विशेषण में वर्तने के नियम ते विशिष्टों में होने वाले अभेद को विशेषणों में बाधित होने ते बने नहीं, याते "सो" पद की काशी देश भूत काल विशिष्ट में शक्ति है

पूर्वपक्षी—

अखंड अर्थ कछु यामें नाहीं। करो क्लेश लक्षणा काहीं।
महावाक्य 'संसर्ग' बतावे। बिना लक्षणा सो बन जावे ॥१०३॥

औ शक्य के एक देश व्यक्तिमात्र में लक्षणा है, ऐसे "अयम्" की है और लक्षणा वृत्ति कर पदों से प्रतीत भये लक्ष्य भागों का "देवदत्त ही देवदत्त है" यह शब्द जन्य ज्ञान होवे है तैसे महावाक्य में भी "तत्" की परोक्ष देश काल विशिष्ट चेतन में शक्ति है "त्वम्" की अपरोक्ष देश काल विशिष्ट चेतन में शक्ति है, वाक्य का "परोक्ष देश काल विशिष्ट चेतन ही अपरोक्ष देश काल विशिष्ट चेतन हैं" यह अर्थ होवे है, सो पूर्व कहे विशिष्ट में होने वाले" इत्यादि प्रकार से बने नहीं, याते "तत् पद की अद्वयानन्द में पुनः "त्वं" पद की प्रत्यक् बोध में लक्षणा है, और वाक्य से "अद्वयानन्द प्रत्यक् बोध रूप है" पुनः "प्रत्यक् बोध अद्वयानन्द रूप हैं" यह अखण्डाकार वृत्ति होवे है सो यही महावाक्य में "सोऽयं देवदत्त" वाक्य सी गति है, ऐसे भये "नाहं ब्रह्म" या प्रत्यक्ष से पुनः भेद साधक अनुमान से और लोक सिद्ध भेदानुवादक "एक वृक्ष में दो पक्षी" इत्यादिक श्रुतियों सें विहित भेद का "एकमेव" इत्यादिक श्रुतियों से बाध प्राप्त भये प्रत्यक्ष आदिक तीनों को देश काल रूप उपाधियों से ठहरे भेद बोधन में सफलता है, याते "तत्त्वमसि" महावाक्य, और "नाहं ब्रह्म" प्रत्यक्षादिकों के विषयों के भेद ते आपस में विरोध नहीं, या विधि लक्षणा कर नाम समीप ही पूर्व कहीं रीति सें लक्षणा कर लखेअभेद—निश्चय करे अभेद ॥ १०२ ॥

गीता में जीव मेरा अंश है ऐसे श्रवण ते अंश अंशिभाव सम्बन्ध ही "तूं तिसका अंश है" ऐसे "तत्त्वमसि" का अर्थ है, याते संसर्गआदि शून्य अखण्ड अर्थ की बोधकता हेतु लक्षणा का क्लेश मत करो यह मित्र भाव से "कुछ और बतावे" कथन का भाव प्रकट करे "अखण्ड" इति, यामें—महावाक्यमें, अखण्ड नहीं कहे तो क्या कहे हैं? तहां कहे "महा" इति, महावाक्य संसर्ग बतावे कहिये "तत्त्वमसि" महा वाक्य सम्बन्ध को कहे है अर्थात् पदों से न जाने हुए सम्बन्ध को ही "नीलकमल" वाक्यवत् वाक्यार्थता है ॥ १०३ ॥

अब महावाक्यार्थं विवेचन में सिद्धान्तीकृत प्रश्न और पूर्वपक्षीकृत उत्तर का प्रतिपादन करते हैं।

चौपाई

सिद्धान्ती—

कहो कवन 'संसर्गहि' अहे। जीव ब्रह्मको जो यह कहे।

पूर्वपक्षी—

सो संसर्ग हम तोहि बतावैं। कर अँगुलि दृष्टांत दिखावैं ॥१०४॥
करसम अंशी ईश पछानो। अंश जीव अँगुलि सम जानो।
मेरी अंश जीव तिहँ रूप। जीव लोकमें अहे अनूप ॥१०५॥
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
यों भगवान प्रकट तिहँ गायो। शरणागत संदेह मिटायो।
अथवा ईश विकारहि जानो। भू ऊषर सम जीव पछानो ॥१०६॥

गौड़त्वादिक विशेष धर्म रहित पुरुष में, ब्राह्मणत्व सामान्य न देखने ते महावाक्य संसर्ग कहे हैं यह भी संसर्ग मात्र का बोधक सामान्य कथन तभी बने जब कोई संसर्ग विशेष सिद्ध होवे ? नहीं तो नहीं, या अभिप्राय से प्रश्न करे सिद्धान्ती "कहो" इति, "जीव ब्रह्म को" पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) जो यह कहे—जिसको यह वाक्य कथन करे है, स्मृति में अंश श्रवण ते अंश अंशी, पुनः श्रुति में जन्म श्रवण ते विकार विकारिभाव सम्बन्धों को निश्चय कर सहित अहंकार के कहे "सो" इति, सो—जाको महावाक्य कहे है ॥ १०४ ॥

दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक को मिलाकर कहे "कर सम" इति, अर्थ ते अंशांशिभाव का प्रतिपादक वाक्य पढ़े "मेरी" इति, जीव लोक में—संसार में ॥ १०५ ॥

याहो का मूल कहे "मम" इति, ममैवांशो—मेरा ही अंश अविद्या रूप उपाधि से संसार में. जीवभूतः सनातनः—सर्वदा संसारी रूप से प्रसिद्ध है, यों नाम ऐसे, तिंह कहिये अंशांशिभाव सम्बन्ध को भगवान् प्रकट कहे हैं, याते शरणागत कहिये शरण आये पुरुषों का सन्देह नाम "तत्त्वमसि" आदि वाक्य अखण्ड अर्थ पर है वा संसर्ग पर हैं ? ऐसे संशय दूर करे हैं, स्मृति से अंशांशिभाव कहकर श्रुति से विकार-

पावक विस्फुलिङ्ग सम जान। ब्रह्म जीव को नीके मान।
या विधि श्रुति विकार बतावे। जीव ब्रह्म विकारी गावे ॥१०७॥

अब सिद्धान्ती उक्त पूर्वपक्ष के विचार का निराश करता है।

सिद्धान्ती –

यह दोनों ते पक्ष असार। यामों नहिं पइये कछु सार।
श्रुति युक्तिहि निरंश बतावे। अंश न ताकी को ठहरावे ॥१०८॥
वाने रचकर कियो प्रवेश। जीव रूपकर हरण कलेश।
नखागर लौं गयो समाय। फोर सीमंत वऱ्यो तन आय ॥१०९॥

विकारिभाव कहे "अथवा" इति, कैसा विकार जानें? तहां कहे "भू ऊषर" इति, पृथिवी में ऊषरवत् ईश्वर का न्यून रूप परिमाण जानो ॥ १०६ ॥

अर्थ ते विकार विकारिभाव बोधक श्रुति पढ़े "पावक" इति, "जीव" पूर्व के साथ (सम्बन्ध कर लेना) ॥ १०७ ॥

निरंशता—निर्विकारता, प्रतिपादक श्रुतियां पुनः "ईश्वर जन्य होने को योग्य है, अंशी होने ते, पटवत्" इत्यादिक युक्तियों साथ विरोध ते अंशता विकारता में प्रमाण दई श्रुतियों का और ही तात्पर्य है, याते तेरा पक्ष असंगत है यह कहे "यह" इति, यामों—कहे पक्षों में, असारता में श्रुति युक्ति का विरोध हेतु कहे "श्रुति" इति, श्रुति "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत" यह और युक्तियें—सात्वत् मत खण्डन में दूसरे अध्याय में कहीं तर्कें, ईश्वर को निरंश बोधन करे है, ताकी—ब्रह्म की ॥१०८॥

अर्थ ते निरंशता प्रतिपादक श्रुतियां पढ़े "वाने इति, "जीव रूप कर" पूर्व के संग (सम्बन्ध कर लेना) क्लेशों के हरने वाले तिस परमात्मा ने शरीर बनाकर जीव रूप करके प्रवेश किया अर्थात् कौतुक वास्ते परमात्मा ने प्रथम अंग रहित गोल मोल शरीर रचा, तब तासे कौतुक न देखकर तिस में इन्द्रियगोलक बनाकर इन्द्रिय रचे, तब तिनसे भी चेष्टा न देखकर प्राण रचे, ऐसे तिनसे चेष्टा न देखकर मूर्ध भेदन कर शरीर में आप ही प्रवेश किया, याही ते योगी जनों का ऊर्ध्व मार्ग से गमन होवे है, कहां से लेकर कहां पर्यन्त प्रवेश किया औ कौन मार्ग में प्रवेश किया? तहां कहे "नरवागर" इति, सीमन्त—तालु ॥१०९॥

ज्यों नरपति मंत्री को वेष । धार करे मंदिर प्रवेश ।
नरपति को यह मंत्री अहे । सब जन मुखते योंही कहे ।।११०।।
वस्तु विचार करे जे कोई । सो नरपति विन और न कोई ।
अरु ज्यों दो तन भीतर योगी । एको भिक्षुराज इक भोगी ।।१११।।
त्योंही ईश धार यह वेष । जीव रूप कर करे प्रवेश ।
जीव अंश में दूषण जेते । पूर्व कहे युक्ति सो तेते ।।११२।।
माया और अविद्या जोई । उपाधि भये भवमें ते दोई ।
कल्पित जीवब्रह्म को भेद । दोनों कर, नहिं स्वतः अभेद ।।११३।।
कल्पित अंश कृष्ण उर मानी । यह तो वारम्वार बखानी ।
अरुपुनि सांश पदार्थ जोई । कर सम सकल जन्य है सोई ।।११४।।

दृष्टान्त से ताका प्रवेश बतावे "ज्यों" इति, "धार" पूर्व के संग (सम्बन्धकर लेना) ।। ११० ।।

वस्तु विचार करे जे कोई कहिये वास्तविक ते विचार करे जो कोई पुरुष तब वह राजा बिना और नहीं, किन्तु राजा ही है, ननु एक ही है तब न्यूनता अधिकता पुनः एक का एक काल में शरीरों में प्रवेश कैसे ? तहां कहे "अरु" इति ।। १११ ।।

"यह वेष" पाठ का ही अर्थ "जीव रूप कर" जीवों को अंशता मानने में दोष न होने ते पुनः श्रुति का भी स्मृति बोधित अर्थ में ही तात्पर्य होने ते अंशांशिभाव अवश्य मानना यह आशंका करते प्रति दूसरे अध्याय में "द्रोण अंश" इत्यादि आशंका के परिहार हेतु कहे दोषों का स्मरण करावे "जीव" इति ।। ११२ ।।

एक रूप है तब भेद कैसे ? तहां कहे "माया" इति, "दोनों कर" पूर्व साथ मिलाकर, जीव-ब्रह्म का मिथ्या रूप भेद दोनों उपाधियों से है, स्वतः नहीं, स्वतः क्या है ? तहां कहे "अभेद" ।। ११३ ।।

ईश्वर ने अपनी अंश कहने से जीव को वास्तविक अंशता बने है ? तहां कहे "कल्पित" इति, यह तो नाम कृष्ण का कल्पित कहने में तात्पर्य है यह तो बारम्बार "भाष्यकार वह प्रकट बखानी" इत्यादि पाठ से दूसरे अध्याय में भी हमने कही, वास्तविक अंश मानते प्रति ईश्वर को कार्यता का प्रसंग देकर ताका जनक पूछे "अरुपुनि" इति ।। ११४ ।।

त्योंही ईश जन्य तब होई ताको जनक बखानो कोई।
निर्विकार स्वमुखते गायो। द्वितीय पक्ष ते कृष्ण मिटायो ॥११५॥
छेदहीन अरु दाहते हीन। वेद उक्त अविकारी चीन।
द्वितीयाध्याय माहिं यह गायो। अर्जुनको संदेह मिटायो ॥११६॥
अरु पुनि श्रुति बखानी जोई। नाहिं विकार बतावे सोई।
अग्नि प्रकाश रूप है जैसो। विस्फुलिङ्ग पुनि जानो तैसो ॥११७॥

त्योंही ईश जन्य तब होई कहिये सांश अंगीकार काल में ईश्वर भी कर वत् कार्य ही होवेगा, होवे कार्य ? तहां कहे "ताको" इति, ताको जनक बखानो कोई कहिये कार्य को कारण पूर्वक होने के नेम ते कार्य रूप ईश्वर का कारण कौन कहोगे ? अर्थात् कार्य का कारण कोई अवश्य बतावना पड़ेगा औ बतावे वह जन्य है ? कि अजन्य है ? इन विकल्पों विषे प्रथम में भी वह अपने कर आप जन्य है, वा अपने कार्य ईश्वर कर जन्य है ? इनमें प्रथम माने आत्माश्रय, दूसर माने अन्योन्याश्रय, और माने चक्रिका आदिक दोष होवेंगे याते द्वितीय मानो तब अजन्य पक्ष में भी जीव अंशी ईशवत्, ईश कारण को ईश अंशी ही कहोगे ऐसे भये "ईश अंशी जन्यो भवितुमर्हति, अंशित्वात्, पटवत्" या अनुमान से ताको कार्यता से अनित्यता सिद्ध होवेगी याते कलह का मूल रूप सांशता मत कहो। मत होवें अंश अंशी, दूसरा ही रहो ? यह आशंका कर जाका विकार कहता है ताही ने दूर करने से नहीं बने यह कहे "निर्विकार" इति, ते– तेरा ॥ ११५ ॥

अर्थ ते कृष्ण वाक्य पढ़े "छेद" इति, छेद हीन–निरवयव होने ते मूर्त में होने वाले अवयव-विभाग ते रहित, पुनः दाह ते हीन-अमूर्त होने ते मूर्त में होने वाली भस्म रूपता ते रहित, अविकारी—हेतुओं के अभाव ते नाशादि विकार रहित, वेद उक्त चीन-वेद में कहा हुआ जानो, यह बात भगवान् ने किस प्रति कही है ? तहां कहे "द्वितीय" इति ॥११६॥

किंच श्रुति में कही दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक की समानता जन्यता अंश में नहीं, किन्तु प्रकाशता अंश में है, याते विकारता की सम्भावना नहीं बने, यह कहे "अरु पुनि" इति, विकार नहीं बतावे तो क्या कहे है ? तहां कहे "अग्नि" इति, तैसो—प्रकाश रूप शेष ॥ ११७ ॥

दोहा

त्यों परमातम जीवको, मानो ज्योतिस्वरूप।
अतिहि विलक्षण शंक हन, हेरो सम अभिरूप ॥११८॥

चौपाई

उपाधिक अल्प प्रमाण सो माने। विस्फुलिङ्ग दृष्टांत बखाने।
नातर श्रुत्यंतर है जोई। प्रकट विरोध ताहिको होई ॥११९॥
निर्विकार निरञ्जन रूप। एते श्रुति सो कहे अनूप।

अब सिद्धान्ती कर महावाक्य में सब प्रकार के संसगार्थ के अभाव का संकोच पूर्वक प्रदर्शन।

और संसर्ग बखानो जेते। बने न महावाक्य में तेते ॥१२०॥

कही बात स्पष्ट करे "त्यों" इति, ज्योति-स्वरूप प्रकाश रूप, अतिहि विलक्षण शंक हन—जीव ईश्वर में उपाधि बिना वास्तविक भेद की आशंका दूर करके, सम नाम एक रस देखो ॥ ११८ ॥

ननु तुम्हारी हमारी कही दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक की समानतामें एक पक्ष सिद्ध करने वाले प्रमाणाभाव ते विवादमें हमारी रीति से जीव विकार है, पुनः विस्फुलिङ्ग दृष्टान्त से वास्तविक अल्प परिमाण है ? यह आशंका कर कहे "उपाधिक" इति, औपाधिक अल्प परिमाण को मान कर विस्फुलिङ्ग दृष्टान्त को कहे है श्रुति, वास्तविक को मान कर नहीं, ऐसे न माने अनेक श्रुतियों साथ विरोध होवेगा सोई कहे "नातर" इति, ताहि को—तिन और श्रुतियों को ॥ ११९ ॥

अर्थ ते प्रकट विरोध वाली श्रुतियाँ पढ़े "निर्विकार" इति, निर्विकार—जन्मादि विकार रहित, निरञ्जनरूप-निर्दुख स्वरूप, ननु दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक को समान विभक्तिकत्व के नेम ते अग्नि के विस्फुलिङ्ग कथन-वत् "तत्त्वमसि" का भी "तिस का तूं" ऐसे व्यधिकरणता कर ही अन्वय होवे है या अभिप्राय से पूर्व कहे हमारे पक्षों का श्रुति साथ विरोध से निराश भया, मत होवे "तिसका तूं" ऐसे विकार विकारिभाव औ अंशांशिभाव सम्बन्ध से अन्वय, पुनः बाध, अध्यास, विशेषण, एकता, भेद से चार प्रकार की समानाधिकरणता में स्तोतव्य स्तावकभाव सम्बन्धों विषे प्रथम तीनों में ही काहू एक के बनने से वाक्य को अखण्ड

तूँ इंद्र तूँ कर्ण सो अहे । या सम स्तुतिको नहिं कहे ।
यह कुमार पावक पहिचान । या सम सादृश्यपर नहिं मान ।।१२१।।
कार्य कारण भाव जो अहे । घट माटी सम याहि न कहे ।
ना यह जाति व्यक्ति पुनि अहे । गोखंड सम ताते वह नहे ।।१२२।।
गुण अरु गुणी न भाखे सोई । नील कमल सम काहे होई ।
उपासन पर यह वाक्य न कहे । मूर्त्ति हरि ज्यों ताते नहे ।।१२३।।
राजपुरुष राजो यह हइये । त्यों उपचारक ना यह पइये ।
क्रम कर सकल पक्ष के माहीं । जे दूषण भाखौं अब ताहीं ।।१२४।।

(अर्थ) बोधकता रूप एक समानधिकरणता नहीं बने ? तहां कहे "और" इति ।। १२० ।।

जीव ईश्वर के स्तोतव्य स्तावक भाव, उपमानोपमेय भाव, उपादानोपादेयभाव रूप कार्य कारणभाव, जाति व्यक्तिभाव, गुण गुणिभाव, उपास्योपासकभाव उपचार्योंपचारकभाव रूप और सम्वन्धों के क्रम ते निराकरण का आरम्भ करे "तूँ इन्द्र" इति, या सम—"तूँ इन्द्र" इत्यादि वाक्यवत्, या सम–उपमानोपमेयभाव सम्वन्ध वाले "कुमार अग्नि है" इस वाक्यवत् ।। १२१ ।।

घट माटी सम नाम "घट मृत्तिका है" इस वाक्यवत्, गोखण्ड सम ताते वह नहे कहिये जाति व्यक्तिभाव बोधक खण्ड व्यक्ति, समवाय-सम्वन्ध से गोत्व जाति वाली है, ऐसे अर्थ वाले गोखण्ड वाक्यवत् "तत्त्वमसि" जाति व्यक्तिभाव का बोधक नहीं, "एक सीधे दूसरे टेढ़े सींग वाली का नाम खण्ड है" ।। १२२ ।।

नील कमल सम नाम नील कमल वाक्यवत्, मूर्ति हरि ज्यों ताते नहे नाम "शालिग्राम विष्णु है" इस उपासना पर वाक्यवत् उपासना बोधक नहीं ।। १२३ ।।

त्यों उपचारक ना यह पइये कहिये राजा पुरुष विषे "यह पुरुष राजा है" इस वाक्यवत् काहू बात से न्यून को अधिक की समानता रूप उपचार का प्रतिपादक नहीं, पूर्व सबको नहीं नहीं कही प्रतिज्ञा की सिद्धि हेतु कहे "क्रम" इति ।। १२४ ।।

अब तत्त्वमस्यादिमहावाक्यों में सप्त प्रकार के संसर्गार्थं की अनुपपत्ति का विस्तारपूर्वक प्रदर्शन।

अथ 'स्तोतव्यस्तावकभाव' प्रथम संसर्ग के निषेध का प्रदर्शन।

चौपाई

सिद्धान्ती—

स्तुति सु होवे ताकर तहाँ। भेद होय जाको पुनि जहाँ।
ज्यों नर की कोउ स्तुतिं करै। सुरपति नाम ताहि को उचरै ॥१२५॥

'सदेव सोम्य' एक यह अहे। या विध दूसर कोइ न अहे।
ऐतदात्म्य सकल पछानो। याहि विषे संशय नहिं आनो ॥१२६॥

प्रथम स्तोतव्य स्तावक भाव की असिद्धि कहे "स्तुति" इति, कही बात को उदाहरण में घटावे "ज्यों" इति, जिस प्रकार राजा की कोई पुरुष प्रशंसा करता हुआ राजा को इन्द्र नाम कर कहे है तहां इन्द्र को राजा से भिन्न होने कर इन्द्र से राजा की स्तुति बने है, तैसे जीव से इश्वर का भेद हो तब तो ईश्वर से जीव की स्तुति बन जावे, पुनः इहां तो, जीव परमात्मा से भिन्न नहीं, सच्चिदानन्द रूप होने ते, परमात्मवत्, इत्यादिक अनुमानों से, पुनः सर्वाद्वैत बोधक "एकमेवाद्वितीयम्" इत्यादिक श्रुतियों से तिनका भेद नहीं बने, याते कैसे होवे ॥ १२५ ॥

अर्थ ते "सदेव सोम्पेदमग्र आसीत्" इत्यादि श्रुतियां पढ़ता हुआ कही बात को स्पष्ट करे "सदेव" इति, हे सौम्य! यह चराचरात्मक सभी जगत् उत्पत्ति ते पूर्व, सदेव कहिये सत् के साथ तादात्म्य भावापन्न ही होता हुआ, या विध कहिये इस प्रकार कहता हुआ वेद दूसरे काहू को नहीं कहे किन्तु सर्व को एतद् रूप ही कहे है, अर्थ ते याही बात का प्रतिपादक "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" यह श्रुति पढ़े ऐतदात्म्य सकल पछानो कहिये सर्व को आत्म रूप जानो। ननु "नाहं ब्रह्म" घट पट नहीं इत्यादि प्रत्यक्षों से भेद प्रतीत होने कर सर्व को आत्म रूपता में हम को संशय है? तहां कहे "याहि विषे" इति, एतद् रूपता विषे संशय नहिं आनो कहिये एतद् रूप है कि नहीं, ऐसे सन्देह मत करो ॥ १२६ ॥

जीव सु ईश निखिल को भेद। श्रुति निवारे कहे अभेद।
भेद बखाने श्रुति विरोध। ताही को, नीके उर शोध ॥१२७॥

"नाहं ब्रह्म" इत्यादि प्रत्यक्षों से भेद भान ते संशय कैसे न करे? तहां कहे "जीव" इति, "श्रुति निवारे" पूर्व के संग कर, जीव ईश का औ निखिल नाम जीव जीव का, पुनः जीव जगत् का औ परस्पर जगत् का भेद नाम जुदाई, श्रुति निवारे कहिये "एकमेवाद्वितीयम्" श्रुति क्रम से सजातीय विजातीय स्वगत भेद का निषेध कर सर्वाभेद कहती हुई निराश करे है, और निराश कर "कहे अभेद" कहिये अभेद कहे है, याते जो भेद कहे, श्रुति का विरोध, ताही को नाम तिस भेद कहने वाले को ही होवे है यह निर्णय करो। यद्यपि "नाहं ब्रह्म" ऐसे जीव ईश का पुनः "जीव नहीं घट" ऐसे जीव जगत् का, पुनः "घट पट नहीं" ऐसे पस्पर जगत् का भेद सिद्ध करने वाले प्रत्यक्षों के विषयों का भेद भान होवे है, अभेद नहीं, याते श्रुति का "एक अद्वितीय राजा कथनवत् औपचारिक अद्वैत कहने में तात्पर्य है तैसे ही पुनः महावाक्य तात्पर्य है यह आशंका होवे है, तथापि "नाहं ब्रह्म" इत्यादिक ज्ञानों का, पुनः तिनके विषयों का भेद सिद्ध करने वाला कोई ज्ञान है? वा नहीं? इन विकल्पों में प्रथम माने ज्ञान विषयों का भेद सिद्ध करता और, पुनः ता ज्ञान औ ताके विषयों के भेद सिद्ध करता और ऐसे आगे आगे माने अनवस्था होवेगी या भय ते दूसरा मानो, तब "घट पट नहीं" इत्यादिक ज्ञानों के घट पट भेद रूप विषयों साथ ज्ञान के भेद को सिद्ध करने वाले प्रमाण बिना ज्ञान विषयों का अभेद सिद्ध होवे है, पुनः तिनों साथ अभिन्न भये ज्ञान का भी घट पट भेद रूप विषयों के अभेद बिना घट के साथ अभिन्न ज्ञान, पट के साथ अभिन्न नहीं होवेगा, याते विषयों का भी अभेद मानना इस अर्थापत्ति प्रमाण ते सर्व का अभेद सिद्ध भये सिद्ध हुआ श्रुति सर्व का अभेद बोधन करे है यह कथन। किञ्च भेदवादी को यह भी पूछा चाहिये जो घट का भेद घट से भिन्न में रहे है? वा अभिन्न में रहे है? भिन्न में रहे है ऐसे कहे तब जिस भेद कर घट के भेद वाले में भिन्न कथन होवे हैं वह भेद भी काहू भेद कर भिन्न में रहे है वा अभिन्नमें रहे है? इन विकल्पों में प्रथम माने अनवस्था होवेगी अनवस्था के भयकर अभिन्न में रहे है यह माने, तब जहां भेद रहे है तहां भिन्न कथन होने ते, "घट

जाते भेद न दोनों केरो। ताते स्तुति पर नहिं हेरो।

(इति स्तोतव्यस्तावकभाव प्रथम संसर्ग खण्डनम्)

अथ उपमानोपमेयभाव द्वितीय संसर्ग के निषेध का प्रदर्शन।

चौपाई

सिद्धान्ती—

गुण, अवयव, अरु क्रिया, समान। जाके जासों सो सम जान ॥१२८॥
गुण, अवयव, क्रिया, कछु नाहीं। वेद वखानी ताके माहीं।
निर्गुण निरावयव वह कहे। अणु अपि क्रिया ताहि नहिंसहे १२९
ता विन सादृश्य कैसे होई। ताते सादृश्य पर नहिं सोई।
कुमार अग्नि सम वाक्य सु नाहीं। अखंड अर्थ है याके माहीं ॥१३०॥

(इति 'उपमानोपमेयभाव' (सादृश्यात्मक) द्वितीय संसर्ग खण्डनम्।)

भिन्न पट है" कथनवत् जो घटादिक पदार्थ अपने से आप अभिन्न है तिनमें भी "घट से घट भिन्न है" यह कथन हुआ चाहिये औ होवे नहीं, याते कहे दोषों से भेद को दूर होने से सिद्ध हुआ श्रुति सर्व का वास्तविक अभेद बोधन करे है औ "नाहं ब्रह्म" इत्यादिक प्रत्यक्ष औ भेद प्रतिपादक श्रुतियां औपाधिक भेद सिद्ध करे है याही ते विषयों को भिन्न होने ते आविद्यक भेद बोधन करने वाले प्रत्यक्षादिकों साथ श्रुति का विरोध नहीं, यह सार है ॥ १२७ ॥

समाप्ति करे "जाते" इति, मत बनो स्तोतव्य स्तावक भाव सम्बन्ध, उपमानोपमेय भाव से ही जीव ईश की महावाक्य समानता वोधन करे है ? तहां कहे "गुण" इति, गुण, अवयव, क्रिया, यह तीन वस्तु लिखा है क्रम ते, "अलसी पुष्प सदृश विष्णु है" "गो सदृश गवय है" "वायु जैसा अश्व है" इन तीनो उदाहरणों में जाके कहिये जिन विष्णु आंदिकों के जासो नाम अलसी पुष्प आदिकों के सम है सो आपस में समान कहावे है ऐसे जानो ॥ १२८ ॥

इहां पुनः गुणादि रूप समानता जीव ईश में वेद विषे मानी नहीं सोई कहे "गुण" इति, गुणादिक नहीं कहे, तो क्या कहे है ? तहां कहे "निर्गुण" इति, अणु अपि क्रिया ताहि नहिं सहे कहिये किञ्चिद् भी क्रिया जीव ईश्वर में नहीं सहारे ॥ १२९ ॥

औ गुण क्रिया आदिकों बिना सादृश्य नहीं बने सोई कहे "ता बिन"

अथ कारणकार्यभावात्मक तृतीय संसर्ग के निषेध का प्रदर्शन ।

चौपाई

निरावयव जाते वह हइये । आरम्भकत्व ताते नहिं पइये ।
एक देश वा सकलो होई । कहु परिणामी किह विधि सोई ।।१३१।।

प्रथमे होय सावयव स्वरूप । द्वितीय शुद्ध न ताको रूप ।
वाद संघातादिक हैं जे ते । सकल असंगत भाखे तेतें ।।१३२।।

इति, ताते नाम कहे दोषों ते, समाप्ति करे "कुमार" इति, कुमार अग्नि सम—रक्तता रूप समानता को लेकर "बालक अग्नि है" ऐसे बालक को अग्नि समानता बोधक वाक्यवत् महा वाक्य समानता बोधक नहीं, किन्तु अखण्ड अर्थ है जाके माहीं नाम महा वाक्य में संसर्गता विशिष्टता हीन अर्थ अखण्ड है ।। १३० ।।

मत रहो उक्त दोषों ते उपमानोपनेयभाव, कार्य कारण भाव ही कहे है? यह आशंका कर, वह भी निमित्त निमित्ती के असम्भव ते उपादानोपादेय भाव ही कहना होवेगा वामें पुनः मत भेद ते आरम्भ परिणाम, संघात, यह तींन पक्ष है इहां तीनों नहीं बने यह क्रम ते निराकरण करे "निरावयव" इति, आरम्भकत्व–परमाणुभूत अवयवों को द्व्यणुक आदिकों की आरम्भकतावत्, अवयव हीन ईश को जीव का आरम्भकपना नहीं प्राप्त होवे, ननु मत बनो आरम्भक, परिणामी उपादान कहे है? तहां कहे "एक" इति ।। १३१ ।।

आदि में दोष कहे "प्रथमे" इति, प्रथमे होय सावयव स्वरूप कहिये एक देश में परिणाम माने एक अवयव कथन को अन्य अवयव सापेक्ष होने ते, सावयव ही होवेगा ऐसे भये सावयवी को घटवत् अनित्यता होवेगी याते सर्वदेश से मानो, तब शुद्धता दूर होवेगी यह कहे "द्वितीय" इति, सर्वदेशों से विकारता को प्राप्त भये को शुद्धता अर्थात् निर्विकारता नहीं रहेगी, संघात होवो? यह आशंका कर, तीनों को खण्डन कर आये है यह कहे "वाद" इति, "आदि" शब्द से आरम्भ परिणाम लेने ।। १३२ ।।

ताते कार्य कारण भाव । वाक्य न कहे अखण्ड स्वभाव ।

(इति कार्य कारण भाव (विकार विकारिभावात्मक) तृतीय संसर्ग खण्डनम्)

अथ जातिव्यक्तिभाव चतुर्थ संसर्ग के निषेध का प्रदर्शन ।

चौपाई

जीव रूप व्यक्ति के माहीं । ईश्वर जाति कदाचित् नाहीं ॥१३३॥
जे ताको कोय जाति बखाने । गोत्व समान जड़ं तिहँ माने ।
ताते होय अनीश्वर जावे । ईश्वर नाम न सो कहलावे ॥१३४॥
ईश्वर सर्व सु ज्ञाता अहे । गोत्व समान कथं तिहँ कहे ।
याते जाति व्यक्ति नहिं कहे वाक्य अखण्ड अर्थ इक अहे ॥१३५॥

(इति जातिव्यक्तिभाव चतुर्थ संसर्ग खण्डनम्)

अथ गुण-गुणीभाव 'पञ्चमसंसर्ग' निषेध का प्रदर्शन ।

चौपाई

गुण अरु गुणी न वाक्य बखाने । काहे वाक्य कदर्थन ठाने ।
जीव जबै ईश्वर गुण होई । तब संसारी ईश्वर सोई ॥१३६॥

ताते—आरम्भ आदिकों की असिद्धि ते कार्य कारण भाव को वाक्य नहीं कहता, किन्तु अखण्ड स्वभाव नाम अखण्ड रूपता को कहे है, भेद वादी मत में जीवों को अनेकता का अंगीकार है याते अनेकों में एक रूप जाति की योग्यता ईश्वर में मान कर कहे "जीव" इति ॥ १३३ ॥

मानते को बाधक कहे "जे ताको कोय" इति, जड हुआ घटवत् अनीश्वर होवेगा सोई कहे "ताते" इति, ताते नाम जड़ होने ते ॥१३४॥

"वाक्य" पूर्व के साथ अन्वय कर, याते नाम कही रीति से ईश्वर को अनीश्वरता की प्राप्ति ते वाक्य जाति व्यक्तिभाव का बोधक नहीं, किन्तु अखण्डार्थ है ॥ १३५ ॥

काहे वाक्य कदर्थन ठाने कहिये अभेद में तात्पर्य वाले वाक्य को गुण गुणिभाव में लगाकर निन्दा काहे करे है, गुण गुणिभाव मानते प्रति जीव ईश्वर का गुण है ? वा ईश्वर जीव का गुण है ? यह विकल्प कर प्रथम में दोष कहे "जीव" इति, जीव जेकर ईश्वर का गुण होवे तब संसारी गुण के साथ अभिन्न होने ते ईश्वर भी जीववत् संसारी नाम संसार वाला होवेगा, संसार नाम जन्म मृत्युके प्रवाह का है ॥ १३६ ॥

जीव विशिष्ट होय अल्पज्ञ । काहे वेद कहे सर्वज्ञ ।
जो पुनि ईश जीव गुण होई । तो संसार न याको कोई ॥१३७॥
नित्यमुक्त यह प्राप्त सु अर्थ । याप्रति वेदकदंब सु व्यर्थ ।
इत्यादिक दूषण ते हाने । निर्गुण श्रुति कोप पुनि ठाने ॥१३८॥
नील कमल सम ताते नाहीं । अखंड अर्थ है याके माहीं ।

(इति गुण-गुणीभाप पञ्चम संसर्ग खण्डनम्)

अथ उपास्य उपासकभाव षष्टसंसर्ग के निषेध का शंका
समाधानपूर्वक सविस्तार प्रतिपादन ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

प्रतिमा को ज्यों ईश्वर जान । करे उपासन बहु उरमान ॥१३९॥

पुनः जीव विशिष्ट हुआ अल्पज्ञ होवेगा सोई कहे "जीव" इति, अल्पज्ञता में इष्टापत्ति मानते को कहे "काहे" इति, दूसरे में दोष कहे "जो पुनि" इति, "नित्य मुक्त" यह पूर्व साथ मिलाकर, जेकर पुनः ईश्वर जीव का गुण कहो तब नित्यमुक्त के साथ अभिन्न होने ते यह नित्यमुक्त होवेगा ॥ १३७ ॥

ऐसे भये, या प्रति—नित्यमुक्त की प्राप्ति, अर्थ नाम नित्यमुक्ति की प्राप्ति निमित्त जो वेद कदम्ब कहिये वेद समुदाय सो सब व्यर्थ होवेगा इत्यादि दूषण ते हाने नाम इत्यादिक दूषणों ते यह संसर्ग नहीं बने पुनः और भी दोष कहे "निर्गुण" इति, निर्गुण श्रुति कोप पुनि ठाने कहिये निर्गुणभूतप्रतिपाद्य वस्तु के अभाव ते निर्गुण प्रतिपादक श्रुति व्यर्थ होवेगी ॥ १३८ ॥

ताते नाम कहे दोषों ते गुण गुणिभाव प्रतिपादक "नील कमल" वाक्यवत् यह महा वाक्य गुणगुणीभाव संसर्ग का बोधक नही, किन्तु याके माहीं कहिये महावाक्य में अर्थ अखण्ड है, इहां यह भाव है= व्यधिकरणता समानाधिकरणता भेद से परस्पर पदों का अन्वय दो प्रकार (का) होवे है, व्यधिकरणता समानाधिकरणता दोनों में, "प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले पदों का भिन्न भिन्न अर्थों में वर्तना व्यधिकरणता कहिये है" "प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले पदों का एक अर्थ में वर्तना

समानाधिकरणता कहिये है" जिस वाक्य को सुन के पदार्थों का भेद भासे तहां प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले पदों का भिन्न-भिन्न अर्थों में वर्तना रूप व्यधिकरणता से अन्वय कहिये है, जैसे "देवदत्तस्य दासः" यह वाक्य सुन के देवदत्त औ दास का स्वामि सेवकभावभेद भासे है, याते इहां "देवदत्तत्व" औ "दासत्व" रूप प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले "देवदत्तस्य" पद का औ "दासः", पद का "देवदत्त सम्बन्ध वाला दास है" ऐसे देवदत्त और दास रूप भिन्न-भिन्न अर्थों में वर्तना रूप व्यधिकरणता से अन्वय होवे है। जिस वाक्य को सुन के पदार्थों का अभेद भासे तहां प्रवृत्ति निमित्त के भेद वाले पदों का एक अर्थ में वर्तना रूप समानाधिकरणता से अन्वय होवे है, सो समानाधिकरणता गौण, मुख्य, भेद से दो प्रकार की है "काहू रीति के संसर्ग में पर्यवसान वाली गौण है" "अखण्ड रूप अभेद में पर्यवसान वाली मुख्य है" याते मुख्य में प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले होकर पदों का एक अर्थ में वर्तना रूप लक्षण का अंश मुख्य घटे है, गौण में ताका उपचार है, सो गौणसमानाधिकरणता बाध, अध्यास, विशेषण, भेद से पुनः तीन प्रकार की है बाध आदिक तीनों में "पूर्व उपजे मिथ्या ज्ञान के विषय का उत्तर उपजे यथार्थ ज्ञान से अभाव बाध कहिये है" जैसे मन्द अन्धकार में स्थाणु को चोर रूप जानकर भय ते पुरुष को कोई "यह चोर स्थाणु है" ऐसे कहे, तहां पूर्व उपजे "यह चोर है" ऐसे मिथ्या ज्ञान के विषय चोर का उत्तर उपजे "यह चोर स्थाणु है" ऐसे यथार्थ ज्ञान से अभाव होवे है, सो बाध कहिये है, आगे वह बाध स्थाणु रूप अधिष्ठान में हुआ है याते चोरत्व, स्थाणुत्व रूप प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले चोर स्थाणु पदों का बाध्यमान चोर वस्तु के अभाव युक्त अधिष्ठान रूप एक अर्थ में वर्तना रूप बाधसमानाधिकरणता कहिये है, अधिष्ठान में अभाव का "स्वरूप" संसर्ग होवे है, याते तामें अवसान वाली होने ते यह गौण है। "तिससे भिन्न में तिसका ज्ञान अध्यास कहिये है" सो दोषज अहार्य भेद से दो प्रकार का है यह मूल में लिखेंगे "इदं रजत है" "गुरु देवता है" "प्राण उद्गीथ है", "रेखा ककार है", "बालक अग्नि है" इत्यादि स्थल में रजतादिकों से भिन्न इदमादिकों में रजतादिकों का ज्ञान अध्यास कहिये है तिस अध्यास में आधार में आरोप्य का तादात्म्य भासे है, याते इदन्त्व रजतत्वादि रूप प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले इदं रजतादि पदों का आधारारोप्य के तादात्म्य रूप एक अर्थ में वर्तना रूप अध्याससमानाधिकरणता है।

सो यह भी तादात्म्य संसर्ग में अवसान वाली होने ते गौण है। "विशेष्य के स्वरूप में प्रविष्ट होकर अविवक्षित अंश की व्यावृत्ति करता हुआ अपने साथ मिले विशेष्य को बोधन करे सो विशेषण कहिये है" "नील कमल है", "गो खण्ड है", "घट मृत्तिका है" इत्यादि स्थल में "नीलादि वस्तु" कमलादि विशेष्य के स्वरूप में प्रविष्ट होकर अविवक्षित रक्तांश की व्यावृत्ति करता हुआ अपने साथ मिले कमलादि विशेष्य को बोधन करे है, याते नीलत्व, कमलत्व, रूप प्रवृत्ति-निमित्त भेद वाले, नील कमल पदों का विशेष्य वाचक कमलादि पद जन्य कमल मात्र के ज्ञान में अविवक्षित रक्तांश के व्यावर्तक विशेषण साथ मिले विशेष्य रूप एक अर्थ में वर्तना रूप विशेषण समानाधिकरणता है, सो यह भी, गुण गुणि-भाव, जाति व्यक्तिभाव, कार्यकारणभाव, आधाराधेयभावादि, संसर्ग में पर्यवसान वाली होने ते गौण है। "संसर्गता विशिष्टता शून्य अबाधित अर्थ अखण्ड कहिये है" प्रतीति ताकी तात्पर्य के अविषय भूत "वाच्यार्थ" अंश के त्याग से होवे है ? वा वाच्यार्थों में स्थित विरोधी अंशो के त्याग से होवे है, याते "सोऽयं देवदत्तः" इत्यादि तत्ता, इन्दता रूप प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले "सोऽयं" देवदत्तादि पदों का तात्पर्य के अविषयभूत तत्ता, इदन्ता, की अंश के त्याग से वा वाच्यार्थों में स्थित परोक्षापरोक्ष देश कालरूप विरोधी अंशों के त्याग से ससंर्गता विशिष्ट शून्य अबाधित अभेद रूप एक अर्थ में वर्तना अखण्ड समानाधिकरणता कहिये है, इहां महावाक्य में वही सम्भवे है काहे ते ? महावाक्य में "तिसका तूं है" ऐसे व्यधिकरणता से पदों का अन्वय नहीं होवे, किन्तु "सो तूं है" ऐसे समानाधिकरणता से होवे है, समानाधिकरणता में भी, "सोऽयं देवदत्तः" "प्रकृष्टः प्रकाशः इत्यादि वाक्यनवत् अखण्ड समाना-धिकरणता से होवे है बाध, अध्यास, विशेषण, से नहीं होवे, इन तीनों से न होना "मूलग्रन्थ" में स्पष्ट होवेगा, जैसे "एक बाध इकशेषहिं होई" इत्यादि पाठ से कहे पूर्व पक्ष का परिहार रूप "कहो बाध इन दोनों माहीं" इत्यादि पाठ से ईश्वर बाध माने वेद उद्यम को व्यर्थता, जीव बाध माने मोक्ष शास्त्र में प्रवृत्ति की असिद्धि, ऐसे बाध का अभाव कहेंगे तथा "प्रतिमा को ज्यों ईश्वर जान" से कहे पूर्व पक्ष का परिहार रूप "उपासन पक्ष दूषण है जोई" आदि पाठ से जब "उपासे" आदि पदों से ध्यानादि विधेय सुन्या जावे तब वाक्य के पदार्थों की एकता में तात्पर्य के अभाव ते कल्पित अभेद से भी ध्यान सिद्ध हुआ, पदों के मुख्य अर्थ के

संकोच को अयोग्य समझ के अध्यास समानाधिकरणता ही मान लेवे सो इहां वाक्य को वस्तु मात्र पर होने ते ध्यानादि सुने नहीं. न सुने माने नहीं जावे, अन्यथा अश्रुत की कल्पना श्रुत का त्याग रूप दोष होवेगा ऐसे अध्यास का अभाव कहेंगे तथा "ननु तब एक अखण्डहिं गायों" से ले पूर्व पक्ष का परिहार "उपजावन पालन संहार" इत्यादि पाठ से कहेगे तथा-हि—उत्पत्त्पादिकर्तृत्व "विशेषण" ईश्वर का तटस्थ लक्षण है, स्वरूप लक्षण नहीं, याते अपने से हीन केवल ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को जनावे है, तासे जीव के लक्षण का अत्यन्त भेद होवे है उत्पत्त्पादि कर्तृत्वविशिष्ट से उत्पत्यादि कर्तृत्व हीन का तादात्म्य नहीं होवे, न होने में बीज यह—एक पद में लक्षणा पक्ष का आगे खण्डन करेंगे औ पद दो में लक्षणा कर स्वरूप लक्षण रूप अत्यन्त अभेद स्थापन किया जावेगा, याही ते भेद सहित अभेद रूप तादात्म्य भी जीव ईश का नहीं सम्भवे, यद्यपि "घटा-काश महाकाश ही है" प्रतीति से जैसे घटाकाश महाकाश का तादात्म्य सम्भवे है, तैसे "त्वं" पद में लक्षणा कर उपहित शुद्ध का तादात्म्य सम्भवे है, पुनः कार्य कारण उपाधियों के तादात्म्य से दोनों उपहितों का भी जलाकाश तरंगाकाशवत् तादात्म्य सम्भवे है, याते "तत्" पद के वाच्यार्थ का "त्वं" पद लक्ष्य से, वा "त्वं" पद वाच्य से तादात्म्य मानने में कोई दोष नहीं और सर्वज्ञता अल्पज्ञता से प्रतीत होता विरोध तो एकता मात्र का विघाती है, तादात्म्य का नहीं, ऐसे न माने अल्पता महत्ता से विरोध ते समुद्र तरंग का भी तादात्म्य नही बनेगा, "यह आशंका" होवे है, तथापि उपाधियों से दूर किये औपाधिक को मिथ्यात्व कथन पूर्वक श्रुतियां अभेद का उपदेश करे है, याते उपाधियों से दूर किये औपाधिक भेद को स्वयं दूर होने ते, औपाधिक भेद सिद्ध तादात्म्य परतः मानना योग्य नहीं और "मृत्युः समृत्युमाप्नोति" इत्यादि श्रुतियों से भेद दर्शन को अनर्थ हेतुता भी सुनी है, याते उपक्रमादि लिङ्गों से अभेद वाक्य के तात्पर्य ते विशेषण समानाधिकरणता नहीं सम्भवे, किन्तु वाध आदिक तीनों के निषेध से अखण्ड ही सम्भवे है यह सार है।

ननु मत कहे वाक्य गुणगुणिभाव, उपास्योपासकभाव सम्बन्ध से उपासना बतावे है? या आशंका के परिहार की प्रतिज्ञा करे "प्रतिमा" इति, बहु उर मान कहिये उपास्यभूत देवता हृदय में मानकर ॥ १३९ ॥

त्योंही जीव ब्रह्म उर माने । करो उपासन ! यों न बखाने ।
जो उपासन वेद बतावे । तो अध्यस्त एकता आवे ॥१४०॥
ताके हैं अब दोय प्रकार । दोषज एक आहार्य धार ।
प्रथमो हइये भ्रांति स्वरूप । द्वितीय मानस क्रिया अनूप ॥१४१॥
शुक्ति रजत भ्रांति उर आनो । भेद भान यामों नहिं मानो ।
भेद ग्रहण दूसर मों होई । इच्छा कर उपजावे सोई ॥१४२॥

त्योंही—शालिग्रामविष्णु वाक्यवत्, "तत्त्वमसि" जीव को हृदय में ब्रह्म मानकर "उपासना करो" ऐसे नहीं कहे, महावाक्य को उपासना परत: में वाधक कहे "जो" इति, जेकर वेद उपासना कहे तब अध्यस्त कहिये अध्यास का विषय रूप कल्पित जीव ईश का अभेद बने सो आगे कहनी रीति से सम्यक् नहीं ॥ १४० ॥

जिस अध्यास का विषय अभेद मानना है प्रथम ता अध्यास के भेद कहे "ताके" इति, दोनों के नाम कहे "दोषज" इति, दोषज एक आहार्य धार कहिये एक अध्यास काचकामलादि दोषों से उत्पन्न होने कर दोषज है, औ दूसरा "यह वस्तु वह नहीं" ऐसा भेद ज्ञान रहे भी "मेरे को यह वस्तु वही भान होवे" ऐसी इच्छा से उत्पन्न होने कर आहार्य है, दोनों में विशेष कहे "प्रथमो" इति, प्रथम जो दोषज अध्यास है सो दोषों से उत्पन्न होने कर "भ्रम" रूप है, औ दूसरा भेदग्रह रहे भी दोषों से बिना इच्छा से (उत्पन्न) होने कर "मानस क्रिया" रूप है ॥ १४१ ॥

उदाहरण में प्रथम का रूप स्पष्ट करे "शुक्ति" इति, शुक्ति रजत कहिये शुक्ति में "इदं रजतम्" ज्ञान को भ्रम रूप जानो, यामों कहिये "इदं रजतम्" ज्ञान में शुक्ति रजत रूप नहीं है" ऐसा भेद ग्रहण मत मानो किन्तु भेद ग्रहण दूसरे में होवे है, सोई कहे "भेद" इति, दूसर मों कहिये आहार्य में, "शालिग्राम विष्णु नहीं" ऐसा भेद ग्रहण होवे है औ भेदग्रह रहे भो सोई नाम आहार्य ज्ञान को पुरुष "शालिग्राम मेरो को विष्णु प्रतीत होवे" ऐसी इच्छा से उपजावे है याते भेदग्रह रहे भी इच्छा से होने कर आहार्य ज्ञान "मानस क्रिया" रूप है, दोषों से जन्य न होने कर भ्रम रूप नहीं ॥ १४२ ॥

सो आहार्य है तीन प्रकार। 'शास्त्रकृत' सांकेतिक' धार।
'गौणाध्यास' तीसरो हइये। बालक अग्नि निदर्शन पइये ॥१४३॥
शेष रहे अब दोय प्रकार। प्रथमेको अब करौं विचार।
'शास्त्रकृत' के दोय प्रकार। अब तिनको मैं करौं उचार ॥१४४॥
'संपत्तिउपास्ति' प्रथमों अहे। प्रतीक उपास्ति दूसरि कहे।
जो गुरु मों नर बुद्धि सु त्यागै। देव जानि ताके पद लागै ॥१४५॥
द्यौ, पर्जन्य, भूमि, के माहीं। और सु पुरुष योषिता माहीं।
द्यौ, आदिक की बुद्धि उठावे। अग्निबुद्धि कर ताको ध्यावे ॥१४६॥
यह 'संपत्ति' उपासन गाई। अब 'प्रतीकहि' देहुँ दिखाई।
ज्यों यह मुख्यप्राण के माही। जान उद्गीथ उपासे ताहीं ॥१४७॥

सो—पूर्व कहे स्वरूप वाला, तीनों के नाम कहे "शास्त्रकृत" इति, सूची कटाह न्याय से प्रथम तीसर का ही उदाहरण कहे "बालक" इति, "बालक अग्नि है" यह गौणाध्यास का, निदर्शन पइये नाम उदाहरण जानिये ॥ १४३ ॥

प्रथमें को—शास्त्र कृत को, विचार कहे "शास्त्रकृत" इति, तिनकों—दो प्रकारों को ॥ १४४ ॥

दोनों के नाम कहे "सम्पत्ति" इति, "आरोप्य के आश्रय का अपना रूप छिपाकर आरोप्य रूप कर चिन्तन करना सम्पत्ति का स्वरूप है" जैसे "गुरु को देवता जाने" या स्थान में देवतापने आरोप्य के आश्रय गुरु का, अपना मनुष्यपना रूप छिपाकर आरोप्य—देवतापने से चिन्तन होवे है ॥ १४५ ॥

ऐसे द्यौ आदिको में जान लेना सोई कहे "द्यौ" इति, द्यौ—स्वर्ग, पर्जन्य-मेघ, योषिता—स्त्री, सम्पत्ति का स्वरूप सूचन करे "द्यौ" इति, ताको—पांचो को ॥ १४६ ॥

समाप्ति करे "यह" इति, सम्पत्ति दिखाकर प्रतीक के स्वरूप की प्रतिज्ञा करे "अब" इति, "आरोप्य वस्तु के सहित आरोप्य के आश्रय की प्रधानता कर उपासना प्रतीक है, सो अब मैं दिखाय देता हूँ उदाहरण में प्रतीक का रूप दिखावे "ज्यों" इति, ज्यों नाम जिस प्रकार गौण प्राण इन्द्रियों की अपेक्षा कर वायु रूप मुख्य प्राण में, जान उद्गीथ नाम ओम्

ज्यों रेखामें याहि ककार । यह 'सांकेतिक' करे उचार ।
अध्यास प्रकार अहे पुनि जेते । कर संक्षेप कहे मैं तेते ॥१४८॥

रूप जानकर उपासना करे वेद में ऐसा कह्या है याते यह इस (जिस) रीति से प्रतीक है सोई बृहदारण्यक उद्गीथ ब्राह्मणोक्त गाथा से दिखावे है— क्षेत्रज्ञ की तामस वृत्तियां असुर है, सात्त्विक वृत्तियां सुर हैं तिन देव असुर परस्पर तामस वृत्तियों की प्रबलता में सात्त्विक वृत्तियों कीं न्यूनता, औ सात्त्विक वृत्तियों की प्रबलता में तामस वृत्तियों की न्यूनता इस प्रकार स्पर्धा है, याते "देवता सामवेद के भाग विशेष रूप उद्गीथ कर असुरों का जय करेंगे" यह चित्त में धार कर वाणी, प्रांण, चक्षु:, श्रोत्र, मन, को कहते हुये "तुम हमारा गायन करो" तब वह वाणी आदिक "तथास्तु" कह कर गायन कर्म में प्रवृत्त भये तिन-गायन कर्तों को देख के असुर, इन कर हमको देवता जीत लेवेंगे यह समझ कर तिनको ताड़ना करते हुए और वह ताड़ित हो गये, इस ते वाणी आदिको की निन्दा करके मुख्य— प्राण को कहते हुए "तूं हमारा गायन कर," तब यह बात श्रवण कर "तथास्तु" कह के प्राण गायन करने लगा वह पुन: असुर वाणी आदिकों समान प्राणों का भी तिरस्कार करेंगे यह समझ कर इनको ताड़ना करने को उदित हुए आप ही पाषाण में लगकर खड्गवत् कुण्ठित हो गये इस ते प्राणों को वेद ने "ओम् रूप से उपास्यता दिखाई है, याते मुख्यप्राण में ओम् को उपास्यता सिद्ध होने ते आरोप्य ओम् के सहित आरोप्य के आश्रय मुख्य प्राण की प्रधानता कर प्रतीक उपासना है, उद्गीथ सामवेद के काहू भाग का नाम है ता ओङ्कारआदि अनेक वर्ण समुदाय रूप भाग में प्रविष्ट ओम् को उपास्यता कहने से उद्गीथ की उपासना, पट के एक देश का दाह भये "पटदग्ध हुआ" कथनवत् कही, याते इहां उद्गीथ नाम ओम् का है ॥ १४७ ॥

"इस वस्तु का यह नाम है, ऐसी मर्यादा को संकेत कहै है" तिस द्वारा प्रतीत होने वाली वस्तु "सांकेतिक" कहावे है उदाहरण से ताको कहे "ज्यों" इति, ज्यों रेखा में याहि ककार कहिये जैसे "क" ऐसी रेखा में "यही रेखा ककार है" ऐसे कहे हैं याते यह सांकेतिक करे उचार कहिये याको सांकेतिक कथन करे है। समाप्ति करे "अध्यास" इति ॥ १४८ ॥

उपासन पक्ष दूषण हैं जोई। अब मैं प्रकट बखानों सोई।
वाक्य उपासन पर है जहाँ। विधायक शब्द कहे श्रुति तहाँ।।१४९।।
'वाचंधेनु' उपासन करे। यह 'मन ब्रह्म' उपासन धरे।
'अदित्यो ब्रह्म' उपासे नीत। इत्यादिक ता पर धर चीत।।१५०।।
विधायक शब्द न याके माहीं। उपासन पर ताते यह नाहीं।
उपासन के प्रकरणन माहीं। महावाक्य यह पठ्यो नाहीं।।१५१।।
जे यामों को भाखे ध्यान। सुने अर्थका ता मत हान।
अनसुन अर्थ का कल्पन करे। इत्यादि दूषण उर धरे।।१५२।।

दोहा

आतम विद्या जहँ कही, तहाँ न भाषे ध्यान।
'तत्त्वमसि' इस वाक्य में, भई उपासन हान।।१५३।।

अध्यास पक्ष की असिद्धि बोधन हेतु कहे "उपासन" इति, सोई–दूषण। श्रुत हानि अश्रुत कल्पनापत्ति रूप दोष कहने हेतु भूमिका रचे "वाक्य" इति, विधायक शब्द नाम विधान करते पद लिङ्गादि।।१४९।।

कह्या नेम उदाहरणों में दिखावे "वाचम्" इति, इत्यादिक ता पर धर चीत कहिये उपासन पर चित्त रखकर वाक्य, "करे" धरे "उपासे" इत्यादिक उपासना विधि-विधान कर्ता पद कहे हैं।। १५०।।

औ महा वाक्य में विधायक शब्द है नहीं, याते यह उपासना पर भी नहीं यह कहे "विधायक" इति, ताते—विधायक शब्द के अभाव ते। ननु मत रहो या वाक्य में विधायक पद प्रकरण के विधायक पद कों लेकर उपासना परतः सिद्ध होवे है? यह आशंका कर, होवे यह बात जब महा वाक्य उस प्रकरण में पढ़ा होवे यह कहे "उपासन" इति।। १५१।।

पढ़े बिना जोराबरी उपासना परतः अंगीकार करने वाले को न सुने ध्यान की कल्पना, औ सुने अखण्डअर्थ का बाध दोष कहे "जे" इति, यामों—महावाक्य मों, इत्यादिक–इहां आदि शब्द से आगे कहने "अरु क्रिया फल होवे जोई" से लेकर दोष जान लेने।। १५२।।

आतम विद्या प्रकरण में ध्यान न कहने से वाक्य को उपासना परतः नहीं, यह समाप्ति करे "आतम" इति।। १५३।।

अब पूर्वपक्षी अश्रुतार्थ की कल्पना रूप दोष का उद्धार करता है।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु आतम इत्येव उपासे। श्रोतव्य तिहँ वेद प्रकाशे।
'मंतव्य' वह आतम अहे। 'निदिध्यासितव्य' श्रुति कहे ॥१५४॥
यों आतम विद्याके माहीं ध्यानादिक सब सुनिये ताहीं।
अश्रुत नहिं कछु कल्पन कियो। काहे उपालंभ मुहिं दियो ॥१५५॥

सिद्धान्ती—

याहि श्रुति का सुनो विचार या हित ध्यान करे सो उचार।
द्रष्टव्य एक आत्मा अहे। या विधि श्रुति उद्देश्यहि कहे ॥१५६॥
ता हित साधन करे विधान। श्रवण, मनन, निदिध्यासन, जान।
साधन की विधि तामो हइये। महावाक्य मों नहिं विधि पइये १५७

असुने अर्थ की कल्पना आदिक दोषों को वारण हेतु आत्म विद्या प्रकरण में ध्यान-प्रतिपादक श्रुति वाक्य कहे "ननु" इति, आत्मा की उपासना करे. श्रोतव्य तिह वेदप्रकाशे कहिये "तिस आत्मा को श्रवण कर" ऐसे वेद कहे है ॥ १५४ ॥

यों नाम इस रीति से, आत्म विद्या प्रकरण विषे ताहीं कहिये ता आत्मा के ध्यानादिक नाम निदिध्यासन श्रवण मनन यह सभी सुने जावें हैं, याते हमने असुन्या ध्यान नहीं कल्पना किया ॥ १५५ ॥

श्रुति तात्पर्यानभिज्ञ पूर्वपक्षी को सिद्धान्ती मित्रभाव से समझावे "याही" इति किस वास्ते ध्यान कहे है ? तहां कहे "द्रष्टव्य" इति, एक आत्मा नाम अपना आप द्रष्टव्य कहिये दर्शन करने योग्य है, ऐसे आत्मा के दर्शन का श्रुति उद्देश्यहिं कहें कहिये नाम लेवे है ॥ १५६ ॥

औ नाम लेकर, ताहित कहिये आत्मा के दर्शन वास्ते अर्थात् आत्मा के साक्षात् वास्ते, साधन करे विधान कहिये "श्रोतव्य" इत्यादिक पदों से श्रवण मनन निदिध्यासन साधनों का जानो विधान करे है, याते तामों कहिये श्रुतिमों श्रवणआदिक साधनों की अपूर्व वा परिसंख्या वा नियमविधि है औ महावाक्य में विधि है नहीं, इहां यह भाव है=जो वस्तु पुरुष प्रयत्न साध्य होवे है तामें "तृप्ति कामना वाला पुरुष पाक

करे" ऐसे पाकक्रियावत् विधान होवे है, और में नहीं होवे, याते ज्ञान में विधि नहीं बने, काहे ते ? भाद्रचौथ के चन्द्र साथ नेत्र का सम्बन्ध होने से निषेध हजार से भी चन्द्र का ज्ञान हटे नहीं, और प्रमेय साथ प्रमाण का सम्बन्ध न होने से विधि सहस्रों से भी ज्ञान होवें नहीं, इस रीति से पुरुष प्रयत्नासाध्य ब्रह्मज्ञान में विधि नहीं वने, किन्तु अनेक श्रुतियों से सिद्ध ज्ञान का "द्रष्टव्य" पद से अनुवाद करके ताके हेतु "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः" यह श्रुति श्रवणादिक साधनों का अपूर्व वा नियम वा परिसंख्या रूप विधान करे है, तथाहि—अपूर्वादिक तीनों में "अत्यन्त अप्राप्त वस्तु को विधि अपूर्वविधि कहिये है" जैसे वेद से जनाये बिना याग पुरुष को अत्यन्त अप्राप्त है याते ताकी "स्वर्गकामो यजेत" यह अपूर्व विधि है, तैसे वेदान्त श्रवण करते भी अनेक पुरुषों को अपरोक्षज्ञान न देखने से "वेदान्तश्रवणसत्वे ज्ञानसत्वं" "वेदान्तश्रवणाभावे ज्ञानाभावः" ऐसा अन्वयव्यतिरेक श्रवण को ब्रह्म अपरोक्षज्ञान कारणता में प्रमाण नहीं, याते और प्रमाणों से अत्यन्त अप्राप्त श्रवण में ब्रह्म अपरोक्षज्ञान साधनता की अपूर्व विधि है, ऐसे "प्रकटार्थकार" कहें हैं। "जहां दो में प्राप्त का एक में नियम करे तहां नियमविधि होवे है" जैसे "यज्ञहेतु व्रीहियों के तुष उतारे" ऐसे वेद विधि है तहां धानों के तुष उतारने नख और मूसल दोनों से प्राप्त हैं याते धानों के तुष उतारने में प्रवृत्त भया पुरुष बिनाश्रद्धा पक्ष में प्राप्त भी मूसल से तुषों का उतारना छोड़कर नखों से तुष उतारने में प्रवृत्त मत होवे, इस वास्ते मूसल से तुष उतारने की नियम विधि है, तैसे इहां भी वेदान्त श्रवण को मुख्य अपरोक्ष ब्रह्म साक्षात्कार में हेतुता की नियम विधि है, सोई दिखावे है—जेकर "जो इन्द्रियजन्यज्ञान होवे सोई अपरोक्ष होवे है" ऐसे अपरोक्षज्ञान में इन्द्रिय को हेतुता होवे तब तो वेदान्त वाक्यन को ब्रह्मापरोक्ष में हेतुता न प्राप्त होने से श्रुति में श्रवणादिकों की अपूर्व विधि ही मान लेवें, सो तो बात नहीं, किन्तु ज्ञान की अपरोक्षता में, अपरोक्षबस्तुविषयक होना हेतु है, याते "तूं दशमा" इस वाक्यवत् अपरोक्ष ब्रह्मवस्तु के ज्ञानजनक वेदान्तवाक्यन को साक्षात्कार हेतुता अन्वय व्यतिरेक से प्राप्त है, अत्यन्त अप्राप्त नहीं, औ अंगीकृत ब्रह्म श्रवण वाले पुरुष को भी श्रवणसत्वे अपरोक्ष ज्ञानाभाव कह्या सो प्रतिबन्ध बशते है ताते सूक्ष्म बुद्धि से ब्रह्म साक्षात् होवे है इत्यर्थक "दृश्यते त्वग्रया बुद्धया" इस वाक्य से एकाग्र चित्त को ब्रह्म साक्षात् में करणता

अरु क्रिया फल होवे जोई । सकल अनित्य जगत मों सोई ।
उपासन मानस क्रिया स्वरूप । ताको फल जो मोक्ष अनूप ॥१५८॥
सो अब होय अनित्यहि जावे । मुक्त पुरुष पुनि बंधन पावे ।
बंधन पाय अनर्थ सु जेते । आये याहि पक्ष मों तेते ॥१५९॥
ताते तेरो पक्ष असार । काहे पुनि पुनि करे उचार ।
यों नहिं वाक्य उपासन कहे । अखंड अर्थ बिन और न अहे ॥१६०॥

की आशंका से वेदान्त श्रवण में प्रवृत्त भया जिज्ञासु वेदान्त श्रवणवत् चित्त की एकाग्रता में ही प्रवृत्त मत हो जावे इस वास्ते नखों से तुष उतारननिवारक वाक्यवत् "तत् त्वमौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" इत्यादि ब्रह्म को उपनिषद्भूत एक प्रमाणगम्यता बोधन करने वाले वाक्यन से वेदान्त श्रवण ही कर्तव्य है, और नहीं, ऐसे यह श्रोतव्य नियम विधि है ऐसे "विवरणानुसारी" कहे हैं और "अनेकों में प्राप्त का क्वचित् विधान की परिसंख्या विधि कहिये" जैसे "पांच नखों वाले पांच भक्षण करने" इस विधि वाक्य ने सर्व पञ्च नखों वालों का भक्षण पाया शश, शल्यक, गोह, गैंडा, कच्छप यह पांच ही पांच नख वाले खाने यह विधान करिये है यह "परिसंख्या विधि" है, तैसे इहां भी औषधि के ज्ञान हेतु चिकित्सा ग्रन्थो में प्रवृत्त-पुरुष की बीच में नक्षत्रों के ज्ञानार्थ ज्योतिष में प्रवृत्तिवत् वेदान्त श्रवण में प्रवृत्त पुरुष की भी मध्य में मनएकाग्रादिकों में ही प्रवृत्ति मत होवे, इस वास्ते श्रोतव्य यह "परिसंख्या विधि" है ऐसे वार्तिकानुसारी" कहे हैं याते कहीं रीति से श्रवणादिक क्रिया में विधि का सम्भव होने ते औ आत्मदर्शन में सम्भावना होने ते महावाक्य में विधि नहीं औ विधि बिना वाक्य को उपासना परतः नहीं बने यह सार है ॥ १५७ ॥

किञ्च कर्म जन्य को स्वर्गवत् अनित्यता नियम से मानस क्रिया रूप उपासना जन्य होने ते मुक्ति भी अनित्य होवेगी ऐसे भये मुक्तों को पुनः बन्ध होवेगा यह दोषान्तर कहे "अरु" इति ॥ १५८ ॥

अनित्य भये हानि कहे "मुक्त" इति ॥ १५९ ॥

ताते नाम अनर्थ का हेतु होने ते ॥ १६० ॥

(इति उपास्यउपासकभाव षष्ठ संसर्ग खण्डनम्)

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु यह भयो जो पक्ष असार। तो उपचारक पक्ष सु सार।
वाक्य एकता भाखी जोई। 'राज पुरुष' सम जानो सोई १६१॥

अथ सहोपचारक रूप संसर्गार्थ के निषेध का प्रदर्शन।

चौपाई

सिद्धान्ती—

उपचारक पक्ष बखान्यो जोई। अहे असार सुनो ज्यों होई।
'राजपुरुष' सम जे है अर्थ। नव अभ्यास भये ते व्यर्थ। १६२॥
वारंवार सु प्रेरण संगा। नव बारी अभ्यास प्रसंगा।
निज सुतको 'उद्दालक' गावे। उपचारक पक्ष न यामें आवे॥१६३॥
उपचार प्रयोग नहिं आक्षेप। दूषण को ताते नहिं लेप।
काहे नव बारी वह गावे। ताते अर्थ अखंड दिखावे॥१६४॥

(इति सहोपचारक संसर्गार्थ खण्डनम्)

ननु मत होवे उपासना, सम्पदा की अधिकता से राज पुरुष को "राजा" कथनवत् भक्ति द्वारा जीव का अधिक ऐश्वर्य देख कर "तूं ही सो है" ऐसे उपचार ही वाक्यार्थ है ? यह आशंका करे "ननु" इति॥ १६१॥

उपचारक अभेद में वाक्य का तात्पर्य माने अभ्यासों को व्यर्थता होवेगी या भाव से सिद्धान्ती कहे—"उपचारक" इति, नव अभ्यास भये तो व्यर्थ नाम राज पुरुष वाक्य सम उपचारक एकता में वाक्य का तात्पर्य अंगीकार किये नव अभ्यासों को व्यर्थता होवेगी॥ १६२॥

औ बारम्बर प्रेरणा साथ कहे नव अभ्यासों को व्यर्थता कह नहीं सके याते उपचारक पक्ष नहीं आवे यह कहे "बारम्बार" इति॥ १६३॥

उपचारक पक्ष दूर भये तामें होने वाले पूर्व कहे दोषों का भी लेश नहीं यह कहे "उपचार" इति, महावाक्य में राजपुरुष वाक्यवत् उपचार प्रयोग नहिं कहिये गौण प्रयोग की आक्षेप नाम आशंका नहीं ताते दूषणों

अब प्रसंग प्राप्ति कर सिद्धान्ती छान्दोग्य उपनिषद् षष्ठाध्याय के प्रथम खण्डगत 'उद्दालकऋषि' और 'श्वेतकेतु' कृत सम्वादात्मक नव अभ्यास रूप अर्थ का संक्षेप से प्रतिपादन करे है।

अथ प्रथम अभ्यास

चौपाई

सिद्धान्ती—

छांदोग्य विषे जो नव अभ्यास। ते संक्षेप ते करौं प्रकाश।
'उद्दालक' कियो सुत उपदेश। "तत्त्वमसि" तज दूर कलेश ॥१६५॥
'श्वेतकेतु' को देख संदेह। प्रथम अभ्यास कह्यो तिन एह।
'सदेव सोम्य' प्रथम यह अहे। इत्यारभ्य अंत मों कहे ॥१६६॥
सत्यायतन सत माहिं प्रतिष्ठा। या विधि सकल जगत की निष्ठा।
सो सद्रूप तुही इक हइये। सृष्टि प्रथम सैंधव सम पइये ॥१६७॥

का लेश भी नहीं, विस्तार से कही बात का फलितार्थ कहे "काहे" इति, काहे नव वारी वह गावे कहिये उपचारक एकता में वाक्य का तात्पर्य समझ कर झूठी बात को यह ऋषि उछालक काहे अनेक वार कहता औ कह्या तो है याते विशेषण, अध्यास, बाध इन तीनों को छोड़ कर अखण्ड ही वाक्यार्थ दिखावे है सोई कहे "ताते" इति ॥ १६४ ॥

जिन अभ्यासों के व्यर्थता दोष से वाक्य को अखण्डार्थता कही, संक्षेप ते वह उद्दालक के पुत्र प्रति कहे छान्दोग्यस्थ अभ्यास ही प्रकाश करे "छान्दोग्य" इति ॥ १६५ ॥

हे सोम्य ! प्रथम नाम उत्पत्ति से पूर्व, यह जगत् सब, एक नाम सद् ब्रह्म ही अर्थात् सद् ब्रह्म के साथ "उत्पत्ति पूर्व मृत्तिका में घटवत्" तादात्म्य युत ही होता हुआ, इत्यारम्भ कहिये "सदेव सौम्य" ऐसे उपक्रम कर, अन्त मों–उपसंहार मों कहा ॥ १६६ ॥

सोई कहे "सत्य" इति, सत्याययतन नाम सद् है स्थिति स्थान जिसका औ, सत माहि प्रतिष्ठा कहिये सत् ही है लय स्थान जिसका या विधि कहिये ऐसे सम्पूर्ण प्रपञ्च की निष्ठा नाम गति है अर्थात् "घट के मृत्तिकावत्" निखिल जगत् के उत्पत्ति आदिक तीनों का स्थान सत् है, "सो सत् तूं है" औ सृष्टि प्रथम कहिये उत्पत्ति से पूर्व सैन्धव सम पइये

पुनि तैं सकली सृष्टि उपाई। तेजादिक सब है दुख दाई।
तामों तैं कीनो अभिमान। 'अन्योअन्य' अध्यासहि जान ॥१६८॥

ताते तूँ ही जीव होय गयो। जाते यहि विधि को दुख भयो।
सुषुप्ति विषे सत मों मिलजावै। नाम रूप नहिं ता कछु पावै ॥१६९॥

याते नाम रूप नहिं अहे। देहादिक सब मिथ्या कहे।
देहादिक कार्य कर दूर। सत्य रूप उर लखो अदूर ॥१७०॥

कहिये बाहर भीतर अन्य रस के सम्बन्ध रहित लवणवत् एकरस अर्थात् सजातीय आदि भेद रहित होता हुआ ॥ १६७ ॥

पुनः ऐसे ने ही तैंने तेजादि भूत भौतिक सृष्टि रची सोई कहे "पुनि" इति, तेजादिक सब है दुखदाई कहिये तेज से लेकर पृथिवी पर्यन्त जो दुख के देने वाला भौतिक प्रपञ्च है, सो सब तैं एक रस ने ही रचा, श्रुत्यन्तर में आकाश आदि सृष्टि श्रवण ते तेजादिक कथन आकाश आदि सृष्टि का उपलक्षण है, याते विरोध नहीं औ रच कर तामों कहिये तिस तेजादिक सृष्टि में तैं अभिमान कर लिया, अभिमान का अर्थ कहे "अन्यो-अन्य" इति ॥ १६८ ॥

ताते नाम अन्योऽन्याध्यास ते, तूं ही जीव होता भया, जिसते तेरे को ऐसा दुख हुआ, इहां "अध्यास ते जीव भया" यह कहने ते मिथ्या उपाधि प्रयुक्त तेरो को जीवभाव भी मिथ्या ही है यह कहे, याही ते सुषुप्ति काल मों नामरूप को दूर कर अपने स्वरूप में स्थित होवे है यह कहे "सुषुप्ति" इति ॥ १६९ ॥

याते नाम रूप नहिं अहे कहिये जिस ते नाम रूप तेरे में कोई नहीं है, किन्तु देहादिक नाम रूप सब मिथ्या है, ताते अनर्थों के हेतु जीवभाव के नाश में यह उपाय कर सोई कहे "देहादिक" इति, देहादिक कार्य कर दूर कहिये अपने स्वरूप ते सम्पूर्ण कार्यों की भिन्न सत्ता न देखता हुआ अर्थात् पृथिवी रूप चिन्ह से ताका मूलरूप कर जल, औ जल रूप चिन्ह से ताका मूलरूप कर अग्नि, औ अग्नि चिह्न से सत् को मूलरूप कर खोजता हुआ सम्पूर्ण द्वैत को मिथ्या दृष्टि से निराश कर अपने वास्तविक सत् स्वरूप को समीप ही देख ॥ १७० ॥

सुख अद्वितीय बोध जो अहे। सत स्वरूप वेद जिहँ कहे।
ऐसे जो सद्ब्रह्म उचारे। "तत्त्वमसि" उर क्यों नहिं धारे १७१

इति प्रथम अभ्यास

श्वेतकेतु की शंका

चौपाई

पूर्वपक्षी—

हे प्रभु! जो सत मिलनो गायो। सो मेरे मनसों नहिं आयो।
जो सुषुप्ति मों सत्य को पावे। तो मुख ते निज यों दिखलावे॥१७२॥
हम सब सत्य को प्राप्त भये। नाम रूप हमरे मिटगये।
पुनि सुषुप्ति ते जागे जबही। सत्य प्राप्ति को सुमिरे तबही॥१७३॥
नहिं को कहे न सुमिरे कोई। सो अनुभव कैसे मुहि होई।
सत्य ब्रह्म ताते मैं नाहीं। यह समझों अपने मन माहीं॥१७४॥

सिद्धान्ती—

या विधि सुत के मन नहिं आयो। द्वितीयाभ्यास तबै तिन गायो।
ज्यों सब फूलन के रस जेते। मधु मों आन मिले सब तेते १७५॥

ऐसे देखने में पुनः वाक्य ही एक साधन है यह समझ के दो पदों से तत् पद के लक्ष्य का कथन कर श्रोता को वाक्यार्थता मनावे "ऐसे" इति॥ १७१॥

पूर्व कही सत् प्राप्ति का पुरुषों को अनुभव स्मरण न देखने ते पुनः सत् में प्राप्त भयों के उठने में हेतु न देखने ते आशंका करे "हे प्रभु" इति, न आवना स्पष्ट करे "जो" इति॥ १७२॥

कैसे दिखलावे? तहां कहे "हम" इति, अनुभव की आपत्ति देकर स्मरण की देवे "पुनि" इति॥ १७३॥

सो अनुभव सत् प्राप्ति का होना कैसे मेरी बुद्धि में आवे? या आशंका से फलित बात कहे "सत्य" इति, ताते नाम सत् प्राप्ति का अनुभव स्मरण न होने से॥ १७४॥

उपचारकपक्षवादी को सिद्धान्ती सुनावे "या विधि" इति, पूर्व कही आशंका वारण हेतु दृष्टान्त कहे "ज्यों" इति, मधुमों आन मिले सब तेते नाम शहद में वह सभी आ मिलते हैं॥ १७५॥

सुषुप्ति विषे त्यों सबही जाय । सुख मां एक रूपता पाय ।
अविद्या कर छाये हैं जाते । सम्यक् जीव न जाने ताते ॥१७६॥
भू में ज्यों गाडी निधि होई । ताके ऊपर विचरे कोई ।
ईहाँ निधि इतना नहिं ज्ञान । ताते ताको होय न भान ॥१७७॥
त्यों ही यह जन जाने नाहीं । दिनदिन नित्य मिले ता माहीं ।
कर्म सो वासन के आधीन ताते उठे दुःख पुनि चीन ॥१७८॥
सिंह व्याघ्र सूकर देहा । मशकादिक सब दुख के गेहा ।
तामों लहि आतम अध्यास । जाते होय जन्म अरु नाश ॥१७९॥
क्षुधा पिपासा के दुख भारे । सब जन लहे न जाहि निवारे ।
जा बिछुरे जन यां दुख होई । अपनी निजानंदता खोई ॥१८०॥
परमानंद सनातन सार । सैंधवखिल्य समं निर्धार ।
या विधि को सद्ब्रह्म सु जोई । "तत्त्वमसि" तूँ नीको सोई ॥१८१॥

(इति द्वितीय अभ्यास)

त्यों नाम पुष्पों के रसवत् ही सुषुप्ति में जाकर सब ही जीव अपने वास्तविक सुखस्वरूप में एक रूप हो जावे है, परन्तु अविद्या रूप तिमिर कर आच्छादित होने ते जानते नहीं ॥ १७६ ॥

कही वार्ता दृष्टान्त से स्पष्ट करे "भू में" इति, निधि—धन, ताते नाम इतना ज्ञान स होने ते ॥ १७७ ॥

न जानने ते ही रज्जु के वश होकर कूप से घटवत् सत् से उठे है, यह सत् से उठने में हेतु कहे "कर्म इति, कर्म औ वासन कहिये संस्कारों के अधीन होकर ताते उठे कहिये तिस आनन्द स्वरूप से गिर के ॥१७८॥

पूर्ववत् सिंह आदिक देहों में आत्माध्यास ते जन्मादि दुखों को चोन है सोई कहे "सिंह" इति, तामों लहि आतम अध्यास कहिये तिन सिंहादिक देहों में "सिंहोऽहम्" ऐसे अपना आप माने है, जाते कहिये जिस अध्यास ते जन्मादि अनेक दुख होवे है ॥ १७९-१८० ॥

सैन्धवखिल्य समं—लवण के खण्ड सम ॥ १८१ ॥

चौपाई

पूर्वपक्षी—

जैसे को गृह भीतर सोवे । अपनी गृह स्थिति नहिं जोवे ।
अरुपुनि सुषुप्ति ते जब जागे । गृह ते बाहर आवन लागे ॥१८२॥
मैं गृह ते अब बाहर जावों । तहाँ जाय कछु कृत्य कमावों ।
यह विधि गृह के आवन जाने । अरुपुनि मुखते प्रकट बखाने ॥१८३॥
त्यों यह जन निद्राकर मूढ़ । सुषुप्ति मों नहिं लखे अगूढ़ ।
सत्य स्वरूप ते इह जन जागे । जाग्रतको जब आवन लागे ॥१८४॥
हम सत्यते अब बाहर जावें । या विधि ज्ञान कुतो नहिं पावें ।

सिद्धान्ती—

या शंका जाते मिट जावे । तृतीयाभ्यास सो याहित गावे ।१८५॥
प्राणी कर्मकर प्रेरे जलधर । ज्यों सागर को पीवे बलधर ।
जलधिभावते देय गिराई । देशांतर में डारे जाई ॥१८६॥

ननु प्रतिबन्ध वश ते अनुभव न भये भी सत्य प्राप्ति अवश्य होवे है यह दूसरे (अभ्यास) मे कह्या तहां भी पुनः यह आशंका होवे है जैसे गृह में सोया पुरुष निद्रा काल में "मैं गृह में सोया हूँ" ऐसे नहीं जाने पुनः निद्रा की निवृत्ति काल में "मैं अब गृह ते बाहर जाता हूँ" ऐसे जाने है ऐसे निद्रा काल में "हम सत् को प्राप्त भये" ऐसे न जानते भी ताकी निवृत्ति काल में "हम सत् से बाहर जावे है" यह जानते नहीं, याते सत् का मिलना नहीं होवे यह आशंका करे "जैसे" इति, अपनी गृह स्थिति—मैं गृह स्थित हूँ ऐसे ॥ १८२ ॥

मुख ते प्रकट बखाने कहिये "मैं गृह ते बाहर जाता हूँ" ऐसे मुख से प्रकट कहें हैं ॥ १८३ ॥

अगूढ़ नाम प्रकट ॥ १८४ ॥

कुतो नहिं पावें कहिये किस कारण ते नही पावें अर्थात् ऐसा ज्ञान न होने में क्या कारण है ? सिद्धान्ती कहे वादो प्रति "या" इति ॥ १८५-१८६ ॥

नदीभाव को प्राप्त होवे। अपनो उदधि रूप नहिं जोवे।
दो तट भीतर होकर बहे। नदी, नदी, तिहँ जन सब कहे ॥१८७॥
यों ही तूँ प्रथमें सद्रूप। उपाधि अधीन धर्‍यो यह रूप।
अविद्या अंतःकरण शरीर। यही उपाधि पछानो धीर ॥१८८॥
स्फटिक मणि ज्यों शुभ्रहि अहे। जपाकुसुम ते लाली गहे।
त्यों ही तूँ है सत्य स्वरूप। उपाधि अधीन विसार्‍यो रूप॥ ८९॥
याही ते श्रुति तोहि जनावे। पूर्ण ब्रह्म रूप ते गावे।
सत्य ब्रह्म परिपूर्ण जोई। पूर्व रूप तुम्हारो सोई ॥१९०॥
पूर्वभाव को स्मरण करो। "तत्त्वमसि" उर अंतर धरो।
सागरते सागर हो जावे। नदी सु सागररूप समावे ॥१९१॥

अपनो उदधि रूप नहिं जोवे कहिये "मैं समुद्र हूं" ऐसे नहीं जाने ॥ १८७ ॥

दर्ष्टान्तिक में कहे "यों ही" इति, यों ही नाम समुद्रवत्, यहरूप नाम जीवरूप, जीवता की हेतु उपाधि कौन पछाने ? तहां कहे "अविद्या" इति ॥ १८८ ॥

उपाधि कह कर दृष्टान्त द्वारा तिनसे निज रूप विसारणा कहे "स्फटिक" इति, उपाधि अधीन विसार्‍यो रूप कहिये अविद्या आदिक उपधियों के अधीन होकर अपने सत् स्वरूप ते (में) तूं आवना नहीं जाने ॥ १८९ ॥

याही ते श्रुति तोहि जनावे कहिये इसी ते "तत्त्वमसि" श्रुति तेरो को ब्रह्म रूपता स्मरण करावे है, सोई कहे "पूर्ण" इति, श्रुति का जनावना बतावे "सत्य" हति ॥ १९० ॥

पूर्वभाव को नाम पूर्वरूपता को, छान्दोग्योपनिषत् में समुद्र ते गिर कर नदी की प्राप्ति पीछे समुद्र में मिलकर नदियां "हम नदी हैं" ऐसे नहीं जानती इस प्रकार नदीभाव के भूलने का कथन है, समुद्र भाव के भूलने का नहीं, औ तुमने "अपनो उदधि रूप नहिं जोवे" ऐसे कथन से समृद्र रूपता का भूलना कह्या याते तुम्हारा कथन वेद विरुद्धहै ? यह आशंका करे "सागर इति, सागर ते सागर हो जावे कहिये समुद्र ते गिर कर नदियां पुनः समुद्र रूप होवें है सोई कहे "नदी" इति ॥ १९१ ॥

अपना नदी रूप नहिं जाने । अहं नदी यों नाहिं बखाने ।
यद्यपि ऐसे वेद बखाने । उदधि रूप भूलन नहिं भाने ॥१९२॥
तदपि सागर भूलन जोई । भाख्यो सम्यक् जानो सोई ।
पूर्वभाव विस्मरण जोई । श्रुति माहिं विवक्षित सोई ॥१९३॥
ज्यों सागर परिपूर्ण हइये । तथा जीव परिपूर्ण पइये ।
ज्यों सागर निजरूप भुलाय । नदी रूप निज माने आय ॥१९४॥
तथा जीव निज ब्रह्म न जाने । अहं जीव यह प्रकट बखाने ।
पूर्व रूप विस्मरण जोई । उदधि निदर्शन सों पुनि सोई ॥१९५॥

दोहा

सर्व अंश दृष्टांत को, याही विधि निर्धार ।
सागर रूप भुलावनो, ताते कीन उचार ॥ ९६॥
'स्वराज्यसिद्धि' ग्रंथमें, आर्य जन जो प्रधान ।
यों ही 'गंगाधर' कहे, ताते भयो प्रमान ॥१९७॥

(इति तृतीय अभ्यास)

"अपना नदी रूप नहिं जाने" का ही अर्थ कहे "अहम्" इति, यद्यपि ऐसे कहिये नदी रूपता विस्मरण वेद कहे है, उदधि रूप भूलन कहिये उदधि भाव का भूलना, नहिं भाने नाम नहीं तिन नदियो को कहे याते तुमारा कथन वेद विरुद्ध है, यह आशंका होवे है ॥ १९२ ॥

"भाख्यो" का पूर्व सम्बन्ध कर तौ भी समुद्र भाव का भूलना जो हमने कह्या सो श्रुति में विस्मृति मात्र की विवक्षा से यथार्थ जानो सोई कहे "पूर्व" इति, विवक्षित नाम कहने की इच्छा का विषय ॥ १९३-१९४-१९५ ॥

पूर्व भाव की विस्मृति मात्र में दृष्टान्त विषे विशेष बतावे "सर्व अंश" इति, ताते नाम सर्वांश में दृष्टान्त बनने ते ॥ १९६ ॥

ननु काहू आर्य ने न कहने ते यह तुमारी बात अप्रमाण है ? तहां कहे "स्वराज्य" इति ॥ १९७ ॥

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु जे जीव सत्य ते आवे । बहुरो सत्य विषे मिलजावे ।
ज्यों सागर ते उठे तरंगा । पुनि ताही में होवे भंगा ॥१९८॥

त्यों ही जीव विनाशी होवे । नित्यरूप नहिं कोविद जोवे ।
बहुरो देहादिक हैं जेते । सत्य ते उठे बरोबर तेते ॥१९९॥

ते होवे अब आतम रूप । भिन्न न होवे ताको रूप ।
अरु पुनि सत्य विकारी होय । सागर सम नीके उर जोय ॥२००॥

सिद्धान्ती—

या शंका का होय उद्धार । अभ्यास चतुर्थो या हित धार ।
सौम्य वडो तरु यह पुनि पेखो । जीवत्यक्त शुष्क दृग पेखो ॥२०१॥

क्रम कर जीवसु त्यागे ताको । शुष्क होय शाखाखंड ताको ।
शाखा एक सु त्यागे जबही । सूक जाय शाखा वह तबही ॥२०२॥

द्वितीया त्यागे शाखा यदा । शुष्क होय सो भी पुनि तदा ।
शाखा भिन्न जीव जो अहे । एकहि त्याग द्वितीय में रहे ॥२०३॥

द्वितीय त्याग तृतीयको चहे । या विधि स्थितिको ज्यों गहे ।
त्योंही तरु को त्यागे जबही । देहांतर में स्थिति तबही ॥२०४॥

अपनी देह विषे त्यों जानो जीव आत्मा अन्य पछानो ।
ज्यों शाखा को देवे त्याग । अथवा शाखा पर है भाग ॥२०५॥

पूर्व अर्थ ते जीव सत् से आ कर सत् विषे प्राप्त होवे है औ सम्पूर्ण कार्य वर्ग की भी सत् उपादान से ही उत्थिति होवे है" सो सत् तूं है" ऐसे कह्या, तामें जीवों को अनित्यता औ देह आदिकों को आत्म रूपता औ सत् को सविकारता की आशंका करे "ननु" इति ॥१९८-१९९-२००॥

सिद्धान्ती सुनावे "या" इति, देह भिन्न अनाशी आत्मा की सिद्ध हेतु दृष्टान्त कहे "सौम्य" इति ॥ २०१-२०२-२०३-२०४ ॥

पर तरु जीव न नाशी होय। नित्य अनाशी ताको जोय।
सुषुप्ति मरण मों त्यों यहिजानो। नित्य आतमा प्रकट पछानो ।२०६॥
जलतरंग ते विषमे हइपे। नित्य जीव नाशी नहिं पइये।
प्रत्यक् ब्रह्म आतमा जानो। एतद् रूप सकल पहिचानो। २०७॥
रज्जु उरग ज्यों यह जग अहे। सागर सम विकार नहिं गहे।
ताते ब्रह्म भिन्न सो जोई। सकल पछानो मिथ्या सोई। २०८॥
यों सद्ब्रह्म सनातन जोई। "तत्त्वमसि" उर धारो सोई।

(इति चतुर्थ अभ्यास)

चौपाई

पूर्वपक्षी—
एतद् रूप सकल दिखलायो। ता विन सकलो मिथ्या गायो ॥२०९॥

दार्ष्टान्तिक में कहे "अपनी" इति, देह भिन्न आत्मा की सिद्धि कर दृष्टान्त विषमता हेतु कहे "ज्यों" इति ॥ २०५-२०६ ॥

विषमता कहे "नित्य" इति, विनाशता दोष दूर कर देह आदिको को आत्म रूपता दूर करने हेतु मिथ्यात्व सूचन करे "प्रत्यक् इति, प्रत्यक् ब्रह्म आतमा जानो कहिये प्रत्यक्–आत्मा कों ब्रह्म रूप जानो औ एतद् रूप सकल पहिचानो कहिये सम्पूर्ण जगत् को आत्मा से पृथक् सत्ता रहित पहिचानो ॥ २०७ ॥

कहीं बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "रज्जु उरग" इति, रज्जु उरग ज्यों यह जग अहे नाम रज्जु से पृथक् सत्ता शून्य सर्पवत्, यह सम्पूर्ण सत्ता शून्य अर्थात् मिथ्या रूप जगत् है, याते मिथ्या उरग से रज्जु में किञ्चित् भी विकार न देखने से ब्रह्म भी समुद्र समविकारी नहीं होवे, फलित कहे "ताते" इति, ताते नाम रज्जु उरगवत् होने ते ॥ २०८ ॥

पूर्व जो सर्व को एतद् रूप कहने से अर्थ ते जगत् को मिथ्यापना कह्या, सो मिथ्यापना जगत् का उपादान ब्रह्म को मान कर सिद्ध होवेगा औ ब्रह्म को उपादानता वने नहीं, यह आशंका करे "एतद्" इति ॥ २०९ ॥

ब्रह्म समवायि होवे जबही । तौ यह बात बनेगी तबही ।
सो यह एष अणू पहिचानो । सूक्ष्मते अति सूक्ष्म हि जानो ॥२१०॥
या विधि श्रुति ब्रह्म दिखलावे । सूक्ष्म ते अति सूक्ष्म गावे ।
सो कैसे स्थूल उपजावे । सकल जगत् मनमें नहिं आवे ॥२११॥
स्थूल मृत्तिका होवे जबही । तैसो घट उपजावे तबही ।
नहिं परमाणू घट उपजावे । भाख्यो किने न मनमें आवे ॥२१२॥
कारण रूप सो प्रथमें होई । पुनि कारण ते उपजे सोई ।
यहि विधि कार्य सु पूर्व अहे । आविर्भाव ततो पुनि लहे ॥२१३ ।
अतिहि सूक्ष्म में अतिहि स्थूल । यह संभव भी अहे अमूल ।
ताते ब्रह्म भिन्न सब मिथ्या । यही बात मुहि भासे मिथ्या ॥२१४॥

सिद्धान्ती—

यह शंका याते नहिं रहै । ऐसो एक निदर्शन अहै ।
अभ्यास पंचमों सुत प्रतिगावे । वटधाना ताते अनवावे ॥२१५॥

समवायि नाम उपादान, यह बात बनेगी कहिये जगत् को मिथ्यापना तब बनेगा सो पुनः सूक्ष्म वस्तु को स्थूल की उपादानता न देखने ते बने नहीं यह कहे "सो" इति, सो यह नाम जिससे उठ कर जीव देह में प्रवेश करे है वह जो सद् वस्तु है, एष नाम पूर्वोक्त, अणु पहिचानों—अणु रूप जानो, अणु का ही अर्थ कहे "सूक्ष्म" इति ॥ २१० ॥

"सकल जगत" पूर्व के संग (अन्वय कर लेना) ॥ २११ ॥

कही बात दृष्टान्त से स्फुट करे "स्थूल" इति ॥ २१२ ॥

पुनः कारण रूपता कर सत् ही कार्य की वैदिक मत में आविर्भाव रूप "उत्पत्ति" सुनी जावे है औ अति स्थूल का अति सूक्ष्म में सम्भव बुद्धि में नहीं आवे याते ब्रह्म उपादानकता बिना जगत् को मिथ्यापना बने नहीं यह कहे "कारण" इति, सो नाम कार्य, आविर्भाव ततो पुनि लहे—तिस कारण ते पुनः प्रकटता—रूप उत्पत्ति को प्राप्त होवे है ॥२१३॥

ताते नाम अति सूक्ष्म का अति स्थूल में सम्भव न होने ते, ब्रह्म से भिन्न "सर्व प्रपञ्च मिथ्या है" यह तुम्हारा कथन मात्र मिथ्या है और सब ज्यों का त्यों हैं ॥ २१४ ॥

हे सुत ! वटधाना तुम ल्यावो । तामों अति दीर्घ तरु पावो ।
यह देखो अति सूक्षमहि अहे । यामों कहु वट कैसे रहे ॥२१६॥
ज्यों यामें त्यों ब्रह्म के माहीं । सूक्षम माहिं असंभव नाहीं ।
जाते ताके भीतर रहे । ताही ते ताते भव लहे ॥२१७॥
श्रद्धा जाकी होय अनूप । सोई लखे सो ताको रूप ।
अणु ते अणु जाको श्रुति गावे । सत्ता सर्व विषे ठहरावे ॥२१८॥

सिद्धान्ती सुनावे "यह" इति, वटधाना नाम वट का बीज ॥ २१५-२१६ ॥

ज्यों यामें त्यों ब्रह्म के माहीं कहिये जैसे अति सूक्ष्म बीज भूत उपादान में स्थूल वट सूक्ष्म रूपता कर रह्या काहू देश काल में जलादि रूप सहकारियों के सम्बन्ध ते वीज को भेदन कर प्रकट होवे है, ऐसे अति सूक्ष्म परमात्मा विषे भी तद् रूपता कर स्थिर रह्या जगत् प्राणियों के अदृष्टों के अनुसार हिरण्यगर्भ विराट आदि क्रम से प्रकट होवे है, याते अतिसूक्ष्म में अतिस्थूल का सम्भव अमूलक नहीं, किन्तु समूलक है ॥ २१७ ॥

ननु ऐसे परमात्मा का स्वरूप कौन लखे ? तहां कहे "श्रद्धा" इति, जिस पुरुष को अनुपम श्रद्धा होवे वही ऐसे अति सूक्ष्म परमात्मा के स्वरूप लखे है, अर्थात् यद्यपि वैदिक सिद्धान्त न मानने वाले श्रद्धा हीन कुपुरुषो को जनाई हुई भी यह बात अति कठिन है, तथापि वेद सिद्धान्तानुसारी अन्तर्मुख वृत्ति वाले श्रद्धावान् पुरुष को जाननी कठिन नहीं । ननु चक्षु आदिकों से घटादिको के ज्ञान होने में श्रद्धा की अपेक्षा न देखते प्रमाण सिद्ध अर्थ में श्रद्धा का काम नहीं ? यह आशंका कर कहे "अणु" इति, जिस परमात्मा को अणु ते अणु कहिये सूक्ष्म ते सूक्ष्म, "श्रुति" कथन करे है औ जाकी सत्ता अर्थात् व्यापकता श्रुति सर्व में ठहरावे है ऐसे परमात्मा का लखना श्रद्धा से ही होवे है, श्रद्धा बिना तो शब्दप्रमाणमात्रगम्य धर्मादिकों का ही निश्चय नहीं होवे, याते अनेक वादियों की कुतर्कों से व्याकुल करी हुई परमात्म वस्तु को कैसे जान सके, अर्थात् काहू रीति से नही जान सके, याते स्थूल घटादिकों के ज्ञान में श्रद्धा का काम न रह्या भी इहां अवश्य है ॥ २१८ ॥

दुर्लक्षते अति सूक्ष्म गाये । व्यापक ते पुनि सर्व दिखाये ।
ऐसो जो सद्ब्रह्मस्वरूप । "तत्त्वमसि" उर गहो अनूप ॥२१९॥

(इति पञ्चम अभ्यास)

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु जे सर्व विषे वह हइये । प्रत्यक् ब्रह्म न संशय पइये ।
तौ यह भान होय क्यों नाहीं । सर्व विषे जन के मनमाहीं ॥२२०॥
अरु जे वह अति सूक्ष्म रूप । भान अयोग सो ताहि स्वरूप ।
तौ तिहँ दर्शन साधन गाये । सभी व्यर्थ नहिं कछु फल पाये॥२२१॥
अरु होवे अनमोक्ष प्रसंगा । दर्शन बिन नाहीं भव भंगा ।

सिद्धान्ती—

दे दृष्टांत करे परिहार । या शंका गुरु परम उदार ॥२२२॥

ननु अणु ते अणु को व्यापकता औ व्यापक को अणुता कथन विरुद्ध है ? यह आशंका कर श्रुतियो के कथन की व्यवस्था कहे "दुर्लक्ष" इति, ऐसो नाम दुर्लक्ष ॥ २१९ ॥

पूर्व अभ्यास में प्रत्यक् रूपता कर ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है औ दर्शन ताका श्रद्धादिक साधन सम्पन्न को होवे है, यह कह्या तामें आशंका करे "ननु" इति प्रत्यक् ब्रह्म नाम प्रत्यक् रूपता कर ब्रह्म ही जेकर सर्व कार्य कारण संघात में व्याप्त है यामें सन्देह नहीं, तौ नाम तब, पुरुषों के चित्तों में सर्व विषे प्रतीत क्यों नहीं होवे ॥ २२० ॥

अति सूक्ष्म होने ते परमाणुओं वत् अयोग्य है ? यह आशंका करते प्रति साधनो को निष्फलता हेतु कहे "अरु जे" इति, तिंह दर्शन साधन नाम तिसके साक्षात् हेतु साधन ॥ २२१ ॥

अनमोक्ष प्रसंग में हेतु कहे "दर्शन" इति, दर्शन विन नाही भव भङ्गा कहिये रज्जु का साक्षात् हुए बिना मूल सहित सर्प की निवृत्ति न देखने ते, ब्रह्म का साक्षात् हुए बिना मूलाज्ञान सहित संसार अनर्थ निवृत्ति रूप "मुक्ति" नहीं होवेगी। सिद्धान्ती कहे "दे" इति ॥ २२२ ॥

षष्ठाभ्यास सो या हित गावे । शिष्य संदेह सु तुरत मिटावे।
सैंधव होय उदक मों लीन । नयनों कर नहिं लखे प्रवीन । २२३॥
यों ही अंतःकरणन माहीं । मिल्यो आत्मा भासे नाहीं।
स्वयं प्रकाश कर सदा स्फुरण। पर जनको नहिं होय स्फुरण ॥२२४॥
बाहरमुख इंद्रियगण जेतो । आत्मको नहिं देखै तेतो ।
जलमें लीन लवण है जोई । रसनाकर जन जाने सोई । २२५॥
श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरु जोई । अति आश्चर्य जगत मों सोई।
ता उक्ति को धर उर माहीं । आत्मको देखै सब माहीं ॥२२६॥
भूषण कंठ विषे ज्यों होई । भूले ताहि जनावे कोई ।
त्यों ही आत्म को उपदेश । पाय सकल जन हरे कलेश ॥२२७॥

दृष्टान्त कहे "सैन्धव" इति ॥ २२३ ॥

मिल्यो आत्मा भासे नाहीं कहिये अपने विषे अध्यस्त अहंकार आदि के साथ तादात्म्य अध्यास को प्राप्त भया आत्मा स्वप्रकाशता कर सदा स्फुरण होता हुआ भी बाह्य बुद्धियों को पृथक् होकर प्रतीत होवे नहीं सोई कहे "स्वयं प्रकाश" इति, पर जन को नहिं होय स्फुरण कहिये वहिर्मुख पुरुषो को भान नहीं होवे ॥ २२४ ॥

"पर जन को" इत्यादि पाठ का ही विवरण कहे "बाहर" इति, बाहर मुख इन्द्रियगण जेतो कहिये बाहर मुख है इन्द्रियगण जिनों का ऐसे पुरुष आत्मा को नहीं देख सकते, और उपाय से जानने को शक्य होने ते इतने में ताका न जानना ही नहीं समझ लेना यह बात दृष्टान्त से कहे "जल में" इति, चक्षु आदिको कर अवेद्य भी जल में लीन लवण को रसना कर पुरुष जैसे जान है ॥ २२५ ॥

तैसे इहां भी श्रोत्रिय कहिये वेद पढ़ा अर्थात् सम्यक् वेंद तात्पर्यार्थ-वेत्ता औ ब्रह्म निष्ठ नाम ब्रह्म विषे चित्त स्थिरता वाला, जो अतिशय आश्चर्य गुरु है ता उक्ति कहिये ताकी वाणी को हृदय में धार कर जिज्ञासु सर्वत्र आत्मा का दर्शन करे है ॥ २२६ ॥

गुरु की उक्ति से अपना जानना दृष्टान्त से स्पष्ट करे "भूषण" इति ॥ २२७ ॥

लवण उपाधि उदक नहिं सोई । त्यों यह आत्म दृश्य न होई ।
दृश्य न्यारो जो सत्य हइये । पूर्णब्रह्म सनातन पइये ॥२२८॥
या विधिको सद्ब्रह्मस्वरूप । "तत्त्वमसि" तजि भ्रमतमकूप ।

(इति षष्ठोऽभ्यास)

चौपाई

सिद्धान्ती—
सद्गुरुको उपदेशहि जोई । संसारबंध नाशक है सोई ॥२२९॥
ताके दो सहकारी हइये । शिष्य बुद्धि जिज्ञासा पइये ।
गोप्यमतो यह प्रकट दिखावे अभ्यास सप्तमों सुतप्रति गावे॥२३०॥
हे सोम्य ! ज्यों पुरुष गांधार । निज गृह सोयो क्रांति अपार।
महा रत्न ताके गल माहीं । कर कङ्कण कुण्डल कनमाहीं । २३१॥
भुज अंगद पद नूपुर पइये । या विधि के बहु भूषण हइये ।
चोरन जाय गह्यो निश माहीं । दूर देश डार्‌यो बन माहीं ॥२३२॥
बाँधे कर पद नयन सु वाके । भूषण लाहि लये सब ताके ।
उरग व्याघ्र को भय अति भारी । क्षुधा तृषा तप जाय न वारी ॥२३३॥
कंटक, शिला, समिध, प्रसंगा । लुठे सो होय विदीर्ण अंगा ।
बंधनमुक्ति उपाय न देखे । अपनो देश सो किह विधि पेखे ॥२३४॥

वह गुरु की कृपा कर लभ्य "ब्रह्म तूं है" यह बोधन हेतु दृश्य से भिन्नता कहे "लवण" इति, लवण उपाधि उदक नहिं सोई कहिये लवण को नेत्रों से न लखने में उपाधि भूत जो जल है वह जैसे लवण नहीं, तैसे यह दृश्य, आत्म न होई कहिये आत्मा नहीं ॥ २२८ ॥

ऋषि का अनुवाद सुनावें सिद्धान्ती "सद्गुरु" इति ॥ २२९ ॥

ताके नाम बन्ध निवर्तक उपदेश के ॥ २३० ॥

पुरुष गान्धार कहिये गन्धार देशी पुरुष ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

क्या कर वन में गेरथा ? तहां कहे "बांधे" इति, वह जैसे सर्पादिकों के भय से आतुर हुआ शोच करे है, तैसे तूं भी करे है यह कहे "उरग" इति ॥ २३३ ॥

समिध—लकड़ी, लुठे सो होय विदीर्ण अङ्गा नाम लेटते के अंग तिन कण्टक आदिकों से छेदन होवे है ॥ २३४ ॥

शोक करे बहु विधि मन माहीं। हाय हाय बोले मुख माहीं।
त्यों ही रागादिक जे तस्कर। बाँध लयो तोको अति वशकर ॥२३५॥
विशुद्ध दृष्टि को बाँधे तेई। रागादिक भाखे हैं जेई।
ताते निजानंद नहिं भासे। इतर ततह ते तम प्रकाशे ॥२३६॥
निज स्वरूप ते दियो गिराय। त्रयतनु वन मों डार्यो आय।
चौरासीलक्ष योनि में जाय। जन्म मरण बहु विधिके पाय ॥२३७॥
बंधन जाते होवे नाश। निज स्वरूप को होय प्रकाश।
ता उपाय को पावे नाहीं। निश दिन शोच करे मन माहीं ॥२३८॥
ज्यों को पुरुष दयालु आवे। ताके सब बंधन छुटकावे।
गंधार देश को मार्ग जोई। ता उपदेश करे ते सोई ॥२३९॥
शनैः शनैः वह चलियो जावै। ग्राम ग्राम पुछ निज पुर पावे।
पूर्व ज्यों निज घरमों जाय। बहु सुख पावे सहज सभाय ॥२४०॥

शोक करे बहु विधि मन माहीं कहिये स्वदेश प्राप्ति और बन्धन निवृत्ति में उपाय न देखता हुआ बहुत प्रकार शोक करे है मन विषे, दार्ष्टान्तिक में कहे "त्योंही" इति ॥ २३५ ॥

रागादिकों ने क्या मेरा बांध लिया है ? तहां कहे "विशुद्ध" इति, विशुद्ध दृष्टि को बांधे तेई कहिये "अपरिच्छिन्नआनन्द स्वरूप मैं हूँ" ऐसे तेरी निगाह को वह बांधे है, ताते नाम विशुद्ध दृष्टि के बांधने ते, इतह ततह ते तम प्रकाशे नाम इधर उधर ते अन्धेरा हो रहा है अर्थात् स्वरूप का सर्वथा अज्ञान हो रहा है ॥ २३६ ॥

निज स्वरूप ते दियो गिराय कहिये गन्धार देश स्थानापन्न निज स्वरूप ते तेरे को गिराय दिया औ गिराय कर दुखों के निदान अविद्या आदि देह तीन में वा चौरासी लक्ष योनि रूप बन में डार दिया सोई कहे "त्रय तनु" इति ॥ २३७ ॥

ता उपाय कहिये बन्धनों के नाश औ स्वरूप के प्रकाश का उपाय ॥ २३८ ॥

जैसे पुनः यह गन्धार देशी कहने योग्य रीति से आनन्दित होवे है, तैसे तूं भी होवेगा यह कहे "ज्यों" इति ॥ २३९-२४० ॥

त्योंही तूँ गुरु उत्तम पाय। बंधन तेरे देहि छुड़ाय।
अनेक जन्म तैं पूर्व पाय। तामों जे तैं पुण्य मिलाय ॥२४१॥
ताको पाक भयो पुनि जबही। ब्रह्मनिष्ठ गुरु पायो तबही।
ताते तोको तत्त्व प्रकाश्यो। बंधन तेरो ताते नाश्यो ॥२४२॥
अज्ञान बंध तेरो मिट गयो। निष्प्रपंच को दर्शन भयो।
ता ता भूमी कर विश्राम। सुखी जाहि निज अपने धाम ॥२४३॥
मुक्त प्राप्य सब ब्रह्म स्वरूपा। "तत्त्वमसि" परिपूर्ण रूप।

(इति सप्तम अभ्यास)

चौपाई

पूर्वपक्षी—

जैसे अज्ञ सत्य को पावे। क्रम कर करण लीन हो जावे ॥२४४।
सुषुप्ति ज्यों मरणे के काल। करण लीन सब होहिं विशाल।
वागादिक मन में मिल जावै। मन प्राणन माँ जाय समावै ॥२४५॥

त्यों ही नाम दयालु पुरुष कर उपदिष्ट देशी पुरुषवत्, तैंने अति उत्तम गुरु पाया तब 'बन्धन तेरे देहि छुड़ाय कहिये तिस गुरु ने तेरा अज्ञान बन्ध दूर किया वह गुरु भी तैं पुण्यों के प्रताप से पाया है यह कहे "अनेक" इति ॥ २४१ ॥

ताते नाम ब्रह्मनिष्ठ गुरु कीं प्राप्ति ते, ताते नाम तत्प्रकाश तें॥ २४२ ॥

ता ता भूमि कर विश्राम कहिये पञ्चमी, छठी, सप्तमी, भूमिका में निवास करता हुआ प्रारब्ध की समाप्ति काल में, सुखी जाहि निज अपने धाम नाम अपरिच्छिन्न आनन्द आत्मज्योति को सुखपूर्वक प्राप्त होवेगा ॥ २४३ ॥

जिस अपरिच्छिन्न स्वरूप को तैंने प्राप्त होना है ऐसा जो मुक्तप्राप्य कहिये निवृत्त हुई अविद्या वाले पुरुषों कर प्राप्य ब्रह्म स्वरूप है सो परिपूर्णरूप तूं हैं। सुषुप्तिवत् मरणकाल में मूढ़ सत् को पावे है औ पाकर पुनः भी जन्म धारे है ज्ञानियों की भी यही रीति है ? वा और है ? यह आशंका करे "जैसे" इति ॥ २४४ ॥

प्राण मिले परमात्म माहीं । जाविधि मूढ़ मिले सद् माहीं ।
या विधि पूर्वदेह सु त्यागे । कर्मवासना बहुरो जागे ॥२४६॥

ताते और शरीरहि धारे । दुःख लहे ताते पुन भारे ।
ज्ञानी को कर्म ऐसे हइये । उत को और प्रकारहि पइये ॥२४७॥

सिद्धान्ती—

यह संदेह जाते मिट जावे । अभ्यास अष्टमों सुत प्रति गावे ।
सत्य प्राप्त लौं ऐसो अहे । बहुरो जन्म न ज्ञानी लहे ॥२४८॥

जा क्रमकर सत् पावे जबही । मृत्यु को वंचे ज्ञानी तबही ।
ताके प्राण न कतहूँ जावे । ईहाँ लीन सकल होय जावे ॥२४९॥

पूर्वपक्षी—

ननु काते यह वंचन करे ।

सिद्धान्ती—

हेतु प्रश्न में गुरु सो उचरे ।
मरण प्रथम ही तत्त्व ज्ञान । पाय हन्यो भव मूल अज्ञान ॥२५०॥

कही बात सुषुप्ति दृष्टान्त से स्पष्ट करे "सुषुप्ति" इति, वागादिकरण कहाँ लीन होवे है ? तहां कहे "वागादिक" इति ॥ २४५-२४६-२४७ ॥

सिद्धान्ती सुनावे "यह" इति, सत् की प्राप्ति पर्यन्त तो, ऐसो कहिये अज्ञानी जैसा ही है आगे विशेष है सोई कहे "बहुरो" इति ॥ २८४ ॥

मृत्यु को वंचे—ज्ञानी पुरुष सत्यप्राप्तिकाल में ही मृत्यु का बाध करे है ताते ताके प्राण कहीं नहीं जाते किन्तु इहां नाम स्वस्वरूप ब्रह्म में ही लय हो जावे है ॥ २४९ ॥

वंचन का हेतु पूछे "ननु" इति, काते नाम किस हेतु ते, सिद्धान्ती सुनावे "हेतु" इति, प्रश्न में कहिये वंचन किस हेतु ते करे है ऐसे हेतु के प्रश्न विषे गुरु कहे हैं, हेतु कहे "मरण" इति, मरण ते प्रथम ही तत्वज्ञान को पाकर जिसते ज्ञानी पुरुष ने संसार का कारण अज्ञान दूर किया है ॥ २५० ॥

प्रारब्ध शेष कर धृत शरीर। ऐसे ही उर धारो धीर।

पूर्वपक्षी—

मृत्यु को वंचन हइये जोई। मो सों सकल कहो प्रभु सोई ॥२५१॥

सिद्धान्ती—

मृत्यु याको लैन को आवे। कछू न याके तनते पावे।
पूर्ण-ब्रह्मरूप होय गयो। यह मृत्यु को वंचन भयो ॥२५२॥
मृत्यु वंचे ज्ञानी जिहि पाय। सो सद्ब्रह्म अखंड सुभाय।
जो ऐसो सद्ब्रह्म स्वरूप। "तत्त्वमसि"मृत्यु हरो अनूप ॥२५३॥

(इति अष्टम अभ्यास)

चौपाई

पूर्वपक्षी—

यह ज्ञानी अज्ञानी जोई। जग व्यवहार करे सम दोई।
खान पानमों दो सम हइये। शयन गमन मों भेद न पइये ॥२५४॥
भोग हेतु कर्म है जेई। ज्ञानी को नहिं बाँधे तेई।
अज्ञानी को बंधन पावे। आवे जन्म मरण दिखलावे ॥२५५॥
याहि विषे प्रभु कारण कौन। भाखो मोहि अहे जग जौन।

सिद्धान्ती—

सद्दृष्टांत कारण दिखलावे। अभ्यास अंतमो सुतप्रति गावे॥२५६॥

औ प्रारब्ध शेष कर धृत शरीर कहिये शरीर का धारण प्रारब्ध से कर रह्या है ऐसे हृदय में जानो, याते वह वञ्चन करे है। कही रीति के वञ्चन को यत्किञ्चित् समझ कर पुनः पूछे "मृत्यु" इति ॥ २५१ ॥

उत्तर कहे "मृत्यु" इति, न पावने में हेतु कहे "पूर्ण" इति, यह नाम कुछ न पावना रूप ही ॥ २५२ ॥

जाको पाय के ज्ञानी मृत्यु को वञ्चे है "सो तूं है" यह कहे "मृत्यु" इति ॥ २५३ ॥

पूर्व विद्वान् अविद्वान् को जगत् व्यवहार सम रह्वे भी ज्ञानी को "कर्म" बन्धन नहीं कर सके यह अर्थ ते कह्या तहां आशंका करे "यह" इति, व्यवहारो की समानता प्रकट करे "खान" इति ॥ २५४-२५५ ॥

हे सौम्य ! नर दो भव माहीं । इक तस्कर इक तस्कर नाहीं ।
तामों इक तस्कर जो अहे । राजपुरुष मिल ताको गहे ॥२५७॥
सो मुखते यों चोर पुकारे । 'नाहंचोर' सो चोर उचारे ।
राजपुरुष इक परशु तपाय । नहीं चोर तौ लेहु उठाय ॥२५८॥
यह इक दिव्य परीक्षा हइये । चोर अचोर याहि ते पइये ।
चोरभाव उरमध्य दुरावे । झूठ बोलके परशु उठावे ॥२५९॥
प्रथमें जले परशुसों हाथ । पाछे बाँधे साँकल साथ ।
यों ही मूढ़मती जो होई । आत्मतत्त्व दुरावे सोई ॥२६०॥
चिदानंद सद्ब्रह्म स्वरूप । ऐसो है निज आतमरूप ।
यह निज ब्रह्म दुरावन अहे । 'नाहंब्रह्म' मुखो जड़ कहे ॥२६१॥
देहादिक जु अनातमरूप । ताहि बखाने आतमरूप ।
प्रथमें मृत्यु ते पीड़ा पावे । याहि दाह सम कोविद गावे ॥२६२ ।
बहुरो और तनु को धारे । साँकलसम बुध सोइ उचारे ।
अरु जो निश्चय होय अचोर । राजपुरुष भाखे तिहिं चोर ॥२६३॥
'नाहंचोर' कहे मुख माहीं । बहुरो परशु गहे कर माहीं ।
दाह न ताको रंचक होई । जाते सत्यसंध है सोई ॥२६४॥

याहि विषे नाम ज्ञानी को बन्धन न करने में, सिद्धान्ती सुनावे "सद्दृष्टान्त" इति, सद्दृष्टान्त नाम दृष्टान्त सहित, अन्तमों नाम नवमो ॥ २५६-२५७ ॥

परशु नाम कुठार ॥ २५८-२५९ ॥

साँकल नाम वेड़ी ॥ २६० ॥

जाको दुरावे है वह कैसा है तहां कहे "चिदानन्द" इति, यह कौन ? तहां "नाहम्" इति, "मैं ब्रह्म नहीं" ऐसे मुख से कहना ही ब्रह्म का दुरावना हैं ॥ २६१-२६२ ॥

चोर समानता से हानि दिखलाय के अचोर समानता से वृद्धि हेतु कहे "अरु जो" इति ॥ २६३ ॥

राजपुरुष नहिं बंधन पावे । उलटे तासों क्षमा करावे ।
अरु राजा तिहँ क्षमा करावे । पट भूषण तिहँ भेट चढ़ावे ॥२६५॥
हम अपराधी भूपति अंध । क्षमा करो तुम, हे सत्यसंध ।
यों ही निज आतम दृढ़ मान । त्यागे देहादिक अभिमान ॥२६६॥
त्यों सत्संध जगत मों जोई । मृत्यु ते पीड़ा लहे नहिं सोई ।
मायाको जाने जग जोई । मायिक व्याघ्र डरे न सोई ॥२६७॥
दाह बंध शंका कछु नाहीं । ब्रह्मादिक सब पूजे ताहीं ।
या सत्य ब्रह्मके निश्चय भये । ज्ञानी के सब बंधन गये ॥२६८॥
सच्चिदानन्द ब्रह्म है जोई । "तत्त्वमसि" संशय नहिं कोई ।
जन्म मरण बंधन नहिं कोई । आतम मरे न जामें सोई । २६९॥
'उद्दालक' ते सुन उपदेश । 'श्वेतकेतु' सब हरे कलेश ।
अज्ञान नष्ट ताको होय गयो । प्राप्त ब्रह्मको प्राप्त भयो । २७०॥
'अहंब्रह्म' तिन मुखों उचार्‍यो । गुरु उपदेश भली विधि धार्‍यो ।
उपचारक पक्ष विषे नहिं बने । नव अभ्यास जो सुत प्रति भने॥२७१॥

सत्य सन्ध नाम सत्य वादी ॥ २६४-२६५ ॥

राजा का क्षमा करावना स्फुट करे "हम" इति, यों ही नाम अचोरवत् "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसे निज आतम नाम आपको दृढ़ मान के ॥ २६६ ॥

मृत्यु ते पीडा न लेना दृष्टान्त से स्पष्ट करे "माया" इति, माया को नाम इन्द्र जाल को ॥ २६७ ॥

दाह, बन्ध, की शंका तो वाको क्या कहनी है, उलटे राजा स्थानी ब्रह्मादिक भी पूजा करे है यह कहे "दाह" इति ॥ २६८ ॥

याते "तूं" ब्रह्म रूप है ताते जन्म में बीज के अभाव ते औ "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" इस श्रुत्यन्तर ते तेरे में जन्मादिक कोई नहीं यह उपदेश समाप्ति करे ऋषि "जन्म" इति ॥ २६९ ॥

उपचारक पक्ष वादी प्रति सिद्धान्ती कहे "उद्दालक" इति ॥ २७०-२७१ ॥

तातें "तत्त्वमसि" आखंड । भाखे, भेद शीश दे दंड ।

(इति नव अभ्यास)

अब उक्त अर्थ में पूर्वपक्षी की शंका और सिद्धान्ती का उत्तर ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु तव एक अखंडहि गायो । सृष्टि वाक्य कछु और दिखायो ॥२७२॥

(श्रुतिः)

"यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति" तै० उ० ३।१

इत्यादिसृष्टिवाक्यानि ॥

चौपाई

जाते भूत प्रकट यह भये । तीन भुवन पुनि या निर्मये ।
सोई ब्रह्मरूप निरधार । पाले औ पुनि करे संहार ॥२७३॥

ताते नाम उपचारक पक्ष में नव अभ्यासों के न बनने ते, तत्त्वमसि वाक्य भेद के सिर पै दण्ड देकर अर्थात् भेद को दूर कर अखण्ड अर्थ कहे है यह विचार को भी अवश्य मानना । ननु कहे दोषों ते मत होवे वाक्य को अंशअंशिभावादि संसर्ग-परतः तथापि महावाक्य, विशिष्टों के अभेद पर होने के योग्य है, वाक्य होने ते, कमलत्व विशिष्ट कमल साथ नीलत्व-विशिष्ट नील का अभेद बोधक नील कमल वाक्यवत्, या अनुमान से विशिष्टों के अभेद पर भये अखण्ड परतः नहीं बने या अभिप्राय से पुनः आशंका करे वादी "ननु इति, सृष्टि वाक्य कछु और दिखायो कहिये उत्पत्ति बोधक "यतो वा" इत्यादिक वाक्यन से कुछ और ही विशिष्टद्वैत कहा है ॥ २७२ ॥

उत्पत्ति वाक्य कहे "यतो वा" इति, यतो—जिससे वा—निश्चय कर, इमानि—यह, भूतानि—प्राणी, जायन्ते—उत्पन्न होवे है । पुनः येन—जिससे, जातानि—उत्पन्न हुए, जीवन्ति—प्राणों को धारण करे हैं, इत्यादि सृष्टि वाक्यानि—इत्यादि सृष्टि वाक्य हैं । आदि शब्द से "यत् प्रयन्ति"—जिसमें मरते हुए, अभिसंविशन्ति—सर्व ओर ते प्रवेश करे हैं "सो ब्रह्म है" यह जान लेना, जायन्ते पर्यन्त का दो तुको से अर्थ कहे "जाते" इति, सोई ब्रह्म—रूप निरधार कहिये निर्णय करो तीनो भुवनों के रचने वाला है, वही श्रुतियो में "येन" इत्यादि अक्षरों से कहे पालना संहार भी करे है ॥२७३॥

जगदादिक तिहँ कर्म दिखाये। ब्रह्म सु ताको कर्ता गाये।
याविधि जग विशिष्ट हो भयो। ब्रह्मअखण्ड अर्थ तव गयो ॥२७४॥

सिद्धान्ती—

उपजावन पालन संहार। लक्षण ताहि तटस्थहि धार।
यह तीनों तहि शुद्ध दिखावें। कछु संसर्ग न तामें गावें ॥२७५॥

याते ऐसे कहते सृष्टि वाक्यन में "कुछ और दिखायो" कर कह्या, और कुछ यह दिखाया, सोई कहे "जगदादिक" इति, "ब्रह्म" पूर्व के साथ मिलाकर, या विधि कहिये जगत् ब्रह्म को कर्मकर्ताभाव कहने ते ब्रह्म जगत् विशिष्ट हो गया। ऐसे भये अन्तःकरण विशिष्ट जीव साथ वाक्य, नील कमल वाक्यवत्, ताका अभेद कहे है याते वाक्य का अर्थ अखण्ड है यह तेरा कथन जाता रह्या ॥ २७४ ॥

चन्द्र के तटस्थ लक्षण शाखावत्, ब्रह्म के तटस्थ लक्षण उत्पत्यादिक ब्रह्मको शुद्ध जनावे है, तामें काहू का संसर्ग नहीं कहे याते संसर्ग बिना विशेषण को विशेष्य में न रहने ते, ब्रह्म को विशेषणविशिष्ट न सिद्ध होने कर वाक्य के अखण्ड अर्थ का जाना नहीं बने या भाव से उत्तर कहे "उपजावन" इति, ताहि कहिये ब्रह्म का उपजावन पालन आदिक तटस्थ लक्षण धारण करो, "तट में स्थित होकर इतरों से लक्ष्य का व्यावर्तक होवे सो तटस्थलक्षण कहिये है" जैसे द्वितीया का चन्द्र-दर्शनाकांक्षी पुरुष ने कहां चन्द्र ? यह पूछा, अमुक शाखा पै देख ऐसे कहे है तहां शाखा तट में स्थित होकर इतर नक्षत्रगणों से, लक्ष्य चन्द्रमा का व्यावर्तक है याते चन्द्र साथ सम्बन्ध रहित भी शाखा चन्द्र के लखने का उपाय होने ते चन्द्र का तटस्थ लक्षण है तैसे यह भी "जगत् निष्ठ रहे हुए उत्पत्यादिक" साधन सम्पन्न जिज्ञासुओं को "जो जगत् के उत्पत्यादिक करे है, सो ब्रह्म जानो" ऐसे जिज्ञास्य ब्रह्म के लखने का उपाय होने ते ताका तटस्थ लक्षण है, औ चन्द्र मात्र के लक्ष्य का शाखावत्, तहि कहिये ब्रह्म को, यह तीनों शुद्ध लखावे है, तामें नाम ब्रह्म में कर्ताकर्मभावादि संसर्ग कोई नहीं विशिष्टता का साधक ॥ २७५ ॥

जा पर एक निदर्शन सार । सावधान उर अंतर धार ।
ज्यों सेना इक ठौरे होई । ताको देख पूछ है कोई ॥२७६॥
या सेना मों नरपति कौन । कहो प्रकट मोहि, इइये जौन ।
राजअभिज्ञ सो पुरुष उचारे । प्रष्टा के सब संशय टारे ॥२७७॥
मत्तमतंग पीठपै जोई । या सेना में नरपति सोई ।
मुक्ताजाली मध्य प्रदेश । शशिनिभछत्र छाया देश ।२७८॥
निजाभरण कर प्रभा अपार । जाको यश छायो संसार ।
तीन भुवन को तिलक स्वरूप । यों भूपति को भाख्यो रूप॥२७९॥
तब प्रष्टा ने भूपति देख्यो । सकल त्याग शुद्ध को पेख्यो ।
सकल गजादिक भाखे जेते । नहिं प्रष्टा कछु पूछे तेते ॥२८०॥
वक्ता ने जे मुख ते गाये । नरपति परिचय हेतु दिखाये ।
तात्पर्य नहिं ताके माहों । एक जनावे नरपति ताहीं ॥२८१॥

दृष्टान्त से कही बात को स्पष्ट करने हेतु कहे "जा पर" इति, निदर्शन कहे "ज्यों" इति ॥ २७६ ॥

राजअभिज्ञ नाम राजा के जानने वाला पुरुष ॥ २७७ ॥

मुक्ताजाली मध्य प्रदेश कहिये मोतियों की जाली वाली अम्वारी के मध्य देश में जो शशिनिभ धवलता धर्म कर चन्द्रमा जैसे शोभावाले छत्र, छाया देश नाम छाया तले है ॥ २७८ ॥

पुनः निज अपार प्रभा कर और आभरण नाम भूषणों की अपार प्रभा कर जिसके यश कर संसार छाय रह्या है औ तीन भुवनों का तिलक रूप है सो राजा है ऐसे राजा का रूप कह्या, इहां यह भी जान लेना जो मत्तमतंगों का प्रधान मुसाहिवों पास सम्भव समझ के तिनते भिन्न को वोधन हेतु "मुक्ता" इत्यादि कथन है औ मुक्ता जाली का राज पुत्रों पास सम्भव समझ कर तिनसे भिन्न कर वोधन हेतु "शशि निभ छत्र" यह कथन है ॥ २७९ ॥

सकल त्याग शुद्ध का देखना स्पष्ट करे "सकल त्याग" इति ॥२८०॥

प्रष्टा ने नहीं पूछे तो वक्ता ने काहे कहे ? तहां कहें "वक्ता" इति, नरपति परिचय हेतु कहिये केवल राजा के जनावने वास्ते कहे है और

अब पूर्वोक्तार्थ में शंकापूर्वक समाधान करते हैं।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु केवल नरपति तहि भान। कैसे तोहि कियो अनुमान।

सिद्धान्ती—

जाते और काल के माहीं। और प्रकार देख है ताहीं ॥२८२॥
न्हावन लगो सुरसरी तीर। सकल उतारे अपने चीर।
ताको देख कहे मुखमाहीं। सो नरपति न्हावे जल माही ॥२८३॥
यह प्रत्यभिज्ञा जाते होय। ताते शुद्ध देख है सोय।
त्यों ही ब्रह्म शुद्ध नर भान। कर्ता कर्म नहीं कछु ज्ञान ॥२८४॥
ब्रह्म माहिं नाहीं कछु भेद। उक्त युक्ति ते अहे अभेद।
जीव ब्रह्म कर भाखे भेद। ताते जीव रु ब्रह्म अभेद ॥२८५॥

कुछ वक्ता की ताके बोधन में तात्पर्य कहिये इच्छा नहीं, किन्तु एक नाम केवल राजा के जनावने वास्ते कहे है और कुछ वक्ता की ताके बोधन में तात्पर्य कहिये इच्छा नहीं, किन्तु एक नाम केवल तिनों कर उपलक्षित राजा को जनावे है श्रोता प्रति ॥ २८१ ॥

वक्ता के कहने से श्रोता को केवल का भान कैसे हुआ जाने ? यह आशंका करे "ननु" इति, पूर्व से विलक्षण समाज विशिष्ट में "सोई यह राजा है" ऐसी प्रत्यभिज्ञा से केवल का भान हुआ जाना यह उत्तर कहे "जाते" इति, और प्रकार देख है ताहीं कहिये पूर्व देखे लक्षणों से और प्रकार के लक्षणों सहित देखे है तिसको ॥ २८२ ॥

सोई कहे "न्हावन" इति, ताको कहिये और प्रकार के को देख कर जो मुख से ऐसे कहे है "वही राजा गङ्गा में स्नान करे है" ॥ २८३ ॥

जाते नाम जिस कारण ते, यह कहिये "सो नरपति" ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवे है ताते नाम तिस हेतु ते गतमतंग औ गङ्गादि लक्षणों के अभेद को बाधित होने ते तिन औ इन विशेषणों कर उपलक्षित व्यक्ति मात्र को देखे है, त्योंही नाम तैसे ही उत्पत्ति आदिकों कर उपलक्षित केवल ब्रह्म का भान होवे है तिसमें कर्ता कर्मादिकों का ज्ञान कुछ नहीं होवे ॥२८४॥

याते ब्रह्म के विषे काहू रीति का भेद नहीं, किन्तु उक्त युक्ति नाम "ज्यों सेना" इत्यादि ग्रन्थ से कहे दृष्टान्त से विशिष्टता दूर होने कर, अहे

बिना लक्षणा होवे नाहीं । ताते सो है ताके माहीं ।
कौन लक्षणा कहे अभेद । महावाक्य, नाहीं कछु भेद ॥२८६॥

अब अकार्थ में शंकापूर्वक समाधान ।

पूर्वपक्षी—

आतम काहि अभेद बखानो । महावाक्य की गति नहिं जानो ।
अभेद बखाने मुखते जोई । सादृश्य पर पहिचानो सोई ॥२८७॥

अभेद नाम "यतो वा" इत्यादि श्रुति सिद्ध "शुद्ध है" इहां यह हार्द है—या समाज में कौन राजा ? पूछते को मत्तमतंगों के ज्ञान की इच्छा नहीं औ प्रश्नानुसारी उत्तर की सिद्धि हेतु वक्ता का तिनके कहने में तात्पर्य नहीं, याते श्रोता की जिज्ञासा औ वक्ता के तात्पर्य रहित मत्त मतंगादिको को छोड़ कर जैसे पूर्व कहे "मत्तमतंग" से लेकर "छाया-देश" पर्यन्त लौकिक लक्षण वाक्य मत्तमतंगादिकों कर उपलक्षित सर्व ते व्यावृत्त पुरुष विशेष मात्र कों जनावे है, ऐसे साक्षात् परम्परा कर अद्वैत में तात्पर्य वाले सर्व वेदान्त वाक्यन में "यतो वा" इत्यादि सृष्टि गोचर वाक्य भी वायु में रूप का निषेध किये अपने उपादान में सत्ता सिद्धिवत् "नेह नानास्ति" से ब्रह्म में द्वैत निषेध किये काहू और स्थान में सत्ता न सिद्ध हो जावे ऐसे और स्थानों ते द्वैत की सत्ता वारण पूर्वक ब्रह्म में द्वैत सत्ता बोधन ते द्वैत को "स्वसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगिताऱूप मिथ्यात्व" सूचन करते हुए शुद्ध जनावे है । ननु होवे ब्रह्म को शुद्धता, पुनः जीव का ताके साथ अभेद काहे ते है ? तहां कहे "जीव" इति, ताते नाम वेद प्रमाण ते ॥ २८५ ॥

वह अभेद भी "विना लक्षणा होवे नाहीं" कहिये लक्षणा वृत्ति से बिना जिस हेतु ते होवे नहीं, ताते नाम तिस हेतु ते. सो लक्षणा ताके माही नाम वाक्य विषे अवश्य है, "महा वाक्य" पूर्व साथ (अन्वय-कर लेना) ॥ २८६ ॥

श्रुति स्मृति से मुक्त को परमात्म समानता श्रवण ते वही वाक्यार्थ है यह समझ कर भेद वादी सिद्धान्ती का तिरस्कार करे "आतम" इति, महावाक्य का कह्या अभेद कहने ते गति कैसे नहीं जाने ? तहां कहे "अभेद" इति, अभेद बखाने मुख ते जोई नाम महावाक्य जो "तूँ तिसके साथ अभिन्न है" ऐसे कहे है वह श्रुति स्मृति में समानता श्रवण ते "तूँ तिसके समान है" ऐसे सादृश्य पर जानो ॥ २८७ ॥

निरंजन परम साम्य को लहे। मुक्त पुरुष शिवके सम अहे।
या विधि श्रुति स्मृति हैं जेते। ब्रह्म समान कहे तिहिं तेते। २८८॥

(श्रुतिः)

"निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीत्यादिश्रुतेः" (मुं० ३३१)।
"मुक्तः शिवसमो भवेदिति स्मृतेः"॥

सिद्धान्ती—

ब्रह्म समान जीव नहिं होई। कैसे वेद वखाने सोई।

पूर्वपक्षी—

साच कहो नहिं ब्रह्म समान। प्रसिद्ध रूप जो होवे भान॥२८९॥
तदपि एक रूपांतर हइये। ब्रह्म समान वही सुन पइये।

सिद्धान्ती—

ब्रह्म समान रूपांतर जोई। ताको भान कुतो नहिं होई॥२९०॥

पूर्वपक्षी—

संसारी रूप अछाद्यो सोई। ताते ताहि लखे नहिं कोई।
मुक्ति काल प्रतिबंधक नाश। तहँ होवे वह रूप प्रकाश॥२९१॥

अर्थ ते समानता बोधक श्रुति-स्मृति पढ़े "निरञ्जन" इति, या विधि नाम कही रीति से जितने श्रुति स्मृति वाक्य है वह सभी, तिहिं नाम जीव को ब्रह्म समान कहे है याते "तत्त्वमसि"का भी वही अर्थ है॥२८८॥

पाठ ते श्रुति पढ़े "निरञ्जनः" इति, निरञ्जनः—निर्दुख हुआ जीव, परम साम्यं—परमात्मा की अतिशय समानता को-उपैति-प्राप्त होवे है, इत्यादि श्रुतेः—इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म समानता सिद्ध होवे है, औ मुक्तः-मुक्त हुआ, शिव समः—परमात्मा के समान, भवेत्—होवे है, इति स्मृतेः-इत्यादि स्मृति ते ब्रह्म समानता सिद्ध होवे है। वराक जीव को राजा ईश्वर की समानता का समाज न देखता सिद्धान्ती आशंका करे "ब्रह्म" इति, सोई नाम ब्रह्म समान, पक्षी सत्कार करे "साच" इति॥ २८९॥

रूपान्तर का भान काहे नहीं होवे? यह पूछे सिद्धान्ती "ब्रह्म" इति॥ २९०॥

न भान में हेतु बतावे पूर्वपक्षी "संसारी" इति, अभ्रों से सूर्यवत्

बिना लक्षणा होवे नाहीं । ताते सो है ताके माहीं ।
कौन लक्षणा कहे अभेद । महावाक्य, नाहीं कछु भेद ॥२८६॥

अब अकार्थ में शंकापूर्वक समाधान ।

पूर्वपक्षी—

आतम काहि अभेद बखानो । महावाक्य की गति नहिं जानो ।
अभेद बखाने मुखते जोई । सादृश्य पर पहिचानो शोई ॥२८७॥

अभेद नाम "यतो वा" इत्यादि श्रुति सिद्ध "शुद्ध है" इहां यह हार्द है—या समाज में कौन राजा ? पूछते को मत्तमतंगों के ज्ञान की इच्छा नहीं औ प्रश्नानुसारी उत्तर की सिद्धि हेतु वक्ता का तिनके कहने में तात्पर्य नहीं, याते श्रोता की जिज्ञासा औ वक्ता के तात्पर्य रहित मत्त मतंगादिको को छोड़ कर जैसे पूर्व कहे "मत्तमतंग" से लेकर "छाया-देश" पर्यन्त लौकिक लक्षण वाक्य मत्तमतंगादिकों कर उपलक्षित सर्व ते व्यावृत्त पुरुष विशेष मात्र कों जनावे है, ऐसे साक्षात् परम्परा कर अद्वैत में तात्पर्य वाले सर्व वेदान्त वाक्यन में "यतो वा" इत्यादि सृष्टि गोचर वाक्य भी वायु में रूप का निषेध किये अपने उपादान में सत्ता सिद्धिवत् "नेह नानास्ति" से ब्रह्म में द्वैत निषेध किये काहू और स्थान में सत्ता न सिद्ध हो जावे ऐसे और स्थानों ते द्वैत की सत्ता वारण पूर्वक ब्रह्म में द्वैत सत्ता बोधन ते द्वैत को "स्वसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगितारूप मिथ्यात्व" सूचन करते हुए शुद्ध जनावे है। ननु होवे ब्रह्म को शुद्धता, पुनः जीव का ताके साथ अभेद काहे ते है ? तहां कहे "जीव" इति, ताते नाम वेद प्रमाण ते ॥ २८५ ॥

वह अभेद भी "बिना लक्षणा होवे नाहीं" कहिये लक्षणा वृत्ति से बिना जिस हेतु ते होवे नहीं, ताते नाम तिस हेतु ते. सो लक्षणा ताके माही नाम वाक्य विषे अवश्य है, "महा वाक्य" पूर्व साथ (अन्वय-कर लेना) ॥ २८६ ॥

श्रुति स्मृति से मुक्त को परमात्म समानता श्रवण ते वही वाक्यार्थ है यह समझ कर भेद वादी सिद्धान्ती का तिरस्कार करे "आतम" इति, महावाक्य का कह्या अभेद कहने ते गति कैसे नहीं जाने ? तहां कहे "अभेद" इति, अभेद बखाने मुख ते जोई नाम महावाक्य जो "तूँ तिसके साथ अभिन्न है" ऐसे कहे है वह श्रुति स्मृति में समानता श्रवण ते "तूँ तिसके समान है" ऐसे सादृश्य पर जानो ॥ २८७ ॥

निरंजन परम साम्य को लहे। मुक्त पुरुष शिवके सम अहे।
या विधि श्रुति स्मृति हैं जेते। ब्रह्म समान कहे तिहिं तेते।२८८॥

(श्रुतिः)

"निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीत्यादिश्रुतेः" (मुं० ३३१)।
"मुक्तः शिवसमो भवेदिति स्मृतेः"॥

सिद्धान्ती—

ब्रह्म समान जीव नहिं होई। कैसे वेद वखाने सोई।

पूर्वपक्षी—

साच कहो नहिं ब्रह्म समान। प्रसिद्ध रूप जो होवे भान॥२८९॥
तदपि एक रूपांतर हइये। ब्रह्म समान वही सुन पइये।

सिद्धान्ती—

ब्रह्म समान रूपांतर जोई। ताको भान कुतो नहिं होई॥२९०॥

पूर्वपक्षी—

संसारी रूप अछाद्यो सोई। ताते ताहि लखे नहिं कोई।
मुक्ति काल प्रतिबंधक नाश। तहँ होवे वह रूप प्रकाश॥२९१॥

अर्थ ते समानता बोधक श्रुति-स्मृति पढ़े "निरञ्जन" इति, या विधि नाम कही रीति से जितने श्रुति स्मृति वाक्य है वह सभी, तिहिं नाम जीव को ब्रह्म समान कहे है याते "तत्त्वमसि"का भी वही अर्थ है॥२८८॥

पाठ ते श्रुति पढ़े "निरञ्जनः" इति, निरञ्जनः—निर्दुख हुआ जीव, परम साम्यं—परमात्मा की अनिशय समानता को–उपेति–प्राप्त होवे है, इत्यादि श्रुतेः—इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म समानता सिद्ध होवे है, औ मुक्तः-मुक्त हुआ, शिव समः—परमात्मा के समान, भवेत्—होवे है, इति स्मृतेः–इत्यादि स्मृति ते ब्रह्म समानता सिद्ध होवे है। वराक जीव को राजा ईश्वर की समानता का समाज न देखता सिद्धान्ती आशंका करे "ब्रह्म" इति, सोई नाम ब्रह्म समान, पूर्वपक्षी सत्कार करे "साच" इति॥ २८९॥

रूपान्तर का भान काहे नहीं होवे? यह पूछे सिद्धान्ती "ब्रह्म" इति॥ २९०॥

न भान में हेतु बतावे पूर्वपक्षी "संसारी" इति, अभ्रों से सूर्यवत्

निर्दुख आदि ब्रह्म गुण जेते । ताहि विषे पइये सब तेते ।
तत्पद की जो गौणी वृत्ति । सो होवे तामों अनुवृत्ति ॥२९२॥
ताते ब्रह्म सादृश्य तूँ अहे । ऐसे "तत्त्वमसि" तिहि कहे ।

सिद्धान्ती—

ऐसे कोइक करे वखान । मत ताको अब होवे हान ।२९३॥
एक प्रसिद्ध जीवको रूप । द्वितीय ब्रह्म सु कह्यो अनूप ।
इन दोनों ते न्यारो होई । संसारी रूप अच्छाद्यो सोई ॥२९४॥
ब्रह्म समान द्वितीय इक जोई । जीव रूप तिहि मान न कोई ।
नहिं प्रत्यक्ष द्वितीय को होई । नहिं अनुमान सु तामों कोई ।२९५॥

संसारी रूपआत्मक प्रतिबन्धक कर, अछाद्यो नाम प्रतिबद्ध हो रहा है वह रूपान्तर, ताते नाम प्रतिबद्ध होने ते, बन्ध काल में तिसको कोई नहीं लखे किन्तु मुक्ति काल में संसारी रूप प्रतिबन्धक का जब नाश होवे है तब वह रूप प्रकाश नाम प्रकट होवे है ॥ २९१ ॥

औ प्रकट हुये तिस रूप में ही सम कथन के बीज भूत निर्दुखादिक ब्रह्म के गुण होंवे है, सोई कहे "निर्दुख आदि" इति, निर्दुख आदि कहिये दुखों से रहित होने आदिक जितने ब्रह्म के गुण है उस रूपान्तर में वह सभी होवे है याते क्रूरता आदिक गुणों के योग ते पुरुष में सिंह शब्द की गौणी वृत्तिवत्, "तत्" इस पद की जो गौणी वृत्ति कहिये गौणी लक्षणा वृत्ति, सो तामों कहिये रूपान्तर में अनुवृत्ति नाम वर्ते है ॥ २९२ ॥

ताते नाम "त्वं" पद के अर्थ रूपान्तर में तत् पद की गौणी वृत्ति के वर्तने ते, "ब्रह्म समान तूँ है" ऐसे "तत्त्वमसि" तिसको कहे है, याते वाक्य का अर्थ सादृश्य है, अखण्डभूत अभेद नहीं, तटस्थ प्रति बोधन करे सिद्धान्ती "ऐसे" इति ॥ २९३ ॥

मत हानि करने का प्रकार रचे "एक" इति, इन दोनों ते कहिये प्रसिद्ध जीव रूप ते और ब्रह्म ते जो न्यारो होई नाम न्यारा है, संसारी कहिये जीव के प्रसिद्ध रूप कर सोई नाम वह अच्छाद्यो नाम आच्छादित करना, तिसमें भी पुनः कोई प्रमाण है ? वा नहीं ? ॥ २९४ ॥

प्रथम का परिहार करे "ब्रह्म" इति, "जीवरूप" पूर्व साथ (सम्बन्ध कर लेना), "तिहि मान न कोई" कर कही बात स्पष्ट करे "नहिं" इति ॥२९५॥

नहिं अदृष्ट ज्यों वेद बखाने । उलटो ताहि निषेधहि ठाने ।
इनते अन्य न द्रष्टा हइये । याते भिन्न न श्रोता पइये ॥२९६॥
आतम ब्रह्म सु भेद असत्य । ताको कौन कहे जग सत्य ।
या विधि श्रुति स्मृतिहि हजार। भेद निषेधे बारंबार ।२९७॥
ब्रह्म समान रूपांतर जोई । पूर्वसिद्ध न हइये सोई ।
बिन प्रमाण खरशृङ्ग समान । कौन सके अब ताहि बखान ॥२९८॥

पूर्वपक्षी—

मुक्ति कालमों उपजे सोई । ब्रह्म समान रूप है जोई ।
तासों मान प्रथम दिखलायो । मुक्त पुरुष जब शिवसम गायो २९९॥

वेद प्रमाण है यह आशंका कर कहे "नहिं" इति, नहिं अदृष्ट ज्यों वेद बखाने कहिये धर्माधर्म समान वेद भी ताको नहीं कहे उलटा इस ते और द्रष्टा श्रोता नहीं ऐसे ताका निषेध करे है सोई कहे "इनते" इति, इन ते नाम जीव के प्रसिद्ध रूप ते, भिन्न द्रष्टा कोई नहीं, पुनः याते नाम अहं प्रतीति सिद्ध जीव के प्रसिद्ध रूप ते भिन्न श्रोता कोई नहीं याते कही रीति से प्रत्यक्ष आदिको की असिद्धि ते रूपान्तर की न सिद्धि होने कर महावाक्य सादृश्य-पर नहीं, किन्तु आत्म ब्रह्म का भेद निषेध करने वाले, आत्म ब्रह्मणोर्भेदम्, असन्तं कः कृष्यति" इत्यादिक श्रुति वाक्यन से महावाक्य अभेद पर ही है ॥ २९६ ॥

अर्थ ते भेद निषेधक श्रुति पढ़े "आतम" इति, ताको नाम आत्म-ब्रह्मभेद को ॥ २९७ ॥

"रूपान्तर में प्रमाण नहीं," अर्थ ते इस दूसर विकल्प का खण्डन करे "ब्रह्म" इति, पूर्व सिद्ध न हइये सोई कहिये वह उपदेश काल में प्रमाण सिद्ध नहीं, याते प्रमाण हीन है औ बिन प्रमाण कहिये प्रमाण हीन वस्तु खर शृङ्गवत् होवे है याते ताको अब कौन कह सके ॥ २९८ ॥

वह मुक्ति काल में उपजे है और प्रमाण. ता में समानता की अनुप-पत्ति ते पूर्व कही श्रुति स्मृति है, याते ता प्रमाण सिद्ध को सब कोई कह सके हैं यह समाधान करे वादी "मुक्ति" इति, सोई कौन ? तहां कहे "ब्रह्म" इति, प्रथम का निर्णय कहे "मुक्त" इति ॥ २९९ ॥

भावी होवे वही स्वरूप । 'तत्त्वमसि' भाखे श्रुति रूप ।

सिद्धान्ती—

केचित् ऐसे वाक्य लगावे । ताके मतमों दूषण आवे ॥३००॥

भावी रूप सु भाख्यो जोई । उपदेश समय नहिं पइये सोई ।

'तत्त्वमसि' कैसे श्रुति गावे 'तत्त्वं भविष्यसि' यों दिखलावे ३०१॥

श्रुति स्मृति मो "सम" पद जोई। कहे अभेद दुहूँको सोई ।

पूर्वपक्षी—

सम पद अहे जगतमों जोई । सादृश्य ताहि बखाने सोई ॥३०२॥

ऐसे भये वाक्यार्थ कैसा ? तहां कहे "भावी" इति, भावी कहिये मुक्ति काल में, होवे वही स्वरूप नाम "तूं तिसके समान होवेगा" ऐसे "तत्त्वमसि" श्रुति तिस रूपान्तर को कहे है यह वाक्यार्थ है । सिद्धान्ती तटस्थ प्रति कहे "केचित्" इति ॥ ३०० ॥

प्रयोगापत्ति रूप दूषण हेतु कहे "भावी" इति, भावी रूप सुभाख्यो जोई कहिये आगे ब्रह्म समान होने वाला जो रूपान्तर कह्या वह उपदेश समय कहिये उपदेश काल विषे नहीं प्राप्त होवे है याते तिसको श्रुति तत्त्वमसि नाम "तिसके समान तूं है" ऐसे वर्तमान काल में समान कैसे कहे अर्थात् काहू रीति से न कहे किन्तु, तत्त्वं भविष्यसि नाम "तूं भविष्य काल में तिसके समान होवेगा" ऐसे दिखावे, इहां यह भाव है="तत्त्वमसि" वाक्य में "तत्, त्वम्, असि, यह पद तीन हैं औ क्रम ते ईश, जीव, वर्तमान कालादिक के वाचक हैं, याते हमारे मत में "तूं तिस साथ अभिन्न है" ऐसे बोध का जनक "तत्त्वमसि" प्रयोग है औ तेरे मत में ऐसा बोध बने नहीं, किन्तु "तिसके साथ समान होवेगा" ऐसा बने है याते ऐसे बोध की सिद्धि हेतु वर्तमान काल वाचक "असि" पद छोड़ भविष्यत् काल वाचक "भविष्यसि" पद लगने ते "तत् त्वं भविष्यसि" ऐसे प्रयोग की आपत्ति होवेगी औ ऐसा प्रयोग है नहीं, याते कहे दोषों से रूपान्तर को दूर होने ते अभेद ही वाक्यार्थ है ॥ ३०१ ॥

अभेद को वाक्यार्थता सिद्ध कर ताको खोने वाले "सम" पद को भी तत्परता कहे "श्रुति" इति, वादी आशंका करे "सम" इति ॥ ३०२ ॥

सिद्धान्ती—

अस नहिं नियम जगत मों अहे। समपद सादृश्य ही को कहे ।
सम तीर्थ मों दोनों वासी । समान उदरमों भये निवासी॥२०३॥
इन दोनों की सम है जाति । सम गोत्र सम कुल विख्याति।
इत्यादिक दृष्टांत घनेरे । अभेद अर्थ ही सम पद टेरे ॥२०४॥
श्रुति बखानी सम पर जोई । भने अभेद दुहूँ को सोई ।
ताके प्रथम भाग मों कह्यो । दृष्टांत नदी सागरको गह्यो ॥२०५॥
ज्यों नदियाँ सागर में जावें । भेदहि त्याग अभेद समावें ।
अपनो नाम रूप सब खोई । सागरमों इक सागर होई ।२०६॥
पूर्व भी ते सागर रूप । जलधर कर पायो वह रूप ।
तृतीय अभ्यास विषे यह कथा । ज्योंकी त्यों भाखी मम तथा॥२०७॥
भेद निषेधक श्रुतिहि हजार । स्मृति को कछु बार न पार ।
ताते सादृश्य कौन हिं गाये । महावाक्य अखंड दिखाये ॥२०८॥
भई लक्षणा जाके माहीं । बिना लक्षणा भाखे नाहीं ।

अब तटस्थ अखण्डार्थ में 'वेदान्तपरिभाषाकार' के मत को दर्शाता है ।

तटस्थ—

ननु अखंड अर्थ जो भाख्यो । सत्य अहे मिथ्या नहिं आख्यो२०९॥

सिद्धान्ती परिहार करे "अस" इति, जगत में अस नाम ऐसा नेम नहीं है "सम" पद सादृश्य ही कहे किन्तु अनेक दृष्टान्तों में देखने ते अभेद भी कहे है दृष्टान्त कहे "सम" इति ॥ ३०३-३०४ ॥

प्रकरण में लाभ कहे "श्रुति" इति, अभेदार्थकता श्रुति को दृष्टान्तोंवत् उपक्रम से भी निश्चित है यह सूचन करे "ताके" इति ॥ ३०५-३०६-३०७ ॥

"बिना लक्षणा होवे नाहीं" इस प्रकृत विचार हेतु मध्य में प्राप्त भये की समाप्ति करे "भेद" इति, "महावाक्य" पूर्व साथ मिलाकर ताते नाम हजार श्रुतियों ने भेद का निषेध करने ते महावाक्य सादृश्य को नहीं कहे किन्तु अखण्ड वस्तु को कहे है ॥ ३०८ ॥

वह अखण्ड भी शक्ति वृत्ति से नहीं कहे किन्तु लक्षणा से कहे है याते

पर जो कही लक्षणा यामों । सोअसत्य नहिं आवे तामों ।
वेदांतपरिभाषाकारहै जोई । माने नाहिं लक्षणा सोई ॥३१०॥

लक्षणा यामें अवश्य प्राप्त भई सोई कहे "भई" इति, लक्षणा होंने में बीज कहे "बिना" इति, बिना लक्षणा भाखे नाहीं कहिये शक्ति वृत्ति कर उपस्थित भये पदार्थों में परस्पर विरोध ते महावाक्य लक्षणा वृत्ति से कहे है. अन्यथा नहीं। लक्षणा पक्ष में एक देशी वेदान्ती धर्मराज औ "बाध समानाधिकरण वादी" की आशंका का तटस्थ अनुवार करे "ननु" इति ॥३०९॥

न आवने में बीज कहे "वेदान्त" इति, सो यह आगे खण्डन न करने से ऊपर का पाठ है=तथापि विलक्षण रीति जानकर आगे ताका खण्डन औ इहां अर्थ दिखावे है, वेदान्त परिभाषा कार है जोई कहिये वेदान्त परिभाषा का कर्त्ता जो धर्मराज है वह शक्ति वृत्ति से ही निर्वाह माने है महावाक्य में लक्षणा का अंगीकार नहीं करे, सोई दिखावे हैं–जहां विशिष्ट वाचक पद के अर्थ का और पद के विशिष्ट अर्थ साथ सम्बन्ध न बने तहां विशेषण को त्याग के विशेष्य की प्रतीति पद की शक्ति वृत्ति से ही बने है, जैसे "अनित्यो घटः" या वाक्य में घट पद वाच्य घटत्व विशिष्ट व्यक्ति का अनित्य पदार्थ से "अनित्याभिन्नो घट" ऐसे अभेद बोधन करिये है औ घटत्व जाति को नित्य होने ते तद् विशिष्ट का अनित्य पदार्थ से अभेद बाधित है याते ताका अनित्य पदार्थ में अभेद न बनने से, जैसे तहां घटत्व रूप विशेषण को त्याग के व्यक्ति मात्र का अनित्य पदार्थ से "अनित्य अभिन्न घट है" ऐसा अभेद बोध होवे है, तैसे महावाक्यन में भी विशिष्ट-वाचक पद की शक्ति के बल ते ही अन्तः करण माया रूप विशेषणों को त्याग कर चेतन रूप विशेष्य मात्र का ज्ञान बने है, याते वाक्य में लक्षणा का अंगीकार निष्प्रयोजन है, परन्तु यहां इतना विशेष है=विशिष्ट वाचक पद के वाच्य का एक देश जो विशेष्य-भाग-व्यक्ति, ताका बोध ही शक्ति से होवे है जाति आदिक विशेषण का नहीं होवे है, अन्यथा वाच्य के एक देश घटत्व साथ नित्य पदार्थ का अभेद बनने से "अनित्यो घटः" वाक्यवत् "नित्यो घटः" यह वाक्य भी प्रमाण होवेगा याते शक्ति से विशिष्ट वाचक पदों के विशेष्य भागों का ही बोध होवे है याही ते "सोऽयं देवदत्तः" इस वाक्य में भी परोक्षता अपरोक्षता विशेषणों को त्याग के विशेष्य मात्र का ज्ञान शक्ति वृत्ति से होवे है भाग त्याग लक्षणा का ऐसे स्थलों में कोई काम नहीं ॥ ३१० ॥

एक बाध इक शेषहि होई। बाध समान अधिकरणहि सोई।
बाध समानाधिकरणहि मान। वाक्य अखंड कहे पहिचान ॥३११॥
स्थाणु होइ चोरसम भान। नर हेरे होवै भय मान।
स्थाणु अभिज्ञ करे उपदेश। काहे को तूँ लहे कलेश ।३१२॥
'नाऽयंचौर' स्थाणु हइये। ता बिन चोर न रंचक पइये।
तस्कर को करके अनुवाद। स्थाणु विधि कीनी निर्वाद ।३१३॥
चोर बाध तामों हो गयो। अखंडहि एक स्थाणु भयो।
त्यूँ ही महावाक्य सों जानो। एकके बाध अखंड पछानो ॥३१४॥

महावाक्य में लक्षणा न आवने में एक रीति बीज कह कर दूसरी बतावे "एक" इति, एक बाध इक शेषहि होई कहिये जिसमें एक का बाध कर एक शेष रहे है, कहे दोषों से अध्यास, विशेषण, को छोड़ कर वाक्य में सोई नाम वह बाधसमानाधिकरण हा जानिये ताही को मान के वाक्य अखण्ड कहे है सोई कहे "बाध" इति ॥ ३११ ॥

बाध समानाधिकरण में वाक्य को अखण्ड बोधकता दृष्टान्त से कहे "स्थाणु" इति ॥ ३१२ ॥

उपदेश वाक्य अहे "नायम्" इति, नाऽयं चौर स्थाणु हइये कहिये यह चोर नहीं, अपि तु स्थाणु है, ता बिन नाम स्थाणु बिना चोर रंचक नहीं प्राप्त होवे इस प्रकार अनुवाद नाम भ्रान्त पुरुष को पूर्व चोर भाव से प्रतीत का नाम लेकर तामें "चोर स्थाणु ही है" ऐसे स्थाणुता का विधान विवाद रहित कर दिया ॥ ३१३ ॥

याते तामों नाम चोर भाव से प्रतीत में स्थाणुता विधान करने से चोर का बाध होवे है औ चोर का बाध होने से एक अखण्ड स्थाणु हो शेष रहे है, दार्ष्टान्तिक में कहे "त्यू ही" इति, त्यूं ही—दृष्टान्तवत्, महा वाक्य में भी जानो, एक के बाध से अखण्ड सिद्ध होवे है, इहां यह चिन्तन है—"पूर्व उपजे मिथ्याज्ञान के विषय का उत्तर उपजे यथार्थ ज्ञान से नाश–बाध कहिये है" वह बाध है विषय जिसका ऐसे प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले पदों का एक अर्थ में वर्तना बाधसमानाधिकरण कहे हैं, जैसे मन्द अन्धकार में स्थाणु है वा पुरुष है ? ऐसे भ्रम वाले पुरुष प्रति "तेरे को भान भया चोर स्थाणु ही है" ऐसे वाक्य कहे है तहां "चोर स्थाणु

अब सिद्धान्ती उक्त मत का विकल्पों कर खण्डन करता है।

सिद्धान्ती—

समानाधिकरण बाध मों मान। यों केचित् जग करे बखान।
सोअसत्य नहिं याके माहीं। 'तत्त्वमसि' भाखे तिहि नाहीं॥३१५॥

कहो बाध इन दोनों माहीं। काको होय काहि को नाहीं।
दुःख हीन आनंद स्वरूप। ब्रह्म एक पुरुषार्थहिरूप॥३१६॥

ताहीं को तुम बाध बखानो। दुखी जीव परिशेषहि मानो।
वेदोद्यम सब भयो जो व्यर्थ। कछु न ताहि जनायो अर्थ॥३१७॥

ही है" इस वाक्यजन्यज्ञान से पूर्व उपजे संशय ज्ञान के विषय चोर का नाश होवे है, याते चोरत्व, स्थाणुत्व, रूप प्रवृत्ति निमित्तों के भेद वाले चोर स्थाणु पदों का, "कल्पिताभाव को अधिष्ठान रूपता" सिद्धान्त में "चोर का अभाव स्थाणु है" और पृथक् सिद्धान्त में, "चोर के अभाव वाला स्थाणु है" इस रीति से जैसे एक अर्थ में वर्तना है, तैसे महा—वाक्य में भी परोक्षत्वादिक प्रवृत्त निमित्तों के भेद वाले "तत्" "त्वम्" पदों का "त्वम् का अभाव तत् रूप है" ऐसे वा "त्वं के अभाव वाला तत् है" ऐसे एक अर्थ में वर्तना है याते एक धर्मी साथ विरोध न होने ते ताके परिहारार्थ लक्षणा निष्प्रयोजन है॥ ३१४॥

सिद्धान्ती तटस्थ प्रति कहे "समानाधिकरण" इति, बाध मों कहिये बाध विषय में समानाधिकरण मान के वाक्य अखण्ड कहे हैं परन्तु सो असत्य नाम तिनका कथन असत्य है याते महावाक्य विषे वह नहीं, असत्यता में हेतु कहे "तत्त्वमसि" इति॥ ३१५॥

असत्यपना स्पष्ट करने हेतु मानते को पूछे "कहो" इति॥ ३१६॥

तत् के अर्थ ब्रह्म का बाध माने है? यह आशंका कर कहे "ताही" इति, ताही को नाम कहे रूप वाले ब्रह्म का नाश कहो औ दुखी जीव को परिशेषहि नाम बाकी मानो तब वेदोद्यम कहिये श्रुतियों का उपक्रम आदिक लिङ्गों से कहना सब व्यर्थ ही हुआ, किञ्चित् मात्र भी उसने सफलता न पाई॥ ३१७॥

जो तुम जीवहि बाध बखानो । मोक्ष कहो तब काको ठानो ।
याते अपनो देखे नाश । ताते सब जन होहि उदास ॥३१८॥
यह है नियम जगत के माहीं । ता व्यभिचार सु देख्यो नाहीं ।
मोक्ष बखाने शास्त्र जोई । तामों नाहिं प्रवृत्ते कोई ॥३१९॥
उलटे द्वेष करे ता माहीं । नाशक माहिं यही भव माहीं ।

अब उक्तार्थ में शंकापूर्वक समाधान का प्रतिपादन ।

पूर्वपक्षी—

नाशक जो भव भीतर अग्न । सती होय ताही मों मग्न ।३२०॥
ताते नियम तुम्हारो जोई । है व्यभिचारी सत्य न सोई ।

सिद्धान्ती—

सत्य नियम व्यभिचार न कोई । नाशक नारी लखे न सोई ॥३२१॥
बिन भर्ता जोई दुख हइये । नाश वही नारी उर पइये ।
ताही ते वह अति भय पावे । पावकको सम्मुख चलि आवे ॥३२२॥
लक्षभंगुर देह करौं मैं नाश । जाय गहौं भर्ता को पास ।
या विधि देह नाश तहि देखे । अपनो नाश न तामों पेखे ॥३२३॥

कहे दोषो से ब्रह्म का छोड़ जीव का कहो, तब मुक्ति किसकी होवेगी ? यह कहे "जो" इति, मोक्ष कहो तब काको ठानो कहिये मोक्ष कहो तब किसकी कहोगे अर्थात् शास्त्रजन्यज्ञान से अपना नाश होने कर काहू की नहीं कह सकोगे ऐसे भये मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र में कोई नहीं प्रवृत्त होवेगा, उलटे द्वेष करेंगे सोई कहे "याते" इति ।।३१८-३१९॥

उलटे तिस शास्त्र में द्वेष करेंगे याते नाश करने वाले विषे नेम से यही कहिये द्वेष ही होवे है संसार विषे । कहे नेम में व्यभिचार की आशंका करे एक देशी "नाशक" इति ।। ३२० ।।

ताते नाम अपने नाशक में भी सती को मग्न होने ते । व्यभिचार वारण करे सिद्धान्ती "सत्य" इति, सोई नाम अग्नि ।। ३२१ ।।

अग्नि नारि नाशक नहिं लखे तब हृदय में नाशक काको माने है ? तहां कहे "बिन" इति, ताही ते नाम भर्ता के वियोग-जन्य दुख ते ।। ३२२-३२३ ।।

याही ते पैठे तामाहीं। द्वेष न करे सो ताके माहीं।
ताते सत्य नियम वह अहे। ता व्यभिचार न कोई लहे ॥३२४॥
या विधि और मतन के माहीं। दूषण गण कछु गने न जाहीं।
दोषहीन पैण्डो है जोई। वृद्ध बखाने 'शंकर' सोई ॥३२५॥
पूर्वपक्षी—
ननु वह कौन पंथ भव अहे। याको प्रकट आचार्य कहे।
पूर्वपक्षी—
श्रुतिसीमंतमणी के माहीं। प्रकट लक्षणा मानी ताहीं ॥३२६॥

ताते नाम अग्नि को नाशक न देखने ते, वह नेम सच्चा है, ताका व्यभिचार काहू को नहीं प्राप्त होवें याते "शास्त्र, प्रवृत्त्ययोग्यम्, नाशकत्वात्, सर्पवत्" या अनुमान से शास्त्र में नाशकता निश्चय कर पुरुष प्रवृत्ति की हानि प्रसंग ते ब्रह्मवत् जीव का भी बाध मत मानो इस प्रकार बाध समानाधिकरण दूर होने ते मुख्य समानाधिकरणअर्थ लक्षणा अवश्य माननी ऐसे भये पूर्व जो "तत्त्वमसि" आदिकों में लक्षणा बिना ही निर्वाह होवे है यह धर्मराज का मत कह्या सो भी असंगत है, काहे ते? "जिस धर्म वाले अर्थ में पद की शक्ति होवे है, उसते न्यून्वा अधिक अर्थ लक्षणा से भान होवे है" शक्ति से उस धर्म वाले अर्थ को ही प्रतीति होव है यह नियम है याते घटादि पदों की जाति विशिष्ट में शक्ति मानकर व्यक्ति मात्र का बोध पद ते लक्षणा विना कहना युक्ति रहित है जाति विशिष्ट व्यक्ति में शक्ति न अङ्गीकार करे औ व्यक्तिमात्र में शक्ति अंगीकार करे तौ व्यक्तिमात्र का ज्ञान घटादिक पदन ते बने, सों अंगीकार नहीं करी, किन्तु विशेष्य मात्र का बोध विशिष्ट वाचक पद की शक्ति से होवे है यह वेदान्त परिभाषाकार का लेख है सो गदाधरादिक पण्डितों के किये या विचार के ग्रन्थ (शक्तिवादआदिक) देखने वाले पुरुषों को शोभन नहीं प्रतीत होवे, याते अखण्ड बोध कीं सिद्धि हेतु महावाक्य में लक्षणा अवश्य माननी ॥ ३२४ ॥

पैण्डो नाम मार्ग ॥ ३२५ ॥

आशंका समाधान से भाग त्याग लक्षणा रूप दोष हीन पौण्डा दिखावन हेतु प्रश्न करे मुख से वादी "ननु" इति, उत्तर कहे "श्रुति" इति,

सिद्धान्ती—

ननु लक्षणा पक्ष उचाऱ्यो । अधिक संदेह विषे मोहि डाऱ्यो ।
गंगा माहि घोष इक हइये । या विधि जहत्स्वार्थहि पइये॥३२७॥
उत यष्टी को करो प्रवेश । भई अबेर नहिं लहे कलेश ।
अजहत्स्वार्थ या विधि हइये । ता विशिष्ट अर्थान्तर लहिये। ३२८॥
अथवा देवदत्त यह सोई । या विधि भाग त्यागहि होई ।
या विधि कोइक अहे संदेह । तुम्हें निवेद्यो करुणागेह ॥३२९॥
जो तुम भाग त्यागहि मानो । तो इक और संदेह पछानो ।
सो क्या है तत्पद के माहीं । अथवा केवल त्वं पद माहीं ॥३३०॥

श्रुति सीमन्तमणि नाम वेदान्त चुड़ामणि (विवेक चूड़ामणि) विषे, ताहीं नाम आचार्य ने लक्षणा अंगीकार करी है, ताते तिनकी उक्ति साथ अविरोध की इच्छा कर सब ने वही कहनी ॥ ३२६ ॥

काहू एक के निर्णय रहित लक्षणामात्र का नाम श्रवण कर पुनः आशंका करे "ननु" इति, अधिक सन्देह स्फुट करे "गङ्गा" इति, गङ्गा माहि घोष इक हइये नाम गङ्गा में एक गूजरों का ग्राम है इस काहू प्रति काहू दुग्धाकांक्षी के कहे वाक्य में, गंगा पद वाच्य देवनदी प्रवाह में गूजर ग्राम के असम्भव ते गंगा पद की तोर में जैसे, त्याग देवे पद अपने सम्पूर्ण—वाच्यार्थ को जिस वृत्ति में ऐसी जहल्लक्षणा स्वार्थ अर्थात् (जहती लक्षणा है), या विधि कहिये इस प्रकार वाक्य में, जहत्स्वार्थहि नाम जहल्लक्षणा है ॥ ३२७ ॥

उत नाम अथवा यष्टी कहिये दण्ड का प्रवेश करो अबेर हुई है क्लेश न पावे इस वांक्य में "यष्टी" पद की और अर्थ को ग्रहण करते हुये नहीं त्यागे है पद अपना अर्थ जिस वृत्ति में ऐसी अजहत्स्वार्थ (अजहती लक्षणा है) या विधि कहिये इस प्रकार महावाक्य में भी अजहती लक्षणा है जिससे ता विशिष्ट नाम "तत् त्वम्" पदों के वाच्यार्थों के सम्बन्धी और पदार्थों का भी लाभ होवे है ॥ ३२८-३२९ ॥

भाग त्याग माने है याते सन्देह मत कर ? यह कहो तब एक और सन्देह है सोई कहे "जो इति, सन्देह स्फुट करे "सो" हति ॥ ३३० ॥

अथवा उभय विषे वह हइये । द्वितीय संदेह सु या विधि पइये ।

सिद्धान्ती—

त्रिक दोनों में अंतिम सार । यही सत्य उर अंतर धार ॥३३१॥

तीर समान तृतीय नहिं कोई । जहती सो कहु कैसे होई ।

विरुद्ध विशेषण को अनुरोध । है सु अजहती माहिं विरोध ॥३३२॥

दोहा

दोनों के परिहार ते, भई तीसरी जान ।
भागसुत्याग बखानिये, नीके ता उर मान ॥ ३३३ ॥

चौपाई

सो नहिं केवल तत्पद माहीं । तैसेही त्वंपद मों नाहीं ।

ज्यों नाहीं सो कहो प्रकार । निर्विरुद्ध उर अंतर धार ॥३३४॥

गुरु सन्देह नाशक उत्तर कहे "त्रिक" इति ॥ ३३१ ॥

जहती ही काहे नहीं ? तहां कहे "तीर" इति, तीर समान तृतीय नहिं कोई कहिये सारे वाच्य भाग को त्याग के गङ्गा पद के लक्ष्य तीर-वत् इहां "तत्, त्वम्" के वाच्यन में प्रविष्ट अद्वयानन्द प्रत्यक् बोध चेतन भाग को त्याग के जाके ज्ञान से मोक्ष होवे ऐसा तीसरा कोई है नहीं, याते महा वाक्य में जहती लक्षणा कहो कैसे होवे अर्थात् नवीन ज्ञेय की प्राप्ति प्रसंग ते काहू रीति से नही होवे, मत होवे जहती, अजहती ही होवे ? तहां कहे "विरुद्ध" इति, जिनके परिहारार्थ लक्षणा का अंगीकार है अजहती में सारे वाच्य का ग्रहण रहने से वह विरुद्ध विशेषण त्यागे नहीं जावे, याते तिन विरुद्ध विशेषणों के, अनुरोध नाम अनुसार से अर्थात् विरुद्ध विशेषणों का ग्रहण रहने से अजहती से भी महावाक्य में विरोध है याते वह भी नहीं बने ॥ ३३२ ॥

ननु दोनों के परिहार ते कौन रही ? तहां कहे "भई" इति ॥ ३३३ ॥

ननु होवे तीसरी परन्तु जैसे "गर्दभ-पशुअश्व है" इहां गर्दभत्व धर्म विशिष्ट पशु की आश्वत्व धर्म विशिष्ट साथ एकता कहने में विरोध रह्या भी "पशु अश्व है" इस प्रकार गर्दभत्व धर्म रहित शुद्ध पशु को अश्वत्व धर्म विशिष्ट कहने में विरोध नहीं, तैसे अपरोक्षत्वादिक धर्म विशिष्ट चेतन से परोक्षत्वादिक धर्म विशिष्ट चेतन की एकता विरुद्ध

तत्पद अर्थ अहै चिद् जोई । ताही त्याग करे जे कोई ।
केवल जड़ परिशेषहि होई । चेतन जीव अभिन्न न सोई ॥३३५॥
गहे जे ताको चेतन भाग । केवल जड़को करे सु त्याग ।
ता विशिष्ट जीव है जोई । तासों शुद्ध मिले नहिं सोई ॥३३६॥

पूर्वपक्षी—

जीव माहिं चेतनता जोई । तासों शुद्ध मिलेगो सोई ।

सिद्धान्ती—

एक देश अन्वय पुनि होई । तीर्थङ्कार निषेधे सोई ॥३३७॥

"पदार्थः पदार्थेनैवान्वेति न तु पदार्थैकदेशेन" इति

भी है, परन्तु जीव वाचक पद वा ईश वाचक पद की प्रत्यक् बोध वा अद्वयानन्द में लक्षणा करके प्रत्यक् बोध की परोक्षत्वादिक धर्म विशिष्ट के साथ वा अद्वयानन्द की अपरोक्षत्वादिक धर्म विशिष्ट के साथ एकता कहने में विरोध नहीं, याते "तत्" पद में अथवा "त्वम्" पद में ही लक्षणा कहनी ? यह आशंका कर कहे "सो" इति ॥ ३३४ ॥

परिहार कहे "तत् पद" इति, चेतन जीव अभिन्न न सोई कहिये विरुद्ध धर्मों वाले तेज तिमिर का अभेद न देखने से वह जड़ अंश चेतन जीव साथ अभिन्न नहीं होवेगा ॥ ३३५ ॥

याते जिसकी चेतनता को गहे नाम ग्रहण करके, केवल जड़ का त्याग करो, तब विशिष्ट नाम जड़ देश सहित चेतन जो जीव है ताके साथ विरोध से वह शुद्ध देश नहीं मिलेगा ॥ ३३६ ॥

ननु जीव पद के वाच्य जड़ चेतन दो देशों में तत् पद के लक्ष्य चेतन का जड़ देश साथ विरोध होने ते अन्वय न भये भी एक देश चेतन साथ ही होवे ? यह आशंका करे "जीव" इति, सिद्धान्ती परिहार करे "एक देश" इति एक देश अन्वय पुनि होई कहिये विरोध से जड़ देश को छोड़ कर चेतन देश साथ "तत्" पद के लक्ष्य का अन्वय अंगीकार करो तब वह पुनः एक देश साथ अन्वय होवेगा औ सोई नाम यह एक देश साथ अन्वय, जेकर पद के अर्थ के एक देश साथ भी अन्वय अंगीकार कर लेवे तब नित्य पद के अर्थ साथ घटत्व जाति का अन्वय बनने से अबाधित अर्थ विषयक बोध का जनक होने से "नित्यो घटः" यह वाक्य भी प्रमाण होवेगा याते एक देश साथ अन्वय नहीं बने, ऐसे कहते

त्वंपद अर्थ विषे यह रीत। सुधी विचार करे निज चीत।
ताते दुहुँ माहिं यह अहे। भागत्याग सुधी उर गहे ॥३३८॥

सोरठा

यह सकली पुनि रीति, श्रीशंकर निज मुख कही।
अब निर्धारो चीत, दोष रहित समझो सदा ॥३३९॥

चौपाई

पूर्वपक्षी—
इसी रीति तुम भाखी जोई। शंकर कहाँ बखानी सोई।
सिद्धान्ती—
'वाक्यवृत्ति' में भाखी जोई। रीति सकल संशय नहिं कोई ॥३४०॥

तथाच तद् वाक्यम्

श्लोक

"तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा।
सोऽयमित्यादिवाक्यस्थपदयोरिव नापरा" ॥

तीर्थंकार नाम ग्रन्थकार निषेध करे है याते एक देश साथ अन्वय नहीं कहना ॥ ३३७ ॥

ग्रन्थकारो का युक्ति सिद्ध निषेधक वाक्य पढ़े "पदार्थः" इति, पदार्थः—पद का अर्थ, पदार्थेन—पद के अर्थ साथ, अन्वेति-अन्वित होवे है अर्थात् मिले है, नतु पदार्थैक देशेन—नहीं पुनः पदार्थ के एकदेश साथ मिले, इति नाम यह ग्रन्थकारों का युक्ति सिद्ध निषेधक वाक्य है याते लक्षणावृत्ति से प्राप्त तत् पद के पूर्ण अर्थ चेतन का "नित्यो घटः" वाक्य को प्रमाणता भय ते एक देश चेतन साथ अन्वय नहीं होवे, ऐसे ही "त्वम्" पद में लक्षणा मान कर तेज तिमिर वत् विरोध ते जड़ अंश को छोड़ कर चेतन का "तत्" पद के एकदेश चेतन साथ अन्वय करे सो भी नहीं होवे, याते कहे दोषों से दो ही पदों में लक्षणा माननी सोंई कहे "त्वं पद" इति ॥ ३३८ ॥

कही रीति से स्वकपोलकल्पितता वारण करे "यह" इति ॥ ३३९ ॥

कपट परीक्षा हेतु पूर्व पक्षी आशंका करे "इसी" इति। सिद्धान्ती उत्तर कहे "वाक्य" इति ॥ ३४० ॥

सवैया

जिनके पद पंकज लोक भजे, अरु देवन के दुख जाहिं निवारे।
कमलासन सेवत जाहिं सदा, अरु शंकर जा पदकंज चितारे ॥
जग जाहिं अचार उदार सदा, अरु धारत ही भव बंधन टारे ।
अज नंदन को सुत राम वही, मुखपंकज ते यहिरीति उचारे॥३४१॥

तथाच तद्वाक्यम्

श्लोक

"एकात्मकत्वाज्जहती न संभवेत् तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयं पदार्थाविव भागलक्षणा युज्येत तत्त्वंपदयोरदोषतः" ॥

चौपाई

जहाँ जहाँ विरोधी जेतो । सुधी त्यागे सकले तेतो ।
'नेति नेति' कर सकल निवारे। तत्पद अर्थ शुद्ध निर्धारे ॥३४२॥

ननु पूर्व कही जहती आदिकों में महावाक्य में कौन है ? यह शिष्य की आशंका श्रवण कर आचार्य का कह्या उत्तर वाक्य कहे "तथा च" इति, तत्त्वमस्यादिवाक्येषु-- तत्वमस्यादि वाक्यन विषे, लक्षणा-भाग लक्षणा—भाग त्याग रूप ही लक्षणा है, लक्ष्य-वस्तु का वाच्यार्थ में ही अन्तर्भाव होने ते जहती आदि कोई नहीं, कहे अर्थ में अनुकूल दृष्टान्त कहे "सो ऽयम्" इति, सोऽमित्यादि वाक्यस्थयदयोरिव—सोऽयं देवदत्त इत्यादि वाक्यन में स्थित परोक्ष अपरोक्ष देश काल विशिष्ट वस्तु के वाचक"सो, अयम्" पदो में परस्पर विरुद्ध परोक्षत्व अपरोक्षत्व के परिहारार्थ जैसे एक भाग लक्षणा है, नापरा—और जहती अजहती नहीं, तैसे इहां भी वही है, जहती अजहती नहीं । कहे अर्थ में एक सम्मति कह कर दूसरी कहने का प्रकार रचे "जिनके" इति, अजनन्दनकोसुत—दशरथ का पुत्र राम ॥ ३४१ ॥

महावाक्यन में जहती आदिकों में कौन है यह लक्ष्मण की आशंका श्रवण कर कहे राम के उत्तर वाक्य को कहे "तथा च" इति, एकात्मकत्वात् जहती न सम्भवेत् नाम वाच्य में प्रविष्ट चेतन वस्तु को एक होने ते अर्थात् तीर समानता के अभाव ते जहती नहीं बने, तथा ऽ जहल्लक्षणता विरोधतः नाम वाच्यन में प्रविष्ट धर्मों के विरोध ते जहतीवत् अजह-

नहिं परमाणु नहिं स्थूल। कार्य नाहिं न ताको मूल।
या विधि ता बिन हइये जोई। ताहि निषेध लखे शुद्ध सोई ॥३४३॥

ल्लक्षणा भी नहीं बने, याते—सोऽयं यदार्थाविव भागलक्षणा युज्येत नाम परोक्ष अपरोक्ष देश काल विशिष्ट देवदत्त के वाचक "सो अयम्" पदार्थों के विरोध-परिहार वास्ते जहती अजहती को छोड़ कर जैसे भाग लक्षणा जुड़े है ऐसे, तत् त्वम् पदयोरदोषतः नाम तत् त्वं पदों के अर्थों में दोष के अभाव ते वही जुड़े है। जहती, अजहती नही, कही रीति से विधि वाक्य गत पद दो में लक्षणा स्थापन करता हुआ सम्पूर्ण विधि वाक्यन को शुद्ध निर्धारकता दिखाय के अब निषेध वाक्यन को भी शुद्ध निर्धारकता दिखावने हेतु प्रथम "तत्पद लक्ष्य पछानो सोई" पर्यन्त से तत् पद का तदनन्तर "त्वं पद लक्ष्य पछानो सोई" पर्यन्त से त्वं पद का लक्ष्य शुद्ध दिखावन का आरम्भ करे "जहां" इति, जहां जहां कहिये जिस जिस प्रकरण में "तत्" पदार्थ विषे जितने कोई विरोधी धर्म प्रतीत होवे है, सुधी त्यागे कहिये "नेति नेति" इत्यादि निषेध वाक्यन से बुद्धिमान् तिन सबको त्याग के शुद्ध लखे, सोई कहे "नेति" इति, नेति नेति कर सकला निवारे कहिये सूक्ष्म नहीं, स्थूल नहीं, इस रीति से सम्पूर्ण अनात्मा की निवृत्ति करे औ निवृत्ति करके तत् पद के लक्ष्य अर्थ को शुद्ध निर्णय करे ॥ ३४२ ॥

अर्थ ते निषेध द्वारा शुद्ध निर्धारक वाक्यान्तर पड़े "नहिं" इति, नहिं परमाणु कहिये वह ब्रह्म वस्तु परमाणु स्वरूप नहीं, तथा स्थूल रूप नहीं, पुनः वाका कोई कार्य नहीं तैसे न मूल वाका कोई कारण नहीं, या विधि नाम इस रीति से तिस ब्रह्म बिना जितना कोई अनात्म वर्ग है, ताहि नाम तिस सर्व का त्याग करके, सोई नाम वह ब्रह्म वस्तु शुद्ध है ऐसे निषेध वाक्यन से शुद्ध लखे है, पुनः निषेध वाक्यन के अनुसारी विधि वाक्यन से (भी) शुद्ध लखे है विधि वाक्य को निषेध वाक्यन को अनुसारता इस रीति से है—वास्तविक ते सत्यादि विधि वाक्य "नेति नेति" इत्यादि निषेध वाक्य के इतर व्यावृत्ति कर बोधन रूप स्वभाव को आलम्बन करके अखण्ड बोधन करते हुये निषेध मुख उपदेश की प्रधानता को ही द्योतन करे है तथाहि—सत्यादि वाक्यन में "सत्य" पद असत् की व्यावृत्ति से, और "ज्ञान" पद जड़ की व्यावृत्ति से "आनन्द" पद दुख की व्यावृत्ति से शुद्ध ब्रह्म में पर्यवसान पावे है, याते निषेध मुख

निषेधवाक्यद्वारा शुद्धज्ञान के अभाव की शंका।

पूर्वपक्षी—

निषेधद्वारा शुद्ध ज्ञान। लोक विषे नहिं होवे भान।
यह नहिं अरु पुनि यह नहिं होई। या विधि शुद्ध लखे नहिं कोई।।३४४

अब सिद्धान्ती कर उक्त शंका का समाधान।

सिद्धान्ती—

निषेध द्वारा शुद्ध ज्ञान। यहि विधि होय सु करौं वखान।
ज्यों को महाराज भव माहीं बैठे जाय बगीचे माहीं ।।३४५।।
स्व-समान पुरुष बहुतेरे। चारों ओर रहे तिहि घेरे।
छत्रहि चामर बहुत प्रकार। ढुले चुफेरे वारंवार ।।३४६।।
कोइक बालक जाने नाहीं। महाराज को या वन माहीं।
नरपति को ज्ञाता नर जोई। तासों पूछे बालक सोई ।।३४७।।
भूमंडन प्रजाप्रतिपाल। राजा कौन, कहो मुहि दयाल।
उत्तरको दाता नर जोई। निज मन माहिं विचारे सोई।। ३४८।।

उपदेश को प्रधानता में ही तात्पर्य है औ निषेध मुख से प्रवृत्ति का आश्रयण भी शास्त्र ने प्रेमयानुसारी होकर प्रमाणता लाभ अथ करिये है, अन्यथा अवशिष्ट वस्तु को विशिष्टता कर बोधन ते, विधि शास्त्र अप्रमाण होवेगा, जेकर गो स्थान में जाकर कौन मेरी गो ? पूछते प्रति श्रृङ्ग ग्रहण से व्यक्ति-दिखावते गोपवत् साक्षात् बोधन रूप व्यापार को त्याग के, इतर का निषेध बोधन रूप व्यापार से प्रवृत्त हुए को विधि शास्त्रता कैसे ? यह आशंका होवे तब सत्यादि वाक्यन को जो प्रथम विशिष्ट वाचक पदों से ब्रह्म बोधन में प्रवृत्ति तावन्मात्र से ही विधि शास्त्रत्व व्यवहार सम्भवे ।। ३४३ ।।

लोक में प्रायः निषेध वाक्यन को शुद्ध निर्धारकता न देखकर आशंका करे "निषेध" इति, न भान होना कहे "यह" इति ।। ३४४ ।।

दृष्टान्त में लौकिक वाक्यन को शुद्ध निर्धारकता देखता परिहार करे "निषेध" इति, दृष्टान्त कहे "ज्यों" इति ।। ३४५-३४६-३४७ ।।

बालक का प्रश्न वाक्य कहे "भू" इति, "राजा कौन" पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ।। ३४८ ।।

जो आगे सो नरपति हइये । ऐसे उत्तर याहि न पइये ।
जो ऐसे मैं करौं बखान । बालक लये और को मान ॥३४९॥
यह अति मूर्ख ताहि न जाने किह विधि नरपति को पहिचाने ।
यों विचार उत्तर वह भाखे । ता बिन और दूर कर नाखे ॥३५०॥
नहिं द्रुम, अश्व, गजादिक, जेते । रथ, पदाती, आहि न तेते ।
आयुध हीन स्थंडिल पास । नर में नहिं नरपतिको आश ॥३५१॥
तुरी न छत्र चामर होई । जिन करकंज न नरपतिसोई ।
ताके मध्य वधूगण जेतो । नरपति नाहिं पछानो तेतो ॥३५२॥
नील कंचुक राजा नहि हइये । कंचुक पीत तथा नहिं पइये ।
चित्रपटी नहिं यामों अहे । अरु नहिं स्वर्ण खड्ग को गहे॥३५३॥
स्वर्ण धनुष जाके कर माहीं । जा नरमें नरपति सो नाहीं
याविधि महाराज बिन जेते । सकल निषेधे वक्ता तेते ॥३५४॥
परिशेष रह्यो तामों नर जोई । नरपति बाल पछान्यो सोई ।

अब उक्तार्थ का स्पष्टीकरण करते हैं ।

चौपाई

स्वर्ण वर्ण अंग हैं जाके । बहु विधि भूषण सोभे वाके ॥३५५॥
चामर चार ओर ते फिरे । हंस समान श्वेतता धरे ।
बारवधू करकंजन माहीं । चामर फिरे शीश पुनि जाहीं॥३५६॥
दो दृग कंजप्रभा को हरे । भुज भुजंगसारता धरे ।
धर्म रूप राजा जगमाहीं । बालक यों धारे उरमाहीं ॥३५७॥

ऐसे उत्तर याहि न पइये कहिये ऐसा उत्तर इसको देना नहीं बने, न देना बनने में हेतु कहे "जो" इति ॥ ३४९ ॥

यह नाम नरपति का ज्ञाता (जानने की इच्छा वाला) ॥ ३५० ॥

उत्तर वाक्य कहे "नहिं" इति, स्थण्डिल नाम चबूतरा ॥ ३५१ ॥

तुरी नाम तुरी तुरमादि रूप वाजे विशेष भी राजा नहीं ॥ ३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७ ॥

अतद्व्यावर्तक वाक्य सु जेई। ब्रह्म जनावे तैसे तेई।

निषेधमुख वाक्यों के समान ही विधिमुख वाक्यों का शुद्धब्रह्म में सिद्धान्त दिखाते हैं।

चौपाई

अरु पुनि विधिमुख वाक्य हजार। ब्रह्म जनावे बारंबार ॥३५८॥
जिनके जाने सर्वहि ज्ञान। निज मुख श्रुति सु करे बखान।
सत्य रु चेतन आनंद रूप। है परमातम सर्व स्वरूप ॥३५९॥

दार्ष्टान्तिक में कहे "अतद् इति, तद्-ब्रह्म से भिन्न अतद्-अनात्मा ते ब्रह्म के व्यावर्तक नाम भेदक जो "नहिं परमाणु" इत्यादि वाक्य हैं, वह तैसे नाम "नहिं द्रुम अश्व" इत्यादि निषेध वाक्यन के समान ब्रह्म की इतरों से व्यावृत्ति करते हुए ब्रह्म को शुद्धता बोधन करे हैं, निषेध वाक्यन के समान विधि वाक्य भी ब्रह्म को शुद्ध ही कहे हैं सोई कहे "अरु पुनि" इति, विधि कहिये साक्षात् बोधन रूप व्यापार, मुख नाम प्रधान जिनों में, ऐसे एक के विज्ञान से सर्व का ज्ञान कहते अर्थवाद वाक्य औ सत्यादिक स्वरूप लक्षण पर हजारों विधि वाक्य भी बारम्बार ब्रह्म को शुद्ध ही बोधन करे हैं ॥ ३५८ ॥

अर्थ ते ब्रह्म बोधक विधि मुख्य अर्थवाद पुनः स्वरूप लक्षण वाक्य पढ़े "जिनके" इति, जिनके जाने सर्वहिं ज्ञान कहिये जिस परमात्मा के जानने से सर्व का ज्ञान होवे है ऐसे श्रुति कहे है वह, सत्य रु चेतन आनन्द रूप कहिये सच्चिदानन्द रूप परमात्मा सर्व रूप है ऐसे जानना, इहां यह तात्पर्य है=जेकर सर्व वस्तु ब्रह्म भिन्न होवे तब पट के ज्ञान से घटादिकों के न जाननेवत् ब्रह्म के जानने से तिनका भी जानना न बने, याते ब्रह्म भिन्न नहीं, ऐसे अर्थ ते सर्व को मिथ्यात्व बोधन करती श्रुति ब्रह्म को शुद्ध जनावे है पुनः "यतो वाचो निवर्तन्ते" श्रुति से ब्रह्म को सर्व पदों की वाच्यता का निषेध श्रवण ते सत्यादि स्वरूप लक्षण वाक्य भी लक्षणा वृत्ति से ब्रह्म को शुद्ध जनावे है याते निषेध वाक्यनवत् स्वरूप औ तटस्थ लक्षण पर विधि वाक्यन से भी शुद्ध का ही बोध होवे है ॥ ३५९ ॥

शुद्ध बोधक लक्षण में गुरुप्रमाणं का कथन।

(भुजंगप्रयात छन्द)

भये भूममाहीं बड़े जे हमारे।
तिने लक्षणं ब्रह्मके सो उचारे॥
भली रीति सो "जाप" माहीं प्रकाशी।
सदा सच्चिदानंद शत्रु प्रणाशी॥ ३६०॥

चौपाई

या विधि निखिल अनातम टारे। तत्पद लक्ष्य सदा निर्धारे।
सच्चिदानंद परिपूर्ण जोई। तत्पद लक्ष्य पछानो सोई॥३६१॥
अरु पुनि त्वंपद अर्थ सु जोई। याही विधि शोधे नर सोई।
नहिं यह देह न इंद्रिय हइये। नहिं पुनि प्राण मनो नहिं पइये॥ ३६२॥
विज्ञानकोश आतम नहिं जानो। आनंदकोश न आतम मानो।
चित अहंकारादिक सब जेते। आतम नाहिं पछानो तेते॥३६३॥
याहि अनातम रूप सु जेतो। सुधी सु त्यागे सकलो तेतो।
जिहिं विधि ते नहिं आतम होई। द्वितीयनिवास कही विधि सोई३६४

वही शुद्ध बोधक लक्षण हमारे बड़ों ने भी कहे हैं यह जनावे "भये" इति, सो नाम "सत्यं ज्ञान मनन्त ब्रह्म" इस श्रुति में कहे सत्यादिक ही, कहां कहे है? तहां कहे "जाप" इति, लक्षण वाक्य कहे "सदा" इति, सदा-सर्वदा काल है, औ सच्चिद् आनन्द स्वरूप है यह स्वरूप लक्षण कह्या और शत्रु प्रणाशी कहिये शत्रुओं का नाश कर्ता अर्थात् प्रजा की रक्षा रूप स्थिति करता यह उत्पत्यादिकों का उपलक्षण तटस्थ लक्षण कह्या, शुद्ध बोधकता दोनों को कही रीति से जान लेनी॥ ३६०॥

"तत्" पद लक्ष्य शोधन की समाप्ति करे "या विधि" इति, या विधि नाम कही रीति से विधि निषेध वाक्यन कर सम्पूर्ण अनात्मा को दूर करता हुआ "तत्" पद के लक्ष्य को निर्णय करे, वह लक्ष्य भी ऐसा जाने सोई कहे "सच्चिदानन्द" इति॥ ३६१॥

"तत्" पद लक्ष्य शोधन की रीति ही "त्वं" पद लक्ष्य में कहे "अरु पुनि" इति, शोधन प्रकार बतावे "नहिं" इति॥३६२-३६३-३६४॥

देहादिवर्ग प्रकाशक जानो । एक असंगहि अक्रिय मानो ।
अकर्ता पाप रहित चिद् रूप । भोग हीन निज आतम रूप ॥३६५॥

अब उक्तार्थ का ही पुनः स्पष्टीकरण ।

प्रत्यक् बोध सनातन सार । 'त्वंपद' लक्ष्य सदा निर्धार ।
मनो बुद्धि साक्षी चिद् जोई । 'त्वंपद' लक्ष्य पछानो सोई ॥३६६॥
या विधि लक्षण लक्ष्य विचारे । भली प्रकार चित्त में धारे ।
लक्षणको पुनि विनिमय करे । विरोध आशंका को परिहरे ॥३६७॥
प्रत्यक् बोध अहे चिद् जोई । अद्वयानंद पछानो सोई ।
अद्वयानंद अहे चिद् जोई । प्रत्यक् बोध लखो उर सोई । ३६८॥
या विधिको विनिमय है जोई । 'वाक्यवृत्ति' में भाख्यो सोई ।

पूर्वपक्षी—

कौन वाक्य में भाख्यो सोई ।

सिद्धान्ती— सुनिये प्रकट वाक्य है जोई ॥३६९॥

देहादि व्यावृत्त आत्मा का स्वरूप कैसा जाने ? तहां कहे "देहादि" इति ॥ ३६५ ॥

प्रत्यक् नाम असज्जड़ दुख रूप देहादिकों से उलटा सच्चिदानन्द रूप होकर तिनको प्रकाशने वाला, बोध—ज्ञान रूप है, पुरातन है, श्रेष्ठ है। ऐसे "त्वं" पद के लक्ष्य को निश्चय करो, विस्तार से कही बात को संक्षेप ते कहे "मनो" इति ॥ ३६६ ॥

या विधि लक्षण लक्ष्य विचारे कहिये पूर्व कही रीति से लक्षणों द्वारा तत् त्वं पद के लक्ष्य भागों का विचार कर भली प्रकार चित्तविषे धारण करे औ धारण करके लक्षण को कहिये लक्ष्य भागों को, पुनि विनिमय नाम उलटा सुलटा करे अर्थात् तत् पद के लक्ष्य में परोक्षत्वादि भ्रम निवृत्ति हेतु, त्वं पद के लक्ष्य का उपदेश करके, तत् पद के लक्ष्य का "त्वं तत्" ऐसा विधान करे, एवं त्वं पद के लक्ष्य में परिच्छिन्नता भ्रम की निवृत्ति हेतु तत् पदके लक्ष्य का उपदेश कर "त्वं" पद के अर्थ का "अद्वयानन्द प्रत्यक् बोध है" ऐसा विधान करे ॥ ३६७ ॥

सोई दिखावे "प्रत्यक्" इति ॥ ३६८ ॥

कही रीति के विनिमय में स्वकपोल कल्पना वारण हेतु सम्मति कहे

तथाच तद्वाक्यम्

"प्रत्यक्बोधो य आभाति सोऽद्वयानन्दलक्षणः ।
अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यक्बोधैकलक्षणः" ॥

चौपाई

या विधि कीने विनिमय जबही । होय अखंड अर्थ पुनि तबही ।
या विधि वाक्य विचारे जोई । दृढ़ विज्ञान ताहि को होई ॥३७०॥
'अहंब्रह्म' जो उपजे ज्ञान । सोई करे सकल भव हान ।
त्रिविधि भेद सब दूर विनाशे । जीव रु ब्रह्म अभेद प्रकाशे ॥३७१॥

"या विधि" इति, प्रश्न करे "कौन इति, उत्तर कहे "सुनिबे" इति ॥ ३६९ ॥

वाक्य का अवतार करे, "तथा" इति, प्रत्यक् बोधो यः नाम "न यह देह न इन्द्रिय" इत्यादि वाक्य शोधित देह आदिकों से उलटा होकर तिनका प्रकाशक जो ज्ञान, आभाति—आ-समन्तात् परिच्छेदक देह आदिक उपाधियों के विवेचन ते सर्व देशों कालों वस्तुओं विषे स्फुरण होवे है, यह त्वं पद के लक्ष्य का उपदेश करके सोऽद्या-नन्द लक्षणः, नाम वह "एक मेवाद्वितीयम्" इत्यादि श्रुतियों से त्रिविध भेद रहित सुख स्वरूप है यह तत् पद के लक्ष्य को विधेयता कथन है "आनन्द" यह पद सत्य औ ज्ञान का भी उपलक्षण है, इस कहने से "त्वमेव तत्" यह वाक्यार्थ दिखाया ऐसे आगे भी अद्वयानन्दरूपश्च नाम पुनः अद्वया-नन्द रूप, प्रत्यक् बोधैक लक्षणः कहिये प्रत्यक् बोध रूप है यह "तत् ही त्वं हैं ऐसा वाक्यार्थ दिखाया, या विधि कीने विनिमय जबही नाम कही रीति का जब विनिमय किया तब ही नाम तिसी काल में अखण्ड अर्थ की सिद्धि होवे है, इस प्रकार अभेद सिद्ध कर भेद निराश की समाप्ति सूचन करे "या विधि" इति, या विधि नाम तीसरे अध्याय (निवास) के आरम्भ से लेकर कही रीति से जो पुरुष "तत्त्वमसि" इस वाक्य का विचार करे, विज्ञान नाम ब्रह्म का आत्म रूप कर साक्षात्कार तिसको प्राप्त होवे है ॥ ३७० ॥

"दृढ" इत्यादि पाठ का ही अर्थ कहे "अहम्" इति ॥ ३७१ ॥

जीव ईश भेद थो जोई । यहाँ निराश भयो अब सोई ।
अखंड अर्थ को लक्षण जोई । प्रगट बखानों सुनिये सोई ॥३७२॥

अब अखंडार्थ का लक्षण प्रतिपादन करते हैं ।

कवित्त

संसर्ग ते जो हीन बाध हीनधीन काहूँ के न,
वाक्य में अखंड अर्थ सोई मानीअत है ।
प्रकृष्ट जो प्रकाश है आकाश में सो भासशशि,
और सब त्याग विधु ताहि जानिअत है ॥
प्रकर्ष औ प्रकाश जाति धर्म ते उदास, नहिं
योग भेद भास कछु पूछ्यो छानिअत है ।
चंद्रको अज्ञान कौन चन्द्रमा प्रमाण नहिं,
और कछु काम जो विवाद ठानिअत है ॥३७३॥

जीव ईश भेद थो जोई नाम जीव ईश का जो परोक्षता अपरोक्षता आदिक धर्मों कर भ्रम ते भेद प्रतीत हो रहा था वह यहां नाम विनिमय करने काल में अखण्ड भूत अभेद सिद्ध होने से सब दूर हुआ याते अखण्ड सिद्धि में वाक्य प्रमाण कह कर अभी ताका लक्षण भी प्रकट करता हूँ श्रवण करो ॥ ३७२ ॥

लक्षण सुनाने "संसर्ग ते" इति, (अन्वय) चन्द्र को अज्ञान कौन चन्द्रमा प्रमाण पूछयो छानिअत है, प्रकृष्ट जो प्रकाश है आकाश में सो भास शशि और सब त्याग विधु ताहि जानिअत है प्रकर्ष औ प्रकाश जाति धर्म ते उदास, नहिं योग भेदभास कुछ पूछयो नहिं और कछु काम सो विवाद ठानिअत है, संसर्ग ते जो हीन बाध हीन धीन काहू के न वाक्य में अखण्ड अर्थ सोई मानीअत है, यह अन्वय है, संसर्ग ते जो हीन बाध हीन कहिये जो सम्बन्ध रहित होकर बाध रहित है सो, अथवा जो धीन काहू के न नाम जाति गुणादिकों से रहित वस्तु है सो वाक्य में अखण्ड अर्थ मानिये है अर्थात् "संसर्ग ते रहित होकर बाध शून्य होना" यह अखण्ड अर्थ का लक्षण है, वा "जाति गुणादिक शून्य वस्तुत्व" यह लक्षण है, इहां यह भाव है=लौकिक वैदिक शब्द सुन कर श्रोता को प्रथम सम्पूर्ण पदों से जिन अर्थों में पूर्व शक्ति ग्रहण करी हुई है तिन अर्थों का स्मृति ज्ञान होवे

है औ स्मृति ज्ञान होकर उत्तर काल में तिन पदार्थों का परस्पर कहुँ भेद रूप कहुं अभेद रूप संसर्ग भासे है। अथवा तिस सम्बन्ध से एक पदार्थ विशिष्ट अपर पदार्थ भासे है, "संसर्ग वा विशिष्ट वाक्यार्थ कहिये है" जैसे "वीरः पुरुषः" वाक्य सुन के "वीर" पद से शूर रूप अर्थ का औ "पुरुष" पद से मनुष्य रूप अर्थ का स्मृति ज्ञान होवे है औ स्मृति ज्ञान होकर उत्तर काल में वीर पदार्थ का पुरुष पदार्थ से "वीराभिन्न पुरुष है" ऐसे अभेद संसर्ग भासे है, अथवा "अभेद सम्बन्ध से वीरविशिष्ट पुरुष भासे है" सो वाक्यार्थ हैं, इस रीति से यह एक अभेद संसर्ग का उदाहरण कह्या, भेद संसर्ग अनेक प्रकार का है याते तिसके उदाहरण भी अनेक प्रकार के है, परन्तु संक्षेप ते स्थूल रीति से एक कहे है—जैसे "घटमानय त्वम्" वाक्य सुनके "घटम्" पद से घटकर्मरूप अर्थ का, औ "आनय" पद से आनयन क्रिया रूप अर्थ का, औ "त्वम्" पद से पुरुष रूप अर्थ का, "स्मृति ज्ञान होवे है" और होकर उत्तर काल में घट कर्म पदार्थ का आनयन क्रिया पदार्थ से, औ आनयन क्रिया पदार्थ का पुरुष पदार्थ से, "घट कर्मवाली आनयन क्रिया का कर्ता तुम हो" ऐसे क्रिया कर्म भाव रूप औ कर्तृकर्तव्यभाव रूप भेद संसर्ग भासे है, वा क्रियाकर्मभाव सम्बन्ध से घट कर्म विशिष्ट आनयन क्रिया औ कर्तृ कर्तव्य भाव सम्बन्ध से आनयद क्रिया विशिष्ट पुरुष भासे है, सो वाक्यार्थ है। इस रीति से जहां वाक्य से यथार्थ वा अयथार्थ ज्ञान की उत्पत्ति होवे तहां सर्वत्र "भेद रूप संसर्ग भान होवे है" वा "इन संसर्गों से एक पदार्थ विशिष्ट अपर पदार्थ प्रतीत होवे है" बिंना संसर्ग वा विशिष्ट से वाक्यजन्यज्ञान नहीं कहीं प्रतीत होवे याते "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्य भी संसर्ग वा विशिष्ट के प्रतिपादक होने को योग्य हैं, घटमानय वाक्यवत्, यह नैयायिक आदि वादी माने हैं सो वेदान्त सिद्धान्त में प्रतिकूल है, काहे ते ? "तत्त्वमसि" महा वाक्य सुनके मुमृक्षु श्रोता को लक्षणा वृत्ति द्वारा "तत्" पद से अद्वयानन्द औ "त्वं" पद से लक्षणा द्वारा प्रत्यक् बोध की औ "असि से "है" की स्मृति होकर उत्तर काल में तत् पदार्थ का त्वं पदार्थ से वा त्वं पदार्थ का तत् पदार्थ से, "उद्वयानन्द से अभिन्न प्रत्यक् बोध है" वा "प्रत्यक् बोध से अभिन्न अद्वयानन्द हैं" ऐसे अभेद रूप वाक्यार्थ भासे है, सो अभेद संसर्ग रूप नहीं, काहे ते ? "सम्बन्धियों से भिन्न होकर तिनके आश्रित होवे" सो सम्बन्ध कहिये है, यह सम्बन्ध का मुख्य लक्षण है, सो अभेद को वस्तु का स्वरूप होने से, तामें सम्भवे नहीं,

याते यह अभेद रूप वाक्यार्थ संसर्ग नहीं, किन्तु स्वरूप है औ अभेद को को संसर्ग न होने से ही "अभेद सम्बन्ध से अद्वयानन्द–विशिष्ट प्रत्यक् बोध" वा "प्रत्यक् बोध विशिष्ट अद्वयानन्द" ऐसे विशिष्ट रूप भी वाक्यार्थ नहीं, किन्तु अखण्ड रूप अभेद भूत वाक्यार्थ संसर्गता हीन है, पुनः बाध हीन है, काहे ते ? अयथार्थ ज्ञान के विषय का बाध होवे है, यथार्थ ज्ञान के विषय का बाध नही होवे औ महावाक्य से उपजा ज्ञान, पूर्व ग्रन्थ में कही रीति से अतिशय यथार्थ है याते ताके विषय जीव ईश का अखण्ड रूप अभेद सर्वथा बाध हीन है, इस रीति से "संसर्ग ते शून्य होकर बाध हीन होना" रूप यह अखण्डअर्थ का लक्षण सिद्ध हुआ, सो जीव ईश के अभेद रूप वाक्यार्थ में भी सम्भवे है याते यह वाक्यार्थअखण्ड है, यद्वा यह लक्षण है, जैसे आकांक्षा योग्यता वाला और पद मिलाये बिना "घट है" "पट है" ऐसे केवल घट पटादि नामोच्चारण से तिनका व्यक्ति मात्र अर्थ भासे है, जाति गुणादि रूप और अर्थ नहीं भासे तैसे महावाक्य में तत् पद से अद्वयानन्द मात्र का "त्वम्" पद से प्रत्यक् बोध मात्र का भान होकर उत्तर काल में वाक्य से "अद्वयानन्दाभिन्न प्रत्यक् बोध वस्तु का, वा "प्रत्यक् बोधाभिन्न अद्वयानन्द मात्र वस्तु" का, भान ही होवे है, ईश्वरत्व, जीवत्व, आदि जाति औ कृपालुत्व, समदर्शित्वादि, गुण रूप धर्म तिस काल में कोई नहीं भासे, याते जाति गुणादि हीन वस्तु ही अखण्ड रूप वाक्यार्थ है इस रीति से यह दूसरा अखण्डार्थ का लक्षण सिद्ध हुआ। आगे लक्षण में पद वह कहे (निवेश किये) जाते हैं जिनसे अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असम्भव रूप तीनों दोषों का वारण होवे, याते प्रथम लक्षण में "बाध हीन होना मात्र" कहे दण्ड पुरुष के संसर्ग पर "दण्डी पुरुषः वाक्य" के विशिष्ट अर्थ में अतिव्याप्ति होवे है, काहे ते ? विशिष्ट रूप वाक्यार्थ बाध हीन है याते तहां अति व्याप्ति वारण हेतु, "संसर्ग ते शून्य होकर" कह्या तावत् मात्र कहे अयथार्थ रूप "इदं रजतम्" वाक्य के अर्थ इदं, रजतं, पदार्थो के बाधित रूप अभेद में अतिव्याप्ति होवे है काहे ते ? वह अभेद संसर्ग शून्य है याते तहां अति व्याप्ति वारण हेतु "बाध शून्य" होना कह्या, इस विचार में कोई आचार्य सम्पूर्ण लक्षण प्रतिपादक वाक्यन का अर्थ अखण्ड माने है औ "नित्यसम्बन्धः समवायः" इत्यादि सम्बन्ध प्रतिपादक लक्षण वाक्यन का लक्ष्यार्थ संसर्ग होने ते वाक्यार्थ संसर्ग शून्य सम्भवे नहीं याते तहां अव्याप्ति वारण हेतु पूर्व लक्षण में संसर्ग ते प्रथम "अन्य" पद जोड़ लेना, अन्य पद जोड़े

"लक्ष्यार्थ रूप संसर्ग ते अन्य जो लक्षण वाक्यगत पदार्थों का संसर्ग" तासे वाक्यार्थ को शून्य होंने ते तहां अव्याप्ति नहीं। और दूसरे लक्षण में "घटत्वान् घटः" वाक्य के जाति विशिष्ट घट रूप अर्थ में अतिव्याप्ति वारण हेतु "जाति गुणादि हीन" कह्या औ शशश्रृंग वाक्य के "अवस्तु भूत" शून्य अर्थ में अतिव्याप्ति वारण हेतु "वस्तु" पद कह्या सो यह भी पूर्व कही रीति से अखण्ड अर्थ का स्वरूप लक्षण कह्या और ताही पाठ से तटस्थ लक्षण ऐसे है—संसर्ग ते जो हीन बाध हीन कहिये जो "संसर्ग को न विषय करने वाले शब्दजन्ययथार्थज्ञान का विषय होवे" सो वा धीन काहूँ के न कहिये "जो जाति गुणादिकों को न विषय करने वाले यथार्थ ज्ञान का विषय होवे" सो वाक्य में अखण्ड अर्थ मानिये है इसी लक्षण के अभिप्राय से अन्य ग्रन्थों में "अपर्याय रूप अनेक शब्दों से प्रतिपाद्य होवे, एक होवे सो कहिये अखण्ड" यह लक्षण होवे है भाव तिसका भी "अपर्याय रूप अनेक शब्दजन्य एक मात्र गोचर ज्ञान का विषय होवे" सो कहिये अखण्ड यह लक्षण होवे है भाव तिसका भी "अपर्यांय रूप अनेक शब्दजन्य एकमात्र गोचर ज्ञान का विषय होवे सो कहिये अखण्ड ही है, कही रीति से अखण्ड अर्थ का लक्षण सिद्धकर प्रथम तिसको महावाक्य की अखण्डार्थकता में कहने दृष्टान्त में घटावे "चन्द्र" इति, "चन्द्रमा चन्द्र पद का वाच्य है" "सो पुनः इस नक्षत्र मण्डल में है" ऐसे और प्रमाण से निश्चय कर, पुनः प्रत्यक्ष प्रमाण से आकाश में परस्पर विधर्म वाले नक्षत्रगण को पुनः तिस नक्षत्रगण में विलक्षण रूप प्रकृष्ट प्रकाश मण्डल को देखकर चन्द्रमा के स्वरूप मात्र का जिसको अज्ञान है, तिसने आकाश में सम्पूर्ण नक्षत्रों ओर दृष्टि करके चन्द्र के स्वरूप मात्र के ज्ञानार्थ "इनमें कौन चन्द्रमा है" ऐसे चन्द्र स्वरूप के बोधका जनकप्रमाण वाक्य पूछयो, तब वक्ता ताको उत्तर कहे "छानिअत है" नाम "चन्द्रमा कुछ छिपा हुआ है" भाव यह—छिपा हुआ नहीं किन्तु या आकाश विषे, प्रकृष्ट नाम प्रकर्ष वाला जो प्रकाश है अर्थात् प्रकृष्ट प्रकाश पदों में लक्षणा कर "प्रकृष्ट" पद का प्रवृत्ति निमित्त "प्रकर्ष" औ "प्रकाश" पद का प्रवृत्ति निमित्त "प्रकाशत्व" भाग त्याग के "जो प्रकृष्टाभिन्न प्रकाश है" सो भास शशि नाम "वही प्रकाश चन्द्रमा है" याते और सब त्याग कहिये चन्द्र के स्वरूप बोधक वाक्य में प्रकृष्ट पद का प्रवृत्ति निमित्त "प्रकर्ष" और प्रकाश पद का प्रवृत्ति निमित्त "प्रकाशत्व"

"चन्द्र" पद का प्रवृत्ति निमित्त "चन्द्रत्व" यह धर्म वा इनका चन्द्र धर्मी से सम्बन्ध, वा प्रकृष्ट प्रकाश व्यक्तियों का आपस में सम्वन्ध, वा चन्द्र में इतर नक्षत्रों का भेद, वा इतरों में ताका भेद, वा चन्द्र पद का वाच्य, यह सम्पूर्ण अपनी जिज्ञासा के अविषय समझ के पुनः पूछने से पहले निश्चय किये हुए समझ के त्याग कर, विधु ताहि जानिअत है नाम "चन्द्रमा तिस प्रकृष्टाभिन्न प्रकाश को ही जानो"। ननु कौन चन्द्र पूछे ? "प्रकृष्ट जो प्रकाश है आकाश में सो भास शशि" या उत्तर वाक्य से प्रकृष्ट प्रकाश शशि पदों के प्रवृत्ति निमित्त "प्रकर्ष" प्रकाशत्व" "चन्द्रत्व" सहित ही चन्द्रमा का स्वरूप हमको प्रतीत होवे तथा चन्द्र व्यक्ति में प्रकर्ष, प्रकाशत्व, चन्द्रत्व, का सम्वन्ध पुनः इन धर्मों वाली चन्द्र व्यक्ति में इतरों का भेद, वा इतरों में चन्द्र का भेद प्रतीत होवेगा। याते तुमने कैसे कह्या और सम्पूर्णों को त्याग कर चन्द्रमा तिस प्रकाश विशेष को ही जानो ? यह आशंका का उत्तर कहे "प्रकर्ष" इति, इहां यह रीति है = "चन्द्रमा चन्द्र पद का वाच्य है" "सो पुनः इस ज्योति मण्डल में है" ऐसे और प्रमाण से निश्चय कर पुनः प्रत्यक्ष प्रमाण से आकाश में परस्पर विलक्षणता वाले सम्पूर्ण नक्षत्रों के, पुनः तिन नक्षत्रों में प्रकृष्ट प्रकाश रूप मण्डल को देखकर जब तुमने पूछा इनमें कौंन चन्द्रमा ? तिस काल में हमने चन्द्र स्वरूप के वोध का जनक "प्रकृष्ट जो प्रकाश" इत्यादि उत्तर कह्या तहां तुमने प्रकृष्ट पद का प्रवृत्ति निमित्त "प्रकर्ष" धर्म औ "प्रकाश" पद का प्रवृत्ति निमित्त "प्रकाशत्व" जाति यह नहीं पूछे थे, किन्तु इन धर्मों से उदास नाम उदासीन एक चन्द्र का स्वरूप पूछा था, तथा इन धर्मों का चन्द्रमा में योग नाम सम्बन्ध नहीं पूछा था, सम्बन्ध पूछा होता तो प्रश्न तुमारा इनका चन्द्र में सम्बन्ध कौन ? यह होता तथा तुमने चन्द्रमा में इतरों का भेंद भी नहीं पूछा था किन्तु चन्द्रमा का स्वरूप मात्र पूछा था, या ते तुमारी जिज्ञासा का विषय औ हमारे तात्पर्य के विषय न होने ते, तुमको इनों सहित चन्द्र स्वरूप का बोध नहीं होवे, किन्तु चन्द्र मात्र का होवे है, भाव यह— "शब्द जिस अर्थ में कहिये है ताका वही अर्थ होवे है" औ यह वाक्य हमने स्वरूप मात्र पर कह्या है याते वाक्य का स्वरूप ही अर्थ है, इस वास्ते हमने और सम्पूर्णों को त्याग के चन्द्रमा तिस प्रकाश विशेष को ही जानो कह्या। ननु यद्यपि हमने स्वरूप पूछा था इस वास्ते प्रश्न के अनुरोध से हमारी जिज्ञासा शुद्ध चन्द्र स्वरूप में ही रहो, तथापि तुमारा

अब उक्तार्थ का स्पष्टीकरण ।

चौपाई

ज्यों को हेर नक्षत्र सारे । बहुरो मुखते प्रश्न उचारे ।
कौन चंद्र है याके माहीं । चंद्राभिज्ञ उचारे ताहीं ॥३७४॥

उत्तर वाक्य, लक्षण वाक्य है, औ लक्षण वाक्य से लक्ष्य में इतरों का भेद सिद्ध होने ते, इतरों के भेद विशिष्ट लक्ष्य का बोध होवे है, याते प्रत्यक्ष प्रमाणवत् वाक्य को जिज्ञासा शून्य पदार्थ की बोधकता में दोष के अभाव ते, पुनः भी हमको इतरों के भेद विशिष्ट चन्द्र स्वरूप का ही बोध होवेगा, याते कैसे कह्या "औ सम्पूर्णों को त्याग के चन्द्रमा तिस प्रकाश विशेष को ही जानो" ? यह आशंका कर कहे "नहिं" इति, "शब्दों का स्वभाव जिज्ञासित विषय में ही पर्यवसान पावन का होवे है" औ इतरों के भेद विशिष्ट चन्द्र के स्वरूप की तुमने पूर्व जिज्ञासा करी नहीं, याते जिज्ञासा रहित होने से लक्षण वाक्य से ताका तुमको बोध सम्भवे नहीं, इस वास्ते हमने और सम्पूर्णों का त्याग कर "चन्द्रमा तिस प्रकाश विशेष को ही जानो" कह्या, जेकर अब भी तुम "ननु होवे हमको जिज्ञासित शुद्ध चन्द्र का ही शब्द से ज्ञान, परन्तु शुद्ध चन्द्र को कहता हुआ भी वाक्य, जिस कारण ते चन्द्र प्रकृष्ट प्रकाश रूप है, इस हेतु ते तम औ तारों से भिन्न है, ऐसे अर्थ ते तामें इतरों के भेद को भी कहे है" याते वह भेद विशिष्ट लक्ष्य हमको वाक्य का अर्थ कैसे नहीं भासेगा ऐसे विवाद करो तब पूर्व कही रीति से वाक्य ते स्वरूप मात्र का बोध सिद्ध करने से पीछे हमको, नहिं और कछु काम जो विवाद ठानिअत है नाम नहीं तुमारे विवाद का और कोई प्रयोजन, जो तुम बारम्बार झगड़ा करते हो और तुमारी समीप कही आशंका का यह परिहार है—वाक्यजन्य ज्ञान वह कहिये है "जो वाक्य से होवे" अर्थ ते होवे सो ज्ञानवाक्यजन्य नहीं कहावे अन्यथा अर्थापत्ति-प्रमाण ही दूर होवेगा औ लक्षण वाक्य में इतरों के भेद का बोधक पद देखिये नहीं, याते इतर भेद वाचक पद न देखने ते साक्षात् ताका बोधन न करते हुए लक्षण वाक्य को अर्थ ते तिसकी बोधकता रहे भी तत्परता नहीं सम्भवे, जैसे "गाममानय" वाक्य अर्थ ते अश्व के आनयन की व्यावृत्ति बोधन करता हुआ भी तत्पर नहीं होवे यह भाव है ॥ ३७३ ॥

कवित्त में कहे "चन्द्र को अज्ञान" इत्यादि पाठ की आप ही टीका

प्रकृष्ट प्रकाश चंद्रमा हइये । तो बिन और न को विधु पइये ।
चंद्राभिज्ञ उचार्‍यो जबही । चंद्रहिबोध भयो तहि तबही ॥३७५॥
अखंड शशी का होवे बोध । कछु संसर्ग न देखो शोध ।
प्रकर्ष प्रकाशादिक हैं जेते । प्रष्टा कोई न पूछे तेते ॥३७६॥
वक्ता मुखते कीन उचार । चंद्रहि परिचय हित निर्धार ।
ताते होय अखण्डहि ज्ञान । नहिं संसर्ग होय कछु भान ॥३७७॥

करे "ज्यों" इति, जिस प्रकार कोई पुरुष "चन्द्रमा चन्द्र पद का वाच्य है" इत्यादि पूर्व टीका में कही रीति से सम्पूर्ण नक्षत्रों ओर दृष्टि करके, बहुरो नाम पीछे ते, मुख ते प्रश्न करे है जो याके माहीं नाम इस नक्षत्र-मण्डल में कौन चन्द्रमा है, तब प्रश्न सुनके चन्द्राभिज्ञ कहिये चन्द्रमा के स्वरूप के जानने वाला वक्ता ताको उत्तर कहे है ॥ ३७४ ॥

उत्तर कहे "प्रकृष्ट" इति, "प्रकृष्टाभिन्न प्रकाश रूप ही चन्द्रमा है" ता बिन कहिये तिस प्रकृष्टाभिन्न प्रकाश से बिना और तम तारे कोई चन्द्रमा नहीं, इस प्रकार चन्द्राभिज्ञ नाम चन्द्रमा के जानने वाले ने जब कह्या, तहि नाम तिस पूछने वाले को तिसीकाल में प्रकाश विशेष रूप चन्द्रमा का ज्ञान हुआ चन्द्र स्वरूप में काहू का संसर्गादि कुछ न प्रतीत हुआ ॥ ३७५ ॥

सोई कहे "अखण्ड" इति, अखण्ड शशि का कहिये "संसर्गता विशिष्टता शून्य" प्रकृष्टाभिन्न प्रकाश मात्र चन्द्रमा का वाक्य ते बोध होवे है, शोध कहिये विचार के देखे प्रकर्ष प्रकाशत्वादिकों के संसर्ग का चन्द्र के स्वरूप में किञ्चिद् भान नहीं होवे, ननु "प्रकृष्ट प्रकाश चन्द्रमा हइये" उत्तर वाक्य से प्रष्टा को प्रथम शक्ति वृत्ति से प्रकर्षादि विशिष्ट प्रकृष्टादि पदार्थों की पद से प्रतीति होने ते तिन धर्मों सहित ही चन्द्र के स्वरूप का बोध हुआ चाहिये ? यह आशंका कर कहे "प्रकर्ष" इति, प्रकर्ष नाम अधिकता औ प्रकाशत्व "आदि" शब्द से चन्द्रत्व, तथा इनका चन्द्र धर्मी से सम्बन्धदिक यह प्रश्न से पूर्व ही ज्ञात होने ते प्रश्न कर्ता ने कोई नहीं पूछे ॥ ३७६ ॥

पुनः वक्ता मुख ते कीन उचार कहिये कथन किये सो केवल तिनों कर उपलक्षित शुद्ध चन्द्र स्वरूप के परिचय नाम बोध वास्ते कहे, याते "जिस पर शब्द होवे वही शब्दार्थ होवे है" इस न्याय से पूछने वाले की जिज्ञासा के औ उत्तर दाता के तात्पर्य के विषय न होने ते तिनों

त्यूँ ही ब्रह्म अखंडित ज्ञान । उपजे करे सकल भव हान ।
सकल अनर्थ अविद्या जोई । ज्ञान नाश पहिचानो सोई ॥३७८॥
जबही भयो अखंडित ज्ञान । तबहिं अविद्या होवे हान ।
ताको नाश भयो पुनि जबही । बंधनमुक्त होय नर तबही ॥३७९॥

सहित चन्द्र के स्वरूप का बोध नहीं होवे, किन्तु लक्षणा से तिनको त्याग के चन्द्र के स्वरूप मात्र का बोध होवे है। किञ्च प्रकर्षादि घटित रूप से अतिरिक्त चन्द्र का शुद्ध रूप भी है वा नहीं? दूसरा माने चन्द्र पद से ही प्रकर्षादि सहित चन्द्र का बोध होने ते प्रकृष्टादि विशेषण व्यर्थ होवेंगे, याते विशेषणों की सफलता हेतु प्रकर्षादि घटित विशिष्ट रूप से अतिरिक्त शुद्ध रूप भी मानो तब उपलक्षण रूप प्रकर्षादिकों को त्याग के वही चन्द्रमा का शुद्ध रूप है, इस रीति से ताते कहिये तिन उपलक्षण रूप प्रकर्षादिकों ते श्रोता पुरुष को, अखण्ड नाम संसर्ग-विशिष्टता शून्य अबाधित चन्द्र स्वरूप मात्र वा जाति गुणादि शून्य वस्तु मात्र का ज्ञान होवे है, नहिं संसर्ग होय कछु भान कहिये प्रकर्ष प्रकाशत्वादि धर्मों का धर्मी में, वा धर्मियों का आपस में, वा इतरों के भेद का चन्द्र धर्मी में, प्रश्न से पूर्व ही ज्ञात होने से कोई नहीं प्रतीत होवे यह सार है ॥३७७॥

दृष्टान्त में कहे "त्यूँ ही" इति, त्यूँ ही नाम प्रकृष्टप्रकाश चन्द्र है वाक्यवत् "तत्त्वमसि" वाक्य से भी अखण्ड ब्रह्म का ज्ञान उपजे है औ उपज कर मूलाविद्या सहित सकल प्रपञ्च का नाश करे है, सकलभव की हानि करना स्पष्ट करे "सकल" इति, सकल अनर्थ अविद्या जोई कहिये सम्पूर्णों अनर्थों का बीज भूत जो अविद्या है सो तेज से तमवत् विरोधी भूत ज्ञान कर नाश होने योग्य है ऐसे जानों ॥ ३७८ ॥

याते जिस काल में पुरुष को अखण्डब्रह्म का ज्ञान होवे है तिसी काल में अविद्या की हानि होवे है औ ताकी नाम अविद्या की जब हानि हुई, तब ही नाम तिसीं काल में पुरुष मिथ्या रूप बन्धनों से मुक्त होवे है, याते अध्याय के आरम्भ में दोनों पदार्थों का शोधन करके इसमें अखण्डार्थ कहता हूँ, जिसके जाने सब द्वैत मिटे, या कहो प्रतिज्ञा की सिद्धि भई ॥ ३७९ ॥

ज्ञान से मुक्ति श्रवण कर मीमांसक का आक्षेप और
सिद्धान्ती का प्रतिक्षेपरूप सम्वाद ।

पूर्वपक्षी—

कर्म करे नर होवे मुक्त । ताहित झूठी ज्ञान निरुक्त ।

सिद्धान्ती—

बंध हान कर्मन ते कैसे ।

पूर्वपक्षी— **प्रकट बखानौं होवे जैसे ॥३८०॥**

काम्यकर्म को नहिं नर करे । कर्म निषिद्ध तथा परिहरे ।
नित्य नैमित्य कर्म हैं जेते । विधिवत करे सकल नर तेते॥३८१॥
काम्यकर्म फल देव शरीर । ताही ते नहिं पावे धीर ।
फल निषिद्ध नरकादिक जेते । कर परिहार लहे नहिं तेते ॥३८२॥
देह आरंभक जेतो कर्म । धर्म किधौं पुन होहि अधर्म ।
सुख अरु दुख फलको उपजाये । देकर भोग नष्ट हो जाये ॥३८३॥

बन्ध को ज्ञान निवर्त्यता का बीजभूत मिथ्यात्व न मानता मीमांसक आशंका करे "कर्म" इति, ज्ञान निरुक्त नाम ज्ञान का कथन, सिद्धान्ती की आशंका "बन्ध" इति, मीमांसक उत्तर कहे "प्रकट" इति, जैसे—जिस प्रकार होवे है सो प्रकार प्रकट कहता हूँ ॥ ३८० ॥

प्रकार कहे "काम्य" इति, काम्यकर्म को नहिं नर करे कहिये मुक्ति की इच्छा वाला पुरुष फल के वास्ते विधान किये "कारीरी" यज्ञादिकों को न करे, औ तथा नाम काम्यकर्मवत् ब्राह्मण हिंसा आदिक निषिद्ध कर्मों का भी परिहार करे पुनः सदा ही जिनका विधान है, ऐसे गङ्गा स्नानादिक नित्य कर्म तथा जिनके न करने से पाप होवे औ करने से फल न होवे औ सर्वदा विधान न होवे किन्तु काहू निमित्त के वास्ते विधान होवे ऐसे ग्रहण श्राद्धादिक नैमित्तिक जितने सब कर्म हैं, तिनको विधिवत् कहिये यथायोग्य करे ॥ ३८१ ॥

काम्य औ निषिद्ध के परिहार का फल कहे "काम्य" इति, ताही ते नाम न करने ते ॥ ३८२ ॥

वर्तमान जन्म के काम्य निषिद्ध को उत्तर फल की अहेतुता कहकर

नित्यकर्म को सेवे जोई। आगम पाप छुहे नहिं कोई।
सर्व कर्मको भयो विनाश। सहज सुभाय सु मुक्ति प्रकाश॥३८४॥
या विधि कर्म मोक्ष को करे। व्यर्थ ज्ञान काहे उर धरे।
वस्तु विचार करे जे कोई। ज्ञान विषे सु प्रमाण न होई॥३८५॥
जेते वेद अहे भव माहीं। स्मृति सहित पुराणन माहीं।
सो कर्मन को करे विधान। बारंबार हर्ष उरमान॥३८६॥

सिद्धान्ती—

ननु प्रमाणाभाव उचार्‍यो। भली प्रकार न वेद विचार्‍यो।
यामें तेरोही अपराध।

पूर्वपक्षी— **नहिं नहिं व्यर्थ प्रलाप असाध॥३८७॥**

जन्मान्तर के प्रारब्ध रूप काम्य निषिद्ध का भोग से नाश बतावे "देह" इति॥ ३८३॥

काम्य निषिद्ध के न करने का फल कहकर नित्य नैमित्तिक के करने को बतावे "नित्य" इति, "नित्य" इहां नैमित्तिक औ प्रायश्चित्त का भी उपलक्षण है। याते नित्य को औ नैमित्तक को पुनः पाप के नाश वास्ते शास्त्र विहित साधारण असाधारण भेद ते द्विविध प्रायश्चित्त को जो पुरुष सेवन करे ताको आगम कहिये नित्यादिक कर्मों के न करने से आगे होने वाला पाप नहीं स्पर्श करे, कही रीति से जब सम्पूर्ण कर्मों का ज्ञान बिना ही नाश हुआ तब सहज सुभाय कहिये बिना प्रयत्न वन्धन की हानि रूप मुक्ति का प्रकाश होवे है॥ ३८४॥

"बन्ध हानि कर्मन ते कैसे" पूछते सिद्धान्तीं प्रति कहे "या विधि" इति, सो यह "गृहकोण में मधु मिले पर्वत में क्यों जाना" या न्याय से ज्ञान को हेतुता वारण करी, वास्तविक ते "सर्वज्ञता में नाहि प्रमाण" पाठ में कही रीति से वेदविधि शून्य अभेद ज्ञान की न सिद्धि होने ते ताको मुक्ति हेतुता दूर तें असिद्ध है या अभिप्राय से कहे "वस्तु" इति, ज्ञान विषे सुप्रमाण न होई नाम जीव ईश के अभेद ज्ञान में वेद स्मृति पुराण रूप कोई प्रमाण नहीं और कर्म में सब हैं॥ ३८५॥

सोई कहे "जेते" इति॥ ३८६॥

सिद्धान्ती आशंका करे "ननु" इति, यामें नाम भली प्रकार न

यत्न सहित मैं वेद विचार्यो। स्मृति को बहुविधिहि निहार्यो।
ज्ञान विधान करे नहिं कोई। और विषे विश्वास न होई ॥३८८॥
बिना विधान प्रवृत्ते जोई। ज्ञान विषे, मूर्ख है सोई।
भस्म माहिं आहुति जैसे। ताहि प्रवृत्ति ज्ञान मों तैसे ॥३८९॥
वेदार्थवित् 'जैमिनि' जोई। भाख्यो, कहौं सुनो अब सोई।
आम्नाय सकल हैं क्रिया अर्थ। क्रिया बिना सो सकल निरर्थ ।३९०॥
ऐसे जैमिनि करे उचार। वेदोपर वेदांतहि धार।
'कुर्वन्' कर्म सदा भव माहीं। जीवे शतं वर्ष जग माहीं ॥३९१॥
ऐसे मन्त्र वर्ण उचारे। निखिल आयु कर्मन मों डारे।
'गीता' माहिं कृष्ण प्रभु गाई। जनक सिद्धि कर्मनते पाई ॥३९२॥

विचार कर ज्ञान को प्रमाणहीनता कहने में, तेरा ही अपराध नाम दोष है, कोप से पूर्वपक्षी उत्तर कहे "नहिं" इति, हे असाध ! (दुष्ट !) व्यर्थ प्रलाप नाम कहना, "नहिं-नहिं" कोप से कहने में पुनरुक्ति दोष नहीं ॥ ३८७ ॥

प्रलाप को अव्यर्थता कहे "यत्न" इति, ज्ञान का विधान नहीं करे और नाम तुमारे जैसों के कथन से हमारा निश्चय नहीं होवे ॥ ३८८ ॥

याते बिना शास्त्र की विधि ते, जो पुरुष मोक्ष सिद्धि हेतु ज्ञान में प्रवृत्त होवे है वह मूर्ख है। उसकी प्रवृत्ति ऐसे है सोई कहे "भस्म" इति ॥ ३८९ ॥

यत्न से विचारी श्रुति स्मृति सुनावन हेतु कहे "वेदार्थ" इति, वेद के अर्थ को यथार्थ जानने वाले मीमांसा शास्त्र के कर्ता जैमिनि ऋषि ने जो अपनी द्वादशाध्यापी में कही है अब वह श्रवण करो, अर्थ ते जैमिनि ऋषि का सूत्र पढ़े "आम्नाय" इति, आम्नाय सकल है क्रिया अर्थ कहिये वेद सम्पूर्ण क्रिया परायण है, याते क्रिया बिना नाम क्रिया परतः रहित जो वेदान्त भाग सो सभी ऊषरवत् निरर्थक नाम निष्फल है ॥ ३९० ॥

जैमिनि सूत्र प्रमाण कहकर अर्थ ते श्रुति कहे "कुर्वन्" इति, कुर्वन् कर्म सदा भव माहीं नाम सर्वदा काल कर्मों को करता हुआ ही शतं नाम सौ वर्ष पर्यन्त, जगत् में जीवे ॥ ३९१ ॥

मन्त्रवर्ण नाम श्लोक रूप वेद, सिद्धि नाम मोक्ष ॥ ३९२ ॥

ताते कर्म करे कल्यान । त्यागे ताहि बड़ी भव हान ।
सिद्धान्ती—
यों मीमांसक बोले बैन । सकल पछानो दूषण ऐन ॥ ९३॥
चार प्रकार क्रिया फल जेतो । मुक्ति माहिं पइये नहिं तेतो ।
अज्ञान हानि ते मोक्ष पछानो । कर्म न साधन ताके मानो ॥३९४॥
कर्म अज्ञान दूर नहिं करे । तम ज्यों तम को नहिं परिहरे।
अविद्याजन्य बंध है जोई । कर्म हने ताको नहिं कोई ॥३९५॥
याहि विषे दृष्टांत उदार । नीके ही उर अन्तर धार ।
रज्जु अज्ञान सर्प उपजायो । ताको देख बहुत भय पायो ॥३९६॥

ताते—श्रुति स्मृति रूप प्रमाण सिद्ध होने ते, तटस्थ प्रति कहे सिद्धान्ती "यों" इति ॥ ३९३ ॥

दूषण कहे "चार" इति, चार प्रकार क्रिया फल जेतो कहिये उत्पत्ति प्राप्ति, संस्कार, विकार, भेद से चार प्रकार का जो क्रिया का फल है, सो मुक्ति माहिं पइये नहिं कहिये नित्य निवृत्त अविद्या की निवृत्ति औ नित्य प्राप्त ब्रह्म की प्राप्ति रूप मुक्ति विषे नहीं पाइये है, तथाहि—कहे रूप वाली मुक्ति को अजन्य होने ते दण्ड से घट उत्पत्तिवत्, क्रिया से मुक्ति में उत्पत्ति रूप फल नहीं बने, तथा कहे रूप वाली मृक्ति को सर्वदा प्राप्त होने ते चक्षुओं से रूपवत् क्रिया से तामें प्राप्ति रूप फल नहीं बने, तैसे मुक्ति को निर्गुण औ मल रहित होने ते शुक्ल वस्त्र में कुसुम्भ में रक्त गुणाधानवत् क्रिया से गुण धारण करना तथा भस्म से पात्र में मलापहारवत् मल दूर करना रूप द्विविध संस्कार भूत फल नहीं बने, तैसे मुक्ति को निर्विकार होने ते यज्ञ में सोमलता विषे मूसलादिकों से विकारवत् क्रिया ते मुक्ति में विकार रूप फल भी नहीं बने, याते क्रिया जन्य फल की असिद्धि ते, अज्ञान हानि ते कहिये ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति से ही अज्ञान निवृत्ति सहित ब्रह्म भाव प्राप्ति रूप मुक्ति जानो, ताके नाम तिस कही मुक्ति के साधन कर्म न मानो ॥ ३९४ ॥

दृष्टान्त से कर्मों को साधनता दूर करे "कर्म" इति, अविद्या नाशवत् कर्म अविद्याजन्यबन्ध निवृत्तिका भी साधन नहीं यह कहे "अविद्या" इति ॥ ३९५ ॥

सर्पहि नाश उपाय विचार । देव मनावे वारंवार ।
मन्त्र को बहु विधिहि उचारे । विधिवत् औषधि ता पर डारे।।३९७।।
करहि सु दोकर जोड़ प्रणाम । अथवा जावे चारों धाम ।
तो वह सर्प नष्ट नहिं होवे । बहु डर पावे ताको जोवे ।।३९८।।
तूलाविद्या हेतुक जोई । सर्प कर्म ते हने न कोई ।
मूलाविद्या हेतुक जोई । बंध कर्म तहँ हने न कोई । ३९९।।
कर्म सकल भव बंधन टारे । यह झूठी है अमरहि प्यारे !
जबही होवे रज्जु को ज्ञान । तभी मिटे ताको अज्ञान ।।४००।।
रज्जु अज्ञान कार्य हैं जेतो । अहि कंपादि सकल तहि तेतो ।
क्रम कर मिटे लखे सब कोई । और उपाय न ताको होई ।।४०१।।
त्यूँ ही होय ब्रह्मको ज्ञान । नष्ट होय पुनि तिहिं अज्ञान ।
बंधादिक अनर्थ सु जेते । मिटे सकल ताते पुनि तेते ।।४०२।।
अरुपुनि मोक्ष जनक है जोई । कर्म श्रुति मुख कहे न कोई ।
नित्यकर्म पापन को हने । काम्यकर्म स्वर्गादिक जने ।।४०३।।

याहि विषे नाम कर्मों से अविद्या जन्य बन्ध के न नाश होने विषे, दृष्टान्त कहे "रज्जु" इति ।। ३९६-३९७-३९८ ।।

तूला विद्या हेतुक जोई नाम रज्ज्वच्छिन्न चेतन निष्ठ अज्ञान है हेतु जिसका ऐसे दृष्टान्त भूत सर्प को जैसे देव मनावन आदि कोई कर्म दूर नहीं करे ऐसे मूलाविद्या है हेतु जिसका ता बन्ध को भी कोई कर्म दूर नहीं करे ।। ३९९ ।।

याते कर्म ही सम्पूर्ण बन्धनों की निवृत्ति कर मुक्ति करे है, हे अमर प्यारे—देव पशु ! यह तेरी बात झूठी है याते कर्म नहीं मुक्ति करे. किन्तु तूलाविद्या हेतुक सर्प औ ताका कारण तूलाविद्या तथा ताके निखिल कार्य जैसे ज्ञान से दूर होवे है, तैसे ज्ञान से ही (अज्ञान) दूर होवे है सोई कहे "जब ही" इति ।। ४०० ।

क्रम कर नाम प्रथम सर्प तदनन्तर तत्कृत कम्पादिक ।। ४०१ ।।

त्यूँ ही नाम रज्जु ज्ञानवत् ।। ४०२ ।।

किञ्च काहू भी कर्म को मोक्ष जनतकता न कहती हुई श्रुति,

याविधि कर्म जहाँलौं जेते । स्वस्व फल उपजावे तेते ।
सो फल देह बिना नहिं बने । ताते कर्म देह को जने ॥४०४॥
या विधि बंधन हेतु जे कर्म । मुक्ति हेतु भाखे कर भ्रम ।
अरु पुनि कर्मजन्य फल जोई । घट सम नाशी जानो सोई ॥४०५॥
कर्मजन्य मोक्ष जो होई । नष्ट होयगो निश्चय सोई ।
अरु पुनि संचितकर्म अपार । क्रियमाण पुनि उरमें धार ॥४०६॥
वह पुनि देय अनेक शरीर । मुक्त कहो क्यों होवे धीर ।
अरुपुनि एक एक है जोई । कर्म बहुत तन देवे सोई ॥४०७॥

अर्थ ते देह बिना कर्म फलों के भोगों की अनुपपत्ति ते देह जनकता बोधन ते बन्ध हेतुता कहे है याते तिनको मुक्ति हेतु कहना भ्रम है यह कहे "अरु" इति, मुक्ति का जनक जो कर्म है सो श्रुति मुख से कोई नहीं कहे याते यह मानना सोई कहे "नित्य" इति ॥ ४०३ ॥

ताते नाम देह बिना न बनने ते ॥ ४०४ ॥

किञ्च कर्म जन्य फलों को घटवत् नाशीपने के नेम ते कर्मजन्य माने मुक्ति भी नाशी होवेगी यह कहे "अरु पुनि" इति ॥ ४०५ ॥

वर्तमान जन्म में तिनके त्याग से काम्य निषिद्धों ते उत्तर फल न भये भी सञ्चित क्रियमाण से होने में बाधक के अभाव ते मोक्ष काहू रीति से नहीं होवेगी यह कहे "अरुपुनि" इति ॥ ४०६ ॥

वह नाम सञ्चित औ क्रियमाण अनेक शरीरों को देवेंगे याते मोक्ष कहो कैसे होवेगी ? अर्थात् काहू रीति से नहीं होवेगी, इहां यह भाव है=यद्यपि वर्तमान जन्म के काम्य निषिद्ध के त्याग से स्वर्ग नरक नहीं जावे औ प्रारब्ध रूप काम्य निषिद्धों का भोग से नाश होवे (है) नित्य नैमित्तिक कर्मों के न करने ते होने वाला पाप तिनके करने से दूर होवे है और सञ्चित काम्य निषिद्ध इस रीति से नाश होवे है जो प्रायश्चित्त कर्म साधारण असाधारण भेद ते दो प्रकार का होवे है तिनमें "ज्ञात अज्ञात सम्पूर्ण पापों के नाश वास्ते शास्त्र ने विधान किये गङ्गा स्नान परमेश्वरनामोच्चारणादिक साधारण प्रायश्चित्त कहिये है" और "अगम्य गमनादिक विशेष पापों के नाशक शुष्क अश्वत्थ में दग्ध होना आदिक असाधारण प्रायश्चित कहिये है" याते जन्मान्तर के सञ्चित

कार्तिकपूर्णमासी जबही । 'कृत्तिका' योग होय पुनि तबही ।
ताहि समय 'गुह' देखे जोई । सप्त जन्म पुनि पावे सोई ॥४०८॥
होवे ब्राह्मण धनहि अपार । चार वेद को पावे पार ।
अरुपुनि ब्राह्मण मारे जोई । एते जन्म लहे नर सोई ॥४०९॥

निषिद्ध कर्म का साधारण प्रायश्चित्त ते नाश होवे है औ जन्मान्तर के सञ्चित काम्य कर्मों का मुमुक्षु को "मेरे को फल मिले" यह इच्छा न होने ते फल न देने से ही नाश होवे है, इस रीति से क्रियमाण नित्य नैमित्तिक औ सञ्चित काम्य निषिद्ध से जन्मों की सम्भावना दूर होने से "वह पुनः देह अनेक शरीर" यह कथन कैसे ? यह आशंका होवे है, तथापि यह तुच्छ है काहे ते ? नित्य नैमित्तिक कर्म ही स्वर्ग के हेतु है, औरों से फल का अभाव तो क्या कहे तथाहि–नित्य नैमित्तिक कर्म का न करना "अभाव" वस्तु है औ अभाव ते भाव की उत्पत्ति तथा भाव से अभाव की उत्पत्ति गीतास्मृति में निषेघ करने से होवे नहीं, अन्यथा शशशृङ्गों से भी (उत्पत्ति) हुई चाहिये याते नित्य नैमित्तिक के न करने ते होने वाले पाप का, तिनके करने से न होना, नित्य नैमित्तिक का फल नहीं, किन्तु पापों का न होना कहिये अनुत्पत्ति अर्थात् प्रागभाव, सो अनादि होने ते बिना भी तिनसे सिद्ध है, याते नित्य नैमित्तिक कर्म के सफलता वास्ते स्वर्ग ही तिनका फल मानना, अन्यथा कर्म को निष्फल होने ते तद् बोधक वेद भी निष्फल होवेगा औ सञ्चित काम्य कर्मों का मुमुक्षु को फल की इच्छा न होने ते ही फल बिना नाश माने तो काहू पुरुष को भी दुख की इच्छा न होने ते कर्मों से दुख न हुआ चाहिये याते कर्म रूप बीज से वासना औ धर्माधर्म रूप दो अङ्कुर होवे है तिनमें शुभाशुभ वासना का नाश कुसंग सत्संग के प्रभाव ते होने से भी, धर्माधर्म का फल बिना कभी नाश नहीं होवे बिना ज्ञान, याते सञ्चित कर्मों को तथा वर्तमान जन्म के नित्य नैमित्तिक रूप क्रियमाण कर्मो को अनेक जन्म की हेतुता कहनी सम्यक् है, किञ्च शुभाशुभ कर्मों को शुभाशुभ अनेक जन्मों की हेतुता स्मृति प्रमाण से भी प्रसिद्ध है सोई कहे "अरु पुनि" इति, "कर्म" पूर्व साथ (सम्बन्ध कर लेना) ॥४०७॥

बहुत तन देने वाला शुभ कर्म कहे "कार्तिक" इति, गुह नाम स्वामी कार्तिकेय ॥ ४०८ ॥

कूकर, शूकर, खर, को पाय । उष्ट्र, गौ, बकरी होइ जाय ।
भेड़, मृगा, अरु खग, चंडाल । याविधि लहे जन्मकी माल ।।४१०।।
यों स्मृति ने भाख्यो जोई । अहे सत्य झूठ नहिं सोई ।
कर्म करे नर होवे मोक्ष । यामें प्रकट दिखाये दोष ।।४११।।
ज्ञान विषे सु प्रमाण न कोई । यह भाख्यो साचो नहिं सोई ।
स्मृति वेद अनेक पुराण । ज्ञान विषे सकले जु प्रमाण ।।४१२।।
ब्रह्मवेद ब्रह्मही होवे । ज्ञानहि ते कैवल्य हि जोवे ।
या विधि वेद करे सु उचार । साधक ज्ञान प्रमाण उदार ।।४१३।।
अरुपुनि मोक्षकह्यो फल ताको । कर्म न साधन मानो वाको ।
'गीता' माहिं प्रकट भगवान । अर्जुन प्रति भाख्यो है ज्ञान ।।४१४।।
उद्धवको 'एकादश' माहीं । जाहि विषे संशय कछु नाहीं ।
कहूँ कहूँ जो कर्म उचार्यो । चित्त शुद्धि हेतु निर्धार्यो ।।४१५।।

शुभ कहकर अनेक तन देने वाला अशुभ कहे "अरुपुनि" इति ।। ४०९-४१० ।।

"कर्म करे नर होवे मुक्त" पाठ से कही बात में कहे दोषों की समाप्ति करे "कर्म" इति ।। ४११ ।।

"वस्तु विचार करे" इत्यादि पाठ से कही बात के खण्डन का आरम्भ करे "ज्ञान" इति, साचो नहिं सोई नाम वह सच्चा नहीं अर्थात् वह झूठा है, झूठापन में हेतु कहे "स्मृति" इति ।। ४१२ ।।

अर्थ ते वेद पढ़े "ब्रह्म" इति, या विधि नाम कही रीति से, साधक ज्ञान नाम ज्ञान के सिद्ध करने वाला श्रेष्ठ-प्रमाण वेद ऐसे ज्ञान की सिद्धि कहे है पुनः ता ज्ञान का फल मुक्ति कहे है ।। ४२३ ।।

सोई कहे "अरु पुनि" इति, स्मृति बतावे "गीता" इति ।। ४१४ ।।

पुराण कहे "उद्धव को इति, "ज्ञानादेव" श्रुति में एवकार से कर्मोपासना को मुक्ति हेतुता निरास ते, कहीं कर्मो का विधान इस वास्ते है सोई कहे "कहूँ" इति ।। ४१५ ।।

वस्तु प्रमाण अधीनहि ज्ञान । विधानाभाव सो ताते जान ।
पुरुष अधीन जगतमों जोई । पाक समान विधिहि जो सोई ४१६
अरु पुनि 'जैमिनि' भाख्यो जोई । तुमतो अर्थ न जान्यो कोई ।
क्रिया प्रधान वेद हैं जेतो । क्रिया अर्थ बखाने तेतो ४१७॥
ऐसे 'जैमिनि' मुखों उचारे । ऊपर सम वेदांत न धारे ।
गोप मतो जो वेद उचारे । ताको कोइक पुरुष निहारे ॥४१८॥
कर्म बखाने वेद सु जोई । आतम जिज्ञासा हित सोई ।
भली प्रकार विचारे जोई । कर्म परायण वेद न कोई ॥४१९॥

ज्ञान में प्रमाण औ ज्ञान प्रवृत्ति को सफलता दिखलाकर, विधानाभाव ते प्रवृत्ति निष्फल है या आशंका में उत्तर कहे "वस्तु" इति, ज्ञान वस्तु नाम प्रमेय औ प्रमाण के अधीन है, पुरुषार्थ के अधीन नहीं, ताते नाम तिस हेतु ते, विधान का अभाव जानो औ पुरुष अधीन कहिये पुरुष प्रयत्न साध्य जो वस्तु जगत् में होवे है वह पाक समान नाम "तृप्ति कामना वाला पुरुष पाक करे" ऐसे पाक क्रियावत् विधिहि नाम विधान करी जावे है अर्थात् जिस वस्तु को पुरुष करण, न करण, अन्यथाकरण को समर्थ होवे तिसमें पाक क्रियावत् विधि सम्भवे हैं औ ज्ञान तो प्रमाण प्रमेय के सम्बन्ध बिना विधि सहस्रों से होवे नहीं औ होने से निषेध सहस्रों से रुके नहीं, याते ज्ञान में विधि का अभाव है ॥ ४१६ ॥

"आम्नाय सकल है" इत्यादि जैमिनि वाक्य से वेदान्तो को निष्फलता कहते प्रति कहे "अरुपुनि" इति, क्या कहे है जैमिनि जो हमने जाना नहीं ? तहां कहे "क्रिया" इति, क्रिया प्रधान वेद है जेतो कहिये "आम्नाय सकल है क्रिया अर्थं" नाम क्रिया प्रधान सम्पूर्ण वेद क्रिया फलवत् हैं, क्रिया बिना सो सकल निरर्थ नाम क्रिया रूप अर्थ बिना वह सभी अर्थ शून्य है इस रीति से जैमिनि क्रिया प्रधान वेद को क्रिया पर कहे है ॥ ४१७ ॥

ऐसा ऋषि का भाव कैसे जाना तहां कहे "गोप" इति ॥ ४१८ ॥

कही रीति से नित्यनैमित्तिक कर्मों का पाप नाश फल मान कर साक्षात् वा ज्ञान समुच्चय से मोक्ष हेतुता निरास करके, साक्षात् वा परम्परा तिनको ज्ञान हेतुता दिखावन हेतु स्व स्व वर्णाश्रमों के धर्मों

निज आतमको दर्शन सार । ताहित वेद निखिल निर्धार ।
ज्ञान के साधन हैं भव जेते । वेद विधान करे सब तेते ॥४२०॥
ता प्रवृत्ति जगतमों जोई । भस्म आहुती तुल्य न सोई ।
जो तुम ताको ता सम कहो । या॰ वृत्ति तथा पुनि लहो ॥४२१॥
ताको जे फल स्वर्ग अपार । याको ज्ञान फलहि निर्धार ।
ज्ञान विषे प्रवृत्ति न मानी । तामों दूषण देय अज्ञानी ॥४२२॥

कर तिस परमात्मा के जानने की सब इच्छा करे है इत्यर्थक "तं वेदानुवचनेन" इत्यादि श्रुति में साधन रूप कर कहे अपने अपने आश्रम वर्णो के धर्मो का जेकर "राजपुरुष को लावो" वाक्य में अर्थ ते प्रधान भी राजा को छोड़ कर पुरुष में ल्यावन क्रिया के सम्बन्धवत् "विविदिषा" पद के अर्थ आत्म ज्ञान की इच्छा में सम्बन्ध करे तब वह फल है, नहीं तो "अश्वेन जिगमिषति" नाम अश्व करके गमन की इच्छा करे है इहां अश्व को गमन क्रिया में ही करणता देखने से "विविदिषन्ति" इहां भीं वर्णाश्रमों के धर्मों का "विविदिषा" पद के अर्थ आत्म ज्ञान में सम्बन्ध करे तब आत्म ज्ञान ही फल है—यह क्रम से दोऊ पक्ष कहे "कर्म" इति, कर्म बखाने वेद सु जोई नाम नित्य नैमित्तिक रूप अपने अपने वर्णो के जो वेद कर्म करने कहे है वह आतम जिज्ञासा कहिये आत्म ज्ञान की इच्छा वास्ते कहे है, याते चित्तशुद्धि वैराग्यादि-जनन द्वारा आत्मज्ञान की इच्छा तिनका फल है, अथवा आत्म ज्ञान ही तिनका फल है या भाव से दूसर पक्ष कहे 'भली" इति, कर्म परायण मोक्ष साधनता कर कर्म पर (कर्मपरक) वेद कोई नहीं, किन्तु ज्ञान पर है ॥ ४१९ ॥

सोई कहें "निज" इति, निज आतम को दर्शन सार कहिये अपने आप का जो ज्ञान श्रेष्ट है, ता हित नाम तिसी वास्ते सम्पूर्ण वेद कर्मों को करणता कहे है, ज्ञान परता स्पष्ट करे "ज्ञान" इति, ज्ञान के साधन है भव जेते कहिये जितने वेद पाठ यज्ञ दानादिक कहे हैं वह सभी साक्षात् परम्परा कर ज्ञान के साधन हैं ॥ ४२० ॥

याते ता प्रवृत्ति नाम तिस ज्ञान में जो मुमुक्षुओ की जगत् में प्रवृत्ति हैं वह भस्म आहुतिवत् निष्फल नहीं, बाधक साधकतुल्यता से ज्ञान प्रवृत्ति को निष्फलता दूर करे "जो" इति ॥ ४२१-४२२ ॥

मंत्रवर्ण बखानी जोई। मंदमती पै ज़ानो सोई।
नातर कैसे कहे संन्यास श्रुति कर्मते होय उदास ॥४२३॥
जादिन उपजे दृढ वैराग्य। ताही दिन होवे बड़ भाग्य।
परमहंस सब कर्मन डारे। भवसागर के जावे पारे ॥४२४॥
जनक सिद्धि कर्मन ते पाई। रुक्मिणीपति पांडव प्रति गाई
सो वह 'सिद्धि'न मोक्ष पछानो। चित्त शुद्धि उर अंतर आनो ॥४२५॥
कर्म करे बंधनको हान। कोउ न याहि विषे सु प्रमाण।
ताते और उपाय न कोई। मोक्ष सो एक ज्ञान ते होई ॥४२६॥
श्रुति सिद्ध जो हइये ज्ञान। सोई हने निखिल अज्ञान।
सर्व अनर्थ नष्ट होय जावे। परमानंद एक नर पावे ॥४२७॥

पूर्व कर्म विधि में प्रमाण कहे वेद की व्यवस्था कहे "मन्त्र" इति, "मन्त्रवर्ण बखानी जोई कहिये "कुर्वन्" इत्यादि श्रुति ने जो कर्म विधि कही है वह मन्दमति कहिये आत्म जिज्ञासा हीन पुरुषों पै है, "श्रुति" पूर्व साथ मिला कर, मन्त्र वर्ण मन्द मति पै हैं यह बात न माने श्रुति सन्यास कैसे कहेगी? सन्यास का अर्थ कहे "कर्म ते" इति ॥ ४२३ ॥

अर्थ ते कर्म सन्यास प्रतिपादक श्रुति पढ़े "जा दिन" इति, "परमहंस" पूर्व साथ मिलाकर, जिस दिन पुरुष को दृढ़ वैराग्य उत्पन्न होवे उस दिन बड़े भाग्य वाला पुरुष परमहंस नाम सर्व कर्मों का त्याग कर संन्यासी हो जावे, परमहंसता का फल कहे "भव" इति ॥ ४२४ ॥

श्रुति की व्यवस्था कहकर स्मृति कहे "जनक" इति, सा वह सिद्धि न मोक्ष पछानो कहिये तहां सिद्धि शब्द से मोक्ष नहीं जाननी, किन्तु जनक सिद्धि कर्मन ते पाई नाम जनकादिकों ने चित्त शुद्धि कर्मों ते पाई ऐसे "सिद्धि" शब्द से चित्त शुद्धि जाननी ॥ ४२५ ॥

फलित कहे "कर्म" इति, ताते नाम कर्मों को मोक्ष में प्रमाणाभाव ते ॥ ४२६ ॥

"मोक्ष सो एक ज्ञान ते होई" पाठ का विवरण करे "श्रुति" इति, श्रुति सिद्ध नाम "ज्ञानादेव" इत्यादि श्रुति प्रमाण सिद्ध जो ज्ञान है वही सम्पूर्ण अज्ञान को दूर करे है याते ताही ते सम्पूर्ण अनर्थ नष्ट हो जावे

सकल द्वैतको होवे नाश । रहे सो एके ब्रह्म प्रकाश

अत्र द्वैंतवादी उक्तार्थ में प्रकारान्तर से आक्षेप करता है ।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

ननु जाने सब द्वैत संहार्‌यो । सो वह ज्ञान कहो किन मार्‌यो॥४२८
सब अनुकूली ब्रह्मप्रकाश । सो भी न करे ज्ञानको नाश ।
ताहि समय नहिं औरे कोई । ताते नाशक और न होई ।४२९॥
बिन नाशक नहिं होवे हान । ताते द्वितीय ज्ञान इक मान ।
ताकर होवे द्वैत प्रकाश । कथं सु एके ब्रह्मप्रकाश ॥४३०॥

अब सिद्धान्ती उक्त अपेक्ष का मतभेद से उत्तर कहे है ।

चौपाई

सिद्धान्ती—

यामें उत्तर बहुत प्रकार । पण्डित जन सब करे उचार ।
कतकरज ज्यों जलको पाय । सकल नीरके मलहि मिटाय ॥४३१॥

है औ परमानन्द को पुरुष प्राप्त होवे है अर्थात् अनर्थ निवृत्ति सहित परमानन्द की प्राप्ति रूप "मुक्ति" ज्ञान ते ही होवे है ॥ ४२७ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण द्वैत का जब ज्ञान से नाश होवे है तब द्वैत के अभाव का अधिकरणरूप स्वप्रकाश ब्रह्म ही शेष रहे है, ज्ञान से सम्पूर्ण द्वैत का नाश होकर एक ब्रह्म ही शेष रहे है यह बात श्रवण कर द्वैत वादी आशंका करे "ननु" इति, कहो किन मार्‌यो कहिये कहो किसने दूर किया अर्थात् ब्रह्म ने दूर किया वा काहू और ने दूर किया ॥ ४२८ ॥

प्रथम का परिहार करे "सब" इति, दूसर की असिद्धि कहे "ताहि" इति ॥ ४२९ ॥

द्वैतप्रकाश नाम द्वैतप्रतीति ॥ ४३० ॥

सिद्धान्ती परिहार करे "यामें" इति, यामें नाम ऐसी आशंका में, अनेक प्रकार पण्डित जन कहे हैं, प्रकार सुनावे "कतक" इति, मलिन जल में पीस कर गेरने से जलकी मल को तले बिठाय देने वाली काहू बूटी का नाम "कतक" है ॥ ४३१ ॥

मल के संग आप मिटजावे। कतक नहीं पाछे ठहरावे।
यों ही ज्ञान संग-चित् पाय। चिद् अध्यस्त सब द्वैत मिटाय।४३२
कतक समान होय वह नाश। रहे सु एके ब्रह्म प्रकाश।
यों केचित् इहि करे उचार। और सु भाखे और प्रकार।४३३॥
ज्यों अतितप्त लोह में जाय। नीर सकल तिहिं ताप मिटाय।
आप तहाँ ही होवे लीन। यों ही ब्रह्मज्ञान गति चीन॥४३४॥
अरुपुनि केचित् यों उर आने। तृण अग्नि दृष्टांत बखाने।
ज्यों तृणकूट जलावे अगन। बिन आश्रय होवे तहि मगन॥४३५॥
त्यों ही त्रिपुटी सकल जलाय। ब्रह्मज्ञान आपे मिट जाय।
और कहे पुनि और प्रकार। कहौं संक्षेप अहे विस्तार॥४३६॥
ज्ञान एक अज्ञानहि हने। साथ प्रपंच द्वेष नहिं गने।
जब अज्ञान नाश होइ गयो। कारण हीन प्रपंचहि भयो॥४३७॥
कारण बिन कार्य नहिं रहे। यह भूमें सब कोविद कहे।
प्रपंच नाशको उन्मुख भयो। ज्ञान सु ता अंतर निर्मयो॥४३८॥
सो भी चले ताहिके साथा। मानो तात तात गहि हाथा।
ज्ञान सहित प्रपंचहि नाश। रहे सु एके ब्रह्म प्रकाश॥४३९॥

दार्ष्टान्तिक में कहे "यों" इति॥ ४३२-४३३॥

प्रकार कहे "ज्यों" इति॥ ४३४-४३५-४३६॥

ज्ञान एक अज्ञानहि हने कहिये ज्ञान अज्ञान का ही साक्षात् विरोध होने ते, ज्ञान एक अज्ञान को ही दूर करे है, साथ प्रपंच द्वेष नहि गने नाम प्रपञ्च साथ विरोध नहीं करे किन्तु प्रपञ्च का नाश उपादान के नाश से होवे है सोई कहे "जब" इति॥ ४३७॥

कारण बिन नाम उपादान कारण बिना, कारण बिना कार्य न रहने ते प्रपञ्च जब नाश को उन्मुख नाम सन्मुख हुआ तब तिसके भीतर निर्मयो नाम उत्पन्न भया ज्ञान भो भाई का भाई हाथ पकड़ के जानेवत् जावे है॥ ४३८-४३९॥

अरुपुनि केचित् बुद्धिविशाल । उत्तर भाखे मर्म रसाल ।
वृत्तिरूप ज्ञान है जोई । ब्रह्म अज्ञान हने नहिं सोई ॥४४०॥
प्रकाश नाश अज्ञानहि अहे । जहि जड़वृत्ति कथं तिहँ दहे ।

बोध इद्ध वृत्ति वादी की शंका

पूर्वपक्षी—

ज्यों लोहा अग्नि के संगा । पाय तादात्म्य तेज अभंगा ॥४४१॥
भस्मीभाव करे तृण सारे । वृत्ति तथा अज्ञानहि मारे ।

वृत्ति इद्ध बोध वादी

सिद्धान्ती—

लोह निदर्शन भाख्यो जोई । अहे असत्य निदर्शन सोई ॥४४२॥
होवे दाह जगतमों जहाँ । पावक सत्य पिखे जन तहाँ ।
लोहा जहाँ जगतमों हइये । दाह निरंतर तहाँ न पइये ॥४४३॥
जा पावकने लोह तपायो । ताही ने तृणकूट जलायो ।
लोह जलाये तृणके भार । यह नर ज्ञान भ्रमहि निर्धार ॥४४४॥

बोध इद्ध वृत्ति अज्ञान का नाशक है वा वृत्ति इद्ध बोध अज्ञान का नाशक है इन पक्षों में प्रथम में अनेक मत दिखलाकर दूसरा दिखलावे "अरु पुनि" इति, उत्तर सुनावें "वृत्ति" इति ॥ ४४० ॥

न हनने में हेतु बतावे "प्रकाश" इति, बोध इद्धवृत्ति वादी आशंका करे "ज्यों" इति ॥ ४४१ ॥

वृत्ति तथा अज्ञानहिं मारे नाम जड़ रूप भी वृत्ति अग्नि युक्त लोहवत् अज्ञान का नाश करे है। तिसके हेतु को तिसकी हेतुता होवे, तिससे क्या काम, या न्याय से अग्नि को दाह हेतुता सिद्ध होने ते "लोहा दाह करे है" यह ज्ञान भ्रम है या भाव से वृत्ति इद्ध बोध वादी परिहार करे "लोह" इति ॥ ४४२ ॥

असत्यता में बीज कहे "होवे" इति, दाह निरन्तर तहां न पइये नाम तहां निरन्तर दाह नहीं होवे याते मत मानना ॥ ४४३ ॥

सोई कहे "जा" इति, तृण कूट जलायो नाम तृणों का समुदाय जलाया, ऐसे भये "लोहा तृणों के भार जलावे है" यह ज्ञान पुरुषों को भ्रम रूप है याते वृत्ति अज्ञान का नाश नहीं करे ॥ ४४४ ॥

उत्क्रार्क में पूर्वपक्षी और सिद्धान्ती का सम्वाद

पूर्वपक्षी—

ननु जे वृत्ति हने नहिं सोई । तौ भाखो तिहिं नाशक जोई ।

सिद्धान्ती—

वृत्त्यारूढ अहे चिद जोई । ब्रह्म अज्ञान हने भव सोई ॥४४५॥
यद्यपि चेतन शुद्ध स्वरूप । हने अविद्या को नहिं रूप ।
उलटो तिहँ साक्षी है सोई । नाशक नाहिं कदाचित होई ॥४४६॥
तदपि सु बैठ वृत्ति के माहीं । हने अविद्या का भव माहीं ।
अखंडाकारवृत्ति जग जोई । तामों रूढ होय चित् सोई ॥४४७॥
निखिल अविद्या डारे मार । जाहि विषे दृष्टांत उदार ।
सूर्य की दीप्ति है जोई । तृण समुदाय प्रकाशे सोई ॥४४८॥
यद्यपि शुद्ध प्रकाशक अहे । तदपि सु और संग मिल दहे ।
सूर्यकांत मणी के माहीं । होय आरूढ जलावे ताहीं ॥४४९॥

पूर्वपक्षी—

ननु यद्यपि अविद्या नाशी । तदपि सु वृत्ति रहे अविनाशी ।
ताको नाशक और न कोई । वृत्त्यारूढ चिदाश्रय सोई ॥४५०॥

बोध इद्ध वृत्ति वादी पुनः आशंका करे "ननु" इति, वृत्ति इद्ध बोध वादी उत्तर कहे "वृत्ति" इति ॥ ४४५ ॥

आशंका द्वारा नाशकता स्पष्ट करे "यद्यपि" इति ॥ ४४६ ॥

घटाकार, पटाकार, वृत्तियों से विशेष बतावे "अखण्ड" इति ॥४४७॥

जाहि विषे नाम अखण्डाकार वृत्ति में आरूढ़ होकर अज्ञान के मारन में, दृष्टान्त कहे "सूर्य" इति ॥ ४४८ ॥

"और संग मिल दहे" का अर्थ करे "सूर्य" इति ॥ ४४९ ॥

दृष्टान्त द्वारा वृत्ति इद्ध बोधते अज्ञान का नाश भये भी वृत्ति का नाश न होने ते अद्वितीय नहीं सिद्ध होवेगा या भाव से आशंका करे "ननु" इति, तदपि सुवृत्ति रहे अविनाशी कहिये नाशकान्तर के अभाव ते औ चेतन को आश्रयनाशकता युक्ति सिद्ध न होने ते वृत्ति का नाश नहीं होवेगा सोई कहे "ताको" इति ॥ ४५० ॥

सो आश्रय का करे न नाश । किहि विधि होय अद्वितीय प्रकाश ।

सिद्धान्ती—

वृत्त्यारूढ अहे चिद् जोई । वृत्ति विनाश करे इह सोई ॥४५१॥

किंचित् काष्ठमों होय आरूढ । पावक होय जगतमों रूढ ।

काष्ठ बैठ जलावे ग्राम । नगरन को कछु रहे न नाम ॥४५२॥

अग्नि आधार दारु है जोई । ताहि जलावे अग्नि सोई ।

जैसे यह तैसे ही ज्ञान । भली प्रकार सु मनमें आन ॥४५३॥

चरमवृत्ति भव भीतर जोई । तामों रूढ होय चित् सोई ।

निखिल द्वैत का करे विनाश । वृत्ति विनाशक वही प्रकाश ॥४५४॥

वृत्ति समेत द्वैत को नाश । घनानंद चिद् एक प्रकाश ।

पूर्वपक्षी—

ननु आतम में द्वैत विनाश्यो । घनानंद चिद् एक प्रकाश्यो । ४५५॥

सिद्धान्ती उत्तर कहे "वृत्यारूढ़" इति, वृत्ति विनाश करे इह सोई नाम इस स्वाश्रय भूत वृत्ति का नाश वही करे है ॥ ४५१ ॥

कही बात दृष्टान्त से बतावे "किञ्चित्" इति, रूढ नाम दृढ़ ॥ ४५२-४५३ ॥

दृष्टान्त समानता कहे "चरम" इति, चरम नाम अज्ञान तत् कार्य के नाशक चेतन का उपाधिभूत जो अन्तिम वृत्ति है तिस विषे आरूढ़ होकर वह चेतन निखिल द्वैत का नाश करे है और वह प्रकाश नाम वही चेतन स्वाश्रय भूत वृत्ति का, काष्ठ का अग्निवत् नाश करे हैं ॥ ४५४ ॥

इस प्रकार वृत्यारूढ़ से वृत्ति समेत नाम वृत्ति सहित अज्ञान तत् कार्य रूप निखिल द्वैत का आत्मा में नाश होने कर एक नाम अद्वितीय एक रस चेतन काही प्रकाश होवे है याते सिद्ध हुआ "रहेसो एके ब्रह्म प्रकाश" यह कथन । ननु होवे तुम्हारा कह्या सिद्ध तथापि जनों की वृत्ति सहित देह आदि निखिल द्वैत के अभाव-काल में ही विदेह मुक्ति सिद्ध होने ते जीवन्-मुक्ति की असिद्धि कर तिनके प्रतिपादक वेद को व्यर्थता का और विद्या सम्प्रदाय नाश होने का प्रसंग होवेगा यह आशंका करे "ननु" इति ॥ ४५५ ॥

ज्ञानी देह भस्म हो गयो । क्षण उर्ध्व ताते नहिं रह्यो ।
'जीवन्मुक्त' बखाने जोई । भये व्यर्थ निगम अब सोई ॥४५६॥
ब्रह्मविद्या संप्रदाय विनाशी । ता विन नष्ट नाहिं भव फांसी।
देह स्तम्भक भव में जोई । बिना अविद्या अवर न कोई ॥४५७॥
कर्मादिक जे कारण हइये । विना अविद्या सो नहिं पइये ।
उपादान जाको मर जावे । तो वह कार्य नहीं ठहरावे ॥४५८॥

ज्ञानी देह भस्म हो गयो नाम आत्मा में, निखिल द्वैत के नाश सहित एक रस आनन्द के प्रकाश काल में ही ज्ञानवान् का आविद्यक देह नष्ट हो गया, ताते नाम निखिल द्वैत नाश सहित परमानन्द के प्रकाश से पीछे क्षणमात्र नहीं रह्या अर्थात् तत्काल ही ज्ञानी की विदेह मुक्ति हुई ऐसे भये जीवन्मुक्ति के अभाव ते ताका प्रतिपादक वेद व्यर्थ हुआ सोई कहे "जीवन्" इति, जीवन्मुक्त बखाने जोई कहिये "विमुक्तश्च विमुच्यते" इत्यादि जीवन्मुक्ति के प्रतिपादक जो निगम है, प्रतिपाद्य वस्तु के अभाव ते वह व्यर्थ हुये, उक्त वाक्य को जीवन्मुक्ति प्रतिपादकता ऐसे है यद्यपि ज्ञान से पूर्व शमादि साधन सम्पन्न अधिकारी रागादिकों से मुक्त है तथापि वह मुक्ति यत्नसाध्य है और ज्ञान से उत्तर काल योगाभ्यास से मनोनाश, वासनाक्षय दृढतर हुए अराभास रूप रागादिको के भी असम्भव से रागादिकों की मुक्ति स्वतः होवे है, याते "विमुक्तः" नाम विशेषेण मुक्तः अर्थात् रागादिकों की अत्यन्त निवृत्ति वाला हुआ जीवन्मुक्त, विमुच्यते— भोग से प्रारब्ध क्षीण भये वर्तमान देह के पातानन्तर भावी बन्ध ते विशेष कर मुक्त होवे है इस रीति से श्रुति ज्ञानोत्तर काल में विदेह मुक्ति विलक्षण कर्तृत्वादि बन्ध निवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति प्रतिपादन करे है सो व्यर्थ होवेगी ॥ ४५६ ॥

कहे दोष दृढ़ करने हेतु ज्ञानी की देह का भस्म होना बतावे "देह" इति, देह स्तम्भक भव में जोई नाम देह के थामने वाला संसार में विना अविद्या नाम उपादान रूप अविद्या से बिना और कोई नहीं, किन्तु प्रारब्ध आदि निमित्त कारणों की भी, तदधीन ही स्थिति होने ते वही है ॥ ४५७ ॥

सोई कहे "कर्मादिक" इति, कर्मादिक जो निमित्त कारण हैं अविद्या रूप उपादान बिना वह भी नहीं रहे, बिना अविद्या तिनका न रहना

सिद्धान्ती—

या शंका को यह परिहार । प्रकट बखानों उर में धार ।
रज्जु सर्प ज्यों होवे नाश । कंपादिक क्षण रहे अभास ॥४५९॥
ज्यों पावक भव में पट दहे । ताकी भस्म तथा क्षण रहे ।
त्यों ही होय अविद्या नाश । देहादिक क्षण रहे अनाश ॥४६०॥
संचित निखिल कर्म होय नाश । जलसों लिपे न पद्मपलाश ।
त्यूँ हो क्रियमाण है जोई । ताके संग लिपे नहिं सोई ॥४६१॥
देहारंभक जो जग हइये । कर्मनाश ताको नहिं पइये ।
ताही कर तनु ज्ञानी केरे । रहे जगत में यों मन हेरे ॥४६२॥

पूर्वपक्षी—

तत्त्वज्ञान भव भीतर जोई । कर्म सकल को नाशक सोई ।
संचित क्रियमाण को टारे । प्रारब्ध को नाहिं निवारे ॥४६३॥

कहे "उपादान" इति, जिसका उपादान दूर हो जावे है, तन्तु का नाश भये पट के नाशवत्, तो वह नाम सो पुनः कार्य ठहरे नहीं, याते उपादान अविद्या के नाश होने ते कर्मादिक निमित्तों का भी नाश भये ज्ञानी की देह भस्म होने से उक्त दोष होवेंगे ॥ ४५८ ॥

सिद्धान्ती कहे "या" इति, दृष्टान्त से परिहार बतावे "रज्जु" इति, अभास-प्रतीत होते ॥ ४५९ ॥

निमित्त-नाश ते कार्य स्थिति रहो, उपादान नाश ते कैसे ? यह आशंका वारण हेतु और दृष्टान्त से परिहार बतावे "ज्यों" इति ॥४६०॥

देह आदिकों की अनाशिता में बीज बतावे "सञ्चित" इति, ज्ञानाग्नि से सञ्चित कर्म सम्पूर्ण नष्ट होवे है और जल साथ पद्म का पलाश नाम पत्र जैसे लिपायमान नहीं होवे, त्यूँ ही नाम तद्वत् क्रियमाण जो कर्म हैं तिनके साथ भी ज्ञानी लिपायमान नहीं होवे अर्थात् क्रियमाण भी सम्पूर्ण नाश होवे है परन्तु देहारम्भक प्रारब्ध नाश नहीं होवे ॥ ४६१ ॥

सोई कहे "देह" इति, कर्म पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ॥४६२॥

ज्ञानाग्नि से दो के नाश औ एक के अनाश में युक्ति न देखता आशंका करे "तत्त्व" इति ॥ ४६३ ॥

यामों कौन युक्ति तुम पाई । जाते याहि व्यवस्था गाई ।

सिद्धान्ती—

यामों परम युक्ति है जोई । भाखों तुमे सुनो अब सोई ॥४६४॥

सो प्रारब्ध है दोय प्रकार । सो सुनिकै उर अंतर धार ।

इक प्रारब्ध कर्म है जोई । स्वफल-हित तन जाये सोई ॥४६५॥

बहुरो द्वितीय कर्म प्रधान । सो उपजावे तत्त्वज्ञान ।

देह स्थितिको कारण जोई । ताको चाहे कर्म सु सोई ॥४६६॥

यह तनु राखे किंचित् काल । मैं उपजाऊँ ज्ञान विशाल ।

ता उपजायो ज्ञान सु जोई । प्रारब्ध को हने न सोई ॥४६७॥

एक पिता को मीत निहारे । निज स्थिति कारण निर्धारे ।

मेरो पिता कर्म है जोई । ताको चाहे बहुविधि सोई ॥४६८॥

अरु इन जाले मैं मर जाऊँ । ताते नाहिं विरोध कमाऊँ ।

संचित क्रियमाण द्वय जेई । हमरे नाहिं संबंधी तेई ॥४६९॥

यामों—निखिल के नाशक से दो के नाश औ एक की अनाशता में, सिद्धान्ती उत्तर कहे "यामों" इति ॥ ४६४ ॥

युक्ति का प्रकार रचे "सो प्रारब्ध" इति ॥ ४६५ ॥

युक्ति बतावे "देह" इति ॥ ४६६ ॥

हेतु सहित "चाह" का स्वरूप बतावे "यह" इति, प्रारब्ध को हने न सोई नाम किञ्चित् काल शरीर की स्थिति रखने वाले कर्म को वह हने नहीं ॥ ४६७ ॥

न हनने में दो हेतु कहे "एक" इति, एक तो मेरे पिता का मित्र है, दूसरे मेरी स्थिति का कारण है, पिता की मित्रता बतावे "मेरो" इति ॥ ४६८ ॥

अपनी स्थिति में हेतुता बतावे "अरु" इति, ताते नाम इसके नाश किये अपने नाश प्रसंग ते, इसके साथ वैर न करूँ, दो हेतु से तन स्थिति हेतु प्रारब्ध की ज्ञान को अनाशकता कहकर सञ्चित क्रियमाण की नाशकता कहे "सञ्चित" इति ॥ ४६९ ॥

इनके हने नाहिं अपराध । अरु इन हने राज मुहि साध ।
इनहिं करौं ताते परिहार । ढील न बनै करौं इहु वार ॥४७०॥
या विधि प्रारब्ध बिन जोई । ज्ञान नाश पहिचानो सोई ।
प्रारब्ध वश धीर शरीर । रहे जगत में सम जो धीर ॥४७१॥
ज्ञानी को चिर तावत हइये । यावत देह पात नहिं पइये ।
सो तनु पात होय जग जबही । होय विदेहमुक्त वह तबही । ४७२॥
ऐसे श्रुतिहि देहको कहे । ज्ञानी को तनु जग जन लहे ।
"लेशाविद्या" जो भव माहीं । प्रारब्ध प्रतिबंधक ताहीं ॥४७३॥

इनके हने नाहिं अपराध कहिये याते यह हमारे सम्बन्धी नहीं, ताते इनके हने से मेरे को अपराध नहीं, उलटा इनके दूर करने से मेरे राज्य की सिद्धि है, ताते नाम अपने राज्य की सिद्धि ते इनका नाश करो ॥ ४७०-४७१ ॥

ज्ञान से प्रारब्ध कर्म की अनाशता में, रात्रि भोजन से पीनतावत् शरीर स्थिति ते कल्पे दो हेतु रूप युक्ति सुना कर अर्थ ते ताका सहायी श्रुति वाक्य कहे "ज्ञानी को" इति, ज्ञानी को चिर तावत हइये नाम ज्ञानवान् पुरुष को तेता काल विदेह मुक्ति में देर है जेता चिर उसका देह नाश नहीं होवे, सो तनु पात होय नाम जब उसके देह का नाश हुआ तिसी काल में वह विदेह मुक्त होवे है इस प्रकार श्रुति भी ताकी देह को सिद्ध करे है ॥ ४७२ ॥

सोई कहै "ऐसे" इति, ऐसे नाम "ज्ञानी को चिर तावत" इस प्रकार श्रुति देह को कहे है, पुनः ज्ञानी को तनु जग जन लहे कहिये ज्ञानी के शरीर का लोगों को भी अनुभव होवे है याते कहे हेतुओं से ज्ञान कर न निवृत्त भये प्रारब्ध से तन रहे है यह अवश्य अंगीकर्तव्य है, श्रुति युक्ति से देह स्थिति सिद्धि भये भी उपादान बिना कार्यों की स्थिति कैसे ? ऐसी चिन्ता वाले को प्रारब्ध रूप कर्म से प्रतिवध्य लेशाविद्या रूप उपादान ही सम्भवे है यह कहे "लेशाविद्या" इति, लेशाविद्या जो भव माहीं कहिये अविद्या का जो कोईक अंश है, ताही नाम तिसका प्रारब्ध कर्म प्रतिबन्धक है ॥ ४७३ ॥

प्रातिभासिक प्रपंचहि जोई। तासु स्थितिको कारण सोई।
ताकर होय निखिल व्यवहार। ज्ञानी देह तथा निर्धार ॥४७४॥
जीवन्मुक्त बखाने जोई। अब नहिं व्यर्थ निगम सुन सोई।
ब्रह्मविद्यासंप्रदाय अनाशी। सम्यक् नष्ट होय भवपाशी। ४७५॥

अब पूर्वपक्षी को लेशाऽविद्या के ज्ञात करने की शंका।

पूर्वपक्षी—

ननु वह लेशाविद्या जोई। ताको रूप कहो क्या होई।

अब सिद्धान्ती जिज्ञासु के बोधार्थ अनेक प्रकार से लेशाऽविद्या के स्वरूप का प्रतिपादन करे है।

चौपाई

सिद्धान्ती—

ताको रूप सु बहुत प्रकार। पूर्व बुधजन करे उचार ॥४७६॥
मूलाविद्या भाखे जाहीं। आवरण विक्षेप शक्ति द्वय ताहीं।
तामों द्वितीय शक्ति है जोई। 'लेशाविद्या' भाखी सोई ॥४७७॥
ऐसे केचित् तिहँ ठहरावे। और सु और प्रकार बतावे।
क्षालितलशुन भांड में जैसे। लशुन वासना होवे तैसे ॥४७८॥

औ प्रारब्ध से प्रतिबध्य हुई लेशाविद्या प्रातिभासिक नाम अग्निदग्ध पटवत् ज्ञानदग्ध व्यावहारिक सत्ता वाले प्रातीतिक प्रपञ्च की स्थिति का हेतु है याते ताकर नाम तिस लेशाविद्या रूप उपादान के प्रभाव ते ज्ञानवान् के खान-पान आदिक सभी व्यवहार होवे है, तथा नाम तैसे देह भी स्थिर रहे है ॥ ४७४ ॥

इस रीति से ज्ञानवान् के देह की स्थिरता सिद्ध होने ते पूर्वोक्त दोऊ दोष भी नहीं, सोई कहे "जीवन्" इति ॥ ४७५ ॥

जाके प्रभाव से दोष दूर किये वह लेशाविद्या किं रूप है यह पूछे "ननु" इति, उत्तर कहे "ताको" इति ॥ ४७६ ॥

प्रकार कहे "मूलाविद्या" इति, तामों द्वितीय शक्ति है जोई नाम तिन दोनों में जो विक्षेप शक्ति है वह "लेशाविद्या" कहिये है ॥ ४७७ ॥

केचित् नाम कोईक "लेशाविद्या" को ऐसे कहे हैं, इहां यह भाव है = मूलाज्ञान की आवरण विक्षेप दो शक्ति है तिनमें आवरणशक्ति

अविद्या संस्कार है जोई। 'लेशाविद्या' माने सोई।
अरु पुनि केचित् यों दिखलावे। दग्ध पटादिक सम ठहरावे ।।४७९।।
ज्यों पावक में कपड़ा जले। ताहि भस्म जबलग नहिं हले।
तौ लौं सो पटके सम आहि। चार कोणको त्यागे नाहि ।।४८०।।
त्यों ही 'मूलाविद्या' जली। तत्त्वज्ञान करि जौ नहिं हली।
क्षय प्रारब्ध पवन नहिं पाय। तौलौं तैसेही दिखलाय ।।४८१।।
सोई 'लेशाविद्या' हइये। ता विन लेश और नहिं पइये।
अरु पुनि केचित् औरे कहे। अविद्या भागतीन उर गहे ।।४८२।।

सहित अज्ञानांश का ज्ञान से विरोध होने से नाश होवे है, विक्षेपशक्ति सहित अज्ञान अंश का ज्ञान से विरोध न होने ते नाश होवे नहीं, यह अवश्य मानना, न माने जहां जल प्रतिबिम्बित पुरुष के ऊर्ध्व देश में अधो देशस्थत्व भ्रम होवे है तहां पुरुष का विशेष रूप ते ज्ञान भये अज्ञान दूर होने से ऊर्ध्व देश में अधो देशस्थत्व भ्रम दूर हुआ चाहिये औ होवे नहीं, याते ताके न दूर होने में और तो कोई हेतु कहना बने नहीं, किन्तु आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञान अंश की ज्ञान से निवृत्ति भये भी विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञान अंश की निवृत्ति नहीं होवे, ऐसे ही कहना होवे है, तद्वत् जीवनन्मुक्त को ब्रह्मात्मा के अपरोक्ष ज्ञान से आवरणशक्ति सहित अज्ञान अंश के नाश हुए भी विक्षेपशक्ति सहित अज्ञान रूप लेशाविद्या की निवृत्ति नहीं होवे है, याते शरीरादिकों की स्थिति बने है यह भी कहना, और का कह्या प्रकार कहे "क्षालित" इति, क्षालित लशुन भाण्ड में नाम धोये हुए लशुन के वासन में ।। ४७८ ।।

"तैसे" पाठ के साथ अविद्या का पूर्व सम्बन्ध (कर लेना) ।।४७९।।
"दग्ध" इत्यादि पाठ का विवरण करे "ज्यों" इति ।। ४८० ।।
"तत्व ज्ञान कर" पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ।। ४८१ ।।

अविद्या भाग तीन उरगहे नाम असत्वापादक, अभानापादक भेद से दो रूप आवरण और तीसरा विक्षेप ऐसे अविद्या के तीन अंश अंगीकार करे ।। ४८२ ।।

ब्रह्म असत्त्वापादक जोई । ब्रह्म श्रवण ते नाशे सोई ।
ब्रह्म अभानापादक जोई । साक्षात्कार ते नाशे सोई ॥४८३॥
देह स्थिति को कारण जो है । नाम विक्षेप जगतमों सो है ।
ज्ञानी देह पतन के काल । उपजे ज्ञान सो अवधि विशाल ॥४८४॥
ताकर नाश ताहि को होई । या विधि नाश त्रिधा तिहँ जोई ।
अरु पुनि केचित् परम आचार्य । यों सिद्धांत भाखे जग आर्य ।४८५॥
तत्त्वज्ञान जबै नर होय । निखिल अविद्या जाले सोय ।
यह केवल कार्य रहि जाय । प्रारब्ध प्रतिबंधक पाय ।४८६॥
द्रोणी अस्त्र लाग्यो जबही । भस्मीभूत पार्थरथ तबही ।
होयो, गिऱ्यो न भारत माहीं । कृष्ण शक्ति प्रतिबंधक ताहीं ॥४८७॥
जैसो यह तैसो हि प्रपंच । यामों भेद न इइये रंच ।
ज्ञानी तनु अरु तहि व्ययहार । पार्थ स्यंदन सम निर्धार ॥४८८॥

तिन तीनों में ब्रह्म असत्वापादक जोई नाम "ब्रह्म नास्ति" ऐसे ब्रह्म के असतपने का आपादक जो अविद्या का अंश वह ब्रह्म श्रवण ते नाम "सत्यं ज्ञानमनन्तम्" इत्यादि वाक्य से ब्रह्म का सत्यत्व श्रवण ते अर्थात् ब्रह्म के परोक्ष ज्ञान ते दूर होवे है औ ब्रह्म अभानापादक जोई नाम "ब्रह्म भान नहीं होवे" ऐसे ब्रह्म के अभान का आपादक जो अविद्या का अंश वह साक्षात्कार ते नाम "ब्रह्म मैं हूँ" ऐसे अपरोक्ष ज्ञान से दूर होवे है ॥ ४८३ ॥

तथा, देहस्थितिकोकारणजोहै नाम ज्ञानवान् के शरीर की स्थिति का कारण जो, नामविक्षेप कहिये विक्षेप नाम वाला अविद्या का अंश वही संसार में लेशाविद्या कहते है पुनः ताका नाश ऐसे होवे है सोई कहे "ज्ञानी" इति, ज्ञानी देह पतन के काल नाम विद्वान् की देह के नाश काल में अवधि नाम जिसके उत्पन्न होने से अविद्या तत्कार्य रूप दृश्य किञ्चित् नहीं रहे ऐसी एक अन्तिम वृत्ति उत्पन्न होवे है ॥ ४८४ ॥

ताकर नाम तिस वृत्ति कर उस विक्षेपशक्ति की निवृत्ति होवे है इस प्रकार वह तीनों तरह की अविद्या दूर होवे है ॥ ४८५ ॥

सिद्धान्त कहे "तत्त्वज्ञान" इति ॥ ४८६ ॥

दृष्टान्त से देह आदि कार्य मात्र का रहना बतावे "द्रोणी" द्रोणी

प्रतिबंधक को अपगम जबही। प्रतिबंध होय नाश पुनि तबही।
ज्यों छत्रको अपगम होई। छाया ताहि रहे नहिं कोई॥४८९॥
त्यों ही प्रारब्ध क्षय जबही। देह पात होवेगो तबही।
बिन भोगे नाशे नहिं सोई। ताते भोग तज्ञ में होई॥४९०॥

पूर्वपक्षी—

ब्रह्मज्ञान यह हइये जोई। जग मिथ्या दिखलावे सोई।
मिथ्या ते नहिं भोग सु होई। सुख दुखको अनुभव है जोई॥४९१॥

सिद्धान्ती—

मिथ्या वस्तु भोग उपजाई। स्वप्न वस्तु सम चित न काई।
स्वप्न माहि भूखो है जोई। स्वप्न अन्न तृप्तावे सोई॥४९२॥

नाम द्रोण पुत्र (अश्वत्थामा) का "होय" पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ॥ ४८७-४८८ ॥

प्रारब्ध कर प्रतिबध्य प्रपञ्च का नाश कब होगा ? तहां कहे "प्रतिबन्धक" इति, अपगम—नाश, कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "ज्यो" इति ॥ ४८९ ॥

ताते नाम "न भुक्तं क्षीयते" इत्यादि वचनों से भोग बिना नाश न होने ते ज्ञानवान् में मिथ्याभूत प्रारब्ध से भोग होवे है ॥ ४९० ॥

होवे लेशाविद्या प्रभाव से प्रपञ्च स्थिति तथापि मिथ्या से भोग सिद्धि कैसे ? यह आशंका करे "ब्रह्म" इति, "ब्रह्मज्ञान यह हइये जोई नाम "मैं ब्रह्म हूँ" यह जो अखण्डभूत जीव ईश के अभेद विषयिणी वृत्ति है वह जग मिथ्या दिखलावे नाम सर्प को रज्जु ज्ञानवत् भेद आदि प्रपञ्च को नित्यत्व अनित्यत्व खोकर मिथ्यात्व दिखावे है, औ मिथ्या जाने मरुस्थल जल से तृषा शान्ति न देखने से तद्वत् मिथ्या जाने प्रपञ्च से भी तत्त्वज्ञ को भोग नहीं बने, भोग का अर्थ कहे "सुख" इति ॥ ४९१ ॥

प्रातिभासिक मिथ्या से व्यावहारिक मिथ्या रूप भोग न सिद्ध हुए भी समसत्ता वाले से समसत्ता वाला भोग बने है यह दृष्टान्त द्वारा मिथ्या से भोग सिद्धि बतावे "मिथ्या" इति ॥ ४९२ ॥

स्वप्न माहिं शीत तनु आये । स्वप्न पाट धर दूर मिटाये ।
स्वप्न नदी भवभीतर जोई । दे ढबुवा नर उतरे सोई ॥४९ ॥
जाग्रत लाख टका घर माहीं । स्वप्ने दाम गाँठमों नाहीं ।
तौ नाविक तिहिं दूर निवारे । स्वप्न नदी नहिं पार उतारे ॥ ९४॥
तैसे जाग्रत माहिं सु जानो । मिथ्या ते सब भोग पछानो ।

पूर्वपक्षी—

तब नहिं होवे मिथ्या ज्ञान । ताते कछुक भोग नर भान ॥४९५॥
इहाँ विज्ञ जग मिथ्या जाने । कैसे ताको भोग वखाने ।

सिद्धान्ती—

इंद्रजाल नर मिथ्या जाने । भोग विशेष ताहिते माने ॥४९६॥
ताते ज्ञान भोग नहिं डारे । जग सत्ताको दूर निवारे ।
ताते निज कर्मन अनुसार । विज्ञन के बहु विधि व्यवहार ॥४९७॥

ढबुवा—पैसा ॥ ४९३ ॥

नाविक—मल्लाह ॥ ४९४ ॥

ननु मिथ्या जाने सर्प से भय न देखने ते स्वरूप ते मिथ्या जगत् ते भोग सिद्धि रहे भी मिथ्या जानने से नहीं बने यह आशंका करे "तब" इति, तब नाम स्वप्नावस्था में ॥ ४९५ ॥

इहां नाम जाग्रत में, वैसे जाने से भी भोग होवे है यह दृष्टान्त से कहे सिद्धान्ती "इन्द्र जल" इति, भोग विशेष ताहि ते माने नाम सौम्य असौम्य वस्तु देखकर सुख दुख का अनुभव अनेक प्रकार का तिनसे माने है तिस ते यह मानना ॥ ४९६ ॥

सोई कहे "ताते" इति, ताते नाम तिस हेतु ते, यह बात माननी जो ब्रह्म ज्ञान भोगों को दूर नहीं करे किन्तु जग सत्ता को दूर निवारे कहिये जगत् की सत्ता को दूर करे है, ताते नाम ज्ञान ने भोगों को दूर न करने से ज्ञानावानों के अपने-अपने प्रारब्ध के अनुसार अनेक प्रकार के व्यवहार है ॥ ४९७ ॥

अब पूर्वोक्तार्थं का स्पष्टीकरण करते हैं।

सवैया

इक राज करे गज वाजि चढे, इक भूधर पैरन आप चले है।
इक मौन भजे भव मंडल में, इक ईश्वर को उर जाप जपे है।।
इक जाय पहारन योग करे, इक भोग करे घर माहिं रमे है।
करुणारस पूरण एक रहे, इक वीर रसे अरिसंग लरे है ।।४९८।।

(नराजछंद)

करे अनेक याग दान मान ईश सेवनं।
सु राज-काज भीख औ मनाय सर्व देवनं ।।
इदं करोमि बुद्धि को सु नीठ चित्त ना धरे।
पिखे अखंड रूप को कुबन्ध सिन्धु को तरे ।।४९९।।

(भुजंगप्रयातछंद)

जिनै ज्ञान होये तिनै दुःख खोये। नहीं लाभ जागे नहीं हानि सोये।
नहीं पुण्य पापं तिसे एक लागे। हने विप्र लाखं करे कोट यागे ।।५००

सोई दिखावे "इक" इति, "इक राज करे गज वाजि चढ़े" ऐसे जनकादिक हुए हैं, इक भूधर पैरन आप चले हैं नाम एक पर्वतों में पैरों कर आप विचरे हैं ऐसे उन्मत्त सदृश चेष्टा वाले जड़ भरतादिक सुने हैं, इक मौन भजे भव मण्डल में—ऐसे ऋषभ देव कपिलादि सुने है, इक ईश्वर को उर जाप जपे हैं—ऐसे शुकादिक हुए हैं, इक जाय पहारन योग करे—ऐसे जेगीषव्यादिक हुए हैं, इक भोग करे घर माहिं रमे हैं—ऐसे सौभरि आदिक हुए हैं, करुणा रस पूरण एक रहे—ऐसे सनकादिक हुए हैं, इक वीर रसे अरि संग लरे हैं—ऐसे अर्जुनादिक हुए हैं ।। ४९८ ।।

पूर्व कह्योंवत् अनेक यह व्यवहार करे हैं सोई कहे "करे" इति, उत्तम मध्यम अधम प्रारब्ध के अनुसार व्यवहार भिन्न रहे भी यह तो सबकी समान बात है सोई कहे "इदम्" इति, इदं करोमि बुद्धि को नाम "मैं यह करता हूँ" ऐसी मति को ।। ४९९ ।।

तत्त्व ज्ञानी पुरुषों को 'जय विजय ययाति नहुषादिकों वत्' अपने पद से गिरने को तथा पाप पुण्यादिकों की सम्भावना दूर करे "जिनै"

महाज्ञान जागे नहीं राग होई। तजे पुण्य पापं करे नाहिं कोई।
करे जो कछू वैदिकं कर्म सोई। "अहं याग कारी" नहीं बंध होई ५०१

सवैया

है जन मंडन खंडन दुःख सु, सुखभरे पिखिये रस माते।
मान अमान गलानि बिना इक, आतमराम सदा रंगराते ॥
है रवि बोध सभी उर में जग, जाकर बंध भये सब हाते।
दुःख धूरक पूर उतारण को, समता रस सिंधु विषे सब ह्वाते ॥५०२॥

इति, नहीं पुण्य पापं तिसे एक लागे कहिये विश्वरूपपुरोहित औ दश-सहस्रसन्यासियों के बध से इन्द्रवत् ज्ञानवान् को लाखों ब्राह्मणों के बध से पाप और करोड़ों यज्ञों से पुण्य नहीं लगे, सों यह कथञ्चित् करे तब कथन है, नहीं तो, कर्म सब राग द्वेष मूलक हैं औ ज्ञान उपजे भला बुरा अध्यास दूर होने से राग द्वेष रहे नहीं, याते शुभाशुभ कर्म आप ही नहीं होवे, दैव वश ते होवें तो वासन उतारे से भी कुलाल चक्र के ताही ओर भ्रमणवत् शुभ ही होवे है ॥ ५०० ॥

सोई कहे "महा" इति, अज्ञानियों से विशेष कहे "अहम्" इति ॥ ५०१ ॥

पाप पुण्य यथेष्ठाचरण की सम्भावना दूर कर मुमुक्षुओं के परिचय वास्ते किञ्चित् ज्ञानियों की दशा सुनावे "है" इति, है जन मण्डन कहिये जनों में भूषण रूप, पुनः खण्डन दुख नाम स्वाभाविक अमृत रूप वाणी सुनाकर सम्पूर्ण दुखों के दूर करने वाले हैं औ आत्म सुख कर पूरित है पुनः तिसी के रस में मत हैं, है रवि बोध सभी उर में कहिये सूर्यवत् ज्ञान सब ज्ञानियों के हृदय विषे जगत् में है, जिस करके अन्धकार रूप अज्ञान मूलक बन्ध सब दूर हुए हैं, पुनः पूर्व चौरासी लक्ष योनिरूप मार्ग में गमन करते पड़ी जो दुख रूप धूलि, ताका पूर नाम प्रवाह अर्थात् समुदाय उतारने वास्ते समता रस सिन्धु विषे कहिये एक रस आत्मानन्द समुद्र में सब नहाये हुए हैं, यह तिनों की दशा है ॥ ५०२ ॥

अब तत्त्ववेत्ता कृत-कृत्य होकर प्रतिपादन करे है।

सवैया

जे फल थे नर के तनु के अब, सो फलपुञ्ज सबै हम पाये ।
जे भव बंधन गाढ हुते अब, ते सकले गुरु दूर मिटाये ॥
है अवलम्ब जहाज सदा गुरु, के पद जो भवसिंधु तराये ।
जो भव बंधन हानि चहे नर, सो गुरु के पदकंज मनाये ॥५०३॥

दोहा

जीव और परमातमा, या विधि एक स्वरूप ।
भाखे तृतीय निवासमें, हेर मिटे तमकूप ॥५०४॥
सीतावर गुरुपद कृपा, वाक्य अर्थ निर्धार ।
गुलाबसिंह यामें कह्यो, हेर हरे संसार ॥५०५॥

इति श्रीमन् मानसिंहचरणशिष्यगुलाबसिंहेन गौरीरायात्मजेन विरचिते मोक्षपंथप्रकाशे 'महावाक्यार्थ' निरूपणं नाम तृतीयो निवासः ॥ ३ ॥

पूर्व कही सब वार्ता गुरु पद कृपा का प्रभाव है याते जिसको बन्ध नाश की इच्छा होवें "सो गुरु के चरण सेवे" यह उपदेश करे "जे" इति, है अवलम्ब जहाज सदा गुरु के पद जो भव सिन्धु तराय कहिये आश्रयण करने को गुरु के चरण सदा जहाज रूप हैं जो संसार समुद्र ते तरावे हैं इस ते जो पुरुष संसार बन्धन दूर किया चाहे सो गुरु के चरणकमल मनावे ॥ ५०३ ॥

आरम्भ से लेकर कही बात को स्मरण करावता हुआ अध्याय (निवास) समाप्ति करे "जीव" इति ॥ ५०४ ॥

वाक्यअर्थ निर्धार नाम वाक्यार्थ का निर्णय ॥ ५०५ ॥

इति श्रीमत् गुलाबसिंह चरण शिष्य ताराहरिकृते मोक्षपन्थप्रकाशप्रकाशे स्वयंप्रभा विवरणे तृतीयो निवासः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ श्रीमल्लीलाललितगोपालचरणकमलेभ्यो नमो नमः ॥

•★•

चतुर्थ निवास

अब गणेश जी का नमस्कारात्मक मङ्गल करे हैं।

दोहा

सदा योग सुखकर सदा, विघ्न विनाशन जोय।
शंकरसुत सुरगरु भजे, पद वंदौं अब दोय ॥ १ ॥

अब ग्रन्थकार श्रीरामचन्द्र जो का ध्यान चिन्तनात्मक मङ्गल करे है।

सवैया

ज्ञानभये भव बंध तजे अरु, नाहिं तजे जिनके पद दोऊ।
शेष सुरेश महेश भजे पुनि, जाहि भजे भवमें सब लोऊ॥
योग करे अरु भोग तजे जिन, भान भये नर होवत सोऊ।
सो परमातम राम सदा उर, माहिं भजो न रहे दुख कोऊ ॥ २ ॥

अब जीवन्मुक्ति के आनन्दार्थं श्रीगुरुजी का नमस्कारात्मक मङ्गख करे हैं।

दोहा

जा गुरु वाक्य प्रकाश ते, मिटे निखिल अज्ञान।
होय सु जीवन्मुक्ति सुख, तिहँ वंदौं भव भान ॥ ३ ॥

दोहा—शङ्कर गुरुवरदसन के चरणन करूँ जुहार।
पाय सुजीवन् मोक्ष सुख, याँहि कृपा जनसार ॥१॥

गणेश मङ्गल करे "सदा" इति, सदा योग सुखकर कहिये निरन्तर योग सुख के करने वाले, औ सदा विघ्नो के नाश करने वाले, जो शङ्कर सुत हैं, जिनको सुर गुरु कहिये बृहस्पति आदिक सेवे हैं, तिनके मैं अब चरणों में वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

राम मङ्गल करे "ज्ञान" इति—लोऊ = लोक, सोऊ = राम ही ॥२॥

निज गुरों का मङ्गल करे, "जा" इति, जा गुरु वाक्य प्रकाश ते—जिस गुरु के तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यज्ञान ते निखिल नाम कार्य सहित अज्ञान निवृत्त होवे है, औ होय सु जीवन मुक्त सुख कहिये, जीवन्मुक्ति का सुख होवे है, तिहँ नाम तिस गुरु को, भव भान कहिये संसार की निवृत्ति हेतु मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥

अब ग्रन्थकार चतुर्थनिवास में जीवन्मुक्ति के प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करे हैं।

सोरठा

श्रुतिहि वधू सुत ज्ञान, हने निखिल अज्ञान को।
जीवन्मुक्ति सुभान, प्रकट याहिमों होयगो ॥ ४ ॥

अब सिद्धान्ती स्वमत का स्थापन करता है।

चौपाई

महावाक्य ते उपज्यो ज्ञान। दृढ़ अपरोक्ष, हने अज्ञान।
ज्यों तमपुंज तेज हन डारे। त्यों अज्ञान ज्ञान दृढ़ टारे ॥ ५ ॥

उक्तार्थ में तार्किकवादी का आक्षेप।

पूर्वपक्षी—

अपरोक्ष ज्ञान इंद्रियकर होई। वाक्य न ताहि उपावे कोई।
गोचर नयन अहे घट जोई। वह अपरोक्ष निखिल जन होई ॥६॥

गत के अनुवादपूर्वक चतुर्थाध्याय (निवास) प्रतिपाद्य अर्थ की प्रतिज्ञा करे "श्रुति" इति, श्रुति हि वधू सुत ज्ञान कहिये तत्त्वमस्यादि श्रुति रूप स्त्री का पुत्र अखण्डाकार ज्ञान निखिल नाम कार्य सहित अज्ञान का नाश करे है। यह तीसरे अध्याय (निवास) में कह चुके हैं औ अखण्डाकार वृत्ति से उत्तर ही जीवन्मुक्ति औ विदेह मुक्ति होवे है, याते याहिमों कहिये इस चतुर्था ध्याय (निवास) में अखण्डाकार वृत्ति वाले पुरुष को मनोनाश, वासना क्षय से, जीवन मुक्ति का प्रकाश होवेगा यह अध्याय (में) से प्रति पाद्य अर्थ की प्रतिज्ञा है ॥ ४ ॥

दोहे के प्रथम पद की टीका करे "महा" इति, "दृढ़ अपरोक्ष" पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) कही बात को दृष्टान्त से स्पष्ट करे "ज्यों" इति ॥ ५ ॥

ज्योतिष शास्त्र जन्य बड़ा चन्द्र मण्डल है ऐसे परोक्ष ज्ञान से चन्द्रगत वालिस्त परिमितित्व भ्रान्ति का निरास न देखने ते, अपरोक्ष ज्ञान में ही अपरोक्ष भ्रम नाशकता का नेम सम्भवे है, याते "देहोऽहम्" इत्यादि अपरोक्ष भ्रम नाशकता हेतु तुम को अपरोक्ष ज्ञान की अवश्य अपेक्षा है औ वाक्य को धर्माधर्म प्रतिपादक वाक्यनवत्, परोक्ष ज्ञान जनकता स्वभाव से, अपरोक्ष जनकता बने नहीं, याते महावाक्य से

नयन अगोचर सुरपुर जोई । नहिं अपरोक्ष कहे तिहँ कोई
यद्यपि भाखे वाक्य हजार । सुरपुर को पुनि वारंवार ।। ७ ।।
तदपि घट सम भासे नाहीं । सुरपुर सकल लोक मन माहीं ।
प्रत्यग् ब्रह्म तुम्हारो जोई । सो अपरोक्ष कहो क्यों होई ।। ८ ।।

अब उक्त आक्षेप का समाधान ।

सिद्धान्ती—
प्रत्यग् ब्रह्म आतमा जोई । सुरपति पुरसम दूर न सोई ।
घट सम ताहि समीप पछानो । पुनि अपरोक्ष ताहि सम जानो ।।९ ।

दृढ़ापरोक्ष रूप उपजा ज्ञान निखिल अज्ञान को दूर करे है, यह कहना नहीं बने, या भाव से आशङ्का करे "अपरोक्ष" इति, इन्द्रिय जन्य ज्ञान को अपरोक्षता औ वाक्य जन्य को परोक्षता दृष्टान्त से स्पष्ट करे "गोचर" इति, गोचर नयन कहिये नेत्रों का विषय जो घट, वह निखिल जनों को इन्द्रिय से अपरोक्ष होवे है ।। ६ ।।

औ नयन अगोचर नाम नेत्रों का अविषय जो स्वर्ग, वांको कोई अपरोक्ष नहीं करे, यद्यपि हजारों वाक्य स्वर्ग को "सुर पुर है" ऐसे बारम्वार कहें ।। ७ ।।

तदपि—तौ भी घट के समान सकल लोगों के चित विषे स्वर्ग का अपरोक्ष नहीं होवे, याते "प्रत्यक् ब्रह्म तुम्हारो जोई" कहिये जाको तुम प्रत्यक् रूप कहते हो ऐसा जो तुम्हारा ब्रह्म है परोक्ष होने ते, इन्द्रिय सम्बन्ध बिना वह अपरोक्ष कैसे होवेगा अर्थात् काहू रीति से नहीं हो सकेगा ।। ८ ।।

व्यवहित वस्तु का शब्द से अपरोक्ष न हुए भी प्रत्यक्ष योग्य अव्यवहित का दशमवत्, अपरोक्ष अवश्य होवे है, याते पूर्वोक्त दृष्टान्त विषम है, यह कहे "प्रत्यग्" इति, प्रत्यग् ब्रह्म आतमा जोई कहिये प्रत्यक् ब्रह्म रूप जो अपना स्वरूप है वह सुरपति पुर कहिये इन्द्र के पुर स्वर्गवत् दूर नहीं अर्थात् व्यवहित नहीं, किन्तु घट के समान तिस को समीप नाम निकट अर्थात् अव्यवहित जानों, पुनि अपरोक्ष ताहि सम नाम तिस घट के सम ही जानों ।। ९ ।।

वस्तु विचार करे जे कोई । घट अति दूर निकट अति सोई ।
घट अनातम जड़ परिच्छिन्न । प्रत्यग् ब्रह्म सु आप अभिन्न ॥१०।
अरु पुनि घट आदिक हैं जेई । गौण अपरोक्ष पछानो तेई ।
ब्रह्म सु हइये मुख्य अपरोक्ष । श्रुतिसिद्ध पुनि सदा अदोष ॥११॥

तथा च श्रुतिः

"यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म"

सो यह समीपता तथा अपरोक्षता अंश में घट समान कथन भी सामान्य ते है, वास्तविक ते आत्मा घट की अपेक्षा कर भी अति निकट है, याते ताका वाक्य से अपरोक्ष होना शङ्कापङ्ककलङ्करहित है यह कहे "वस्तु" इति, वस्तु विचार करे जे कोई कहिये वास्तविक ते जे कोई पुरुष विचार करे तब घट अतिशय दूर है औ अपना आप ब्रह्म अति निकट है, सोई स्पष्ट करे "घट" इति, घट अनातम कहिये घट अपने आपसे भिन्न है औ जड़ है, पुनः देश-काल वस्तु परिच्छेद वाला है, याते अतिशय व्यवहित है औ प्रत्यक् ब्रह्म आप अभिन्न कहिये प्रत्यक् ब्रह्म आपस में अभेद वाला है, अर्थात् ब्रह्म अपना स्वरूप होने ते, अतिशय अव्यवहित है ऐसे भये "कैमुतिक न्यायेन" वाक्य से ब्रह्म का अपरोक्ष निष्कलङ्क है ॥ १० ॥

किञ्च "इन्द्रिय जन्य ज्ञान" को अपरोक्षता अङ्गीकार किये मनोरूप इन्द्रिय जन्य होने ते अनुमिति आदिक ज्ञानों को भी अपरोक्षता का प्रसङ्ग होवेगा, याते ज्ञान की अपरोक्षता, परोक्षता, में इन्द्रिय अनुमानादिक रूप करण जन्यता नियामक नहीं किन्तु ज्ञान की अपरोक्षता में, "अपरोक्ष अर्थ गोचर होना हेतु है" औ ब्रह्म स्वप्रकाश होने ते सर्व घटादि विषयों की अपेक्षा कर मुख्य अपरोक्ष है, याते महावाक्य जन्यज्ञान की अपरोक्षता सम्भवे है यह प्रकारान्तर कहे "अरु" इति अरु पुनि घट आदिक हैं जेई कहिये किञ्च जितने कोई घटादिक पदार्थ हैं वह सभी अपरोक्ष ज्ञान के विषय होने ते अपरोक्ष होवे हैं, याते मुख्यापरोक्ष नहीं किन्तु गौण हैं औ ब्रह्म स्वप्रकाश होने ते मुख्यापरोक्ष है यह वार्ता श्रुति सिद्ध है औ श्रुति सिद्ध होने ते ही पुनि नाम बहुर दोष रहित है ॥ ११ ॥

पूर्वपक्षी—
गौण अपरोक्ष घटादिक कैसे ?
सिद्धान्ती— **भाखों प्रकट सुनो अब तैसे ।**
त्रिविधको इक चेतन जानो । उपाधि अधीन सु ताहि पछानो ॥१२॥

अपरोक्षता प्रतिपादक श्रुति का अवतार करे "तथा च" इति, यत् नाम जो साक्षात् कहिये मुख्य, अपरोक्षात् अपरोक्ष है, सो ब्रह्म है, इस प्रकार ब्रह्म को मुख्यापरोक्ष प्रतिपादन करती हुई श्रुति घटादिकों को गौण अपरोक्षता सिद्ध करे है, याते अपरोक्ष अर्थ गोचर ज्ञान को अपरोक्षता सिद्ध होने ते वाक्य से ब्रह्म का अपरोक्ष होने में कोई बाधक नहीं। ब्रह्म मुख्य औ घटादि विषय गौण अपरोक्ष हैं यह श्रवण कर आशङ्का करे "गोण" इति, गौग अपरोक्ष घटादिक कैसे कहिये घटादिक विषय गौण अपरोक्ष किस रीति से है अर्थात् अन्योऽन्याश्रय दोष ते घटादिक विषयों को गौण अपरोक्षता काहू रीति से नहीं बने, तथाहि— "अपरोक्ष अर्थ गोचर ज्ञान अपरोक्ष होवे है" इस रीति से ज्ञान की अपरोक्षता में तुम को विषय के अपरोक्षत्व की अपेक्षा है औ "अपरोक्ष ज्ञान का विषय अपरोक्ष होवे है" इस रीति से विषय की अपरोक्षता में ज्ञान के अपरोक्षत्व की अपेक्षा है इस प्रकार अन्योऽन्याश्रय दोष के भय से अपरोक्ष अर्थ गोचर ज्ञान को अपरोक्षता नहीं कहनी किन्तु अन्योऽन्याश्रय दोष के अभाव ते "इन्द्रिय जन्य ज्ञान को ही अपरोक्षता कहनी" याते वाक्य-जन्य ज्ञान को अपरोक्षता नहीं बने यह—पूर्वपक्षी का भाव है औ वक्ष्यमाण रीति से "प्रमाता चेतन साथ विषय चेतन का अभेद विषय की अपरोक्षत्ता में हेतु है" याते ज्ञान की अपरोक्षता में विषय के अपरोक्षत्व की अपेक्षा भये भी विषय की अपरोक्षता में ज्ञान के अपरोक्षत्व की अपेक्षा न होने ते अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं, याते विषयों में अपरोक्षता सम्भवे है ताके प्रभाव से वाक्य ते भी अपरोक्षता बने है यह सिद्धान्ती का भाव है, ताही ते उत्तर कहे "भाखों" इति, भाखों प्रकट सुनो अब तैसे कहिये जिस रीति से घटादिक गौण अपरोक्ष हैं सो मैं प्रकट कहता हूँ, श्रवण करो ! अन्योऽन्याश्रय दोष की गन्धनाशक रीति कहे "त्रिविध" इति, एक रस को त्रिविध कैसे जाने ? यह आशङ्का कर कहे "उपाधि" इति ॥ १२ ॥

प्रमाता और प्रमाण प्रमेय। ज्ञाता ज्ञान कहे पुनि ज्ञेय।
ध्याता ध्यान ध्येय लौं जे ते। त्रिपुटी भाखे कोविद तेते ॥१३॥
अंतःकरण अवच्छिन्न सु जोई। चित् 'प्रमाता' भाखे सोई।
ज्ञाता ध्याता वही कहीजै। याहि विषे संशय नहिं कीजै ॥१४॥
वृत्त्यवछिन्न अहे चिद् जोई। नाम 'प्रमाण' कहीजै सोई।
घट अवछिन्न अहे चिद् जोई। 'प्रमेय' बखाने कोविद सोई ॥१५॥
जड़ स्वरूप घट पट है जेई। स्वतः न भासे भवमें तेई।
चेतन स्वतः प्रकाश स्वरूपा। स्फुरण आप स्फोरक रूपा ॥१६॥
नयनादिक द्वारहि को पाय। निरावरण चिद् बाहर जाय।
वृत्त्यवछिन्न होय कर जाय। घट अवछिन्न चित् संगत पाय ॥१७॥
वृत्ति होय जौ घट आकार। तौ चेतन पुनि तथा आकार।
ज्यों जग नीर कासाराकार। कूलहि द्वारा जाय केदार ॥१८॥

तीनो के नाम कहे "प्रमाता" इति ॥ १३ ॥

प्रमाता चेतन का स्वरूप कहे "अन्तः करण" इति, ध्याता, ज्ञाता, वही है वा और है? यह संशय कर कहै "ज्ञाता" इति, ॥ १४ ॥

प्रमाण का स्वरूप कहे "वृत्त्यवच्छिन्न" इति, नाम प्रमाण कहीजै सोई कहिये प्रमाण नाम कर वृत्यवच्छिन्न ही कह्या जावे है औ ताहीं को ज्ञान, ध्यान, भी कहै हैं। प्रमेय-चेतन का स्वरूप कहे "घट" इति, प्रमेय-बखाने कोविद सोई कहिये घटादिक विषयावच्छिन्न चेतन को पण्डित जन प्रमेय कहे हैं, ज्ञेय-ध्येय भी उसी का नाम है ॥ १५ ॥

त्रिविध चेतन का निरूपण कर प्रकरणोपयोगी विचार कहे "जड़" इति, स्वतः प्रकाश का विवरण करे "स्फुरण" इति, स्फुरण आप स्फोरक रूपा कहिये आप प्रकाश स्वरूप है औ औरों को प्रकाशे है ॥ १६ ॥

वही चेतन नयनादिक द्वारहि को पाय कहिये नेत्रादिक द्वारों को पाकर आवरण रहित हुआ बाहर जावे है बाहर भी वृत्य-वच्छिन्न होकर जावे है औ घटावच्छिन्न चेतन के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होवे है ॥ १७ ॥

सोई स्पष्ट करे "वृत्ति" इति, कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "ज्यो"

ज्यों जल होय केदाराकार । त्यों यह वृत्ति घटाद्याकार ।
घट-अवछिन्न चेतन अज्ञान । हने जाय जग ज्यों तम भान ॥१९॥
प्रमेय माहिं चेतन थो जोई । निरावरण होयो अब सोई ।
घट-अवछिन्न वृत्ति अवछिन्न । चेतन दोनों भये अभिन्न ॥२०॥
ता अध्यस्त अहे घट जोई । पाछे भान होय पुनि सोई ।
यों घट हइये गौण अपरोक्ष । प्रत्यग् ब्रह्म सदा अपरोक्ष ॥२१॥

इति, ज्यों जग नीर कासाराकार कहिये जैसे तडागाकार जो जल है वह कूल द्वारा केदार में जावे है ॥ १८ ॥

औ केदार में जाकर जैसे वह जल केदाराकार होवे है तैसे अन्तः-करण रूप तडाग से उठ कर यह कूल रूप वृत्ति घटादि विषयों के आकार होवे है, औ घटादि विषयों के आकार होकर तदच्छिन्न चेतन निष्ठ अज्ञान को सूर्य से तमवत् दूर करे हैं ॥ १९ ॥

इस रीति से प्रमेय माहिं चेतन थो—जोई कहिये घटादिकविषया वच्छिन्न जो चेतन था वह अब निरावरण होयो कहिये आवरण रहित हुआ, याते वृत्ति, विषय, रूप उपाधियों के एक देशस्थ होकर एक काल वृत्ति होने ते घटअवच्छिन्न, वृत्तिअवच्छिन्न कहिये प्रमेय औ प्रमाण चेतन दोनों अभिन्न कहिये एक होवे हैं अर्थात् वृत्ति ज्ञान में अपरोक्षता प्रयोजक प्रमेय-चेतन साथ प्रमाता चेतन का अभेद होवे है ॥ २० ॥

औ ता नाम तिस प्रमेय साथ अभिन्न भये प्रमाता चेतन में अध्यस्त कहिये कल्पित जो घट है अर्थात् "प्रभाता की सत्ता से अतिरिक्त सत्ता शून्य" होने ते तदभिन्न जो घट है वह पाछे भान होवे कहिये प्रमाण प्रमेय के अभेद से पीछे प्रत्यक्ष होवे है, याते घटादिक विषयों में अप-रोक्षता प्रयोजक प्रमाता साथ विषयों का अभेद है, ऐसे भये यों नाम पूर्व कही रीति से अपरोक्ष वृत्ति का विषय घट गौण अपरोक्ष है औ ब्रह्म मुख्य है, इस रीति से गौण-मुख्यता कर अपरोक्ष विषयों कि सिद्धि होने ते, तिन के प्रभाव से ज्ञान में भी अपरोक्षता सिद्ध होवे है, याते वाक्य-जन्य ज्ञान को अपरोक्षता में आशङ्का नहीं ॥ २१ ॥

ता प्रतिपादक वाक्य सु जोई। जने अपरोक्ष ज्ञानको सोई।

पूर्वपक्षी—

यह मत अहे असंगत थारो। ज्ञान अपरोक्ष वाक्य से धारो॥२२॥
वाक्यज ज्ञान जहाँ जहि होई। धर्माधर्म ज्ञान सम सोई।
नहिं अपरोक्ष परोक्ष सब जाने। ताते नियम यही हम माने॥२३॥

सिद्धान्ती—

यह है नियम तुम्हारो जोई। दशम माहिं व्यभिचारी सोई।
दश में ते नव पुरुष गिनाये। बहुरो ताको दशम बताये॥२४॥
तूँ हि दशम उर अंतर धारो। अब सकले तुम शोक निवारो।
यों आप्तजन भाख्यो जबही। दशम अपरोक्ष गहे वह तबही॥२५॥
त्यों ही ब्रह्म आत्मा जोई। आप्त वेद जनावै सोई।
दशम पुरुष ज्यों सो अपरोक्ष। निखिल उद्धार भये अब दोष॥२६॥

याते ता प्रतिपादक कहिये तिस नित्यापरोक्ष ब्रह्म के प्रतिपादक जो महावाक्य हैं वह प्रमेय की करामात से अपरोक्ष ज्ञान को ही उत्पन्न करें हैं। तत्त्वमसिवाक्यं, परोक्षज्ञानजनकं भवितुमर्हति, वाक्यत्वात् धर्माऽधर्म प्रतिपादक वाक्यवत्, याभाव से पूर्व पक्षी आशङ्का करे "यह" इति। यह कौन ? तहाँ कहे "ज्ञान" इति॥ २२॥

जाके बल ते असङ्गत कह्या वह नेम कहे "वाक्यज" इति, "नहि अपरोक्ष" पूर्व के सङ्ग अन्वय कर, वाक्यज ज्ञान धर्माऽधर्म ज्ञान के सम अपरोक्ष नहीं होवे किन्तु परोक्ष ही सब जाने हैं, ताते–परोक्ष जानने ते, हम भी वही नेम माने हैं॥ २३॥

"यत्र यत्र वाक्यत्वं तत्र तत्र परोक्षज्ञानजनकत्वम्" यह नेम "त्वं दशमः" इस वाक्य में वाक्यत्व रहे भी अपरोक्षज्ञान जनकत्व देखने से व्यभिचारी है याके भरोसे महावाक्य को परोक्षज्ञान जनकता नहीं बने यह परिहार करे सिद्धान्ती "यह" इति, दशम माहि व्यभिचारी सोई कहिये "त्वं दशमः" इस वाक्य में व्यभिचार वाला है, व्यभिचार स्फुट करे–"दश में" इति॥ २४॥

बतावना स्फुट करे "तूँ हि" इति॥ २५॥

त्यों ही नाम दशम को "त्वं दशमः" इस वाक्यवत् यथार्थवक्ता वेद

पूर्वपक्षी—

दशम अपरोक्ष वाक्यते नाहीं। यह समझो अपने मन माहीं।
आप्त बैन सुने वह जबही। इन्द्रिय कर हेरे तनु तबही ॥२७॥
तब होवे अपरोक्षहि ज्ञान। वाक्यज ज्ञान न सो पहिचान।

सिद्धान्ती—

यह परिपाटी तुमरी जोई। दशम पुरुष परिहारी सोई ॥२८॥
इंद्रिय कर दशमों मैं पायो। ऐसे नहिं मुख ताहि बतायो।
आप्त जब मुहि बैन सुनायो। ताही कर दशमों मुहि पायो ॥२९॥
ऐसे दशमों निजमुख गावे। इंद्रिय करण न सो ठहरावे।
ताते तुम प्रभाख्यो जोई। तव कपोल कल्पित है सोई ॥३०॥
त्यों ही महावाक्य है जोई। ज्ञान अपरोक्ष उपावे सोई।

पूर्वपक्षी—

ननु यद्यपि यों भयो सुज्ञान। तौ नहिं नष्ट होय अज्ञान ॥३१॥

जनाते है, याते दशम पुरुषवत् ब्रह्म आत्मा अपरोक्ष है, ऐसे भये वाक्य ते अपरोक्षज्ञान दृष्टान्त सिद्ध होने कर सम्पूर्ण दोष दूर होवे है ॥ २६ ॥

इन्द्रियजन्य ज्ञान में वाक्य सहकारी मात्र है, याते वाक्य से अपरोक्ष नहीं होवे यह आशङ्का करे "दशम" इति ॥ २७ ॥

इन्द्रियों से स्वअपरोक्ष, दशम के अनुभव से परिहृत है—यह कहे "यह" इति ॥ २८ ॥

दशम कृत परिहार कहे—"इन्द्रिय" इति ॥ २९ ॥

ताते—इन्द्रियकरण न ठहराने ते, तेरा कथन तेरे कपोल-कल्पित है ॥ ३० ॥

दार्ष्टान्तिक में कहे—"त्यों ही" इति, त्यों ही कहिये "त्वं दशमः" इस वाक्यवत् जो महावाक्य हैं वह भी अपरोक्षज्ञान की उत्पत्ति करे हैं "इति वाक्यात् अपरोक्षज्ञान उत्पत्ति निर्णयः"।

कही रीति से होवे अपरोक्षज्ञान की वाक्य से सिद्धि तथापि नवीन उत्पन्न बालक से प्रबल शत्रु की पराजय न देखने से महावाक्य ते नवीन उत्पन्न ज्ञान से भी अनन्त कल्पों के स्थित अज्ञान की निवृत्ति नहीं होवेगी यह आशंका करे "ननु" इति ॥ ३१ ॥

बहुत काल को दृढ़ अज्ञान । परम्बली ताको पहिचान ।
अब उपजायो जोई ज्ञान । अतिशय निर्बल ताहि पछान॥२३॥
ताते तुमरो ज्ञान सु जोई । तिह अज्ञान हनेगो सोई ।

सिद्धान्ती—

बल अरु निर्बलता जग जोई । काल अधीन न मानी सोई ॥३३॥
सो है वस्तुस्वभाव अधीन । हेरे जग में जन प्रवीन ।
पिनद्ध द्वार भूधर की दरी । भूधर समय रची नरहरी ॥३४॥
बहुत काल को तम ता माहीं । यद्यपि रह्यो प्रबल तौ नाहीं
अबही ताहि सु द्वार उभारे । दीपक जाल करे उजियारे ॥३५॥
क्षणमें निखिल अँधेरो जाय । किंचित् काल न सो ठहराय ।
बहुत कालको तम थो जोई । निर्बल भयो जगत में सोई ॥३६॥

न नष्ट होना स्पष्ट करे "बहुत" इति ॥ ३२ ॥

ताते नाम अब उपजे को अत्यन्त निर्बल होने ते, तुम्हारा जो ज्ञान है, तिसको पुनः भी अज्ञान दूर करेगा, ऐसे भये मुक्तों को बन्ध का प्रसङ्ग होवेगा । नवीन उत्पन्न प्रकाश से अनेक कल्पों के अन्धकार का विनाश देखने से, बलनिर्बलता वस्तु स्वभावाधीन है कालाधीन नहीं याते नवीन उत्पन्न ज्ञान से भी प्राचीन अज्ञान की निवृत्ति सम्भवे है, यह कहे सिद्धान्ती "बल" इति ॥ ३३ ॥

कालाधीन नहीं तब किसके अधीन है ? तहाँ कहे—"सो" इति, कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "पिनद्ध" इति, पिनद्ध नाम ढका हुआ है द्वार जिसका ऐसी जो पर्वत की कन्दरा पुनः कैसी भूधर समय कहिये पर्वत के रचने काल में ही परमेश्वर ने रची ॥ ३४ ॥

ता माहीं कहिये तिस कन्दरा विषे बहुत काल का तम यद्यपि रहा तौ भी वह प्रबल नहीं, काहे ते ? अबही नाम इसी काल से तिसका द्वार खोल कर दीपक जला कर प्रकाश करे ॥ ३५ ॥

तब क्षण मात्र में निखिल नाम सम्पूर्ण अन्धकार दूर होवे है, सो नाम वह अन्धकार किञ्चित् काल भी नहीं रहे है, इस रीति से बहुत काल का जो तम था वह जगत् में बलहीन हुआ ॥ ३६ ॥

अब उपज्यो भव भीतर जोई । तेज प्रबल पेखे सब कोई ।
त्यों ही ज्ञान भयो यह जबही । तेज समान प्रबल वह तबही ॥३७॥
निखिल अज्ञान सो दूर निवारे। ज्यों तमपुंज तेज हन डारे ।
देहात्मवत् आतमज्ञान । जब उपजे तब बंधन हान ॥३८॥

तथा च श्रीशंकरवाक्यम्

"देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् ।
आत्मन्येव भवेद्यस्य सोऽनिच्छन्नपि मुच्यते" ॥

चौपाई

भाख्यो ज्ञान एतादृश जोई । विदेहमुक्ति अवभासक सोई ।
चेतन आश्रय विषय अज्ञान । नष्ट भयो जो भये दृढ़ ज्ञान ॥३९॥

"तेज" पूर्व साथ मिला कर, अब कहिये इस काल में उत्पन्न भया जो तेज ताको सब कोई प्रबल देखे है, द्राष्टान्तिक में कहे "त्यों" इति, त्यों ही–तेजवत् ही जिस काल में वह ज्ञान हुआ तिसी काल में वह तेजवत् बलवान् है ॥ ३७ ॥

बलवान् होने ते निखिल अज्ञान कहिये सम्पूर्ण अज्ञान को वह तमवत् दूर करे है, याते देहात्मवत् कहिये देहात्मज्ञानवत् आत्मज्ञान पुरुष को जब उपजे, तब सम्पूर्ण कर्तृत्वादि रूप बन्धकी निवृत्ति होवे है, अर्थात् न इच्छा करते की भी मुक्ति होवे है ॥ ३८ ॥

यही अर्थ दृढ़ करने हेतु आचार्य का वाक्य कहे—"देहात्म" इति, देहात्मज्ञानवज्ज्ञानम् कहिये पामर पुरुषों को संशय, विपर्यय, रहित देह विषे "देहोऽहम्" ऐसे आत्मज्ञान तुल्यज्ञान, पुनः देहात्मज्ञानबाधकम् कहिये देह में जो "देहोऽहम्" यह आत्मज्ञान तिसका बाधक है, आत्मन्येव भवेद्यस्य कहिये सच्चिदानन्दात्मा विषे ही होवे (है) जिसको, सोऽनिच्छन्नपि मुच्यते कहिये वह पुरुष वृक्षस्कन्द पै आरूढ़ होकर तासे निर्मुक्त हस्तके, बिना इच्छा गिरनेवत्, मोक्ष होने की इच्छा न करता हुआ भी मोक्ष होवे है। ननु होवे न इच्छा करते हुए की भी एतादृश ज्ञान से मुक्ति परन्तु वह जीवनमुक्त होवे है वा विदेह होवे है तहाँ कहे "भाख्यो" इति, भाख्यो ज्ञान एतादृश जोई कहिये देहात्मज्ञान तुल्य औ देहात्मज्ञान का बाधकरूप जो ज्ञान कह्या वह मनोनाश, वासनाक्षय

अब उक्तार्थ में 'समसमुच्चयवादी' की शंकापूर्वक समाधान।

चौपाई

पूर्वपक्षी—

कर्मसमेत ज्ञान है जोई। मोक्ष उपावे भव में सोई।
इकलोज्ञान हीन बल ऐसे। एकपक्ष पक्षी जग जैसे ॥४०॥

सिद्धान्ती—

ज्ञान अहे भव भीतर जोई। उपज्यो चहे न सहकर सोई।
बिन सहकारी ज्यों प्रकाश। निज बल करे अँधेरो नाश ॥४१॥
त्यों ही अहे ज्ञान जग जोई। निज बल हने अविद्या सोई।

कर्म और ज्ञान का भेद

अरु निष्कामकर्म जग जेते। ज्ञान जन्म हित चाहे ते ते ॥४२॥
जौ उपज्यो तौ भान समान। किंचित् कर्म चहे नहिं आन।
समुच्चय तेज तिमिरको जैसे। ज्ञान कर्म को जानो तैसे ॥४३॥

बिना विदेहमुक्ति का ही अवभासक कहिये प्रकाशक है, "ननु यद्यपि यों" से लेकर कही बात का उपसंहार करे "चेतन" इति, चेतन आश्रय विषय अज्ञान कहिये चेतन ही है आश्रय औ विषय जिसका ऐसा जो अन्धकाररूप अनादि अज्ञान वह, जिस काल में तेजवत् दृढ़ज्ञान हुआ तब नाश हो जावे है। (इति विज्ञानात् अज्ञाननिवृत्तिविचार:) ॥ ३९॥

युगम पक्षों से पक्षी के गमनवत् अज्ञान नाश सहित परमानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति, ज्ञानकर्म दोनों से होवे है, यह समुच्चयवादी आशङ्का करे–"कर्म" इति, एकला ही काहे नहीं करे? तहाँ कहे, "इकलो" इति॥४०॥

ज्ञानकर्म का क्रमसमुच्चय मोक्षहेतु रहे भी समसमुच्चय नहीं बने यह कहे सिद्धान्ती "ज्ञान" इति, ज्ञान अहे भव भीतर जोई कहिये जो संसार में ज्ञान है, सोई नाम वह उत्पन्न हुआ मोक्ष सिद्धि हेतु काहूँ और सहकारी की इच्छा नहीं करे, याते समसमुच्चय नहीं बने, किन्तु अपनी उत्पत्ति से पूर्व उत्पत्यर्थ निष्काम कर्मों की इच्छा करने से क्रमसमुच्चय बने है, यह वार्ता दृष्टान्त से कहे "बिन" इति ॥ ४१-४२ ॥

किञ्च तेज तिमिर वत् ज्ञानकर्म का समसमुच्चय अनुभवारूढ़ भी नहीं होवे यह कहे "समुच्चय" इति ॥ ४३ ॥

साहंकार कर्म जग जोई। निरहंकार ज्ञान जग सोई।

कर्म अधिकारी

अहं द्विजन्मा ब्राह्मण जाति। भारद्वाज गोत्र विख्याति ॥४४॥
इंद्रिय विकल न को मुहि हइये। द्रव्य सु वहुविधि को मुहि पइये।
मैं हौं याग दान अधिकारी। अग्निहोत्र कुलरीति हमारी ॥४५॥
या विधि कर्म अहे जग जेते। अहंबुद्धि मूलक हैं तेते।

ज्ञान अधिकारी

जन्म मरण जाति मुहि नाहीं। गोत्र कोई न मेरे माहीं ॥४६॥
चक्षु न श्रोत्र मो में कोई। असंगरूप आत्म मैं सोई।
या विधि ज्ञान जगत में जोई। कर्ममूल विध्वंसक सोई ॥४७॥

अब उक्त दृष्टांत को विषम दिखाते हैं।

चौपाई

विहंगम छद दृष्टांतहि जोई। ताते विषम पछानो सोई।
ज्ञान अकेलो बंध निवारे। परमानंद धाम दिखलारे ॥४८॥

समसमुच्चय न होने में बीज कहे "साहंकार" इति, बीज स्फुट करे "अहं" इति, अहं द्विजन्मा कहिये मैं प्रसिद्ध जन्म औ संस्कार रूप दो जन्म वाला हूँ और ब्राह्मण मेरी जाति हैं, तथा विख्याति = प्रसिद्ध भारद्वाज मेरा गोत्र है ॥ ४४ ॥

विकल—भङ्ग ॥ ४५ ॥

कर्म में साहंकारता दिखला कर ज्ञान में निरहङ्कारता कहे "जन्म" इति ॥ ४६ ॥

कर्ममूल विध्वंसक सोई कहिये कर्मों के मूल अहङ्कार का वह नाशक है ॥ ४७ ॥

ऐसे भये पूर्वोक्त दृष्टान्त भी विषम है सोई कहे "विहंगम" इति, छद नाम पक्षी के पक्षों का, जो तुमने ज्ञान कर्म समुच्चय में दृष्टान्त दिया वह ताते नाम ज्ञान ने कर्म के मूल का विध्वंस करने ते, दृष्टान्त विषम है याते यह सिद्ध हुआ, जो ज्ञान एकला ही बन्धनों को दूर करे है औ परमानन्द रूप धाम को दिखावे है, याते आरम्भ में कहा अर्थ भी अब निश्चित हुआ ॥ ४८ ॥

ज्ञानपंथ उत्तम जग सार। दुख मेटन सुख देन उदार।
या विधि प्रथम बखान्यों जोई। निश्चल अर्थ भयो यह सोई ॥४९॥

पूर्वपक्षी—

ज्ञानपंथ पुनि पुनि तुम गायो। तामें प्रकट सु दूषण आयो।
मार्गकर पाये जगजोई। वियोग अन्त सुर पुर सम सोई५०॥
त्यों ही ब्रह्म धाम को पावे। सुरपुर सम बहुरो फिर आवे।

सिद्धान्ती—

अहो भ्रांति तुमको अति होई। ऐसो मार्ग न जानो सोई ॥५१॥
मार्ग शब्द ज्ञान में जोई। प्रापक ते पहिचानो सोई।
ज्यों मार्ग कर धावे जोई। बिना खेद पुर पावै सोई ॥५२॥
त्यों ही ब्रह्मज्ञान है जोई। ब्रह्मधाम को प्रापक सोई।
स्मृति, वेद, पुराणन माहीं। ज्ञानपंथ भाख्यो यह जाहीं ॥५३॥
प्रापकते मार्गकर गावे। प्रसिद्धपंथ सम नहिं ठहरावे।
सुरपतिपुर सम ब्रह्म न आन। ब्रह्म अहे प्रत्यग् भगवान ॥५४॥

सोई कहे—"ज्ञान" इति ॥ ४९ ॥

ननु मार्ग प्राप्य ग्रामादिकों का वियोग देखने से, ज्ञान मार्ग प्राप्य ब्रह्म के भी वियोग प्रसङ्ग दोष ते वह अर्थ निश्चल नहीं हो सके यह आशङ्का करे "ज्ञान" इति, प्रकट दोष कहे "मार्ग" इति ॥ ५० ॥

ज्ञान में मार्गता कथन प्रापकता मात्र से है, याते तिस द्वारा प्राप्य ब्रह्म का वियोग नहीं बने यह परिहार करे—"अहो" इति, ऐसो मार्ग न जानो सोई नाम वह प्रसिद्ध मार्गों जैसा मार्ग नहीं ॥ ५१ ।

प्रसिद्ध मार्ग जैसा नहीं तो मार्गता कथन कैसे ? तहाँ कहे—"मार्ग" इति, प्रापक ते नाम बिना खेद ब्रह्म की प्राप्ति करने ते ज्ञान में मार्गता कथन है, कही वार्ता दृष्टान्त से स्पष्ट करे "ज्यों" इति ॥ ५२ ॥

कहे उत्तर को व्यापकता कहे "स्मृति" इति ॥ ५३ ॥

किञ्च ब्रह्म को निज रूप होने ते भी ज्ञान मार्ग प्राप्यता मात्र अपराधता से वियोग नहीं बने यह कहे—"सुरपति" इति ॥ ५४ ॥

वियोग सु आन वस्तुते होई। आप वियुक्त आप नहिं कोई।
ताते ज्ञानी फेर न आवे। निजानंद निजरूप समावे ॥५५॥

दोहा

विदेहमुक्ति नर ज्ञान ते, पावे निश्चय धार।
जीवन्मुक्ति के हेतु पुनि, साधन और विचार ॥ ५६ ॥

अब जीवन्मुक्ति के विषय में पूर्वपक्षी की शंकपूर्वक सिद्धान्ती का उत्तर।

चौपाई

पूर्वपक्षी—
जा हित साधन और बताओ। 'जीवन्मुक्त' कौन सो गाओ।
सिद्धान्ती—
प्राण रहे या तन के माहीं। दुःख लेश उपजे उर नाहीं ॥५७॥
निज स्वरूप को नीको ज्ञान। 'जीवन्मुक्त' ताहि पहिचान।
या हित दृढ वैराग्य सुधारे। और वासना उरते टारे ॥५८॥

आप वियुक्त आप नहिं कोई नाम अपने साथ वियोग वाला आप कोई नहीं होवे अर्थात् अपने से आप सभी अवियुक्त होवे हैं ॥ ५५ ॥

कही रीति से जीवन मुक्ति के साघन तत्त्व ज्ञान का विचार करके तासे विदेह मुक्ति की प्राप्ति कहता हुआ जीवन्मुक्ति की सिद्धि हेतु मनोनाश, वासनाक्षयरूप और भी साधन विचारणीय कहे—"विदेह" इति ॥५६॥

"जीवन्मुक्ति के हेतु पुनि साधन और विचार" श्रवणकर जीवन्मुक्ति किसको कहते हो? यह आशङ्का करे "जा" इति, सिद्धान्ती उत्तर कहे "प्राण" इति, प्राण जिसके तन में रहें औ मनोनाश वासनाक्षय के प्रभाव से दुःख लेश मात्र भी न उत्पन्न होवे ॥ ५७ ॥

औ, निज स्वरूप को नीको ज्ञान कहिये यथार्थ ज्ञान होवे ताहि नाम तिसको जीवन काल में ही कर्तृत्वादि बन्ध निवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति वाला जानों, औ ज्ञानवान् या हित कहिये इस पूर्व कही जीवन्मुक्ति की सिद्धि हेतु दृढ़ वैराग्य को धारण करे औ वासना सम्पूर्ण हृदय से दूर करे ॥ ५८ ॥

जीवन्मुक्ति की सिद्धि हेतु दृढ़ वैराग्य औ वासना निवृत्ति रूप साधन कर्तव्य है यह वार्ता श्रवण कर प्रथम जिन दुःखों की निवृत्ति हेतु साधन

पूर्वपक्षी—

तत्त्व ज्ञान उपज्यो पुनि जाहीं । तिहिं कर्तव्य रहे कछु नाहीं ।
निज स्वरूपको जोई ज्ञान । ताही ते दुख होवे हान ॥५९॥
याते निज स्वरूप दुख नाहीं । 'सोऽहं' यों समझो उर माहीं ।
अरु नहिं और संगते आवे । जाते वेद असंग बतावे ॥६०॥
आध्यासिक संग बतावे कोई । तत्त्वज्ञान ते नाश्यो सोई ।
ताको हेतु अहे अज्ञान । तत्त्वज्ञान ते होयो हान ॥६१॥
कारण विन कार्य नहिं होवे । यह सब नियम जगत में जोवे ।
अंतःकरण माहिं दुख जेतो । भंग न होवे तामों तेतो ॥६२॥

कर्तव्यता का उपदेश है वह दुःख निजस्वरूपभूतहै वा अपने में अन्य के सङ्ग ते आवे है, दूसरे में भी यह आशङ्का है, अन्य के वास्तविक सङ्ग ते आवे है वा अन्य के आध्यासिक सङ्ग ते आवे है वा अन्यगत दुःखों को निवृत्ति हेतु ही साधनोपदेश है, इनमें सर्वथा कर्तव्योपदेश को असङ्गत देखता हुआ प्रथम का परिहार करे—"तत्त्व" इति, कर्तव्य न रहने में हेतु कहे "निज" इति ॥ ५९ ॥

निज रूप के ज्ञान ते दुःख निवृत्ति स्फुट करे "याते" इति, जिस कारण ते निज स्वरूप दुःख रूप नही अर्थात् दुःख रहित है औ ज्ञानवान् पुरुष ने ताको "मैं सो हूँ" ऐसे हृदय में जान्या है, याते स्वरूप भूत दुःख की निवृत्ति हेतु साधन कर्तव्य नहीं, कही रीति से प्रथम का परिहार कर दूसरे विकल्प में अन्य के वास्तवितक सङ्ग ते आवे है या प्रथम का वारण करे "अरु" इति, दुःख और के वास्तविक सङ्ग ते नहीं आवे जिस कारण ते वेद आत्मा को असङ्ग कहिये और के वास्तविक सङ्ग ते रहित कहे है ॥ ६० ॥

दूसरे का परिहार करे "आध्यासिक" इति, और का जेकर कोई आध्यासिक सङ्ग कहे तो वह तत्त्वज्ञान से दूर हुआ, काहे ते ? ताको कहिये आध्यासिक सङ्ग को हेतु अज्ञान है, ताकी तत्त्वज्ञान से निवृत्ति भई ॥ ६१ ॥

औ "कारण बिन कार्य नहि होवे" यह सर्वजगत् में नियम है, याते

याते ता स्वभाव दुख हइये । अग्नि उष्ण ज्यों तामों पइये ।
ताते दृढ़ वैराग्य सु धारे । और वासना उरते टारे ॥६३॥
इत्यादिक विधि भाखी जोई । व्यर्थ विज्ञ में जानो सोई ।

सिद्धान्ती—

साच कह्यो कर्तव्य न कोई । ज्ञानीप्रति भव भीतर होई ॥६४॥
ज्ञान अर्थ तामों वह नाहीं । याते ज्ञान भयो ता माहीं ।
साध्यसिद्धि जाको जग होई । पुनि कर्तव्य न ताहित कोई ॥६५॥
असिद्धसाध्य जेतो जग हइये । ताहित तिहिं कर्तव्यहि पइये ।
आतमज्ञान अहे जग जोई । ता अज्ञान हने भव सोई ॥६६॥

आध्यासिक सङ्ग ते भी दुःख नहीं बने. अन्य गत दुःखों की निवृत्ति हेतु ही साधनोपदेश है, या तीसरे का निराकरण करे "अन्तः" इति ॥६२॥

न भङ्ग होने में हेतु कहे "याते" इति, याते नाम जिस कारण ते, अन्तःकरण का स्वभाव दुःख रूप है ताते अग्नि उष्णवत् दुःख ता में सर्वथा सम्भवे है—अर्थात् ताकी काहू रीति से निवृत्ति नहीं बने है, ताते नाम कही रीति से आत्मा में दुःख के असम्भव ते औ अन्तःकरण के स्वभाव भूत दुखों की निवृत्ति के अभाव ते, "दृढ़ वैराग्य धारे वासना दूर करे" इत्यादि साधन विधान का उपदेश ज्ञानी में निष्फल है ॥ ६३ ॥

सोई कहे "इत्यादिक" इति, विज्ञ में–ज्ञानवान् में, साधनों को कर्तव्यता विधान ज्ञानार्थ नहीं किन्तु प्रारब्ध से प्राप्त भये दुखों की निवृत्ति हेतु है, या भाव से सिद्धान्ती सत्कार करे "साच" इति ॥ ६४ ॥

व्यवस्था कहे "ज्ञान" इति, ज्ञान अर्थ तामों वह नाहीं कहिये ज्ञान वान् पुरुष में ज्ञान सिद्धि हेतु साधन कर्तव्यता नहीं बने, याते नाम जिस कारण ते, ज्ञान तिस विषे उत्पन्न हो चुका है, जैसे, साध्य सिद्धि जाको जग होई कहिये भोजन क्रिया से तृप्ति रूप 'साध्य' जिसका सिद्ध हो गया पुनः तिस के हेतु भोजनादि कर्त्तव्य नहीं रहे ॥ ६५ ॥

किन्तु असिद्धसाध्य जेतो जग हइये कहिये जितना कोई जगत् में तृप्त्यादि रूप न बनी हुई बनने योग्य वस्तु है, ताहित नाम तिसके वास्ते पुरुष को भोजनादि क्रिया कर्तव्य पाइये है । द्राष्टान्तिक में कहे "आतम" इति, आतम ज्ञान अहे जग जोई कहिये जो जगत में आत्म ज्ञान है ता

अज्ञाननिबंधन जो दुख हइये । ज्ञान नाश सोई भव पइये ।
दशम अज्ञान भयो ज्यों ताहीं । पाय शोक लह्यो भव माहीं ॥६७॥
स्वकर से शिर ताडन कीनो । या विधि दुःख बहुत तनु दीनो ।
भये ब्रण ता तनुके माहीं । रुधिर स्रवे पुन जाके माहीं ॥६८॥
आप्त जनहिं कीनो उपदेश । तूँ ही दशम सब हरो कलेश ।
तिहि नर दशमों समझ्यो जबही । शोक रु भय सब नाश्यो तबही ॥६९॥
ब्रण पीड़ा तिहि भूलि न जावे । ब्रणपीड़ा ते अति दुख पावे ।
जब ताको औषधि वह करे । ब्रणपीड़ा को तब परिहरे ॥७०॥
त्यों ही ज्ञान पाय सब हर्‍यो । प्रारब्ध को नहिं परिहर्‍यो ।
प्रारब्धमें जो दुख आवे । सो प्रयत्न बिना नहिं जावे ॥७१॥

नाम तिसने संसार में अज्ञान दूर किया है, याते अज्ञान के नाशक सिद्धरूप ज्ञानार्थ साधन विधि नहीं ॥ ६६ ॥

किन्तु—अज्ञान निबन्धन कहिये अज्ञान है मूल जिन्हों का ऐसे जो संसार में दुःख वह ज्ञान नाश नहीं पाइये, याते असिद्ध 'साध्य रूप' दुःख निवृत्ति हेतु साधन विधि है, कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "दशम" इति, दशम अज्ञान भयो ज्यों ताहीं कहिये जैसे दशम को निज रूप का अज्ञान हुआ तिसने अति शोक पाया, पुरुषों ने ऐसे संसार में लह्या है ॥ ६७ ॥

सोई कहे—"स्व" इति, स्व कर सों नाम अपने हाथों से ॥६८-६९॥

भय शोक का नाश रूप सिद्ध साध्य बताकर असिद्ध कहे– "ब्रण" इति ॥ ७० ॥

द्राष्टान्तिक में कहे—"त्यों" इति त्यों ही कहिये दशम को निज रूप का ज्ञान भये भय-शोक के नाशवत्, ज्ञानवान् ने ज्ञान को प्राप्त होकर सम्पूर्ण अज्ञान तत्कार्य को दूर किया, परन्तु लेशाविद्या प्रतिबद्ध प्रारब्ध का परिहार नहीं किया, याते प्रारब्ध में कहिये प्रारब्ध रूप निमित्त से जो दुःख आवे (है) वह दृढ़ वैराग्य मनोनाशादि प्रयत्न बिना दूर नहीं होवे, याते तिन की निवृत्ति हेतु ब्रणपीड़ा निवृत्यर्थ दशम की औषधिवत् मनोनाशादि अवश्य कर्तव्य है ॥ ७१ ॥

पूर्वपक्षी—

भोगे बिना मिटे नहिं सोई । प्रारब्ध भाखी भव जोई ।

सिद्धान्ती—

त्रयविधि प्रारब्ध भव जोई । और न कारक ताको कोई ॥७२॥

तीव्र जु नहिं प्रारब्धहि जाय । मृदुल मिटे प्रयत्न पुनि पाय ।

यद्यपि दुख है मनके माहीं । तदपि जाय आतमा माहीं ॥७३॥

जैसे ताप अग्नि में हइये । नीर विषे ताते वह पइये ।

पूर्वपक्षी —

ननु पावक जल दोनों संगी । नहिं तामो को अहे असंगी ॥७४॥

परम्परा जलमों वह जाय । नीके नीरहि दियो तपाय ।

आतम एक असंगहि अहे । मनको धर्म कथं वह गहे । ७५॥

सिद्धान्ती —

ज्यों स्फटिकमणि सुमन असंगी । भासे जपाकुसुम सम रंगी ।

त्यों असंग आतमा हइये । मनके दुःख दुखी वह पइये ॥७५॥

"नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि" इत्यादि वाक्यन् से प्रारब्ध निमित्त से उत्पन्न भये दुःखों की निवृत्ति होनी अशक्य है याते तदर्थं प्रयत्न निष्फल है यह आशङ्का करे—"भोगे" इति, तीव्र प्रारब्ध के न निवृत्त भये भी मध्यम, मन्द की निवृत्ति में प्रयत्न सफल है यह उत्तर कहे, "त्रयविधि" इति, कारक-कर्ता ॥ ७२ ॥

ननु दुःखों को मनोगत होने ते तिनकी निवृत्ति आतमा में कैसे ? यह आशङ्का कर कहे—"यद्यपि" इति ॥ ७३ ॥

कही बात दृष्टान्त से स्पष्ट करे "जैसे" इति, दृष्टान्त विषमता की आशङ्का करे "ननु" इति ॥ ७४ ॥

परम्परा जलमों वह जाय कहिये स्वाश्रय संयोगिसंयोगसम्बन्ध से अग्नि का उष्ण जल भीतर जाकर भली प्रकार नीर को तपावे है, औ इहाँ आतम एक असंगहि अहे कहिये मन के साक्षात् वा परम्परा सम्बन्ध से रहित है, याते वह मन के धर्म दुःखादिकों को कैसे ग्रहण करे, अर्थात् काहू रीति से नहीं ग्रहण करे, स्व पद से उष्ण ताका

मणिमंत्रौषधि कर परिहार । अग्नि शक्ति भव बुद्धि उदार ।
जपाकुसुम लाली परिहरे । शुक्ल द्रव्यके लेपन करे ॥७७॥
तब नहिं नीर तापको गहे । नहिं स्फटिक लालीको गहे ।
त्यों ही मनके दुःख मिटाये ।आतम माहिं दुःख मिट जाये ॥७८॥

पूर्वपक्षी—

ननु आतम महिं दुःख घनेरो । बिन अध्यास न नीके हेरो ।
ताको कारण जो अज्ञान । सो तो भयो ज्ञान ते हान ॥७९॥
कारण बिना कथं वह होवे । ज्ञानी कहो कथं दुख जोवे ।

सिद्धान्ती—

साच कह्यो मूल अज्ञान । भयो ज्ञानते नीके हान ॥८०॥
तदपि लेशअविद्या जोई । अब लौं अहे नष्ट नहिं सोई ।
ताही कर होवे अध्यास । पूर्व पाछे दुःख प्रकाश ॥८१॥
अनुभव दुःख प्रकट तिहिं होई । ता अपलाप करे नहिं कोई ।
दुःख निवारण साधन जेई । दुःख निवारे या भव तेई ॥८२॥

आश्रय अग्नि ताका संयोगी पात्र तिससे संयोग जलका, यह कहे संवन्ध का अर्थ है ॥ ७५ ॥

असंग में भी दृष्टान्तवत् मनोधर्म कल्पित दुःख सम्भवे है, यह कहे— "ज्यों" इति ॥ ७६ ॥

दृष्टान्तवत् मन का दुःख मिटावने से ही आत्मा में दुःख निवृत्त होवे है, यह कहे "मणि" इति, शुक्ल द्रव्य के लेपन करे नाम सुपेदकली आदिकों के लेपन करे ॥ ७७-७८ ॥

ज्ञान से अज्ञान दूर होने ते, आध्यासिक दुःखों का काहू रीति से ज्ञानी में सम्भव नहीं यह आशङ्का करे—"ननु" इति ॥ ७९ ॥

लेशाविद्या के प्रभाव से आध्यासिक दुःखों के सम्भवते तिनकी निवृत्ति हेतु साधन विधि सफल है, या भाव से उत्तर कहे—"साच" इति ॥ ८० ॥

"पूर्व" प्रथम के साथ (अन्वय कर लेना) ॥ ८१ ॥

अपलाप = छपावा ॥ ८२ ॥

ताते साधन की विधि जोई । सार्थ भई प्रकट अब सोई ।
ज्ञान अनन्तर जो संन्यास । श्रुति करे ताको उपन्यास ॥८३॥
पूर्व सु आतम ज्ञानहि पाय । निखिलि अविद्या दिये मिटाय ।
ऐसो ब्राह्मण या भव जोई । इच्छा तीन त्यागे सोई ॥८४॥
पुत्रहि, वित्त, लोक, यह तीन । तीनों इच्छा ते होय हीन ।
भिक्षा करे नगरके माहीं । बैठे जाय स्थंडिल माहीं ॥८५॥

तथा च श्रुति:

"एवं वैतमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणाया ।
वित्तैषणाया लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति" ॥

अब विद्वत्संन्यासी का आचरण करते हैं ।

चौपाई

नदीपुलिन वा शून्य अगार । देव भवन में बसे उदार ।
घनानंद आतम उर धारे विषयन सुख ते मनको टारे ॥८६॥
काहूँ संग वैर नहिं हइये । समता बुद्धि निखिल मों पइये ।
इक आनंदसिंधु वह आहि । दुःख लेश तामों कछु नाहि ॥८७॥

ताते नाम साधनों को दुःख निवृत्ति में हेतु कहे ते, साधनों की जो विधि है सो अब प्रकट ही सार्थ होई, युक्तियो से कह कर ज्ञानानन्तर साधन विधि श्रुति प्रमाण से भी कहे—"ज्ञान" इति, उपन्यास = कथन ॥ ८३ ॥

अर्थ ते श्रुति पढ़े—"पूर्व" इति, पूर्व कहिये सन्यास से प्रथम ॥८४॥

तीन इच्छा कहे—"पुत्र" इति स्थंडिल = चौतरा ॥ ८५ ॥

ज्ञानानन्तर संन्यास बोधक श्रुति कहे—"तथा च" इति एवं = उक्त प्रकारेण वै = निश्चय कर. तम् = आत्मानं तिस आत्मा को विदित्वा जान कर, ब्राह्मणाः = विद्वान् पुत्रैषणायाः = पुत्र इच्छाते, वित्त इच्छा ते, लोक इच्छा ते, व्युत्थाय = उत्थान को प्राप्त होकर अर्थात् त्याग कर, "भिक्षाचर्यं चरन्ति" भिक्षा आचरण करे है, इस रीति से श्रुति ज्ञानानन्तर संन्यास विधान करे है, भिक्षुके निवास स्थान कहे "नदी" इति ॥ ८६-८७ ॥

याहि अवस्था कारण जोई । दृढ़ वैराग्य पछानो सोई ।
दोष दृष्टि विषयन में जोई । दृढ़ वैराग्य उपावे सोई ॥८८॥

पूर्व विद्वत्संन्यास को कहा अब विविदिषासंन्यास को कहते हैं ।

सवैया

जिह नागरनारि निहारत ही, नर मोहि रहे तिहि रूप विचारे ।
मुख थूक भरी दृग गीद बहे, अरु नाकन ते वह मैल निसारे ॥
सब द्वारन मैल स्रवे सदही, अब काहि भयो तिह पोच उतारे ।
भव नारिन सुंदर ईश रची, नरकागनि की तिहि दारु निहारे ॥८९
इत मांसमई इत श्रोण भरी, इत हाडन की पुतली उर धारे ।
इत मज्ज पिखे इत नाडि लखे, इत बालमई इह भाँति विचारे ॥
दुरगंध मलीन महा पिखिये, नहिं सुन्दर नारिन रूप निहारे ।
इह भाँति सदोषन खानि भई, अब ता तन ते उर राग विसारे ॥९०

दोहा

इह भाँति विचारे दोषको, निखिल पदार्थ माहिं ।
तबे जिहासा ताहि की, उपजे नर उर माहिं ॥९१॥

दृढ़ वैराग्य का कारण कहे "दोष" इति, दोष दृष्टि विषयन में जोई कहिये स्त्री धनादिक पदार्थों में जो अतिशयिता, क्षीणता, अनित्यता रूप दोषों का दर्शन, वह दृढ़ वैराग्य उपावे है ॥ ८८ ॥

दोष दर्शन का प्रकार बतावे, "जिह" इति, नागर चतुर, कैसा विचारे ? तहाँ कहे, "मुख" इति, नरकागनि की तिहि दारु निहारे कहिये नरक रूप अग्नि की तिसको लकड़ी देखे अर्थात् पुरुषों को दहन करने वाली नरकाग्नि का यह इन्धन है, याते वह अग्नि निवारण हेतु इन्धन ही खोया चाहिये ऐसे समझ कर सर्व अनर्थों के बीज रूप स्त्री का त्याग करे यह भाव है ॥ ८९-९० ॥

इह भाँति विचारे दोष को कहिये ऐसे ही "खड्ग धारसों अङ्ग चिरावे" इत्यादि पाठ से ग्रन्थान्तर से जान लेना, कही रीति से धन, पुत्रादिकों विषे भी दोष दर्शन जब करे तबे कहिये तिसी काल में जिहासा

जिहासा कहें विराग को, सो है तीन प्रकार।
'तीव्र' पुनि 'तीव्रतर' कहे, मंद तथा निर्धार ॥९२॥

चौपाई

पुत्र दार नष्ट होय जबही। धिक् संसार होय मति तबही।
यही 'मंदवैराग्य' कहीजे। तामों नहिं संन्यासहि लीजे ॥९३॥

पुत्रदार विषे जग जेते। जाहि जन्म मत होवे तेते।
ऐसी मति स्थिर है जोई। विराग सु'तीव्र' भाख्यो सोई॥९४॥

पुनरावृत्ति सहित जे लोक। मत होवे, यामों बहु शोक।
ऐसी मति स्थिर है जोई। "तीव्रतर" वैराग्य है होई ॥९५॥

पुनि भोगन में दीन न होई। विरागवृक्ष फल भाख्यो सोई।
ब्रह्म लोक लौं हइये जेते। तृण समान सब भासे तेते ॥९६॥

यह वैराग्य अवधि बुध गावे। पूर्णभाग्य भये जन पावे।
तीव्र होय वैराग्य सु जबही। करे संन्यास भूमि में तबही ॥९७॥

नाम तिन पदार्थों के त्याग की इच्छा, अर्थात् तिन पदार्थों से वैराग्य पुरुष के चित्त में उपजे है ॥ ९१ ॥

वैराग्य के भेद निर्णयार्थ जिहासा पद का अर्थ कहे "जिहासा" इति, तीनों के नाम कहे "तीव्र" इति ॥ ९२ ॥

मन्द का स्वरूप कहे "पुत्र" इति, मन्द में संन्यास का निषेध करे "तामों" इति ॥ ९३ ॥

तीव्र का स्वरूप कहे "पुत्र" इति ॥ ९४ ॥

तीव्रतर का स्वरूप कहे "पुनरावृत्ति" इति, पुनरावृत्ति सहित जे लोक कहिये पुनः आने के सहित जे लोक हैं वह मेरे को मत होवें, जिनमें अनन्त शोक है ॥ ९५ ॥

स्वरूप कहकर वैराग्य का फल कहे "पुनि" इति, फल कहकर वैराग्य की अवधि कहे "ब्रह्म" इति ॥ ९६ ॥

तीव्र वैराग्य में संन्यास का विधान करे "तीव्र" इति ॥ ९७ ॥

सो संन्यास है दोय प्रकार । 'कुटीचक' और 'बहूदक' धार।
यात्रा माहिं सक्ति नहिं जबही। करे कुटीचक योगी तबही ॥९८॥
यात्रा सक्ति देह नर जोई । संन्यास बहूदक धारे सोई ।
यह दोनों संन्यास सु जेई । नाम त्रिदंडी भाखे तेई ॥९९॥
तीव्रतर वैराग्य सु जोई । दो संन्यास जनक है सोई ।
"हंस" एक को नाम भनीजे । 'परमहंस' सु द्वितीय कहीजे ॥१००॥
ब्रह्मलोक महि तत्त्वज्ञान । यामें होय सु हंस' पछान ।
"परमहंस" पुनि द्वय प्रकार । 'विविदिषा'अरु विद्वत् निर्धार॥१०१॥
ऐहिक ज्ञान अर्थ है जोई । 'विविदिषा' भव भाख्यो सोई।
तत्त्वज्ञान अनंतर जोई । जीवन्मुक्त हेतु है सोई ॥१०२॥

संन्यास के भेद कहे "सो" इति, दोनों की कर्तव्यता का समय कहे "यात्रा" इति ॥ ९८ ॥

दोनों संन्यासों की संज्ञा बतावे "नाम" इति, नाम त्रिदण्डी भाखे तेई कहिये अज्ञान तत्कर्य को दमन करने वाला जो ज्ञान दण्ड कभी चित्त विक्षेप से वह भूल जावे तब ताके स्मरण हेतु शास्त्र ने काठ का दण्ड विधान किया है, याते जैसे काठ के दण्ड से संन्यासिन को "दण्डी" कहें हैं तैसे मौन होकर स्थित होने रूप वाणो दण्ड औ अल्प भोजन काय दण्ड, तथा प्राणायाम रूप मनो दण्ड के परमहंसों में सम्भव ते इन तीन दण्डन से यह दोनों संन्यास नाम से "त्रिदण्डी" कहे जावे हैं ॥ ९९ ॥

तीव्र वैराग्य से दो प्रकार का संन्यास कहकर तीव्र तर से दो प्रकार का कहे "तीव्र" इति, दोनों के नाम कहे "हंस" इति ॥ १०० ॥

हंस का स्वरूप कहे "ब्रह्म" इति, परमहंस का स्वरूप कथन अर्थ भेद कहे "परमहंस" इति, दोनों के नाम कहे "विविदिषा" इति ॥१०१॥

विविदिषा का स्वरूप कहे "ऐहिक" इति, ऐहिक कहिये इसलोक में जो ज्ञान की इच्छा कर संन्यास है, वह संसार में विविदिषा संन्यास कहिये है । विविदिषा का स्वरूप कहकर विद्वत् का स्वरूप कहे "तत्त्व" इति ॥ १०२ ॥

वही कहे "विद्वत्संन्यास" । जीवन्मुक्ति सो करे प्रकाश ।
'याज्ञवल्क्य' लौं जे ऋषि भारे । तिनहूँ यह संन्यासहि धारे ॥१०३॥
यह संन्यास धार है जबही । या विधि वर्ते योगी तबही ।
शुभ वासना सु पूर्व धारे । मलिन वासना दूर निवारे ॥१०४॥
पाछे शुभको करे जु त्याग । ऐसो पुरुष बड़ो बड़भाग ।
मलिन वासना तीन प्रकार । सो संक्षेपते करौं उचार ॥१०५॥
"लोकवासना" एक पछानो । "शास्त्रवासना" दूसरि जानो ।
"देहवासना" तृतीय हइये । या विधि तीन वासना पइये ॥१०६॥
सबजन मे निंदा नहिं करे । मम स्तुतिको सब अनुसरे ।
ऐसी इच्छा जो भव माहीं । "लोकवासना" जानो ताहीं ॥१०७॥
"शास्त्रवासना" तीन प्रकार । 'पाठव्यसन' एक निर्धार ।
शास्त्र अर्थ जानन की आश । दूजी यह कीनी उपन्यास ॥१०८॥
अनुष्ठानव्यसन तृतीय हइये । या विधि तीन वासना पइये ।
देहवासना तीन प्रकार । सो सुनिये नीके निर्धार ॥१०९॥

विद्वत् संन्यास किसने धारण किया है तहाँ कहे "याज्ञवल्क्य" इति ॥ १०३ ॥

यह संन्यास धार कर योगी कैसे वर्ते ? तहाँ कहे "या विधि" इति, वर्तने के विधि कहे "शुभ" इति ॥ १०४ ॥

निवर्तनीय मलिन वासना का प्रकार क्या है ? तहां कहे "मलिन" इति ॥ १०५ ॥

तीनो के नाम कहे "लोक" इति ॥ १०६ ॥

लोक वासना का स्वरूप कहे "सब" इति ॥ १०७ ॥

शास्त्र वासना का स्वरूप निर्णय हेतु ताके भेद कहे "शास्त्र" इति । तीनों के नाम कहे "पाठ" इति; शस्त्र अर्थ जानन कहिये भरद्वाजवत् बहुत शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा, उपन्यास—कथन ॥ १०८ ॥

अनुष्ठान व्यसन तृतीय हइये कहिये अमुक मन्त्र का इतना पाठ करों, अमुक कर्म को इस रीति से फल हेतु करों, ऐसे कर्मारम्भ का

जो निज देहमों आतम ज्ञान । प्रथम वासना यह पहिचान ।
गुणाधान दूसरी हइये । 'दोष निरसन' तीसरी पइये ।।११०।।
गुणाधान है दोय प्रकार । सो संक्षेप ते करौं उचार ।
लौकिक गुणाधान इक हइये । शास्त्रीय दूजी भन्न पइये ।।१११।।
स्रग् दुकूल अरु बहुत सुगंध । यत्न करे तन धारे अंध ।
लौकिक गुणाधान यह जान । शास्त्रीय को अब्र करौं बखान ।।११२।।
तीर्थयात्रा हेतु सिधावों । गया जाय कर पिण्ड भरावों ।
शालिग्राम की सेवा करौं । बहुत प्रकार धर्म विस्तरौं ।।११३।।
"दोषहनन" पुनि दोय प्रकार । 'लौकिक' अरु 'वैदिक' निर्धार ।
तनुमें बहु औषधि को डारे । उद्वर्तन सों देह पखारे ।।११४।।
मुखमों डार औषधी धोवै । या विधि दोष अंगके खोवै ।
शास्त्रविहित यों शौचहि करे । या विधि उर दोषहि परिहरे ।।११५।।

उद्यम रूप तीसरी हैं, एवं देहवासना भी तीन प्रकार की है, सोई कहे "देह" इति ।। १०९ ।।

तीनो के नाम कहे "जो निज" इति, जो निज देहमों आतम ज्ञान कहिये "एष पुरुषोऽन्नरसमयः" या श्रुति से, पुनः "देहोऽहम्" इत्यादि प्रत्यक्षों से जो अपने देह में आत्म बुद्धि प्रथम नाम आदि में यह देहात्म वासना जानो, दूसरी गुणधान नाम गुणों का धारण करना रूप वासना है, तीसरी 'दोष निरसन नाम दोषों का दूर करना है ।। ११० ।।

दूसरी के भेद कहे "गुणाधान" इति, दोनों के नाम कहे "लौकिक" इति ।। १११ ।।

लौकिक गुणाधान कहे "स्रग्" इति, स्रग्—माला, दुकूल—दुपट्टा ।। ११२ ।।

बखान करे "तीर्थ" इति ।। ११३ ।।

तीसरी का भेद कथनार्थ भेद कहे "दोष" इति, दोनों के नाम कहे "लौकिक" इति, प्रथम का स्वरूप कहे "तनु में" इति, उद्वर्तन सों नाम बटने से देह प्रक्षालनी ।। ११४ ।।

दूसरी का स्वरूप कहे "शास्त्र" इति ।। ११५ ।।

या विधि तीन वासना जोई । सुधी सु त्यागे सकली सोई ।
इन तीनों का बहु विस्तार । जीवन्मुक्त माहिं निर्धार ॥११६॥
पूर्ववृद्ध प्रकट कर गायो । बहु विस्तार ते नाहिं दिखायो ।
लोक वासना त्याग उपाय । कहौं संक्षेप सुनो मन लाय ॥११७॥
इसो उपाय न को भव माहीं । सब संतुष्ट होहि जन जाहीं ।
गुणसागर उर परम दयाल । दोषहीन निज ज्ञान विशाल ॥११८॥
सब जन के हित को अनुसरे । द्वेष न काहूँ को उर धरे ।
या विधि गुण उत्तम आधार । भवभीतर जे पुरुष उदार ॥११९॥
ताकी निंदा भव में करे । सब जन नहिं स्तुति अनुसरे ।
द्वेष होय जाको जा माहीं । तिह निंदे जन या भवमाहीं ॥१२०॥

संक्षेप ते वासना कहकर इन तीनों के त्याग का उपदेश करे "या विधि" इति या विधि कहिये पूर्व संक्षेप ते कही जो तीन वासना बुद्धिमान् तिन सबको त्यागे, संक्षेप ते कही वासना का विस्तार कहाँ है ? तहाँ कहे "इन" इति, इन तीनों वासना का अधिक विस्तार "जीवन्मुक्ति विवेक" नाम ग्रन्थ में (विद्यारण्य स्वामी) कहे है ॥ ११६ ॥

वह पूर्ववृद्ध = विशिष्टादि वृद्धों ने प्रकट करके गाया है, याते अति विस्तार होने ते हमने दिखाया नहीं, जीवन्मुक्तिविवेक विषे इन तीनों का बहुत विस्तार श्रुतिस्मृतिसिद्ध दृष्टान्तों से स्वरूप का प्रकट करना रूप जान लेना, सो या टीका में इनके त्याग उपाय में दिखाया जावेगा। प्रथम लोक वासना के त्याग का उपाय कहे—"लोक" इति ॥ ११७ ॥

सर्व का न सन्तुष्ट होना महा गुणवान् पुरुषो के दृष्टान्त से कहे— "गुण" इति, दोषहीन निज ज्ञान विशाल कहिये दोषों ते हीन है औ निज स्वरूप का जिनको ज्ञान अधिक है ॥ ११८ ॥

गुण सागरता स्पष्ट करे—"सब" इति, या विधि गुण उत्तम आधार कहिये इस प्रकार के उत्तम गुणों का आश्रय जो पुरुष श्रेष्ठ हैं ॥ ११९ ॥

स्तुति निन्दा में बीज बतावे "द्वेष" इति ॥ १२० ॥

ब्रह्मादिक की निंदा करहीं । बहुत अवाच्य बैन उचरहीं ।
अरुपुनि राग होय है जाहीं । नर प्रशंसे ता भवमाहीं ॥१२१॥
भावें होय पाषाण समान । ताहीको उर बहु सम्मान ।
वृद्ध अंगना बालन माहीं । यहि योंही संशय कछु नाहीं ॥१२२॥
यों सब जनकी गतिहि निहारे । डरते लोक वासना टारे ।

अब वासना क्षय के उपाय का निरूपण करते हैं ।

चौपाई

इतरवासना त्याग उपाय । कहौं संक्षेप सुनो मन लाय ॥१२३॥
बहुत अशक्य हृदय में मान । शास्त्र वासना करे प्रहान ।
सुंदरपाठ कहाँ लौं करे । कंठादिक नहिं वस अनुसरे ॥१२४॥

अवाच्य नाम—काहे का ब्रह्मा है पुत्री की ओर विकार दृष्टि करी इत्यादि कहने को अयोग्य ॥ १२१ ॥

भावें कहिये चाहो पाषाणवत् अति जड़ है तौ भी हृदय में तिसका सन्मान करेंगे, जैसे कोई वृद्ध, स्त्री औ बालकों विषे राग से तिनहीं के गुण वर्णन करे है, यह वार्ता यों हों नाम ऐसे ही है जो जाका जिनमें राग-द्वेष है तिनकी ही निन्दा स्तुति करें हैं, यामें सन्देह नहीं ॥ १२२ ॥

यों नाम कही रीति से श्रेष्ठो की भी द्वेषी पुरुषों कर निन्दा करना रूप गति को देखे औ देख कर अपने हित में आचरण करता हुआ लोक वासना हृदय से दूर करे, उक्तञ्च—"विद्यते न खलु कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः। सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहु जल्पः ॥" याही ते लोक वासना को मलिन जानकर योगी जनों को "तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी" ऐसे गीता में कह्या है, याते सर्व लोकों की प्रसन्नता सिद्ध करने को अशक्यता से लोक वासना को मलिन जान कर सुधी त्यागे, लोक वासना का त्याग उपाय कह कर शास्त्र वासना के त्याग का उपाय कहे—"इतर" इति, इतर कहिये शास्त्र वासना के त्याग का उपाय भी संक्षेपते कहता हूँ—मन लगा कर श्रवण करो ॥ १२३ ॥

बीज कहता हुआ तीन प्रकार की शास्त्र वासना के त्याग का उपदेश करे "बहुत" इति, समान ते सबका त्याग कह कर क्रम से

थोड़ी आयु बहुत विस्तार। ग्रंथन का क्यों पावे पार।
बहुत प्रकार कर्म विस्तरे। को समर्थ जो भव में करे ॥१२५॥
यों अशक्य जान उर माहीं। त्यागे सकल वासना ताहीं।
जड़त्व हेतु ते आत्म नाहीं। यह तनु जो हेरे भव माहीं ॥१२६॥

विशेष रूप से कहे "सुन्दर" इति, सुन्दर पाठ कहां लौ करे कहिये भारद्वाज ऋषि ने पुरुषत्रय की आयु से बहुत वेद अध्ययन किया, पीछे इन्द्र ने "चौथी अवस्था लो" परन्तु "तिससे क्या करेगा" ऐसे लोभित किया लेकर "पाठ करूँगा" ऐसे अध्ययन का प्रयत्न करता भया याते तीन अवस्था से भी पाठ को अशक्यता कर एक अवस्था से पुरुष तिसको कहाँ पर्यन्त करेगा। किञ्च या अवस्था में भी कण्ठादिक वश नहीं सोई कहे "कण्ठादिक" इति ॥ १२४ ॥

एवं बहुत शास्त्रों के अध्ययन को वासना भी त्याग करे यह कहे "थोड़ी" इति, थोड़ोआयु कहिये पुरुष की अवस्था अल्प है औ ग्रन्थों का विस्तार बहुत है, या ते पुरुष तिनका पार कैसे पावे अर्थात् काहूँ रीति से नहीं पाय सके याते शास्त्र वासना को छोड़ के आत्मतत्त्व चिन्तन करे, जैसे बहुत शास्त्रों का बोझ साथ लिये, महादेव को नमस्कार करने आये, दुर्बासा ऋषि को सभा में बैठे नारद ने बोझ उठावने वाले गदहे की समानता कह्या, दुर्बासा कोप ते पुस्तकों को खारे समुद्र में फैंक के महादेव साथ आत्म विचार करता भया, याते बहुत शास्त्रों की कथा रूप उगाल (चर्बित चर्बण) न करे, किन्तु यत्न से आत्मतत्त्व का चिन्तन करे इस रीति से द्वितीय वासना दूर करे एवं अनुष्ठान व्यसन भी करने को असमर्थ जानकर दूर करे सोई कहे "बहुत" इति, बहुत प्रकार कर्म विस्तरे नाम अनेक प्रकार कर्मों का विस्तार है याते कौन समर्थ है। जो तिनको पूर्ण कर सके अर्थात् कोई नहीं, याते ऋभु से पुनः पुनः बोधन किया हुआ भी अनुष्ठान व्यसन से शुद्ध भूमि खोजता हुआ "निदाघ" तत्त्व को न जानता हुआ, ऐसे विष्णु पुराण में श्रवण करने ते तत्त्वज्ञान में प्रतिबन्धक जान के अनुष्ठान वासना भी त्याग करे ॥ १२५ ॥

याते यों नाम कही रीति से शास्त्र वासना को हृदय में, अशक्य नाम कठिन जानकर ताही नाम शास्त्र की, सकल कहिये तीनों वासना

तनु अनात्मा ताहि प्रकार । पूर्व सु भाख्यों बहु विस्तार ।
अति मलीन तनु या भव हइये । आतम अतिशय निर्मल पइये ॥१२७॥
गुणाधान अरु दोष प्रहान । तनु भीतर अशक्य पछान ।
आतम शुद्ध रूप निज हइये । एक असंग व्योमसम पइये ॥१२८॥
या विधि भेद दुहूँको जोवे । मलिनवासना उरते खोवे ।
शुभवासना धार उदारी । त्यागे मलिन वासना सारी ॥१२९॥

त्यागे एवं त्रिविध देह वासना भी जड़त्वादि हेतुओं से दूर करे सोई कहे "जड़त्व" इति, "यह तनु" पूर्व साथ मिलाकर, यह जो तन है सो जड़ है याते आत्मा नहीं ॥ १२६ ॥

चेतन शरीर में जड़ता हेतु की असिद्धि ते आत्मा बने है ? यह आशंका कर कहे "तनु" इति, पूर्व सु भाख्यो बहु विस्तार कहिये तिसको, जिस रीति से अनात्मा है सो हम चार्वाक मत के निराकरण काल में दूसर अध्याय (निवास) विषे बहुत कह चुके हैं आतम वासना निराकरण रीति कहकर गुणाधान औ दोष निरसन रूप द्विविध वासना के त्याग की रीति कहे "अति" इति, अतिमलीन तनु या भव हइये कहिये इस संसार में शरीर अतिमलीन है औ आत्मा अत्यन्त निर्मल है याते मलिन शरीर में औ असंग आत्मा में "स्रग्दूकूल आदि" लौकिक औ "तीर्थ यात्रा आदि" शास्त्रीय गुणाधान तथा "मुख में औषधि डार धोवन आदि" अशास्त्र-विहित लिखा है, शौच आदि शास्त्रीय दोष निरसन अशक्य है ॥ १२७ ॥

सोई कहे "गुणाधान" इति ॥ १२८ ॥

या विधि भेद दुहुँ को जोवे कहिये कही रीति से दोनों का भेद देखे औ देख कर ज्ञान में प्रतिबन्धक औ जन्म का हेतु जान कर सम्पूर्ण देह वासना को हृदय से दूर करे, वह भी निरालम्ब नहीं दूर करे किन्तु शुभ वासना धार कर दूर करे, वह शुभ वासना "यह वस्तु है" जैसे भूजे अन्न में तृप्ति हेतुता रहे है, अङ्कुर आदिकों की नहीं, तैसे सत्कार से औ निरन्तर पुनः बहुत काल सेवन से ऐसी तत्त्व की चिन्तना उपजे है सो "तत्त्वमसि" आदि वाक्य पुनः अभेद साधक युक्तियों के स्मरण किये बिना भी अग्रवर्ती घटादिकों के स्फुरणवत् शीघ्र तत्त्वज्ञान की

अब मनोनाश का उपाय निरूपण करते हैं।

चौपाई

मनो नाश को उद्यम ठाने। मनको रूप इसो नर जाने।
अन्तःकरण द्रव्य भव माहीं। रच्यो ईश्वर या तन माहीं ॥१३०॥

अनुवृत्ति बनी रहे है औ दम्भ दर्पादि रूप आसुरी सम्पत्ति की हेतुता में नहीं रहे याते ऐसी चिन्तना सहित इन्द्रियों का अपने अर्थों में वर्तना रूप वासना वस्तु है ताको धारण करके मलिन वासना त्यागे ॥ १२९ ॥

एवं मलिन वासना त्याग पूर्वक शुभ वासना को धारण कर मनो नाश का प्रयत्न करे सोई कहे "मनो" इति, अनित्य रूप मन के नाश करने का उद्यम नाम प्रयत्न करे। ननु मन के नाश का प्रयत्न नहीं बने, काहे ते ? जन्य औ विनाशी वस्तु अनित्य कहिये है औ मन को जन्यता के अभाव में यह बीज है=जो भाव रूप जन्य वस्तु मात्र उभय विध कारण वाली होवे है औ उभय में उपादानता केवल द्रव्य में ही रहे है, गुण क्रिया में रहे नहीं, काहे ते ? समवाय सम्बन्ध से गुण क्रिया औ कार्य द्रव्य की द्रव्य में ही उत्पत्ति होवे है, और में नहीं, याते मन को जन्यता माने ताका उपादान कोई द्रव्य अवश्य कहना होवेगा औ द्रव्य आठन को मन की कारणता बने नहीं, काहे ते ? आत्मा आकाश काल दिशा यह चार द्रव्य विभु हैं और निरवयव हैं याते तिनको और काहू कार्य द्रव्य की आरम्भकता न देखने से मन की आरम्भकता बने नहीं, तैसे मन स्पर्श रहित है औ पृथिवी जल तेज वायु यह चार द्रव्य स्पर्शवाले हैं याते स्पर्श हीन मन की आरम्भकता इनको भी बने नहीं इस रीति से कारण के अनिरूपण ते मन अजन्य होने ते नित्य है याते जीवन मुक्ति का साधन जानकर मन के नाश का आरम्भ असंगत है यह आशंका कर कहे "मन" इति, न जानी वस्तु के हानि वृद्धि को अशक्य होने ते प्रथम मन को स्वरूप कहिये ? तिस नाश योग्य मन का स्वरूप विवेकी पुरुष ऐसा जाने—जो असंग आत्मा में इच्छा ज्ञान सुख दुखादि धर्मों के असम्भव ते तिन इच्छादिकों का आधार, रूप रसादिकों के करण नेत्र आदि वाह्य इन्द्रियोंवत् एक अन्तःकरण नाम शरीर के भीतर सुख दुख आदिकों के ज्ञान का करण, इच्छा आदि गुणों का आश्रय होने ते संसार विषे ईश्वर कहिये परमेश्वर ने महदादि क्रम से अपनी माया शक्ति के परिणाम सूक्ष्म भूतों के सत्व गुण का कार्य अपना

मननरूप वृत्ति तहि जोई। 'मनो' महीजे भवमें सोई।
मननरूप वृत्ति परिहरे। निरोध परिणामहिको अनुसरे॥१३१॥
यही नाश ताहि को जाने। ताही हित उद्यम उर ठाने।
ता उद्यम के दोय प्रकार। सुखबोधन अरु हठ निर्धार।१३२॥
शत्रु और मित्रके माहीं। तुल्य बुद्धि जोई भव माहीं।
सुखबोधन जाको पहिचान। हठ उपाय को करौं बखान॥१३३।
यम नियम अरु प्रत्याहार। इत्यादिक को हठ निर्धार।
गुरु समीप सीखकर करे। आपहि ते नहिं हठ विस्तरे॥१३४॥

दोहा

अहिंसा सत्यास्तेय पुनि, ब्रह्मचर्य पहिचान।
अपरिग्रह पुनि जानिये, यम यहि पाँचो मान॥१३५॥

विवर्त रूप इस संसार में नया उत्पन्न किया है, याते अजन्यता से नित्य नहीं, सूक्ष्म भूतों का कार्य है याते पूर्व कही तिनको अनुपादनता नहीं, स्पर्श हीनता भी सूक्ष्म भूतों की कार्यता से ही सम्भवे है याते वह अनित्य है॥ १३०॥

आगे तिस अनित्य अन्तःकरण की मनन रूप वृत्ति "मन है" सोई कहे "मनन" इति। मन का स्वरूप कहकर ताका नाश कहे "मनन" इति, अन्तःकरण की मनन रूप वृत्ति को परिहरे नाम प्रहार करे वह प्रहार यह है जो निरोध नाम बाह्य विषयों ते रोकने रूप परिणाम को प्राप्त करना॥ १३१॥

ताहि को—मन को, यही नाश जाने औ इसी वास्ते उद्यम करे, ता उद्यम के भी दो भेद हैं सोई कहे "ता" इति, दोनों के नाम कहे "सुख" इति॥ १३२॥

सुख बोधन का स्वरूप कहे "शत्रु" इति, सुख बोधन कहकर हठोपाय कहे "हठ" इति॥ १३३॥

अष्टाङ्ग योग रूप हठोपाय कहे "यम" इति, "इत्यादिक को हठ निर्धार" इहां "आदि" शब्द से आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, अङ्ग समाधि, यह जान लेने॥ १३४॥

हिंसादि निषिद्ध कर्मों ते योगी को निवृत्त करने वाली वस्तु को

शौच और संतोष पुनि, तप स्वाध्याय बखान ।
ईश्वरको प्रणिधान पुनि, पंचो नियम पछान ॥१३६॥

चौपाई

आछो राजधर्म जिहँ देश । उपद्रव कर नहिं होय कलेश ।
मठिका तहाँ इकांत सवाँरे । धनुष परिमाण न बहु विस्तारे॥१३७॥
शिला जल अग्नि तहाँ नहिं धरे । अल्पद्वार रंध्र परिहरे ।
ना अति नीच ऊँच नहिं होई । गर्त न भीतर होवे कोई ॥१३८॥
गोबर सों घर लेपन करे । कुश मृगछाल चैल विस्तरे ।
योग करे तहिं आसन धार । ते आसन कछु करौं उचार ॥१३९॥

दोहा

जानू के अंतर करे, पादों के तल दोय ।
ऋजु शरीर बैठे जबै, 'स्वस्तिक' आसन होय ॥१४०॥
उरू तले इक पादकै, दूसर पादहि जोय ।
ऊपर राखे उरू कै, वीरासन' यहि होय ॥१४१॥

"यम" कहे है ताके भेद कहे "अहिंसा" इति, अहिंसा–सर्वथा जीव रक्षा सत्य-सच्च बोलना, अस्तेय-अचौर्य, ब्रह्मचर्य-अष्ट विध मैथुन का त्याग, अपरिग्रह-संग्रह रहितता ॥ १३५ ॥

"जन्म हेतु काम्य धर्मों ते निवृत्त कर, योगी को मोक्ष हेतु निष्काम धर्मों में प्रेरे सो नियम कहिये है" तिनके भेद कहे "शौच" इति, शौच-पवित्रता, सन्तोष-यथा लाभ सन्तुष्ट, तप–मित भोजनादि, स्वाध्याय–पवित्र मन्त्रों का जप, ईश्वर को प्रणिधान-कृतकर्मो का ईश्वर में अर्पण ॥ १३६ ॥

यम नियम का स्वरूप कहकर आसन का स्वरूप कथनार्थ ताकी भूमिका रचे "आछो" इति, मठिका-कुटिया, कुटिया का परिमाण कहे "धनुष" इति ॥ १३७ ॥

रन्ध्र—छिद्र, गर्तं-गड्ढा ॥ १३८-१३९ ॥

प्रथम "स्वस्तिक" आसन का स्वरूप कहे "जानू" इति ॥ १४० ॥

वीरासन का स्वरूप कहे "उरू" इति ॥ १४१ ॥

दो कर धरणी में धरे, अरकै नाभि लगाय।
देह करे सम दंड के, "मोरासन" सुखदाय ॥१४२॥
जङ्घा सूधी भूमि पै, हाथन में पग धार।
माथो जानू पर धरे, "पश्चिमतान" उचार ॥१४३॥
जगत जीव जेते अहे, तेते आसन आहि।
सब आसन कौने कहै, मुख्य बखानौं ताहि ॥१४४॥
सिद्ध, पद्म, सिंहासनं, भद्रासन, मिल चार।
सब आसन के शीश मणि, आसन चार विचार ॥१४५॥
योनिठौर पद मूल धर, मेढ़ू पर पद आन।
सम शरीर बैठे जबै, आसन "सिद्ध" बखान ॥१४६॥
वाम उरू दक्षिण चरण, दक्षिण धरे सु वाम।
पृष्ठ अँगूठे पद फड़े "पद्मासन" यहि नाम ॥१४७॥

चौपाई

सीम समीप वृषण के तले। पदके गुल्फ लगाये भले।
दक्षिण वाम गुल्फ को धारे। दक्षिण गुल्फ वाम निर्धारे ॥१४८॥
दो कर जानू ऊपर धार। पाँचो अँगुलि देय पसार।
मुख पसार पेखे नासागर। "सिंहासन" इह कहे उजागर ॥१४९॥

"मोर" आसन का स्वरूप कहे "दो कर" इति ॥ १४२ ॥

पश्चिमोत्तान का स्वरूप कहे "जङ्घा" इति ॥ १४३ ॥

सर्व आसनों के कथन को अशक्य जानकर मुख्य आसन कहे "जगत" इति ॥ १४४ ॥

मुख्य आसनों के नाम कहे "सिद्ध" इति ॥ १४५ ॥

सिद्ध आसन का स्वरूप कहे "योनि" इति ॥ १४६ ॥

पद्मासन का स्वरूप कहे "वाम" इति ॥ १४७ ॥

सिंहासन का स्वरूप कहे "सीम" इति, वृषण-अण्डकोश, गुल्फ-एड़ी ॥ १४८-१४९ ॥

तनु के पास पाद के तले। युगपदकर कर दाबे भले।
'भद्रासन' यहि नाम भनीजे। 'गोरख आसन' याहि कहीजे॥१५०॥

या विधि आसन को निर्धार। प्रा गायाम सु करें उचार।
प्राणायाम हैं तीन प्रकार। सो सुनियो उर अन्तर्धार॥१५१॥

'रेचक' अरु 'पूरक' द्वय जानो। 'कुंम्भक' रूप तीसरो मानो।
विशेष वायु तन भीतर जेती। बाहर सकल निकाले तेती॥१५२॥

याको "रेचक" जगमें कहिये। पूरक की गति औरे लहिये।
उत्पलनाल डार मुख माहीं। शिशु जल खैंचे ज्यों भव माहीं॥१५३॥

त्यों ही वायु गहे मुख माहीं। "पूरक" ताहि कहे भव माहीं।
ऊर्ध्व अधः श्वास नहिं होई। अरुपुनि गात्र चले नहिं कोई।१५४॥

ऐसी भाँति जुड़े भव जबही। "कुंभक" ताहि बखाने तबही।
सो कुंभक है दोय प्रकार। बाहर अरु भीतर निर्धार॥१५५॥

बाहर पवन निकाल्यो जोई। ताहि ठौर ठाढ़ो वह होई।
जौलौं ठाढ़ों बाहर हइये। तौ लौं बाहर 'कुम्भक' पइये॥१५६॥

अरु जो प्राण अपानन माहीं। जाय मिले या तनके माहीं।
यों पुनि बाहर को नहिं आवे। भीतर 'कुम्भक' तबे कहावे॥१५७॥

भद्रासन का स्वरूप कहे "तनु के" इति, कर हाथों कर, भद्रासन का नामान्तर कहे "गोरख" इति॥ १५०॥

आसन कहकर प्राणायाम का उपदेश करे "प्राणायाम" इति॥१५१॥

तीनों के नाम कहे "विशेष" इति॥ १५२॥

रेचक का स्वरूप कहकर पूरक का स्वरूप कहे "पूरक" इति॥१५३॥

कुम्भक का स्वरूप कहे "ऊर्ध्व" इति, गात्र-अङ्ग॥ १५४॥

कुम्कभ के भेद कहे "सो" इति॥ १५५॥

बाह्य कुम्भक का स्वरूप कहे "बाहर" इति॥ १५६॥

भीतर कुम्भक का स्वरूप कहे "अरु जो" इति॥ १५७॥

प्राणायाम भेद दिखलायो । फल याको पातंजल गायो ।
निद्रालस उपजावे जोई । 'सत्त्वावरण' कहीजे सोई ॥१५८॥
सो सब क्षीण होय इह जावै । यों पातंजल प्रकट दिखावै ।
अरुपुनि योगधारणा माहीं । मन समर्थ होय जा नाहीं ॥१५९॥
"प्रत्याहार" रूप है जोई । प्रकट पतंजलि गायो सोई ।
शब्द, स्पर्श, रूप, त्रय जानो । रस अरु गंध, पाँच पहिचानो ॥१६०॥
श्रोत्रादिक इन्द्रिय भव जेते । ताते सकल निवारे तेते ।
इन्द्रिय चित्तरूप अनुसरहीं । ताको "प्रत्याहार" उचरहीं ॥१६१॥
प्राणायाम अरु "प्रत्याहार"। माहि पतंजलि बहु विस्तार ।
प्रत्याहार करे नर जबहीं । इन्द्रिय स्व वश होवे तबहीं ॥१६२॥

दोहा

प्रत्याहारहि फल कहो, सुनो धारणा रूप ।
जाके कीये ते मिटे, पाप महा तम रूप ॥ १६३ ॥

पातञ्जलोक्त फल कहे निद्रालस" इति, निद्रालस उपजावे जोई कहिये निद्रा आलस्य की उत्पत्ति करने वाले जो क्लेश औ पाप वह सत्त्वावरण नाम अन्तःकरण में आवरण कहिये है ॥ १५८ ॥

प्राणायाम करने से वह दूर होवे है योग सूत्रों में दूसरे पाद विषे ऐसे पतञ्जलि प्रकट कहे हैं यह कहे "सो" इति, प्राणायाम कहकर योग धारणा में असमर्थ को प्रत्याहार का उपदेश करे "अरु" इति। पुनः योग धारणा विषे, जा कहिये जिस पुरुष का मन समर्थ न होवे ॥ १५९ ॥

ताको योग धारणा में मन की समर्थता हेतु प्रत्याहार का जो रूप है वह प्रकट पतञ्जलि ने कथन किया है। इन्द्रियों का विषयों से निवृत्त करना रूप "प्रत्याहार" शब्द का अर्थ कहे "शब्द" इति ॥ १६० ॥

ताते सकल निवारे तेते कहिये श्रोत्र आदिक इन्द्रियों को सम्पूर्ण शब्दादि विषयों ते निवृत्त करे औ निवृत्त कर, इन्द्रिय नाम श्रोत्रादिक इन्द्रियों को, चित्त रूप अनुसरहीं नाम चित्त के अनुसार करे तिसका नाम प्रत्याहार है ॥ १६१ ॥

प्रत्याहार का फल कहे "प्रत्याहार" इति ॥ १६२-१६३ ॥

पद्मासनते आदिले, यथा योग्य निर्माय ।
कहूँक मन संस्थापनं, "धारण" नाम कहाय ॥१६४॥

चौपाई

आधारादिक देशन माहीं । अथवा आत्मचिद्घनमाहीं ।
चित्त बाँधनो भवमें जोई । "धारणा" या भव भाखी सोई ॥१६५॥
तामें प्रत्ययधारा जबही । "ध्यान" बखाने ताको तबही ।
सो धारा है दोय प्रकार । दो प्रकार सुनिये निर्धार ॥१६६॥
विजाति प्रत्यय यामें होई । ऐसी एक पछानो सोई ।
सो धारा ही "ध्यान" कहीजे । दूसर को अब रूपसुनीजे ॥१६७॥
लक्ष्य विषय प्रत्यय प्रवाह । चले निरंतर अंतर नाह ।
ता धाराको कहे "समाधि" । भव भीतर जे पुरुष अगाधि ॥१६८॥

धारणा का रूप कहे "पद्मासन" इति, निर्माय—रच कर ॥ १६४ ॥

"कहूँक" पाठ का विवरण करे "आधारादिक" इति, आधारादिक देशन माहीं कहिये आधार चक्र आदि रूप आन्तरीय काहू देश मात्र विषे अथवा बाहर चिद् घन आत्मा विषे अर्थात् सगुण रूप परमात्म वस्तु विषे तथा परमात्म विभूति रूप और देवता विषे चित्त बाँधनो भव में कहिये चित्त का संसार में लगावना है वह "धारणा" कहिये है ॥ १६५ ॥

धारणा का स्वरूप कहे "तामें" इति, तामें आधारादिक देशों में वा चिद् घन आत्मा में, प्रत्यय नाम ज्ञानों की जो, धारा नाम प्रवाहाकारता तिसको "ध्यान" कहे हैं वह धारा भी दो प्रकार की है सोई कहे "सो" इति ॥ १६६ ॥

दोनों के रूपों सहित नाम सुनावे "विजाति" इति, विजाति नाम एक धेय को छोड़ के अन्य धेयाकार प्रत्यय नाम चित्त की वृत्ति जिसमें होवे एक ऐसो धारा है, सो नाम वह धारा ही "ध्यान" कहिये है, ऐसे एक का नाम सहित रूप श्रवण कर, अब नाम धारा के निर्णय काल में, दूसरी धारा का रूप श्रवण करिये ॥ १६७ ॥

दूसरी का रूप सुनावे "लक्ष्य" इति, लक्ष्य विषय प्रत्यय प्रवाह कहिये लक्ष्यभूत वस्तु विषे चित्त वृत्तियों का प्रवाह जहां निरन्तर चले

सो समाधि है दोय प्रकार। एक अङ्ग अङ्गी निर्धार।
ध्याता ध्यान फुरे या माहीं। 'अङ्गसमाधि' पछानो ताहीं ॥१६९॥
दोके भान बिना है जोई। "अङ्गी शुद्ध पछानो सोई।
"संप्रज्ञात" उर यही पछान। याहि विषे दोनों आभान ॥१७०॥

अन्तर न पड़े, ता धारा नाम तिस प्रवाह को "समाधि" कहे है यह ध्यान, समाधि, का भेद है ॥ १६८ ॥

ननु सम्प्रज्ञात समाधि को अङ्गी होने ते अङ्गो में ताका कथन नहीं बने, यदि असम्प्रज्ञात रूप अङ्गी से भिन्न होने कर है ऐसे कहो तब अङ्ग, अङ्गी, की विलक्षणता न देखने ते नहीं बने ? यह आशंका कर तिनकी विलक्षणता कहने हेतु समाधि का विभाग करे "सो" इति, अङ्ग का स्वरूप कहे "ध्याता" इति, ध्याता ध्यान फुरे या माहीं कहिये जिस विषे ध्येय वस्तुवत् ध्याता ध्यान फुरे, ताहीं नाम तिसको "अङ्ग-समाधि" पछानो ॥ १६९ ॥

दो के भान बिना है जोई कहिये जो ध्याता ध्यान इन दो की प्रतीति से बिना है सोई नाम वह शुद्ध अङ्गी पहचानो। रूप कह कर क्रम ते दोनों के नाम कहे "सम्प्रज्ञात" इति, सम्प्रज्ञात तथा सविकल्प नाम हृदय विषे यह "अङ्ग समाधि" जानो जिस विषे दोनों आभान नाम ध्याता ध्यान दो की ही सर्व ओर ते प्रतीति होवे अर्थात् जिस विषे ध्येय वस्तु के समान ध्याता ध्यान का भी स्वरूप प्रतीत होवे वह सविकल्पक नामान्तर वाली "सम्प्रज्ञात समाधि" है, सो पुनः शब्दानुविद्ध शब्दाननुविद्ध भेद से दो प्रकार की है तिनमें "अहं ब्रह्मास्मि" या शब्द सहित का नाम "शब्दानुविद्ध है। औ शब्द रहित का नाम शब्दाननुविद्ध है। द्विविध की ही सिद्धि क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध रूप चित्त की पाँच भूमियों में एकाग्रता निरोध रूप दो भूमियों में होवे है, काहे ते ? "लोक वासना वश आसुरी सम्पत्ति वालाचित्त क्षिप्त कहिये हैं"। "औ निद्रा तन्द्रावान् चित्त मूढ" कहिये है, "कभीक ध्यान युक्तता कर क्षिप्त से अधिक हुआ चित्त विक्षिप्त" कहिये है। "अतीत वर्तमान ब्रह्माकार" वृत्तियों की एकाकारता रूप एकाग्रता युक्त चित्त एकाग्र" कहिये है औ "एकाग्रता की वृद्धि रूप निरोध युक्त चित्त निरुद्ध" कहिये याते क्षिप्त मूढ चित्त में तो समाधि की शङ्का ही

परम समाधि 'असम्प्रज्ञात'। सो सुनिये नीके विख्यात।
निखिल चित्तवृत्ति मिट जावै। केवल एक चित्त रहि जावै ॥१७१॥
पुनि संस्कार शेष यहि होई। "असम्प्रज्ञात" कहीजे सोई।
वृत्ति उपराम यत्न हैं जोई। ताको हेतु पछानो सोई ॥१७२॥

नहीं है औ विक्षिप्त चित्त में कभीक समाधि हुई भो अग्नि के अन्तर्गत बीज शक्तिवत् शीघ्र ही नाश होवे है याते एकाग्र निरुद्ध चित्त में ही समाधि होवे है एकाग्र निरुद्ध में हुई भी समाधि लय विक्षेप, कषाय, रसास्वाद रूप चार विघ्नों से दूर होवे है याते प्रयत्न से योगी इनकी निवृत्ति करे, निद्रा को "लय" कहे हैं, पुनः पुनः विषयों के अनुसन्धान को "विक्षेप" कहे है। रागादिकों को "कषाय" कहे है। अन्य आनन्द के लाभ विना भी भारवाही को भारनिवृत्तिजन्यआनन्दवत् योगी को विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनन्दानुभव "रसास्वाद" कहे हैं, तिनमें लय विघ्न की स्वल्प भोजन प्राणायामादि यत्न सहित जागरण से निवृत्ति करे याको "चित्त सम्बोध" कहे हैं। औ विषयों में दोष दर्शन तथा ब्रह्मानुसन्धान से विक्षेप की निवृत्ति करे याको "शम कहे हैं, शम प्राप्त भये चित्त को तहाँ स्थिर करने से "कषाय" की निवृत्ति करे। स्वरूप भूत निरुपाधिक आनन्दानुभव की इच्छा वाला योगी विक्षेपनिवृत्ति जन्य आनन्दानुभव रूप रसास्नाद में अलं बुद्धि न करता हुआ ताकी निवृत्ति करे। इस रीति से विघ्न निवृत्ति पूर्वक सिद्ध भयी सम्प्रज्ञात समाधि "असम्प्रज्ञात समाधि" की साधन है औ असम्प्रज्ञात समाधि फल है, तहाँ भी यह विशेष है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार यह वहिरङ्ग औ धारणा, ध्यान, सम्प्रज्ञान यह अन्तरङ्ग साधन है।।१७०।।

कही रीति की सविकल्पक समाधि के अभ्यास ते सिद्ध हुई परम समाधि असम्प्रज्ञात भी श्रवण करो सोई कहे "परम" इति, परम नाम अति उत्कृष्ट समाधि जो असम्प्रज्ञात है सो भी विख्यात नाम प्रकट ही श्रवण करो, सुनावे "निखिल" इति, निखिल चित्त वृत्ति मिट जावे कहिये सम्पूर्ण चित्त की वृत्ति मिट जावे औ मिट कर केवल सूक्ष्म रूपेण ब्रह्माकार हुआ एक चित्त ही रह जावे ॥ १७१ ॥

यह असम्प्रज्ञात समाधि है सोई कहे "पुनि संस्कार" इति, पुनि संस्कार शेष यहि होई नाम सम्पूर्ण वृत्तियों को छोड़ के ब्रह्माकारता

जो जो उपजै मनकी वृत्ति । ताही क्षणमों करे निवृत्ति ।
बारंबार इसो अभ्यास । ताते होय समाधि प्रकाश ॥१७३॥

पूर्वपक्षी—
याहि समाधि योगते भई । अथवा तत्त्वज्ञान निर्मई ।
सिद्धान्ती—
यामे नियम न कोई हइये । साधन युग्म ताहि के पइये ॥१७४॥

कर सूक्ष्म रूप रह्या चित्त "असम्प्रज्ञात समाधि" कहिये है। उक्तञ्च—"मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः। असम्प्रज्ञात नामासौ समाधिरभिधीयते" ॥ इति, असम्प्रज्ञात का स्वरूप कह कर उपाय कहे "वृत्ति" इति, वृत्ति उपराम यत्न है जोई कहिये मन की वृत्तियों के उपराम करने का जो परम वैराग्य सहित अभ्यास यत्न विशेष है, ताको नाम तावृत्ति शून्य मन की दुग्ध में जलवत् स्वरूप तिरोधान से ब्रह्म में अवस्थिति रूप असम्प्रज्ञात समाधि का वह अभ्यास यत्न हेतु है ॥ १७२ ॥

संक्षेप ते कह्या उपाय स्फुट करे "जो जो" इति, जो जो उपजै मन की वृत्ति कहिये जो जो चित्त की वृत्ति उदय होवे, ताहो क्षण कहिये तिसी कालमें वाको निवृत्त करे पुनः पुनः जो पुरुष का ऐसा अभ्यास है, ताते नाम तिस अभ्यास ते योगी को असम्प्रज्ञात समाधि का प्रकाश होवे है सो असम्प्रज्ञात दो प्रकार का है एक अद्वैतभावना रूप, एक अद्वैतअवस्थान रूप हैं। अद्वितीय ब्रह्माकार चित्त की अज्ञात वृत्ति युक्त को "अद्वैतभावना रूप असम्प्रज्ञात" कहे है औ वृत्ति रहित को "अद्वैत अवस्थान रूप" कहे है। वृत्ति रहित अद्वैत अवस्थान का सुषुप्ति से यह भेद है—सुषुप्ति में वृत्ति का लय अज्ञान में औ अद्वैत-अवस्थानरूप समाधि विषे ब्रह्म में होवे है याते कही रीति से हठ उपाय ते मन का निग्रह होवे है ॥ १७३ ॥

सुख बोध औ हठ उपाय में वृत्तिशून्यरूपेण चित्त अवस्थान रूप समाधि साधनता का संशय कर प्रश्न करे "याहि" इति, योग ते नाम चित्त वृत्ति निरोध रूप योग ते, यह समाधि हुई वा तत्त्वज्ञान ने रची। दोनों मार्गों ते सम्भव जान कर उत्तर कहे "यामें" इति, यामें नियम न कोई हइये नाम या समाधि का एक साधन से होने का नियम कोई नहीं याते ताहि के नाम समाधि के दोनों साधन हैं ॥ १७४ ॥

जाते दो अधिकारी पाये। ताही ते मार्ग द्वय गाये।
योग विवेक दोउ शिव कहे। भक्त जनोंके संशय दहे ॥१७५॥
अर्जुन के संशय को हर्ता। माधव प्रकट कहे सुख कर्ता।
जो स्थान को सांखी पावे। वही स्थान को योगी जावे ॥१७६॥
तत्त्वज्ञान वासना नाश। मनो नाश जहि भयो प्रकाश।
सो नर जीवनन्मुक्त कहीजे। जाके दर्शन ते भय छीजे ॥१७७॥

युग्म को साधनता में बीज कहे "जाते" इति ॥ १७५ ॥

एक सम्मति कह कर दूसरी कहे "अर्जुन" इति, अर्थ ते "यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते" यह गीता वाक्य पढ़े "जो" इति, जो स्थान को सांखी पावे कहिये तत्त्व वेत्ता जिस स्थान को पावे है, योगी कहिये हठ उपाय से चित्त वृत्ति के निरोध वाला पुरुष भी वही स्थान को जावे है इस रीति से तत्त्वज्ञान औ हठ योग दोनों को स्थान प्रापकता श्रवण ते दोनों साधन हैं आगे तिन साधनों से उपजी "समाधि" साक्षात्कार हीनों को साक्षात्कार की हेतु है औ कृत साक्षात्कारों को जीवन्मुक्ति का हेतु है यह जान लेना ॥ १७६ ॥

याते अध्यायारम्भ (निवासारम्भ) से लेकर कही रीति से तत्त्वज्ञान, वासनानाश पुनः सुख बोधन वा हठ उपाय से जहि नाम जिसको मनो नाश का प्रकाश हुआ है वह तीनों वाला पुरुष जीवन्मुक्त कहिये है, जिसके दर्शन ते जन्म मृत्यु का भय दूर होवे है इस रीति से तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय, इन तीनों का अभ्यास जीवन काल में कर्तृत्वादिबन्धनिवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति का हेतु है, वह भी अन्वय व्यक्तिरेक कर इन तीनों को परस्पर हेतुता लाभ ते समकाल में अपेक्षित है, तथाहि—दृष्टमान सर्व मिथ्या है, आत्मा पारमार्थिक है याते सर्व आत्म रूप ही है ताते भिन्न किञ्चिद् नहीं, ऐसा ज्ञान हुआ आत्मा से भिन्न सत् रूप विषय के अभाव ते रागद्वेषादि रूप वासना निवृत्त होवे है, तत्त्वज्ञान बिना विषयों की सत्यता न दूर होने से रागद्वेष रूप वासना निवृत्त नहीं होवे, याते अन्वय व्यतिरेक ते तत्त्वज्ञान वासना क्षय का कारण है, ऐसे वासनाक्षय भी अन्वयव्यतिरेक ते तत्त्वज्ञान का कारण है तथाहि—विवेक दोष दर्शन ते शुभ वासना की उत्पत्ति से रागद्वेषादि रूप वासना नाश हुए निर्मल मन विषे गुरु शास्त्र की

कृपा से तत्त्वज्ञान उपजे है जो यह सर्व आत्मा है तासे भिन्न कुछ नहीं ऐसा। औ वासना क्षय बिना मन को राग द्वेषादि दोषों से कलुषित होने ते शमदमादिरूप साधन सम्पत्ति के अभाव ते श्रवणादिकों का असम्भव हुए विषयोन्मुख पुरुष को तत्त्वज्ञान नहीं उत्पन्न होवे है ऐसे अन्वयव्यतिरेक ते वासनाक्षय तत्त्वज्ञान का कारण है, इस प्रकार तत्त्वज्ञान वासनाक्षय को परस्पर कारणता है एवं अन्वय व्यतिरेक से तत्त्व ज्ञान मनोनाश को भी परस्पर कारणता है तथाहि—तत्त्वज्ञान के हुए मिथ्यात्व निश्चय से प्रपञ्च को बाधित होने ते मन तिसमें प्रवृत्त नहीं होवे औ सद्रूपता कर निश्चित आत्मा को अविषय होने ते, तिसमें भी मन प्रवृत्त नहीं होवे, ताते इन्धन हीन अग्निवत् आप ही नाश होवे है ऐसे तत्त्वज्ञान ते बिना प्रपञ्च में सत्यता बुद्धि दूर न होने से अनेक वृत्तियों से वृद्ध हुआ चित्त शाखा से वृद्ध वृक्षवत् स्थूल होवे है ताते मनोनाश कैसे होवे ? याते अन्वयव्यतिरेक ते तत्त्वज्ञान मनोनाश का कारण है इस प्रकार मनो नाश हुए सम्पूर्ण द्वैत वृत्तियों के उपराम ते गुरु शास्त्र की कृपा से उपाधि शून्यता कर ब्रह्म का साक्षात्कार होवे है मनो नाश बिना नहीं होवे याते अन्वयव्यतिरेक ते मनो नाश भी तत्त्वज्ञान का हेतु है, एवं मनोनाश वासनाक्षय भी परस्पर अन्वय व्यतिरेक ते हेतु है। तथाहि—वासनाक्षय बिना रागद्वेषादि से वृद्ध हुआ चित्त विषयों के सन्मुख विषयाकार परिणाम को प्राप्त होवे है ताते मनो नाश कैसे होवे। वासना नाश भये तो बीज के नाश ते वृत्तियों के न उदय होने से मनोनाश होवे है ऐसे मनोनाश हुए सम्पूर्ण वृत्तियों के अनुदय ते सम्पूर्ण वासना दूर होवे है मनोनाश बिना प्रारब्धकर्म के वश विषय भोगों में प्रवृत्त भये घृत से अग्निवत् रागद्वेषादि वासना अधिक उदय होवे है याते अन्वयव्यतिरेक ते वासनाक्षय मनोनाश में औ मनो नाश वासनाक्षय में हेतु होने ते इनको परस्पर कारणता है। ताते तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश इन तीनों को परस्पर हेतु होने ते समकाल में इनका अभ्यास कर्तव्य है तिस अभ्यास ते जीवन्मुक्ति की सिद्धि होवे है तदुक्तम् :—

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते।
समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फल दायिनः॥

इस रीति से सिद्ध भई जीवन्मुक्ति वाले पुरुष वासिष्ठोक्त शुभेच्छादिक भूमियों में पञ्चमी भूमि से आरम्भ कर तीन भूमियों को प्राप्त

ता ता भूमी के अनुसार । जीवन्मुक्त भेद निर्धार ।

पूर्वपक्षी—

भूमि कौंन जिनके अनुसार । भेद कियो तुम मोहि उचार ॥१७८॥

सिद्धान्ती—

सप्त भूमिरूप है जोई भाखौं प्रकट सुनो अब सोई ।
प्रथम 'शुभेच्छा' भूमि पछानो । 'विचारणा' नाम दूसरी जानो ॥१७९
"तनुमानसा" तीसरी हइये । चौथी "सत्त्वापत्ति शुभ पइये ।
'असंसक्ति' नाम पंचमी जान । 'पदार्थाभाविनी' छठी पछान ।१८०
'तुर्यग' नाम सप्तमी हइये । या विधि सप्त भूमि यह पइये ।
मूर्ख ही काहे रहि जावौं । शास्त्र औ सत्सङ्गति पावौं ॥१८१॥
विराग सहित यह इच्छा जोई । नाम "शुभेच्छा" भाखी सोई ।
शास्त्र औ संतनको संगा । विराग होय उर माहिं अभंगा ॥१८२
सत्य विचार प्रवृत्ति सु जोई । तीनों सहित "विचारणा"सोई ।
इंद्रिय अर्थ रक्तता जोई । विचार शुभेच्छा कर जब खोई ॥१८३॥
याहि अवस्था मन में जोई । "तनुमानसा" भाखी सोई ।
तीन भूमि अभ्यास अधीन । विषयन माहिं प्रीति ते हीन ॥१८४॥

भये क्रम ते ब्रह्मविद्, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान्, ब्रह्मविद्वरिष्ठ इन नामों से भिन्न-भिन्न होवे है ॥ १७७ ॥

सोई कहे "ताता" इति, भुमियों के अनुसार जीवन्मुक्तों के भेद होवे है यह श्रवण कर भूमि ज्ञानार्थ प्रश्न करे "भूमि" इति ॥ १७८ ॥

रूप कथनार्थ सावधान करे "सप्त" इति, सातों के नाम कहे "प्रथम" इति ॥ १७९-१८० ॥

प्रथम का स्वरूप कहे "मूर्ख" इति ॥ १८१ ॥
दूसरी का स्वरूप कहे "शास्त्र" इति ॥ १८२ ॥
तीसरी का स्वरूप कहे "इन्द्रिय" इति ॥ १८३ ॥
चतुर्थी के स्वरूप का आरम्भ करे "तीन" इति ॥ १८४ ॥

सत्त्वातम में सुस्थिति पावे । 'सत्त्वापत्ति' भव सोय कहावे ।
भूमि चार को बहु अभ्यास । रूढ़ होय होय उर सत्त्व प्रकाश ॥१८५॥
फल के माहिं सक्त नहिं होई । 'असंसक्ति' नाम भूमिका सोई ।
पंचम भूमि निवासी जोई । स्व पर उत्थित होवै सोई ॥१८६॥

दोहा

पंच भूमि अभ्यास ते, आतमराम स्वभाय ।
निखिल पदार्थ भावना, हृदय ते उठ जाय ॥१८७॥

चौपाई

पर प्रयुक्त यत्न वह पाई । कदीक होय उत्थान स्वभाई ।
या विधिकी अवस्था जोई । 'पदार्थभाविनी' भाखी सोई ॥१८८॥
षट् भूमी को दृढ़ अभ्यास । कदी न होय सु भेद प्रकाश ।
निज स्वभाव में स्थित जोई । नहिं उत्थान कदाचित् होई ॥१८९॥
'तुयंग' नाम भूमिका सोई । ऋषभदेव भोगी भव जोई ।
तीन भूमिका प्रथम सु जोई । तत्त्वज्ञान को साधन सोई ॥१९०॥

पञ्चमी का स्वरूप कहे "भूमि" इति ॥ १८५ ॥

पञ्चम भूमि वाले जीवन्मुक्त का विशेष कहे "पञ्चम" इति, स्व पर उत्थित होवै सोई कहिये जो पञ्चमी भूमि निवासी जीवन्मुक्त है वह आपसे पुनः और से समाधि ते उठे है ॥ १८६ ॥

छठी का स्वरूप कहे "पञ्च" इति, आतम राम स्वभाय कहिये पांच भूमियों के अभ्यास ते आत्मा में रमण करने के स्वभाव वाला होवे है, याते सम्पूर्ण पदार्थों की भावना नाम चिन्तन अर्थात् संस्कार हृदय से दूर होवे है ॥ १८७ ॥

ताकी समाधि से उठने की रीति कहे "पर" इति ॥ १८८ ॥

सप्तमी का स्वरूप कहे "षट्" इति, पञ्चमी षष्ठी से विशेष कहे "नहिं" इति, नहिं उत्थान कदाचित् होई नाम स्व से वा पर से कभी भी उत्थान नहीं होवे है ॥ १८९ ॥

इस रीति से तुर्यंग नाम वाली जो सप्तमी भूमिका है वह ऋषभदेवजो ने संसार में भोगी है ताता भूमियों के अनुसार जीवन्मुक्तों के भेद

चतुर्थ भूमी ज्ञानी होवै । भावी जन्म दुःख सब खोवै ।
पंचम, छठी, सप्तमी, जोई । जीवन्मुक्त भेद है सोई ॥१९१॥
या विधिको सुनिकै उपदेश । जन अधिकारी हरे कलेश ।
जीवन्मुक्त अवस्था जोई । परमार्थ भेद रह्यो नहिं कोई ॥१९२॥
द्वेष न काहूँ संग कमावे । मैत्री करुणा मों मन लावे ।
पुण्यात्म में अनुमोदन धरे । पामर माहिं उपेक्षा करे ॥१९३॥

होवे है यह कही वार्ता बतावन हेतु सातों को व्यवस्था करे "तीन" इति, तीन भूमिका प्रथम सु जोई कहिये जो पहली तोन भूमिका है वह साधन चतुष्टय सम्पत्ति प्रथमा, सन्यास पूर्वक श्रवण सिद्धि द्वितीया, मनन निदिध्यासन की सम्पत्ति तृतोया इस रीति से तत्त्वज्ञान का साधन हैं ॥ १९० ॥

चतुर्थ भूमी ज्ञानी होवै कहिये साक्षात्कार रूप चौथी भूमिका विषे ज्ञानवान् होवे है औ होकर ज्ञान से सञ्चित क्रियमाण कर्मों का नाश करने से आगामी जन्मों के सम्पूर्ण दुःखों को दूर करे है, ऐसे चार की व्यवस्था कह कर पञ्चमो आदि तीन की कहे "पञ्चम" इति, पञ्चम छठी सप्तमी जोई कहिये पञ्चमी षष्ठी सप्तमी यह जो तीन भूमिका है सो जीवन्मुक्तों के भेद हैं, काहे ते ? निर्विकल्पक समाधि ते स्वतः उत्थान परतः उत्थान, स्वतः परतोऽपि न उत्थान से तीनों का भेद है, इस प्रकार भूमियों के अनुसार जीवन्मुक्तों के भेद हैं। याते जिस समाधि के प्रभाव से जीवन्मुक्त हुए ताका अभ्यास मोक्ष कामी ने सदा करना ॥ १९१ ॥

एवं भूत उपदेश श्रवण का फल कहे "या विधि" इति, कही रीति से तत्त्वज्ञान वाले को जीवन्मुक्ति बता कर अब ताका वर्तना बतावने हेतु कहे "जीवन्" इति, जीवन्मुक्त अवस्था जो है तिसमें वास्तविक भेद कोई नहीं रह्या औ ताका वर्तन यह है ॥ १९२ ॥

सोई कहे "द्वेष" इति, द्वेष नाम वैर किसी से नहीं करे किन्तु मैत्री करुणा विषे चित्त लगावे है अर्थात् सम में मैत्री करे है, न्यूनों पर कृपा करे है, एवं पुण्यात्म कहिये पुण्यवान् पुरुषों में अनुमोदन नाम मुदता धारण करे, औ पामरों में उपेक्षा नाम उदासीनता करे है॥ १९३ ॥

निर्मल निरहंकार उदारे । द्वंद्वन माहिं न शोच विचारे ।
जाते लोकन को भय नाहीं । लोगन तै नहिं ता उर माहीं ॥१९४॥

(नराज छन्द)

न संग को करे कहूँ अखण्ड धाम ध्याय है ।
अगाध दुःख मेटिकै अनंद एक पाय है ॥
सु लोकताप नाशनी अभेद वाक्य गावही ।
सु दीन दुःख हेरकै दयालुता जनावही ॥१९५॥
सु या अचार धारकै हरै अपार भारको ।
सु बंध नाश जो चहै लहै अनंद सारको ॥
इसो अचार ताहिको अनंत पीठमें फिरे ।
पुनीत पाद धूर कै सु अङ्ग पावनी करे ॥१९६॥

पुनः निर्मल नाम रागादि मल रहित है, तथा अहंकार शून्य है, रागद्वेषादिद्वन्द्व में सोच विचार कोई नहीं करे अर्थात् यथा प्राप्त में सहन शील है पुनः काहू को भय देवे नहीं, न काहू से माने है सोई कहे "जाते" इति, जाते नाम जिस जीवन्मुक्त ते ॥ १९४ ॥

संग नाम आसक्ति काहू नहीं करता किन्तु अखण्डधाम नाम अखण्ड स्वप्रकाश स्वरूप का ध्यान करे है ॥ १९५ ॥

जिज्ञासुओं के दुखों का हारक वाका आचरण है सोई कहे "सु या" इति, सु या अचार धार कै कहिये जिस जीवन्मुक्त की श्रेष्ठ क्रिया को धारण करके अधिकारी जन संसार के अपरिमित भार को दूर करे है ऐसा तिनका आचरण है याते जो पुरुष बन्धनों का नाश किया चाहे औ सार नाम श्रेष्ठ आनन्द को लिया चाहे सो वाका आचरण धारण करे, वह धारणे योग्य आचरण भी तिसका, इसो कहिये ऐसा हैं जो अनन्त पीठ में फिरे नाम पृथिवी की पृष्ठ पर विचरते हुए औ पवित्र चरणों की धुलि करके, अंग पावनी करे नाम पृथिवी के अंगों को पवित्र करते हुए कहूँ धूर पूरित है कहूँ स्वच्छ है ॥ १९६ ॥

अब जीवन्मुक्त पुरुष की स्वाभाविक क्रिया का प्रतिपादन करते हैं।

(भुजंगप्रयात छन्द)

कहूँ धूर पूरो कहूँ स्वच्छ अङ्गा।
कहूँ भूमि सूतो कहूँ पाट अङ्गा॥
कहूँ भीख माँगे कहूँ बैठ ध्यावे।
घनानंद मूकं कहूँ ऊँच गावे॥१९७॥

फिरे देश माहीं करे पूत आशा।
पिखे ताहि कोई मिटे पापराशा॥
सुने वाक्य वाणी मिटे अंधकारं।
तुटे गण्ठपीडी हरे भीम भारं॥१९८॥

भले भोग दीने नहीं हर्ष मानै।
सु शिक्षा विहीनो नहीं क्रोध ठानै॥
विना राग द्वेषं फिरे भूमि माहीं।
नहीं हान ताको तथा लाभ नाहीं।१९९॥

सवैया

सब लोगन के तम हारण को,
भव टारण को बुध वैन बखाने।
जग मोह मिटाय लहे परको,
बुध वैनन को उर भीतर माने॥
दृग लोगन को तम दूर करे,
सविताकर से बुध वैन अछाने॥

सोई कहे "कहूँ" इति॥ १९७॥

करे पूत आशा कहिये करे है पवित्र दिशा, आशा नाम दिशा का है। "वाक्य" कह कर "वाणी" कथन प्रवाह से है याते पुनरुक्ति नहीं॥ १९८-१९९॥

बुध बैनन को भव पावत सो,
भव पूरव जा जन पुण्य कमाने ॥२००॥

चौपाई

प्रत्यक् ज्ञान अनंत सु जोई । सदा असंग छुहे नहिं सोई ।
ताहि विषे कैसे संसार । किमि स्थिति कैसे संहार ॥२०१॥
सर्व प्रकार सो मिथ्या होई । सत्य विषे हेतु नहिं कोई ।
निरंकार निरवयव अनूप । इच्छा हीन अचल तिहि रूप ॥२०२॥

अन्धकार नाशक वाणी की प्रशंसा करे "सब" इति, दृग लोगन को तम दूर करे कहिये लोगो के बुद्धि रूप नेत्रों का अज्ञान रूप अन्धकार दूर करे है, याते सविता कर से कहिये चर्म चक्षुओं को प्रसिद्ध अन्धकार दूर करने में सूर्य की किरणों सदृश विद्वान् के बैन अछाने नाम प्रकट हैं याही ते उक्त महत्त्व वाले बचनों को संसार में पुण्यवान् पावे हैं सोई कहे "बुध" इति ॥ २०० ॥

कहे माहात्म्य वाले वचनों में उत्पत्यादि चिन्तन से जगत् की तुच्छता बोधक बैन दिखावे "प्रत्यक्" इति, प्रत्यक् ज्ञान अनन्त सु जोई कहिये जो देशकालादि परिच्छेदशून्य चेतन रूप ब्रह्माभिन्न प्रत्यक् है वह सदा असंग छुहे नहिं सोई कहिये सर्वदा काल काहू वस्तु के सम्बन्ध को नहीं पावे याते और वस्तु के संग से होने वाले विचार से भी रहित है, ताते ताहि नाम तिस विषे संसार की उत्पत्ति कैसे होवे औ किमि स्थिति कहिये अमूर्त में स्थिति कैसे होवे तथा कैसे संहार कहिये प्राग-भाव के नाश घटवत् भाव शेषरूप वा घट के नाश अभाववत् अभाव शेष रूप नाश के असंग में अयोग्य ते संसार उत्पत्यादि किस रीति से होवे अर्थात् काहू रीति से नहीं होवे ॥ २०१ ॥

याते सो नाम वह संसार सर्व प्रकार मिथ्या नाम तुच्छ हैं ताकी सत्यता में कोई कारण नहीं इस रीति से सृष्टि, स्थिति, लय के असम्भव से आत्मा को उपादनता के असम्भव ते जगत् को तुच्छता दिखायी, अब कर्तृत्वादिकों का असम्भव उपपादन से भी तुच्छता उपपादन करता हुआ प्रथम रचना में आक्षेप करे "निरंकार" इति ॥ २०२ ॥

इक अद्वैत सामग्री नाहीं । कैसे जगत होय ता माहीं ।
दिनकर कोटि बरोबर हइये । तम अविद्या ताहि न पइये ॥२०३॥

सवैया

जाहिं लखे तम भार मिटे पुनि,
कानन शीत हरे क्षणमाहीं ।
ता रवि में तम कौन कहे इक,
पेचक झूठ कहे जग माहीं ॥
चेतन भानु मिटे तम धाम,
रहे बहु काल सु जो चिद् माहीं ।
कोविद कौन कहे चिद् में इक,
अज्ञ मलीक कहे भव माहीं ॥२०४॥
यह मात पिता सु न थे जग में,
कि न थे जग भीतर जे गुरु भारे ।
यह तीरथ पुण्य कि व्रत्त न थे,
कि न थे भवमंडल वेद सु चारे ॥

इक अद्वैत सामग्री नाही कहिये सजातीय आदि भेद शून्य अद्वैत है याते कर्तृत्वादि व्यवहार का साधक तामें इच्छादि सामग्री कोई नहीं बने याते तुच्छ है, "कैमुतिक न्यायेन" जगत् का असम्भव कहने हेतु इच्छादि सामग्री का असम्भव कहे "दिनकर" इति ॥ २०३ ॥

जाहि लखे कहिये जिस सूर्य के देखे सम्पूर्ण तम दूर होवे है, पुनः कानन शीत के बन को अर्थात् ताके समुदाय को क्षण में दूर करे है, ता रवि नाम तिस सूर्य में अन्धेरा कोई नहीं कह सके है, एक उल्लू ही जगत् में झूठ कहे है ऐसे दार्ष्टान्तिक में चेतन भानु कहिये चेतन रूप सूर्य के प्रतीत हुये भी अज्ञान औ तिस जन्य अध्यात्म आदि ताप रूप घाम सभी मिट जावे है औ अज्ञान दृष्टि से बहुत काल चेतन में रहे, चेतन में भी कोविद नाम पण्डित कौन कहता है रहे, अर्थात् कोइ नहीं कहता याते एक अज्ञानी ही झूठ कहे है इस रीति से वामे संसार का हेतु सामग्री नहीं बने ॥ २०४ ॥

शुभ संतन के जग झुण्ड न थे,
किन थे रघुवीर के जाप उदारे।
अबही मम बंधन टूट परे,
अबलौं मम बंधन क्यों जग धारे ॥२०५॥
गुरु वेद सु तीरथ नेम महाँ,
व्रत संयम जे पित मात हमारे।
हरि भूमि सु नीर समीर बली,
पुनि पावक और अकाश उदारे॥
तुमरे उपकार सु ज्ञान लहे,
दृढ बंधन थे सब दूर निवारे॥
सब को अभिवन्दन है हमरी,
हमहूँ परमातम धाम सिधारे ॥२०६॥

चौपाई

जा अज्ञान रच्यो संसार। कहाँ गयो कछु अहे न सार।
राग द्वेष व्याघ्र भव जोई। कहाँ गये अब पिखौं न कोई ॥२०७॥
आतम एक भयो मुहि भान। ता बिन लखौं न रंचक आन।
हरि नर देव अदेव न भेद। कहाँ गयो अब पिखौं अभेद ॥२०८॥
पंचकोश में पाँच किवाड़। आतम के को गयो उपाड़।
अहो! निरजंन दर्शन पाये। बहुत काल के दुःख मिटाये ॥२०९॥

इस रीति से जगत् को तुच्छता बोधक वैन दिखाकर अब गुरु की आश्चर्यता बोधक वाक्य कहे "यह" इति ॥ २०५ ॥

आश्चर्य चिन्तन करता हुआ अपनी परमात्म धाम ओर अभिमुखता देखकर उपकारियों को नमस्कार करे "गुरु" इति ॥ २०६ ॥

मध्य में उपकारियों को वन्दन कर पुनः आश्चर्य चिन्तन करे "जा" इति ॥ २०७ ॥

अदेव—राक्षस ॥ २०८ ॥

उपाड़—खोल ॥ २०९ ॥

सो विन नाहिं निरंजन आन । आतम रूप भयो मुहि भान ।
अहो आचार्य की गति न्यारी । जाके दर्श मिटे भवभारी ॥२१०॥
उत्तम गुरू भागते पायो । जिन मेरो अज्ञान मिटायो ।
पूर्व पुण्य शुद्ध जहि होई । उत्तम गुरू लहे भव सोई ॥२११॥
सद्गुरो पाद भली विधि सेवे । ताते उत्तम ज्ञानहि लेवे ।
लेकर ज्ञान हरे भव भारा । भव सागर के जावे पारा ॥२१२॥
सब ही लोग सुखी जग होवे । दुःख न कबहूँ कोई जोवे ।
या विधि सर्व दुःख को हरणी । वाणी प्रकट कहे सुख करणी ॥२१३॥

अब जीवन्मुक्ति के पंचप्रकार के प्रयोजन का प्रतिपादन करते हैं ।

(नाराजछंद)

सु ज्ञान भानु सों लसे न बाद को करे कहूँ ।
तपो अपार धारकै सुइच्छ बैठ है कहूँ ॥
सु दुःख भार टार कै सुखं अपार पावही ।
निवार सर्व वासना आनंदरूप ध्यावही ॥२१४॥

"यह मात पिता" इत्यादि चिन्तन से फलित कहे "अहो" इति ॥ २१० ॥

उत्तम गुरु—श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु, उत्तम गुरु लहे भव सोई—श्रेष्ठ गुरु को पूर्व के शुद्ध पुण्यों वाले ही पावे हैं, नहीं तो कान में फूँक मारने वाले ठग मिले हैं ॥ २११ ॥

उत्तम ज्ञानहि—आत्मज्ञान, भवसागर के जावे पारे कहिये संसार समुद्र के पार होवे है अर्थात् स्वरूप की प्राप्ति से कृतकृत्य होवे है औ होकर सबको आशीर्वाद देवे है ॥ २१२ ॥

सोई कहे "सब ही" इति, या विधि नाम सब ही सुखी होवे दुख कोई न देखे, ऐसी आशीर्वाद स्वरूप ॥ २१३ ॥

कही रीति से "विमुक्तश्च विमुच्यते" इत्यादि श्रुति सिद्ध जीवन्मुक्त में "द्वेष न काहू संग कमावे" ऐसे अर्थ ते "अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च" इत्यादि गीता स्मृति प्रमाण कही । औ "त्योंही मन के

दुख मिटाये" इत्यादि ग्रन्थ से अन्तःकरण के स्वभाव भूत कर्तृत्वादि बन्ध की अत्यन्त निवृत्ति न भये भी तिरोभाव रूप निवृत्ति बने है यह जीवन्मुक्त का स्वरूप कह्या औ अध्याय (निवास) के आरम्भ से लेकर (कही) रीति से तत्त्वज्ञान मनोनाश, वासना-क्षय साधन कहे, एवं ज्ञानानन्तर कही चिर स्थिरता की इच्छा वाला विद्वत्सन्यासी "सुत वित्त लोक" इत्यादि पाठ से अधिकारी कह्या। अब प्रयोजन श्रवण की इच्छा भये ज्ञानरक्षा, विसम्वादाभाव, तप, दुखनिवृत्ति, सुखाविर्भाव रूप पञ्च प्रयोजन कहे "सु ज्ञान" इति सुज्ञान भानु सों लसे कहिये श्रेष्ठ ज्ञान जिसको तम स्तोम नाशक सूर्यवत् संशय, विपर्यय की अनुत्पत्ति से प्रकाश रहा है सो यह संशय विपर्यय की अनुत्पत्ति रूप ज्ञान रक्षा कही।

ननु प्रमाण से उत्पन्न भये यथार्थ ज्ञान में संशय, विपर्यय का प्रसंग ही न होने से तिनकी अनुत्पत्ति रूप ज्ञान रक्षा जीवन्मुक्ति का प्रयोजन नहीं बने? समाधान—यद्यपि प्रमाण कुशल मुख्य अधिकारियों को संशय विपर्यय का प्रसंग नहीं, तथापि निमित्त के प्रभाव से औरों को बने हैं, तथाहि—जेकर अब ब्रह्मसाक्षात्कार होवे तब तासे आवरण सहित अज्ञान की निवृत्ति भये ईश्वरवत् ज्ञानी को सर्वज्ञता हुई चाहिये सनक शुकादिकों को तैसे देखने से तप औ "योग के फल सर्वज्ञता को ज्ञान फलत्व के अभाव ते उक्त दोष नहीं" यह कहो, तब योगादिहीन को ज्ञान (ही)कैसे होवे है? प्रमाणबल से होवे है, ऐसे कहो तब योग विना प्रमाण भी साक्षात्कार का जनक नहीं, ताते वाक्य से उत्पन्न हुआ ज्ञान आपात रूप ही है ऐसे काहू मूर्ख ने आपादान किया, जीवन्मुक्ति के अभ्यास विना प्रारब्ध भोग के बल कर विक्षिप्त चित्त ज्ञानी को संशयादि होवेंगे याते जीवन्मुक्ति के अभ्यास बिना अपरोक्ष ज्ञानवानों को भी शुकदेव निदाघ आदिकों वत् सम्भावित संशय विपर्यय की अनुत्पत्तिरूप ज्ञान रक्षा बने है, इस रीति से प्रथम प्रयोजन कह कर विसम्वादाभावरूप द्वितीय कहे "न" इति न वाद को करे कहूँ कहिये कर्मी पुरुषों से अपनी निन्दा आदि श्रवण करता हुआ झगड़ा किसी से नहीं करे, यह जीवन्मुक्ति के अभ्यास का द्वितीय प्रयोजन है। ऐसे द्वितीय प्रयोजन कह कर तीसरा कहे "तपो" इति, तपो अपार धार कै कहिये "मन इन्द्रियों के एकाग्रता रूप तप सर्व धर्मों में श्रेष्ठ है" ऐसे स्मृति वाक्य से चित्त की एकाग्रता रूप अपार तप को लोक-संग्रह हेतु धारण करके अपनी इच्छा पूर्वक कहूँ निर्जन-देश में स्थिर होवे है, जीवन्मुक्त के तप का लोक संग्रह रूप

चौपाई

या विधि वर्त्ते भव में योगी । ब्रह्मानंद सदारस भोगी ।
बहुधा ता गति ऐसी जानो । पर मन माहिं अलक्ष पछानो ॥२१५॥

सवैया

मीनन की गति नीर विषे,
नभ माहिं विहंगन की गति जैसी ।
विद्युत की घन माहिं लखे,
तनु माहिं लखे मनकी गति कैसी ॥
लोक विषे सब योगिन की,
दुरलक्ष अहै भव भीतर तैसी ।

फल "तप को निर्वासिन होय करे" इत्यादि पाठ से आगे स्फुट होवेगा एवं तृतीय प्रयोजन निरूपण कर चतुर्थ प्रयोजन निरूपण करे "सु दुख" इति, सुदुख भार टार के कहिये ज्ञानान्तर बाधितानुवृत्ति कर "अहं दुखी" इत्यादि अनुभव से प्रतीत भये ऐहिक दुखो को योगाभ्यास ते निखिल चित्त वृत्तियों के निरोध से दूर कर के तथा ज्ञान से अज्ञान निवृत्ति भये सञ्चित क्रियमाण के अश्लेष विनाश ते "मैं भले कर्म न करता हुआ, पाप कर्म करता हुआ" ऐसे पश्चात्ताप रूप आमुष्मिक दुखों के भार को दूर करके पञ्चम प्रयोजन को पावे है सोई कहे "सुखं" इति, सुखं अपार पावही कहिये ज्ञान योग के प्रभाव से अज्ञान औ तत्कृत आवरण विक्षेप को दूर करके अपार सुखाविर्भाव रूप फल को पावे है सोई स्फुट करे "निवार" इति, निवार सर्व वासना कहिये योग से सम्पूर्ण वासना निवृत्त करके जो वाणी करके कोई न कह सके ऐसे अपने आनन्द रूप को अन्तःकरण में ध्यावे है ॥ २१४ ॥

इस रीति से जीवन मुक्ति के अधिकार आदि निरूपण में कहे पर सम्वेद्य आचरण की स्व सम्वेद्य को आगभ्यता कथन हेतु समाप्ति करे "बहुधा" इति, बहुधा नाम बहुत कर तो तिसकी बाह्य व्यवहार में कही रीति है, पर मन माहिं कहिये परन्तु मन विषे गूंगे के गुड़वत् वाका स्व सम्वेद्य अगम्य है ॥ २१५ ॥

है दुरलक्ष अलक्ष सदा गहि,
कौन पुकार कहे गति ऐसी ॥२१६॥
धन्य भई तिनकी जननी कुल,
पावन ताहि करी जग सारी।
भूमि सु पुण्यवती कर सो सब,
ही सुरकी अरचा विसतारी ॥
ब्रह्म सनातन हेर जिने उर,
ते सब वासन दूर निवारी।
वेदन की गति जेतक थी सब,
तेतक ताहि उदार सवाँरी ॥२१७॥
तप को निरवासन होय करे,
न धरे उरमें फल रंचक सोई।
अट देशन पावन देश करे,
सु फिरे तहिं ठौर जहाँ रुचि होई ॥
निरपेक्ष सदा उर शांत रहे,
करुणा करके जिहिं ओर सु जोई।
वह पावन या भव माहिं भयो,
उर माहिं रहे तहिं पाप न कोई ॥२१८॥

मन की अलक्ष्यता दृष्टान्त से कहे "मीनन" इति, दुरलक्ष नाम लखने को कठिन होने ते ही अलक्ष्य है याते ताको हस्तादिकों में पकड़ के कौन कह सके "ऐसी" है अर्थात् कोई नहीं कहे ॥ २१६ ॥

इस रीति की जन्म सफल करी जीवन्मुक्ति हेतु सर्व ने यत्न करना यह रुचि वढ़ावे "धन्य इति ॥ २१७ ॥

प्रयोजनों में कहे तप का उपयोग कहने हेतु कहे "तप" इति, तप को नाम चित्त की एकाग्रता रूप परम तप को ॥ २१८ ॥

ज्ञानवान् लोकसंग्रह हित जो कर्म करता है ताके फल की
व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं।

चौपाई

लोक सु संग्रह हेतु उदार। धारे तप जग बहुत प्रकार।
ते हैं लोक सु तीन प्रकार। शिष्य, भक्त, ताटस्थ, विचार ॥२१९॥
तामों शिष्य अहे जग जोई। अंतर्मुख गुरु हेर सु सोई।
प्रामाणिक ताको उर मानै। ता बैनन में निश्चय ठानै ॥२२०॥
ताको अर्थ विचारे सोई। शीघ्र बंध मोक्ष वह होई।
बहुर भक्त भव भीतर जोई। तत्त्वनिष्ठ को सेवे सोई ॥२२१॥
अन्न पान औ वासस्थान। वस्त्र वंदन बहु संमान।
या विधि ताको सेवे जोई। ताके पुण्य गहे भव सोई ॥२२२॥
तटस्थ अहै पुनि दोय प्रकार। आस्तिक और सु नास्तिक धार।
योगी की शुभ क्रिया निहार। आस्तिक करे सु शुभ आचार ॥२२३॥
नास्तिक है भव भीतर जोई। योगी दृष्टि विषे जब होई।
तबही ताको पाप विनाशे। शुभ इच्छा उर माहिं प्रकाशे ॥२२४॥

तप का प्रयोजन कहे "लोक" इति, संग्रह—रक्षा, जिनके संग्रह हेतु तप है वह संग्राह्य लोक तीन प्रकार के हैं सोई कहे "ते" इति। तीनों के नाम कहे "शिष्य" इति ॥ २१९ ॥

प्रथम की रक्षा वतावे "तामों" इति ॥ २२० ॥

ताको अर्थ नाम गुरु के वचनों का अर्थ, दूसर की रक्षा बतावे "बहुर" इति ॥ २२१-२२२ ॥

तीसर की रक्षा दिखावन हेतु ताका विभाग करे "तटस्थ" इति, दोनों में प्रथम पर उपकार कहे "योगी की" इति, शुभआचार कहिये श्रेष्ठ आचरण करे है तदुक्तम्:—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ इति ॥ २२३ ॥

दूसर पर उपकार कहे "नास्तिक" इति, तब ही कहिये योगी की दृष्टि

या विधि लोकन को उपकार । योगी करै सो बहुत प्रकार ।
अरुपुनि केवल द्वेषी जोई । पाप गहे योगी के सोई ॥२२५॥

या विधि कर्म विभागहि होई । क्रियमाण शेष थो जोई ।
पुनि प्रारब्ध कर्म थो जेतो । भोग विनाश्यो सकलो तेतो ॥२२६॥

विदेह मुक्ति को अभिमुख होयो । श्रम भव भार सकल तिन खोयो ।
ताको सुत भव भीतर जोई । दायग्रहीता होवे सोई ॥२२७॥

दोहा

साधन धार उदार उर, द्वन्द्व गने नहिं कोय ।
मोक्षपंथ सूधो चलै, जो अधिकारी होय ॥२२८॥

गोचर होने काल में ही तिसका पाप दूर होवे है औ शुभ इच्छा हृदय में प्रकट होवे है । तथा च स्मृतिः—

यस्यानुभव पर्यन्तं बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते ।
तद् दृष्टि गोचरा सर्वे मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः ॥ २२४ ॥

द्वेष हीनों की रक्षा कह कर द्वेषी की अरक्षा कहे "अरुपुनि" इति, पाप कहे योगी के सोई कहिये वह योगी के पाप कर्मों को ग्रहण करे हैं तथा च श्रुतिः—

"तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः
साधुकृत्यं द्विषन्तः पापकृत्यमिति ।"

जीवन्मुक्त के पुत्र द्रव्य को, सुहृद पुण्य को, द्वेषी पाप को प्राप्त होवे है यह श्रुत्यर्थ है । इस रीति से क्रियमाण कर्म की गति हुये औ सञ्चित का ज्ञानाग्नि से नाश हुआ, प्रारब्ध का भोग से नाश हुआ जीवन्मुक्त संसार भार को दूर कर के भावी शरीर अनारम्भ रूप विदेहमुक्ति को प्राप्त होवे है ॥ २२५ ॥

सोई कहे "या विधि" इति ॥ २२६ ॥

दायग्रहीता—द्रव्य का ग्रहण कर्ता ॥ २२७ ॥

रामादिकों की ओर देख के विपत्तियुत हुआ भी अत्युग्र फल जानकर जीवन्मुक्ति हेतु साधन करे यह कहे "साधन" इति ॥ २२८ ॥

सवैया

जग मों दुख शीतहि द्वन्द्व सहे,
न गहे उर खेद सु देव निहारे।
विन भोग मिटे न करे जग जो,
फलदायक कर्म सु फूल उदारे॥
दिन केतिक देह रहे जग में,
गहि पुण्य अपार सु पाप विसारे।
जल राघव औ नृप पांडव की,
गति को उर बीच सु नीत विचारे॥२२९॥

सोरठा

गहि अपरोक्ष सु ज्ञान, मनोनाश क्षय वासना।
जीवन्मुक्ति सु जान, होवे भापी प्रकट यह॥२३०॥

दोहा

साधन जीवन्मुक्ति जो, हरि-गुरुपाद मनाय।
गुलाबसिंह यामैं कही, यत्न करे सुख पाय॥२३१॥

इति श्रीमन् मानसिंहचरणशिष्यगुलाबसिंहेन गौरीरायात्मजेन विरचिते मोक्षपंथप्रकाशे 'ससाधनजीवन्मुक्ति' निरूपणं नाम चतुर्थो निवासः॥ ४॥

संक्षेप ते कही का विस्तार करे "जगमों" इति॥ २२९॥

ऐसे अधिकारी को इन तीन साधन से जीवन्मुक्ति प्रकट होवेगी यह कहे "गहि" इति॥ २३०॥

समाप्ति करे "साधन" इति॥ २३१॥

इति श्रीमत्गुलाबसिंह चरण शिष्य तारा हरि कुते "मोक्षपन्थ प्रकाश" प्रकाशे स्वयं प्रभा विवरणे चतुर्थो निवासः समाप्तः॥

• ★ •

पञ्चम निवास

पद जाहि भजे कृत कारज होय,
सु सुख भरे सब दूख गये हैं।
सब लोगन में यश पूर रहे,
कुल शुद्ध भई जिहिं माहिं जये हैं॥
तनु औ मन चीत उपाधि बिना,
घन सैंधव से चिद्रूप भये हैं।
हम ता गणनायक के कर जोर,
सु शीश निवाय कि पाय पये हैं॥१॥

अब मूलसिंचन न्याय से रघुनाथजी का वस्तुनिर्देश तथा नयस्कारात्मकरूप मिश्रित मंगल करे हैं।

सवैया

भेद विहीन अछेद सदा निर,
खेद कहें जिहिं को श्रुति चारी।
भाट समान पढ़े जिनके गुण,
पावत जाहि यती शुभकारी॥
ज्ञान भये तनु डारत ही चिद,
रूप भये कछु आहि न वारी।
ता रघुनाथ शिरोमणि के पद,
मंजुल को सद्वंद हमारी॥२॥

दोहा—जा पद पङ्कज रेणु लहि कृत कारज जन होत।
ता भव गुरु पद पङ्कजन बन्दौं सागर पोत॥१॥

गणेश मङ्गल करे "पद" इति, कृत कारज नाम कृतकृत्य, तनु—स्थूल, औ मन—चित्तादि रूप अन्तःकरणप्रधान-सूक्ष्म औ स्थूल सूक्ष्म उपलक्षित कारणोंपाधि से बिना नाम रहित होकर॥ १॥

राम मङ्गल करे "भेद" इति, यती—सन्यासी, वारी—देरी॥ २॥

अब स्वगुरु जी का नमस्कारात्मक मंगल करे हैं।

सोरठा

श्रीगुरुपाद उदार, वंदौं शीश निवाय के।
भव सागर निस्तार, सेवत सेवकगण सदा ॥३॥

अब निरूप्यविषयसंगति द्वारा कहते हैं।

चौपाई

तत्पद वाच्यार्थ थो जोई। प्रथम निवास बखान्यो सोई।
त्वम्पद वाच्यार्थ थो जेतो। द्वितीय निवास बखान्यो तेतो ॥ ४ ॥
लक्ष्य अर्थ अरु ऐक्य ज्ञान। तृतीय निवास सुकियो बखान।
साधन 'जीवन्मुक्ति'सु जोई। चतुर्थ माहिं बखानी सोई ॥ ५ ॥
'विदेहमुक्ति' अद्वैत अनाश। अब होवे नीके जु प्रकाश।
जीवन्मुक्त पुरुष जगसार। प्रारब्धहि फल भोग उदार ॥ ६ ॥
यातन को डारे भव जबही। होय विदेहमुक्त वह तबही।

अब उक्त अर्थ में शंकापूर्वक समाधान का सविस्तार प्रतिपादन करते हैं।

चौपाई

पूर्वपक्षी—
जीवन्युक्त पुरुष थो जोई। वही विदेहमुक्त यह होई ॥ ७ ॥

भाव सागर निस्तार सेवत सेवक गण सदा कहिये संसार समुद्र से तरने हेतु जिनको सेवकों के समूह सदा सेवे हैं ॥ ३ ॥

विदेह मुक्ति निर्णयार्थ पूर्वाध्यायों (निवासों) से कथित का अनुवाद करे "तत्" इति ॥ ४-५ ॥

प्रकाश करे "जीवन्" इति ॥ ६ ॥

"जीवन्मुक्त विदेह मुक्त होवे है" यह श्रवण कर शिष्य आशंका करे "जीवन्" इति, वही विदेह मुक्ति यह होई कहिये या संसार में वही विदेह मुक्त होवे है ? ॥ ७ ॥

तत्त्वज्ञानी केवल जो है । ताकी गति भाखो अब को है ।

सिद्धान्ती—

केवल तत्त्वज्ञानी जोई । विदेहमुक्त ता सम सो होई ॥ ८ ॥

ताको कारण तत्त्वज्ञान । सो हइये यह दुहूँ समान ।

यह तो बात अपूर्व नाहीं । बारंबार कही या माहीं ॥ ९ ॥

पूर्वपक्षी—

तत्त्वज्ञान हीन जग जेतो । पावे कौन गती को ते तो ।

सिद्धान्ती—

ते तो निजकर्मन अनुसार । आवें पुनि पुनि या संसार ॥१०॥

पाप करे भव भीतर जेते । नरक माहिं उपजे इह तेते ।

याग, दान, अरु होम अपार । जे जन भव में करे उदार ॥११॥

होवैं देव स्वर्ग के माहीं । बहुविधि भोग अहे जा माहीं ।

अरु जे पुण्य पाप सम करे । मानव तन को ते जग धरे । १२॥

या विधि ताकी गति है जेती । वेद पुराण कही सब तेती ।

पूर्वपक्षी—

शुभाशुभ कर्म त्याग कर दोई । आतम श्रवण करे इह जोई ॥१३॥

"वही होवे है" ऐसे कहो तब केवल तत्त्वज्ञानी की गति क्या ? यह पूछे "तत्त्व" इति, सिद्धान्ती उत्तर कहे "केवल" इति ॥ ८ ॥

सम होने में हेतु कहे "ताको" इति, सो हइये यह दुहूँ समान कहिये वह तत्त्वज्ञान इस संसार में जीवन्मुक्त औ केवल ज्ञानी दोनों को समान है, याते जीवन्मुक्त सम केवल ज्ञानी विदेह होवे है यह वार्ता अपूर्व नहीं किन्तु या माहीं कहिये इस ग्रन्थ में "विदेहमुक्त नर ज्ञान ते पावे निश्चय धार" इत्यादि रीति से अति स्फुट कही है ॥ ९ ॥

ननु होवे ज्ञानियों की विदेह (मोक्ष), तत्त्व ज्ञानहीन किस गति को पावे है ? यह पूछे "तत्त्व" इति, उत्तर कहे—"तेतो" इति ॥ १० ॥

"निज कर्मन अनुसार" पाठ का विवरण करे "पाप" इति ॥ ११-१२ ॥

ज्ञानी अज्ञानी की गति श्रवण कर दोनों से विलक्षण जान कर

प्राप्त तत्त्वज्ञान नहिं होयो । काल अधीन देह तिन खोयो ।
तत्त्वज्ञान जाते नहिं हइये । मुक्तिभ्रष्ट ताते वह पइये ॥१४॥
तजे पाप नहिं नरक सिधावे । पुण्य विना नहिं सुरपुर जावे ।
तीनों फल ते भयो निराश । है कछु गति ? कै होवे नाश ?॥१५॥
जे वह नाश होय इह जावे । आतम श्रवण अनर्थ उपावे ।
आतम श्रवण भीतिकर होई । जाते मध्य विनाशक सोई ॥१६॥

सिद्धान्ती—

शुभाशुभकर्म त्याग कर दोई । विधिवत् श्रवण करे इह जोई ।
तत्त्वज्ञान विन त्यागे देह । सो नहिं होवे मुक्तिविदेह ॥१७॥

पूर्वपक्षी—

मुक्ति नहीं तौ नरक सिधावे । तनु को डार ठौर कत जावे ? ।

सिद्धान्ती—

नरक गमन की शंका नाहीं । "कृष्ण"निषेधी गीता माहीं ॥१८॥

जिज्ञासु की गति है कि नहीं ? यह पूछे "शुभाशुभ" इति, इह नाम संसार में ॥ १३ ॥

मुक्ति भ्रष्ट ताते वह पइये नाम मुक्ति से पतित (है) वह तत्त्व ज्ञान हीन होने ते ॥ १४ ॥

तीनों फल ते भयो निराश कहिये ज्ञानफल मुक्ति, औ पापफल नरक तथा पुण्य फल स्वर्ग, वह तीनों के अभाव ते आशा रहित हुआ याते अब ताकी कुछ गति है वा नाश ही होवे है ?॥ १५ ॥

नाश होवे है या दूसरे के अंगीकार में कहे "जे" इति, अनर्थोपाय का विवरण करे "आतम" इति, आतम श्रवण भीतिकर होई नाम आत्मा का श्रवण भय का जनक होवेगा, याते मध्य नाम बीच में नाशक है अर्थात् वह रास्ते में दगा देने वाला होने ते भीतिकर है ॥ १६ ॥

सिद्धान्ती उत्तर कहे "शुभाशुभ" इति ॥ १७ ॥

अर्ध उत्तर श्रवण कर आशंका करे "मुक्ति" इति, परिहार करे "नरक" इति, शंका न होने में हेतु कहे "कृष्ण" इति, कृष्ण निषेधी गीता माहीं कहिये जिसते कृष्ण भगवान् ने शुभकारी पुरुष को दुर्गति का निषेध किया है याते तिसको नरक गमन का सन्देह नहीं ॥ १८ ॥

तथा च तद्वाक्यम्

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥" गी०६।४०

अरु नहिं नाश ताहि को होई। जन्मान्तर को पावे सोई।

सो जन्मान्तर बहुत प्रकार। कारण सहित सुनो निर्धार ॥१९॥

जो भोगन अभिलाषा होई। लोक पुण्यकृत पावे सोई।

पूर्वपक्षी—

बिना पुण्य कैसे तहँ जाय। जहाँ जाय नर पुण्य कमाय ॥२०॥

सिद्धान्ती—

आतम श्रवण अहे इह जोई। परमतपस्या पुण्य सु होई।

ताके बलकर जावे तहाँ। सुकृतकृत जन जावे जहाँ ॥२१॥

दोहा

दिन दिन में जो श्रवण है, ता फल आहि उदार।

मरण अवधि लौं जे करे, कौन बतावे पार ॥२२॥

निषेध करते गीता वाक्य का अवतार करे "तथा च" इति, तात! कल्याण कृत् कश्चित् दुर्गतिं नहि गच्छति नाम हे अर्जुन! शुभकारी कोई भी पुरुष नरक को नहीं गमन करे ऐसे नरक गमन का निषेध किया है याते वह नरक नहीं जावे तथा आत्मा को अविनाशी होने ते छिन्नाभ्रवत् ताका नाश भी नहीं होवे किन्तु जन्मान्तर पावे है, सोई कहे "अरु" इति ॥ १९ ॥

कारण सहित निर्णय सुनावे "जो" इति, पुण्यकृत नाम पुण्यकारी जनों के स्वर्गादिलोक, पुण्यकृत् लोको को प्राप्त होवे हैं यह श्रवण कर कर्मत्यागी पुण्यहीन का तहां गमन कैसे? यह आशंका करे "बिना" इति ॥ २० ॥

आत्मश्रवणरूप परमतप के प्रभाव से जावे है यह उत्तर कहे "आतम" इति, परम तपस्या पुण्य सु होई कहिये वह परम पवित्र तप है याते ताके बल कर कहिये तिस परम तप के बल करके तहां जावे है जहां सुकृतकारी लोक जावे है ॥ २१ ॥

"कैमुतिक न्यायेन" अर्थ ते श्रवण को उत्तम फल हेतुता कहे "दिन" इति ॥ २२ ॥

तदुक्तम्

श्लोक—"दिने दिने तु वेदांतश्रवणाद्भक्तिसंयुतः।
गुरुशुश्रूषया लब्ध्वा कृच्छ्रादिसुफलं लभेत् ॥"

चौपाई

तप कर पुण्यलोक में गयो। भोगन को वह संगी भयो।
कामी की गति कही सु सोई। जो निर्वासन ताते होई ॥२३॥
तौ योगिन के कुलमें आवे। जन्म पाय के ज्ञान उपावे।
अरु कछु वासन जे उर होई। धनी पुरुष गृह उपजे सोई ॥२४॥

श्रवण को उत्तम फल हेतुता प्रमाण वाक्य से दृढ़ करे "तदुक्तम्" इति, तदुक्तम् कहिये श्रवण को उत्तम फल हेतुता प्रमाण वाक्य में कही है, "भक्तिसंयुतः गुरुशुश्रूषया लब्ध्वा वेदान्त श्रवणात् दिने दिने तु कृच्छ्रादि सुफलं लभेत्" यह अन्वय है। "तु शब्द का अर्थ निश्चय है, याते ईश्वर भक्ति संयुक्त पुनः गुरु की सेवा कर प्राप्त भये वेदान्त श्रवण ते दिन दिन विषे निश्चय कर, कृच्छ्रादि नाम कृच्छ्रव्रत् के फल को प्राप्त होवे है :—२४ दिन, सायंकाल १२ ग्रास, प्रातःकाल १५ ग्रास भोजन आगे ३ दिन निराहार यह कृच्छ्रव्रत है, ग्रास—कुक्कुटी के अण्डे समान वा जेता मुख में आ सके। तप कर कहिये आत्म श्रवण रूप परम पवित्र तप कर, उपासकों हेतु कहे देव यान मार्ग से पवित्र प्रजापति के लोक में जाय कर, वह नाम सो उपासक पुरुष नाना प्रकार के दिव्य भोगन का संगी होवे है औ तहां से गिर कर जहां तिसका जन्म होवे है सो मण्डूक प्लुति न्याय से "अरु कछु वासन" इत्यादि पाठ से आगे कहेंगे इस रीति से कामी की गति कहिये जो पुरुष वेदान्त श्रवण करता हुआ कर्मत्याग के बीच में मर गया औ (जो) वैराग्यादिक साधनों की दृढ़ता से सकाम भोगों की इच्छा रूप गति से निर्वासन है ॥ २३ ॥

तौ नाम तब वह पुण्यकृत लोकों में न जाता हुआ इस लोक में ही शुकदेवादिकोंवत् योगिन के कहिये ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण के कुल में आवे है तहां जन्म को प्राप्त होकर वैराग्य की दृढ़ता से वेदान्त श्रवण द्वारा ज्ञान को उपावे है, अरु कहिये पुनः जो कुछ हृदय में वासना होवें है अर्थात् सकामी है तब पुण्यकृत् लोकों में जाय कर तहां भोग भोगकर गिर के, जनकादिकों वत् परमधनी क्षत्रियादिकों के गृह में वह उपजे है ॥२४॥

तहाँ आय के गहे विराग। ज्ञान लहे जो है बड़ भाग।
या विधि की व्यवस्था जोई। गीता माहिं कही हरि सोई ॥२५॥

पूर्वपक्षी—

ननु तैसे ज्ञानी इह जोई। जन्मांतर को पावे सोई।

सिद्धान्ती—

आतम श्रवण प्रथम तिन कर्‌यो। यह तो प्रश्न असङ्गत कर्‌यो ॥२६॥

दोहा

आतमश्रवण सुजन्म कर, यह समझी उर माहिं।
उपमा तेरी बुद्धिकी, कहूँ निहारौं नाहिं ॥२७॥

चोपाई

श्रवण मुख्यफल ज्ञान सु जोई। या तनु माहिं लह्यो तिन सोई।
जन्म हेतु विन होवे नाहीं। जन्म हेतु ज्ञानी मों नाहीं ॥२८॥

औ तहां आय के भी पूर्वाभ्यास के बल से वैराग्य को ग्रहण करे है, औ वैराग्य का ग्रहण करके जो बड़े भाग्य वाला पुरुष है वह ज्ञान को लहे है, यह सम्पूर्ण व्यवस्था—"प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।" इस रीति से गीता में कही है सोई कहे "या विधि" इति ॥ २५ ॥

जिज्ञासुवत् उत्तम जन्म हेतु श्रवण के प्रभाव से ज्ञानी को जन्मान्तर हुआ चाहिये यह आशंका करे "ननु" इति, काहू फल हेतु जन्म कहे है वा ऐसे ही ? तथा हेतु बल से जन्मान्तर की आपत्ति देवे है वा बिना ही ? इन विकल्पो के दोषों से खण्डित जान कर उपहासार्थ कहे "यह" इति ॥ २६ ॥

उपहास करे "आतम" इति ॥ २७ ॥

अवतरण में कहे विकल्पों में प्रथम का परिहार करे "श्रवण" इति, श्रवणमुख्य फल जो ज्ञान है वह तिस ज्ञानी ने, या तनु माहिं कहिये वर्तमान शरीर विषे ही पाय लिया याते ताके वास्ते तो जन्मान्तर बने नहीं औ बिना फल कहो वह कथन असंगत है इस रीति से प्रथम में दोष देकर दूसरे विकल्पों में प्रथम की असिद्धि कहे "जन्म" इति, जन्म हेतु

अज्ञान विशिष्ट कर्म हैं जेई। जन्मांतर के हेतु सु तेई।
सहित अज्ञान कर्म हैं जेते। ज्ञान अग्नि भस्म सब तेते ॥२९॥
कारण बिना जन्म जग ऐसे। वन्ध्यासुत भव भीतर जैसे।
अरु पुनि ज्ञानी जन्म सु जोई। श्रुतिहि माहिं निषेध्यो सोई ॥३०॥
तत्त्वज्ञानी पुरुष विशाल। जीवत जाहिं मिटायो काल।
ताके प्राण न तनते जावें। ब्रह्म माहिं लीनता पावें ॥३१॥

तथा च श्रुतिः

"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते" बृह०उ०४।४ ४८

नाराज छन्द

आरब्ध वेग भोग कै अनंत धाम जावही।
अनंत पंथ लङ्घही न पाद को उठावही ॥
उपाधि के अभाव ते अनंत में समायियो।
न अज्ञ के समान सो प्रलोक में सिधायियो ॥३२॥

कहिये कारण बिना होवे नहीं, औ जन्म का हेतु ज्ञानी में बने नहीं ॥ २८ ॥

ज्ञानी में जन्म हेतु का असम्भव कथनार्थ प्रथम जन्म का हेतु बतावे "अज्ञान" इति ॥ २९ ॥

दूसर पक्ष के अंगीकार में कहे "कारण" इति, किञ्च युक्तिवत् श्रुति भी ज्ञानी के जन्म का निषेध करे है सोई कहे "अरु" इति ॥ ३० ॥

अर्थ ते जन्म निषेधक श्रुति दिखावने हेतु भूमिका रचे "तत्त्व" इति ॥ ३१ ॥

पाठ ते जन्म निषेधक श्रुति कहे "तथा च श्रुतिः" इति, न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति कहिये कर्म फ़लो के भोग हेतु वर्तमान शरीराम्भक प्रारब्ध नाश भये अज्ञानी के प्राण परलोक में जाने की इच्छा कर गमन करे है, तैसे भोग से प्रारब्ध औ ज्ञान से सञ्चित कर्मों के नाश ते आगामी कर्मों के स्पर्शाभाव ते, औ ज्ञान उत्पत्तिमात्र ते, अज्ञान के नाश ते, जन्म मे बीजाभाव ते ज्ञानी के प्राण गमन नहीं करे, गमन न करते हुए कहां स्थित रहे हैं ? तहां कहे "अत्र" इति, अत्रैव–समवलीयन्ते कहिये

चौपाई

विदेहमुक्ति को हेतु सु जोई। तत्त्वज्ञान तामें है सोई।
ताते होवे मुक्तिविदेह। बहुरो धरे न ता सम देह ॥३३॥

पूर्वपक्षी—

तत्त्वज्ञान भाख्यो तुम जोई। विदेहमुक्ति को हेतु न सोई।
तत्त्वज्ञानी परम उदार। पावे जन्म सु वारंवार ॥३४॥
व्यास, वसिष्ठ, आदिक हैं जेते। 'सनत्कुमार' आन ऋषि केते।
पुनि पुनि ताके जन्म उदार। माहिं पुराणन कहे विचार। ३५॥
त्यों ही और सु ज्ञानी जेते। पावें जन्म ताहिसम तेते।

सिद्धान्ती—

आन तज्ञ को जन्म न हइये। व्यासादिक को सम्यक् पइये ॥३६॥
यामें हेतु सुनो निर्धार। शंका तेरी देऊँ निवार।
व्यास वशिष्ठादिक हैं जेते। हैं आधिकारिक जग के तेते। ३७॥

इहां ब्रह्म में ही लय होवे हैं। कही श्रुति के अर्थ का ही प्रकाश करे "आरब्ध" इति, आरब्ध-प्रारब्ध, अनंत पंथ लङ्घहीं न पाद को उठावही कहिये लङ्घनीय-मार्ग मात्र को दूर करने ते अनन्त मार्ग को पार करे है औ वस्तुतः क्रिया के अभाव ते चरण नहीं उठावे ॥ ३२ ॥

"तत्त्व ज्ञान" पूर्व साथ मिला कर, विदेह मुक्ति का हेतु जो तत्त्व ज्ञान वह तिसमें स्थित है, ताते नाम तिस तत्त्वज्ञान से वह विदेह मुक्त होवे है, ता नाम अज्ञानी के समान वह बहुर देह नहीं धरे ॥ ३३ ॥

व्यास विशिष्ट आदिक बड़े तत्त्वज्ञानियों के जन्म देख के "कैमुतिक न्यायेन" अज्ञानियोंवत् आधुनिकों के जन्म की आशंका करे "तत्त्व ज्ञान" इति, न होने में हेतु कहे "तत्त्व" इति ॥ ३४ ॥

जन्म वाले तत्त्व ज्ञानियों का नाम से प्रकाश करे "व्यास" इति ॥३५॥

अधिकारियों का कल्प पर्यन्त प्रारब्ध होने से तिनके जन्म बने हैं, अन्य के नहीं यह उत्तर कहे "आन" इति ॥ ३६ ॥

यामें हेतु सुनावो ? तहां कहे "यामें" इति यामें हेतु सुनो निर्धार कहिये इसमें निश्चय कर हेतु सुनो ! जिसते तेरी सम्पूर्ण आशंका निवृत्त

धरि धरि देह वेद विस्तारैं । जन को भव सागर निस्तारैं ।
धर्माधर्म गती जग जेती । जन को सकल बतावें तेती ॥३८॥
याहि कल्पको काल सु जेतो । ताको प्रारब्ध है तेते ।
ते निज प्रारब्धहि अनुसार । धारे जन्म सु बारंबार ॥३९॥
यही अर्थ "शारीरक" मरहीं । 'व्यास' बखान्यो संशय नाहीं ।
तृतीयाध्याय तीसरे पाद । भाख्यो प्रकट अहे न विवाद ॥४०॥

तथा च सूत्रम्

"यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्" ॥ ब्र०सू०३।३।३२

चौपाई

और जु ज्ञानी भव में जेते । या तन त्याग अनन्तर ते ते ।
विदेहमुक्ति को प्राप्त होवैं । बहुरो जन्मांतर नहि जोवैं ॥४१॥

तथा च श्रुतिः

'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये ।'छां०उ०६.१४.२

हो जावे, हेतु सुनावने हेतु भूमिका रचे "व्यास" इति, आधिकारिक नाम ईश्वर आगे राजमन्त्रियोंवत् मर्यादा स्थापक ॥ ३७ ॥

मर्यादा स्थापन रूप अधिकार कहे "धरि" इति ॥ ३८ ॥

हेतु का स्वरूप कहे "याहि" इति ॥ ३९ ॥

यही अर्थ कहिये "व्यास वशिष्ठादि" पाठ से लेकर कहा अर्थ। व्यास जी ने कहां कह्या है ? यह पूछते प्रति "तृतीय" इति ॥ ४० ॥

व्यास वचन का अवतार करे "तथा च" इति, आधिकारिकाणाम्—अधिकारी पुरुषों की यावत् पर्यन्त उनका अधिकार है तावत् पर्यन्त स्थिति है इस रीति से व्यास वचन ते कल्प पर्यन्त प्रारब्ध वाले वशिष्ठादिकों के ही जन्म सम्भवे है औ अधिकारियों बिना और जितने कोई ज्ञानी हैं वे, या तन कहिये वर्तमान शरीर के त्याग से अनन्तर भावी शरीरानारम्भ रूप विदेह मुक्ति को प्राप्त होवे हैं, अधिकारयोंवत् जन्मान्तर नही देखे, यह वार्ता श्रुति सिद्ध है ॥ ४१ ॥

चौपाई

ताते जन्म ताहि नहिं पइये । त्रिविधि भेदहीन वह हइये ।
कल्पित निखिल भेद थो जोई। भयो निवृत्त रह्यो नहिं कोई ॥४२॥

पूर्वपक्षी—

यद्यपि कल्पित है भव जोई । भयो निवृत्त रह्यो नहिं कोई ।
तदपि मोक्ष अकल्पित हइये । ताहि निवृत्ति तहाँ नहिं पइये ॥४३॥

सिद्धान्ती—

परमार्थ मोक्ष पक्ष है जोई। श्रुति निवारे नीके सोई ।

कही वार्ता साधक श्रुति का अवतार करे "तथा च" इति, तस्य—तिस ज्ञानवान् का यावद् देह मोक्ष नहीं होता, तावद्—देहपातपर्यन्त विलम्ब है, अथ—देहपातसे अनन्तर विद्वान्, सम्पत्स्ये कहिये विदेह कैवल्य का अनुभव करे है, इस रीति से ताते नाम श्रुति ने जन्मान्तर का निषेध करने ते तिन ज्ञानियों को जन्म नहीं प्राप्त होवे, किन्तु वह सजातीय, विजातीय, स्वगत वा देश, काल, वस्तु इन त्रिविध भेदों से रहित है, याते व्यवहार-काल में कल्पित जीव जगत् आदि भेद रहे भी सम्पूर्ण, भयो निवृत्त नाम नाश हो गया किञ्चिद् मात्र नहीं रहा याते वह ज्ञानवान् अद्वितीय परमानन्द रूप हुये ॥ ४२ ॥

विदेह मोक्ष को प्राप्त होकर ज्ञानी जन्मान्तर नहीं पावे, इहां यह पूछे है—वह विदेह मोक्ष अज्ञान निवृत्ति रूप है वा ब्रह्म भाव है ? दूसर माने ब्रह्म भाव को सर्वदा सिद्ध होने ते मोक्ष को ज्ञान साध्यता नहीं बनेंगी याते प्रथम कहो तव निवृत्ति नाम अज्ञान के ध्वंस का है ताको कल्पित माने मोक्ष को अनित्यता होवेगी औ मोक्ष को सर्व वादी नित्य माने हैं अन्यथा मुक्तों की पुनः उत्पत्ति का प्रसंग होवेगा याते विदेह काल में अज्ञान निवृत्ति रूप ब्रह्म भिन्न नित्यमुक्ति का ब्रह्म में भेद रहने ते निखिल भेदों की निवृत्ति नहीं बने औ ऐसे भये सर्व को अद्वैत बोधक श्रुति का विरोध होवेगा जेकर अभाव का भेद रहे भी भाव का भेद नहीं रहे याते श्रुति का भावाद्वैत में तात्पर्य है ऐसे अद्वैत बोधक श्रुति का संकोच करो, तब संकोच में कोई प्रमाण नहीं, याते निखिल भेद निवृत्ति कथन असंगत है यह आशंका करे "यद्यपि" इति, यद्यपि नाम जेकर कल्पित कहिये घटपटादिकों के मिथ्याभूत जो भेद है वह निवृत्त

पूर्वपक्षी—

कौन श्रुति या विधि को आहि।

सिद्धान्ती— **भाखौं प्रकट सुनो अब ताहि ॥४४॥**

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तरित्येषा परमार्थता" ॥

(आत्मोपनिषद्)

चौपाई

ब्रह्म भिन्न मोक्ष थो जोई। या विधि वेद निषेधी सोई।
ताते सकल द्वैत ते हीन। ब्रह्म एक मोक्ष में चीन ॥४५॥

भये तिनमें कोई न रहा, तदपि नाम तौ भी अज्ञान ध्वंस रूप मुक्ति तो ताको कल्पित माने अनित्यता प्रसंग ते, अकल्पित कहिये नित्य है, याते ताकी निवृत्ति, तहां नाम विदेह काल में नहीं होवे ऐसे भये ताका भेद रहने से निखिल भेद न दूर भये अद्वैत श्रुति का विरोध तैसे ही रहा ॥ ४३ ॥

अज्ञान निवृत्ति रूप ही मोक्ष है वह पुनः अधिष्ठान ब्रह्म का स्वरूप है काहे ते ? जाका प्रतियोगी कल्पित होवे ताका अभाव अधिष्ठान रूप होवे है याते अविद्या-निवृत्ति रूप—मुक्ति को ज्ञान साध्यता भी ज्ञान-जन्यता नहीं, किन्तु ज्ञान से अखण्ड वस्तु का स्फुरण रूप अभिव्यक्ति है याते ब्रह्म भिन्न वास्तविक मोक्ष का "न निरोधो" इत्यादि श्रुति से निषेध-श्रवण ते ब्रह्म में किञ्चिद् भेद न रहे अद्वैत श्रुति का विरोध नहीं यह उत्तर कहे "परमार्थ" इति, परमार्थ मोक्ष पक्ष है जोई कहिये ब्रह्म से भिन्न अकल्पित अज्ञान निवृत्ति रूप मुक्ति है यह जो पक्ष है, सोई नाम वह पक्ष कल्पित के अभाव को अधिष्ठान रूप मानती हुई "न निरोधो" यह श्रुति भली प्रकार दूर कहे है निवारक श्रुति श्रवण हेतु प्रश्न करे "कौन" इति, उत्तर कहे "भाखौं" इति ॥ ४४ ॥

निरोधः—नाश, उत्पत्ति—देह सम्बन्ध, बद्ध—सुख दुखादि धर्मवान्, साधक—श्रवणादि अनुष्ठाता, मुमुक्षु—साधन चतुष्टय सम्पन्न, मुक्तः—अविद्या निवृत्ति वाला। इत्येषा परमार्थता कहिये इन नाशदिक सम्पूर्णो का सम्बन्ध वास्तव ते नही, यह परमार्थपना है। या विधि कहिये इस रीति से जो ब्रह्म भिन्न मुक्ति थी वह वेद ने निषेध करी, ताते नाम ऐसे

सवैया

क्षीरन क्षीर सु नीरन नीर,
समीरन माहिं समीर समावे।
आतप माहिं मिलै जग आतप,
माहिं दिशा दिगभूरि समावे॥
फूटत ही घट के नभ में नभ,
एक भयो नहिं भेद दिखावे।
मोक्ष तथा नहिं भेद पिखो हरि,
कोविद वेद यही विधि गावे॥४६॥
शुद्ध सनातन नित्य प्रबुद्ध सु,
एक अखंडित ब्रह्म पछानो।
आनंद पूर सु धूर विहीन,
इसो घन सैंधवखिल्य पछानो॥
बिंदु सु पूर रही अवनी अरु,
बिंदु पुरेन्द्रन के पुर मानो।
तनु हान सनातन ब्रह्म भयो,
जिमि खंड अकाश अकाश समानो॥४७॥

वेद ने निषेध करने ते, सम्पूर्ण द्वैत से रहित एक ब्रह्म रूप ही विदेह मुक्त पुरुष जानो॥ ४५॥

दृष्टान्तों से ब्रह्मरूपता कहे "क्षीरन" इति॥ ४६॥

"स्थूणा खनन न्यायेन" पुनः ब्रह्म रूपता कथनार्थं ब्रह्म का स्वरूप कहे "शुद्ध" इति, शुद्ध—रागादिमलरहित, सनातन—सदा रहने वाला, नित्य प्रबुद्ध—सर्वदा मोहनिद्रारहित, सु एक—सजातीय भेद-हीन, अखण्डित—देशादि परिच्छेद रहित, ब्रह्म पछानो—ब्रह्म जानो, आनन्दपूर सुधूर विहीन नाम दुख रूप धुलि से रहित आनन्द का प्रवाह जानो तथा इसोघन-सैन्धव खिल्य पछानो कहिये ऐसे ब्रह्म को पुनः अन्यरस के सम्बन्ध हीन लवण के खण्डवत् एक रस आनन्द रूप जानो

भुजंगप्रयातछन्द

घनं ज्ञानरूपं नहीं भेद होई।
अहे द्वैत जेती रही नाहिं कोई॥
इको सो विराजै नहीं आन भासै।
स्वतः सिद्ध ज्योतिः प्रकाशं प्रकाशै॥४८॥

चौपाई

ता उपमान और नहिं हइये। वा सम वही एक इह पइये।
नीरधि है भव भीतर जैसे। नीरधि होय जगत में तैसे॥४९॥
ऐसो गगन अहै भव माहीं। गगन होय जैसे जग माहीं।
त्यों विदेहमुक्त है जैसे। विदेहमुक्त ही हइये तैसे॥५०॥
या विधि उपमा ताकी ताको। और नहीं उपमान सु वाको।
अज्ञान निवृत्त्युपलक्षित जोई। परमानंद होय चित् सोई॥५१॥

पुनः वह कैसा आनन्द है जाके बिन्दु नाम एक कणिका कर सम्पूर्ण पृथिवी पूरित हो रही है औ वाका एक कणिका ही, पुरेन्द्रन कहिये इन्द्र के पुर में मानो एवं ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादन कर विदेह को तद् रूपता कहे "तनु" इति, तनु हान कहिये शरीर के नाश होते ही वह विद्वान् सदा होने वाला ब्रह्म हुआ, जैसे घटादि रूप उपाधियो के नाश भये आकाश का टुकड़ा महाकाश में समावे है॥ ४७॥

विदेहावस्था में विद्वान् का ब्रह्म में विराजना कहे "घनं" इति, स्वत:सिद्धज्योति कहिये आप वह ज्योतियों का ज्योति अर्थात् प्रकाशों का प्रकाश है सोई स्फुट करे "प्रकाशं प्रकाशै" इति॥ ४८॥

स्व स्वरूप में विराजने विषे विदेह का उपमान क्या है? तहां कहे "ता" इति, दृष्टान्त से तिसको तिसकी समानता कहे "नीरधि" इति॥ ४९-५०॥

या विधि उपमा ताकी ताको कहिये इस रीति से विदेह मुक्त की उपमा विदेह को ही है, वाको नाम विदेह—मुक्त का और कोई उपमान नहीं, जो अमुक जैसा विदेह मुक्त है याते द्वैत—साधक वास्तविक मोक्ष पक्ष के अभाव ते अज्ञान की निवृत्ति उपलक्षित जो परमानन्द विदेह—मुक्त तद् रूप होवे है॥ ५१॥

पूर्वपक्षी—

ननु-अज्ञान निवृत्ति सु जोई। कौन स्वरूप ताहि को होई।

सिद्धान्ती—

पूर्व वृद्ध बखाने जैसे। ताहि स्वरूप पछानो तैसे ॥५२॥

पूर्वपक्षी—

पूर्व वृद्ध बखाने कैसे।

सिद्धान्ती— **कछुक कहौं सुनिये अब तैसे।**

"आनंदबोधाचार्य" जोई। ऐसे ताहि बखाने सोई ॥५३॥

अविद्या नाश अहे इह जोई। तुरीय उत्तीर्ण पंचम सोई।

सत्य नाश ताको नहिं हइये। होय सत्य अद्वितीय न पइये ॥५४॥

उपलक्षण भूत अज्ञान निवृत्ति में अनेक प्रकार के सन्देह कर प्रश्न करे "ननु" इति, कौन स्वरूप ताहि को होई कहिये ताका स्वरूप क्या है अर्थात् सद् है वा असद् है? औ सदादि रूप हुई भी वह भिन्न है वा अभिन्न है? उत्तर कहे "पूर्व इति ॥ ५२ ॥

वृद्ध उक्त स्वरूप को न जानता हुआ पुनः पूछे "पूर्व इति, संक्षेप ते वृद्ध उक्त स्वरूप कथन की प्रतिज्ञा करे "कछुक" इति, कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान से भिन्न है औ मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र को प्रामाण्यान्यथानुपपत्ति ते तुरीय उत्तीर्ण पञ्चम रूप है यह न्यायमकरन्दकार आचार्य का मत कहे "आनन्द" इति ॥ ५३ ॥

तुरीय उत्तीर्ण पञ्चम सोई नाम दोष सद्भाव से चार प्रकार को उल्लंघन कर पञ्चम प्रकार है, तुरीय उत्तीर्णता सिद्ध करने हेतु प्रथम सदादिकों में दोष कहे "सत्य" इति, सत्य नाश ताको नहिं हइये— तिस अज्ञान निवृत्ति का व्यावहारिक वा पारमार्थिक सद्रूप नहीं, दूसरे के न होने में हेतु कहे "होय" इति, होय सत्य अद्वितीय न पइये कहिये ब्रह्मभिन्न अविद्या निवृत्ति को पारमार्थिक सत्य माने ब्रह्म में ताका भेद रूप द्वैत रहे अद्वितीय ब्रह्म नहीं प्राप्त होवेगा, याते व्यावहारिक सत्य मानो तब व्यावहारिक का ज्ञानानन्तर बाध होने से ब्रह्म से उत्तर संसार निवृत्ति का अभाव प्रसंग होवेगा ॥ ५४ ॥

अरु असत्य नाश वह नाहीं। होवे ज्ञान न साधन ताहीं।
सत्य असत्य उभय नहिं हइये। याते दोउ विरोधी पइये ॥५५॥
नहिं पुनि अनिर्वाच्य वह हइये। सादि अनिर्वाच्य जो पइये।
ताको उपादान अज्ञान। ता बिन अनिर्वाच्य वह हान ॥५६॥

इस प्रकार सत् पक्ष में स्वरूप की असिद्धि कहकर असत् में कहे "अरु" इति, पुनः वह नाम सो अविद्या की निवृत्ति तुच्छ वा अनिर्वचनीय रूप असत् भी नहीं बने, प्रथम की असिद्धि में हेतु कहे "होवे" इति, तुच्छ वस्तु को सर्वसाधन निरपेक्ष होने ते, ताही नाम तिस तुच्छ रूप अविद्या निवृत्ति को ज्ञान साध्यता नहीं बनेगी, याते अनिर्वचनीय कहो तब वक्ष्यमाण चतुर्थ पक्ष में दोष से दूषित है ऐसे द्वितीय में दोष देकर तीसरे की असिद्धि कहे "सत्य" इति, सत्य असत्य उभय नहिं हइये कहिये त्रिकालाबाध रूप सत् औ तुच्छ रूप असत्य वा व्यावहारिक सत्ताश्रय रूप सत् औ पारमार्थिक सद्भिन्न असत् ऐसे काहू अर्थ से भी अज्ञान निवृत्ति उभय रूप नहीं होवे अर्थात् उभय रूप नहीं बने, परमार्थानुरोध से उभय के न होने में हेतु कहे "याते" इति, याते दोउ विरोधी पइये कहिये जिसते तेज तिमिरवत् एक वस्तु में त्रिकालाबाध्यता औ तुच्छता विरुद्ध है याते परमार्थानुरोध से उभय रूपता नहीं बने याते दूसर अर्थानुरोध से उभय रूपता कहो तब व्यावहारिक सत्ताश्रय सत् का ज्ञानानन्तर बाध होवे है याते वह भी नहीं बने ॥ ५५ ॥

एवं तीसरे की असिद्धि देखकर अनिर्वाच्य कहो तब सो भी नहीं बने यह कहे "नहिं" इति, नहिं पुनि अनिर्वाच्य वह हइये कहिये वह ब्रह्म भिन्न अविद्या की निवृत्ति सादि अनादि भेद से द्विविध अनिर्वाच्य भी नहीं बने, प्रथम के न होने में हेतु कहे "सादि" इति, सादि अनिर्वाच्य जो पइये कहिये जेकर अनादि अनिर्वाच्य माने ज्ञान साध्यता के अभाव प्रसंग ते वह सादि अनिर्वाच्य प्राप्त होवे है अर्थात् सादि अनिर्वाच्य है ऐसे कहो, तब सादि अनिर्वाच्य-घटादिकों को अज्ञान उपादानकता नियम ते, ताको नाम तिसका उपादान अज्ञान अवश्य मानना, अन्यथा ता बिन कहिये अज्ञान रूप उपादान बिना तन्तुनाश हुए पटाभाववत् वह अनिर्वचनीय निवृत्ति दूर होवेगी याते ताका उपादान अज्ञान ता काल

मुक्त माहिं अज्ञान न होई । ज्ञान निवृत्त होय पुनि सोई ।
ताते चार प्रकार न हइये । तुरीय उत्तीर्ण पंचम पइये ॥५७॥
अद्वैतविद्याचार्य जोई । या विधि ताहि बतावे सोई ।
अनिर्वाच्य अविद्या हइये । ताको नाश तथा पुनि पइये ॥५८॥
याहि पक्षको बहु विस्तार । माहिं "सिद्धान्तलेश" निर्धार ।
सर्व कहे होवे विस्तार । सार अंश को कियो उचार ॥५९॥

में अवश्य मानना ऐसे भये विदेह मुक्त में पुनः अज्ञान सिद्ध होवेगा औ ताकी निर्वृत्ति हेतु ज्ञान चाहिये ॥ ५६ ॥

सोई कहे "मुक्त" इति, ज्ञान निवृत्त होय पुनि सोई कहिये वह अज्ञान ज्ञान से नाश होवेगा अर्थात् ताके नाशार्थ पुनः ज्ञान की अपेक्षा होवेगी, ताते नाम सदादि रूप माने उक्त दोषों ते, अविद्या-निवृत्ति सदादि चार प्रकार नहीं, किन्तु तुरीय उत्तीर्ण कहिये सदादि चार प्रकारों से उल्लंघन कर वह पञ्चम प्रकार है, पुनः ता पञ्चम प्रकार अविद्या निवृत्ति की बुद्धि में अरूढ़ता सदादि चार प्रकार का बाध भये अनिर्वाच्यवत् युक्तियों से औ मोक्ष शास्त्र को प्रमाणता अनुरोध से कर लेनी यह न्याय मकरन्दकारआनन्दबोधचार्य का मत है ॥ ५७ ॥

सो असंगत है, काहे ते ? "पारमार्थिक ब्रह्म" शास्त्र औ ज्ञानियों के अनुभव से सिद्ध है औ "व्यावहारिक पदार्थ" लोक प्रसिद्ध हैं, "अनिर्वच-नीय वस्तु" इन्द्र जाल प्रसिद्ध है, इस रीति से अनिवचनीयान्त प्रकार तो प्रसिद्ध है औ पञ्चम प्रकार कहीं प्रसिद्ध है नहीं, याते प्रसिद्ध में ही पुरुष की अभिलाषा होने ते सर्वथा अप्रसिद्ध वस्तु पञ्चम प्रकार अपुरुषार्थ है, याते अधिष्ठान भिन्न कल्पित निवृत्ति अनिर्वचनीय है यह "अद्वैत विद्याऽऽचार्य" का मत है, सोई कहे "अद्वैत" इति, ताका बतावना कहे "अनिर्वाच्य" इति, अनिर्वाच्य अविद्या हइये नाम जैसे अनिर्वाच्य अविद्या है, तथा—तैसे ही, अनिर्वाच्य वाका अभाव है ॥ ५८ ॥

पूर्व मत में अनिर्वाच्य पक्ष विषे कहे दोष का उद्धार कैसे ? यह आशंका श्रवण कर दोषोद्धार दर्शन हेतु या पक्ष का "सिद्धान्तलेश" में विस्तार निर्णय कर लेना; इहां सर्व कहे विस्तार होवे है याते सारांश

"ब्रह्मसिद्धिकार" है जोई। ऐसे ताहि बतावे सोई।
अविद्यानाश अहे इह जोई। आत्मरूप पछानो सोई ॥६०॥

कहा यह कहे "याहि" इति, या का सिद्धान्त लेशस्थ संक्षेप ते यह विस्तार है=नाश, निवृत्ति, अन्त, नाम ध्वंस के हैं सो ध्वंस अनन्त है काहे ते ? घट के दूर हुए ताके विरोधी नाश के उठनेवत् घट ध्वंस का ध्वंस माने विरोधी रूप घट का भी उठना होवेगा याते ध्वंस अनन्त अभाव है ताका अन्त कभी नहीं होवे ऐसे कहते नैयायिकवत् सिद्धान्त मत में ध्वंस अनन्त अभाव रूप नहीं, किन्तु नाश की भी भाव विकारों में गणना श्रवण ते क्षणिक रूप भाव विकार है काहे ते ? भाव नाम अनिर्वचनीय वस्तु की विकार नाम अवस्था विशेष, आद्य क्षण का सम्बन्ध रूप "जन्म विकार" जैसे प्रथम क्षण में जन्मता है औ द्वितीयादिक क्षणों में "जन्मा हुआ" व्यवहार से क्षणिक है, तैसे मुद्गर आदिकों से घट के चूर्णता काल में "नाश होवे है" औ उत्तर क्षणों में "नष्ट हुआ" व्यवहार ते "जन्मा हुआ" पद से उत्पत्ति में अतीतता भानवत् "नष्ट हुआ" कथन से नाश में "अतीत प्रतीत होने ते ध्वंस नैयायिकवत् अनन्त नहीं, किन्तु क्षणिक है औ क्षण से उत्तर काल में ताका अत्यन्ताभाव होवे है, नाश नहीं होवे, याते क्षणभंगुर रूप अज्ञान-निवृत्ति का मुक्ति काल में ज्ञान न होने ते ताको अनिर्वाच्यता मानने में मुक्ति में अज्ञान की प्राप्ति औ प्राप्त हुए अज्ञान की पुनः ज्ञान से निवृत्ति प्रसंग रूप दोष नहीं, नाश का नाश न मानने से विरोधी रूप घट के उठने का भी प्रसंग नहीं, औ उठने के प्रसंग का तो इस रीति से भी वारण है, जैसे घट प्रागभाव के नाशरूप घट का नाश हुए भी घट प्रागभाव का उठना नहीं होवे, तैसे घट ध्वंस का ध्वंस हुए घट का भी उठना नहीं होवे, यह अद्वैत विद्याऽऽचार्य का मत है ॥ ५९ ॥

पूर्वोक्त दोनों मतों में अज्ञान निवृत्ति ब्रह्म भिन्न मानी है औ भिन्न मान कर द्वैत का निषेध ऐसे किया है जो ब्रह्म भिन्न सत्य पदार्थ ही द्वैत का साधक होवे है, असत्य नहीं। इस रीति से अद्वैत—श्रुति का संकोच है सो संकोच प्रमाण के अभाव ते नहीं बने, याते सर्प निवृत्ति को रज्जुरूपता देखने ते कल्पित निवृत्ति ब्रह्म रूप है यह ब्रह्मसिद्धिकार का मत कहे "ब्रह्म" इति, ताका बतावना कहे "अविद्या" इति ॥ ६० ॥

कल्पित बाध अहे इह जेतो। अधिष्ठानरूप आन नहि तेतो।
कल्पित अहे सर्प जग जोई। ताहि अभाव रज्जु ही होई ॥६१॥
"गंगाधर" पुनि यही बखाने। अधिष्ठान भिन्न बाध न माने।
अविद्या बाध अहे इह जोई। अधिष्ठान-भिन्न वस्तु न सोई ॥६२॥
याही ते कछु द्वैत न हइये। एक अद्वितीय आत्मा पइये।

पूर्वपक्षी—

वृद्ध बखान्यो रूप सु जोई। नानाविधि भाख्यो है सोई ॥६३॥
ताते ता मत अहे विरोध। परस्पर नीके उर शोध।

सिद्धान्ती—

नाहिं विरोध परस्पर होई। बोध-उपाय कहे सब कोई ॥६४॥

आत्मरूपता में हेतु कहे "कल्पित" इति, कही वार्ता दृष्टान्त से स्पष्ट करे "कल्पित" इति ॥ ६१ ॥

ब्रह्मसिद्धिकार के अनुरोध से स्वराज्यसिद्धिकार का मत कहे "गंगाधर" इति, गंगाधर का वाक्य कहे "अविद्या" इति ॥ ६२ ॥

याही ते कहिये अविद्या बाध का अधिष्ठान भिन्न वस्तु न होने ते, पूर्व मतोंवत् द्वैत नही बने किन्तु एक अद्वितीय आत्मा पाइये है, या मत में ब्रह्म रूप अविद्या निवृत्ति मोक्ष को ज्ञान साध्यता के अभाव प्रसंग रूप दोष का वारण पूर्व "परमार्थ मोक्ष पक्ष है जोई" याके अवतरण में कह चुके है, दूसरा यह जान लेना "जिस के हुये अग्रिम क्षण में जिस की सत्ता होवे, जिसके अभाव हुये जिसका अभाव होवे वह तिस से साध्य कहिये है" या साध्य लक्षणानुसार ते ज्ञान भये अग्रिम क्षण में आत्म रूप भी अविद्या निवृत्ति होवे है, न हुये नहीं होवे, याते आत्म रूप भी अविद्या निवृत्ति ज्ञानसाध्य है। अविद्या निवृत्ति के अनेक रूप श्रवण कर मतों में विरोध की आशंका करे "वृद्ध" इति ॥ ६३ ॥

ताते नाम नाना विधि कहने ते, "यया यया भवेत् पुंसाम्" इत्यादि वार्त्तिकानुसार उत्तर कहे "नाहि" इति, बोध उपाय कहे सब कोई कहिये सभी आचार्य जिज्ञासुओं को ज्ञान उपाय कहे हैं, याते जितनी बोध उपाय अंश है वह सबमें अविरुद्ध है ॥ ६४ ॥

बोध-उपाय अंश है जेती । है अविरुद्ध सबन में तेती ।
वस्तु-विचार अविद्या नाहीं । कौन अभाव कहे को ताहीं ॥६५॥

अध्यारोप अपवाद सु जोई । शिष्य बोध हित कल्प्यो सोई ।
बोध अनंतर जो तिहि हेरे । ताहि अभाव त्रैकालिक टेरे ॥६६॥

तदुक्तं

श्लोक—"अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते ।
शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः ॥"
"तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थसम्यग्धीजन्ममात्रतः ।
अविद्या सह कार्येण नासीदस्ति भविष्यति ॥"

सोई कहे "बोध" इति, जिज्ञासुओं को बोधन की रीति कह कर विद्वानों की दृष्टि कहे "वस्तु" इति, 'ताहीं अभाव को कौन कहे' यह अन्वय कर वास्तविक ते विचार किये प्रतियोगिभूत अविद्या ही विद्वानों की दृष्टि में न सिद्ध होने ते ताकी निवृत्ति कोई क्या कहे अर्थात् कोई कुच्छ नही कह सके ॥ ६५ ॥

ननु जेकर वस्तु विचार किये अविद्या रूप प्रतियोगि पुनः ताका भेद कहने को भी अयोग्य है तब विद्वानों ने प्रकृति से महदादि क्रम से अविद्या तत् कार्य का आरोप, पुनः पृथिवी का जल में लय, जल का अग्नि में लय, इत्यादि क्रम से ताका अभाव चिन्तन रूप अपवाद किस वास्ते कह्या ? यह आशंका कर अर्थ ते वृद्ध वचन से व्यवस्था कहें "अध्यारोप" इति, अध्यारोप अपवाद सु जोई कहिये सच्चिदानन्द ब्रह्म में असज्जड़ दुःख रूप अज्ञान तत् कार्य का आरोप रूप अध्यारोप औ ताका लय चिन्तन रूप अपवाद जो है सो अनेक रीति से अविद्या निवृत्ति आदिकों का स्वरूप चिन्तन करते हुए आचार्यों ने जिज्ञासुओं के बोध हेतु कल्पना किये है औ बोध सिद्धि हेतु पदार्थों को जो पुरुष बोध से अनन्तर देखे तब रज्जु बोध अनन्तर सर्प का काल त्रय में अभाव कथनवत् तिन अविद्या तत् कार्य का कालत्रय में अभाव ही कहेगा ॥ ६६ ॥

चौपाई

या विधि तीनों काल अभाव । भई अविद्या लहे न भाव ।
आतम एक अखंड अनाशी । घनानंद चित् स्वतः प्रकाशी ॥६७॥
ता भीतर विक्षेप जु देह । ताही त्यागे होय विदेह ।
प्रारब्धहि प्रतिबंध शरीर । भोग सु त्यागे कोविद धीर ॥६८॥
पूर्व उक्त आतम है जोई । वही स्वरूप मुक्त नर होई ।
जहाँ तहाँ तनु डारे सोई । है सुखसिन्धु भेद नहिं कोई ॥६९॥

सवैया

तट तीरथ माहिं तजे तनु को,
उत ऊषर देश विषे तनु डारे ।

अर्थ से कही वार्ता पाठ से कहे "तदुक्तम्" इति.

अध्यारोपापवादाभ्याम् कहिये जो अध्यारोपापवाद से निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते नाम प्रपञ्च रहित ब्रह्म का कथन करिये है, सो शिष्याणां बोध सिद्धयर्थम् कहिये जिज्ञासुओं के बोध की सिद्धि हेतु, तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः कहिये तत्त्ववेत्ताओं ने क्रम कल्पना किया है, वृद्ध वचन कहे— "तत्त्वमस्यादि" इति, तत्त्वमस्यादि महावाक्यन से उत्थ-नाम उत्पन्न भई, सम्यग्धी = अखण्डाकारवृत्ति के जन्म मात्र से, अविद्या सह कार्येण नाम अज्ञान स्वकीय कार्य प्रपञ्च के सहित नासीद् = न हुआ, नास्ति नाम न है, न भविष्यति—न होवेगा । या विधि कहिये, इस प्रकार तीनों कालों में अभाव नाम असत्य हुई अविद्या कभी भी भाव नाम सत्ता को नहीं प्राप्त होवे, किन्तु सावरण अज्ञान दूर भये एक अखण्डादि रूप विद्वान् का आत्मा ही सत्य रहे है, औ तिस सत्य रहे आत्मा में प्रारब्ध रूप प्रतिबन्ध वशते रही जो विक्षेप रूप देह ताको त्यागकर विदेह होवे है यह कहे—"ता" इति ॥ ६७-६८ ॥

विदेह मुक्त हुआ किं रूप होवे है ? तहाँ कहे "पूर्व" इति, पूर्व उक्त आतम है जोई कहिये शुद्ध सनातन नित्यप्रबुद्ध तथा "आतम एक अखण्ड" इत्यादि पाठ से कथित स्वरूप जो आत्मा वही नाम तद्रूप ही विदेह मुक्त होवे है चाहे कहीं भी शरीर त्यागे यह कहे—"जहाँ" इति ॥ ६९ ॥

द्विज मंदिर में तनु त्याग करे,
उत जाय मरे वह नीचन द्वारे ॥
हरि ध्यान धरे तनु त्याग करे,
उत हाह करे दृग ते जल डारे।
तनु डारत ही सुखसिंधु भसो,
नहिं और तनु हित लोक पधारे। ७०॥

नाराज छन्द

निवार के उपाधि को अखंडरूप होवई।
अपार सुखरूप सो न दुःखलेश जोवई॥
अगाध बोधरूप सो भजे सु संत तासुको।
जपी अनेक बैन के जपै सु जाप जासुको ॥७१॥

सवैया

जाहि निमित्त करें तपसा जग,
जाहि निमित्त धरे व्रत भारी।
जाहि निमित्त तजे सब भोग,
सजे उर माहिं सु योग उदारी॥
जाहित भामिनि धाम तजी अरु,
पर्णकुटी बनमाहिं सँवारी।
सो सुख दुःख विहीन लहे उर,
ज्ञान जबे घर में तनु डारी ॥७२॥

"जहाँ" इत्यादि पाठ से कहे का विस्तार करे "तट" इति ॥ ७० ॥

उपाधि शून्य हुआ वह एवं (रूप) है यह कहे—"निवार के" इति ॥ ७१ ॥

हृदय में सम्यक् ज्ञान हुए तन त्याग के विद्वान सर्व साधनों के फल को पावे है यह वार्ता चार सवैयों से कहे—"जाहि" इति ॥ ७२ ॥

जा हित याग सु दान रचे पुनि,
जाहि विचार रचे व्रत भारी ।
भीषममात सु आदि जिते सब,
तीरथ जा हित धार मुरारी ॥
जाहिं रचे भवमंडल में प्रभु,
जाहि निमित्त भई श्रुति चारी ।
सो सुख दुःख विहीन लहे उर,
ज्ञान जबै घर में तनु डारी ॥७३॥

जाहि निमित्त करी गुरुसेव सु,
देव मनावन की गति धारी ।
जाहित राघव सेव कहो अरु,
शंकर की अरचा विसतारी ॥
देव नदी तट बैठ इकंत,
करै तपसा तपसी व्रत धारी ।
सो सुख दुःख विहीन लहे उर,
ज्ञान जबै घरमें तनु डारी ॥७४॥

वेद विचार कहे पुनि जाहित,
जाहित ग्रंथ रचे गुरु भारी ।
भाष्य शारीरक आदि जिते कवि,
कौन गिने कछु आहि न पारी ॥
सेव कही गुरु की पुनि जाहित,
जाहित दुष्ट कि संगति टारी ।

"प्रभु" अन्त पाठ का पूर्व सम्बन्ध कर भीषममात कहिये भीष्म की माता-गङ्गा जो से आदि लेकर तीर्थ चित्त में जाका हित धार के मुरारि प्रभु ने भव मण्डल में रचे ॥ ७३-७४ ॥

सो सुख दुःख विहीन लहे उर,
ज्ञान जबै धरमें तनु डारी ।।७५।।

दोहा

या विधि आतम धाम को, आतम ज्ञानी पाय ।
परमानंद अखंड चिद्, भेद विहीन समाय ।।७६।।

सवैया

भव भारतखंड सु मंडन ते,
जिन पाप विसार सुपुण्य कमाये।
गुरुसेव सु देव मनाय भली,
विधि आतम ज्ञान सुजा उपजाये ।
उर राग विसार फिरे जग में,
जल नीरज से गुण सिंधु सुहाये ।
तनु डार अखंड विदेह भये,
परमातम सिंधु विषे जु समाये ।।७७।।

गुरुभारी—बड्यों से बड़े ।। ७५ ।।

अध्याय (निवास) के आरम्भ से लेकर कही विदेह गाथा की समाप्ति करे "या विधि" इति ।। ७६ ।।

शीघ्र स्मृति अर्थ ग्रन्थ मात्र से कहे अर्थ का संक्षेप कहे—"भव" इति, भव भारत खण्ड सुमण्डन ते कहिये संसार में वह भारत खण्ड के भूषण रूप पुरुष हैं जिन्होंने वेदोक्त साचे अर्थ की यथार्थ स्मृत्यर्थ सांख्य, पातञ्जल, शैव, सात्त्वित, नैयायिक, सौत्रान्त्रिक, वैभाषिक, योगाचार्य, माध्यमिक, जैन, मीमांसक, हैरण्यगर्भ इन सम्पूर्ण वादियों के प्रथमाध्याय उक्त युक्तियों से पापरूप पक्षों को चित्त से विसारकर माया सबल ब्रह्म ते सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म जगत् की रचना का निश्चय रूप पुण्य कमाया। ऐसे संक्षेप ते प्रथम अध्यायोक्त (निवासोक्त) अर्थ का स्मरण करवा कर दूसरे का करावे—"गुरु" इति गुरुसेव सुदेव मनाय भली विधि—अवस्था त्रय के अध्यास प्रयुक्त अनेक प्रकार के नरक स्वर्ग आदि गमन निमित्तक अनर्थों की निवृत्ति हेतु देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, विज्ञान, आत्म-

दोहा

मोक्षपंथ संक्षेप ते, याहि सवैये माहिं।
भाख्यो सम्यक् हेर उर, सुधी पिखे मन माहिं ॥७८॥

सवैया

यह मारग नाहिं अपूरव है,
कछु आहि प्रसिद्ध सु वेदन माहीं।
नर नाहिं निहार सके तिन को,
तब 'व्यास' कहे सु 'शारीरक' माहीं॥

वादी तथा जैन सात्त्वित् मीमांसक नैयायिक आदिकों के मतों का निराश कर अवस्थात्रय के साक्षी असङ्ग पञ्चकोश विलक्षण आत्मा का उपदेश करते गुरु की जिन्होंने सेवा करी तथा विष्णु आदि देवता मनाये इस रीति से द्वितीयाध्याय (निवास) प्रतिपाद्यार्थ का स्मरण करवा कर तीसरे का करावे—"आतम" इति, आत्म ज्ञान सुजा उपजाये कहिये सुक्ति रजत दृष्टान्त से जगत् को मिथ्यात्व निश्चय कर सम्पूर्ण द्वैत वासना त्याग के उपक्रमआदि लिङ्गों से वेदान्त वाक्यन का साक्षात् परम्परा अद्वैत में तात्पर्य निश्चय कर, तत्वमस्यादि वाक्य से प्रथम-द्वितीयाध्याय (निवास) उक्त जीव-ईश के वाच्य में प्रविष्ट लक्ष्य विषयक अखण्डाकार वृत्ति हृदय में जिन्होंने उत्पन्न करी ऐसे तृतीय में कथित अर्थ का स्मर्ण करवा कर चौथे में कहे अर्थ का स्मरण करावे "उर" इति, उर राग विसार फिरे जग में कहिये "त्वं दशमः" वाक्यवत् अपरोक्षजनक महावाक्यज केवल ज्ञान से चिरकाल स्थायी अज्ञान को दूर कर ज्ञानान्तर विद्वत् संन्यास धार के मनोनाश, वासना-क्षय, अर्थ, दृढ़ वैराग्य से सम्पूर्ण पदार्थों में प्रीति त्याग के जीवनमुक्त गुणों के समुद्र जल में कमलवत् सुहाये हैं, एवं चौथे का कह कर पञ्चम का संक्षेप ते कहे "तनु" इति, तनुडार अखण्ड विदेह भये कहिये जीवन-मुक्त औ केवल ज्ञानी होय के अधिकारी देशादि भेद हीन विदेह हुए परमात्मा समुद्र विषे मिले ॥ ७७ ॥

सवैये में कहे अर्थ की विद्वानों को चिन्तनीयता कहे "मोक्ष" इति, भाख्यो पूर्व साथ (अन्वय कर लेना) ॥ ७८ ॥

वह आहि गँभीर पिखे तिहँ धीर,
ग्रथे जिन ते सुर बैनन माहीं।
नर जे नहिं ताहि निहार सके,
पुनि ताहित सोय कहे इन माहीं ॥७९॥
शांत सु दान्तहि आदि जिते सब,
साधन जाहिं विषे दृढ पैये।
है हरिसेव उदार उरे गुरु,
की पुनि सेव सु देह सुहैये।
ता अधिकारि निहार सु कोविद,
होय अशंक सु ग्रंथ सुनैये।
है यह आगम को सब सार,
निहार सु औरन नाहिं बतैये ॥८०॥

स्वकपोलकल्पितत्व तथा ग्रन्थारम्भ को निष्फलता दोष वारण अर्थ स्वकीय ग्रन्थ को वेदअर्थता औ सुगमता कहे "यह" इति, यह मारगनाहि अपूरव है कछु कहिये यह मोक्ष का ज्ञानरूप मार्ग या ग्रन्थ में कुछ नया नहीं कथन किया किन्तु "ज्ञानादेव कैवल्यम्" इत्यादि श्रुतियों में प्रसिद्ध है औ वेद में प्रसिद्ध रहे भी पुरुष देख नहीं सकते यह जान कर वही मार्ग व्यासजी ने "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इत्यादि सूत्रों से शारीरक में कह्या—सोई कहे "नर" इति, वह आहि गँभीर कहिये व्यासोक्त ज्ञान मार्ग गम्भीर है याते वाको धीर कहिये पण्डित ही देखे है, गम्भीरतावत् पण्डितों कर देखने में हेत्वन्तर कहे "ग्रथे" इति, अब जे पुरुष ताहि नाम शारीरक भाष्यस्थ ज्ञानमार्ग को गम्भीरता औ संस्कृत रचना कारण से नहीं देख सकते पुनः तिन्हों वास्ते वही मार्ग यामें कह्या याते अधिकारियों के सद्भाव से ग्रन्थारम्भ को व्यर्थता औ वेदमुलक होने ते स्वकपोलकल्पितत्व नहीं बने ॥ ७९ ॥

वेदान्त श्रवण अधिकारी विशेषण साधन चतुष्टय में प्रविष्ठ उपरति शब्द का वाच्य संन्यास का "ब्राह्मणो निवेदमायात्" इत्यादि वचनों से ब्राह्मण को अधिकार होने ते तिनको ही वेदान्त श्रवण की प्राप्ति भये

रविगो तमपुञ्ज निवार करे,
सुख लोचन है विमली जग जाहीं।

क्षत्रियादि जाति में पुनः भी या वेद अर्थ रूप ग्रन्थ का आरम्भ निष्फल है ? यह आशङ्का कर जनकादि क्षत्रियों को ज्ञान प्राप्ति श्रवण ते ब्राह्मण का श्रवण में संन्यासपूर्वक ही अधिकार है क्षत्रियादि को (सन्यास) बिना है या कल्पना के सम्भव ते आरम्भ निष्फल नहीं, मतान्तरे "यदहरेव विरज्येत तदहरेव प्रव्रजेत्" या श्रुति में ब्राह्मण पद के अभाव ते तथा "ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा प्रव्रजेत् ग्रहात्, त्रयाणां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः" या स्मृति से भी क्षत्रिय-वैश्यों को संन्यास के अधिकार ते पुनः "श्राव्येत् चतुरोवर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः" इत्यादि शूद्र को भी इतिहासादि श्रवण में अधिकार बोधक वचन सद्भाव ते तथा शूद्र साधारण धर्म निर्णायक धर्मशास्त्र को व्यर्थता प्रसङ्ग ते "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इत्यादि शूद्रको उपदेश निषेधक वाक्यन का श्रौत मन्त्र सहित यज्ञादि कृत्य विषयक निषेध में तात्पर्य है. याते शूद्र का भी इतिहासादिकोंवत् वेद अर्थ रूप "भाषा प्रबन्ध" श्रवण में अधिकार ते आरम्भ निष्फल नहीं याते ईश्वर नामोच्चारण शमदमादि साधन सम्पन्न सर्वको कहना शून्य को काहू को नहीं यह कहे—"शान्त" इति, शान्त सु दान्तहि आदि जिते कहिये विलक्षण अदृष्टवश ते शम, दम, औ "आदि" शब्द ते उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधानतां, मुमुक्षता, ईश्वरोपासनादि सम्पूर्ण साधन जिस पुरुष विषे दृढ़ होवे है पुनः हरि = परमेश्वर की सेवा श्रेष्ठ जिसके हृदय में होवे औ गुरु की पुनः सेव सुदेह सुहैगे कहिये गुरु की सेवा से पुनः जिनकी देह शोभ रही होवे, ता नाम ऐसे आत्मकाम, पुरुष का उक्त साधन सम्पत्ति पूर्वक अधिकार देख के पण्डित जनों ने निःशंक होकर ग्रन्थ सुनावना वर्णादि विचार नहीं करना, औ, है यह आगम को सब सार कहिये 'पूर्व सवैये में कही रीति से, वास्तविक ते यह ग्रन्थ सम्पूर्ण वेदों का सार है ऐसे देख के औरन नाम शम-दम ईशोपासनादि हीन को नहीं कहना किन्तु, "खत्री ब्राह्मण, सूद, वैस उधरे सिमर चण्डाल। जिन जान्या प्रभु आपना नानक तिसै रवाल" ॥' या गुरु वाक्य से ईशोपासनादि युक्त का एवं महात्म्य श्रवण सेसा धनयुक्त सर्व को कहना ॥ ८० ॥

जग पेचक नैनन दोष घने,
रविगो तम सी तिनके उर माहीं ॥
जग सार असार परीक्षक जे,
गति यों समझो तिन के मन माहीं।
ऋषि बैनन नाहिं सराहत लोक,
सु बालक की गणना किन माहीं ॥८१॥

अब कृत्घ्नतादोष की निवृत्यर्थं नम्रता सूचन ।

दोहा

कहँ वेदांत को अर्थ है, कहँ मम बुद्धि विचार ।
रघुपति और गुरुपद कृपा, कीन्यों कछु उचार ॥८२॥

सवैया

जा हरि भीलनि बेर गहे कर,
प्रेम प्रसन्न भये रघुराई।
फूल सुगंध जलादिक जा पद,
पङ्कज दै जन लेहि रिझाई।

"कैमुतिक न्यायेन" असार परीक्षकों कर स्वकीय ग्रन्थ को अश्लाघ्य समझता भी सार परीक्षकों में सफलता समझके दृष्टान्त से दोनों की गति कहे "रवि" इति, रवि गोतमपुञ्ज निवार करे कहिये सूर्य की किरण तम पुञ्ज को निवारण करे है याते विमली नाम निर्मल नेत्रों वालों को आनन्द होवे है औ जगत् में पेचक नाम उल्लुओं के नेत्रों में दोष बहुत होवे है, याते सूर्य की किरण भी तिनके हृदय में तम सरीखी प्रतीत होवे है इस प्रकार जो जगत में सार असारता के परीक्षक हैं तिन की रीति समझ लेनी जो सार परीक्षक स्तन से दुग्धग्राही बछुरे वत् गुण ग्रहण करे हैं औ असार परीक्षक वही स्तन से रुधिरग्राही जलोकावत् दोष ग्रहण करे हैं, कही बात में कैमुतिक न्याय कहे "ऋषि" इति ॥ ८१ ॥

अपनी बालकता प्रकट करता हुआ रचना को गुरु ईश्वर कृपा का फल कहे "कहँ" इति ॥ ८२ ॥

बालक बैन सु फूल सुगंधहि,
सारथ जाहिं विषे तुतलाई ।
ता पदपङ्कज भेट धरे पिख,
होहु प्रसन्न सु सीय सहाई ॥८३॥

अब ग्रन्थकार स्वजन्म स्थान का प्रतिपादन करते हैं ।

दोहा

मदरदेश मंडन महाँ, पुर सेखव अभिराम ।
'राया' जनक प्रसिद्ध जग, जननी 'गौरी' नाम ॥८४॥
गुलाबसिंह तिन धाम सुत, करी गुरुन की सेव ।
गुरु गोविन्द को पन्थ गहि, हेऱ्यो आतम देव ॥८५॥

अब ग्रन्थकार स्वसम्प्रदाय का प्रतिपादन करते हैं ।

दोहा

श्रीगोविंद सु सिंह हैं, पूरण हरि अवतार ।
रच्यो पंथ भव में प्रकट, दो विधि को विस्तार ॥८६॥
एकनके कर खड्ग दै, भुजबल बहुविस्तार ।
पालन भूमीको कऱ्यो, दुष्टन मूल उखार ॥८७॥

सार्थ तोतली बोली रूप गन्धयुत वचन पुष्पात्मक बालक की न्यून रचना से भी परमेश्वर प्रसन्न होवेगा यह दृष्टान्त से कहे—"जा हरि" इति ॥ ८३ ॥

सम्पूर्ण शुभ क्रियाजन्य यश को स्वल्प काल औ रचनाजन्ययश को दीर्घकाल स्थायी समझ के देश आदिकों की कीर्ति हेतु नाम कहे—"मदर" इति ॥ ८४-८५ ॥

गुरुगोविन्द सिंह जी के द्विविध पन्थ में कौन को ग्रहण कर आत्मा दिखाया ? इस संशय की निवृत्त्यर्थं भूमिका रचे—"श्री" इति, दो विधि को विस्तार नाम राजस सात्त्विक भेद से दो प्रकार विस्तृत पन्थ रच्या ॥ ८६ ॥

फल कथन सहित एक की रचना की रीति कहे—"एकन" इति ॥ ८७ ॥

औरन की पिख विमल मति, दीनों परम विवेक ।
निर्मल भाषे जगत तिन, हेरे ब्रह्म सु एक ॥८८॥

तिन पदपङ्कजनीर लहि, पायो मोहि विचार ।
तिन अनुयायी बाल मैं, कीन्यों ग्रंथ उचार ॥८९॥

अब ग्रन्थ समाप्ति का स्थान तथा ग्रन्थ का महात्म्य प्रतिपादन करे हैं ।

छपैछंद

"अमृतसर" जहि नाम हेर जल पाप विनाशे ।
पान करे दुख जाय बोध उर मध्य प्रकाशे ॥
बैठ सो ठाहिर ताहिं ग्रंथ संपूर्ण कन्यो ।
'मोक्षपन्थप्रकाश' नाम विचार सु धन्यो ॥
जो पढै सु याको रीति कै नर वह मुक्त सु आहि जग ।
गुरु हरि भज सुवाक्य अर्थ गहे निज मुक्ति को पाय मग ॥९०॥

नाम सहित दूसरे के रचना की रीति कहै—"औरन" इति, निर्मल भाषे जगत तिन कहिये जगत् में तिन को "निर्मल" नाम से कहे हैं औ वह पञ्चकोश विवेक से एक ब्रह्म देखे हैं ॥ ८८ ॥

याते, तिन पद पकंज नीर लहि कहिये तिन ऐसे एक ब्रह्मदर्शी "निर्मलसन्तों" के चरणों का जल पान कर मैंने सद्विचार पाया याते तिस सद्विचार की प्राप्ति से तिन्हीं के अनुयायी कहिये अनुसारी मैं बालक ने ग्रन्थ रचना करी ॥ ८९ ॥

समाप्त कहाँ किया ? तहाँ कहे—"अमृतसर" इति । नाम ताका क्या धरा ? तहाँ कहे—"मोक्ष" इति, अज्ञान निवृत्ति रूप मोक्ष का पन्थ जो ज्ञान ताका प्रकाश होवे जिसमें ऐसे यह वेदार्थ रूप ग्रन्थ है एवं विचार के याका नाम मोक्षपन्थ प्रकाश धऱ्या औ प्रकाशपै प्रकाश समञ्ज के छायाकार ने टीका का नाम स्वयंप्रभा धऱ्या यह भी जान लेना । वेदार्थ-रूप ग्रन्थ के पाठ का फल कहे "जो" इति, रीति कहे "गुरु" इति. गुरु हरि भज नाम गुरु की औ परमेश्वर की सेवा कर उपदेश द्वारा "मैं ब्रह्म हूँ"

अब ग्रन्थकार ग्रन्थसमाप्ति का सम्वत आदि प्रतिपादन करे हैं।

सवैया

शत अष्ट दशं शुभ सम्वत् में,
पुनि त्रिंसतपंच भये अधिकाई।
शुभ माघ शुदी शुभ सोम समे,
शुभवासर सोम महाँ सुखदाई।
तिथि पंचमि नाम बसंत कहे,
सब लोकन को सु जने हरषाई॥
दिन ताहि सु पूरण ग्रन्थ भयो,
हरि के पद पङ्कज भेट चढ़ाई॥९१॥

अब देवन का मङ्गल करते हुए ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं।

सवैया

गणनायक वाक्यपती रघुबीर,
सु नानकजी गुरु आदि उदारे।
गुरु गोविन्दसिंह उदार बड़े,
पुनि जा गुरु मे भव सागर तारे।
तिन कौन उपायन पाँय धरौं,
कछु लायक नाहिं पिखौं जग सारे।

ऐसे श्रेष्ट वाक्यार्थ ग्रहण कर पढ़े, यह रीति है काहे ते ? निज=अपनी मुक्ति का यही मग है॥ ९०॥

समाप्ति के समय का निर्णय कहे—"शत" इति॥ ९१॥

कर जोरि भली विधि दण्डसमं,
पद पङ्कज में अभिवन्द हमारे ॥९२॥

इति श्रीमन् मानसिंहचरणशिष्यगुलाबसिंहेन गौरीरायात्मजेन
विरचिते मोक्षपंथप्रकाशे 'विदेहमुक्ति' निरूपणं
नाम पञ्चमो निवासः ॥ ५ ॥

"ग्रन्थान्ते मङ्गलयाचरणीयम्" या वचन के अनुरोध से चमत्कार से नमस्कारात्मक मङ्गल करे—"गण" इति ॥ ९२ ॥

दोहा—गणपति तापित गुरुन दस, निज गुरु पद मृदुवन्द ।
सारासार विचार कर, भेटा करी सुछन्द ॥ १ ॥

इति श्रीमत्गुलाब सिंह चरणशिष्यताराहरि कृते मोक्षपंथ प्रकाश प्रकाशे
स्वयम्प्रभा विवरणे पञ्चमोनिवासः ।

(समाप्तोऽयं ग्रन्थः)

श्रीमल्लीलाललितगोपालचरणकमलेभ्यो नमो नमः ।



शुद्धि-अशुद्धि-पत्र

मूल

शुद्ध	अशुद्ध	पङ्क्ति	पृष्ठ
निवृत्त्यर्थं	निवृत्यर्थं (अ०)	१	६
कूर्म	कूर्मं	५	१७
सिद्धान्ती	सिद्धान्तो (अ०)	३	१९
अर्थ	अर्थं	२	१८
मतों	मर्तों (अ०)	३	२०
असङ्ग	आसंग	३	३५
सर्ग	सर्गं	५	३८
सर्ग	सूर्गं	९	३८
कर्म	कर्मं	४	३९
चौपाई	दोहा	१	४१
दोहा	चौपाई	३	४१
पदार्थ	पदार्थं	३	४७
त्यों	लों	४	५०
पूर्वोक्त	पूर्वोंक्त	११	५०
सांख्यमत	सांख्शमत	६	५१
अर्हत	अहंत	४	५२
हेतु	हेतू	९	५२
कर्म	कर्मं	८	५९
अपेक्ष्य	अषेक्ष्य	८	५९
उपावै	उपाधै	५	६०
समवाय	समंवाय	६	६२
संवाद	सम्वाद (अ०)	१	६३
सांख्य	सांख्य (अ०)	१	६७
संवाद	सम्वाद	१	६७
अर्थ	अर्थं	१	७३

श्रुति	श्रूति (अ०)	१	७४
सूत्र	सूत्रं (अ०)	१	७५
संकर्षणादि	संकर्षणादि	५	७८
नियन्ता	।नयंत	८	७९
कहलायो	कहलाया	१	८१
शुक्ल	शुल्क	१	१२३
धर्माधर्म	धर्माधर्म	२	१२५
प्रत्यभिज्ञा	प्रत्यभिक्षा	९	१२५
ह्वै	ह्वे	७	१३४
प्रत्यभिज्ञा	प्रत्यभिक्षा	५	१३९
प्रत्यभिज्ञा	प्रत्यभिक्षा	९	१४१
युक्ति	युक्त (अ०)	६	१५३
कार्य	कार्यं	१	१५५
अर्थ	अर्थं	१०	१५५
कार्य	कार्य्रं	३	
दुर्जनतोष	दुर्जंनतोष	४	१६७
निर्विशेष	निविशेष	५	१६७
तटस्थ	सटस्थ	७	१६९
अर्हंत	अर्हंत	५	१७०
अर्हंत	अर्हंत	४	१७२
दर्शन	दर्शनं	४	१७२
विशेष	विशष	६	१७२
दर्शनावरणी	दर्शानवरणी	१०	१७२
अर्हंत	अर्हंत	१४	१७२
अर्हंतादि	अर्हंतादि	२	१८४
मोक्ष	माक्ष (शी०)		१९६
संवाद	सम्वाद		१९६
अर्थ	अथ	४	२०३
उपजाय	उषजाय	२	२०४
संवाद	सम्वाद (अ०)	८	२०७
विवर्त्यो	विवर्त्त्यो	४	२०८
मोक्ष	माक्ष (शी०)	२	२१०

भव	भब	३	२१२
गौरी-रायात्मजेन	गौरीराये आत्मजेन	१०	२१५
जी	जा	२	२१७
गजाननं	जगाननं	२	२१८
दोऊ	दोच	५	२२०
संवाद	सम्वाद (अ०)	३	२२७
याको निज	याकोनि ज	१	२३४
इन्द्रिय	इन्दि	४	२५०
आदि लै	आदिल	६	२५०
दुष्टेन्द्रिय	दुष्टेन्दिय	१	२५२
स्व-सिद्धान्त	स्वसिद्धान्ध (अ०)	१	२६०
पुरोवर्ती	पुरोवर्त्ति	६	३९६
पछानो	पछाना	३	४०१
कोई	काई	१	४०५
दोनों	दोनां	३	४१०
धर्म	धमे	४	४१५
अभाव	अमाव (अ०)	७	४२१
महावाक्यों	महाबाक्यो (अ०)	१	४२३
अनुपपत्ति	अनुपपत्ति (अ०)	”	४२३
गुणगुणीभाव	गुणगुणीभाप	६	४२८
यामों	यामां	५	४३२
संवादात्मक	सम्वादात्मक (अ०)	२	४४०
मों	मां	१	४४३
ब्रह्म	ब्रह्न	७	४४६
सर्व	सवं	९	”
हृश्ये	हृश्पे	३	४४८
धर्म	धमे	१९	४८२
तृतीय	तृताय (शी०)		४८९
संवाद	सम्वाद (अ०)	२	४९५
कर्म	कमं	८	५०३
यामें	याग	४	५०४
द्वैतवादी	द्वैंतवादी (अ०)	२	५०६

उक्तार्थ	उक्तार्क (अ०)	१	५०९
संवाद	सम्वाद	,,	,,
को	कां	६	,,
वृत्ति	बृत्ति	२	५१०
व्यर्थं	ब्यर्थ	२	५११
नाहिं	नाहि	३	,,
मङ्गल	मङ्गख (अ०)	९	५२३
लोक	लांक	३	५२५
होई	हाइ	४	,,
नहिं	नहि	४	५२८
रूपा	रूप	८	५२८
५२८	२२८ (पृ०)		,,

टीका

शुद्ध	अशुद्ध	पङ्क्ति	पृष्ठ
ही	हो	६	९
		(गणना टीका से)	
बिम्ब	बिब	२	१०
'क्लेशकर्मविपाकाशयैः[1]	क्लेश ' शय	२	२३
अपरामृष्टः	अपरामृष्ट	,,	,,
पुरुषविशेषः	पुरुषविशेषा	,,	,,
ईश्वरः	ईश्वरा	,,	,,
अधिक है	औ	१६	२४
स्वतः	स्वत	१५	३६
प्रधान	प्रधात	७	३९
पूर्ण	पूण	९	५३
अधिक है	की	१४	५४
सम्भवे	सन्भवे	२०	५४
सम्भवे	,,	८	५५

१. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः (यो०सू०१.२४) ।

निरवयवता	निरवयता	११	५६
अभेद	आभेद	१३	६७
इस	इश	११	९४
चतुर्दश	चतुदेश	२५	९४
धारण	घारण	"	"
पाठोक्त	पठोक्त	३०	११२
अनेकों	कनेकों	२५	११४
डरावे	ड़रावे	२३	११५
डरावा	ड़रावा	५	११६
अनिर्वचनीय	अनिर्वच्चनीय	१२	११७
अन्यथाख्याति	अन्यथा	११	११९
स्वप्न	स्पप्न	१७	११९
मोक्ष	मौक्ष	२४	१२४
न	म	२१	१२८
भिन्नकर्ता	भन्नकर्ता	४	१३१
अतिश्रेष्ठ	अतिश्रेष्ट	१७	१३९
अग्नि	अन्नि	५	१४४
उद्धृत	उद्धृत	१	२६७
पट	घट	१	२७२
द्वितीय	प्रथम (शी०)		२७५
"	" "		२७७
घर	धर	१२	२८५
द्वितीय	प्रथम (शी०)		२८७
वज्र	बज्र	५	२८९
चार्वाक	चार्बाक (अ०)	९	३१२
मोक्ष	माक्ष (शी०)		३१४
सिधावे	सिधाबे	५	३१८
धारो	घारो	८	३२०
द्वितीय	प्रथम (शी०)		३२७
कोपयुक्त	कोपत्रुक्त (अ०)	४	३२७
द्वितीय	प्रथम (शी०)		३२९
सिद्धान्ती	सिद्धान्तो	११	३३२

षष्ठ	पष्ठ	४	३४४
अनन्तर	अन्तर (अ०)	५	३४५
जड़ांश	जड़ाश	७	३४९
विभु	विभू	३	३५५
अणु	अणू	६	३५५
संवाद	सम्वाद (अ०)	५	३५९
विभु	विभू	८	३५९
सिद्धान्ती	सिंद्धान्ती	५	३६३
कोई	कीई	५	३६५
परमाणु	परमाणू	२	३६८
पूर्ण	पूणं	६	३६८
विभु	विभू	३	३७३
गौरोरायात्मजेन	गौरीराये आत्मजेन	७	३७८
गुरु	गुरू (अ०)		३८०
अन्तःकरण	अन्त्ःकरण	२४	१४५
ईषत्	इर्षत्	१०	१५९
धर्मों	घर्मो	१७	१६१
होवेगी	हावगो	२७	१६३
सदेव	सदेव	१७	१६४
साधक	साघक	१८	१६५
आस्रव	आश्रव	३	१७०
,,	,,	११	
,,	,,	१३	,,
,,	,,	१५	
घाती	घांती	१४	१७१
अस्ति	आस्ति	३	१७२
,,	,,	६	१७९
,,	,,	११	,,
,,	,,	१७	,,
विधा	विघा	१७	,,
अस्ति	आस्ति	१२	१८१
अनुमान	अनुभान	८	१८२
			१९३

व्यतिरेकवत्त्वात्	व्यतिरेकवत्वात्	९	१९३
बोधन	बोघन	१८	२००
मायाशबल	मायासबल	१०	२०१
"	"	२	२०३
"	"	१४	२०४
"	"	१६	"
व्यर्थ	व्यर्ध	१७	२०५
दार्ष्टान्तिक	दार्ष्यन्तिक	११	२०८
जगदुपादानता	जगदूपादानता	१२	"
अधिष्ठान	अधिष्टान	२२	२१०
"	"	२४	"
अधिक है	(एक) घट	२७	"
पांचों	पाचों	२	२११
निबन्धन	निवन्धन	१	२१२
ज्ञानेन्द्रिय	ज्ञानन्द्रिय	६	२१२
वाले	वांले	९	२१८
अघ	अद्य	१	२२०
ज्ञानोपयोगी	ज्ञानोयोगो	१९	"
शक्ति	शक्तिः	३२	२२३
प्रतिबिम्ब	प्रतिबिन्ब	१९	२२४
गम्भीरता	गम्भींरता	२३	"
गर्भस्थ-वामदेवः	गर्भस्थ वामदेव	२	२२६
अनात्मा	अनात्भा	१३	२२८
विरोध	विरोघ	१०	२३०
अभान	आभान	३१	२३१
अग्नि	आग्नि	२०	२३२
रूपतावत्	रूवतावत्	२०	२३३
निरवयव	निखयव	"	"
"	"	११	२३४
नहीं	नर्ही	२०	"
निरवयव	निखयव	२६	"
होवेगा	हौवेगा	२३	२३५

विकल्पों	विकल्पो	२४	,,
विरोधी	विंरोधी	२६	,,
जैसे	जैस	१	२३६
संयोग	संयाग	११	,,
इकठा	एकठा	८	२३८
अविद्या	अनिद्या	९	२४०
अध्यस्त	अध्यत	११	,,
दुर्निरूप्य	दुनिरुप्य	,,	,,
अविद्या	अनिद्या	१३	२४१
इन्द्रिय	इद्रिय	१	२४३
जड़	जङ्	१२	२४४
अज्ञान	आज्ञान	१६	२४५
अपरोक्ष	अपराक्ष	१०	२४६
अधिष्ठान	अघिष्ठान	१६	,,
अधिष्ठान	अधिष्ठान	१२	२४७
मेरे	मेरो	१७	२४८
सम्भवे	सम्भने	१	२५३
रजतादि	रजताति	१७	,,
घटादिक	घटादिक	१८	,,
अध्यास	अध्यास	२	२५४
आवृत्त	आवृत	४	२५४
अनावृत्त	अनावृत	४	२
,,	,,	५	,,
घटादिक	घटादिक	१०	,,
विना	ाबना	१५	२५६
अर्थात्	अर्थान्	१९	,,
मिथ्याभास	मिथ्यामास	,,	,,
नेत्र	नत्र	१	२५८
उक्त	उक्ष	१२	,,
कूं	कू	७	२५९
होवे	होव	१७	,,
मेरे	मोरो	२	२६१

विषयावच्छिन्न	विषयावच्चिन्न	२१	२६३
दुष्ट	दु	२५	"
सम्बन्ध	सम्वन्ध	१८	२६४
प्रसिद्ध	प्रसिट	४	२६६
अनुव्यवसाय	अनुव्यववाय	११	२७०
से	स	८	२७१
में	मे	१	२७४
नाम	नाभ	११	२७५
निष्ठ	निष्ट	१९	"
तादात्म्य	तादात्स्य	१	२८०
इक्षुयष्टी	इक्षुयंष्टी	६	२८८
सिद्धान्ती	सिद्धन्ती	७	२९२
देहोऽहम्	दहोऽहम्	८	२९७
चिद्रूपत्वात्	चिद्रुपत्वात्	१५	"
नहीं	नहा	८	३०४
अनुव्यवसायों	अनुव्यवसायो	१८	"
श्रेष्ठ	श्रष्ठ	२	३०९
अङ्गीकार	अंगीकार	२	३१०
विधिविहीन	विधिविहीन	५	३११
ह्येषः	ह्येय	६	३२३
होय	हीय	१	३२४
दुर्विज्ञेय	दूर्विज्ञेंय	५	३२५
एषः	एष	१६	"
इति	इति	४	३२६
को	में	१०	३२९
महत्तत्व	महतत्त्व	७	३३०
"	"	"	"
लाघव	लाधव	१९	"
श्रवण	श्रारण	१०	३३९
इष्टार्थापत्ति	इष्टार्थापत्ति	९	३५१
स्रक्	सुक्	२६	"
स्मृति	स्भृति	४	३५८

निरवयव	निखयव	१६	३६६
अनुभवारूढ़	अनभवारूढ़	१४	३६७
है	हे	११	३७२
पाद	प्राद	१०	३७७
सम्पूर्ण	सम्पूर्ण	३१	३८१
सत्पने	सद्पने	७	३८५
हुआ	हुअ	१५	"
सन्ति	सति	२	३८६
विरोधी	विराधी	१५	३९५
प्रमुष्टतत्ता	प्रनुष्टतत्ता	२४	"
वेंत	वेत	१०	३९७
अनुमान	अनुयान	११	३९९
अनिर्वचनीय	अनिवर्चनीय	१४	"
होवे	हीवे	६	४०२
साच	सांच	१७	४०२
घटाकार	घटाकार	१७	४०३
रजत	रजन	२२	४०४
में	मे	२७	"
बाह्य	बाह्य	२८	"
कोई	कोंई	१०	४०५
घटादिकों	घटादिको	१३	४०६
अर्थों	अर्थो	१५	"
दृष्टान्त	दृष्ठान्त	१२	४०७
पुरोवर्तीपना	पुरोंवर्तीपना	२१	"
निरूप्य	निहृप्य	१७	४११
अग्राह्यता	अगाह्यता	६	४१३
दोषों	दोषां	११	"
धर्मों	धर्मो	२०	४१५
को	कों	"	"
है	ह	२२	"
प्रत्यक	प्रत्यक्	८	४१६
नखागर	नरवागर	२१	४१८

आशङ्का	आशका	९	४१९
सम्बन्ध	सम्वन्ध	११	४२२
न्यून	न्थून	१८	,,
अधिक है	नहीं	१९	,,
ईश्वर	इश्वर	५	४२३
सोम्येदमग्र	सोम्पेदमग्र	१०	,,
परस्पर	पस्पर	१०	४२४
व्यधिकरणता	व्यक्तिकरणता	३	४२९
उर्पत्त्यादि	उत्पत्त्यादि	८	४३१
उत्पत्त्यादि	उर्त्पत्यादि	९	,,
तं	तत्	३	४३८
त्वौपनिषदं	त्वमौपनिषदं	,,	,,
को	की	७	,,
नखो	नखों	८	,,
नख	नरव	९	,,
सत्यायतन	सत्याययतन	१३	४४०
दार्ष्टान्तिक	दर्ष्टान्तिक	३	४४५
नदी	नदो	१	४४६
पूर्व	पूर्वं	५	,,
,,	,,	४	,,
पूर्वोक्त	पूर्वोंक्त	४	४४९
स्थूल	श्थूल	२२	४५०
साधनों	साधनो	१०	४५१
वेद	वेंद	१३	४५२
नवमों	नवमो	३	४५८
प्रधान	प्रघान	१०	४६२
मुक्ता	मृक्ता	११	,,
अतिशय	अनिशय	५	४६५
ब्राह्मणोभेदम्	ब्राह्मणोभेंदम्	९	४६७
करिष्यति	कृष्यति	,,	,,
वर्तमान	वर्तमान	१२	४६८
,,	वतमान	१५	,,

अनुवाद	अनुवार	५	४७०
दोषों	दोषो	१	४७३
शास्त्रम्	शास्त्र	२	४७४
न्यून	न्यून्	८	"
होवे	होव	९	"
सो	सों	१३	"
पैण्डा	पौण्डा	२०	"
तीर	तार	२	४७६
अश्व	अश्य	१४	"
अश्वत्व	आश्वत्व	१५	"
तत्त्वमस्यादि	तत्वमस्यादि	३	४७९
वाक्यस्थपदयोरिव	ववाक्यस्थयदयोखि	६	"
अपरोक्षत्व	अपरोंक्षत्व	८	"
पदार्थाविव	यदार्थाविव	१	४८०
त्वं	त्वँ	९	"
रु	रू	१२	४८३
ज्ञानमनन्तं	ज्ञान मनन्त	२	४८४
उत्पत्त्यादिकों	उत्पत्यादिकों	६	"
सोऽद्वया	सोऽद्या	७	४८६
पूर्वं	पूवं	१७	४८७
विशिष्ट	विंशिष्ट	३	४८८
अर्थं	अर्थँ	५	"
विशिष्ट	विशिष्ठ	१७	"
आनयन	आनयद	१८	"
मुमुक्षु	मुमृक्षु	२५	"
अद्वयानन्द	उद्वयानन्द	२८	"
को	को को	२	४८९
सर्वथा	सवंथा	८	"
काल	फाल	१५	"
संसर्ग	संसग	२२	"
अपर्याय	अपर्यांय	१५	४९०
गामानय	गाममानय	२५	४९२

नैमित्तिक	नैंमित्तिक	४	४९६
मुक्ति	मृक्ति	८	४९८
मोक्ष	मृक्त	३	५०२
नित्य	नित्त्य	१९	५०३
धर्मों	धर्मो	३	५०४
वर्णों	वर्णो	१०	"
श्रेष्ठ	श्रेष्ट	१७	"
अग्निवत्	अग्रिवत्	८	५१०
जीवन्मुक्त	जीवग्जक्त	६	५११
ज्ञानवानों	ज्ञानावानों	१३	५१९
जैगीषव्यादिक	जेगीषव्यादिक	६	५२०
घटादि	घर्टादि	१६	५२६
प्रमाता	प्रभाता	१५	५२९
साधन	साघन	३	५३७
५३८	४३८ (पृ०)		५३८
५३९	४३९		५३९
तत्कार्य	तत्कर्य	४	५४६
शास्त्र	शस्त्र	१०	५४७
एष:	एष	४	५४८
इति	ति	९	५५२
गर्त	गर्तं	१२	५५५
बाह्य	ब्राह्म	८	५५७
धारा	घारा	१	५६०
संवेद्य	सम्वेद्य	१६	५७५
अगम्यता	आगभ्यता	"	"
संवेद्य	सम्वेद्य	१९	"
प्रभा	प्रमा	६	५७९
चतुर्थो	चतुर्थों	"	"
प्रारब्ध	प्ररब्ध	१२	५८८
अधिष्ठान	अघिष्ठान	१४	५९२
भाखौं	भारवौं	१६	"
नाशादिक	नाशदिक	१९	"

अनुवाद	अनुवार	५	४७०
दोषों	दोषो	१	४७३
शास्त्रम्	शास्त्र	२	४७४
न्यून	न्यून्	८	"
होवे	होव	९	"
सो	सों	१३	"
पैण्डा	पौण्डा	२०	"
तीर	तार	२	४७६
अश्व	अश्य	१४	"
अश्वत्व	आश्वत्व	१५	"
तत्त्वमस्यादि	तत्वमस्यादि	३	४७९
वाक्यस्थपदयोरिव	ववाक्यस्थयदयोखि	६	"
अपरोक्षत्व	अपरोंक्षत्व	८	"
पदार्थाविव	यदार्थाविव	१	४८०
त्वं	त्वँ	९	"
रु	रू	१२	४८३
ज्ञानमनन्तं	ज्ञान मनन्त	२	४८४
उत्पत्त्यादिकों	उत्पत्यादिकों	६	"
सोऽद्वया	सोऽद्या	७	४८६
पूर्वं	पूवं	१७	४८७
विशिष्ट	विशिष्ट	३	४८८
अर्थ	अर्थं	५	"
विशिष्ट	विशिष्ट	१७	"
आनयन	आनयद	१८	"
मुमुक्षु	मुमृक्षु	२५	"
अद्वयानन्द	उद्वयानन्द	२८	"
को	को को	२	४८९
सर्वथा	सवंथा	८	"
काल	फाल	१५	"
संसर्ग	संसग	२२	"
अपर्याय	अपर्यांय	१५	४९०
गामानय	गाममानय	२५	४९२

नैमित्तिक	नैंमित्तिक	४	४९६
मुक्ति	मृक्ति	८	४९८
मोक्ष	मृक्त	३	५०२
नित्य	नित्त्य	१९	५०३
धर्मों	धर्मो	३	५०४
वर्णों	वर्णो	१०	"
श्रेष्ठ	श्रेष्ट	१७	"
अग्निवत्	अग्रिवत्	८	५१०
जीवन्मुक्त	जीवग्जक्त	६	५११
ज्ञानवानों	ज्ञानावानों	१३	५१९
जैगीषव्यादिक	जेगीषव्यादिक	६	५२०
घटादि	घटादि	१६	५२६
प्रमाता	प्रभाता	१५	५२९
साधन	साघन	३	५३७
५३८	४३८ (पृ०)		५३८
५३९	४३९		५३९
तत्कार्य	तत्कर्य	४	५४६
शास्त्र	शस्त्र	१०	५४७
एषः	एष	४	५४८
इति	ति	९	५५२
गर्त	गर्तं	१२	५५५
बाह्य	ब्राह्म	८	५५७
धारा	घारा	१	५६०
संवेद्य	सम्वेद्य	१६	५७५
अगम्यता	आगभ्यता	"	"
संवेद्य	सम्वेद्य	१९	"
प्रभा	प्रमा	६	५७९
चतुर्थो	चतुर्थों	"	"
प्रारब्ध	प्ररब्ध	१२	५८८
अधिष्ठान	अघिष्ठान	१४	५९२
भाखौं	भारवौं	१६	"
नाशादिक	नाशदिक	१९	"

अनिर्वचनीयान्त	अनिवचनीयान्त	१३	५९७
पूर्वोक्त	पूर्वौक्त	२३	५९८
शुक्ति	सुक्ति	६	६०५
निर्वेद	निवेद	१४	६०६
विरजेत्	विरज्येत	५	६०७
श्रावयेत्	श्राव्येत्	८	"
ऐसा	सेसा	२७	"
कर्म	कर्मं (अ०)	२	५३५
व्रण	ब्रण	४	५४०
व्रण	"	"	"
"	"	७	"
"	"	८	"
नहिं	नहि	२	५४६
कहीजे	महीजे	१	५५४
प्रणायाम	प्रागयाम	३	५५७
भव	भह	९	"
निर्धार	निधार	१२	"
शुभेच्छा	सुमेच्छा	४	५६५
तुर्यंग	तुयंग	११	५६६
परमातम	षरमातम	१२	५७२
मोक्ष	माक्ष (शी०)		५७४
नमस्कारात्मक	नयस्कारात्मक (अ०)	१०	५८१
भेद	मेद	११	"
पूर्वपक्षी	पूवपक्षी	५	५८३
पावें	षावें	६	५८८
माहीं	मरहीं	५	५९०
मुक्ति	मुक्त	४	५९२
कछु	कुछु	२०	६०३
सवैया	मवैया (छ०)	५	६०४
दान्तहिं	दान्तहि	५	६०६
"			